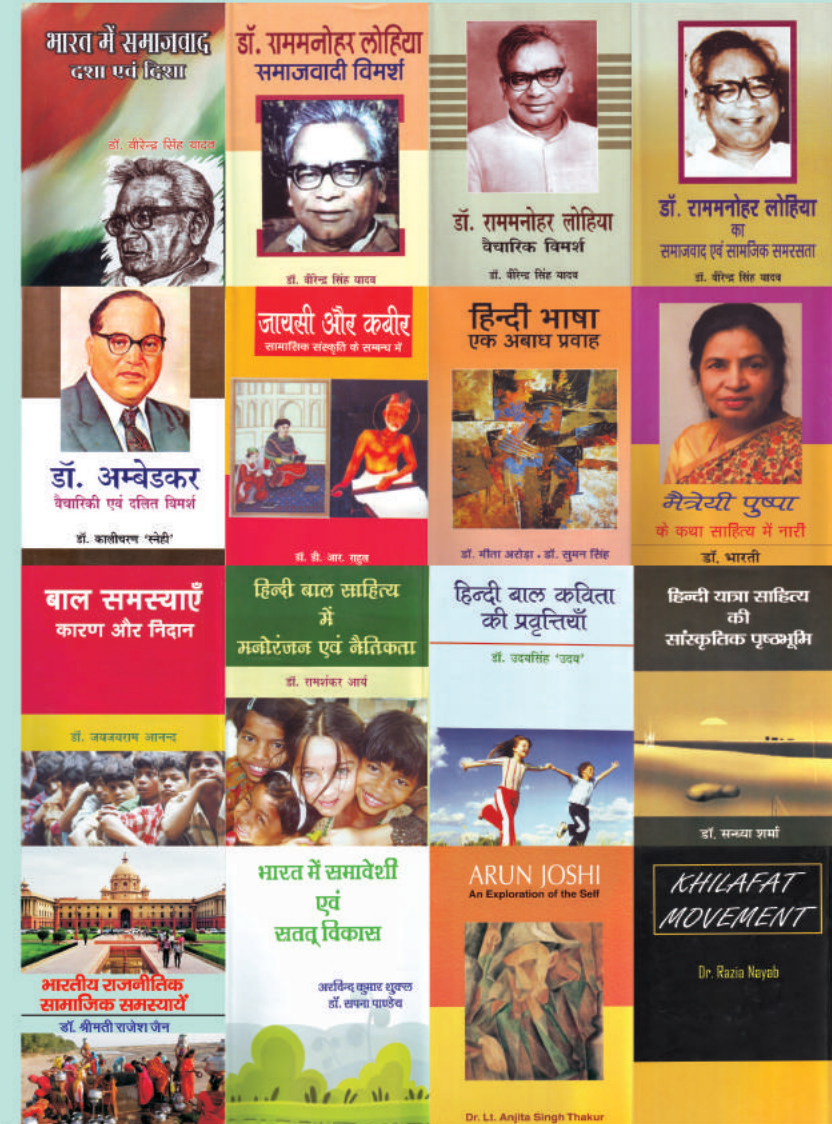




आराधना ब्रदर्स
प्रकाशक एवं वितरक

124/152-सी ब्लॉक, गोविन्द नगर, कानपुर-208 006 (उ.प्र.)
दूरभाष : 09935007102, 09935007101, 0512-2651490
Email : aradhanabooks@rediffmail.com

कृतिका वर्ष : 8 संयुक्तांक : 15-16 जनवरी-दिसम्बर 2015 कृतिका

RNI : UPHIN/2008/30136

ISSN : 0975-0002

वर्ष : 8 संयुक्तांक : 15-16

कृतिका

जनवरी-दिसम्बर 2015

साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी
एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक
अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका

सम्पादक

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमिनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वाल्यूम : 15-16, वर्ष : 08, जनवरी-दिसम्बर 2015

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 08

अंक : 15-16

जनवरी-दिसम्बर 2015

सम्पादक

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

एसोसिएट प्रोफेसर-हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ-226 017 (उ.प्र.)

सम्पर्क : 07607762917, 09415924888,

Email : dr.virendrayadav@gmail.com • kritika_orai@rediffmail.com

Email : virendra_kritika@rediffmail.com • http://kritika-shodh.blogspot.com

कार्यकारी सम्पादक

नीलम यादव

303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय परिसर

डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ-226 017 (उ.प्र.)

प्रबन्धन

आराधना ब्रदर्स

(प्रकाशक एवं वितरक)

124 / 152- सी ब्लॉक, गोविन्दनगर, कानपुर-208 006, उ.प्र.

दूरभाष -09935007102, 05122651490

Email : aradhanabooks@rediffmail.com

कृतिका इंटरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वाल्यूम : 15-16, वर्ष : 08, जनवरी-दिसम्बर 2015

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 08 अंक : 15-16 जनवरी-दिसम्बर 2015

सामान्य अंक	:	60.00 रुपये	
इस अंक की सहयोग राशि	:	400.00 रुपये	
यू. एस. 25 \$		यूरो 40 \$	
व्यक्तिगत सदस्यों के लिये			
पाँच वर्ष के लिये	:	3000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	6500 रुपये	(डाक व्यय सहित)
संस्थाओं के लिये			
प्रति अंक	:	500 रुपये	(डाक व्यय सहित)
पाँच वर्ष के लिये	:	5000 रुपये	(डाक व्यय सहित)
आजीवन	:	10000 रुपये	(डाक व्यय सहित)

विषेय : सभी भुगतान नकद/आर.टी.जी.एस./बैंक ड्राफ्ट/चेक 'सम्पादक कृतिका' के नाम Payable at Lucknow भेजें। नकद जमा (R.T.G.S.) हेतु भारतीय स्टेट बैंक - मुख्य शाखा लखनऊ के A/C 30358537228 IFSC No. - SBIN0000125 में जमा कर सकते हैं। (नकद जमा हेतु बैंक कमीशन 50 रु. अतिरिक्त जमा करें।)

- ☞ विधिकवादों के लिये क्षेत्र, उरई न्यायालय के अधीन होंगे।
- ☞ कृतिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से सम्पादक मण्डल (कृतिका परिवार) की सहमति अनिवार्य नहीं है।
- ☞ शोध पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिये सम्पादक मंडल की लिखित अनुमति अनिवार्य है। कृतिका के सम्पादन, प्रकाशन व प्रबंधन से जुड़े समस्त पद अवैतनिक हैं।

प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वत्वाधिकारी डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव द्वारा महक कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिण्टर्स, 15, आजाद नगर, उरई (जालौन) से मुद्रित करवाकर 1760, नया रामनगर, उरई (जालौन) से प्रकाशित।

सम्पादक-डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वाल्यूम : 15-16, वर्ष : 08, जनवरी-दिसम्बर 2015

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 08

अंक : 15-16

जनवरी-दिसम्बर 2015

सम्पादक

डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव

रीडर हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ, 226 017 (उ. प्र.)

सम्पर्क — 07607782917, 09415924888

Email : dr.virendrayadav@gmail.com • Email : virendra_kritika@rediffmail.com

Email : kritika_orai@rediffmail.com • http://kritika-shodh.blogspot.com

कार्यकारी सम्पादकीय कार्यालय

नीलम यादव

303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय परिसर

डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय

लखनऊ — 226 017

प्रबन्धन

आराधना ब्रदर्स

(प्रकाशक एवं वितरक)

124 / 152— सी ब्लॉक, गोविन्दनगर,

कानपुर-208 006, उ.प्र.

दूरभाष —09935007102, 05122651490

Email : aradhanabooks@rediffmail.com

क्षेत्रीय प्रधान सम्पादकीय कार्यालय

डॉ. चन्द्रमा सिंह

नया गाँव जी.टी. रोड, ठाकुर मार्केट के सामने,

सासाराम बिहार — 821 115

Email : kritika_orai@rediffmail.com

डॉ. सुरेश एफ. कानडे

प्लॉट नं. 48, साई बंगला, प्रोफेसर कॉलोनी,

विजडम हाईस्कूल के पीछे, रामेश्वर नगर,

गंगापुर रोड, नासिक 422013 (महाराष्ट्र)

सम्पर्क—09422768141

Email : sureshkande2009@rediffmail.com

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वाल्यूम : 15-16, वर्ष : 08, जनवरी-दिसम्बर 2015

कृतिका : एक परिचय

शोध एवं अनुसंधान गतिविधियों के एकीकृत अध्ययन के लिये युवा शोधार्थियों, अध्येताओं को शोध के नवीन अवसरों को उपलब्ध कराने हेतु कृतिका शोध पत्रिका की परिकल्पना की गई। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका है। कृतिका का सम्पादक मण्डल देश एवं विदेश के विभिन्न राज्यों के विषय विशेषज्ञों की सहभागिता के आधार पर कार्य कर रहा है। मानविकी एवं समाज विज्ञान में शोध के नवीन अवसरों की भागीरथी प्रवाहित करने के उद्देश्य से सहकारिता के आधार पर इस शोध पत्रिका का प्रचार सम्पूर्ण भारत के साथ-साथ सात समुन्दर पार यू.एस.ए., लंदन, आस्ट्रेलिया, जापान, जर्मनी, मॉरीशस आदि के शोध निदेशक एवं शोधार्थियों का कृतिका में रचनात्मक सहयोग प्राप्त है।

कृतिका शोध पत्रिका का एक दूसरा उद्देश्य मानविकी एवं समाज विज्ञान के अलावा विषयों की सीमाओं से हटकर स्वतंत्र रूप से गहन एवं मौलिक शोध की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना है ताकि शोध पत्र न केवल गम्भीर अध्येताओं के लिये उपयोगी हो, बल्कि यह जनसामान्य में नवीन जानकारी, शोध के प्रति उत्सुकता एवं जागरूकता का परिचायक भी सिद्ध हो। साथ ही यह व्यावहारिक धरातल पर उपयोगी भी हो। कृतिका में इन्हीं विचारों को दृष्टिगत रखते हुये साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान के विषयों के अलावा हम विज्ञान एवं अन्य विषयों के शोध पत्र भी आमंत्रित करते हैं। उत्तर आधुनिकता एवं भूमण्डलीकरण के इस दौर में वर्तमान की ज्वलंत समस्याओं से संबंधित विषयों पर समय-समय पर कृतिका परिवार विषय-विशेष पर विशेषांक केन्द्रित अंक भी निकलता है जिसकी सूचना कृतिका शोध पत्रिका में एवं अलग से पत्रों के माध्यम से शोध अध्येताओं एवं जिज्ञासु युवा रचनाकारों को समय-समय पर दी जायेगी।

सामान्य निर्देश

रचनाकारों/शोध अध्येताओं से विनम्र अनुरोध :

- ☞ कृतिका साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान का एक अर्द्धवार्षिक शोधपरक अनुष्ठान है जो युवा अध्येताओं, शोधार्थियों एवं खोजकर्ताओं का अपना मंच है। अपने मौलिक एवं नवीन अन्वेषणात्मक रचनाओं के सहयोग से इसे सम्बल प्रदान करें।
- ☞ मानविकी एवं समाज विज्ञान से सम्बन्धित सभी विषयों की मौलिक रचनायें विषय विशेषज्ञों की सहमति से ही इसमें प्रकाशित की जाती हैं।
- ☞ कृतिका में प्रकाशित शोध पत्र देश एवं विदेश के विषय विशेषज्ञों के पास चयन के लिए प्रेषित किये जाते हैं। इसलिये शोध पत्र/आलेख लिखते समय संदर्भों का स्पष्ट उल्लेख करें, पुस्तक का संदर्भ, पत्र-पत्रिका का संदर्भ, प्रकाशन, वर्ष एवं संस्करण का उल्लेख आवश्यक है। शोध पत्र/आलेख की शब्द सीमा दो हजार शब्दों से अधिक नहीं होनी चाहिये। यदि शब्द सीमा अधिक है तो सम्पादक मण्डल को उसमें संशोधन, संक्षिप्तीकरण का अधिकार सुरक्षित रहेगा।
- ☞ कृपया अपनी शोध रचनाएं एवं आलेख प्रेषित करते समय अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त, छायाचित्र प्रेषित करें। रचना के शोध संक्षेप सार का उद्देश्य, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता एवम् उपयोगिता को अवश्य दर्शायें।
- ☞ कृतिका में पुस्तक समीक्षा के लिये चर्चित एवं महत्वपूर्ण पुस्तकों/पत्रिकाओं पर समीक्षात्मक आलेख आमंत्रित हैं। समीक्षात्मक आलेख के साथ पुस्तक/पत्रिका की दो प्रतियां रजिस्टर्ड डाक से प्रेषित करें।
- ☞ स्तरीय पुस्तक की समीक्षा के लिये समीक्ष्य पुस्तक की दो प्रतियों के साथ लेखक अपना संक्षिप्त आत्मवृत्त एवं छायाचित्र तथा पुस्तक का संक्षेपण पंजीयन डाक से सम्पादक के पते से प्रेषित करें। समीक्षा की स्थिति में शोध पत्रिका का अंक सम्बन्धित लेखक के पते पर भेजा जायेगा।
- ☞ किसी भी दशा में शोध पत्र/आलेख की प्रति वापस (स्वीकृति/अस्वीकृति की स्थिति में) नहीं प्रेषित की जा सकती है। इसलिये कृपया एक प्रति अपने पास सुरक्षित अवश्य रखें।
- ☞ कृतिका एक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका है। कृपया रचना प्रेषित करते समय यह भलीभाँति तय कर लें कि यह शोध पत्र/आलेख/रचना आपकी अपनी मौलिक कृति है। और कृतिका के मापदण्डों के अनुकूल है कि नहीं। कृतिका परिवार आपके नये अकादमिक सुझावों एवं प्रतिक्रियाओं का सदैव स्वागत करेगा।
- ☞ रचनायें कम्प्यूटर से मुद्रित अथवा कृति देव 10 में 14 फांट साइज में MS-Word Software में टाइप करके ई-मेल करें या साथ में सीडी एवं रचना का प्रिन्ट अवश्य भेजें।

—कृतिका परिवार

कृतिका इण्टरनेशनल रिसर्च जर्नल आफ हाफ इयरली ह्यूमनिटीज एण्ड सोशल साइंसेज

ISSN : 0975-0002 वाल्यूम : 15-16, वर्ष : 08, जनवरी-दिसम्बर 2015

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की
अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

वर्ष : 08

अंक : 15-16

जनवरी-दिसम्बर 2015

अनुक्रमणिका

शीर्षक	लेखक	पृ. सं.
सम्पादकीय.....		i-iii

अतीत का भारत : विमर्श के विविध प्रसंग

1. वेदों में अर्थ पुरुषार्थ की अवधारणा एवं विश्व कल्याण	डॉ. दिव्या मिश्रा	1-4
2. भारतीय पौराणिक ग्रन्थों में पर्यावरण शिक्षा, संरक्षण एवं जागरुकता	डॉ. जय सिंह	5-10
3. वेदों में मूल्य शिक्षा की अवधारणा	डॉ. कुमार पाल	11-15
4. आचार्य मनु द्वारा मनुस्मृति में युगों के ह्रास से युग धर्म का ह्रास की व्याख्या	डॉ. नन्दिनी समाधिया	16-18
5. ब्राह्मण ग्रन्थों में सृष्टि-प्रक्रिया और आचार-दर्शन	डॉ. राकेश कुमार	19-24
6. प्रयाग के ऐतिहासिक स्थलों का महत्त्व	डॉ. वीना सिंह	25-30
7. बौद्ध धर्म में नारियों का स्थान	डॉ. आभा लता चौधरी	31-35
8. वर्तमान समय में महाभारत द्वारा ग्राह्य सामाजिक सन्देश : एक विवेचन	डॉ. गीता शुक्ला	36-43
9. जैन नीतिशास्त्र में अणुव्रतों की प्रासंगिकता	डॉ. विनीता अवस्थी	44-49
10. संस्कृत नाट्य परम्परा की प्रासंगिकता	डॉ. शिवानी शुक्ला	50-52

भारत में शिक्षा के उभरते क्षितिज एवं गहराती चुनौतियाँ

11. स्ववित्त पोषित संस्थानों की स्थिति का आंकलन : एक अध्ययन	डॉ. उमा तिवारी	53-54
12. अध्यापक शिक्षा और मूल्यांकन	अलका सक्सेना	55-58
13. उच्चतर माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों की निर्देशन दक्षता का तुलनात्मक अध्ययन	शिवेन्द्र सिंह, डॉ. धर्मपाल सिंह	59-62

14. हाईस्कूल कक्षा के विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिरूचियों का तुलनात्मक अध्ययन	वन्दना गुप्ता	63-68
15. एम.पी. बोर्ड तथा सी.बी.एस.ई. बोर्ड द्वारा माध्यमिक स्तर पर प्रस्तावित भौतिक विज्ञान की पाठ्य पुस्तक का तुलनात्मक अध्ययन	श्रीमती वन्दना शर्मा	69-73

भारत में महिला सशक्तिकरण का स्याह यथार्थ

16. भारत में महिलाओं की वर्तमान स्थिति की सामाजिक विवेचना	नीलम यादव	74-78
17. महिलाओं को सुरक्षित एवं सशक्त बनाने में पुलिस प्रशासन की भूमिका एवं उनकी चुनौतियाँ	डॉ. लक्ष्मीना भारती	79-86
18. विज्ञापन और महिला	डॉ. अंजना वर्मा	87-90
19. महिला उद्यमी-आर्थिक चुनौतियाँ	डॉ. निशा जैन	91-94
20. पंचायती राज और दलित महिलाओं का सशक्तीकरण	प्रियंका सिंह	95-97

भारत में लोकतांत्रिक प्रणाली के विविध सरोकारों का मूल्यांकन

21. नोटा के अधिकार के प्रति जागरूकता-एक अध्ययन	डॉ.(श्रीमती) सुजाता सैमुएल, 98-101 डॉ.(सुश्री) सपना कौर	
22. राजनैतिक सुधारों की प्रासंगिकता और चुनौतियाँ	डॉ. रणविजय सिंह	102-104
23. लोकतन्त्र में मीडिया की भूमिका	डॉ. भावना यादव	105-109
24. भारत में न्यायिक सक्रियता	डॉ. आदित्य प्रकाश सिंह	110-113

भारत में साहित्य चिन्तन के विविध सरोकार

25. वैश्वीकरण और विश्व भाषा के रूप में हिन्दी	डॉ. अजेन्द्र यादव	114-118
26. हिन्दी कहानियों व निबंधों में व्यंग्य	डॉ. मीना सिंह	119-123
27. महिला कथाकार	डॉ. नीतू सिंह	124-126
28. निराला के काव्य में राष्ट्रीय चेतना	डॉ. आशा वर्मा	127-132
29. आज के नवगीत : समय से संवाद	डॉ. रचना भारतीय	133-138
30. नागार्जुन के काव्य में आम आदमी का चिन्तन	डॉ. प्रतिभा धारासुरकर	139-142
31. कृष्णा सोबती की कहानियों में नारी विमर्श	डॉ. सुमन सिंह	143-146
32. सांस्कृतिक धरातल पर कोहली के औपन्यासिक चरित्रों में आधुनिकता बोध	श्रवण कुमार प्रजापति, डॉ. हेमा देवरानी	147-149
33. मंगलेश डबराल व उनकी संवेदना	यदुमति शर्मा	150-153
34. से.रा. यात्री के उपन्यासों में आम आदमी	डॉ. सुनिल पानपाटील	154-160

हिन्दी साहित्य में दलित चिन्तन के श्वेत-श्याम पक्ष

35. भारतीय साहित्य में दलित चेतना के विद्रोही स्वर	डॉ. हेमलता सुमन	161-166
36. प्रेमचन्द की कहानियों में दलित प्रतिरोध	योगेश यादव	167-168
37. दलित आत्मकथाओं का यथार्थ	डॉ. सियाराम	169-171

भारत में संगीत, लोक संस्कृति एवं साहित्य में चिन्तन के विविध पक्ष

38. समग्र विकास की ओर संगीत चिकित्सा के बढ़ते कदम	डॉ. ज्योति सिन्हा	172-174
39. लोकसाहित्य और मानव जीवन में उसके अध्ययन का महत्त्व	सरिता विश्नोई	175-181
40. बुन्देली लोकगाथा का प्रतीक 'आल्हा'	डॉ. सविता मसीह	182-186
41. भोजपुरी भाषा में लोक संस्कृति के विविध सरोकारों का मूल्यांकन	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	187-194
42. गढ़वाली लोकगीतों में स्त्री संवेदना का रागात्मक स्वरूप	प्रियंका सहगल	195-197
43. गोंडवाना क्षेत्र की सांस्कृतिक व्यवस्थाएँ : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन, स्थापत्य कला—गढ़ा, रामनगर तथा मण्डल के विशेष संदर्भ में (15वीं शताब्दी से 17वीं शताब्दी तक)	डॉ. डिलेश्वर ग्वालवंशी	198-202

भारत में पर्यावरण चिन्तन—चिन्ता के विविध परिदृश्य

44. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण का संरक्षण	डॉ. सविता कुमारी, डॉ. ऊषा दहिया	203-210
45. भारतवर्ष में पर्यावरण शिक्षा के प्रति जागरूकता	डॉ. अंजूलता	211-214
46. समकालीन कविता और पर्यावरण चेतना	डॉ. राजेश कुमार गर्ग एवं डॉ. मलखान सिंह	215-218

इक्कीसवीं सदी के भारत में चिन्तन—चिन्ता के विविध सरोकार

47. भारत में भूमंडलीकरण के सामाजिक—सांस्कृतिक निहितार्थ	डॉ. चमन लाल शर्मा	219-222
48. वैश्वीकरण की अवधारणा एवं उभरती चुनौतियाँ	डॉ. श्रीमती राजेश जैन	223-226
49. वैश्वीकरण का दौर : समाजवाद का बदलता स्वरूप	रेनू कमल	227-230
50. समाजवाद और नेहरू का आर्थिक चिंतन	डा. अभिलाष सिंह यादव	231-234
51. भारतीय मुसलमानों की समस्याएँ और उनका समाधान	डॉ. रजिया	235-243

भारत में विकास के नवीन परिदृश्य

52. ग्रामीण कृषि विकास में साख की भूमिका	डॉ० सुमन रोहिला	244-248
53. भारत में पर्यटन उद्योग	डॉ० बी.एस.राठौर, डॉ० विजय सिंह राठौर	249-261
54. भारत में खाद्य सुरक्षा एवं खाद्य उपलब्धता : एक विश्लेषण	डॉ० रजनी भारती जितेन्द्र कुमार रामटेके	262-268

महाकाव्यों में चिन्तन के अछूते सन्दर्भ

55. राम की दृष्टि : सुशासन के संदर्भ में	डॉ. निरुपमा त्रिपाठी	269-272
56. अर्जुन के आप्रासंगिक प्रश्न ?	रामप्रसाद सूर्यवंशी	273-280

भारत के नवनिर्माण में अग्रज एवं अनुज पीढ़ी का योगदान

57. बुद्ध ने भारतीय संस्कृति को लोक कल्याणक बनाया	डॉ. ज्योति सिंह गौतम	281-285
58. स्वामी विवेकानन्द का राजनीतिक दर्शन	ऑचल मीणा	286-288

59. मानवता के पुरोध-स्वामी विवेकानन्द	डॉ. रश्मि सोमवंशी	289-293
60. गाँधी जी के नीतिशास्त्रीय विचारों की महत्ता	आलोक कुमार	294-295
61. डॉ. भीमराव अम्बेडकर के विचारों का मूल्यांकन	डॉ. गीता यादव	296-303
62. संत तुकाराम के काव्य में सामाजिक चिंतन	डॉ. सुनील पानपाटील, डॉ. अजित चव्हाण	304-312
63. रवीन्द्रनाथ त्यागी के व्यंग्य निबन्धों में व्यक्त इतिहास बोध	सन्तोष विश्णोई	313-319

भारत का आंचलिक समाज

64. सामाजिक परिवर्तन लाने में प्रौद्योगिकीय कारकों की भूमिका (रीवा नगर के विशेष संदर्भ में)	डॉ.(श्रीमती) शाहेदा सिद्दीकी	320-327
65. मध्यमिक स्तर की पिछड़ी जाति एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन (रा.बा.इ.का., सितारंगज के संदर्भ में)	आस्मा	328-333
66. उत्तर प्रदेश के ग्रामीण अंचलों में स्त्री शिक्षा (कानपुर का विश्लेषणात्मक अध्ययन)	डॉ. रंजना श्रीवास्तव, डॉ. सुमन शर्मा	334-337
67. बुन्देली स्त्रियों के परम्परागत आभूषण	डॉ. सुनीता वर्मा	338-341

भारत में सामाजिक समस्याओं के ज्वलंत प्रश्न

68. गांधीवादी चिंतन में निहित प्राकृतिक संसाधन एवं पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा	डॉ. अनुपमा यादव	342-345
69. सामाजिक तथ्य-एक समग्र विश्लेषण	डॉ. विजय कुमार वर्मा	346-353
70. भारतीय आर्थिक संरचना और दलित विमर्श	नन्दिता मिश्रा	354-356
71. उत्तर आधुनिक संस्कृति में लोक जनमानस के बदलते जीवन मूल्य	डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव	357-361
72. किशोरावस्था में बढ़ती अपराधिक प्रवृत्ति की भावना सामाजिक विकास के लिए अभिशाप	श्रीमती रेनू सिंह	362-364
73. आटो/टैम्पो चालकों की मनोसामाजिक एवं आर्थिक दशाओं का अध्ययन	डॉ. विवेक कुमार सिंह, रितेश कुमार त्रिपाठी	365-371

सम्पादकीय.....

आज विश्व इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक में प्रवेश कर चुका है। इस पड़ाव पर पहुँचते-पहुँचते अखिल विश्व में जहाँ एक तरफ सूचना प्रौद्योगिकी, जनसंचार क्रान्ति, आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण का वर्चस्व बढ़ा है वहीं दूसरी तरफ विश्वमानव के पारिवारिक सामाजिक मूल्यों में अनेक विसंगतियाँ जलवायु परिवर्तन एवं क्षुद्र कूटनीति जैसी अनेक समस्याएँ परिलक्षित हो रही हैं। हालाँकि वैश्विक समाज में व्याप्त विसंगतियों, रूढ़ियों एवं कुप्रथाओं के उन्मूलनार्थ अनेक सार्थक प्रयास किये जा रहे हैं किन्तु सामाजिक बर्बरताएँ किसी न किसी रूप में मानव सभ्यता व समाज को चुनौती देती ही रहती हैं। मानसिक संकीर्णताओं से रूबरू होता वैश्विक धरातल अनेक विषमताओं एवं संकट के दौर से गुजर रहा है—आतंकवाद, नक्सलवाद, रंगभेद, नस्लभेद, लिंगभेद जैसी अनेक घृणित बुराइयों से लगभग समस्त विश्व पीड़ित व प्रताड़ित हो रहा है चाहे वे इनके पोषक—संरक्षक—पालक देश हों अथवा अन्य। दूर संचार के बढ़ते प्रयोग ने जहाँ विश्व को एकीकृत करने का कार्य किया है वहीं इसके दुष्प्रयोग से मानव मानसिक परतंत्रता को प्राप्त करता जा रहा है। वैश्विक एकीकरण के इस प्रयास से विविधता समाप्त होती जा रही है। ऐसे में अनेक विकासशील देशों की सभ्यताएँ एवं संस्कृतियाँ स्व-अस्तित्व रक्षण हेतु संघर्षरत हैं क्योंकि इनकी संस्कृति ही इन्हें विशिष्टता प्रदान करती है।

इन स्थितियों एवं परिस्थितियों को भारतीय परिदृश्य में अवलोकित करें तो हम यह कह सकते हैं कि यहाँ का वर्तमान परिदृश्य संक्रमणकाल के दौर से गुजर रहा है। अनेक वैज्ञानिक उन्नतियों के फलस्वरूप भी देश के समक्ष आज भी अनेक राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, पर्यावरण क्षेत्रीय असन्तुलन एवं सुरक्षा सम्बन्धी अनेक चुनौतियाँ भयावह रूप में खड़ी हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत की प्राचीन काल की उपलब्धियों से लेकर इस शताब्दी में प्राप्त सफलताओं की सुदीर्घ परम्परा रही है। इसमें कोई दो राय नहीं कि 'परम्परागत कुशलताओं को परिष्कृत करके तर्कसंगत एवं स्पष्टात्मक बनाने में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। इसे आधुनिक विज्ञान ने सच कर दिखाया है। आज भारत में वैमानिकी, आयुध, इलेक्ट्रॉनिक, कम्प्यूटर प्रणाली, युद्धक सामग्री, अभियांत्रिकी, प्रक्षेपास्त्र, नौसेना प्रणाली एवं जैव विज्ञान आदि विभिन्न क्षेत्रों में अनेक अनुसंधान-अन्वेषण कार्य प्रगति पर हैं जिनके कारण आज विश्व में भारत की सशक्त छवि निर्मित हुई है फिर भी समुचित एवं उपयुक्त शिक्षा और उत्तम स्वास्थ्य, बेरोजगारी तथा नस-नस में आफिसों में व्याप्त भ्रष्टाचार कमजोर कड़ी के रूप में देश को काफी पीछे ढकेल रही है।

आज भारतीय शिक्षा व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन परिलक्षित हो रहे हैं। क्योंकि वर्तमान शैक्षिक प्रणाली तकनीकी और पुस्तकीय ज्ञान से सम्पन्न भद्र लोगों (टेक्नोक्रेट—मेरिटोक्रेट) को तैयार करने का साधन मात्र बन कर रह गयी है। ये तथाकथित शिक्षित सभ्यजन बिना सोचे-समझे, बिना जिज्ञासु बने, प्रत्येक पुस्तकीय ज्ञान को स्वीकार करते जा रहे हैं। ऐसा ज्ञान भले ही अव्यावहारिक ही क्यों न हो। ऐसे माहौल में मानसिक दासता बढ़ती जा रही है। भले ही उक्त शैक्षिक प्रणाली ने देश को कुशल इंजीनियर, डॉक्टर, अध्यापक और अधिकारी प्रदान किये हैं, लेकिन यहाँ इनकी क्षमता को विनम्र स्वीकृति देते हुए हम उस चुनौती की ओर ध्यानाकर्षण करना चाहते हैं जिससे ऐसी शिक्षा प्रणाली बनायी जाये कि 'तोता रटत' के स्थान पर मुक्त संवाद की संभावना और सामाजिक बदलाव में सार्थक योग देने वाले शिक्षित जन तैयार किये जा सकें। वर्तमान की हमारी शिक्षा की इस बाजारीकरण और व्यवसायीकरण की प्रणाली ऐसा करने में अक्षम है। साथ ही वर्तमान शिक्षा प्रणाली 'सवाल उठाने, जिज्ञासा करने और साहस पूर्वक चुनौती देने वाले' वर्ग को तैयार करने में असफल प्रतीत हो रही है क्योंकि इधर साक्षरता दर में वृद्धि तो आश्चर्यजनक रूप में हुई है किन्तु शैक्षिक गुणवत्ता लुप्तप्राय रही है। चूँकि शिक्षा समृद्धि की कुंजी

है। इसलिए ऐसी शिक्षा प्रणाली विकसित करने की आवश्यकता है जिसमें समाज के प्रत्येक वर्ग एवं ग्रामीण तथा आदिवासी जनों तक उसकी गुणवत्तापरक पहुँच हो। साथ ही जिससे श्रम, कौशल और रचनाशीलता से सम्पन्न संतुष्ट और विनीत नागरिक तैयार हो सकें।

शिक्षा प्रणाली के समान गरीबी, दरिद्रता, भुखमरी, कुपोषण जैसी आर्थिक चुनौतियों से भी देश रू-ब-रू हो रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अब तक की सरकारी आर्थिक नीतियों की यह असफलता ही कही जायेगी कि देश की उच्च आर्थिक वृद्धि के बावजूद पिछले दो दशकों में भारत में गरीबों की संख्या में अपेक्षित कमी नहीं हुई। आज भी देश में लगभग 27 करोड़ से अधिक लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं जबकि इसी समयान्तराल में चीन ने अपनी 54 करोड़ गरीब जनता को समृद्ध कर लिया। देश की आर्थिक वृद्धि के दौरान रोजगार सृजन न होना, महिलाओं की वनों में जैव ईंधन के एकत्रीकरण में गिरावट, कृषि कार्यों में मशीनीकरण में तीव्रता, कौशल विकास में सरकारी उदासीनता जैसे अनेक कारक हैं जिनसे गरीबी उन्मूलन में सुधार नहीं हो सका। पिछली सरकारों ने सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा सस्ती दरों पर खाद्य सामग्री उपलब्ध कराने, मनरेगा द्वारा गाँवों में रोजगार सृजन करने जैसी अनेक योजनाएँ संचालित कीं जिनसे गरीबों को तात्कालिक राहत मिली। मौजूदा अनेक कार्यक्रमों की अक्षमता और लीकेज के चलते आवंटित धन जरूरतमंद लोगों तक सुरक्षित नहीं पहुँच पा रहा है, इसके लिए प्रत्यक्ष नकद हस्तांतरण और जन-धन योजना लायी गयी है किन्तु ये समस्त कदम इस समस्या के दीर्घकालिक समाधान नहीं रह सकते हैं क्योंकि जब तक गरीबों के पास जमीन, सम्पत्ति और कौशल का अभाव है तब तक गरीबी उन्मूलन के प्रयास कारगर नहीं होंगे। इसलिए केन्द्र एवं राज्य सरकारों को कानून बनाकर श्रम को संगठित कर ऐसे औद्योगिक विकास कार्यक्रमों को प्रोत्साहित करना होगा जो कौशल, ज्ञान और रोजगार को बढ़ावा दें। कर चोरी, मुनाफाखोरी, मिलावट आदि पर कड़े कानून बनाकर उनका सख्ती से पालन भी कराया जाना चाहिए।

भारत एक बहुधर्मी राष्ट्र है। यहाँ अनेक धर्मों के लोग बिना किसी अवरोध-विरोध के रहते आये हैं। धार्मिक सहिष्णुता व आपसी सामंजस्य ही भारतीयता के विशिष्ट गुण रहे हैं। समय-समय पर विभिन्न धर्मानुयायियों को धर्म के नाम पर लड़ने का कुचक्र कतिपय स्वार्थी तत्त्वों द्वारा किया जाता रहा है। कभी अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर कभी धार्मिक कट्टरता के नाम पर और कभी धर्मान्तरण के नाम पर देश के सामाजिक सामरस्य को तोड़ने का कुत्सित प्रयास किया जा रहा है। वर्तमान समय में जैसा राजनैतिक-सामाजिक माहौल पनप रहा है। इसमें धार्मिक कट्टरता के और बढ़ने की सम्भावना बढ़ती जा रही है। ऐसे में देश के सभ्य नागरिकों और सरकारों को चाहिए कि अराजक तत्त्वों पर सख्ती से पेश आये, समय रहते उनके कुकृत्यों की निगरानी कर उनको कड़ी से कड़ी सजा दी जाए। अभिव्यक्ति की आजादी निःसन्देह दी जाये किन्तु ऐसी स्वतंत्रता, जबाबदेही एवं जिम्मेदारी की माँग करती है। इसमें कोई दो राय नहीं कि आस्था और विश्वास के नाम पर किसी भी धर्म की धार्मिक मान्यताओं पर सवाल नहीं उठाने चाहिए। लेकिन इन्हीं आस्था एवं विश्वासों को कभी किसी के ऊपर दबाव व शोषण नहीं चाहिए। धार्मिक-सामाजिक मान्यताओं को लेकर अन्य देशों की तरह अब भारत में भी संवेदनशीलता बहुत बढ़ जाती है, यद्यपि यह सर्वथा उचित नहीं होती तथापि तब भी यह आवश्यक है कि सभी धर्मों, उनके प्रतीकों आदि का बराबर सम्मान किया जाना चाहिए। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर स्वेच्छाचारिता की उच्छृंखलता आवश्यक नहीं होनी चाहिए।

धर्म की भाँति जातीय वैभिन्न्य भी भारत की कड़वी सच्चाई है। यहाँ आत्मनिर्भरता के बावजूद विभिन्न जाति समूह भिन्न-भिन्न सामाजिक आर्थिक तत्त्वों के सहयोग से कार्य करते हैं किन्तु कतिपय स्वार्थी तत्त्व जाति व्यवस्था का अनुचित लाभ उठाकर इन विभिन्न जातियों में तनाव व शत्रुता का भाव उत्पन्न कर अपना हित साधते रहे हैं। ऐसे अराजक तत्त्वों की पहचान और उन पर नियंत्रण करना आवश्यक है। भारतीय संविधान में दलितों,

आदिवासियों, पिछड़ों और स्त्रियों को शिक्षा, समानता और स्वतंत्रता का अधिकार दिया गया है। इसीलिए केन्द्र तथा राज्य सरकारों का दायित्व है कि वे जाति तथा लिंग के आधार पर बिना भेदभाव किये देश की बहुसंख्यक आबादी स्त्री, पिछड़े, दलित, आदिवासी, घुमन्तू और पसमांदा मुसलमानों को शिक्षा, स्वास्थ्य और आवास की समुचित व्यवस्था करते हुए इनकी समान सामाजिक सहभागिता का समुचित प्रबन्ध करें। यद्यपि आज स्त्रियों, दलितों, आदिवासियों, पिछड़ों तथा निर्धन असहायों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ी है तथापि इनकी स्वतंत्रता, अस्तित्व रक्षा, समानता और सहभागिता हेतु अभी भी बहुत कुछ किया जाना शेष है। दलितों-पिछड़ों-आदिवासियों को सामाजिक न्याय मिले, साधनों तक उनकी पहुँच बने और उन्हें राजनैतिक सहभागिता प्राप्त हो तथा स्त्रियों को भयमुक्त व सुरक्षित समाज मिले यही नहीं सभी को आर्थिक सुरक्षा, रोजगार, पोषण, स्वास्थ्य, सुरक्षा, सम्मान और उत्कृष्ट शिक्षा प्राप्त हो यह सरकारों के साथ-साथ सम्पूर्ण समाज का दायित्व है क्योंकि बिना इन वर्गों की सामाजिक सहभागिता के राष्ट्र की उन्नति असम्भव है। जब तक देश के अन्तिम पायदान पर स्थित व्यक्ति तक विकास, शिक्षा और स्वास्थ्य तथा साधनों की पहुँच नहीं होगी तब तक भारत को विकसित राष्ट्र बनाने का संकल्प कोरी कल्पना ही होगा।

इस उत्तर आधुनिक युग तक पहुँचे भारतीय जनमानस में आज आदर्श और नैतिकता के स्थान पर तर्कवाद, यथार्थवाद और भौतिकतावादी होने के कारण उसमें सत्य, ईमानदारी, करुणा, बंधुत्व आदि मूल्य तिरोहित होने लगे हैं। इनका दुष्परिणाम समाज में मूल्यहीनता के रूप में दिखाई पड़ने लगा है। इस पीढ़ी के अधिकतर लोगों में आज मूल्यहीनता और संस्कारहीनता व्याप्त है। देश सेवा के स्थान पर मौकापरस्ती को प्रश्रय दिया जाता है। आज आदर्श को मूर्खता माना जाता है। यह मानव जीवन की भीषण विडंबना ही कही जाएगी। यद्यपि मूल्य परिवर्तन युगीन आवश्यकता है तथापि इसके पीछे नैतिक दृष्टि का होना आवश्यक है। सत्य, ईमानदारी, दया, करुणा, प्रेम, अहिंसा, श्रद्धा आदि ऐसे शाश्वत मूल्य हैं जिनके अभाव में मनुष्य का मनुष्यत्व संदिग्ध हो जाता है। मूल्यों में विकृति से मानवता नष्ट होती जा रही है। जिसमें ईमानदार, मेहनतकश, निरीह और सीधे-सादे श्रमजीवी पिस रहे हैं, फरेबी-मक्कारों का रोजगार फल-फूल रहा है। ऐसे वातावरण में मूल्यों और आदर्शों को शिक्षा व्यवस्था का अनिवार्य अंग बनाकर देश के नियन्ताओं को सार्थक पहल करनी चाहिए क्योंकि आदर्शों और मूल्यों के बिना संस्कृति नहीं और संस्कृतिहीनता जीवन और प्रकृति के लिए प्राणघातक सिद्ध होगी।

कृतिका का प्रस्तुत अंक ऐसे ही अनेक विषयों एवं विमर्शों पर केन्द्रित है। हमारा प्रयास कितना सफल और सार्थक हुआ है, यह आपकी प्रतिक्रिया और सुझावों पर निर्भर करेगा।

—सम्पादक मण्डल

वेदों में अर्थ पुरुषार्थ की अवधारणा एवं विश्व कल्याण

डॉ. दिव्या मिश्रा

पोस्ट डाक्टोरल फेलो (यूजीसी), विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110067

भारतीय मनीषियों ने मानव जीवन को आध्यात्मिक भौतिक और नैतिक रूप से संतुलित और उन्नत करने के लिए पुरुषार्थ की नियोजना की थी। 'पुरुषार्थ' का अर्थ मानवीय उद्योग का कोई प्रयोजन अथवा जीवन के चार उद्देश्यों में से एक है, जैसे 'धर्म' अर्थात् कर्तव्य का पालन करना। 'अर्थ' का तात्पर्य है आर्थिक शक्ति अथवा धन। 'काम' अर्थात् कामनाओं की पूति और अन्तिम पुरुषार्थ 'मोक्ष' है अथवा मुक्ति है। व्यक्ति और समाज के लिए सुस्थापित पुरुषार्थ चतुष्टय में अर्थ का महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि अर्थ ही पुरुषार्थ का वाहन है अर्थात् अर्थ ही धर्म एवं काम की सिद्धि करता हुआ मोक्ष की प्राप्ति में सोपान बनता है। इसकी सिद्धि में अर्थ की भूमिका निर्विवाद है। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय अर्थ की महत्ता से भरा हुआ है। जिसमें अनेक मंत्रों में धन प्राप्ति के लिए प्रार्थनाएँ की गयी हैं —

‘श्रीः श्रयताम् मयि’ — मुझमें श्री स्थिर हो।

‘वयं स्याम पतयो रयीणाम्’ — हम धनों के स्वामी बनें।

संसार में अवतरित होते ही मानव को सर्वप्रथम आवश्यकता भोजन रूपी 'अर्थ' की होती है। 'अर्थ' के बिना लोकयात्रा कथमपि संभव नहीं है। अतः जीवन में सर्वप्रथम 'अर्थ' आया। फिर इस अर्थ को नियंत्रित करने के लिए 'धर्म' की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार 'धर्म' को 'अर्थ' का नियंत्रक माना गया है। ये दोनों ही परस्पर एक दूसरे की वृद्धि करने वाले होते हैं अर्थात् 'अर्थ' से 'धर्म' की और धर्म से 'अर्थ' की वृद्धि होती है। परन्तु धर्म का पालन कामनापूर्ति के लिए किया जाए तो वह धर्म भी कामनापूर्ति करके नष्ट हो जाता है और अर्थ को कामनापूर्ति में लगाया जाए तो वह अर्थ भी कामनापूर्ति करके नष्ट हो जाता है। तात्पर्य यह है कि कामना धर्म और अर्थ दोनों को खा जाती है। इसीलिए गीता में भगवान ने कामना को 'महाशन' बताते हुए उसके त्याग पर विशेष बल दिया है। धर्म-अनुशासित 'अर्थ' ही जीवन का भौतिक एवं पारमार्थिक साधन माना गया है। 'अर्थ' शब्द 'ऋ' धातु से निष्पन्न है, जिसका अभिप्राय है गति। अर्थात् जिससे जीवन गतिमान् होता है वही अर्थ है। चूँकि 'अर्थ' मनुष्य के भोग, आरोग्य एवं धर्म का मुख्य संयोजक रहा है इसीलिए 'अर्थ' की ओर सबकी स्वाभाविक प्रवृत्ति दिखाई देती है अतः अपनी आवश्यकतानुसार जीवकोपार्जन के लिए शुद्ध धन का अर्जन करना तो सदैव ही स्पृहणीय रहा है कौटिल्य ने भी 'त्रिवर्ग' में 'अर्थ' को प्रधान मानकर इसे धर्म एवं काम का मूल माना है —

‘अर्थ एवं प्रधान इति। अर्थ मूलौ धर्म-कामौ।’

‘अर्थ’ उस वस्तु का नाम है जिस पर प्राणियों की आजीविका निर्भर है। धन का महत्त्व इसीमें है कि इसे कल्याणकारी कार्यों में लगाया जाए। जैसे समुद्र का खारा जल मेघ-मुख में पहुँच कर और मीठा होकर भूमण्डल पर बरसता है और उसे हरा-भरा बनाता है। इसी प्रकार उत्तम धन भी लोकोपकार के लिए ही होता है। अर्थ से लोगों का समाज में सम्मान भी होता है कहा भी गया है —

“यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः सः श्रुतवान् गुणज्ञः।

स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणा काञ्चनभाश्रयन्ते।”

ऐतरेय ब्राह्मण में भी कहा गया है जिसके पास अधिक धन है वही श्रेष्ठ है —

‘यस्यैवेह भूयिष्ठमन्नं भवति स एव भूयिष्ठं लोके विराजति ।’

इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण में यह भी कहा गया है कि श्रेष्ठ व्यक्तियों की बात सभी सुनते हैं—

‘यो वै भवति श्रेष्ठतामप्नुते तस्य वाचं प्रोदितामनु प्रवदन्ति ।’

धनोपार्जन एवं कामोपभोग की लालसा और उसके लिए प्रयत्न करना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। किन्तु इसके लिए परिश्रम आवश्यक है। वस्तुतः उद्यमशील के पास ही लक्ष्मी आती है। उद्योगशील कभी असफल नहीं होते। इसीलिए उन्हें आजीविका आदि का भय नहीं होता, लक्ष्मी स्वयं उन्हें खोज लेती है। आचार्य कौटिल्य का मत है कि धर्म, अर्थ और काम इन तीनों में ‘अर्थ’ प्रधान है, धर्म और काम अर्थ पर निर्भर है। आचार्य यास्क भी यही मानते हैं कि ‘धन’ वह है जो सबको सन्तुष्ट एवं प्रसन्न करता है। इस प्रकार मानवीय जीवन में ‘अर्थ’ की भूमिका के विषय में सभी विद्वान एक मत हैं। उनका यह भी मानना है कि अर्थोपार्जन सदैव न्यायपूर्वक होना चाहिए। क्योंकि अशुद्ध धन सदा संकट का कारण होता है। इसे अनर्थ की संज्ञा दी गयी है। उपनिषदों में भी अशुद्ध धन के लिए कहा गया है कि अर्थ के मोह में सही-गलत को भूल जाने से लोक-परलोक दोनों की हानि होती है। इसलिए धन सदैव अपनी मेहनत और ईमानदारी से ही अर्जित करना चाहिए। किन्तु आज उच्च पदस्थ लोग अधिकांशतः इतने धन लोलुप हो गये हैं कि इन सब बातों की परवाह न करते हुए अशुद्ध धन के लेन-देन से समाज में भ्रष्टाचार को बढ़ावा दे रहे हैं।

आचार्य कौटिल्य के अनुसार ऐसे समाज की कल्पना नहीं की जा सकती जिसमें अपराधों की संभावना न हो, क्योंकि काम, क्रोध, लोभ, मान, मद और हर्ष छहों दोष मनुष्य को उद्वेलित कर उसको अपराध वृत्ति में संलग्न कर देते हैं। लोक में धन के प्रति आकर्षण सभ्यता आविर्भाव के साथ ही जुड़ा हुआ है। इस आकर्षण में लोग अपराध या अन्याय से भी धनोपार्जन करने लग जाते हैं। मनुष्य की इस प्रवृत्ति से हमारे ऋषि परिचित थे। इसलिए उन्होंने स्पष्ट रूप से चेतावनी दी है कि मलिन अर्थ से न धर्म प्राप्त होता है न सुख। ऐसे अनर्थकारी धन से दूर रहने में ही कल्याण निहित है।

भारतीय संस्कृति आज भी हमें मार्गदर्शन दे सकती है क्योंकि यह नैतिक मूल्यों को प्रश्रय देती है। यह अत्यन्त सारगर्भित है तथा शक्ति और प्रगति की ओर मार्गदर्शन कराने वाली है। वैदिक काल में साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों ने ‘आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतः’ मन्त्र के द्वारा विश्वकल्याण की कामना तथा ‘स्वस्तिपन्थानमनुचरेम’ मन्त्र के द्वारा सदैव कल्याण के पथ पर चलने तथा अशिव से दूर रहने की कामना हजारों वर्ष पूर्व की थी। आर्यों ने जीवन के महत्त्व और उसकी उपयोगिता पर गहराई से विचार किया था क्योंकि वे एक ऐसी दुनिया का निर्माण करना चाहते थे, जो उनके लिए तो मंगलमय रहे ही, आने वाली पीढ़ियों के लिए भी मंगलकारक तथा शिव हो।

वैदिक ऋषि शुभ कर्मों का सम्पादन करते हुए ही जीने की कामना करते थे — ‘कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविशेच्छतं समाः ।’ क्योंकि शुभ कर्म को समर्पित जीवन को ही सफल जीवन की प्रतिष्ठा दी जा सकती है। आर्य जिस प्रकार अर्थ का संग्रह करते थे उससे न तो किसी प्राणी का अनिष्ट होता था और न ही लोक परलोक प्रभावित होता था इसीलिए अर्थ को मोक्ष की ओर ले जाने वाली सुरक्षित नौका माना गया है।

इस प्रकार भारतीय चिन्तकों ने जहाँ अर्थ को अनिवार्य माना है वहाँ इसकी शुद्धता पर भी बल दिया है जो न्याय और उपयुक्त साधनों से ही अर्जित होना चाहिए अन्यथा अनिष्ट का कारण बनता है। धन के लोभ के कारण बड़े-बड़े राज्यों का विनाश होते देखा गया है। नन्दों की धनलोलुपता एवं भ्रष्टाचार के कारण ही जनता उनसे क्षुब्ध थी। जिसका लाभ उठाकर चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को मगध साम्राज्य का सम्राट बनाया तथा नन्दवंश का समूल नाश कर दिया था। इसी प्रकार लोभाभिभूत होकर इला का पुत्र पुरुरवा, चारों वर्णों से अत्याचार पूर्वक धन का अपहरण करने के कारण उनके अभिशाप से मारा गया। इस प्रकार अनेक उदाहरण इतिहास में प्राप्त होते हैं। मनुष्य

यदि उपनिषदों के इस उपदेश को कि 'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः' अर्थात् वित्त से किसी भी मनुष्य को तृप्त नहीं किया जा सकता, मान रहा होता तो लोभ के अभाव में उसकी इस तरह दुर्गति नहीं होती। लोभ ही पाप का कारण है। आत्मसंयमी व्यक्ति कभी भी भ्रष्टाचार में लिप्त नहीं हो सकता। इसीलिए हमारे ऋषियों ने अपने जीवन में त्याग और संयम को अत्यधिक महत्त्व दिया है। महात्मा बुद्ध के अनुसार लोभवशात् असंयत हुआ कोई दुःशील व्यक्ति राष्ट्र की सम्पत्ति को हड़पता है तो उसका तपते हुए लोहे के अंगारे को खा लेना ज्यादा ठीक है अर्थात् गलत उपायों से धन संग्रह करने वाले भ्रष्टाचारी को जीवित रहने का हक नहीं है –

‘सेय्यो अयोगुलो भुत्तो, तत्तो अग्गिसिखूपमो।

यंचे भुंजेय्य दुस्सीलो, रट्ठपिण्डमसंयतो।’

धर्मशास्त्रों का भी आदेश है कि न्याय से ही धनोपार्जन होना चाहिए। मनु ने अर्थार्जन करते समय पाँच बातों का ध्यान रखने की बात कही है – जिस अर्थार्जन से अन्य प्राणियों को पीड़ा न पहुँचे, अपने शरीर को अनुचित कष्ट न हो, वह गृहित साधनों से अर्जित न हो, उसके उपार्जन से स्वाध्याय आदि पारमार्थिक कार्यों की भी बाधा न हो और सदा स्वर्जित 'अर्थ' से ही निर्वाह किया जाए। इस प्रकार पाँच नियमों को ध्यान में रखकर अर्जित किया गया धन पवित्र और मोक्षोन्मुख करने वाला माना गया है।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति में अनेक ऐसे तत्त्व विद्यमान हैं जिनका अनुसरण करके हम सम्पूर्ण विश्व के वर्तमान एवं भविष्य को सुन्दर बना सकते हैं। क्योंकि हमारी यह आस्था युक्त धारणा है कि वैदिक संस्कृति और वर्तमान जीवन में एक सूत्रता है यह दूसरी बात है कि वह व्यवहार की दृष्टि से इतना स्पष्ट नहीं है कि कोई उसे हठात् देख ले। क्योंकि द्रव्य का नाश भले हो जाए किन्तु उसके गुण का नाश कभी नहीं हो सकता। इसी सूत्र से हमने माना है कि भारतीय संस्कृति आज भी हमें मार्ग दर्शन कराने में समर्थ हैं बस आवश्यकता है कि हम सभी के जागरूक होने की, विश्वबन्धुत्व एवं विश्व अभ्युदय के प्रति प्रतिबद्धता की। उपनिषदों में भोग को अस्वीकार नहीं किया गया है किन्तु त्यागपूर्वक संयमित भोग ही श्रेयस्कर माना गया है –

“ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्याँ जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥”

संदर्भ

1. यजुर्वेद, 39/4
2. वही, 23/65, 34/38, 40/16
3. The struggle begins in the womb when the child suffers the consequences of malnutrition in the mother. The quality of the life, p.121
4. काम एव क्रोध एव रजोगुणसमुद्भवः।
महाश्नो महापात्मा विद्धयेनमिह वैरिणम्॥ श्रीमद्भगवद्गीता 3/37
5. अष्टाध्यायी, 8/4/3, 4/3/73, 7/4/38 भ्वादिगण, जुहोत्यादिगण
6. कौटिल्य अर्थशास्त्र, 1/3/6
7. चाणक्य सूत्र, 90
8. हितोपदेश
9. ऐतरेय ब्राह्मण, 1/5
10. वही
11. पंचतंत्र, मित्रभेद, 392
12. राजनीति प्रकाश, 314, मत्स्यपुराण 221/2

13. ऋग्वेद, 5/34/5
14. कौटिल्य अर्थशास्त्र 1/3/6
15. निरुक्त 3/2/3
16. Dr. Raghunath Gosh : Arthasa Value Concept
17. कठोपनिषद् 1/2/6, 27
18. कौटिल्य अर्थशास्त्र, प्रथम अधिकरण, अध्याय पाँच
19. मनु 7/99, 10, 101, तु सत्यार्थ प्रकाश, 7 समु. पृ. 152-55
20. मनु, 4/176
21. निरुक्त, 1/20
22. ऋग्वेद, 1/89
23. ऋग्वेद, 5/51/15
24. यजुर्वेद, 40/2
25. ऋग्वेद, 3/11/3, अथर्व, 1/35/2
26. शुक्र नीति, 2/63
27. विशाखदत्त, मुद्राराक्षस
28. कौटिल्य, अर्थशास्त्र, प्रथम अधिकरण, अध्याय पाँच
29. कठोपनिषद्, प्रथम अध्याय, प्रथम वल्ली, 27
30. धम्मपद, 308
31. मनु, 5/106
32. मनु, 4/2, 3/17
33. ईशोपनिषद्, 1



भारतीय पौराणिक ग्रन्थों में पर्यावरण शिक्षा, संरक्षण एवं जागरूकता

डॉ. जय सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग

राजकीय महिला महाविद्यालय, अम्बारी, जिला – आजमगढ़ (उ०प्र०)

विज्ञान के चमत्कारों को नकारा नहीं जा सकता। किन्तु महत्वाकांक्षी मानव की जिज्ञासा एवं पिपासा का अंत नहीं है। यही महत्वाकांक्षा उसे प्रतिपल अदृश्य अवनति, रोग, अशांति, असंतोष के पथ पर ले जा रही है। जिस धरती के पर्यावरण के सौन्दर्य, सम्पन्नता एवं स्वच्छता की ओर विदेशी आक्रांता आकर्षित होकर खिंचते चले आये वही भारती भूमि प्रदूषण का शिकार होती चली जा रही है। बढ़ते हुए उद्योग जहाँ एक ओर भौतिक सुख-सम्पदा जुटा रहे हैं वही दूसरी ओर धरती को प्रदूषित भी कर रहे हैं। विश्व के कई औद्योगिक राष्ट्रीय जहरीली कचरे को ठिकाने लगाने के लिए भारत को डम्पिंग ग्राउण्ड के रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं। इस खतरे को भाँप कर सामाजिक व पर्यावरण कार्यकर्ताओं, पत्रकारों व अधिकारियों ने इसके विरोध में एक मंच 'टॉक्सिलिंग' गठित किया है। इसके द्वारा पर्यावरण का उल्लंघन करने वालों पर कड़ी नजर रखी जा रही है। इन बड़े राष्ट्रों की साजिश के खिलाफ जहरीले कचरे का शिकार बने देशों ने व्यापक विरोध कर आयात पर रोक लगाने की मांग की थी। विश्व बैंक ने जहरीले पदार्थों से छुटकारे के लिए महंगे उपकरण (इन्सीनेरेटर्स) लगाने के लिए हमारे देश पर दबाव डालना शुरू कर दिया है। इसी दबाववश बांग्लादेश इण्डोनेशिया ने भी ऐसे यंत्र स्थापित कर लिये। अमेरिका व कनाडा जैसे देशों ने इन्सीनेरेटर का विरोध किया है। उनका मानना है कि इस यंत्र से 30 प्रतिशत से अधिक कार्बन-डाई-आक्साइड उत्सर्जित होती है। अब भारत पर भी यही उपकरण लगाने का दबाव हो रहा है। इसका प्रयास वे संस्थायें कर रही हैं जिस पर हमारा स्वास्थ्य व भविष्य निर्भर है। यह एक चिन्ताजनक तथ्य है।

श्रीमती इन्दिरागांधी ने 30 अप्रैल, सन् 1982 ई० को पर्यावरण सांसदों के प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन के उद्घाटन में कहा था कि "पर्यावरण सम्बन्धी शिक्षा प्रारम्भिक अवस्था से शुरू कर देना चाहिए। यहाँ तक कि एक छोटा बालक जो अभी बोलता भी नहीं है वह भी अपने आस-पास की सुन्दरता देखे। बालकों को इस प्रकार प्रशिक्षित किया जाये कि वे आस-पास के वृक्षों, फूलों, पहाड़ियों, झीलों, समुद्री किनारों जैसी साधारण बातों तथा उनकी प्राकृतिक सुन्दरता को देखें कि उन्हें उपयोगिता की दृष्टि से किस प्रकार संरक्षित किया जा सकता है"।

वेदों के प्रति दो प्रकार की धारणाएँ प्रचलित हैं। पहली धारणा वेद को अपौरुषेय मानती है और दूसरी धारणा वेदों के अर्थों को जीवननाभिव्यक्ति का संग्रह मानकर उसे सर्वथा लौकिक ग्रन्थ समुच्चय मानने पर बल देती है। पहली धारणा जहाँ आस्था और अध्यात्म पर आधारित है, वहीं दूसरी धारणा आधुनिक बुद्धिवाद से प्रेरित है तथापि दोनों धारणाएँ इस बिन्दु पर एकमत हैं। कि वेद ज्ञान के अक्षय भण्डार हैं। वेदों में यज्ञ, विज्ञान, ज्योतिष विज्ञान, आयुर्वेद, सृष्टि विज्ञान, जीव विज्ञान ही नहीं पर्यावरण विज्ञान, भौतिकी, आणविकी विज्ञान जैसे अधुनातन विज्ञानों का गूढ़ रहस्य अनुस्यूत है।

आज विश्व के सभी विकसित और विकासशील देश इस पीड़ा से ग्रस्त हैं और इसकी गम्भीरता का अहसास बड़ी सजगता से कर रहे हैं। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सेमीनारों, गोष्ठियों और कार्यशालाओं में पर्यावरणीय संकट

पर प्रमुखता से चर्चा हुई है और इसकी व्यापकता को रोकने या कम करने के प्रयास किये जा रहे हैं। विश्व की अनेक कार्यशालाओं में महत्वपूर्ण सुझाओं के साथ संस्तुति की गई कि 'पर्यावरण शिक्षा' की प्रक्रिया से इस गम्भीर समस्या का स्थायी एवं ठोस समाधान किया जा सकता है। हाँलांकि पर्यावरण शिक्षा एक नया प्रत्यय है किन्तु भारत में इसकी जड़ें अति प्राचीन हैं। हमारी संस्कृति में पर्यावरण के प्रति जागरूकता वैदिक ऋग्वेद काल से ही है। वैदिक काल में ऋषि-मुनियों ने 'पर्यावरण शिक्षा' को धर्म से जोड़ दिया था। पर्यावरण से सम्बन्धित विपुल प्रसंग तथा व्याख्याएँ हमारे वेदों, उपनिषदों, पुराणों तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों में भरी पड़ी हैं।

सुबोधनन्दन शर्मा के शब्दों में कहें तो 'प्राचीन ग्रंथों के अनुसार किसी व्यक्ति को जन्म के नक्षत्र ग्रह प्रभाव के आधार पर विशेष प्रजाति के पेड़ रोपने से शांति एवं लाभ मिलता है विभिन्न ग्रहों के दोष निवारण हेतु पेड़-पौधों का निर्धारण है। उदाहरणार्थ राहु की शांति के लिए दूब रोपण तथा केतु की शांति के लिए कुश रोपण का विधान है। शनि की शांति के लिए पीपल का रोपण तथा प्रदक्षिणा का प्रावधान है। विशेष वृक्ष लगाने से विशेष फल मिलता है। वृक्ष हमें कभी भी निराश नहीं करते हैं वह हमको हरित्र विश्वास ही देते हैं। अनुमान के मुताबिक एक सरसब्ज पेड़ अपने जीवन काल में तथा जीवन के बाद भी लाखों रुपये का मूल्य देकर हमें माला-माल करता है। केवल हिन्दू धर्म ही कल्पतरु के रूप में वनस्पतियों को निरूपित नहीं करता है। इस्लाम में पेड़-पौधों को अल्लाह की नियामत बतलाया गया है तथा बंजर जमीन पर पेड़ लगा कर उसे सरसब्ज करने की ताकीद दी गई है इस्लाम धर्म में खजूर के पेड़ की विशेष इबादत है। बौद्ध धर्म में वृक्षों को काटना जघन्य अपराध बतलाया गया है। गौतम बुद्ध को तो बोधिसत्व ही पीपल के वृक्ष के नीचे मिला था। जैन धर्म के प्रणेता भगवान महावीर ने कहा कि पेड़ और आदमी में कोई अंतर नहीं है। आदमी की तरह वनस्पतियाँ भी जीवन की विभिन्न अवस्थाएँ धारण करती हैं। ईसाई धर्म तो "क्रिसमस ट्री" के रूप में उपहारों की सौगात 'क्रिसमस डे' पर बाँटता ही है यह कल्पवृक्ष के प्रतीक का ही एक रूप है जो हमें प्रभु यीशू के आशीर्वाद के रूप में मिलता है।'

वर्तमान में विश्व अस्तित्व संकट में है। बुद्धिजीवी वर्ग इससे भलीभाँति जानता है व चिन्तित है कि मनुष्य में जागरूकता की आवश्यकता है तथा इस हास को रोकने के प्रयास किये जाने चाहिए। भविष्य में भी वैज्ञानिक उन्नति होती रहेगी तथा वैज्ञानिक व भौतिक उन्नति आगे भी होगी। परन्तु दुर्भाग्य से इस उन्नति के फलस्वरूप संसार के समक्ष नई विकट समस्या खड़ी हो गयी है जिनके समाधान मुश्किल हैं। हमने नदियाँ प्रदूषित कर दी हैं तथा पेय जल अपर्याप्त होता जा रहा है। विकासशील देशों में जनसंख्या अभूतपूर्व गति से बढ़ रही है फलस्वरूप आवश्यकताएँ बढ़ रही हैं जिससे पृथ्वी में उपलब्ध सीमित साधनों का भी अत्यधिक उपयोग हो रहा है। इससे ऐसी बीमारियाँ फैल रही हैं जैसे Dengue, Swineflu, AIDS आदि जिनका कुछ वर्ष पूर्व तक नाम भी नहीं सुना था। आयुर्वेदिक ज्ञान का उपयोग इन वर्तमान युग के रोगों के उपचार हेतु किया जा सकता है। वेदों का ज्ञान हमें न सिर्फ शरीर से स्वस्थ रखेगा परन्तु हमारे मस्तिष्क व आत्मा को भी बलिष्ठ बनाएगा। इस ज्ञान से हमें प्रकृति व शरीर की कार्यशैली में निहित समानता का पता चलता है तथा मनुष्य व प्रकृति के मध्य विद्यमान संतुलन को समझने में मदद मिलती है इस पारिस्थितिक संतुलन के बिगड़ने से दृष्टिगत परिवर्तनों के द्वारा प्रकृति हमें हमारे पृथ्वी के विवेकहीन दोहन से अवगत करवाती है।

वैदिक दृष्टि ने पृथ्वी, अंतरिक्ष, द्युलोक के लोकत्रय की अवधारणा को अंगीकार करते हुए समस्थानीय प्राकृतिक शक्तियों को दिव्य एवं उपास्य माना है 'देवो दानाद् दीपनाद् द्योतनादवा'—जो दान दे, प्रकाशित हो या प्रकाशित करें वे देवता हैं। प्रकृति मान को अन्न, जल, वायु, प्रकाश, ऊर्जा, आवास, आवरण, आदि सभी कुछ प्रदान करती है, अतः पृथ्वी का देवत्व सर्वथा सार्थक है। प्राकृतिक तत्वों की अपरिहार्य महिमा का निरूपण वेदों की प्रकृति उपासना को सारवान बनाता है।

अथर्ववेद में 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' की भव्य भावना से पृथ्वी की स्तुति की गई है। जिस भूमि पर समुद्र नहीं और नाना प्रकार के जल हैं जिस पर अन्न आदि विभिन्न प्रकार की खेती होती है, जिस पर यह जीता जागता है, चलता फिरता है, संसार अन्न-जल ग्रहण कर तृप्त होता है और प्राणाधारण करता है, वह भूमि हमें उत्तम स्थान पर प्रतिष्ठित करे। समस्त विश्व धारण करने वाली उस पृथ्वी की हम स्तुति करते हैं। वन अन्नादि से परिपूर्ण रहने पर ही मानव जीवन सुख-स्वास्थ्य-समृद्धि अर्जित कर सकता है। अतएव सभी प्रकार की औषधि वनस्पति, अन्न वन, जल अन्तरिक्ष (आकाशीय कारक) के साथ मानव के मधुर सम्बन्धों की अभिलाषा की गई है।¹

वैदिक काल में भी पर्यावरण के प्रदूषित होने की समस्या उपस्थित हुई थी तथा समुद्र मन्थन और कुछ नहीं, अपितु देवताओं एवं असुरों द्वारा प्रकृति का निर्दयतापूर्वक दोहन था, जिससे अमृत के साथ-साथ हलाहल के रूप में प्रदूषण ही निकला होगा। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि यह जहरीली फास्जीन गैस थी।

उस समय भगवान शिव ने प्रदूषण रूपी हलाहल का पान कर सृष्टि को प्रदूषण मुक्त किया था। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः भगवान शिव ने प्रदूषण फैलाने वाले स्रोतों को नष्ट कर धरती को प्रदूषण से रहित किया होगा।

वैदिक मानव चिन्तन, मनन, अध्ययन, स्वाध्याय, योग, ज्ञान और कर्म केवल आत्म विकास और आत्मोन्नयन तक ही सीमित नहीं था। उसने प्रकृति और पर्यावरण को जानने-समझने उसके अनुकूल अपने को ढालने के साथ-साथ अपने चारों ओर की प्रकृति और पर्यावरण को नियंत्रित व अपने अनुकूल बनाने के अनवरत प्रयास किए। इसलिए वर्तमान विश्वस्तरीय पर्यावरण विषयक समस्या के समाधान हेतु प्राच्य विद्या मनीषियों की अवधारणाओं का परिशीलन सम्प्रति किया जाना सामयिक आवश्यकता है। वैदिक पर्यावरण में मानव जीवन की स्थिति का आकलन करने से पूर्व हमें पर्यावरण का तात्पर्य समझ लेना चाहिए। पर्यावरण पद 'परि' और 'आङ्' उपसर्ग पूर्वक वरणार्थक, वृज घातु में ल्युट् प्रत्यय के योग से निष्पन्न होता है परि उपसर्ग का अर्थ है चारों ओर तथा आवरण का आच्छादित करना अर्थ होता है। अस्तु 'पर्यावरण' का अर्थ है चारों ओर से आच्छादित करना या किसी वस्तु को चारों ओर से घेरने वाला घेरा। मानव सन्दर्भ में पर्यावरण एक आवरण है जो जीव जगत को चारों ओर से आवृत किये रहता है और उसमें जलमण्डल, वायुमण्डल, स्थलमण्डल के समस्त भौतिक एवं रासायनिक तत्त्व समाहित हैं। उसी पर्यावरण में हम स्थित हैं, साँस लेते हैं, जीवन की सभी क्रियाएँ गति, पोषण, वृद्धि, जनन, उत्सर्जन आदि सभी गतिविधियाँ सम्पन्न करते हैं।

हमारे ऋषि मुनियों ने हजारों वर्ष पूर्व मानव जीवन के कल्याण के लिये पर्यावरण का महत्व, उसकी रक्षा, प्रकृति साहचर्य, संवेदनशीलता, रोगों के उपचार एवं स्वास्थ्य संबंधी अनेक उपयोगी तत्व निकाले थे। वेदकालीन समाज में न केवल प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पर्यावरण की रक्षा की गयी, अपितु समाज का ध्यान भी इस ओर आकर्षित किया गया। सृष्टि के आदि कारणभूत एवं पोषणकर्ता पाँच तत्व हैं — पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश। उक्त पाँचों तत्व मानव विकास के लिये पूर्ण शुद्ध रूप में प्राप्त होने आवश्यक हैं।

पृथ्वी को वेदों में ईश्वर का स्वरूप माना गया है। भूमि की रक्षा पूजा का एक आविभाज्य अंग था। अथर्ववेद के भूमिसूक्त में ईश्वर ने यह उपदेश दिया है कि अपनी मातृभूमि के प्रति मनुष्यों में श्रद्धा का भाव होना चाहिये।

ऋग्वेद का सम्पूर्ण नवम मण्डल अर्थात् सोम-सूक्त अरण्यानी सूक्त एवं अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त इत्यादि में पुनः पुनः एक ही सत्य से अवगत कराया गया है कि हमारी भूमि हरी भरी रहे तथा स्वास्थ्यवर्धक औषधियों, वनस्पतियों से सदा परिपूर्ण रहे एवं हमारे लिए सुखदायिनी हो।

प्रजापतिः पृथिनी विश्वगर्भाभाषा माषा रण्या न कृणोतु।

यस्या वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवस्तिष्ठन्ति विश्ववहाः

पृथिवी विश्वधायसं धृतामच्छावदामसि।²

खाद्य-प्रदूषण से बचाव के संबंध में भी वेदों में वैज्ञानिक आधार पर निष्कर्ष दिया गया है। प्रत्येक ऋतु के अनुसार उचित खान-पान, रहन-सहन की चर्चा वेदों में मिलती है। मानव अपनी पाचनशक्ति के अनुसार भोजन करे एवं उसे भलीभाँति पचाये, जिससे वह अपना शारीरिक एवं आत्मिक बल प्राप्त कर सके। पेय पदार्थों के विषय में कहा गया है –

यत् पिबामि सं पिबामि समुद्र इव संपिबः।

प्राणानमुष्य संपाय सं पिबामो अमुं वयम्।।³

अर्थात् जो कुछ पीता हूँ, यथाविधि पीता हूँ, जैसे यथाविधि पीने वाला समुद्र पचा लेता है। दूध जल जैसे पदार्थों को हम यथाविधि ही पिया करें। इसके अतिरिक्त भोजन के संबंध में भी अथर्ववेद में कहा गया है कि जो कुछ खायें, अच्छी तरह चबाकर खायें –

यद् गिरामि सं गिरामि समुद्र इव संगिरः।

प्राणानमुष्य संगीर्य संगिरामो अमुं वयम्।।⁴

पौराणिक एवम् शास्त्रीय दृष्टि से देखें तो तीर्थ स्थानों में वृक्षों को देवताओं का निवास स्थान माना है। वट, पीपल, आँवला, बेल, कदली, पदम वृक्ष तथा परिजात को देव वृक्ष माना गया है। भारतीय संस्कृति से धार्मिक कृत्यों में वृक्ष पूजा का अत्यधिक महत्व है। पीपल (अश्वत्थ) को शुचिद्रुम, विप्र, यांत्रिक, मंगल्य, सस्थ आदि नामों से जाना जाता है। पीपल को पूज्य मानकर उसे अटल प्रारब्ध जन्य कर्मों से निवृत्ति कारक माना गया है। पीपल को अखण्ड सुहाग से भी सम्बन्धित किया गया है। लोक परम्परा के अनुसार संतान की इच्छुक स्त्रियाँ उसकी पूजा अभ्यर्थना करती हैं। मान्यता है कि पीपल की परिक्रमा करने से जन्म-जन्मांतरों के पाप-ताप मिट जाते हैं। चित्त निर्मल होता है। अश्वत्थ की महिमा वेदों-पुराणों में जगह-जगह देखने को मिलती है। तुलसी को वायु शोधन एवं पवित्रता के लिए हर आँगन में लगाने की प्रथा है क्योंकि तुलसी को सर्वाधिक आक्सीजन प्रदायक पौधा माना जाता है। इसका पर्यावरण से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसके पास हानिकारक जीवाणु-विषाणु या कीड़े-मकोड़े नहीं पनपते। यह घातक कृमि और कीटों को नष्ट करती है। भोजन में तुलसी का भोग पवित्र माना गया है, जो कई रोगों की रामबाण औषधि है। भारतीय संस्कृति में बिल्व वृक्ष को भगवान शंकर से जोड़ा गया है। इसकी पत्तियों को शिवलिंग पर चढ़ाने का विधान है। परन्तु वावन पुराण में बिल्व पत्र को लक्ष्मी से उद्भव मानते हैं। इसमें लक्ष्मी का वास भी माना जाता है। इसे अथर्ववेद में महान 'वै भद्रो बिल्वो महान भद्र उदुम्बरः।' अर्थात् औषधीय गुणों से युक्त होने के कारण इसकी तुलना उपकारी पुरुष से की गई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिककालीन समाज में न केवल पर्यावरण के सभी पहलुओं पर चौकन्नी दृष्टि थी वरन् उसके रक्षा एवं महत्व को भी स्पष्ट किया गया था, विशेषकर अथर्ववेद में तो पर्यावरण स्वच्छता की ओर विशेष ध्यान दिया गया एवं पर्यावरण रक्षा एवं महत्व को भी स्पष्ट किया गया था।

हमारे ऋषि-मुनि जानते थे कि पृथ्वी, जल, अग्नि, अन्तरिक्ष तथा वायु इन पंचतत्त्वों से ही मानव शरीर निर्मित है—

पंचस्वन्तु पुरुष आविवेशतान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि।⁵

उन्हें इस तथ्य का भान था कि यदि इन पंचतत्त्वों में से एक भी दूषित हो गया तो उसका दुष्प्रभाव मानव जीवन पर पड़ना अवश्यम्भावी है। इसलिए उन्होंने इसके सन्तुलन को बनाए रखने के लिए प्रत्येक धार्मिक कृत्य करते समय लोगों से प्रकृति के समस्त अंगों को साम्यावस्था में बनाए रखने की शपथ दिलाने का प्रावधान किया था, जो आज भी प्रचलित है—

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिः रापः शान्तिः रौषधयः शान्तिः।

वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवा शान्तिर्ब्रह्मं शान्तिः सर्वशान्तिदेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि।⁶

अतः स्पष्ट है कि यजुर्वेद का ऋषि सर्वत्र शान्ति की प्रार्थना करते हुए मानव जीवन तथा प्राकृतिक जीवन में अनुस्यूत एकता का दर्शन बहुत पहले कर चुका था। ऋग्वेद का नदी सूक्त एवं पृथिवी सूक्त तथा अथर्ववेद का अरण्यानी सूक्त क्रमशः नदियों, पृथिवी एवं वनस्पतियों के संरक्षण एवं संवर्धन की कामना का संदेश देते हैं। भारतीय दृष्टि चिरकाल से सम्पूर्ण प्राणियों एवं वनस्पतियों के कल्याण की आकांक्षा रखती आई है। 'यदपिण्डे तद् ब्रह्माण्डे' सूक्ति भी पुरुष तथा प्रकृति के मध्य अन्योन्याश्रय सम्बन्ध की विज्ञानपुष्ट अवधारणा को बताती है।

पर्यावरण को शुद्धता प्रदान करने में यज्ञों की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी। आज वैज्ञानिकों ने भी माना है कि हवन तथा यज्ञ की सामग्री से वायु प्रदूषण कम होता है। हानिकारक जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। यज्ञादि भस्मों की राख में भूमि उपयोगी तत्वों—जैसे फास्फोरस, पोटैशियम, मैगनीशियम आदि की अधिकता पाई गई है। इसीलिये यज्ञ की भस्म को न फेंके जाने की मान्यता है, उसे तुलसी आदि पौधों की जड़ों के पास डाला जाना शुभ माना गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में यज्ञ का महत्व बताते हुए कहा गया है—

देवान भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।

परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥⁷

पर्यावरण संरक्षण हेतु एक समग्र जीवन दर्शन की आवश्यकता है। औद्योगिक विकास को अवरुद्ध करने की नहीं अपितु इसके मूल में प्रवाहमान पाश्चात्य एकांगी विचार धारा में परिवर्तन की अपेक्षा है। पश्चिमी जगत् के चिन्तन में मानव एक साधन मात्र है, जबकि भारतीय अवधारणा में वृक्ष भी पूज्य है। वैदिक चिन्तन की सार्थकता और उद्देश्य को समझ लेने पर ही हम पर्यावरण को संरक्षित कर पायेंगे। यदि हम वास्तव में पर्यावरणीय प्रदूषण से मुक्ति चाहते हैं, तो हम सभी को वैदिक ऋषियों की पर्यावरणीय अवधारणाओं का अनुशीलन करके चिरन्तन जीवन मूल्यों को अंगीकार करना होगा। पर्यावरण को सुखमय, जीवन्त एवं दोषमुक्त बनाने में अत्यन्त सहायक सूर्य, अग्नि, औषधि, वृक्ष आदि जो पदार्थ हैं, वेदों से उन पदार्थों के गुण कर्म को समझते हुए पर्यावरण का संरक्षण एवं सन्तुलन बनाने का प्रयत्न करना होगा। अन्यथा मानव अकाल में ही काल कवलित होता हुआ अपना अस्तित्व खो देगा।

यजुर्वेद की ऋचा से स्पष्ट है कि हमारे प्राचीन ऋषि—मुनियों की मान्यता थी कि प्रकृति जीवन का स्रोत है और पर्यावरण के समृद्ध होने पर ही मानव जीवन समृद्ध होता है। परन्तु वैज्ञानिकता के दम्भ में आज हम भूल चुके हैं कि मानव जीवन का सुप्रभात पर्यावरण के अनुग्रह पर ही निर्भर है। नैतिकता तथा मर्यादा की सभी सीमाएं हम लांघते जा रहे हैं और विकास के नाम पर हम प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन करते जा रहे हैं। परिणामतः हमारा पर्यावरण संतुलन डगमगा गया है। अतः हम सभी को प्रकृति के प्रति अपने मौलिक कर्तव्यों का पालन करते हुए उसके संरक्षण एवं संवर्धन की भावना विकसित करनी होगी। आज आवश्यकता है कि हम प्राचीन वैदिक ऋषि—मुनियों द्वारा निर्धारण की गई पर्यावरण शिक्षा का अनुसरण करते हुए पर्यावरण संरक्षण की चुनौतियों का बोध जन—जन को कराएं, जागरूक बनाएं, जन चेतना फैलाएं, तभी हमारा तथा हमारे पर्यावरण का अस्तित्व बच सकता है, अन्यथा हम जिस डाल पर बैठे हैं उसे काटने का काम तो कर ही रहे हैं।

इस सम्पूर्ण विवेचन का निष्कर्ष यही है कि वेदों में हजारों वर्ष पूर्व मनुष्य के विषय में प्रकृति और पर्यावरण के विषय में जो कुछ कहा गया है निःसन्देह वह आज भी अत्यधिक उपयोगी एवं व्यवहारिक है तथा समाज को जागरूक रखने के लिए महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि उस समय पर्यावरण प्रदूषण नहीं के बराबर था। अतः पर्यावरण संरक्षण का भी प्रश्न नहीं उठता था। फिर भी ऋषि भविष्यद्रष्टा होते हुए शुद्ध पर्यावरण के प्रति सजग थे। अतः वैदिक ऋषि के चिन्तन दर्शन की छाया में आगे बढ़ना ही श्रेयस्कर है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची—

1. पर्यावरण और वाङ्मय सम्पादक डॉ० महेश दिवाकर तथा डॉ० हरमहेन्द्रसिंह बेदी में डॉ० हरमहेन्द्र सिंह बेदी का आलेख संस्कृत साहित्य में पर्यावरण, पृ० 186.
2. अथर्ववेद 12.11,12.22,12.43
3. अथर्ववेद 6/135/2
4. अथर्ववेद 6/135/3
5. यजुर्वेद 23.52
6. यजुर्वेद 36.17
7. श्रीमद्भगवद्गीता, 3/11

अन्य सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अथर्ववेद
2. कठोपनिषद्
3. यजुर्वेद
4. ऋग्वेद



वेदों में मूल्य शिक्षा की अवधारणा

डॉ. कुमार पाल

वरिष्ठ प्रवक्ता एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग

श्री ब्रजेन्द्र जनता महाविद्यालय, बिसावर, हाथरस, (उ.प्र.)

‘मूल्य’ शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया जाता है। संस्कृत में ‘मूल्यम्’ शब्द नपुंसक लिंग का है, जिसका अर्थ है, कीमत, लागत और मोल।¹ विशेषण के रूप में ‘मूल्य’ का अर्थ ‘मोल लेने योग्य होता है।’ हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार— “मनुष्य चूँकि पहले व्यक्ति है, इकाई है, उसके अपने कुछ सम्बन्ध होते हैं, परन्तु व्यक्ति, मनुष्य, एक महत्तर मानव समाज का, परिवार, नगर, प्रदेश, प्रान्त, राष्ट्र या संसार का सदस्य, नागरिक, सामाजिक विशेष होकर सामान्य अंग भी है। अतः उसके प्रत्येक विचार, कर्म, और कल्पना में ‘मूल्य’ का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। इन विविध मूल्यों के (संघर्ष) के बाद भी एक बड़ा मूल्य बचा रहता है, जो एक प्रकार से इन सबका सार है और वह है मानव मूल्य।”²

किसी वस्तु का मूल्य उसमें निहित व्यक्ति अथवा समाज की आवश्यकता को पूर्ण करने की शक्ति पर निर्भर करता है। समाज द्वारा उसकी गुण ग्राहकता मान्य होती है अथवा वह समाजोपयोगी हो तभी वह मूल्यवान् होती है। इस प्रकार मूल्य वांछनीयता, महत्व और उपयोगिता से सम्बन्धित है। जीवन को उत्काशान्मुख बनाने हेतु ही मूल्य की आवश्यकता प्रतीत हुई। मूल्य व्यक्ति द्वारा उच्चादर्शों की प्राप्ति हेतु वे सोपान हैं जो जीवन के उत्कर्ष के लिए अनिवार्य हैं। जिस प्रकार चेतना या धारणा को हम शब्दों में नहीं व्यक्त कर सकते उसी प्रकार ‘मूल्य’ भी अमूर्त हैं तथा इसे भी शब्दों में परिभाषित करना अत्यन्त दुश्कर कार्य है।

वस्तुतः ‘मूल्य’ अर्थशास्त्रीय शब्द है। अर्थशास्त्र के अन्तर्गत किसी वस्तु की क्रय अथवा विपणन की शक्ति को मूल्य कहा जाता है। डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है— मानदण्ड और मूल्य मूलतः साहित्य के शब्द नहीं हैं। पाश्चात्य आलोचना में भी इनका समावेश अर्थशास्त्र अथवा वाणिज्य से लिया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि अर्थशास्त्रीय दृष्टि से किसी वस्तु की ‘क्रय-शक्ति’ मूल्य कहलाती है और इस शक्ति का आकलन वस्तु की उपयोगिता अथवा उसके उत्पादन व्यय के आधार पर होता है।

नीतिशास्त्रीय दृष्टि से विचार करें तो “कहीं मूल्य सुख-दुःखों पर आधारित होता है तो कहीं भावना से सम्बद्ध है तो कहीं रुचि का विषय है, कहीं मूल्यांकन का आधार है, कहीं सत्य के रूप में है तो कहीं श्रेय के रूप में है।”³ यही कारण है कि मूल्य को पूर्णतः स्पष्ट नहीं किया जा सकता है, परन्तु कहा जा सकता है कि मूल्य और कुछ नहीं व्यक्ति के द्वारा स्वमन्तव्यों को प्राप्त करने का मानदण्ड है, जो व्यक्ति के जीवन को सत्पथ की ओर अग्रसारित करते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि मूल्य मानव जीवन के वे उच्चादर्श अथवा आधार स्तम्भ हैं जिनके कारण मानव का अस्तित्व प्रतिष्ठित है और जो मानव जीवन को प्रगतिगामी बनाते हैं अथवा जिनसे मानव का उत्कर्ष सम्भव हो। अतः मूल्य मानव जीवन के वे उच्चादर्श अथवा आधार स्तम्भ हैं, जिनके कारण मानव का अस्तित्व प्रतिष्ठित है और जो मानव जीवन को प्रगतिगामी बनाते हैं।

सनातन भारतीय चिन्तनधारा आध्यात्मिक और भौतिक (पारलौकिक तथा इहलौकिक) दो विचारधाराओं को ग्रहण करती है। सांसारिक सत्य के मार्ग द्वारा ही शाश्वत सत्य की प्राप्ति वांछनीय है, अतः दोनों में मूलतः अन्तर नहीं है वस्तुतः दोनों अभिन्न हैं। इस प्रकार दोनों के समन्वय में ही मानव जीवन की सार्थकता एवं पूर्णता है और

इसी चिन्तन परम्परा को पुरुषार्थ कहा गया है।⁴ पुरुषार्थ चतुष्टय में अर्थ और काम भौतिक सुख के अन्तर्गत तथा आध्यात्मिक सुख के अन्तर्गत धर्म एवं मोक्ष। अर्थ एवं काम मानवेच्छा के सहज विषय हैं और धर्म एवं मोक्ष मानवेच्छा के उचित एवं आदर्श विषय।⁵ पुरुषार्थों के अनुकूल आचरण करता हुआ मनुष्य धर्मानुकूल भौतिक सुखोपभोग करता हुआ जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष की ओर अग्रसित होता है। इस प्रकार पुरुषार्थ व्यक्ति के सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रस्तुत करता है, जिसका अनुगमन करते हुए मनुष्य स्वयं के लिए जीते हुए भी समष्टिगत मूल्यों का संधान करता है। हमारे प्राचीन मनीषियों ने पुरुषार्थ जीवन मूल्य का पर्याय माना और मोक्ष को जीवन का परम मूल्य।

मूल्य कभी भी बलात् आरोपित किये जाते वे सहज ही उत्पन्न होते हैं। कभी-कभी प्राचीन एवं प्रचलित परम्पराओं के आधार पर भी नये मूल्य जन्म लेते हैं। जितने भी मूल्य हैं उनका आधार सिर्फ समाज ही हो सकता है, क्योंकि व्यक्ति का विकास समाज में ही होता है। सामाजिक मूल्य वैयक्तिक मूल्य से श्रेष्ठ होते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि श्रेष्ठ मानव मूल्य वे होते हैं जो समाज के लिए हितकर हों एवं मानव उत्कर्ष में सहायक हों। मूल्य वे आधार स्तम्भ हैं जिनके ऊपर मानव-जाति का अस्तित्व आधारित है।

मूल्य के तत्त्व :

मूल्य के सर्जक अवयवों या तथ्यों को 'मूल्य के तत्त्व' कहा जाता है। मूल्य वे मानवीय आदर्श, मानदण्ड या मान्यताएँ हैं जिन्हें मार्गदर्शक ज्योति मानकर सभ्यता निरन्तर गतिमान रहती है और उनका अवलम्बन मानव प्रगति पथ पर अग्रसर होता है। मूल्य के प्रमुख तत्त्व निम्नलिखित हैं –

1. धार्मिक तत्त्व – धर्म सम्बन्धी मान्यताओं, परम्पराओं एवं विचारों को मूल्य का धार्मिक तत्त्व कहा जाता है। उदा० दान देना, परोपकार करना, तीर्थ यात्रा करना, पूजा पाठ आदि।
2. नैतिक तत्त्व – नैतिकता से आबद्ध आदर्श को मूल्य का नैतिक तत्त्व माना जाता है। नैतिकता द्वारा मनुष्य के समस्त सदगुणों का बोध होता है। न्याय, संयम, सहनशीलता, परोपकार, उदारता, ईमानदारी, करुणा, कर्तव्यनिष्ठा आदि गुण नैतिकता के अन्तर्गत आते हैं अर्थात् समस्त सदकर्म नैतिक मूल्य कहलाते हैं।
3. जैविक तत्त्व – मनुष्य की मूलभूत प्रवृत्तियाँ अथवा जीवन सम्बन्धी अनिवार्य आवश्यकताएँ जैसे- भूख, निद्रा, भय, मैथुन आदि को मानव मूल्य का जैविक मूल्य कहा जाता है। मनुष्य जब इन जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहता है तो यह उसका जैविक मूल्य है।
4. आध्यात्मिक तत्त्व – आध्यात्मिकता से जुड़े आदर्शों को आध्यात्मिक कहा जाता है। आध्यात्मिक मूल्यों के अन्तर्गत सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की चर्चा नैतिक दृष्टि से की जाती है। इन मूल्यों का सम्बन्ध बाह्य न होकर आन्तरिक होता अर्थात् ये आत्मा की वस्तुएँ हैं तथा आत्मानुभूति द्वारा ही अनुभव की जा सकती हैं। डॉ० राधाकृष्णन ने लिखा है कि – “हिन्दू धर्म के अनुसार मनुष्य न केवल राटी पर और न काम, पूँजी, आकाश या बाह्य प्रकृति के साथ सम्बन्ध पर जीवित रहता है, वह अपने आध्यात्मिक जीवन मूल्यों के भरोसे जीता रहता है।”
5. भौतिक तत्त्व – समस्त भौतिक सुख सम्पदा, भोजन, वस्त्र, भवन आदि से सम्बद्ध मूल्य 'भौतिक मूल्य' के अन्तर्गत समाहित किये जा सकते हैं। “चार्वाक दर्शन” भौतिक मूल्यों को समस्त मूल्यों से श्रेष्ठ मानता है।
6. आर्थिक तत्त्व – धन, धन संचय एवं धन से सम्बन्धित जितने भी आदर्श हैं वे आर्थिक मूल्य के अन्दर समाहित किये जा सकते हैं।
7. मूल्य के सामाजिक तत्त्व – समाज से जुड़े आदर्श, मान्यताओं और परम्पराओं में निहित मूल्यों को मूल्य के सामाजिक तत्त्व कहते हैं। समाज में होने वाले परिवर्तन और परिवर्तित आदर्शों के कारण समाज में जो आदर्श व्याप्त होता है, वह सामाजिक मूल्य कहा जाता है।

मूल्यों के भेद के विषय में पर्याप्त मतभेद पाया जाता है। मूल्य मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं— (क) शाश्वत मूल्य (ख) युगीन मूल्य। शाश्वत मूल्य वे मूल्य हैं जो देश, काल एवं परिस्थितियों से निरपेक्ष तथा कालजयी होते हैं। ये सर्वदा जीवन्त रहते हैं। यथा— परोपकार, दया, उदारता, अहिंसा, प्रेम, सत्य, ईमानदारी, न्यायशीलता, मानवतावाद आदि। ये कभी पुरातन नहीं होते हैं। युगीन मूल्य युग सापेक्ष परिवर्तित होते रहते हैं। प्रत्येक पीढ़ी में यह आवश्यक नहीं है कि पुराने मूल्यों को उसी प्रकार आत्मसात् कर लिया जाए अर्थात् प्रत्येक पीढ़ी अपनी पुरानी मान्यताओं, परम्पराओं एवं आदर्शों को उसी प्रकार से ग्रहण करे यह आवश्यक नहीं है। उदा० प्राचीनकाल में दान देना एक मूल्य था, किन्तु वर्तमान युग में इसे आवश्यक तथा उचित स्वीकार नहीं करते। आज दीन, ब्राह्मण, भिक्षुक आदि के प्रति समाज का भाव परिवर्तित हो रहा है। अतः इसे युगीन मूल्य कहते हैं।

उक्त भेदों के अतिरिक्त भी मूल्य के अन्य भेद — 1. वैयक्तिक मूल्य 2. सामाजिक मूल्य 3. नैतिक मूल्य। प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक वैयक्तिक जीवन मूल्य होता है जो जीवन का आधारभूत लक्ष्य कहा जा सकता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण वर्तमान युग में व्यक्ति स्वातन्त्र्य की खोज, वर्जनाओं का विरोध आदि। जो सामाजिक अपेक्षाओं एवं मर्यादाओं से जुड़े हों वे सामाजिक मूल्य कहलाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक प्राणी है और प्रत्येक समाज की अपनी मान्यता और आदर्श होते हैं। यही आदर्श या मूल्य उस समाज का सामाजिक मूल्य कहा जाता है। उदा० विवाह आदि संस्कार प्रत्येक समाज के अनुसार अपने आदर्शों को वहन करता है। नैतिक मूल्य वे मूल्य हैं जो नैतिक आदर्शों, पवित्रता, शुभ, औचित्य, कर्तव्य, न्याय आदि में समाविष्ट होते हैं। ये मूल्य व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले उचित कर्म, सत्य, असत्य का निर्णय करने तथा कार्य की वांछनीयता से सम्बन्धित होते हैं।

डॉ० वेद प्रकाश वर्मा ने अपने ग्रन्थ— “नीतिशास्त्र के मूल सिद्धान्त” में मूल्य के दो भेद 1. साधन और 2. साध्य मूल्य बतलाये हैं। जो वस्तुएँ अपने आप में ‘शुभ’ न होकर किसी अन्य वस्तु के साधन के रूप में शुभ होती हैं, उन समस्त वस्तुओं को साधन कहा जाता है। उदाहरणार्थ— भोजन, भवन, वस्त्र, धन, सम्पत्ति तथा अन्य सभी वस्तुएँ अपने आप में शुभ नहीं होती हैं परन्तु वे स्वास्थ्य, जीवन रक्षा तथा सुख के लिए आवश्यक साधन मात्र हैं। मनुष्य की कुछ मानसिक अवस्थाएँ अपने स्वयं में शुभ तथा स्वतः साध्य एवं वांछनीय होती हैं। ऐसी स्वतःसाध्य मानसिक अवस्थाओं को ही साध्य मूल्य कहते हैं। प्राचीन ऋषि मनीषियों ने ‘सत्य’, ‘शिव’ एवं ‘सुन्दर’ को ही स्वतः साध्य मूल्य माना है।

मूल्य चेतना का विकास —

वैदिक जन विश्वास करते थे कि प्रकृति में निहित प्रत्येक शक्ति एक देवता के अधीन कार्य करती है। और देवता की पूजा अर्चना करने से मनुष्य का कल्याण होता है। अतएव वैदिक जन अधिकांश सूक्तों में यह प्रार्थना या स्तुति करते थे कि उनके बैल मोटे हों, घोड़े बलवान हों, फसलों की उन्नति हो और शत्रुओं पर विजय मिले।⁶ इस प्रकार जन का जीवन प्रवृत्तिशील, अग्रगामी एवं सहिष्णु था तथा प्राकृतिक और सामाजिक व्यवस्था में उनका विश्वास अत्यन्त दृढ़ था।

कठोपनिषद् में व्यक्ति के विवेक एवं उसकी उन्नति से सम्बन्धित लोक में दो मार्गों का उल्लेख प्राप्त होता है—(1) श्रेयस मार्ग और (2) प्रेयस मार्ग। ये दोनों मार्ग व्यक्ति को अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयास करते हैं। जो श्रेयस मार्ग का अनुसरण करता है, उसे लक्ष्य सिद्धि उपलब्ध होती है तथा जो प्रेयस मार्ग का अनुसरण करता है वह अपने अभीष्ट ध्येय से वंचित हो जाता है। प्रज्ञाशील मनुष्य प्रेयस के सम्मुख श्रेयस का चयन करता है और अविवेकी श्रेयस के सम्मुख प्रेयस को चुनता है।⁷ उपनिषदों में कहा गया है कि यज्ञ से सांसारिक सुख और स्वर्ग अवश्य प्राप्त होते हैं, परन्तु दोनों नाशवान हैं। अवैव मनुष्य को सच्चे सुख के लिए कुछ और करना चाहिए।⁸ यह सच्चा सुख मोक्ष अथवा जीवन मृत्यु से मृत्यु से निवृत्त का सुख था। इस प्रकार श्रेय और प्रेय का भेद आध्यात्मिक आचार दर्शन के मूल मंत्र के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।⁹ आत्मज्ञान या मोक्ष को श्रेय तथा इन्द्रिय ग्राह्य अनित्य एवं

लौकिक सुख भोग को प्रेय माना गया है। उपनिषदों के अनुसार आत्मा ब्रह्म है और ब्रह्म जगत का उपादान कारण है।¹⁰ आत्मा के विरुद्ध या अतिरिक्त कुछ नहीं है।¹¹ सभी पदार्थ आत्मा से अनुप्राणित और नाम, रूप कर्म, से उपाधि त उसी का अंश हैं।¹² विश्व आनन्द से निर्मित है और आनन्द में व्याप्त है।¹³ विश्व स्वयं में दुःखात्मक नहीं है अपितु “विश्वमिदं वरिष्ठम्” विश्व सर्वोत्तम वरणीयतम है।¹⁴ इस प्रकार उपनिषदों में दुःख की नहीं आनन्द की मीमांसा प्राप्त होती है। बृहदारण्यकोपनिषद् का कथन है कि जो आत्मसंयम, कर्म विरक्ति, धीर सहिष्णु तथा आत्मसंयम का जीवन व्यतीत करता है वह प्रत्येक वस्तु में आत्मा का दर्शन करता है, वह दोष मुक्त, अशुचि—मुक्त होकर ब्रह्मतत्त्व का अधिकारी हो जाता है।¹⁵ इस प्रकार उपनिषदों में श्रेय एवं प्रेय का स्पष्ट निर्धारण हुआ है तथा ऐन्द्रिक सुखोपभोग (प्रेय) पर आध्यात्मिक मूल्य (श्रेय) को वरेण्य माना गया है। मानव के सामने उन्नति चयन हेतु दो मार्ग हैं, प्रथम सांसारिक सुखोपभोग का एवं दूसरा आत्म—कल्याण का। इसे ही क्रमशः प्रेय और श्रेय कहा जाता है। उपनिषद् दर्शन का लक्ष्य उस परम स्थिति को प्राप्त करना है जिससे व्यक्ति परम तत्त्व के साथ तादात्म्य स्थापित कर सके।

मूल्यों का उद्देश्य—

व्यक्ति जन्म के साथ ही प्रकृति प्रदत्त अनेक शक्तियों का स्वामी होता है, वह स्वयं के अनुभव तथा दूसरों के अनुभव के माध्यम से स्वयं में निहित अपूर्णता को पूर्णता देने का प्रयास करता है। यह पूर्णता जो व्यक्ति प्राप्त करता है, उसके दो अनुभाग किये जा सकते हैं— प्रथमतः आध्यात्मिक पूर्णता, द्वितीयतः सामाजिक पूर्णता। इन दोनों ही पूर्णता की सम्प्राप्ति के लिए मूल्य को एक आदर्श मानदण्ड के रूप में प्राप्त किया जा सकता है जिसके माध्यम से व्यक्ति शुभ को अशुभ से पृथक् करता है। मूल्यों की कसौटी मूल्यांकन है और मूल्य व्यक्ति को आध्यात्मिक पूर्णता की ओर ले जाते हैं।

यह पूर्णता मात्र धार्मिक, आध्यात्मिक ही नहीं सामाजिक भी है। शिक्षा का अर्थ व्यक्ति के सामाजीकरण की प्रक्रिया से भी लिया जाता है। सामाजीकरण का अर्थ सामाजिक कुशलता या सामाजिक पूर्णता प्राप्त करने से है। सामाजिक पूर्णता या कुशलता के अन्तर्गत व्यवसाय, नैतिकता, संस्कृति, नागरिकता, स्वस्थ जीवन, उत्तम गृहस्थ जीवन, सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की व्यावहारिकता और समाज में व्यक्ति का एकीकरण भी सम्मिलित है। सामाजिक व्यक्ति वही माना जा सकता है जो सामाजिक क्रियाओं में अपना पूर्ण उत्तरदायित्व निर्वहन करे तथा अपने अधिकारों का सम्यक् उपयोग करे।

वेदकालीन मूल्य शिक्षा का आधार पुरुषार्थ चतुष्टय की अवधारणा में सन्निहित था। पुरुषार्थ मनुष्य का वह आधार है, जिसके माध्यम से वह अपना जीवन जीता है तथा मनोयोग पूर्वक पालन करता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पुरुषार्थ कहे गये हैं, जिनके माध्यम से मनुष्य जीवन, जगत और ईश्वर के प्रति अपनी कर्मनिष्ठता ज्ञापित करता है। धर्म, अर्थ, और काम जिन्हें पुरुषार्थ त्रयी कहा जाता है, साधन मूल्य की श्रेणी में आते हैं और मोक्ष जो अन्तिम पुरुषार्थ है, इसे प्राप्त करने के लिए उक्त तीनों पुरुषार्थों की आवश्यकता है। पुरुषार्थ की परम परिणिति मोक्ष है और मोक्ष व्यक्ति का साध्य मूल्य है। मोक्ष का कार्य केवल विदेह मुक्ति नहीं है वरन् सांसारिक जीवन जीते हुए अपने को परिष्कृत मानव एवं दक्ष मानव बनाना भी एक मुक्ति है, जिसे सदेह मुक्ति कहा जाता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि व्यक्ति के विकास में मूल्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियों को उद्घाटित करने से लेकर आत्मानुभूति कराना जहाँ मूल्यों की शक्ति को प्रदर्शित करता है वहीं व्यक्ति को सुखानुभूति कराकर उसे विकास एवं प्रगति के पथ पर पहुँचना तथा मनुष्य को मनुष्य मात्र से प्रेम एवं सौहार्द के साथ जीवन जीने की शिक्षा देना भी मूल्य माना गया है। अतः मूल्य का उद्देश्य व्यक्ति को लक्ष्य का ज्ञान कराना है। वैदिक मानव मूल्य आधारित शिक्षा आधुनिक शिक्षा को स्वस्थ और सुव्यवस्थित बनाने के लिए उन मूल्यों की

आवश्यकता किसी न किसी रूप में शिक्षा के अनिवार्य तत्त्व के रूप में सामने आती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ—

1. संस्कृत हिन्दी कोश—वामन शिवराम आप्टे
2. हिन्दी साहित्य कोश
3. नीतिशास्त्र का सर्वेक्षण— प्रोफेसर संगम लाल पाण्डेय, पृ. 303
4. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, डॉ० मिश्र, जय शंकर बि. हि. ग्र. पटना, 1980, पृ 237–239
5. एम. इण्डियन कान्सेप्शन आफ वैल्यूज, डॉ. हिरियन्ना, काव्यादर्श पब्लिशर्स, मैसूर, 1975, पृ 15–16
6. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, पृ 125–128
7. कठोपनिषद् 1, 2
8. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, पृ 125–128
9. कठोपनिषद् 1.2.2.
10. तैत्तिरीय उपनिषद् 3.1
11. छान्दोग्योपनिषद् 6.1.4
12. बृहदारण्यकोपनिषद् 1.4.7
13. तैत्तिरीयोपनिषद् 2.7
14. मुंडकोपनिषद् 2. 5. 11
15. बृहदारण्यकोपनिषद् 5.4.23



आचार्य मनु द्वारा मनुस्मृति में युगों के ह्रास से युग धर्म के ह्रास की व्याख्या

डॉ० नन्दिनी समाधिया

एम०ए०-संस्कृत

1054 खजूर बाग नई बस्ती, झांसी

स्मृति शब्द का प्रयोग शंकराचार्य जी ने अत्यन्त व्यापक अर्थ में किया है। इस अर्थ के अनुसार स्मृति पद के द्वारा वेदवाङ्मय से भिन्न पाणिनीय व्याकरण, श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, महाभारत आदि को भी ग्रहण किया गया है। शंकराचार्य जी ने 'पाणिनिस्मृतिरिति' आदि कहकर स्थान-स्थान पर इनके स्मृतित्व का उपदेश किया है। संकुचित अर्थ के रूप में स्मृति पद से धर्मसूत्रों की परवर्ती मनु आदि की स्मृतियों को ही ग्रहण किया जाता है। यहाँ धर्मशास्त्र और स्मृति पद को एकाभिधान माना गया है। मनु ने स्वयं स्मृति को धर्मशास्त्र कहा है—

“श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।

ते सर्वाथेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्वर्भी।।”¹

गौतम ने भी स्मृति को धर्मशास्त्र कहकर प्रणेताओं के रूप में मनु याज्ञवल्क्य आदि को उपस्थित किया है—

युगों के ह्रास से युग धर्म का ह्रास :—

प्राचीन भारतीय संस्कृति के इतिहास का अध्ययन करते हुए हमको यह जानना चाहिए कि इस प्राचीन पद का अभिप्राय क्या है ? प्राचीन भारतीय संस्कृति को हम किस अवधि तक का मान सकते हैं ? भारतीय संस्कृति का आरंभ —ऋग्वेद' के युग से माना जा सकता है, जो कि सम्राट् हर्षवर्धन तक की अवधि का हो सकता है। प्राचीन भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत सामान्यतः यह अवधि ली जा सकती है —

इतिहास की दृष्टि से भारतीय संस्कृति या हिन्दू संस्कृति का उदय हजारों वर्ष पुराना है। यह विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है। इस देश में मुस्लिम राज्य की स्थापना होने पर प्राचीन भारतीय संस्कृति का निश्चित रूप से ह्रास आरंभ हो गया था। वास्तव में यह ह्रास इससे भी पूर्व आरंभ हुआ। सम्राट् हर्षवर्धन की मृत्यु के अनन्तर भारत में कोई केन्द्रीय सत्ता नहीं रही। अतः यह देश राजनैतिक दृष्टि से निर्बल होने लगा और इस कारण सांस्कृतिक ह्रास भी आरंभ हुआ।

इसके कुछ समय बाद ही नव-उदित मुस्लिम संस्कृति ने इस पर प्रबल प्रहार किया। इस प्रकार इस अध्ययन की अवधि ऋग्वैदिक युग से लेकर मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना होने पर बनती है। इस मध्य के काल में भारतवर्ष में जो सांस्कृतिक अवस्थायें रहीं। इस अविध में भी समय और स्थान के प्रभाव से अनेक परिवर्तन होते रहे। बौद्ध और जैन धर्म के उदय तथा विदेशी आक्रान्ताओं ने भारतीय संस्कृति को बहुत अधिक प्रभावित किया था। तो भी, अनेक परिवर्तनों के होते हुए भी भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व वे ही रहे।

आधुनिक इतिहासकारों के अनुसार इस देश में आर्य संस्कृति के अभ्युदय और 'ऋग्वेद' की रचना के

पूर्व ही एक विशिष्ट सभ्यता विकसित हो चुकी थी। इस सभ्यता को 'सिन्धु घाटी की सभ्यता' नाम दिया गया है। अनेक विद्वानों के अनुसार यह द्रविड़ सभ्यता थी। इस द्रविड़-सभ्यता से भी पहले किन्हीं अन्य सभ्यताओं के अस्तित्व के प्रमाण विद्वानों ने प्राप्त किये हैं। इन सभी सभ्यताओं का विवेचन इस पुस्तक के बाहर है। तथापि इनका सूक्ष्म परिचय अवश्य ही आगे दिया गया है। इन सब सभ्यताओं को हम एक शब्द में पूर्ववैदिक सभ्यता कह सकते हैं।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय संस्कृति या हिन्दू संस्कृति के विकास का प्रारंभ 'ऋग्वेद' की रचना, तथा ह्रास का आरंभ भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना से है। सांस्कृतिक इतिहास की इस दीर्घ अवधि को चार युगों में बांटा जा सकता है।

प्रथम युग को संस्कृति के निर्माण का युग कह सकते हैं। यह युग 'ऋग्वेद' की रचना के आरम्भ से लेकर रामायण-महाभारत की रचना के समय तक और बौद्ध-जैन धर्मों के उदय तक का है। यह युग 6000 ई०पू० से 600 ई०पू० की अवधि तक का माना जा सकता है। ऋषियों ने वेदों को ईश्वरकृत मानकर उनके वचनों को ईश्वरीय आदेश माना। इस युग का सारा साहित्य वेदों को प्रमाण मानकर लिखा गया। वेदों को प्रमाण न मानने वाले नास्तिक कहे गये।¹

भारतीय संस्कृति का दूसरा युग है-स्वर्णयुग का आरंभ। इस युग की अवधि है-बौद्ध-जैन धर्मों के उदय से लेकर सम्राट् विक्रमादित्य का शासन। यह युग 600 ई०पू० से लेकर प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व तक का है। इस युग में 'रामायण' और 'महाभारत' की रचना वर्तमान रूप को प्राप्त हो चुकी थीं। सरल वैदिक धर्म कर्मकाण्डों से आवृत्त हो गया था। यज्ञों का प्रचार बहुत अधिक हो गया था। इनमें पशुओं और मनुष्यों तक की बलि दी जाने लगी थी। इसी की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप बौद्ध और जैन धर्मों का विकास हुआ। ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों, वेदांगों, मनुस्मृति आदि स्मृतियों का प्रणयन इसी काल में हुआ। संस्कृत काव्य-रचना का भी अभ्युदय हुआ। भास और शूद्रक जैसे कवि इस युग में हुए। पाणिनीय व्याकरण, कौटिलीय अर्थशास्त्र, भरत का नाट्यशास्त्र ग्रन्थ इसी युग की कृतियां हैं।

भारतीय संस्कृति के इतिहास का तीसरा युग स्वर्ण-युग कहलाता है। विक्रमादित्य के शासन से लेकर हर्षवर्धन के शासन की अवधि को स्वर्णयुग कह सकते हैं। यह अवधि प्रथम शताब्दी ई०पू० से प्रारंभ करके सातवीं शताब्दी ईसवी तक मानी जा सकती है। सम्राट् विक्रमादित्य ने विदेशी आक्रमणकारी जातियों के शासन का अन्त करके इस देश में सुव्यवस्थित शासन की स्थापना की और काव्य तथा कलाओं को प्रोत्साहन दिया। तदनन्तर भारतवर्ष में इनका विकास होता गया। गुप्तवंशी राजाओं के शासन के समय भारतवर्ष का सांस्कृतिक विकास प्रत्येक दृष्टि से उच्चतम शिखर पर था। राजनैतिक स्थिरता और शासकों के उदार दृष्टिकोण ने जनता के सामाजिक दृष्टिकोण को समुन्नत करके कलात्मक भावनाओं को प्रोत्साहित किया। कालिदास, अश्वघोष, भारवि, बाण, दण्डी आदि साहित्यकार, गौतम, कणाद, कपिल आदि दार्शनिक, चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट आदि चिकित्साशास्त्री, सभी इस युग की देन हैं। इस युग तक तक्षशिला विश्वविद्यालय का प्रचुर विकास हो गया था। नालन्दा, विक्रमशिला आदि विश्वविद्यालय प्रतिष्ठित हो गये थे। इस युग में भारतीय संस्कृति और सभ्यता का विदेशों में भी प्रसार हुआ। दक्षिण-पूर्व में यवद्वीप (जावा) तक, उत्तर में चीन और जापान तक तथा पश्चिम में गान्धार तक भारतीय संस्कृति ने अपना स्थान बना लिया था। भारतवर्ष के वैदेशिक तथा व्यापारिक संबंध पश्चिम एशिया, चीन, अफ्रीका और यूरोप के देशों तक हो गये थे। सातवीं शताब्दी ई० तक भारतीय संस्कृति का यह विकास निर्बाध रूप से होता रहा।

सम्राट् हर्षवर्धन के पश्चात् भारतीय इतिहास का युग अन्धकारपूर्ण है। देश में किसी प्रबल केन्द्रीय

शासन के न होने से राजनैतिक अस्थिरता के साथ ही सांस्कृतिक ह्रास भी आरंभ हुआ। इसको प्राचीन भारतीय संस्कृति के ह्रास का युग कहा जा सकता है। इस युग में यह देश अनेक छोटे-छोटे राज्यों में बंट गया। विभिन्न प्रदेशों के राजाओं, विभिन्न जातियों और विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों में परस्पर विद्वेष बढ़ा। इस कारण देश की उन्नति का मार्ग अवरुद्ध हुआ और अवनति का मार्ग प्रशस्त हो गया। संस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र में गिरावट आई। उस समय के भारतीय शासक न तो आन्तरिक शान्ति की रक्षा कर सके और न ही विदेशी आक्रमणों को रोक सके। यह देश पराधीनता के पाशों में जकड़ता गया तथा इसके साथ ही सांस्कृतिक चेतना मन्द होती गई।

मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना से भारत का सांस्कृतिक सूर्य अस्ताचल की ओर उन्मुख हो गया। तथापि भारतीय संस्कृति और धर्म की यह विशेषता एवं जीवन्तता है कि शताब्दियों के प्रबल प्रहार भी इसको नष्ट नहीं कर सके। भारत वर्ष में यह प्रबल रूप से जीवित है। प्राचीन संस्कृति का अध्ययन इसको उद्दीप्त करने में और सारे जगत् में प्रसारित करने में निश्चय ही सहायक होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ—

1. मनुस्मृति, 2/10
2. नास्तिको वेदनिन्दक—मनुस्मृति



ब्राह्मण ग्रन्थों में सृष्टि-प्रक्रिया और आचार-दर्शन

डॉ. राकेश कुमार

व्याख्याता-संस्कृत

गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय, अलवर (राज.)

उत्तर वैदिक काल में जब वैदिक संहिताएँ धीरे-धीरे दुर्बोध होती चली गईं, मन्त्रार्थ-ज्ञान केवल कुछ विशिष्ट व्यक्तियों तक सीमित रह गया, उस समय यह आवश्यकता गहराई से अनुभव की गई कि वेद-मंत्रों की विषद् व्याख्या की जाये। यही स्थिति वैदिक यज्ञों के कर्मकाण्ड की भी थी। सुदीर्घ काल तक यज्ञों का अनुष्ठान मौखिक ज्ञान के आधार पर ही होता रहा। ब्रह्मवादियों (यज्ञवेत्ताओं) के मध्य यागिक विसंगतियों के निराकरण के लिए सम्पन्न चर्चा-गोष्ठियों परिसंवादों तथा सघन विचार-विमर्श ने ब्राह्मण-ग्रन्थों के प्रणयन का मार्ग प्रशस्त किया। किसी भी युग के साहित्य के मूल में तत्कालीन सांस्कृतिक विचारधारा, राजनीतिक और सामाजिक सक्रियता, आस्थाओं, आदर्शों एवं मूल्यों की अभिव्यक्ति का आग्रह स्वभावतः सन्निहित रहता है। ब्राह्मण साहित्य के अन्तर्दर्शन की पृष्ठभूमि में भी यही आकांक्षा निहित रही है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि वेद मंत्रों की सुगम व्याख्या करने, यज्ञीय विधि विधान के सूक्ष्मातिसूक्ष्म पक्षों को निरूपित करने तथा समकालीन वैचारिक आन्दोलन को दिशा देने की भावना मुख्य रूप से ब्राह्मण ग्रन्थों के साक्षात्कार की पृष्ठभूमि में निहित रही है।

ब्राह्मण शब्द का अर्थ—

मंत्र भाग से अतिरिक्त शेष वेद भाग ब्राह्मण है। जैसा कि जैमिनी का कथन है—

शेषे ब्राह्मण शब्दः।

माधवाचार्य तथा सायणाचार्य ने भी इस लक्षण से सहमति व्यक्त करते हुए कहा है—

अवशिष्टो वेदभागो ब्राह्मणम्।

कोश ग्रन्थों के अनुसार वेदभाग का ज्ञापक 'ब्राह्मण' शब्द नपुंसक लिंग में व्यवहार्य है, जैसा कि कहा गया है—

ब्राह्मणं ब्रह्मसंघाते वेदभागे नपुंसकम्।

इसका अपवाद केवल महाभारत का एक स्थल है, जहाँ यह पुल्लिङ्ग में भी प्रयुक्त हुआ है— इमे ब्राह्मणाः प्रोक्ता मंत्रा वै प्रोक्षणेगवाम्। एते प्रमाणं उताहो नेति वासव। व्युत्पत्ति की दृष्टि से ब्राह्मण शब्द 'ब्रह्म' से 'अण्' प्रत्यय लगकर निष्पन्न हुआ है। 'ब्रह्म' शब्द के दो अर्थ हैं—मंत्र तथा यज्ञ।

इस प्रकार ब्राह्मण वे ग्रन्थ विशेष हैं, जिनमें याज्ञिक दृष्टि से मंत्रों की विनियोगात्मक व्याख्या की गई है। ब्राह्मण ग्रन्थों का मुख्य विषय यज्ञ का सर्वांगपूर्ण निरूपण है। इस याग-मीमांसा के दो प्रमुख भाग हैं—विधि और अर्थवाद। विधि से अभिप्राय है—यज्ञानुष्ठान कब, कहाँ और किन अधिकारियों के द्वारा होना चाहिए। जबकि अर्थवादपरक वाक्यों में यज्ञ निषिद्ध वस्तुओं की निन्दा तथा यज्ञोपयोगी वस्तुओं की प्रशंसा रहती है।

सृष्टि प्रक्रिया—

सृष्टि उत्पत्ति प्रक्रिया विषयक यज्ञ प्रश्न आदिकाल से चिन्तन का विषय रहा है। संसार में मानव के पदार्पण के साथ ही उसके मस्तिष्क में इस प्रकार के प्रश्न उठते रहे हैं कि यह विश्व कैसे बना? सृष्टि के

प्रारम्भ में क्या था? आधुनिक विज्ञान वेत्ताओं की अन्तश्चेतना में भी मानव की वही आदि जिज्ञासा स्पन्दित होती रही है कि वे भी स्वयं से पूछ रहे हैं—यह ब्रह्माण्ड क्या है? यह अनन्त अथवा सीमित है? यह शाश्वत है अथवा किसी प्रथम पल में इसकी शुरुआत हुई? समूचे इतिहास में सृष्टि उत्पत्ति प्रक्रिया को समझने की गहरी ललक रही है।

वैदिक सृष्टि उत्पत्ति प्रक्रिया की अवधारणा विज्ञान सम्मत है। सृष्टि संरचना से पूर्व यह संसार जलरूप में व्याप्त था जिससे ऋत तथा अर्णव समुद्र उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् शुक्ल पक्ष व कृष्ण पक्ष तथा सूर्य व चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई।

पौराणिक मतानुसार इस सृष्टि के मूल में एक परम तत्व है जबकि विज्ञान की मान्यतानुसार सम्पूर्ण सृष्टि ऊर्जा का विभिन्न रूप है। विश्व ब्रह्माण्ड में जो कुछ दृश्यमान है, वह सब ऊर्जा ही है। विज्ञान के मतानुसार सृष्टि प्रक्रिया स्टीफन हाकिंग के बिग बैंग सिद्धान्त पर आधारित है। यह सिद्धान्त सम्पूर्ण सृष्टि को एक बड़े आग के गोले के रूप में मानकर उसके फटने से सृष्टि प्रक्रिया का प्रारम्भ मानता है। यह आग का बड़ा गोला हिरण्याण्ड रूप है। ब्रह्माण्ड अर्थात् सृष्टि उत्पत्ति की प्रक्रिया को क्रमबद्ध तरीके से प्रस्तुत करने की पहल करने का श्रेय अघमर्षण नामक ऋषि को दिया जाता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में ब्रह्माण्ड एवं सृष्टि की उत्पत्ति और विकास का वर्णन जिस रूप में लक्षित होता है उसमें हम देख सकते हैं कि वहां प्रागैतिहासिक काल के हमारे चिन्तकों ने ब्रह्माण्ड एवं सृष्टि के विषय में कितना गहन एवं गम्भीर चिन्तन किया है। उस चिन्तन में वैज्ञानिक सृष्टि क्रम का पूर्वाभास दिखाई देता है।

सृष्टि की उत्पत्ति प्रक्रिया अथवा प्रकटीकरण की सम्पूर्ण प्रक्रिया कार्य कारण के प्रस्थापित नैसर्गिक नियमों के वशवर्ती है, ऐसा मेटरलिन (Metertlin) का कहना है। सृष्टि प्रक्रिया के विषय में ब्राह्मण ग्रन्थों में अनेक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक सूचनाएँ संकलित हैं। ऋग्वेदीय ऐतरेय ब्राह्मण के 30वें अध्याय में, पृथ्वी के आरम्भ में गर्भरूप का विवरण प्राप्त होता है, साथ ही इस बात का भी उल्लेख प्राप्त होता है कि आदित्यों ने अंगिरसों को दक्षिणा में पृथ्वी दी। अंगिरसों ने पृथ्वी को तपा डाला, तब पृथ्वी सिंहिनी होकर और मुख खोलकर मनुष्यों को खाने दौड़ी और पृथ्वी की इस जलती हुई स्थिति में उसमें उच्चावच गर्त बन गये।

शुक्ल यजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सृष्टि आरम्भ में, ब्रह्म के दो रूप थे—मूर्त और अमूर्त। इन्हें 'यत्' और 'त्यत्' अर्थात् 'सत्' तथा 'असत्' कहा जा सकता है— द्वै वाव ब्राह्मणो रूपे। मूर्तं चैवामूर्तम्। स्तिथं च यच्च। सच्चत्यच्च.....।

इस ब्राह्मण में यज्ञ को सृष्टि का मूल हेतु बताया गया है। यज्ञ में ही प्रजाएँ उत्पन्न हुई हैं, जिनसे सृष्टि का विकास होता रहा है। सृष्टिकर्ता प्रजापति यज्ञरूप हैं। मनु—मत्स्य—प्रकरण में प्रलय के अनन्तर मनु के द्वारा जल एवं आमिक्षा से सम्पादित यज्ञ से एक सुन्दर स्त्री की उत्पत्ति बतलाई गई है। इस प्रकार शतपथ ब्राह्मणनुसार यज्ञ विश्व की नाभिस्थली है। अभिप्राय यह है कि सृष्टि के आरम्भ में एकमात्र ब्रह्म की सत्ता थी और तदन्तर प्रजापति की—

प्रजापतिर्वा इदमग्र आसीत्।

इस बिन्दु पर शतपथ ब्राह्मण का अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों से पूर्ण सामंजस्य दिखलाई पड़ता है। प्रजापति की उत्पत्ति जल में तैरते हुए हिरण्यमय अण्ड से मानी गई है—

तस्मादाहुर्हिरण्यमयः प्रजापतिरिति।

शनैः—शनैः प्रजापति के श्रम एवं तप से सृष्टि—प्रक्रिया आगे बढ़ी—

प्रजापतिर्हवाइदमग्र एक एवासं ।

स ऐक्षत कथं नु प्रजायेय इति सोऽश्राम्यत, स तपोऽतप्यत ।

भुवनों में सर्वप्रथम पृथ्वी की रचना हुई—

“इयं वै पृथिवी भूतस्य प्रथमजा ।”

तत्पश्चात् हिलती हुई पृथ्वी के दृढ़ीकरण, शर्करासम्भरण (कंकड़ों की स्थापना) फेन—सृजन, मृत्तिका—सृजन, पशु—सृष्टि, औषधियों एवं वनस्पतियों की सृष्टि, अन्य लोकों की सृष्टि, संवत्सरादि की सृष्टि, विभिन्न वेदों और छन्दों के आविर्भाव का शतपथ— ब्राह्मण में वर्णन है ।

कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय ब्राह्मण के द्वितीय काण्ड में सृष्टि—प्रक्रिया की दृष्टि से सर्वाधिक सामग्री उपलब्ध होती है । यहां पर ऋग्वेदीय नासदीय सूक्त का विशेष प्रभाव दिखलाई पड़ता है । इस ब्राह्मण में सृष्टि से पूर्व किसी भी वस्तु की सत्ता नहीं मानी गई है । अनभिव्यक्त नामरूप (असत्) ने ही यह इच्छा की कि मैं सत् रूप हो जाऊँ—

तदसदेव सन्मनोऽकुरुत स्थामिति ।”

नाम रूप असत् ने तप किया, जिससे धूप, अग्नि, ज्योति, अर्चि, मरीचि, उदार और अभ्र की क्रमशः सृष्टि हुई । सृष्टि की बस्ति (मूत्राशय) के भेदन से समुद्र उत्पन्न हुआ । इसी कारण समुद्र का जल आज भी अपेय है ।

इस ब्राह्मण में प्रजापति के जघन से असुरों की सृष्टि हुई । प्रजापति ने पुनः तपस्या की, जिससे मनुष्यों, देवों और ऋतुओं की सृष्टि हुई । इस प्रक्रिया में मन का सर्वाधिक योगदान बतलाया गया है—

असतोधि मनोऽसृज्यत् । मनः प्रजापतिः प्रजा असृज्यत् ।

संकल्पित अर्थ वाला यह मन ही श्वोवस्य नामक ब्रह्म है—

यदिदं किं च तदेतच्छ्वोवस्यनाम ब्रह्म ।

सामवेदीय सामविधान ब्राह्मण के प्रथम प्रपाठक के प्रथम अनुवाक में प्रजापति की उत्पत्ति और उनके द्वारा भौतिक सृष्टि की संरचना के बारे में उल्लेख प्राप्त होता है । सामवेदीय जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण में सृष्टि— प्रक्रिया के बारे में बतलाते हुए कहा गया है कि इसका सम्बन्ध तीनों वेदों से प्रदर्शित है । इस सृष्टि में जो कुछ है वह सब तपस्या से प्रादुर्भूत है ।

षड्विंश— ब्राह्मण में कहा गया है कि देवों की तपोमयी साधना से ही इस सृष्टि में समस्त सारभूत तत्त्व गार्हपत्य अग्नि, प्रभृति अग्नियां तथा अन्य सभी वस्तुएं उत्पन्न हुई हैं ।

अथर्ववेदीय गोपथ ब्राह्मण में प्रजापति का उल्लेख यद्यपि मिलता है किन्तु इस ब्राह्मण ग्रन्थ में ब्रह्म का महत्त्व सर्वोपरि है । सृष्टि प्रक्रिया को बतलाते हुए कहा गया है कि सृष्टि का प्रारम्भ ब्रह्म के श्रम और तप से हुआ है । भृगु और अथर्वा प्रभृति ऋषियों ने भी श्रम और तप का अनुष्ठान किया । श्रम और तप से ही देव—सृष्टि और लोक—सृष्टि सम्भव हुई है । इसी से तीनों वेदों और महाव्याहृतियों का निर्माण हुआ है ।

इस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों में सृष्टि प्रक्रिया के विषय में विस्तार से उल्लेख प्राप्त होता है ।

आचार दर्शन :

ब्राह्मण साहित्य में (आचार—दर्शन) अर्थात् नैतिक मूल्यों और उदात्त आचार व्यवहार के सिद्धान्तों पर विशेष बल दिया गया है । ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि दीक्षित यजमान को सत्य बोलना चाहिए—ऋतं वाव दीक्षा सत्यं दीक्षा तस्माद् दीक्षितेन सत्यमेव वदितव्यम् । इसी प्रकार विद्वानों के आचार—व्यवहार को बतलाते हुए कहा है—विदुषां सत्यमेव वदितव्यम् । अहंकार से युक्त वाणी को राक्षसी वाणी कहा गया है—

यां वै दृप्तो वदति यामुन्मत्तः सा वै राक्षसी वाक् ।

शुनः शेष से सम्बद्ध आख्यान के प्रसंग में कर्मनिष्ठ जीवन और पुरुषार्थ साधना का महत्व बड़े ही काव्यात्मक ढंग से बतलाते हुए कहा गया है कि—बिना थके हुए श्री नहीं मिलती, जो विचरता है उसके पैर पुष्प युक्त होते हैं, उसकी आत्मा फल को उगाती और काटती है।

ऐतरेय— ब्राह्मण के सदृश शांखायन/कौषीतकि ब्राह्मण में भी मानवीय आचार के नियामक और निर्देशक तत्त्व बहुलता से उपलब्ध होते हैं। व्यक्ति की पहचान वाणी से होती है, क्योंकि वही प्राणी मात्र की अधिष्ठात्री है। जीवन में प्रगति पथ पर आगे बढ़ते हुए व्यक्ति के लिए वाणी परम उपादेय सिद्ध होती है—

अधो वाग्वै सारपराज्ञी । वाग्धिसर्पतो राज्ञी ।

शांखायन ब्राह्मण में वाणी के गौरव—ज्ञापन के साथ ही सत्य सम्भाषण की आवश्यकता प्रतिपादित करते हुए कहा गया है—रात्र्या उ शीर्षन सत्यं वदति । स यदि ह वा अपि तत् उर्ध्वं मृषा वदति । सत्यं हैवारयोदितं भवति ।

कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय ब्राह्मण में मानवीय आचरण के बारे में बतलाते हुए कहा गया है कि मनुष्य का आचरण देवों के समान होना चाहिए—

इति देवा अकुर्वन्त । इत्यु वै मनुष्याः कुर्वन्ते ।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में सत्यभाषण, वाणी की मिठास, तपोमय जीवन, अतिथि सत्कार, सम्पत्ति के परोपकार हेतु विनियोग, मांस भक्षण से दूर रहने तथा ब्रह्मचर्य के पालन पर विशेष बल दिया गया है। उग्र वाणी को भूख और प्यास की हेतु होने के कारण महापातक के सदृश बतलाया गया है—

अशनयापिपासे ह वा उग्रं वचः ।

सत्य का महत्व प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि व्यक्ति को निरन्तर असत्य से सत्य की ओर बढ़ने का प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि वह मनुष्यत्व से देवत्व की ओर अग्रसर होने का द्योतक है—

अनृतात् सत्यमुपैमि । मानुषाद्दैव्यमुपैमि । दैवी वाचं गच्छामि ।

तपोमय जीवन तै.ब्रा. में प्रतिपादित दूसरा महनीय जीवन मूल्य है। तपस्या से ही देवों ने उच्च स्थिति प्राप्त की, ऋषियों ने स्वर्गिक सुख पाया और अपने शत्रुओं का विनाश किया—

तपसा देवा देवतामग्र आयन् । तपसर्षयः स्वरन्वविन्दन् । तपसा सपत्नान् प्रणुदामरातीः ।

श्रद्धा को इस ब्राह्मण में विशिष्ट जीवन मूल्य के रूप में दिखलाते हुए कहा है—लोक की प्रतिष्ठा श्रद्धा से ही है। अमृत का दोहन करती हुई श्रद्धा कामना की बछेरी है। वह संसार की पालिका है।

तै. ब्राह्मण में मन को मनुष्य का सर्वोच्च प्रजापति बतलाया गया है। मन से ही सभी क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं, अतएव मन की शुद्धि परमावश्यक है—

मन इव हि प्रजापतिः येन पूतस्तरति दुष्कृतानि ।

मन की शुद्धि के लिए बहुविध कामनाओं का परित्याग अत्यावश्यक है, क्योंकि वे समुद्र के समान अपार हैं—

समुद्र इव हि कामः । नैव हि कामस्यान्तोऽस्ति ।

इस प्रकार तै. ब्राह्मण में मनुष्य के चतुर्दिक अभ्युत्थान और उदात्त-दृष्टि से जीवन-पथ पर आरोहण के निमित्त अत्यन्त प्रशस्त आचार-दर्शन की प्रस्तुति दिखलाई देती है।

सामवेदीय ब्राह्मणों में निहित आचार-दर्शन में बतलाया गया है कि जिस प्रकार सभी कुकृत्यों को त्यागने के अनन्तर ही यजमान और ऋत्विक् देवयजन (यज्ञशाला) में प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार जीवन-यज्ञ के अनुष्ठाताओं को भी दुष्कृत्यों से विरत होने का निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए।

षड्विंश ब्राह्मण में कहा है कि—“त्रिषत्या हि देवाः” अर्थात् उन लोगों ने ही देवत्व को प्राप्त किया है, जिनके मन, वाणी और कर्म तीनों ही सत्ययुक्त रहे हैं। यज्ञ की देवी स्वाहा सत्य से ही उत्पन्न हुई है—“स्वाहा वै सत्यसम्भूता।”

सामविधान ब्राह्मण में बतलाया गया है कि मनुष्य को सत्य बोलना चाहिए तथा अनार्यों के साथ सम्भाषण से बचना चाहिए—“सत्य वदेत्, अनार्यैर्न सम्भाषेत्।” साथ ही कहा गया है कि वाणी की शुद्धि के लिए किसी के पापपूर्ण कृत्य का कथन नहीं करना चाहिए।

ताण्ड्य ब्राह्मण में मिथ्या भाषण करने के बारे में कहा गया है कि जिस पर मिथ्या भाषण का आरोप लग जाता है, उसका मनुष्य ही नहीं, देवगण भी परित्याग कर देते हैं और उसके द्वारा प्रदत्त यज्ञाहुति को स्वीकार नहीं करते हैं—

देवता वा एतं परित्यजन्ति यमनृतमभिशंसन्ति ।

इन आचार घटक तत्वों के निरूपण के साथ ही सामवेदीय ब्राह्मणों में उन दुर्बलताओं और विकृतियों का विवेचन भी हुआ है, जो मानवीय गरिमा के स्खलन की प्रतीक हैं, जैसे—स्वर्णतस्कर, मद्यप, गुरुस्त्रीगामी और किसी की हत्या करने वाले तो पतित हैं ही, इनसे सम्बन्ध रखने वाला भी पतित हो जाता है।

अथर्ववेदीय गोपथ ब्राह्मण का आचार की दृष्टि से स्तर अत्यन्त उच्च और उदात्त है। गोपथ ब्राह्मण के अनुसार मन का बहुत महत्व है। आदमी मन से जो सोचता है, वही होता है—स मनसाध्यायेद्, यद् वा अहं किं च मनसा ध्यास्यामि तथैव तद् भविष्यति।

ब्राह्मणकार ने आधे-अधूरेपन से कार्य करने का भी निषेध किया है तथा कहा है कि संरक्षित धर्म ही मनुष्य की रक्षा करता है—धर्मो हैनं गुप्तो गोपायति। सम्भवतः यही गोपथ ब्राह्मणोक्त सूक्ति लौकिक संस्कृत में—धर्मो रक्षति रक्षितः में परिणत हुई है।

इस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों का आलोड़न—विलोड़न करने के उपरान्त हम निसन्देह रूप से कह सकते हैं कि सृष्टि—प्रक्रिया के विषय में इन ग्रन्थों में अपने अलग—अलग मत दिखलाई पड़ते हैं। ऋग्वेदीय ऐतरेय ब्राह्मण में जहां सृष्टि—प्रक्रिया के विषय में अनेक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक सूचनाएँ संकलित हैं वहीं शु.यजु. के शतपथ ब्राह्मण में सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्म के दो रूपों यथा—मूर्त और अमूर्त का उल्लेख प्राप्त होता है तथा यज्ञ को सृष्टि का मूल हेतु बतलाया गया है। कृष्ण यजु. के त. ब्राह्मण में सृष्टि का प्रारम्भ ब्रह्म के श्रम तथा तप से बतलाया गया है।

इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों में स्थान—स्थान पर नैतिक भावना और मानवीय उदात्तता के नियामक मनोभाव सन्निहित हैं। मनीषियों के अनुसार मनुष्य के कर्तव्य का भाव ब्राह्मण ग्रन्थों में अधिक विकसित हुआ है। इन ग्रन्थों में मानवीय आचरण की दिशा को निर्दिष्ट करने वाले महत्वपूर्ण संकेत सुलभ होते हैं, जिनके प्रवृत्ति और निवृत्ति गत बिन्दुओं पर आचार—व्यवहार की सम्पूर्ण चेतना केन्द्रित की जा सकती है। इनके समन्ततः परिपालन से मनुष्य का दैनन्दिन व्यवहार और चरित्र ऊपर उठ सकता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में निहित नैतिक चेतना का स्तर अत्यन्त उच्च और परिष्कृत है। इनमें प्रायः उन सभी आवश्यक तत्वों का ध्यान रखा गया है जो व्यक्ति के व्यवहार को आवश्यकतानुसार न केवल संयत बनाते हैं, अपितु उसे गरिमा से मण्डित भी करते हैं।

इस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों में चाहे मनुष्य के आचार—दर्शन का विषय हो चाहे सृष्टि प्रक्रिया का विषय हो, विस्तृत रूप में सामग्री निहित है।

संदर्भ ग्रन्थ :—

1. जै.मी.सू. 2/1/33

2. मेदिनीकोश
3. महाभारत, उद्योगपर्व, भण्डारकर संस्करण
4. शु.यजु., शतपथ ब्राह्मण 14/9/3/1
5. शु.यजु., शतपथ ब्राह्मण 10/1/4/9
6. शु.यजु., शतपथ ब्राह्मण 14/1/2/10
7. सामवेदीय सामविधान ब्राह्मण प्रथम प्रपाठक प्रथम अनुवाक
8. ऋग्वेद, ऐतरेय ब्राह्मण, प्रथम अध्याय, षष्ठ खण्ड
9. ऋग्वेद, ऐतरेय ब्राह्मण, 2/1/17
10. ऋग्वेद, कौषीतकि ब्राह्मण 27/4
11. ऋग्वेद, शांखायन ब्राह्मण 2/8
12. कृष्ण यजुर्वेद, तैत्तिरीय ब्राह्मण 1/5/9/4
13. कृष्ण यजुर्वेद, तैत्तिरीय ब्राह्मण 1/2/1
14. सामवेद, ताण्ड्य ब्राह्मण 1/1/3



प्रयाग के ऐतिहासिक स्थलों का महत्त्व

डॉ. वीना सिंह

एसोसिएट प्रोफेसर

हण्डिया पी.जी. कॉलेज, हण्डिया, इलाहाबाद

हिमालय की कोख से अवतरित गंगा व यमुना एवं अदृश्य सरस्वती के अद्भुत संगम तट पर स्थित भारत के हृदय स्थल इलाहाबाद का अनादिकाल से ऐतिहासिक व सांस्कृतिक महत्व रहा है। मध्य गंगाघाटी में स्थित इलाहाबाद का अपना अलग ही महत्व है जो भौगोलिक दृष्टि के साथ-साथ आर्थिक दृष्टि से मानव के क्रिया-कलापों का केन्द्र बिन्दु रहा है। यह क्षेत्र कृषि एवं मृदभाण्ड पात्र परम्परा के उद्भव और विकास के रूप में भी जाना जाता है। यह उत्तर अक्षांश 24-47° एवं 25-47° मध्य वाला पूर्वी देशान्तर 810.19' से 820.21' इस जिले का कुल क्षेत्रफल 7261 वर्ग किमी है। इलाहाबाद का विस्तार उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में है। इस प्रकार मौसम के अनुसार यहाँ की जलवायु में परिवर्तन होता रहता है। इस कारण यहाँ वार्षिक तापांतर बहुत पाया जाता है। ग्रीष्मकाल में तापमान 45-46°C तक तथा शीतकाल में 40°C से तक पाया जाता है।

पुण्य सलिला गंगा, यमुना एवं अन्तःसलिला सरस्वती का पावन संगम-स्थल, आदि कवि वाल्मीकि, भारद्वाज एवं भृंगी आदि अनेक महर्षियों की कर्मभूमि तीर्थराज प्रयाग धार्मिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से सदैव सुखसम्पन्न एवं समृद्ध रहा है। यहाँ अनेक ऐसे स्थल हैं जो अत्यन्त प्राचीन काल से धार्मिक पर्यटन की दृष्टि से पर्यटकों के आकर्षण के केन्द्र रहे हैं। प्रयाग के पवित्र स्थलों में समुद्र कूप का महत्वपूर्ण स्थान है। सामान्यतया इसे प्रयाग तीर्थ के अन्तर्गत एक उपतीर्थ के रूप में स्वीकार किया गया है।¹ मत्स्य पुराण के अनुसार 'गंगा के बाएं तट पर तीनों लोकों में प्रसिद्ध समुद्र कूप और प्रतिष्ठान स्थिति है।' समुद्र कूप चौड़े मुँह का एक पक्का कुआँ है जो झूंसी के टीले पर आज भी विद्यमान है। सम्प्रति यह टीला 'कोट' के नाम से जाना जाता है। कुँए की गहराई बहुत अधिक है और प्रायः जलयुक्त रहता है। इस कूप का निर्माण किसके द्वारा कराया गया है ? यह प्रश्न सर्वप्रथम विचारणीय है। नाम के आधार पर गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त को इसके निर्माण का श्रेय प्रदान किया जा सकता है। इस संभावना की पुष्टि के लिए अभिलिखिक एवं मुद्रा सम्बन्धी साक्ष्यों की ओर ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है। प्रयाग स्तम्भ-लेख⁷ की प्राप्ति से यह निस्संदेह प्रमाणित है कि प्रयाग और उसके आसपास के क्षेत्रों में समुद्रगुप्त का शासन स्थापित था,⁸ यहाँ तक कि उसके उत्तराधिकारियों के लेख भी मानकुंवर एवं गढ़वा आदि स्थानों से प्राप्त हैं। समुद्र कूप के सम्बन्ध में निम्नलिखित संभावनायें परिकल्पित की जा सकती हैं—

1. समुद्र कूप का निर्माण गुप्त सम्राट समुद्र गुप्त के द्वारा गोहसहस्र दान या अश्वमेध यज्ञ के सम्पादन के अवसर पर कराया गया।
2. इसका सम्बन्ध सप्त सागर दान से भी स्थापित किया जा सकता है।
3. इस कूप के निर्माण का उद्देश्य प्रतीकात्मक भी हो सकता है और यह संभव नहीं कि समुद्र कूप के रूप में समुद्र तीर्थ या सागर तीर्थ की स्थापना परिकल्पित की गई हो। प्रयाग में सागरतीर्थ की परिकल्पना का औचित्य इसलिए भी है कि नारदीय पुराण में सागर को सरिताओं का पति और समस्त तीर्थों का राजा कहा गया है। गंगा-यमुना को भी सागर की पत्नियाँ कहा गया है।
4. समुद्र कूप एवं प्रतिष्ठानपुर क्षेत्र तीर्थ यात्रियों के ठहरने के स्थल थे। इस क्षेत्र की पवित्रता बनाए रखने के

लिए ब्रह्मचर्य का पालन एवं क्रोध पर नियंत्रण आवश्यक था।

श्रृंगवेरपुर (सिंगरौर) वर्तमान में यह स्थल इलाहाबाद से 35 किमी. इलाहाबाद लखनऊ मार्ग के गंगा तट पर स्थित है। यहाँ श्रृंगी ऋषि की समाधि है एवं ऐसी मान्यता है कि राजा दशरथ ने पुत्र की कामना से यहाँ यज्ञ करवाया था। श्रीराम के जीवन से संबंधित होने के कारण भारतवासियों के सांस्कृतिक जीवन में इसका स्थान पुरातात्विक साक्ष्यों से इस स्थल की ऐतिहासिकता की पुष्टि होती है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार राम ने इसी स्थान से सुमंत तथा सब अयोध्यावासियों को विदा कर दिया और स्वयं, लक्ष्मण तथा सीता सहित मुनियों का वेश धारण कर गंगा के इस पार उत्तर पर ऋषि भरद्वाज के आश्रम पहुंचे थे। वाल्मीकि ने रामायण में श्रृंगवेरपुर के नामोल्लेख के साथ ही गंगा का अद्भुत वर्णन किया है। रामायण के अनुसार श्रृंगवेरपुर में राम ने त्रिपथगा देवनदी गंगा का दर्शन किया। गंगा शीतल जल से भरी हुयी थी, रमणीय थी और महर्षियों से निशेवित थी। तट पर अलंकृत आश्रम थे। समय-समय पर अप्सरायें कल्याणकारिणी गंगा में स्नान करती थीं एवं देवता, दानव, गन्धर्व और किन्नर यहाँ विराजमान रहते थे। पत्थर के टुकड़ों से टकराने से गंगा जल का जो शब्द होता है वह मानो गंगा का अट्टाहस है। उनके जल में देवगण गोता लगाते थे। तट पर वृक्ष इस प्रकार फैले हैं मानो वे गंगा की माला है। गंगा का जल मणि के समान निर्मल तथा स्वच्छ है। विष्णु के पद से निकली यह गंगा समस्त पापों का नाश करने वाली है। शंकर की जटा से निकल कर वे तेजी से समुद्र की ओर बह रही है। वे समुद्र की महारानी हैं। उनके किनारे सारस और क्रौंच कलरव कर रहे हैं।

ऐसे गंगा तट पर पहुंचकर श्री राम ने सुमंत्र से कहा “गंगा जी के समीप इस इंगुदी वृक्ष के नीचे आज हम रहेंगे। उनका जल देवताओं, मनुष्यों, गन्धर्वों, नागों, पशु-पक्षियों के लिये आदरणीय है एवं गंगा का दर्शन यहाँ से होता रहेगा।” इस प्रकार श्रीराम ने श्रृंगवेरपुर और जिस गंगा तट का दर्शन किया था वह कितना दिव्य है। सुन्दरता, रमणीयता, पवित्रता तथा उदारता में यह स्थान सर्वोच्च है। आदि कवि ने इसका जो सुन्दर और उदात्त वर्णन किया है, वह विश्व साहित्य के लिये एक आदर्श हो गया है। इस सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता कि ऋषि वाल्मीकि श्रृंगवेर आये रहे होंगे, अन्यथा ऐसा यथार्थ व मार्मिक वर्णन सम्भव नहीं हो सकता था। महाभारतकार व्यास ने भी श्रृंगवेरपुर का वर्णन किया है उन्होंने वनवास में युधिष्ठिर को श्रृंगवेरपुर जाने को कहा था। महाभारत के अनुसार “श्रृंगवेरपुर महान है वहां राम ने गंगा पार किया है अतः वह शब्दतः और अर्थतः दोनों प्रकार से तीर्थ है। ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये जो व्यक्ति श्रृंगवेरपुर में स्नान करता है उसे वाजपेय यज्ञ करने का फल मिलता है। वह सब पापों से मुक्त हो जाता है और स्वर्ग प्राप्त करता है” ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत की रचना के समय श्रृंगवेरपुर की प्रसिद्धि एक तीर्थ के रूप में हो चुकी थी। कालिदास के रघुवंश महाकाव्य में भी श्रृंगवेरपुर का वर्णन प्राप्त होता है। रघुवंश में राम के लंका से लौटते हुये चित्रकूट, श्यामवट, प्रयाग, श्रृंगवेरपुर तथा अयोध्या का वर्णन प्राप्त होता है। श्रृंगवेरपुर के सम्बन्ध में श्री राम कहते हैं। “यह वही निशादराज का पुर है जहाँ मैंने मुकुट का त्याग करके जटाजूट को धारण किया था। जहाँ सुमंत्र रोये थे और कहे थे—हे कैकेयि! तुम्हारी कामना फलित हो गयी।” स्पष्ट है कि महाकवि के मानस पर इन घटनाओं का अमिट प्रभाव था। रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसी दास ने इस स्थान का वर्णन करते हुए कहा है —

सीता सचिव सहित दोउ भाई। श्रृंगवेरपुर पहुंचे जाई।।

साहित्यिक साक्ष्यों के अतिरिक्त पुरातात्विक साक्ष्यों से भी इस स्थल के ऐतिहासिक व धार्मिक महत्व पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। ‘इण्डियन इंस्टीट्यूट सर्वे ऑफ इण्डिया’ ने 1977 से 1980 तक इस स्थल का उत्खनन किया, जिससे इस स्थल की प्राचीनता तथा ऐतिहासिक महत्व पर जानकारी प्राप्त होती है। इस पुरास्थल का उत्खनन शिमला उच्च अध्ययन संस्थान और भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के संयुक्त तत्वाधान में बी० बी० लाल और के० एन० दीक्षित के निर्देशन में दिसम्बर सन् 1977 से 1982 तक हुआ। श्रृंगवेरपुर के उत्खनन के फलस्वरूप जो

पुरावशेष तथा पुरानिधियाँ मिली हैं उनको सात विभिन्न सांस्कृतिक कालों में विभाजित किया गया है। यहाँ के अधिकांश सांस्कृतिक कालों के बीच में सातत्य देखने को मिलता है। प्रथम सांस्कृतिक काल (1050–1000 ई० पू०) गैरिक मृदभाण्ड संस्कृति का है। गैरिक मृदभाण्डों के अतिरिक्त सरकण्डों की छाप से युक्त मिट्टी के जले हुए टुकड़े मिले हैं जिनसे इंगित होता है कि ये लोग बॉस–बल्ली से निर्मित झोपड़ियाँ बनाते थे। मृण्मय चक्रिय खण्ड और कार्नेलियन के फलक का एक खंडित टुकड़ा मिला है। इसके पश्चात् यह पुरास्थल संभवतः कुछ समय तक वीरान रहा।

मध्य गंगा घाटी के प्राचीन पुरास्थलों में भीटा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह स्थान इलाहाबाद से लगभग उन्नीस किमी. दक्षिण इरादतगंज रेलवे स्टेशन के निकट यमुना नदी के दाहिने तरफ है। यहां पर तीन बड़े-बड़े टीले मिले हैं। जिनका विस्तार लगभग 400 बीघे में है। यही स्थान भीटा के नाम से जाना जाता है। इस स्थल के नजदीक देवरिया, विकर, सारीपुर, मानकुवर आदि गांव हैं। जो पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। जैन ग्रंथ इस स्थल का प्राचीनतम विथा व्यपटन (विथा पत्तन) कहा गया है। यही 'विथा' आगे चलकर भीटा के नाम से जाने जाना लगा है। बौद्ध साहित्य में इस नगर का नाम सहजातीय प्राप्त होता है। इसे 'विछि' भी कहा जाता है। सहजातीय एवं विच्छि नामांकित मोहरें भी इस स्थल से प्राप्त हुई हैं। जो बौद्ध परम्परा की पुष्टि करती है। पहले बहुत दिनों तक इस स्थान की प्राचीनता का किसी को पता न था। 1857 की क्रान्ति के पश्चात् जब ईस्ट इण्डियन रेलवे की शाखा यमुना के उस पार निकली तो उसके ठेकेदारों ने ईंटों की खोज में, इस स्थान को खोदा। पृथ्वी के भीतर बड़े-बड़े पुराने भवन के भग्नावशेष के निकलने पर उन्होंने अपने अफसरों को सूचना दी। उसके पीछे पुरातत्व अनुसंधान विभाग के अधिकारियों का ध्यान इस स्थान की ओर आकृष्ट हुआ। पहले-पहल जनरल कनिंघम ने इसके एक टीले के निकट खोदाई की और उसके आसपास के स्थानों का निरीक्षण किया। इसका फल यह हुआ कि एक प्राचीन नगर तथा गढ़ इत्यादि के खंडहर बहुत सी पुरानी वस्तुएं और कुछ अभिलेख यहां मिले। 1910 में सर जान मार्शल ने दूसरे टीले का उत्खनन कराया जिससे प्राप्त पुरावशेषों से इस स्थान के ऐतिहासिक महत्व पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ा।

इस पुराने नगर के चिह्न उत्तर की ओर 'सुजानदेव' के मंदिर से आरंभ होकर दक्षिण तक कोई डेढ़ मील तक फैले हुए हैं। उक्त मंदिर इस समय यमुना के बीच में है। परन्तु पहले वह इस नगर से मिला हुआ उसके उत्तरीय सीमा पर यमुना के किनारे पर था। धीरे-धीरे नदी के प्रवाह से बीच की भूमि कटकर बह गई जिससे मंदिर बस्ती से पृथक् होकर टापू के रूप में जमुना के बीच में आ गया है। इसकी ऊंचाई धरातल से 60 फुट के लगभग है। पहले इस पर सुजानदेव का मंदिर था। परन्तु शाहजहाँ के समय में जब शायस्ता खां इलाहाबाद का सूबेदार था, तब उसने सन् 1954 में पुराने मंदिर को विध्वंस करके उस जगह तक एक अठपहल बैठक जो 21 फुट व्यास की है, बनवाई और फारसी के पांच पद्यों में अपना नाम तथा उसके निर्माण की हिजरी संवत् 1055–1695 ई. अंकित कराया। सुजानदेव मंदिर के सामने दक्षिण की ओर यमुना के किनारे देवरिया गांव है। उससे दक्षिण कोई आधा मील तक एक बड़े ताल के पश्चिम किनारे-किनारे कुछ भूमि डीह के नाम से फैली हुई है। इसी से मिला हुआ पुराने गढ़ का चिन्ह मिलता है। यह लगभग चतुष्कोण भूमि है, जिसका उत्तरीय किनारा 1200 फुट और शेष तीनों 1500–1500 फुट लंबे हैं। भीतर की दीवारें मिट्टी की थीं, परन्तु बहुत चौड़ी थीं, और उनकी रक्षा के लिए 25–30 फुट के अंतर पर बाहर एक ईंटों की दीवार थी। ये ईंटें बहुत लंबी-चौड़ी थीं, जैसे कि पुराने समय में हुआ करती थीं। इस गढ़ के चारों कोनों की भूमि अब तक कुछ ऊंची है, जिससे अनुमान होता है कि वहां बुर्ज अथवा घुरेरे रहे होंगे। पश्चिमीय कोने पर दो टले एक दूसरे के निकट हैं और उनके बीच में कुछ गड्ढा सा है। संभवतः यही दुर्ग का मुख्य द्वार रहा होगा। इसी प्रकार उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पूर्व के बीच में भी दो दरवाजों के चिह्न पाए जाते हैं। किले के मध्य की भूमि कुछ ऊंची है। ऐसा जान पड़ता है कि यहां कोई बौद्ध मंदिर था, क्योंकि उस

जगह राजघराने के किसी व्यक्ति की मूर्ति, एक पंचमुखा खंभा, जिसमें पांच बौद्ध मूर्तियां थीं, तथा एक अभिलेख इत्यादि मिले हैं। कुछ गड़े हुए पत्थर और नक्श की हुई ईंट भी मिली है। किले के भीतर खुदाई करने पर मौर्य-काल से लेकर कुषाण, गुप्त तथा सुंग समय तक की इमारतों के बहुत चिह्न मिले हैं। इस किले के अंदर एक बाजार भी था, जिसकी दुकानें एक ही पंक्ति में गली की ओर हैं। इसके निकट इधर-उधर और अनेक बड़े-बड़े मकानों के चिह्न मिले हैं। यहां खुदाई करने से, जो चीजें मिली हैं, उनके विषय में पुरातत्व-वेत्ताओं का मत है कि उनमें से कुछ सन् ईसवी से सात-आठ सौ वर्ष पहले से कम पुरानी न होगी। इन वस्तुओं में नुकीले लोहे और पत्थर के शस्त्र, संगमरमर और मिट्टी के बर्तन, कनिष्क और हविष्क के समय के सिक्के, मिट्टी की मुहर छाप, विविध प्रकार के गहने, मूर्तियां, तराशे हुए पत्थर के खंभे, श्रृंगारदान तथा मिट्टी और तांबे के बर्तन आदि प्रमुख हैं।

इलाहाबाद के प्राचीन पुरास्थलों में कड़ा महत्वपूर्ण है। यह स्थल इलाहाबाद से 36 मील पश्चिम गंगा के दाहिने तट पर स्थित है। यह स्थान पहले इलाहाबाद जनपद का अंग था, वर्तमान में नवसृजित जिला कौशाम्बी में स्थित है। प्राचीन काल में यह उत्तर भारत के 6 पवित्र स्थानों में से था। यहां कालेश्वर महादेव का मंदिर है, जिसके कारण इस स्थान का पुराना नाम 'काल-नगर' बतलाया जाता है। 'कर्कोटक नगर' भी इस को कहते थे, जिसके विषय में दंतकथा है कि यहाँ सती (महादेव जी की स्त्री) का कर (हाथ) गिरा था। प्रसिद्ध मुसलमान यात्री इब्न बतूता ने जो सन् 1340 ई. में यहां आया था इस स्थान को हिन्दुओं का एक तीर्थ लिखा है। नीचे के एक शिला लेख में इस नाम का 'कट' लिखा है।

प्राचीन काल में राजनीति दृष्टि से यह स्थान बड़े महत्व का था। यहां की वर्तमान बस्ती से कुछ दूर गंगा के किनारे एक पुराने दुर्ग का टीला अब तक मौजूद है। यह नीचे की भूमि से 90 फुट ऊंचा है। इसकी लंबाई उत्तर-दक्षिण 900 फुट और चौड़ाई पूर्व-पश्चिम 550 फुट है। अधिकांश दीवारें ईंट की और कुछ पत्थर की हैं। यह जयचंद का किला कहलाता है जो कन्नौज का अंतिम हिन्दू नरेश था।

खैरागढ़ इलाहाबाद से 40 किमी० पूर्व मेजा रोड टोसंनदी के पूर्वी तट पर एक विशालगढ़ है जिसका बहुत सारा भाग टोस ने आत्मसात कर लिया है। यह गढ़ भाँड़ा जिले में है जिसकी देखरेख भारतीय पुरातत्व विभाग करता है। गढ़वा पुरास्थल इलाहाबाद जिले की करछना तहसील में स्थित है। जो पहले इसका नाम भटगढ़ के नाम से जाना जाता था। यहाँ एक झील है जो गढ़वाताल के नाम से जानी जाती है यहाँ से गुप्त शासकों-कुमार गुप्त प्रथम तथा स्कन्दगुप्त के समय का लेख मिलता है। कुमार गुप्त के दो शिलालेख जिन पर गुप्त संवत् 98-417 ई० की तिथि अंकित है स्कन्दगुप्त के लेख गुप्त संवत् 148-467 ई० का है अभिलेख से ब्राह्मणों को दीवार (स्वर्ण मुद्राएँ) दान किए जाने का उल्लेख है। गढ़वा में विष्णु के दशावतारों का एक मंदिर है। चोपनी माण्डो इलाहाबाद जिले की मेजा तहसील दक्षिण-पूर्व दिशा 77 किमी० और देवघाट से पूर्व दिशा में बूढ़ी बेलन नदी के बायें तट पर स्थित है। इस स्थल के उत्खनन का श्रेय प्रो० वी०डी० मिश्रा एवं प्रो० जी०आर० शर्मा को जाता है। यहाँ पुरापाषाणकाल से नवपाषाण काल तक के तीन चरणों का अनुक्रम देखा गया है। यहाँ मध्य पाषाणकालीन स्तर से मधुमक्खी के छतें जैसी झोपड़ियाँ, साझा चूल्हे, ज्यामितिय आकार के सूक्ष्म पाषाण एवं हस्तनिर्मित मृद भाण्ड मिले हैं। विद्वानों की मान्यता है चौपनी भाण्डों के मृदभाण्ड संसार के प्राचीनतम साक्ष्यों में से एक हैं। ये सभी पुरास्थल एक से अधिक संस्कृतियों से जुड़े हैं इन स्थलों से नवपाषाणिक संस्कृति से लेकर ऐतिहासिक युग तक की संस्कृतियों के साक्ष्य मिलते हैं। इन स्थलों से आवासीय क्षेत्र, मिट्टी के बर्तन, कृषि और पशुपालन एवं अन्न उत्पादन के साक्ष्य भी मिलते हैं। क्या मध्य गंगाघाटी की नवपाषाणिक संस्कृति के उदभव के लिए भी विन्ध क्षेत्र की ओर देखने की विद्वानों की वेवसी है? इन सब प्रश्नों के उत्तर आने वाले समय में और गहन अनुसंधान से दिया जायेगा।

इलाहाबाद जिले से 25 किमी० पूर्व में हनुमानगंज नामक स्थान से 7 किमी० दक्षिण गंगा के किनारे पावन शान्तिमय महर्षि दुर्वासा तपोस्थली स्थित है। यह पावन तपोस्थली आज भी एक ऊँचे टीले पर स्थित है टीले के पीछे बड़ा सा नाला है जो गंगा नदी से मिलता है। प्रो० एल० एम० बहल के अनुसार इस क्षेत्र में विष्णु मूर्तियों के साथ ही साथ अन्य देवी देवताओं की मूर्तियाँ भी प्राप्त होती हैं। जिसमें शक्तिमातृकाएँ, महिषासुर मर्दिनी, अस्तिका, जगतकारु आदि की मूर्तियाँ भी प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। इन मूर्तियों के अलंकरण, भावभंगिमा, केश-विन्यास अवस्था आकर्षक है। ये मूर्तियाँ लगभग दसवीं शताब्दी की हैं। मन्दिर की वर्तमान परिस्थिति को देखकर यह लगता है कि वास्तव में मन्दिर एक ऐसे बिन्दु पर स्थित है जो महर्षि दुर्वासा के तपोस्थली होने को प्रमाणित करता है क्योंकि यह स्थल एक ऊँचे टीले पर गंगा नदी के पावन तट पर स्थित है। तथा प्राचीनकाल में यह एक जंगल रहा होगा। यहां अनेक प्रकार की ईंटें पायी जाती हैं तथा सड़कें बनाते समय कई वस्तुयें इस तरह की मिली हैं जो इस स्थल के धार्मिक इतिहास से जुड़ी हुई हैं। जो कि कालान्तर में शान्त तथा ऋषियों के लिये अच्छी तपोस्थली रही होगी जिसका प्रमाण भारतीय ऐतिहासिक साक्ष्यों से भी मिलता है।

साक्ष्यों में पौराणिक कथा के अनुसार प्रयाग के मुख्य में महर्षि भारद्वाज का आश्रम था। एक बार महर्षि दुर्वासा भगवान विष्णु के चक्र के भय से भागते हुये महर्षि भारद्वाज के आश्रम में आ पहुँचे और वहां महर्षि भारद्वाज से अपने बचने का उपाय पूछा, तब भारद्वाज ने कहा आप (महर्षि दुर्वासा) प्रयाग की पंचकोशी की तरफ जाओ वहाँ से भागते हुये महर्षि दुर्वासा चक्रमाधव नामक स्थान पर आये (जो वर्तमान में छतनाग नामक स्थान में हैं) वहां से चक्र ने उनका पीछा करना बन्द कर दिया। अब तभी से वह स्थान चक्रमाधव नाम से प्रसिद्ध हो गया और वह आज भी उस परिक्षेत्र की रक्षा करता है फिर महर्षि दुर्वासा वहाँ से अपने शिष्यों के साथ गंगा तट पर स्थित तपोस्थली पर पहुँचे जो वर्तमान काल में ककरा नामक ग्राम में अवस्थित हैं। यहां पर महर्षि दुर्वासा अपने 88000 शिष्यों के साथ हवन तर्पण किया करते थे। इसी समय दो राक्षस द्रुमलिक तथा सुरसा धार्मिक कार्य में बाधा डालने लगे। महर्षि दुर्वासा ने अपने गुरु वशिष्ठ और भारद्वाज के साथ मिलाकर शक्ति का आवाहन किया। जिससे ऐन्द्री की उत्पत्ति हुई और ऐन्द्री देवी ने राक्षसों का संहार किया तथा ऐन्द्री ने अपने रहने का स्थान महर्षि दुर्वासा से मांगा तो उन्होंने अपने आश्रम से 1600 धनुष की दूरी पर ईशान कोण पर रहने को कहा और माँ ऐन्द्री 1600 धनुष की दूरी पर (जो वर्तमान में जमुनीपुर नामक गाँव में हैं) अवस्थित है।

प्रयागराज एवं इसके समीपस्थ प्रमुख धार्मिक स्थलों में दुर्वासा आश्रम, राजापुर, इमिलियनदेवी, सीतामढी, कड़ा आदि स्थान उल्लेखनीय हैं। इनके आलावा इस स्थान में सगंम तट पर स्थित बड़े हनुमान जी का मन्दिर, भारद्वाज आश्रम, एवं अक्षयवट भी प्रमुख स्थान रखते हैं। अक्षय वट सगंम तट पर स्थित किले के अन्दर स्थान ग्रहण किये हुए है। मुख्य रूप में यह वट किले के युमना नदी के पास वाले भाग में स्थित है। किले के अन्दर ही एक और दर्शनीय स्थल पातालपुरी मन्दिर विद्यमान है। पातालपुरी नाम दिये जाने का कारण इस मन्दिर का भूमि के अन्दर होने से है। इसके अलावा अन्य देवों एवं देवियों के मन्दिर भी यहाँ प्राप्त होते हैं। जिनमें सत्यनारायण, यमदंड, महादेव, शिव, दत्तात्रेय, कुबेर, पार्वती, दुर्वासा, दूधनाथ, सरस्वती, स्वामिकार्तिक, ललिता देवी, अनसूया, यमदंड महादेव, दंडपाणि भैरव, गणेश, महालक्ष्मी, संकटमोचन, बालमुकंद, अनंतमाधव, विनायक, यमराज तथा नृसिंह आदि उल्लेखनीय स्थान रखते हैं।

प्रतिष्ठानपुर (वर्तमान में झूसी) भी प्रयाग के धार्मिक स्थल का बहुत महत्वपूर्ण केन्द्र है। यहीं पर टीले के रूप में पुराना किला विद्यमान है। जहाँ एक पवित्र स्थल के रूप में समुद्र कूप (कुंआ) स्थित है। यहीं उत्तर में आगे हंसकूप मिलता है। इसी के समीप हंसतीर्थ नाम का एक मन्दिर भी प्राप्त होता है। और पास ही भग्न मूर्तिमान रूप में संकटहर माधव मंदिर एवं संध्यावट भी दृष्टिगत होता है। इस प्रकार झूसी भी प्रयाग के धार्मिक महात्म्य को उल्लिखित करता है। भारद्वाज आश्रम भी प्रयाग का एक महत्वपूर्ण धार्मिक स्थल है। यह स्थान कर्नेलगंज

अथवा कर्नलगंज नामक स्थान पर विद्यमान है। यहाँ एक शेषनाग की मूर्ति (जो अनेकानेक फणों को धारण किये हुए है) दर्शनीय है। इसके अलावा यहाँ स्थित शिवलिंग भी धार्मिक दृष्टि से प्रमुख स्थान रखता है।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि धार्मिक एवं पुरातात्विक दानों ही दृष्टि से यह स्थल महत्वपूर्ण है। जहाँ इसके पुरातात्विक महत्व को श्रृंगवेरपुर, कौशाम्बी एवं साथर आदि स्थान प्रमाणित करते हैं, वहीं इसकी धार्मिक को महत्ता को पतित पावनी गंगा, यमुना एवं सरस्वती के संगम, भरद्वाज आश्रम एवं हनुमान मन्दिर आदि धार्मिक स्थल परिभाषित करते हैं। इस प्रकार यह भली भांति कहा जा सकता है कि विश्व के लिए जो महत्व प्रयाग का है वह महत्व संसार के किसी भी अन्य स्थान को नहीं दिया जा सकता है। अतः यह सत्य है कि प्रयाग की महिमामयी भूमि का महात्म्य अतुलनीय एवं आसाधरण है।

संदर्भ ग्रंथ सूची—

1. ऋग्वेद, भुवन वानी ट्रस्ट, लखनऊ, 1992
2. बाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, गोरखपुर
3. महाभारत, गीता प्रेस, गोरखपुर
4. रघुवंश महाकाव्य, गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल बुक डिपो, 1977
5. प्रयाग प्रदीप, सालिगराम श्रीवास्तव, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, 1937
6. पुरातत्व विमर्श, जयनारायण पाण्डेय, इलाहाबाद, 1983 (सप्तम संस्करण)
7. बी.बी.लाल, एक्स्क्वेसन ऐट श्रृंगवेरपुर (1977-86) भाग-1, आर्क्योलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया, नई दिल्ली, 1993.



बौद्ध धर्म में नारियों का स्थान

डॉ. आभा लता चौधरी

असिस्टेंट प्रोफेसर

रा. स्नातकोत्तर महाविद्यालय फतेहाबाद, आगरा

“एक राष्ट्र जो अपने माताओं, बहनों और पुत्रियों की रक्षा नहीं कर सकता एक सभ्य राज्य नहीं कहा जा सकता है।” भारत के राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने उक्त कथन लखनऊ विधान सभा के 125वीं शताब्दी महोत्सव के शुभ अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में 8 जनवरी, 2013 को कहा था। उन्होंने यह भी कहा था कि अभी हाल में दिल्ली में दामिनी के साथ जो सामूहिक बलात्कार हुआ है उससे सम्पूर्ण राष्ट्र शर्मिन्दा है और उन्होंने वर्ष 2013 को माताओं, बहनों और पुत्रियों के सुरक्षा और मान-सम्मान के रूप में मनाने का आव्हान किया था।

आज देश में महिलाएँ घर के अन्दर एवं बाहर असुरक्षित हैं। इनके साथ लज्जा भंग, बलात्कार, छेड़खानी की घटनाएँ आम बात हैं। घर के अन्दर भी इनके साथ घरेलू हिंसा, पति एवं उसके नातेदारों द्वारा दहेज के लिए उत्पीड़न, दहेज मृत्यु एवं दहेज मृत्यु के लिए उत्प्रेरण आदि की घटनाओं में वृद्धि हो रही है। दामिनी के घटना के पश्चात् हमारे देश के बुद्धजीवियों ने अनेकों तरह से अपनी बातें रखी हैं। कुछ ने महिलाओं को “अनुशासन में रहने” कुछ ने इन्हें “लक्ष्मण रेखा में रहने” आदि की नसीहत दी है। इन घटनाओं से निपटने के लिए कठोर कानून बनाए गए हैं जिसमें कठोर दण्ड का भी प्रावधान किया गया है। बलात्कार की दुबारा घटना करने वाले को मृत्युदण्ड देने का भी प्रावधान किया गया है। महिला संगठनों द्वारा बलात्कारियों को मृत्यु दण्ड देने की मांग की जा रही है जबकि देश में इसका विरोध भी किया जा रहा है।

दुनिया की लगभग आधी आबादी महिलाओं की है इसलिये महिलाओं का जब तक समुचित विकास नहीं होता कोई भी देश चहुमुखी विकास नहीं कर सकता है। यद्यपि इस आधी दुनिया को सर्वोच्च सम्मान हमारे देश में दिया गया है। यह कहा गया है कि—

‘यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता’

अर्थात् जिस समाज में (घर में) नारी की पूजा की जाती है, वहां पर देवता निवास करते हैं। कालान्तर में महिलाओं की स्थिति दयनीय होती गयी उन्हें केवल भोग की वस्तु और सम्पत्ति के रूप में मान्य किया गया क्योंकि महाभारत काल में पाण्डवों ने अपनी पत्नी द्रौपदी को जुए में हारने और कौरवों के द्वारा राजदरबार में पाण्डवों के समक्ष द्रौपदी (नारी) लज्जा को तार-तार करने का उल्लेख मिलता है। मेरे विचार से महिलाओं के भारतीय समाज में दुर्दशा का सबसे बड़ा कारण रामचरित मानस की चौपाई रहा है जहां तुलसीदास ने कहा है कि—

“ढोल गंवार शूद्र पशु नारी,

ये सब ताड़न के अधिकारी।”

वास्तविकता यह है कि नारियों की बदहाली का प्रमुख कारण सामाजिक एवं धार्मिक रहा है। नारियों को शिक्षा एवं सम्पत्ति से दूर रखकर उन्हें दासी बनाया गया है। वैदिक काल में समाज पुरुष प्रधान रहा है। नारियों को पारिवारिक सम्पत्ति से अलग रखा गया था। धार्मिक मान्यता है कि नारियां पवित्र एवं धार्मिक कार्यों में भाग नहीं ले सकतीं, धार्मिक अनुष्ठानों के लिए नारियाँ अपवित्र होती हैं, यही उनकी बदहाली का कारण रहा है। आज वर्तमान समय में लगभग 2.50 लाख नारियां महाराष्ट्र एवं कर्नाटक के प्रसिद्ध मन्दिरों में देवदासियां हैं जिनसे मन्दिरों

के प्रांगण में धर्म (भगवान) के नाम पर अनैतिक कार्य कराया जाता है। गरीब, अशिक्षित, दलित एवं आदिवासी लोगों को स्वर्ग, धन सम्पत्ति, खुशहाली आदि का झूठा प्रलोभन देकर उनकी कुआंरी लड़कियों की भगवान से शादी कराई जाती है और मन्दिर के प्रांगण में वेश्यावृत्ति कराई जाती है। यह प्रथा धार्मिक रूप से मान्य है अभी हाल में ही देश के उच्चतम न्यायालय ने इस प्रथा को समाप्त करने और देवदासियों के पुनर्वास करने का आदेश सम्बन्धित राज्यों को दिया है। 'देवदासी' प्रथा के नाम पर नारियों का अपमान एवं उनका शोषण मन्दिरों एवं देवालयों में किया जा रहा है। यह प्रथा मानव सभ्यता एवं संस्कृति को कलंकित कर रही है। यही नहीं देश में दलित एवं पिछड़े वर्ग की नारियों के प्रति कितना क्रूर अपमान और नारी समाज के मान सम्मान एवं लज्जा को तार-तार कर देने वाला "रुद्रयामल तंत्र" का निम्नलिखित बयान है—

‘रजस्वला पुष्करं तीर्थ, चण्डाली तु स्वयं काशी,

चर्मकारी प्रयागः स्याद्रज की मथुरा माता, अयोया पुकसा प्रवक्ता।’

अर्थात् रजस्वला से सम्भोग करने से पुष्कर जाने का फल, चाण्डाली से समागम करने से काशी यात्रा का फल, चमारिन के साथ सम्भोग करने पर प्रयाग स्नान का फल, धोबिन से समागम करने से मथुरा यात्रा और मंजरी के साथ व्यक्तित्व करने पर अयोध्या तीर्थ का फल प्राप्त होता है। उक्त धार्मिक मान्यताओं से दलित एवं पिछड़े वर्ग की महिलाओं की गरिमा एवं लज्जा सदैव के लिए असुरक्षित बना दिया गया है (उक्त संदर्भ 'शोसल ब्रेन वाश' मार्च/अप्रैल, 2012 के अंक पृष्ठ 15, 16 से लिया गया है)

इन सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताओं के रहते हुए समाज में नारियों की सुरक्षा नहीं हो सकती। अतः इनका विरोध ही नहीं बल्कि इन्हें प्रतिबन्धित किया जाना चाहिए। दुख है कि इन सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताओं का विरोध नहीं किया जा रहा है और किसी एक महिला के साथ बलात्कार होने की दशा में पूरे देश में कैंडल मार्च निकाला जाता है, वह भी दलित एवं पिछड़ों की महिलाओं के लिए नहीं। नारियां स्वयं सदियों पुरानी रुढ़ियों की जन्जीरों में आज भी जकड़ी हुई हैं। इनसे मुक्त हुए बिना नारियों की गरिमा एवं लज्जा का संरक्षण नहीं हो सकता है।

भगवान बुद्ध ने समाज में महिलाओं की स्थिति को नजदीक से देखा और पाया कि सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं पारिवारिक परिवेश में नारी की स्थिति अत्यन्त ही सोचनीय, अपमानजनक एवं दयनीय है। भगवान बुद्ध की करुणा, मैत्री एवं मुदिता नारियों के कल्याण के लिए खुला था। उन्होंने सर्वप्रथम छूआ-छूत पर प्रहार किया। महास्थविर आनन्द द्वारा प्रकृति नामक चाण्डाल के हाथों से पानी ग्रहण करना उनके अस्मिता को स्थापित करने का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। उन्होंने अंधविश्वास, पशुबली से सम्पन्न किए जाने वाले बड़े-बड़े यज्ञों एवं हवनों पर रोक लगाया और कहा कि हत्या करना, हत्या करने की स्वीकृति एवं समर्थन करना महापाप है। सदियों से प्रचलित सती प्रथा पर रोक लगायी। भिक्षु संघ को समस्त नारियों के लिए खोल दिया। इस प्रकार सदियों से नारियों के सामाजिक एवं धार्मिक दासता की बेड़ियां टूटीं और नारियों का सम्मान एवं गरिमामयी जीवन प्राप्त हुआ। बुद्धकालीन भारत में महिलाओं की सामाजिक स्थिति बेहतर थी। भगवान बुद्ध ने नारियों के प्रति निष्कृष्ट एवं समस्त अमानवीय व्यवस्था को अमान्य कर उनके गरिमामय जीवन को प्रशस्त किया। उन्होंने अविद्या एवं दुःख से मुक्ति के लिए पुरुष एवं स्त्री में कोई भेदभाव नहीं किया।

विश्व के मानव इतिहास में बौद्ध धर्म ऐसा सर्वप्रथम धर्म था जिसने महिलाओं को धर्म दीक्षा का अधिकार दिया। बुद्ध ने सभी के लिए समानता का उपदेश दिया और उसका व्यवहार में पालन भी किया। उन्होंने सर्व प्रथम नारियों के लिए एक पृथक एवं स्वतंत्र भिक्षुणी संघ की स्थापना की। बुद्ध परिषद एवं संघ में नारियों को पुरुषों के समान बराबर का सम्मान एवं दर्जा प्रदान किया। भिक्षुओं के समान भिक्षुणियों को भी समान रूप से घम्स देशना का अधिकार प्राप्त था। उन्होंने कौशल नरेश प्रसेनजीत को बताया कि पुत्रियाँ पुत्रों से बेहतर आगे निकल सकती

हैं। इनमें किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए। इस प्रकार अब तक जो नारी समाज में पुरुष की भोग सामग्री, बच्चे पैदा करने वाली और चौके-चूल्हे तक सीमित रहने वाली गूंगी एवं बेसहारा समझी जाती थी, भगवान बुद्ध ने उन्हें सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आजादी प्रदान कर नारियों के महान उद्धारक होने का गौरव प्राप्त किया। आज जो चारों ओर नारियों की प्रगति का दौर चल रहा है उसके केन्द्र बिन्दु में भगवान बुद्ध का धर्म है और उनकी सोच है। वर्तमान समय में जो महिलाएं समाज के अनेक क्षेत्रों में पुरुषों से जो बेहतर सेवा दे रही हैं, और विभिन्न क्षेत्रों में अपनी उत्कृष्ट सहभागिता दे रही हैं, इसके पीछे आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व भगवान बुद्ध द्वारा समाज में नारियों को समानता का व्यवहार देने का साहसिक एवं ऐतिहासिक कदम का ही परिणाम है।

वैदिक कालीन नारियां शिक्षा, पठन-पाठन, धार्मिक अनुष्ठान, सामाजिक रीति-रिवाजों के सम्पादन से पूर्णतः वंचित थीं। चारों ओर वर्ण व्यवस्था पर आधारित अशिक्षा, अस्पृश्यता, असमानता का बोलबाला था। नारियों का जीवन अनेकों सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक अंधविश्वासों से त्रस्त था।

धार्मिक स्वतंत्रता-वैदिक काल में स्त्रियाँ के धार्मिक अधिकार नहीं थे। स्त्रियाँ धार्मिक क्रियाओं, अनुष्ठानों में भाग नहीं ले सकती थीं। इन्हें धार्मिक अधिकार एवं स्वतंत्रता नहीं थी। भगवान बुद्ध ने सर्वप्रथम स्त्रियों के भिक्षु संघ में प्रवेश करने का अधिकार प्रदान कर उन्हें धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की। भिक्षुओं के समान भिक्षुणियों को भी समान रूप से धर्म देशना का अधिकार प्राप्त था। इस क्रम में बुद्धकालीन बुद्ध भिक्षुणियों एवं उपासिकाओं के नामों का उल्लेख करना समाचीन होगा। निम्नलिखित कुछ उदाहरण हैं :

भिक्षुणी महा प्रजापति गौतमी :-भिक्षुणी संघ में प्रथम भिक्षुणी बनने का पुण्य लाभ गौतम बुद्ध की माता महाप्रजापति गौतमी को जाता है। महाप्रजापति गौतमी का भिक्षुणी बनना इतिहास की मात्र एक घटना नहीं थी, वरन यह नारी जाति की त्रासदी पूर्ण तथा दासतापूर्ण दुःखी जीवन की परतंत्रता के बन्धन को तोड़कर नारियों को समाज में बराबरी और गरिमामय जीवन देने का महान क्रान्तिकारी युग का प्रारम्भ का उद्घोष था। इसके पीछे भगवान बुद्ध का समाज में प्रचलित स्त्रियों के सामाजिक कलंक को समाप्त करने का दृढ़ संकल्प था।

भिक्षुणी यशोधरा :-भिक्षुणी संघ में प्रवेश करने के क्रम में द्वितीय स्थान भगवान बुद्ध की धर्मपत्नी यशोधरा का आता है। यशोधरा भी महाप्रजापति गौतमी का अनुसरण करके भगवान बुद्ध के समय में ही भिक्षुणी बन गयी तथा अल्प समय में ही अपनी साधना व बुद्ध धर्म-संघ में श्रद्धा एवं समाज से अर्हत को प्राप्त हुई।

भिक्षुणी क्षेमा (खेमा) :-इसके पश्चात् भिक्षुणीसंघ में प्रवेश करने का गौरव तत्कालीन मगध के महान राजा व बौद्ध धर्म के महान उपासक बिम्बिसार की प्रमुख रानी क्षेमा को है। रानी क्षेमा ने चार आर्य सत्य व अनित्य की सच्चाई को समझकर भिक्षुणी बनने की याचना भगवान बुद्ध से किया। भगवान बुद्ध ने उसके पति राजा बिम्बिसार की अनुमति से धम्म से प्रवर्जित कर भिक्षुणी संघ में सम्मिलित कर लिया। अपनी प्रज्ञा के बल पर सभी भिक्षुणियों में उत्कृष्टता के आधार पर भगवान बुद्ध की प्रथम अग्रश्राविका बनने का गौरव प्राप्त किया।

भिक्षुणी उत्पलवर्णा :-उत्पलवर्णा (उत्पलवर्णा) श्रावस्ती के एक श्रेष्ठ कुल की अति सुन्दर पुत्री थी। वह इतनी सुन्दर थी कि उसकी छवि व रूप नीले कमल जैसा होने के कारण उसका नाम उत्पलवर्णा रखा गया था। उसकी सुन्दरता के शोहरत से उस समय के सभी राजा एवं महाराजाओं ने उससे विवाह के प्रस्ताव एवं संदेश भेजा था। वह किससे विवाह करे और ऐसा करके किस-किस से वैरभाव मोल ले, इस डर से उसने सुखद निवारण के लिए घरबार छोड़कर वह भिक्षुणी संघ में प्रवर्जित हो गयी और उसने साधना के माध्यम से अर्हत प्राप्त करके सिद्धि बल में विशिष्ट स्थान पा लिया तथा भगवान बुद्ध की द्वितीय अग्रश्राविका बनने का उसे सौभाग्य प्राप्त हुआ।

भगवान बुद्ध ने भिक्षुणी संघ में केवल राजा, महाराजों एवं सम्भ्रान्त कुलकी रानी एवं महारानियों के ही सम्मिलित नहीं किया परन्तु समान रूप से समाज के दीन-हीन एवं अत्यन्त बेसहारा स्त्रियों को भी भिक्षुणी संघ

में सम्मिलित किया। यहाँ तक कि तत्कालीन समाज के द्वारा ठुकराई गयी स्त्रियों, गणिका, नगरवधु बनाई गयी वेश्याओं तथा घृणा की दृष्टि से देखी जानी वाली महिलाओं को भी भिक्षुणी संघ में सम्मिलित कर नारी सम्मान और गरिमा को स्थापित करने का महान कार्य भगवान बुद्ध ने किया था। उदाहरण के लिए—

भिक्षुणी पट्टाचारा :-श्रावस्ती के एक धनवान श्रेष्ठ कुल की सुन्दर पुत्री थी जिसने अपने माता-पिता की इच्छा के विपरीत अपने तरुण सेवक से विवाह कर घर छोड़ दिया था। उसके दो पुत्र हुए। एक दिन उसके पति को एक विषैले सर्प ने डस लिया। जब वह रोती पिटती अपने पिता के घर जा रही थी तो उसके नवजात बालक को बाज उठाकर ले गया तथा दूसरा बालक नदी में डूब कर मर गया। उसके माता-पिता की भी असमायिक मृत्यु हो गयी। इतने दुखों ने उसे पागल बना दिया लोग उसे देखकर पागल है, पागल है कहकर उसे दुतकारते और भगाते थे। एक दिन भगवान बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन में धर्म देशना कर रहे थे। बिहार की ओर पटाचार को आते देख समस्त श्रावकगण उसे पागल समझकर आने से रोकना चाहे। भगवान ने ऐसा करने से मना किया और उसे आने दिया। जब वह समीप आयी तो शास्ता ने कहा, बहन अपनी वास्तविकता याद करो। तब उसे ध्यान आया कि वह बिल्कुल नग्न है उसे बहुत लज्जा एवं संकोच हुआ। भगवान बुद्ध ने उसके शरीर पर चिवर (वस्त्र) फेंक कर उसके नग्न बदन को ढकने का प्रयास किए। वहाँ पर वह भगवान के शरणागत हो गयी और उसे धर्म में प्रवर्जित कर भिक्षुणी बना दिया। अल्प समय में वह अर्हत को प्राप्त हो गयी।

भिक्षुणी कृषा गौतमी :-कृष्ण गौतम एक धनवान श्रेष्ठ की पत्नि थी। उसके एक मात्र पुत्र का बचपन में मृत्यु हो गयी। कृष्ण गौतमी ने इसके पूर्व मृत्यु नहीं देखी थी। अतः उसने मृत बालक के शव को जलाने के लिए शमशान ले जाने से मना कर दिया। मृत बालक को गोद में लेकर इधर-उधर जिन्दा कराने के लिए दर-दर भटकने लगी और जिन्दा कराने के लिए वैद्य को ढूँढ़ने लगी। एक विद्वान व्यक्ति ने उसके इस मनस्थिति को देखकर उसने भगवान बुद्ध को वैद्य बताकर उनके पास जाने के लिए पता बताया। उसने भगवान बुद्ध के पास पहुँच कर अपने मृत बेटे को जिन्दा करने की बात कही। बुद्ध ने किसी के वहाँ से चुटकी भर सरसों लाने को कहा जिसके घर में कभी मृत्यु न हुई हो। वह मृत पुत्र को गोद में लेकर घर घर घूमी पर कोई भी घर उसे ऐसा नहीं मिला जहाँ कोई मरा न हो। अन्त में उसे यह समझ में आया कि वह कहीं भूल कर रही है। यहाँ केवल मेरा पुत्र ही नहीं मरा है, यहाँ तो सभी के मरते व मरे हैं। ऐसा सोच उसने मृत बेटे को जंगल में छोड़कर भगवान बुद्ध के पास जाकर प्रणाम कर बैठ गयी। जब भगवान बुद्ध ने पूछा कि क्या तुम्हें चुटकी भर सरसों मिली ? नहीं भन्ते—समस्त गाँव में मरने वालों की संख्या अधिक है। भगवान बुद्ध ने कहा कि तुम समझती हो कि केवल तुम्हारा ही बेटा मरा है, ऐसा नहीं है, मरना तो प्राणियों का नित्य धर्म है। यह मृत्युराज सभी प्राणियों को उनके संकल्पों के अपूर्ण रहते ही बाढ़ की तरह नरक समुद्र की ओर बहा ले जाता है। इस धर्म देशना के बाद कृष्ण गौतमी प्रवर्जित होकर भिक्षुणी संघ में सम्मिलित हो गयी।

भिक्षुणी अम्बपाली (आम्रपाली) :-अम्बपाली वैशाली की नगर वधू गणिका के रूप में अत्यन्त सुन्दरी थी। राजा-महाराजा उसकी सुन्दरता पर अपना स्व न्यौछावर करने को तैयार रहते थे। एक बार भगवान बुद्ध विशाल भिक्षुसंघ के साथ उसके आम्रवन में ठहरे थे। जब उसे यह पता चला तो वह सज धज कर रथ पर सवार होकर आम्रवन पहुँचकर भिक्षुसंघ को सादर सम्मान के साथ प्रणाम किया और अपना परिचय वैशाली की नगर वधू अम्बपाली के रूप में दिया और अगले दिन के लिए भिक्षुसंघ को दिन के भोजन के लिए निमंत्रण स्वीकार करने की करबद्ध प्रार्थना की। भगवान बुद्ध ने तुरन्त मौन स्वीकृति प्रदान कर दी। उधर वैशाली के राजकुमार भी भगवान बुद्ध और उनके भिक्षु संघ को अगले दिन भोजन पर आमंत्रित करने के लिए आ रहे थे। उन्होंने रास्ते में आम्रवन की ओर से अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा में अम्बपाली को आते देख पूछा—अम्बपाली तू वहाँ गयी थी ? उसने हंस कर उत्तर दिया मैं बुद्ध प्रमुख भिक्षुसंघ के दर्शन करके उनको कल के दोपहर का भोजन का निमंत्रण देकर आ रही हूँ। वैशाली

के राजकुमारों ने भगवान बुद्ध के पास जाकर उनको विधिवत प्रणाम करके कहा कि क्या भगवान बुद्ध कल वैशाली की गणिका अम्बपाली के वहां पूजनीय भिक्षुसंघ सहित भोजन पर जायेंगे ? भगवान बुद्ध द्वारा हाँ में उत्तर दिये जाने को सुनकर वे आश्चर्यचकित होकर बोले भगवान वह एक नीच, पतित, दुश्चरित्र स्वभाव वाली बदनाम गणिका है। उसके यहां भगवान कदापि न जायें। भगवान बुद्ध ने कहा—मैं अम्बपाली के विषय में यह सब कुछ जानता हूँ। मैं उसे दिये गये वचन को वापस नहीं ले सकता। इससे निराश होकर उन राजकुमारों ने अपने रथ पीछे घुमाकर अम्बपाली का पीछा करते हुये उसके समीप पहुँच कर कहा—अम्बपाली तू कल बुद्ध प्रमुख भिक्षुसंघ को भोजन दान देने का अति पुण्य अवसर हमें, वैशाली के आधा राज्य के बदले में दे दो। अम्बपाली ने कहा कि आधा तो क्या सम्पूर्ण वैशाली राज्य की कीमत पर भी मैं ऐसा नहीं करूंगी। बहुत दिनों के बाद इस नरकमय जीवन से मुक्ति पाने का मुझे यह स्वर्ण अवसर मिला है। अगले दिन अम्बपाली में बुद्ध प्रमुख भिक्षुसंघ को अपने आवास पर परम श्रद्धा, सम्मान एवं बुद्ध धम्म एवं संघ में समर्पण सहित अति स्वादिष्ट व रुचिकर व्यंजनों से युक्त भोजन खिलाकर भिक्षु संघ को संतुष्ट किया तथा भिक्षु संघ को अपार श्रद्धा से चार प्रत्ययों का दान भी दिया। तदनंतर उसने भगवान बुद्ध तथा भिक्षु संघ को अपना अति मनमोहक, रमणीक व आकर्षक आम्रवन दान में दे दिया और भगवान बुद्ध से भिक्षुणी संघ में प्रवर्जित करने की याचना की। भगवान बुद्ध ने इसे स्वीकार कर अम्बपाली को काशाय वस्त्र पहनाकर भिक्षुणी संघ में दीक्षा देने की अनुमति प्रदान की।

विमल स्थाबिराभिक्षुणी :—विमल स्थबिरा एक मशहूर वेश्या थी। अपनी सुन्दरता से भद्र पुरुषों की पसन्द होने के कारण वह अन्य किसी स्त्री का सम्मान नहीं करती थी। भगवान बुद्ध के धर्मोपदेश को सुनने के पश्चात् वैश्यावृत्ति से निवृत्त होकर भिक्षुणी बन गयी।

बुद्धकालीन तथा उसके अनन्तर भिक्षुणियों की संख्या अनगिनत है जिसमें प्रमुख रूप से युक्ता शिक्षामाणा, पूर्णा, तिष्या, विशाखा, सुमन्य, उत्तरा, सुमंगलमाता, सोमा, सुन्दरीनन्दा, नन्दोत्तरा, मित्राकाली, सुजाता, अनुपमा, गुप्ता, विजया, चाला, उपचाला, पूर्णा, रेहिणी, सुमेधा, धम्मदिन्ना आदि भिक्षुणी हैं। भिक्षुणी संघ के ही समान गृहस्थों के कल्याण के लिए भगवान बुद्ध ने उपासिका संघ भी सीमित किये थे। कुछ प्रमुख उपासिकाओं में से विशाखा (मिगारमाता), सुप्रिया, दिव्या, दिव्यामन्ता, उत्तरा, मुक्ता आदि थी।

उक्त से स्पष्ट है कि नारी समाज को जीवन के हर क्षेत्र में बराबरी और समानता का दर्जा देने का साहसिक एवं ऐतिहासिक कदम बुद्ध कालीन भारत में था। यह सत्य है कि यदि समाज में नारी की उक्त स्थिति कायम रहती तो आज नारियों की समाज में दयनीय एवं बदतर स्थिति नहीं होती।



वर्तमान समय में महाभारत द्वारा ग्राह्य सामाजिक सन्देश : एक विवेचन

डॉ. गीता शुक्ला

रीडर, संस्कृत-विभाग

भ. दी. आ. क. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखीमपुर-खीरी

महत्त्वाद् भारवत्वाच्च महाभारतमुच्यते ।।¹

महत्त्व एवं गौरव के कारण ही महाभारत को महाभारत कहते हैं महान् चासौ भारतम् इति महाभारतम् व्युत्पत्ति से महाभारत की विशालता स्पष्ट है। महाभारत के आरम्भ में ही व्यास जी कहते हैं कि –

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।

देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ।।²

महाभारत के विकास के तीन सोपान हैं –

1. जय-धर्मचर्चा के अवसर पर वैशम्पायन को व्यास द्वारा सुनाए गए 'जय' में 8800 श्लोक थे।

'जयनामेतिहासोऽयम्'³ महाभारत

2. भारत-नागयज्ञ के अवसर पर वैशम्पायन ने जनमेजय को सुनाया। आदिपर्व में उल्लेख है कि

चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम् ।

उपाख्यानैर्बिना तावत् भारतं प्रोच्यते बुधैः ।।⁴

3. महाभारत- तदनन्तर आख्यानो उपाख्यानों सहित एक लाख श्लोकों से युक्त महाभारत, जिसे

'शतसाहस्रीसंहिता' भी कहते हैं। जिसे लोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा सौति ने नैमिषारण्य में यज्ञ के अवसर पर शौनकादि ऋषियों को सुनाया था।⁵

महाभारत में अट्ठारह पर्व हैं—

आदि, सभा, वन, विराट, उद्योग, भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री, शान्ति, अनुशासन, अश्वमेध, आश्रमवासी, मौसल, महाप्रस्थानिक, स्वर्गारोहण महाभारत की रचना में तीन वर्ष का समय लगा था ऐसा कहा गया है कि—

त्रिभिर्वर्षैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।

महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमुत्तमम् ।।⁶

डॉ० जी० सी० पाण्डेय के शब्दों में—“महाभारत में विभिन्न सांस्कृतिक परिवेशों का उदार संकलन है। महाभारत एक महाकाव्य है और महाकाव्य एक ऐसी साहित्यिक विधा है जो सतत् विकासशील है। महाकाव्यों में व्यक्ति, समाज और साहित्य को देने के लिये बहुत कुछ है। इनमें प्रतिभा का विस्तार, अभिव्यक्ति की उच्चता, बुद्धि की सूक्ष्मता और संश्लिष्टता सब कुछ जीवन्त प्रतीकों के रूप में परिपलक्षित होता है। वर्तमान समय में महाकाव्यों की सृजनशीलता में कमी आई है परन्तु कई प्राचीन महाकाव्य इस कमी की पूर्ति करने में सक्षम हैं।

प्रामाणिक व साहित्यिक के रूप में महाकाव्यों की दो श्रेणियाँ हैं। प्रथम श्रेणी के महाकाव्य अर्थात् प्रामाणिक महाकाव्य किसी विशेष आदर्श को लेकर चलते हैं और इसके आधार होते हैं—

‘समाज की वर्तमान समस्या परम्परा एवं प्रचलन’। ‘रामायण’ एवं ‘महाभारत’ इसी के अन्तर्गत आते हैं। साहित्य समालोचकों का मानना है कि महाकाव्यों का उद्देश्य जीवन-मूल्यों का निर्माण होना चाहिए।

आर्ष परम्परा के प्रख्यात प्रतिनिधि महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास का वैदुष्य-ज्ञान महाभारत के रूप में सम्पूर्ण विश्व को अनुप्राणित कर रहा है। भारतीय परम्परा द्वारा महर्षि व्यास की गणना सप्तचिरंजीवियों में की जाती है।⁷

सर्वेशां कविमुख्यानमुपजीव्यो भारतद्रुग।⁸

रामायण एवं महाभारत न केवल आर्षकाव्य हैं अपितु परवर्ती साहित्य के उपजीव्य हैं।

इनमें भारतीय संस्कृति का जो भव्य निदर्शन है वह अन्यत्र दुर्लभ है। महाभारत में जीवन शैली की समग्र और यथार्थ प्रस्तुति है इसमें विविध परिस्थितियों, परम्पराओं व विचारधाराओं की प्रचुर सामग्री संग्रहीत है। जैसे— धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं आर्थिक। इसकी मान्यताएँ शाश्वत अर्थात् सार्वकालिक और सार्वदेशिक हैं। महाभारत केवल तत्कालीन जीवनमूल्यों व घटनाओं का ही अवलोकन नहीं कराता अपितु आज भी अत्यन्त प्रासंगिक है और भविष्य में भी रहेगा क्योंकि महाभारत में प्राचीन वृहत्तर भारत का प्रामाणिक-सामाजिक इतिहास सुरक्षित है।

ऋषियों के ज्ञान की गम्भीरता असंदिग्ध है। तभी तो कहा गया है कि — “ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोनुधावति”⁹ ऋषियों का ज्ञान वर्तमान के साथ ही भूत और भविष्य की प्रतीति से प्रत्यय युक्त भी रहता है। महर्षि व्यास का महाभारत विषय की व्यापकता, आकार की विशालता और लोकप्रियता में सर्वथा अद्वितीय है। महाभारतकार का यह कथन सर्वथा उचित ही है कि “जो इसमें है वह अन्यत्र भी है किन्तु जो इसमें नहीं है वह कहीं भी नहीं है।”¹⁰ महाभारत युग-युगों से सुचिन्तित जीवन की सर्वांगीण व्याख्या का एकमात्र प्रतिनिधि ग्रन्थ है जो लगभग दो शताब्दियों पूर्व से विश्व के द्विद्वर्ग की विचारणा का विषय बना हुआ है।

वस्तुतः महाभारत में श्रीकृष्ण के माहात्म्य, तथा पाण्डवों की वीरता, व उनकी सद्वृत्ति, तथा कौरवों के दुश्चरित्र का वर्णन है। परन्तु अनेक उपाख्यानों के मिल जाने से नीति और धर्म के अनेक प्रकरणों के समविष्ट हो जाने से, भूगोल, इतिहास व दर्शन की अतुलनीय सामग्री एकत्र हो जाने से ‘महाभारत’ भारतीय ज्ञान का विश्वकोश बन गया है।

अर्थशास्त्रमिदं प्रोक्तं धर्मशास्त्रमिदं महत्।

कामशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामित बुद्धिना।¹¹

इस प्रकार ‘महाभारत’ भारतीय ज्ञान का प्रतिपाद्य है।

प्रायः लोगों का यह भ्रम है कि महाभारत पढ़ने से या महाभारत घर में रखने से आपस में महाभारत (लड़ाई-झगड़ा) होता है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है बल्कि यह अपने विशालकाय आकार के कारण तथा उक्त मिथक के कारण प्रायः घरों में उपलब्ध नहीं होता है। जबकि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष अर्थात् पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति हेतु महाभारत से बढ़कर दूसरा ग्रन्थ नहीं है। एक ओर राजनीति का विषद वर्णन, और दूसरी ओर नैतिक-आचरण का क्रियात्मक विवेचन तथा तीसरी ओर ऋषियों, देवी-देवताओं, वीर एवं धार्मिक राजाओं का यशोगान और कौरवों-पाण्डवों की नीति-अनीति का व्याख्यान महाभारत का प्रतिपाद्य है।

महाभारत के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि आदिपर्व में महाभारत का सम्पूर्ण परिचय प्राप्त होता है जो कि उसके महत्व का भी परिचायक है। महत्त्व की दृष्टि से ही महाभारत को ‘पंचमवेद’ व ‘विश्वकोश’ की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। यदि कोई संस्कारवान् मनुष्य सभी अंगों सहित वेदों व उपनिषदों का ज्ञाता हो परन्तु महाभारत को न जानता हो तो उसे विलक्षण नहीं कहा जा सकता।

यो विद्या चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः ।

न चाख्यानमिदं विद्यानैव स स्याद्विचक्षणः ।¹²

इस प्रकार महाभारत का ऐतिहासिक¹³ साहित्यिक¹⁴ धार्मिक¹⁵ व सांस्कृतिक महत्व यह प्रमाणित करता है कि महाभारत का जीवन-दर्शन आज भी अनुकरणीय है। महाभारत की प्रत्येक घटना अच्छी हो या बुरी कुछ न कुछ सिखाती है क्योंकि महाभारत एक ऐसे संधिपत्र के समान है जिसमें वैदिक और लौकिक दोनों युगों के प्रतिनिधि ज्ञान-प्रवण मनस्वियों के सशक्त हस्ताक्षर हैं। वर्तमान समय में हो रहे पारिवारिक-विघटन, सामाजिक उथल-पुथल, भ्रष्ट राजनीति, पारिवारिक सम्बन्ध आदि विविध ऐसे पहलू हैं, जिन्हें महाभारत की घटनाओं से शिक्षा प्राप्त करके ठीक किया जा सकता है क्योंकि महाभारत सामाजिक तथा सांस्कृतिक चेतना का प्रतिनिधि ग्रन्थ है।

महाभारत पर चाहे जिस दृष्टि से विचार किया जाय इसमें इतने उच्चादर्श समाहित है जिन्हें जितना भी महत्व दिया जाय कम है। यद्यपि युद्ध इसके कथानक का केन्द्र बिन्दु है अतः प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या युद्ध बहुत अच्छी बात है? स्वाभाविक है कि उत्तर होगा 'नहीं'। पुनः प्रश्न उत्पन्न होता कि तो फिर युद्ध की घटना में क्या अनुकरणीय है? उत्तर बिल्कुल स्पष्ट है क्योंकि कौरवों और पाण्डवों में बाल्यकाल से ही जिस शत्रुता का बीजारोपण हुआ था उसकी परिणति युद्ध है। अतः ग्राह्य तथ्य है कि परिवार में बचपन से ही बच्चों में पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष, नहीं पनपने देना चाहिए। भीष्म और दुर्योधन की जिस बाल्यकालीन शत्रुता को विदुर व कृष्ण जैसे व्यक्तित्व सुलझा नहीं सके थे वैसे ही भावी दुष्परिणाम को उस इकाई का मुखिया सुलझाने में समर्थ नहीं होगा जिसमें बच्चों में वैमनस्य उत्पन्न हो जाएगा। युद्ध केवल एक समस्या नहीं अपितु अनेक समस्याओं की जड़ है। "निश्चय ही युद्ध प्रशंसनीय नहीं है। यह क्रूर और निन्दित कर्म है, किन्तु इसका दायित्व किस पर होना चाहिए? उस पर जो दुर्नीतियों का जाल बिछाकर प्रतीकार को आमन्त्रण देता है? या उस पर जो जाल को छिन्न-भिन्न कर देने के लिये आतुर है।"¹⁶ द्वन्द्वयुक्त इस जगत् में युद्ध तो चलता ही रहता है। अविवेक का विवेक से, आसुरी वृत्तियों का दैवी वृत्तियों से, दुःख का सुख से, उग्रता का सौम्यता से। युद्ध एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। सुखदुःखात्मक शरीर करणीय-अकरणीय के वैचारिक द्वन्द्व से युक्त रहता है। पाण्डवों की सौम्यता उनकी कायरता सिद्ध हुई। दुर्योधन की उग्रता चरम सीमा पर पहुँच गई कि "सूचिकाग्रं न दास्यामि"। परिणाम यह हुआ कि सहनशीलता धराशायी हो गई और शंखनाद हुआ कि 'हम अब पूरा राज्य लेकर ही रहेंगे।' तब श्री कृष्ण, विदुर व भीष्म ही नहीं अपितु दुर्योधन के सगे भाई विकर्ण ने भी नैतिकता का साथ दिया।

धर्म भारतीय संस्कृति का प्राण है, धर्म से राष्ट्र का अभ्युत्थान होता है। धर्म शाश्वत् है, चिरस्थायी है अतः इसे किसी भी दशा में त्यागना नहीं चाहिए। कहा भी गया है—

न जातु कामात्र भयान्न लोभात्,

धर्म त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।

धर्मो नित्यः सुख-दुःख त्वनित्ये,

जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ।¹⁷

"यतो धर्मस्ततो जयः" अर्थात् जहाँ धर्म है वहीं विजय है। आज भी धर्म-पालन सामाजिक विकृतियों को दूर करने में समर्थ है। वैदिक धर्म, (सनातन धर्म) का सर्वांगीण प्रतिपादन महाभारत में हुआ है अर्थात् वर्णाश्रम धर्म, राजधर्म, आपद्धर्म, दानधर्म, श्राद्धधर्म, स्त्रीधर्म, मोक्षधर्म आदि धर्म के प्रायः सभी अंगों का निरूपण हुआ है। जिन्हें शस्त्र वेद पढ़ने की आज्ञा नहीं देते वे वेदों के महत्वपूर्ण ज्ञान से वंचित रह न जायें। अतः व्यास जी ने उनके लिये महाभारत की रचना की।

निःसंदेह महाभारत में युद्धवर्णन गौण है तथा सत्योन्मीलन व मानव-पथ-प्रदर्शन प्रमुख उद्देश्य है।

महाभारत में मानवता का विषय-निरूपण हुआ है मानवता का उन्नायक तत्व पुरुषार्थ ही है महाभारत के अनुसार यह सिद्धान्त 'पणिवाद' के नाम से विख्यात है इस जगत् में जिन लोगों के पास हाथ है, जो कर्म में दक्ष तथा उत्साही हैं उनके सब अर्थ सिद्ध होते हैं।

मानव जीवन में कृतकार्यता हाथ पर हाथ रखने में नहीं हस्त संचालन में ही है। हाथ पर हाथ रखकर जीवन बिताना पशुत्व का व्यञ्जक है इसमें मानव की सिद्धार्थता नहीं है—

अहो! सिद्धार्थता तेषां येषां सन्तीह पाणयः।

अतीव स्पृहये तेषां येषां सन्तीह पाणयः।।

न पाणिनाभादधिको लाभः कश्चन् विद्यते।¹⁸

यही वर्तमान में अनुकरणीय है क्योंकि मनुष्य का वास्तविक परिचय उसके समाज द्वारा ही होता है। मनुष्य 'व्यष्टि' है और समाज 'समष्टि'। मनुष्यों का समूह समाज है। मनुष्य और समाज अन्योन्याश्रित हैं। मनुष्यों के बिना समाज नहीं हो सकता है और समाज से पृथक् होकर मनुष्य नहीं रह सकता। 'man is a wise animal' अर्थात् 'मनुष्य एक बुद्धिमान पशु है' इस उक्ति से उसकी सहज प्रवृत्तियाँ प्रकट होती हैं क्योंकि आज भी वह क्रोध में या फिर आत्म रक्षार्थ अपने दाँतों व नाखूनों का प्रयोग शस्त्र के रूप में करता है। सांख्यदर्शन के अनुसार—“बुद्धि के सात्विक रूपों में एक धर्म भी है।”

अध्यवसायो बुद्धिः, धर्मो ज्ञानं विराग ऐश्वर्यम्।¹⁹

‘धर्म ही मनुष्य को पशु से पृथक् करने वाली विभाजक रेखा है अथवा भेदक तत्व है।’ कहा भी गया है—

“आहारनिद्राभयमैथुनं च ——— धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।”

इस प्रकार महाभारत से धर्म-पालन ग्राह्य है। तत्कालीन अनेक धार्मिक व सामाजिक आचार-व्यवहार आज भी भारतीय समाज में विद्यमान हैं। महाभारत के पात्र वर्तमान संसार के पात्रों (मनुष्यों) से पृथक् नहीं हैं। ईश्वर का अवतार होने पर भी महाभारत में श्रीकृष्ण का अवतरण मानव को मानव बने रहने का ज्ञान प्रदान करता है। एक दो पात्रों को छोड़कर मानवीय दुर्बलताएँ सभी में विद्यमान हैं। महाभारत इस दृष्टि से भी प्रासंगिक है कि ‘पराकाष्ठा’ चाहे युधिष्ठिर जैसी हो चाहे दुर्योधन जैसी, दोनों ही प्रकार की अनुचित है। कहा भी गया है कि—

“अति सर्वथा वर्जयेत्”

व्यक्ति-परिवार-समाज इस क्रम से समाज की एक इकाई परिवार है। महाभारत की कई पारिवारिक घटनाएँ ग्राह्य इस दृष्टि से भी हैं कि ‘कभी किसी परिवार में इस प्रकार का महाभारत न हो’। महाभारतकालीन परिवार भी वर्तमानकालीन परिवार से भिन्न न था आज भी अधिकांश परिवार तत्कालीन परिवार जैसे ही हैं। महाभारत में कहा गया है कि— “यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तदेवेतरो जनः”।²⁰ अर्थात् श्रेष्ठ जन जैसा आचरण करते हैं, शेष सदस्य भी उसी का अनुसरण करते हैं। महाभारतकालीन परिवार में गुरुजन परम श्रद्धा के पात्र थे तीर्थ के समान पूज्य थे। “तीर्थानां गुरुवस्तीर्थम्।”

परन्तु क्या आज घर के बड़े बूढ़ों को वैसा सम्मान परिवार में प्राप्त है? यदि नहीं तो इसे महाभारत में ग्रहण किया जाना चाहिए कि ‘पुत्र का यह पवित्र कर्तव्य है कि वह सर्वतोभावेन अपने गुरुजनों अर्थात् माता पिता आदि की सेवा करें’।²² क्या वर्तमान में बुजुर्गों की स्थिति सुधारने हेतु पर्याप्त नहीं है? वैदिककालीन सभ्यता में पितृ सत्तात्मक परिवारों का उल्लेख उपलब्ध होता है। पिता के आभाव में बड़े भाई को पितृवत् आदर व सम्मान प्रदान किया जाता था। महाभारत में युधिष्ठिर (ज्येष्ठ भ्राता) पितृतुल्य है।²³ युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयों का भ्रातृप्रेम अनुकरणीय है। युधिष्ठिर के अनुचित निर्णयों का भी विरोध न कर पाना आदर्श भ्रातृप्रेम का ज्ञापक है। साथ ही भीष्म पितामाह द्वारा उपदेश दिया गया है कि ज्येष्ठ भ्राता भी दीर्घदर्शी होना चाहिए। दोनों के सद्भाव से ही कुल

उज्ज्वल होता है तथा पारस्परिक वैभनस्य से वंश का गौरव क्षीण होता है।²⁴ इस प्रकार महाभारत में परिवार के सभी भाइयों को परस्पर मिल जुल कर रहने की शिक्षा दी गई है। जो आज भी अनुकरणीय है।

पैतृक सम्पत्ति का विभाजन अनर्थ का हेतु बनता है। यह शिक्षा संयुक्त परिवारों को एकल परिवार में विभक्त करने से रोकने में सहायक है। बड़े भाई की पत्नी को माता के समान माने जाने का उदाहरण कुन्ती को विदुर के द्वारा तेरह वर्ष तक ससम्मान अपने यहाँ रखा जाना है। छोटे भाई की पत्नी के साथ शालीन व्यवहार का उदाहरण स्वयं धृतराष्ट्र हैं क्योंकि धृतराष्ट्र सदैव कुन्ती के प्रति शालीन रहे। यह भी एक अनुकरणीय बिन्दु है। हाँ दुर्योधन व द्रौपदी का सम्बन्ध एक प्रश्न है? किन्तु द्रौपदी के द्वारा किया गया हास ही उसके अपमान का कारण बना। इस घटना में भी अनुकरणीयता है क्योंकि अपने घर बुलाकर अपने जेट (ज्येष्ठ) का उपहास क्या मर्यादा के अनुकूल है? या हमारी संस्कृति के अनुरूप है?

महाभारत में अतिथि व पोष्य वर्ग को भोजन कराने के उपरान्त भोजन करने वाले गृहस्थ को अमृताषी (अमृतभोगी) कहा जाता है। आचार्य की पूजा से ब्रह्मलोक, माता पिता की भक्ति से प्रजापति लोक, अतिथि सेवा से इन्द्रलोक तथा ऋत्विक् की पूजा करने से देवलोक प्राप्त होता है। “परिवार एवं सगे-सम्बन्धियों के भरण-पोषण से मिलने वाले आनन्द की तुलना में गृहस्थ के लिये स्वर्ग-सुख भी तुच्छ होता है”²⁵ पारस्परिक कलह से कौटुम्बिक शक्ति का क्षय होता है जबकि परस्पर सहानुभूति और सद्व्यवहार रखने से ज्ञाति-शक्ति विकसित होती है।²⁶ इस प्रकार अतिथि सत्कार एवं पारस्परिक एकता भी अनुकरणीय तथ्य है। यह पारस्परिक एकजुटता क्या वर्तमान समय में बाह्य आक्रमणों से भारत को बचाने में समर्थ नहीं है? परस्पर विरोधी मतों वाले राजनीतिक दलों को भी बाह्य आक्रमणों के समय एकजुट हो जाना चाहिये। दुर्योधन के दुराग्रह के कारण श्रीकृष्ण का शान्ति प्रयास सफल न हुआ। आज भी ऐसे हठी, दुराग्रही, स्वार्थी, कपटी, लोभी, व लम्पटों का विनाश अपेक्षित है। भ्रष्टाचारी राजा (शासक, नेता) त्याज्य है।

महाभारत के अनुसार—

भारतीय राजा सर्वतोभावेन प्रजा का हितचिन्तक तथा मंगलसाधक होता है राजनेता के लिए महाभारत एक विलक्षण आदर्श उपस्थित करता है जो आज भी उसी रूप में ग्राह्य है क्योंकि राजधर्म के बिगड़ने पर समाज तथा राष्ट्र का सर्वनाश हो जाता है।

राजमूलोमहाप्राज्ञ! धर्मो लोकस्य लक्ष्यते।

प्रजा राजभयादेन न खादन्ति परस्परम्।²⁷

कृषि प्रधान देश भारत में आज किसानों की स्थिति से कौन परिचित नहीं है? महाभारत के अनुसार— जो नेता स्वयं कृषि नहीं करता वह राष्ट्र की समिति में जाने का अधिकारी नहीं है—

न नः स समितिं गच्छेद् यश्च नो निर्वपेत् कृषिम्।²⁸

ठीक ही है क्योंकि यदि कृषकों का राजा (नेता) कृषि के विषय में नहीं जानता तो वह किसानों का क्या कल्याण कर सकता है?

अन्य सामाजिक व्यवहार भी अनुकरणीय हैं। जैसे—अभिवादन की परम्परा, कि “मातापितरमुत्थाय पूर्वमेवाभिवादयेत्।”²⁹ श्रेष्ठ गुण मानी जाती थी।³⁰ इष्ट सम्बन्धी के आने पर तथा प्रसन्नता आदि के अवसरों पर आनन्द व हर्ष की अभिव्यक्ति हाथ मिलाकर या अलिंगन करके की जाती थी।³¹ इसके अतिरिक्त महाभारत में विश्वास दिलाने अथवा प्रेरणा व उत्तेजना के लिये शपथों, प्रतिज्ञाओं व सौगन्धों के विविध प्रकार उपलब्ध होते हैं जिनसे वे कार्य सम्भव हो सके हैं जो सामान्य स्थिति में सम्भव नहीं थे। जैसे—“तद्दर्शय मयि क्षिप्र यदि जातोऽसि पाण्डुना।”³²

महाभारतकालीन समाज में “श्रेष्ठ व्यक्ति परस्पर सम्भाषण में भाषा के विशुद्ध शब्दों का प्रयोग करते थे

अपशब्दों का नहीं। प्रादेशिक, अस्पष्ट व असंगत शब्दों का प्रयोग करने वालों को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता था”।³³ परस्पर वार्तालाप ही व्यक्ति को मित्र व शत्रु बनाता है।

मानव जीवन में आर्जव (सीधा सरल आचरण) का नितांत महत्व है। जिह्म मार्ग (टेढ़ा रास्ता) मृत्यु स्वरूप बतलाया गया है।

सर्व जिह्मं मृत्युपदमार्जवं ब्रह्मणः पदम्।

एतावान् ज्ञानविषयः किं प्रलापः करिष्यति।।³⁴

उत्तम वाणी की महिमा तो साहित्य में सर्वत्र वर्णित है। लोक व्यवहार में भी वाक्कला, वाक्पदुता, वाक्चातुर्य व वाक्माधुर्य की महत्ता को नकारा नहीं जा सकता। हाँ उस समय अपने से बड़ों को तुम कहने की परम्परा थी पर अपमान के उद्देश्य से तो यह गर्हित है जबकि आत्मीयता को भी व्यक्त करती है। भक्त भगवान को अपनेपन में ही तुम कहकर सम्बोधित करता है। निष्कर्ष यह है कि यदि उसमें अवज्ञा का भाव नहीं तो कोई बात नहीं।³⁵ महाभारत में ‘कथनी से बड़ी करनी’ की शिक्षा मानव के लिए देते हुए कहा गया है कि—

उपदेशेन वर्तामि नानुशास्मीह कंचन्।।³⁶

कर्म से पराङ्मुख मानव, मानवपद से सदा वंचित रहता है।

प्रकाशलक्षण देवा मनुष्याः कर्मलक्षणा।³⁷

इस विशाल ब्रह्माण्ड में मनुष्य ही सबसे श्रेष्ठ है जिसके कल्याण के लिए पदार्थों की सृष्टि होती है तथा समाज की व्यवस्था की जाती है। समाजशास्त्रियों का यह सिद्धान्त कि ‘मनुष्य ही इस विश्व का केन्द्र हैं’ महाभारत के अधोलिखित कथन पर आधारित है—

गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि ।

नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचत्।।³⁸

महाभारत में स्त्रियों के स्वाभाविक गुण मृदुता व कोमलता आदि के साथ ही गृहिणी के कर्तव्य आदि भी वर्णित हैं³⁹ परन्तु स्त्रियों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी। तत्कालीन समाज में शिक्षा व्यावहारिक थी चरित्र—निर्माण शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य था। कहा गया है कि—

“ शीलं वृत्तं फलं श्रुतम् ”⁴⁰ सभी वर्णों में वर्णानुसार वृत्ति विभाजन था जो कि वर्तमान में असंतुलित है।

आहार—विषयक तथ्य भी अनुकरणीय हैं क्योंकि महाभारत में कहा गया है कि— “क्षुत् स्वादुतां जनयति”⁴¹ अर्थात् “ भूख लगने पर ही भोजन का स्वाद अच्छा लगता है”। इसके अतिरिक्त सात्त्विक राजस व तामस के भेद से खाद्य—अखाद्य आहार का विवेचन भी महाभारत में हुआ है जो कि आज भी स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। अन्यत्र भी कहा गया है कि “जैसा खाया अन्न वैसा बने मन” छान्दोग्य उपनिषद् में खाए गए अन्न का स्थूल भाग विष्टा मध्यभाग अस्थि तथा सूक्ष्म भाग मन हो जाता है ऐसा कहा गया है।

महाभारत के ही अंश स्वरूप ‘गीता’ में बतलाया गया है कि यह इन्द्रियाँ ही बलात् मनुष्य के मन को हर लेती है।

“इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।”⁴²

अतः समग्र अध्यात्मशास्त्र का निचोड़ इन्द्रियदमन है और यह मोक्ष का भी साधन है—

वेदस्योपनिषत् सत्यं, सत्यस्योपनिषद् दमः।

दमस्योपनिषत् मोक्षः एतत् सर्वानुशासनम्।।⁴³

मानव का आध्यात्मिक कल्याण इन्द्रिय—निग्रह से ही होता है।

आत्मनस्तु क्रियोपायो नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात्।⁴⁴

महाभारत काल में विविध ललित-कलाएँ अत्यन्त उन्नत दशा में थीं आज भी जिन्हें विकसित करके, रोजगार की दिशा में अपार सम्भावनाएँ खोजी जा सकती हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि महाभारत आज भी प्रासंगिक है क्योंकि समन्वयवादी विचारधारा का प्रतिनिधि ग्रन्थ होने के कारण आर्य-अनार्य दोनों परिवारों के लिए एक समान महत्वपूर्ण है तथा उच्च विचारों के कारण लोकविश्रुत है। महाभारत ने साहित्य, समाज और संस्कृति को एक नयी दिशा, नयी जागृति व नवीन जीवन प्रदान किया है। तत्कालीन समाज के अपर्याप्त तथ्य ग्राह्य हैं। महाभारत के ज्ञान से समाज में व्याप्त विसंगतियाँ कम हो सकती हैं। परिवारिक एकता आगे चलकर राष्ट्रीय एकता के रूप में परिणत हो सकती है। अतः संसार में मनोयोग पूर्वक जितना भी इसका पठन-पाठन होगा उतना ही कल्याण होगा।

महाकवि बाणभट्ट के शब्दों में – “नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे”⁴⁵

सन्दर्भ—

1. आदिपर्व 1/274
2. आदिपर्व (मंगलाचरण)
3. महाभारत आदिपर्व 1/81
4. महाभारत आदिपर्व 1/102
5. महाभारत आदिपर्व 1/107, 108, 109
6. महाभारत आदिपर्व 56/32
7. अश्वत्थामा बलिव्यासो हनुमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरंजीविनः॥
8. महाभारत आदिपर्व 1/92
9. उत्तरराचरित 1/10
10. धर्मं चार्थं च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्त्वचित्॥ महाभारत आदिपर्व 62/53
11. महाभारत आदिपर्व 2/83
12. आदिपर्व 2/82
13. इतिहासोत्तमे यस्मिन्नर्पिता बुद्धिरुत्तमा। आदिपर्व 2/39
14. कृतं मयेदं भगवन् काव्यं परमपूर्णितम्। आदिपर्व 1
15. “धर्मशास्त्रमिदं महत्” 2/383
16. श्री रामधारी सिंह दिनकर ‘कुरुक्षेत्र’ निवेदन पृ 1
17. भारत सावित्री (महाभारत की भव्यशिक्षा का सारसंकलन)
18. शान्तिपर्व 180/11, 12
19. सांख्यकारिका 23वीं
20. महाभारत भीष्म पर्व 27/21
21. “अनुशासन पर्व 162/48
22. “आदि पर्व 196/16 तथा अनुशासन पर्व 62/92, 105/14, 106/65
23. भ्राता ज्येष्ठः समः पित्रा 78/25
24. महाभारत अनुशासन पर्व 105/20 सभा पर्व-79/31

25. शान्ति पर्व 243वाँ अध्याय
26. शान्ति पर्व 80/41 (नीलकण्ठी टीका में)
27. शान्ति पर्व 68वाँ अध्याय
28. उद्योगपर्व 36/31
29. अनुशासन पर्व 104/44
30. "अभिवादन शीलस्य-----आयुर्विद्या यशोबलम्"
31. वन पर्व 237/24, 261/25
32. द्रोण पर्व 100/36
33. सभा पर्व 59/11
34. अश्वमेधपर्व 11/4
35. कर्ण पर्व 70/91 आदि पर्व 154/18
36. शान्ति पर्व 178/6
37. अश्वमेध पर्व 43/27
38. शान्ति पर्व 180/12
39. अनुशासन पर्व 12/14
40. सभा पर्व 5/112
41. उद्योग पर्व 34/50
42. गीता 2/60
43. शान्तिपर्व 299/13
44. उद्योगपर्व 63/17
45. हर्षचरित 1/4



जैन नीतिशास्त्र में अणुव्रतों की प्रासंगिकता

डॉ० विनीता अवस्थी

प्राध्यापक दर्शनशास्त्र

शासकीय नर्मदा महाविद्यालय, होशंगाबाद (म.प्र.)

नीतिशास्त्र का संबंध मानवीय जीवन मूल्यों से है। जीवन मूल्य, नैतिक सिद्धांत व जीवन आदर्श मनुष्य के लौकिक एवं परलौकिक कल्याण आत्मिक शान्ति के लिए मानव का मार्ग प्रशस्त करते हैं। नीतिशास्त्र के व्यावहारिक पक्ष की आज अधिक आवश्यकता है। जो मानवीय आचरण, शुभ-अशुभ उचित-अनुचित, कर्तव्य-अकर्तव्य पाप-पुण्य की केवल व्याख्या ही ना करे वरन् मनुष्य को इन्हें आत्मसात कर दैनिक व्यावहारिक जीवन की ओर प्रवृत्त भी करें। जैन दर्शन के सिद्धांत जो हमें वर्तमान में प्राप्त है, उन्हें हम महावीर स्वामी की विरासत और जैन चिंतन का नवनीत कह सकते हैं। जैन दर्शन के सिद्धांत जीवन मूल्यों के साथ जुड़े हुए हैं। जैन नीतिशास्त्र का उद्गम जैन दर्शन ही है जिनदेव द्वारा उपदिष्ट मार्ग ही जैन धर्म है और उस मार्ग का अनुपालन करने वाला जैन।¹

जैन दर्शन के बारे में ज्योति प्रसाद जैन लिखते हैं –

“Jain Doctrine is Metaphysical realism, an ontological optimism, a spiritual idealism, philosophical non absolutism an ethical puritarianism and psychological nationalism”²

यह कहा जा सकता है कि जैन धर्म जीव (आत्मा) की पुद्गल (शरीर+इन्द्रियाँ+मन आदि) पर विजय का मार्ग है। इसे भौतिकतावादिता पर विजय भी कहा जा सकता है। जैन धर्म में संघ की व्यवस्था है। जैन संघ के चार अंग हैं – मुनि, आर्थिक, श्रावक (गृहस्थ पुरुष) श्राविका (गृहस्थ स्त्री) श्रावक और श्राविकाओं से ही मुनि धर्म चलता है। जैन नीतिशास्त्र में श्रावकों के लिए पंच अणुव्रत व मुनियों के लिए पंच महाव्रत का विधान है। ये नैतिक सिद्धांत चरित्र निर्माण, सामाजिक समस्याओं का समाधान तथा आत्म साक्षात्कार में सहायक होते हैं। गृहस्थ के आचरण मूलक सिद्धांत ही अणुव्रत है जो वर्तमान समय में भी प्रासंगिक हैं। अणुव्रतों का पालन त्याग पूर्वक जीवन जीने की शिक्षा देता है। जैन धर्म निवृत्ति प्रधान धर्म है। जैन नीतिशास्त्र में श्रावकाचार में अणुव्रत का पालन अत्यंत महत्वपूर्ण है। माता-पिता सन्तान के लिए अपने स्वार्थ का त्याग करते हैं, तथा सन्तान को सुखी रखना चाहते हैं। इसी क्रम में परिवार की तरह समाज, देश धर्म के लिए भी त्याग करते हैं। जिसके परिणाम स्वरूप शिक्षणालय औषधालय, मंदिर, धर्मशालाओं आदि का निर्माण होता है। यही भावना आगे बढ़कर संपूर्ण विश्व के नैतिक उत्थान व विश्व शांति तक पहुँचती है। श्रावकों के आचार हेतु जैन नीतिशास्त्र में पॉच अणुव्रतों के पालन करने का विशेष महत्व है। शरीर व आत्मा की शुद्धि के लिए इनका पालन आवश्यक माना गया है। अणुव्रत गृहस्थों के नीति सिद्धांत है। ये पॉच अणुव्रत हैं – अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत, परिग्रह परिमाणव्रत।

1. अहिंसाणुव्रत – श्रावक (गृहस्थ) के पंचाणुव्रतों में पहला अहिंसाणुव्रत है। अहिंसाणुव्रत मन से, वचन से, शरीर से जानबूझकर हिंसा न करें, ना ही हिंसा का समर्थन करें यही अहिंसाणुव्रत का परिपालन है। जैन नीति में श्रावक और मुनि के लिए हिंसा का अलग-अलग विधान है। गृहस्थ को निर्दोष जीवों, पशुओं की हिंसा आत्महत्या, भ्रूण हत्या, हिंसक कार्यों में सहभागिता आदि कार्य नहीं करने चाहिए। ‘रत्नकरण्डश्रावकाचार’ में आचार्य समन्तभद्र ने अहिंसा अणुव्रत को स्पष्ट करते हुये लिखा है कि—

“संकल्पात्कृतकारितमनताद्योगत्रयस्य चरसन्त्वान् ।

न हिनस्ति यन्तदाहुः हस्थूलवधाद्विरमणं निपुणाः ॥”³

अर्थात् जो तीनों योगों के कृत, कारित, अनुमोदनारूप संकल्प से त्रस जीवों को नहीं मारता है, उसे हिंसा आदि पापों के त्यागरूप व्रत के विचार करने में समर्थ मनुष्य स्थूल हिंसा का त्याग अर्थात् अहिंसाणुव्रत कहते हैं।

जैनागमों में हिंसा को अत्यंत निंदनीय कहा गया है। ज्ञानार्णव में कहा गया है—

‘हिंसैव दुर्गातिदौर हिंसैव दुरितगुवः।

सिव नरकं घोरं हिंसव गहनं नमः ज्ञानार्णव॥’⁴

अहिंसा व्रत के पालन करने के माध्यम से समाज में मानवीय आचरण को नियंत्रित किया गया है तथा सभी जीवों के प्रति सद्व्यहार के प्रति जागरण किया गया है। साथ ही यह अपेक्षा की गयी है कि हिंसात्मक प्रवृत्ति का त्यागकर श्रावक अहिंसा का पालन करने में प्रवृत्त हों। हिंसा के चार भेद बताये गये हैं—

1) संकल्पी हिंसा— इसमें संकल्प लेकर प्राणाघात किया जाता है। किसी भी प्रकार की बलि देने के समय जो हिंसा होती है, उसे संकल्पी हिंसा कहते हैं। इसी प्रकार मच्छर, सर्प, बिच्छू, आदि जीवों को मारना शिकार करना भी इसके अंतर्गत आता है।

2) उद्योगी हिंसा— खेत जोतते समय व अन्य उद्योगों, व्यापार आदि कार्यों से होने वाली हिंसा उद्योगी हिंसा है। श्रावक को वह व्यवसाय अपनाना चाहिए जिसमें त्रसजीवों की है।

3) आरंभी हिंसा— गृहकार्य करते समय जैसे रसोई बनाना, झाड़ू लगाना। आदि कार्यों को करने में सावधानी रखते हुए भी जो हिंसा हो जाती है। उसे आरंभी हिंसा कहते हैं।

4) विरोधी हिंसा— शत्रु से स्वयं या परिवार आदि पर किये गये आक्रमण से रक्षा करते समय जो हिंसा होती है तथा समाज का शील सम्मान बचाने हेतु अपनायी गयी हिंसा विरोधी हिंसा है।

गृहस्थ इनमें से केवल संकल्पी हिंसा का त्याग कर पाता है। वह भी केवल त्रस जीवों (मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट-पतंग आदि) की हिंसा का। आरंभी, उद्योगी, विरोधी हिंसा का त्याग गृहस्थ जीवन में नहीं हो पाता। अहिंसाणुव्रत के दोष—जैन शास्त्रकारों ने अहिंसाणुव्रत के पांच दोष अतिचार बताये हैं, और उनसे बचने की सलाह दी है।

1) छेदन— मनुष्यों या पशुओं के कान, नाक, होठ, आदि में छेद करना।

2) बंध—पशु को रस्सी से बांधना पक्षियों को पिंजरों में बंद करना, मछलियों को एक्वेरियम आदि में रखना

3) उत्पीड़न— पशुओं या मनुष्यों को लात, घूँसे, चाबुक या डण्डे से क्रूरता पूर्वक पीटना।

4) अतिभारारोपण— मनुष्य या पशुओं के ऊपर उसकी शक्ति से अधिक भार लादना या शक्ति से अधिक काम लेना।

5) अन्नपान निरोध— मनुष्यों या पशुओं को खाने-पीने से रोकना या भोजन बचाना भूख प्यास से पीड़ित प्राणि मर भी जाता है।

श्रावक को इन पाँच अतिचारों से बचना चाहिए जब इन अतिचारों का पालन करते हुए श्रावक अहिंसा का पालन करता है तो वह अहिंसा अणुव्रत को अपनाते हुए नैतिक मार्ग का अनुसरण करता है। इस प्रकार जैन श्रावकों के आचार में पहला अहिंसा अणुव्रत जो अन्य सभी व्रतों का मूल है।

“दयामूल जिन धर्म को, दया समान न और। अहिंसा व्रत ही, सब व्रतानि को मोर॥”

यदि इस व्रत की साधना मानव कर ले तो पर्यावरण, जलवायु, वनस्पति आदि स्थावर जीव भी सुरक्षित रहेंगे। स्थावर जीवों पर अश्रित त्रस जीव भी सुरक्षित रहेंगे। पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने के लिये अहिंसा की शरण में जाना होगा क्योंकि सभी जीव जीना चाहते हैं। सभी जीवों के सह अस्तित्व से ही प्रकृति संरक्षित है तथा मानव

कल्याण व विश्व शांति सम्भव है ।

2. सत्याणुव्रत— आचार्य समंतभद्र में इसे परिभाषित किया है ।

स्थूलमलीकं न वदान्ति न परान् वादयति सत्यमदि विपदे ।

यन्तद्वदन्ति सन्तः स्थूलमृषावादवेरमणम् ॥⁵

अर्थात् जो स्थूल झूठ को न स्वयं बोलता है ना दूसरों से बुलवाता है और ऐसा सत्य भी न स्वयं बोलता है और ना दूसरों से बुलवाता है जो दूसरों के प्राणघात के लिए है । उसे सत् पुरुष स्थूल झूठ का त्याग अर्थात् सत्याणुव्रत कहते हैं ।

सत्याणुव्रती क्रोध, लोभ, मान, माया, के वशीभूत होकर ऐसा वचन नहीं बोलता जिससे अन्य को कलंक लगे, घात हो जाए, अपवाद हो जाये । इसी प्रकार ऐसे वचन भी जिससे दुःख उत्पन्न हो आपत्ति आ जाएँ, अनर्थ हो जाए, वे भी झूठ जैसे ही हैं उन्हें सत्याणुव्रती को नहीं बोलना चाहिए । उसे तिरस्कार, अहंकार गाली, मर्मोच्छेदी वचन भी नहीं बोलना चाहिए ।

सिद्धांताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री ने पाँच प्रकार के वचनों को असत्य वचन माना है—

- 1) किसी मनुष्य के विषय में झूठ बोलना—शादी विवाह आदि में ।
- 2) चौपायों के विषय में झूठ बोलना—जैसे थोड़ा दूध देने वाली गाय को अधिक दूध देने वाली बताना ।
- 3) अचेतन वस्तुओं के विषय में झूठ बोलना—जैसे दूसरों की जमीन को अपनी बताना ।
- 4) सत्य घटना के विरुद्ध गवाही देना ।
- 5) अपने पास रखी किसी व्यक्ति की धरोहर को अपनी बताना ।

गृहस्थ को ऐसे झूठ से बचना चाहिए । मन, वचन, कर्म, से मिथ्या आचरण का परित्याग सत्य है । 'जैन धर्म में मूल व्रत अहिंसा है । अतः जिस सत्य से हिंसा होती है वह असत्य की कोटि में आता है ।'⁶

सत्याणुव्रत के अतिचार—

1) मिथ्याउपदेश— यदि किसी से कोई कुछ पूछे और उसे स्वयं उत्तर के बारे में संदेह है तो अज्ञानतावश या अन्य उद्देश्य से कोई अन्य अभिप्राय बता देना ।

2) रहोभ्याख्यान— किसी व्यक्ति की गुप्त चेष्टा या बात को किसी अन्य को बता देना ।

3) कूटलेखा क्रिया— कपट पूर्णज्ञ लेखन करना ठगने के अभिप्राय से या किसी के दबाव में आकर ।

4) न्यासपहारिता— कोई व्यक्ति धरोहर स्वरूप आपके पास कुछ सामान रख गया हो और भूलवश वह व्यक्ति कम सामान लेकर ही संतुष्ट हो गया हो और आपने कहा इतना ही था तो ये अतिचार है ।

5) मंत्रभेद अंगविकार — अंग विकार या ईर्ष्यावश भौहों को चलाना आदि के द्वारा दूसरों के अभिप्राय को जानकर प्रगट कर देने, या विश्वासी मित्रों के साथ विचार किये गये विचार दूसरों को प्रकट कर देना ।

अतः लोभ, मोह, क्रोध से कमी झूठ का आचरण न करना, सत्य का पालन करना है । पुरुषार्थसिद्धि उपाय में कहा गया है— भगवान् ने समस्त असत्य वचन का मूल कारण प्रमत्तदोष बताया है । कषाय के अधीन हो जो वचन कहा जाता है । वह असत्य वचन है । कषाद सहित लेना, देना, घटना, त्यागना, गृहण करना आदि कहना असत्य वचन है । गृहस्थ को निरर्थक पाप बंध करने वाले असत्य वचन तो अवश्य ही त्याग देने चाहिए ।

3) अचौर्याणुव्रत — अचौर्य का अर्थ है चोरी ना करना तत्त्वार्थ सूत्र में 'बिना दी हुयी वस्तु को ग्रहण करना चोरी कहा है ।'⁷ आचार्य समन्तमद ने आचार्य अणुव्रत को परिभाषित करते हुए ' रत्नकरण्डश्रावकाचार ' में लिखा है —

“निहितं वा पतितं वा सुविस्मृतं वा परस्वमविस्तृष्टं

न हरन्ति यन्न च दन्ते तदकृषचौर्यादुपारमणम् ।।⁸

किसी व्यक्ति का जमीन में गड़ा धन, मंदिर, महल, मकान, में छिपाया धन, आपको देकर भूल गया वो धन, हिसाब लेखे में चूक गया हो, वह वस्तु मंहगी हो, सस्ती हो या सस्ती बिना ही हुयी वस्तु ग्रहण करना चोरी है । दूसरे की अनुमति के बिना उसकी वस्तु अन्य को देना भी इसी उसी श्रेणी में आता है ।

अचौर्याणुव्रत के अतिचार—

1) स्वयं चोरी न करना पर दूसरे को चोरी की प्रेरणा देना, उपाय बताना या किसी की प्रेरणा का अनुमोदन करना चारे पक्षोग है ।

2) चौरार्थदान — चोरी का माल छिपाना या खरीदना चौरार्थदान अतिचार है ।

3) विलोप — राजाज्ञा के विरुद्ध या निषेधित कार्य से धन ग्रहण करना राज्यातिक्रम कहा जाता है । उचित न्याय को छोड़कर अन्य प्रकार के पदार्थ को गृहण करना अर्थात् उचित रीति से धन नहीं कमाना इसके अंतर्गत आता है ।

4) सदृशसन्मिश्र — अधिक मूल्य वाली वस्तु में समान रंगरूप वाली कम मूल्य की वस्तु मिलाकर (मिलावट करना) उसे बेचना जैसे अनाज घी तेल आदि में मिलावट कर बेचना ।

5) हीनाधिकविनिमान — कम तोलना या कम मापना हीनाधिकविनिमान है । उन्मान तुला को कहते हैं । श्रावक को उपरोक्त पाँच अतिचारों का त्याग करना चाहिए । जमाखोरी, कालाबाजारी, मिलावट, रिश्वतखोरी, बेईमानी, चोरी, कानून का उल्लंघन कर व्यापार करना इन सबका निषेध अस्तेय के अंतर्गत आता है । चोरी के समान जगत् में अपराध नहीं है ।

4) ब्रह्मचर्याणुव्रत— (स्वदार सन्तोष अणुव्रत)— पंडित आशाधर जी कहते हैं — जो गृहस्थ पाप के डर से परस्त्री और वेश्या को मन, वचन व काय और कृत कारित व मोदना से न तो सेवन करता है न दूसरे पुरुषों से सेवन कराता है । वह स्वदार सन्तोषी है ।

रत्नकरण्डश्रावकाचार में आचार्य समन्तभद्र ने लिखा है —

“न तु परदानं गच्छति न परान् गमयति च पापभीतेर्यत् ।

सा परदाननिवृत्तिः स्वदार सन्तोष नामपि ।।”⁹

अर्थात् जो पाप के भय से परस्त्रियों के प्रति न स्वयं गमन करता है । और न दूसरों को गमन कराता है, वह परस्त्री त्याग अथवा सव्दारसन्तोष अणुव्रत है । बुद्धिमान पुरुषों को व अन्य स्त्रियों को चाहिए कि वे अपने पति के अतिरिक्त अन्य पुरुष को भाई, पिता पुत्र समान समझे । अपनी विवाहित स्त्री के सिवा अन्य सभी स्त्रियों से विरक्त रहना ब्रह्मचर्य अणुव्रत है । स्वामी जिनसेनाचार्य ने भी ऐसा ही कहा है जैसे खारेजल को पीने से प्यास बढ़ती है । वैसे ही विषय भोग सुख रूप नहीं है । उससे तृष्णा बढ़ती है । (महापुराण)

ब्रह्मचर्य अणुव्रत के अतिचार — आचार्य समन्तीभद्र ने लिखा है —

“अन्यविवाहाकरणान्द्र क्रीडावितवत्व विपुलतृषः ।

इत्वरिकागमनं चास्मरस्य पन्च व्यतीचाराः ।।”¹⁰

अर्थात् अन्य विवाह करण, अनंगक्रीडा, वितत्व (स्वांग बनाकर मन, वचन, काय से कुशील प्रवृत्ति करना) विपुलतृष्णा (कामसेवन में आसक्त रहना) और इत्वरिकागमन (जो प्रत्येक पुरुष के पास जाती है) इत्वरी है, वेश्या भी इत्वरी है अतः इत्वरिकागमन निषिद्ध है । ये पाँच ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतिचार हैं । तत्त्वार्थसूत्र में ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा हेतु लिखा है कि —

- 1) स्त्रियों में राग बढ़ाने वाली कथाओं के सुनने का त्याग करना चाहिए ।
- 2) स्त्रियों के मनोहर अंगों व सौन्दर्य को दिखने की भावना का त्याग करना चाहिए ।
- 3) पूर्वकाल में भोगे हुए भोगों के स्मरण का त्याग ।
- 4) गरिष्ठ एवं कामात्तेजक भोजन का त्याग करना चाहिए ।
- 5) अपने शरीर की सजावट का त्याग करना चाहिए ।

5) परिग्रह परिमाण अणुव्रत – सागर धर्माभ्रत में चेतन, अचेतन वस्तुओं में ये मेरी है । इस प्रकार के संकल्प को परिग्रह कहते हैं । और इस प्रकार की इच्छा ममत्व स्वरूप परिग्रह को कम करना परिग्रह परिमाण व्रत है । आचार्य समन्तभद्र ने 'रत्नाकरण्डश्रावकाचार' में परिग्रह परिमाण अणुव्रत को स्पष्ट करते हुये लिखा है—

‘धनधान्यादिग्रन्थं परिमाणं ततोधिकेषु निःस्पृहता ।

परिमित परिग्रहः स्यादिच्छापरिमाणनामादि ।।’¹¹

अर्थात् धन—धान्य आदि परिग्रह का परिमाण कर उससे अधिक में इच्छारहित होना परिमित परिग्रह अथवा इच्छापरिमाण नाम का अणुव्रत होता है । श्रावक द्वारा आवश्यकता से अधिक सामग्री न रखना न संग्रह करना और का संग्रह का अनुमोदन करना, रिश्वतखोरी न करना, विवाद में दहेज न लेना, प्रलोभन देकर किसी व्यक्ति को अपने पक्ष में करना, अर्थात् प्रलोभन देकर किसी व्यक्ति के राग को न बढ़ाना उपहार न लेना अपरिग्रह अणुव्रत है ।

परिग्रह के भेद – अंतरंग और बहिरंग ये दो परिग्रह के मूल भेद हैं ।

अंतरंग परिग्रह – मिथ्यात्व क्रोध—मान—माया—लोभ हास्य आदि अंतरंग परिग्रह हैं ।

बहिरंग परिग्रह दस हैं – क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य, द्विपद, चतुष्पद, शयनासन, यान, कुप्प और भाण्ड ये दस बहिरंग परिग्रह हैं । द्विपद—दास—दासी, चतुष्पद—गाय भैंस आदि चेतन परिग्रह हैं । खेत, धन—धान्य, मकान, सोना, चाँदी अचेतन परिग्रह हैं । ग्रहस्थ पूर्णरूपेण इनका त्याग नहीं कर सकता है । लेकिन यथाशक्ति इनकी सीमा निश्चित कर सकता है । अतः श्रावक के लिये जो धर्म सेवन करना चाहता है उसे अपनी स्थित के अनुकूल परिग्रह रखना आवश्यक है ।

अंतरंग परिग्रह पर नियंत्रण पहले आवश्यक है, उसके पश्चात् बाह्य परिग्रह में स्वतः ममत्व घट जायेगा । श्रावक को यथासम्भव इच्छाओं को सीमित करके परिग्रह परिमाण अपनाना चाहिए ।

परिग्रह परिमाण व्रत के अतिचार –

- 1) 1) अतिवाहन—दास—दासी तिर्यचादि को मर्यादा रहित लोभवश अति दूर ले जाना, बहुत चलाना, अतिवाहन अतिचार है ।
- 2) अतिसंग्रह – अनाज, वस्त्र, पात्र, स्वर्ण आदि का आवश्यकता से अधिक संग्रह करना ।
- 3) 3) विस्मय—दूसरों की समृद्धि समान सम्पत्ति आदि को देखकर व सुनकर आश्चर्य करना (समभाव से रहना चाहिए)
- 4) अतिलोभ— अतिलाभ प्राप्त होने से भी तृप्त न होना ।
- 5) अतिभार वहन—दास—दासियों व पशुओं पर अत्यधिक बोझ लाद देना ।

जैन श्रावकों ने इन अतिचारों को त्याग करने का उपदेश दिया । इसी क्रम में अभक्ष्य पदार्थों का त्याग, मनोज्ञ विषयों में अतिराग, मनोज्ञ विषयों में अति आसक्त न होना, अमनोज्ञ, असुहावने प्राप्त विषयों में द्वेष न करना, विषय भोग भोगने की लालसा ना करना, ये पाँच भावनाएँ मनुष्य में सम्भव व वीतरागिता फैलाती हैं ।

जैन नीतिशास्त्र में वर्णित पाँच अणुव्रत समाज में चरित्र निर्माण के साथ त्यागपूर्वक समभाव से जीवन जीने

की शिक्षा देते हैं। शरीर व आत्मा की शुद्धि के लिए इनका पालन करना आवश्यक है। समाज में जब श्रावकों द्वारा इनका पालन किया जाएगा तभी हम अच्छे संस्कार युवाओं को दे पायेंगे। पर्यावरण संरक्षण में भी ये लाभकारी हैं। प्रदूषण का एक कारण तृष्णा व हिंसा भी है। इन पर संयम व अहिंसा से विजय प्राप्त करनी होगी। वर्तमान सुशासन का भाव सुदृढ़ करने में भी यह हितकारी रहेंगे, जब मानव संतोषी व अणुव्रतों के अतिचारों का त्यागकर अनुशासित आचरण अपनायेगा तो उत्कृष्ट समाज स्वतः निर्मित हो जायेगा। आतंकवाद की बढ़ती समस्या का अंत भी अहिंसा अणुव्रत के अनुपालन से दूर होगा। बढ़ती भौतिकतावादी मानसिकता से उपजे तनाव का निवारण संतुलित आचरण से ही संभव है। अतः अणुव्रतों की प्रासंगिकता स्वतः सिद्ध है। अणुव्रत पंचमहाव्रतों के सूक्ष्म रूप हैं। जैन मुनि जो कैवल्य (मोक्ष) की ओर अग्रसर हैं उन्हें पंच महाव्रत, त्रीरत्न-सम्यक् दर्शन, सम्यक ज्ञान व समय चरित्र का पालन भी आवश्यक है।

संदर्भ ग्रन्थ :-

1. जैन धर्म का इतिहास प्रथम भाग-पृ 4-5
2. Jyoti Prasad Jain – Religion and Cluture Page No 38
3. रत्नकरण्डश्रावकाचार – चारित्राधिकारु श्लोक 7
4. ज्ञानार्णव 8/9
5. रत्नकरण्डश्रावकाचार – चारित्राधिकारु श्लोक 9
6. सोमदेव उपासकाध्ययन पृ 376-77
7. तत्त्वार्थ सूत्र 7/15
8. रत्नकरण्डश्रावकाचार – चारित्राधिकारु श्लोक 11
9. वही श्लोक 13
10. वही श्लोक 14
11. वही श्लोक 15
12. नीतिशास्त्र के प्रमुख सिद्धांत – डॉ. डी.आर. जाटव
13. नीतिशास्त्र – प्रो. नित्यानंद मिश्रा
14. जैन दर्शन – डॉ. हृदयनारायण मिश्र
15. जैन दर्शन : चिंतन अनुचिंतन – रामजी सिंह



संस्कृत नाट्य-परम्परा की प्रासंगिकता

डॉ. शिवानी शुक्ला

गोविन्द नगर, कानपुर – उ.प्र.

प्राचीन भारतीय नाट्य-परम्परा का प्रतिनिधित्व बड़ी हद तक संस्कृत-नाट्य परम्परा कर सकती है। नाट्य-परम्परा में केवल नाट्य-कृतियाँ ही नहीं आतीं, नाट्य-कर्म की अनेक विधियाँ, लोक नाट्य के अनेक रूप, नृत्य और संगीत की अनेक शैलियाँ, संवाद की भाषा के अनेक स्तर और इनके साथ नाट्य शास्त्र के अनेक विषय भी नाट्य-परम्परा के अनिवार्य अंग हैं। आधुनिक युग में संस्कृत नाट्य-परम्परा की प्रासंगिकता का प्रश्न उठाने के पहले संस्कृत नाट्य-परम्परा की संक्षेप में चर्चा कर ली जाए। वैसे संस्कृत नाट्य-परम्परा इतनी प्राचीन, व्यापक, एवं गहरी है कि उसे संक्षिप्त चर्चा तक सीमित नहीं किया जा सकता। मैं इस परम्परा के केवल एक अंग की अर्थात् संस्कृत नाट्य-शास्त्र की बल्कि कहना चाहिए नाट्य-शास्त्र-विषयक कुछ बातों की चर्चा तक इस निबन्ध को सीमित रखूंगी। मैं जानती हूँ कि नाट्य-शास्त्र की चर्चा नाट्य कृतियों के संदर्भ के बिना नहीं हो सकती। पर यहाँ उसका अवकाश नहीं है। इस चर्चा में भरत मुनि ही मेरे प्रमुख आधार होंगे।

भरत का नाट्य शास्त्र संस्कृत नाट्य शास्त्र-सम्बन्धी प्राचीनतम ग्रंथ है, जिसकी रचना ईसा की दूसरी शताब्दी में हुई थी। कुछ विद्वान इसे ईसा पूर्व दूसरी शदी का ग्रंथ मानते हैं। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि साहित्य-शास्त्र का निर्माण साहित्यिक रचनाओं की पृष्ठभूमि में ही होता है। भरत मुनि से कई सदियों पहले संस्कृत नाटकों की परम्परा मौजूद थी। तभी तो भरत “नाट्य-शास्त्र” जैसा अद्वितीय ग्रंथ लिख सके। यह केवल नाट्यशास्त्र का ही ग्रंथ नहीं है, बल्कि काव्य शास्त्र, संगीत तथा नृत्य का भी अनोखा ग्रंथ है। इसमें नाट्यशास्त्र के 11 अंगों का सूक्ष्म विवेचन किया गया है। वे हैं रस, भाव, अभिनय, धर्मी (अर्थात् नाट्य रूढ़ियाँ), वृत्ति, प्रवृत्ति, सिद्धि, स्वर, अतोद्य (अर्थात् वाद्य यंत्र), गान और रंगमंच। नाट्य-शास्त्र के इन 11 अंगों में नाट्यकला का कोई पक्ष ऐसा नहीं है जिसका विवेचन भरत ने न किया हो। इसमें रस के आठ भेदों, 49 भावों, चार प्रकार के अभिनय (आंगिक, वाचिक, आहार्य, सात्विक), लोकधर्मी तथा नाट्यधर्मी नाम की रूढ़ियों, चार वृत्तियों (भारती, सात्विक, कौशिकी, आरभटी), पाँच प्रकार की प्रवृत्तियों (अवन्ती, दाक्षिणात्या, पांचाली, मध्यमा) दो सिद्धियों (दैविकी, मानुषी) सात स्वरों, चार प्रकार के आतोद्य² (अर्थात् वाद्य यंत्रों), पाँच प्रकार के गान (प्रवेश, आक्षेप, निष्काय, प्रासारिक, ध्रुवावेग), तीन प्रकार के रंगमंच (चतुरस्त्र, ... अर्थात् लम्बाई अधिक चौड़ाई कम, विकृष्ट, ... अर्थात् लम्बाई, चौड़ाई बराबर, त्रयस्त्र-..... अर्थात् तिकोना) की विस्तृत व्याख्या की गई है। कहने का तात्पर्य यह है कि भरत ने नाटक व नाट्य शास्त्र की उत्पत्ति, रंगमंच के प्रकारों, रंगमंच के अंगों (रंग-शीर्ष, रंग-मध्य, रंग-पृष्ठ, मत्तवारणी, दर्शक स्थान) अभिनय के प्रकारों और नाट्य-लेखन तथा मंचन से संबन्धित अनेक पक्षों पर अपनी गहरी दृष्टि डाली है।

नाट्य-लेखन एवं नाट्य-कर्म की परम्परा को दिशा प्रदान करने वाले अकले भरत नहीं हैं। उनके पहले और उनके बाद अभिनय गुप्त, धनंजय, धनिक, सागर नन्दी, रामचन्द्र गुणचन्द्र, शारदातनय, शिंग भूपाल, रूपगोस्वामी आदि आते हैं। काव्य शास्त्र के अनेक पण्डितों जैसे भोजराज (11वीं शती), हेमचन्द्र और विश्वनाथ आदि ने भी काव्यांग-विवेचना के साथ नाटक की चर्चा भी की। इनमें से अधिकांश विद्वानों ने भरत के ‘नाट्यशास्त्र’ से बहुत सी बातें लेकर उनकी अपने ढंग से व्याख्या की। धनजय का ‘दशरूपक’ ऐसा ही प्रसिद्ध ग्रंथ है।

कहा जा सकता है कि भरत ने नाटक सम्बन्धी जिन मान्यताओं अथवा सिद्धांतों को सामने रखा है वे संस्कृत के उन नाटकों पर आधारित थे, जो सामन्तीय समाज-व्यवस्था की देन थे और जो तत्कालीन शिष्ट साहित्य का अंग

थे। इसमें यह भ्रांति उत्पन्न हो सकती है कि भरत के 'नाट्यशास्त्र' में निरूपित बातों की उपयोगिता शिष्ट नाटकों अथवा साहित्यिक संस्कृत नाटकों के संदर्भ में ही देखी जा सकती है और शायद लोकनाटक तथा लोक-नाट्य-कर्म से उन बातों का कोई सम्बन्ध नहीं है। यह भ्रांति उस समय दूर हो जाती है जब भरत द्वारा बताये गये रूपक के दस भेदों (नाटक, प्रकरण, नाटिका, भाण, प्रहसन, डिम व्यायोग, समवकार, वीयी, उत्सृष्टिकाक, ईहामृग) और उपरूपक के अठारह भेदों (सटुक, रासक, समवकार, नाटिका, प्रकरणिका, मणिका, हल्लीश, श्रीगदित आदि के विवरण) का अध्ययन किया जाए। यह रोचक तथ्य है कि भरत आदि संस्कृत विद्वानों ने दृश्य-काव्य के लिए रूपक शब्द का उपयोग किया है। और नाटक को उसका एक मुख्य भेद माना है। नाटक के अतिरिक्त उसके अर्थात् रूपक के नौ भेद और हैं। इन भेदों में से कुछ भेद ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध लोक नाट्य से है जैसे- नाटिका, समवकार, प्रहसन। उपरूपकों के कुछ भेद भी लोक-नाट्य परम्परा से गहरा सम्बन्ध रखते हैं, जैसे सटुक, रासक, प्रकरणिका आदि। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल' (पृ० 100-101) में उपरूपक के उक्त भेदों को लोक नाट्यों से लिया गया माना है। इसका यह अर्थ हुआ कि भरत ने "नाट्य शास्त्र" की रचना करते समय संस्कृत के साहित्यिक नाटकों को ही अपनी दृष्टि में नहीं रखा, बल्कि लोक-नाट्यों की जनवादी परम्परा को भी अपने सामने रखा।

आजकल रूपक के स्थान पर नाटक शब्द अधिक प्रचलित है। पर संस्कृत के नाट्य शास्त्रियों की नाट्य-अवधारणा इतनी व्यापक थी कि नाटक शब्द उसे पूर्णतया व्यक्त नहीं कर पाता था। तभी उन्होंने 'रूपक' शब्द का व्यवहार विविध नाट्य प्रयोगों के लिए किया था। जिनमें कुछ नाट्य-प्रयोग अभिजात वर्ग के लिए थे और कुछ जनसामान्य के लिए।

नाटक एक ऐसी विधा है जो लोक-जीवन से गहरा सम्बन्ध रखती है। लोक-जीवन में धार्मिक विश्वास, अनुकरण-प्रवृत्ति, विभिन्न सामाजिक-धार्मिक उत्सवों पर नाच और गान आदि न जाने कितनी बातें शामिल हैं। उनमें से अनेक बातों की अभिव्यक्ति का अवसर नाटक के अवसर पर मिलता है। इसी लिए नाटक को एक सम्पूर्ण विधा कहा गया है, जिनमें कविता, नृत्य, संगीत, चित्रकला, वक्तृत्व कला आदि के अनेक तत्वों का समावेश हो जाता है। ये तत्व कम या अधिक लोक-जीवन में रचे और बसे होते हैं। इस सत्य का साक्षात्कार आज से लगभग 2 हजार वर्ष पहले भरत मुनि ने कर लिया था। तभी तो उन्होंने नाट्य प्रयोगों की सफलता की कसौटी 'लोकजीवन' को माना था। 'नाट्य शास्त्र' के 26वें अध्याय में एक श्लोक आया है—

वेदाध्यात्मोपन्न तु शब्दच्छन्दः समन्वितम्

लोकसिद्धं भवेत् सिद्धम् नाट्यलोके स्वभावजम्।

अर्थात् नाटक की उत्पत्ति चाहे वेद से हो या अध्यात्म से वह तभी सिद्ध या सफल होता है जब वह लोकसिद्ध हो क्योंकि (नाट्य लोके स्वभावजम्) नाटक लोक-स्वभाव से उत्पन्न होता है।

इसी लोक-स्वभाव या लोक-हृदय की अवधारणा से भरत 'रस की मान्यता' तक पहुंचे, जो कि उनके अनुसार नाट्य-कृति का लक्ष्य है। नाट्य-शास्त्र के छठे और सातवें अध्यायों में सात्विक अभिनय के विवेचन के प्रसंग में उन्होंने अभिनेता (शास्त्रीय शब्द नेता, जिसमें अभिनेता और अभिनेत्री दोनों सम्मिलित हैं) के प्रकार और उनके विशिष्ट गुणों के साथ रसों, भावों, विभावों, अनुभावों, स्थायी भावों, संचारी भावों आदि का विषद विवेचन किया है। नाटक का लक्ष्य रस है। नाटक की कथावस्तु, उसके पात्र, संवाद, अभिनय रस की ओर ले जाने का काम करते हैं। नायक, नायिका, अभिनय जैसे शब्दों की व्युत्पत्ति से यही संकेत मिलता है। नायक का अर्थ है 'ले जाने वाला,' 'नायिका' का अर्थ है 'ले जाने वाली'। ये दोनों हमें कहां ले जाते हैं? निश्चित रूप से ये दोनों अपने क्रिया-कलापों से हमें रस की ओर ले जाने का काम करते हैं। 'अभिनय' शब्द में 'नय' धातु के पहले उपसर्ग 'अभि' लगा है। 'नय' का अर्थ है 'ले जाना'। 'अभिनय' का अर्थ हुआ रस की ओर ले जाने का पूर्ण साधन। रस की ओर ले जाने का काम

‘नट’ अर्थात् अभिनेता करता है। नाटक का सम्बन्ध ‘नट’ से है। नट और नाटक दोनों शब्द ‘नट’ धातु से निष्पन्न हुए हैं। ‘नट’ संस्कृत की ‘नृत्’ धातु का प्राकृत रूप है, जिसका अर्थ है नाचना। नट नाचता भी है और नचाता भी है और नाचना अभिनय के अन्तर्गत शामिल है। भरत ने आंगिक अभिनय के विवेचन में नृत्य की भी और वाचिक अभिनय में संगीत की भी चर्चा की है। इसका यही अभिनय है कि अभिनय के अन्तर्गत नृत्य और संगीत भी सम्मिलित हैं, ये सब रस की ओर ले जाने का काम करते हैं। रस की अवधारणा के दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक आयाम भी हैं पर भरत ने रस को लोक-हृदय या लोक-स्वभाव से सम्बद्ध करके देखा था।

मेरा यह आग्रह नहीं है कि भरत के ‘नाट्य-शास्त्र’ में जो कुछ है, वह आज के नाट्य-लेखन एवं नाट्य-कर्म में पूर्णरूपेण उपयोगी है। दो हजार वर्षों पहले की कृति अब पूरी तरह काम में नहीं लाई जा सकती। पर मेरा आशय यह है कि उसमें अनेक ऐसी उपयोगी एवं महत्वपूर्ण बातें हैं जो आज के नाटकारों एवं नाट्यकर्मियों के लिए भी अनुकरणीय हो सकती हैं। भरत और उनके बाद आने वाले अभिनय गुप्त, धनंजय, धनिक, सागरनन्दी, रामचन्द्र गुणचन्द्र, शारदातनय, शिंगभूपाल, भोजराज, हेमचन्द्र, विश्वनाथ, रूपगोस्वामी आदि विद्वानों की नाट्य सम्बन्धी मान्यताओं को यह कहकर नहीं ठुकराया जा सकता कि वे सामन्तीय युग की मान्यताएँ हैं, अथवा वे संस्कृत के दरबारी और शिष्ट साहित्य को उपजीव्य बनाकर विकसित हुई। हमें रूढ़िवादी नहीं होना चाहिए, पर अपनी परम्परा को भी पहचानना चाहिए। कुछ परम्पराएँ रूढ़ि में बदल जाती हैं, पर परम्परा और रूढ़ि में अन्तर करने की आवश्यकता है।

भरत ने कथावस्तु, पात्रयोजना, अभिनय, रस आदि की विषद व्याख्या करके नाट्य-शास्त्रीय आधार देने की कोशिश नहीं की, रंगमंच के भेद, रंगमंच के अंगों और रंग-कर्म की अनेक विधियों की व्यापक विवेचना करके नाट्यकर्म को भी विकसित करने का प्रयत्न किया। विज्ञान की उन्नति से प्राप्त वरदानों के परिणाम स्वरूप और सामाजिक परिवर्तन अवश्यभावी हो गये हैं और आज बहुत-से रंगकर्मी इस ओर प्रयत्नशील हैं। पर कुछ रंगकर्मियों में (जिनका मैंनाम नहीं लूगीं) संस्कृत नाट्यकला एवं नाट्य-कर्म के प्रति उपेक्षा की प्रवृत्ति पाई जाती है। संस्कृत नाट्य कला के अनेक तत्वों के विवेकपूर्वक त्याग एवं ग्रहण की आवश्यकता है। भारतेन्दु के नाटकों में जिस नाट्यकला के दर्शन होते हैं उसमें संस्कृत नाट्यकला, पारसी थियेटर की नाट्यकला और लोक नाट्य कला के समन्वय का प्रयत्न है। फिर भी भारतेन्दु का झुकाव हिन्दी नाटकों को संस्कृत नाट्यकला के निकट लाने की ओर है। जयशंकर प्रसाद ने भी अपने नाटकों में संस्कृत नाट्यकला के अनेक तत्वों का समावेश किया, यद्यपि वे पश्चिमी नाट्यकला की कुछ विधियाँ भी अपनाते हैं। पर आज हमारे अनेक नाट्यकर्मी प्रसाद के योगदान की अवहेलना करते दिखाई देते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि हम नाट्यकर्म-सम्बन्धी अपनी प्राचीन और विकसित परम्परा को छोड़कर पश्चिमी रंग-विधियों को अपनाने में ही अपनी आधुनिकता समझते हैं। इसी तरह पश्चिमी नाटकों के अनुवादों को मंचित करने में हम अधिक गौरव अनुभव करने लगे हैं। हिन्दी रंगमंच की दरिद्रता की चर्चा बार-बार की जाती है, पर उसके विकास के लिए जो प्रयत्न किये जा रहे हैं, उन में हम अपनी नाट्य-परम्परा को भूलते जा रहे हैं।

संदर्भ संकेत :

1. शाब्दी वृत्ति
2. तत, अवनद्ध, धन, सुशिर। तार वाले वाद्य तत हैं, मृदंगादि अवनद्ध हैं, ताल देने वाले धन हैं। वंशी सुशिर (छिद्रयुक्त हैं।)



स्ववित्त पोषित संस्थानों की स्थिति का आंकलन – एक अध्ययन

डॉ. उमा तिवारी

प्राचार्या-रेशम एकेडमी ऑफ गर्ल्स

एजूकेशन, भुआ (बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय सम्बद्ध)

स्ववित्त पोषित संस्थानों की स्थिति शिक्षा के क्षेत्र में स्वामित्व की ओर ही इंगित करती है। शिक्षा के क्षेत्र में निजीकरण, उदारीकरण बाजारीकरण जैसा संक्रमण 21वीं शताब्दी में अधिकता में देखने को मिल रहा है। प्राचीन काल में शिक्षा शब्द अपने में गरिमायुक्त हुआ करता था गुरु-शिष्य परम्परा तथा गुरुकुल प्रणाली तथा गुरुदक्षिणा जैसे शब्द अपने में सार्थकता का उदाहरण प्रस्तुत करते थे वर्तमान संदर्भ में उपर्युक्त शब्द केवल इतिहास के साक्ष्य मात्र बनकर रह गये हैं। यद्यपि ऐतिहासिक सत्य शिक्षा के पाठ्यक्रम में आज भी अपना अस्तित्व बनाये हुए है।

निजीकरण को ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर हम जानते हैं कि इसका प्रयोग शिक्षा में लगभग 15-20 वर्ष प्राचीन ही है सर्वप्रथम इसका प्रयोग 1960 में Peter F. Drucker ने अपनी पुस्तक The Age of Discontinuity में किया उसके दस वर्ष बाद Margret Thatcher The Prime Minister of England ने व्यावहारिक रूप प्रदान किया। धीरे-धीरे भारत में भी इसका प्रचार और प्रसार शनैः शनैः होता गया है स्ववित्त पोषित संस्थानों से अभिप्राय है जब शिक्षा के संस्थानों को निजी संस्थाओं या समितियों द्वारा संचालित और प्रबन्धित किया जाता है जिसका स्पष्ट आशय है स्वामित्व में परिवर्तन अर्थात् सरकारी स्वामित्व के स्थान पर निजी व्यक्ति, कम्पनी तथा समितियों द्वारा स्वामित्व का होना। इनका उद्देश्य शिक्षा के प्रचार और प्रसार के साथ शिक्षा के स्तर का उन्नयन करना ही निहित था परन्तु वर्तमान समय में ऐसे संस्थानों का एक मात्र उद्देश्य अधिकाधिक धनोपार्जन करना ही पाया गया है।

आर्थिक दृष्टिकोण से मूल्यांकन करने पर हमने यह पाया है कि इन निजी संस्थानों का केवल एक मात्र उद्देश्य अधिकाधिक धन कमाना ही होता है चाहे वह संस्थान किसी भी स्तर (प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च स्तर) से क्यों न सम्बन्धित हो।

धन की लोलुपता में सारी नैतिकताओं, मर्यादाओं की ध्वस्तता का उदाहरण हमें समाचार पत्रों तथा न्यूज चैनलों के माध्यम से देखने और जानने को मिलता ही रहता है। आर्थिक शोषण के प्रमुख केन्द्र बिन्दु शिक्षक और छात्र ही देखने को मिलते हैं।

इन संस्थानों में एक ओर छात्रों से अधिकाधिक धन किस प्रकार से ऐंठा जाए इसका प्रयास निरन्तर किया जाता है तथा दूसरी ओर शिक्षकों को कम से कम किस प्रकार से दिया जाये इसकी भी प्रक्रिया निरन्तर चलती रही है। इस दिशा में शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान सबसे अग्रिम है। छात्रों से प्रैक्टिकल इत्यादि के नाम पर धन की वसूली की जाती है और शिक्षकों से भी आर्थिक रूप से शोषण की पराकाष्ठा पर पहुँचने का प्रयास किया जाता है। ऐसे संस्थानों में शिक्षक शिक्षिकाएँ बौद्धिक रूप से प्रबुद्ध होते हुए भी अपने शोषण की स्वीकृति देने के लिये विवश हो जाते हैं। शिक्षा के स्तर में गिरावट का प्रमुख कारण होता है कि शिक्षक के व्यक्तित्व का पंगु हो जाना और सदैव निराशा के गर्त में डूबना और उतराना।

नैराश्य की भावना उनके मन में हथौड़े की तरह निरन्तर चोट पहुँचाती रहती है जिसके कारण नकारात्मक

प्रवृत्तियाँ उनके दिलों दिमाग पर छाई रहती है जिसके कारण वे अपने कर्तव्यों के प्रति भी उदासीनता दिखाते हैं तथा पलायन, आक्रामकता जैसी प्रवृत्तियाँ भी उनमें बस जाती हैं जिसका दुष्परिणाम भी शिक्षा में ही घटित होता है। सामाजिक दृष्टिकोण से देखने पर यह प्रतीत होता है इन संस्थानों से जुड़े हुये कर्मचारियों की समाज में भी कोई स्थिति नहीं होती है। शिक्षक से लेकर शिक्षणेत्तर कर्मचारी सभी अस्थायित्व की प्रवृत्ति से भयाक्रान्त रहता है। इसके लिये इन संस्थानों के स्वामित्व के प्रति समस्त प्रकार के शोषणों (शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक) के लिये यह विवश होकर स्वीकृति देने को मजबूर हो जाता है। इन स्व वित्त पोषित संस्थानों की शिक्षा स्थिति अत्यधिक दयनीय होती है। ऐसे शिक्षण संस्थानों में शिक्षण दिवस तथा शिक्षण कार्य की अधिकता तथा दबावयुक्त बोझिल वातावरण एवं दासतायुक्त भावनाओं के कारण शिक्षक अपने को आदेशानुसार कार्य करने वाला गुलाम कर्मचारी मात्र ही समझता है।

वर्तमान समय में शिक्षा की बड़ी एवं सराहनीय भूमिका होते हुये भी ये संस्थान शिक्षा का स्तर गिराने में भी सक्रिय रहे हैं अर्थोपार्जन एक मात्र उद्देश्य होने के कारण अर्थ बचाने की स्थिति में समस्त हथकण्डे अपनाये जाते हैं। सकारात्मक दृष्टिकोण से अध्ययन करने पर हमें यह ज्ञात होता है कि इन शैक्षणिक संस्थाओं के माध्यम से अनेक ऐसे छात्रों का हित भी होता है जो सीमितता के कारण प्रवेश से वंचित हो रहे हैं तथा योग्यता की दृष्टि से पूर्ण है इससे शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार भी होता है। दूसरी ओर बेरोजगारी का दंश झेलते हुए अनेक योग्य शिक्षकों को रोजगार के अवसर भी इन संस्थानों से प्राप्त होते हैं पूर्णरूपेण बेरोजगार रहने से नैराश्य एवं अवसाद से ग्रस्त रहने वाले शिक्षक-शिक्षिकाओं को कुछ रोजगार मुहैया कराना इन स्ववित्त पोषित संस्थानों का भी कार्य होता है इसको नकारा नहीं जा सकता।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि इन निजी संस्थाओं में कार्य करने वालों की तुलना किसी सरकारी संस्थाओं में कार्य करने वालों से करें तो हमें इनके बीच कितना अन्तर है स्पष्ट रूप से देखने को मिल सकता है। वर्तमान समय में आवश्यक है इन खाइयों को पाटने की तथा इनमें जो वैशम्यता है उसे मिटाने की तभी हमारे राष्ट्र का कल्याण होगा और प्रजातन्त्र का वास्तविक स्वरूप भी देखा जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ—

1. चौबे सरयू प्रसार (2008) शिक्षा के समाज शास्त्रीय आधार, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृ०— 419—500
2. चौबे सरयू प्रसाद (2011) शिक्षा के समाज शास्त्रीय आधार, पृ०— 418—441
3. पाठक पी०डी० एवं त्यागी एस०डी० (2008) शिक्षा के सिद्धान्त, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृ०— 457—498
4. महिला सत्यपाल (2011) शिक्षा के दार्शनिक तथा समाज शास्त्रीय आधार, अग्रवाल प्र० आगरा, पृ०— 351—357
5. लाल रमन बिहारी एवं तोमर गजेन्द्र सिंह (2010) शिक्षा के दार्शनिक आधार, पेज— 534—576 लाल बुक डि०, मेरठ
6. शील अवनीन्द्र (2005) उभरते हुये भारतीय समाज में शिक्षक, साहित्य रत्नालय, कानपुर, पृ०— 310
7. शर्मा डी०एल० (2011) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक, लाल बुक डि०, मेरठ, पृ० — 540—559
8. शुक्ला रमा और सिंह मधुरिमा (2012) आलोक प्रकाशन, इलाहाबाद।
9. सक्सेना सरोज (2011—12) शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय आधार, साहित्य प्र० आगरा, पृ०— 328—363
10. रुहेला सत्यपाल एवं नायक राजकुमार (2011—12) अग्रवाल, प्र० आगरा।
11. सचदेवा एस०एस० एवं शर्मा के शिक्षा के दार्शनिक एवं सा० आधार भारत बुक सेन्टर, लुधियाना, पृ०— 441—458
12. पाण्डेय रामशक्ल (2007) शिक्षा की दार्शनिक एवं सामाज शास्त्रीय पृष्ठभूमि, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, पृ०— 461—466



अध्यापक शिक्षा और मूल्यांकन

अलका सक्सेना
सहायक प्राध्यापक
डी.बी.एस. कालेज, कानपुर

अध्यापक शिक्षा के गुणगत स्तर को यदि शैक्षिक तथा उधमगत दृष्टि से देश के शैक्षिक संस्थानों में कार्यरत तथा भावी अध्यापक वर्ग को कार्यकुशलता एवं दक्षता प्रदान करने के लिए उन्हें मानवीय शैक्षिक संसाधन के रूप में विकसित करने के लिए तथा भावी राष्ट्रीय नागरिकों के निर्माण सम्बन्धी दायित्व एवं कर्तव्यों को पूरा करने के लिए आवश्यक माना जाता है। तो शायद आज के सन्दर्भ में अनुचित या अनपेक्षित नहीं कहा जा सकता है। एक शिक्षक का कार्य अध्यापन के साथ ही अधिगम प्रतिफलों का आंकलन एवं मूल्यांकन करना होता है। मूल्यांकन के आधार पर वैध और विश्वसनीय ढंग से प्राप्त ही वस्तुनिष्ठ परिणाम सामने आते हैं उसके आधार पर पूर्वकथन करना एवं शैक्षिक मार्गदर्शन करना सम्भव हो पाता है, परिणाम की जानकारी देने के साथ ही अधिगमकर्ता को प्रतिपुष्टि प्रदान करते हुए प्रेरणा श्रोत के रूप में यह कार्य करता है। सफल क्रियाओं एवं प्रयासों के लिए इस प्रकार पुनर्बलन की प्राप्ति मूल्यांकन के आधार पर ही हो पाती है। सामान्य रूप से शैक्षिक प्रगति एवं उपलब्धि को सूचित करने के लिए भी मूल्यांकन के परिणामों को ही स्वीकार किया जाता है।

सामान्य परीक्षा को यद्यपि मूल्यांकन के ही रूप में स्वीकार किया जाता है और परीक्षा परिणामों को शैक्षिक प्रगति पत्र के माध्यम से ग्रहण योग्य मान लिया जाता है। लेकिन परीक्षा प्रणाली मूल्यांकन के समस्त वैशिष्ट्य से युक्त नहीं होती है। मूल्यांकन अध्ययन-अध्यापन प्रक्रिया का ही एक अविच्छिन्न अंग होता है। क्योंकि इसके माध्यम से ही निर्धारित शिक्षणोद्देश्यों की उपलब्धि का आंकलन अध्यापक/अध्यापिकायें कर पाते हैं और छात्र या अधिगमकर्ता भी अपनी सफलता या विफलता के सामान्यतया मूल्यांकन शब्द का प्रयोग अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक मूल्यांकन के संदर्भ में ही किया जाता है जबकि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मूल्यांकन का प्रयोग प्रत्यक्ष है। जब किसी अच्छे विद्यालय का प्रयोग प्रत्यक्ष है। जब किसी अच्छे विद्यालय या अध्यापक के बारे में हम जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करते हैं इस समय हम विद्यालय या अध्यापकीय योग्यताओं का मूल्यांकन करने के लिए प्रयास करते हैं।

मूल्यांकन के बहुविध रूप सम्भव हैं क्योंकि प्रयोग सन्दर्भ अलग-अलग हो सकता है शैक्षिक सन्दर्भ में प्रायः इसके चार रूप, प्रकार या प्रतिमानों के बारे में चर्चा की जाती है। अध्यापक शिक्षा के सन्दर्भ में भी उन्हें प्रयुक्त किया जा सकता है। मुख्यतया नियोजनात्मक निर्माणात्मक, निदानात्मक तथा संकलनात्मक इस क्षेत्र में प्रयुक्त किये जाते हैं। नियोजनात्मक, मूल्यांकन के द्वारा शैक्षिक नियोजन के लिए अधिगमकर्ताओं के प्रारम्भिक व्यवहार तथा व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं को आंकलित करने का प्रयास किया जाता है। निर्माणात्मक मूल्यांकन का प्रयोग अधिगम एवं अनुदेशन दोनों के विकास काल में सुधार हेतु प्रयत्नों के लिए किया जाता है ताकि अधिगम सम्बन्धी दक्षता की प्राप्ति प्रत्येक अधिगमकर्ता के लिए सम्भव हो सके।

निदानात्मक मूल्यांकन वह मूल्यांकन प्रतिमान है जिसमें बारम्बार होने वाली अधिगम त्रुटियों को दूर करने के लिए समस्याओं के समाधान के लिये तथा उनके कारणों को जानने के लिए प्रयास किया जाता है।

अध्यापक शिक्षा के सैद्धान्तिक पक्षीय मूल्यांकन

सामान्य रूप से अध्यापक शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर सैद्धान्तिक पक्षीय मूल्यांकन के सन्दर्भ में लिखित परीक्षा को ही स्वीकृति दी जाती है प्रत्येक सैद्धान्तिक प्रश्न-पत्र के अन्तर्गत जहाँ पहले मात्र निबन्धात्मक प्रश्नों को ही स्थान दिया जाता था। वहीं पर आजकल विगत कई वर्षों से लघु उत्तरीय एवं वस्तुनिष्ठ प्रश्न (जिसमें प्रायः बहुविकल्पीय चयनात्मक प्रारूप का ही उपयोग किया जाता है) का समन्वय किया जा रहा है। अतः इसे संकलनात्मक मूल्यांकन प्रारूप के रूप में देखा जा सकता है। प्रायः अध्यापक शिक्षा संस्थानों में सैद्धान्तिक वर्ग के लिए माध्यमिक उत्तरीय अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत पाँच या छः प्रश्न-पत्र रखे जाते हैं जिनमें से प्रत्येक का पूर्णांक 100 होता है।

1. शिक्षा सिद्धान्त तथा आधुनिक चुनौतियाँ।
2. शैक्षिक मनोविज्ञान तथा निर्देशन।
3. भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्याएँ।
4. सामान्य शिक्षण विधियाँ।
5. विद्यालय संगठन तथा प्रशासन।

उपरोक्त पांच प्रश्न-पत्र प्रायः मूलभूत रूप से सर्वत्र कुछ भिन्नता के साथ स्वीकृत किये जाते हैं जिसमें शिक्षण विधियों साथ ही विभिन्न विद्यालयी शिक्षण विषयों के शिक्षण काल के बारे में जानकारीयों भी दी जाती हैं।

2001 के अन्त में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के द्वारा जिस प्रतिमान पाठ्यक्रम प्रारूप की रचना की गई, जिसमें कुछ विभेद देखने को मिलता है। जैसे—

1. उभरते भारतीय समाज में शिक्षक।
2. अधिगमकर्ता विकास और अध्ययन अध्यापन प्रक्रिया।
3. भारत में शैक्षिक प्रणाली का विकास।
4. शैक्षिक तकनीकी एवं प्रबन्धन के मूल तत्व।

इन चार मूल प्रश्न-पत्रों के अलावा चयनित प्रश्न पत्र के रूप में दो विद्यालयी शिक्षण विषयों के सन्दर्भ में पंचम एवं षष्ठ प्रश्न पत्र का प्रावधान किया गया जबकि एक विशेषीकरण का प्रश्न-पत्र रखा गया। इस सप्तम प्रश्न-पत्र के लिए प्रारम्भिक शिक्षा, जनसंख्या शिक्षा, पर्यावरण शिक्षा, वैकल्पिक शिक्षा, शैक्षिक प्रशासन तथा प्रबन्धन, शैक्षिक तथा मानसिक मापन, शारीरिक शिक्षा व्यवसाय निर्देशन, मूल्य शिक्षा आदि विषय रखे गये हैं। 2001 के अन्त में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के द्वारा पाठ्यक्रम प्रारूप की रचना की गई, उसका अनुकरण करता हुआ छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर में बी0 एड0 पाठ्यक्रम के लिये निम्न चार मूल प्रश्न पत्रों को संचालित कर रहा है —

1. उभरते भारतीय समाज में शिक्षक।
2. अधिगमकर्ता विकास और अध्ययन अध्यापन प्रक्रिया।
3. भारत में शैक्षिक प्रणाली का विकास।
4. शैक्षिक तकनीकी एवं प्रबन्धन के मूल तत्व।

इन चार मूल प्रश्न पत्रों के अलावा छात्र शिक्षण विषय में पारंगत होने के लिये दो शिक्षण विषयों का

चयन करता है, इन्हीं लिये गये शिक्षण विषयों के आधार पर छात्र अध्यापक को शिक्षण अभ्यास कार्य करवाया जाता है। इन विषयों में शारीरिक विज्ञान, भौतिक विज्ञान, गणित, सामाजिक विज्ञान, शिक्षण भाषा में हिन्दी/अंग्रेजी/संस्कृत तथा उर्दू तथा कर्मस/गृह विज्ञान/संगीत तथा कला आदि शिक्षण विषयों को रखा गया है। भाषा शिक्षण के सन्दर्भ में छात्राध्यापक हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत तथा उर्दू आदि में से केवल एक ही भाषा का चयन कर सकता है। एक साथ दो भाषाओं को नहीं लियो जा सकता। उसी तरह कामर्स, गृह विज्ञान संगीत तथा कला में से केवल एक ही शिक्षण विषय का चयन किया जा सकता है।

इसी तरह भौतिक विज्ञान तथा गणित शिक्षण में से छात्र केवल एक ही विषय का चयन कर सकता है। प्रत्येक प्रश्न पत्र 100 अंकों का होता है। जिसमें दीर्घउत्तरीय लघुउत्तरीय तथा निबन्धात्मक प्रश्नों का समावेश होता है। इस प्रकार चार सैद्धान्तिक प्रश्न पत्रों के लिये 400 अंक निर्धारित किये गये हैं तथा शिक्षण विषय के रूप में चयनित विषयों से सम्बन्धित दो प्रश्न पत्र होते हैं जो 100-100 अंकों के होते हैं। इस प्रकार शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय सैद्धान्तिक प्रश्न पत्रों के लिये 600 अंकों को निर्दिष्ट करता है।

प्रत्येक अध्यापक शिक्षा कार्यक्रम के मूल्यांकन के लिए राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद के द्वारा जिन कसौटियों का उल्लेख “अध्यापन शिक्षा का पाठचर्या प्रारूप” में किया गया है—

1. क्या कार्यक्रम को अवधि संसाधन तथा उद्देश्यों के सन्दर्भ में उपयुक्त ढंग से संचालित किया गया है।
2. क्या कार्यक्रम ने श्रेष्ठ परिणाम पेश किये हैं ?
3. क्या कार्यक्रम हेतु आवश्यक निवेश उपलब्ध करवाये गये हैं ?
4. क्या आन्तरिक कुशलता के सन्दर्भ में कार्यक्रम को प्रभावी ढंग से क्रियान्वित किया गया ?
5. क्या कार्यक्रम वर्तमान शैक्षिक सन्दर्भ में प्रासंगिक हैं ?
6. क्या कार्यक्रम समस्त या अधिकांश अध्यापकों की आवश्यकता को सन्तोषजनक ढंग से पूरी कर रहा है?
7. क्या कार्यक्रम लागत प्रभावी है ?

इन मानदण्डों के परिप्रेक्ष्य में उपरोक्त अध्यापक शिक्षा प्रारूप न तो अधिकांश अध्यापकों की आवश्यकता (शिक्षण कुशलता की प्राप्ति) को ही पूरा करने के समक्ष हो सकता है और न ही प्रासंगिक, श्रेष्ठ परिणामदायी तथा प्रभावी क्रियान्वयन योग्य बन सकता है।

व्यवहारिक पक्ष

इस पक्ष में क्षेत्राधारित अनुभव को महत्व दिया गया है।

शिक्षण अभ्यास

1. शिक्षण कौशल में दक्षता हेतु सप्ताह में दो या तीन दिन अभ्यास प्रतिपुष्टि अभ्यास क्रम में शिक्षण अभ्यास का आयोजन करना ताकि प्रत्येक छात्राध्यापक/छात्राध्यापिका निकटतम सम्भव दक्षता स्तर को प्राप्त कर सकें।
2. शिक्षण अभ्यास का साथियों के द्वारा निरीक्षण।
3. सामुदायिक कार्य जिसके विद्यालय छोड़ने वालों की शिक्षा विद्यालय न जाने वालों की शिक्षा, प्रौढ़ असाक्षरों की शिक्षा आदि पर इस तरह से ध्यान देना निहित है ताकि प्रत्येक छात्राध्यापक/छात्राध्यापिका कम से कम तीन से पांच लोगों को शिक्षित कर सके।

ख-इण्टर्नशिप- विद्यालय में शिक्षण कार्य के अतिरिक्त, छात्राध्यापक/छात्राध्यापिका को वहाँ पर नियमित अध्यापक के रूप में कार्य करने के अभ्यास के लिए प्रयास इण्टर्नशिप में करना होता है, जैसे- उपस्थिति दर्ज करना, अध्यापक सभा में भाग लेना, लिखित कार्य करना। सूचनाएं लिखना। परीक्षा प्रश्न पत्र तैयार करना, विद्यालय अभिलेख तैयार करना एवं व्यवस्थित रखना आदि। चयनित विशेषीकरण के क्षेत्र में सन्दर्भ में प्रत्येक छात्राध्यापक/छात्राध्यापिका को विद्यालय अनुभव के बारे में एक विवरण तैयार करना होगा और सैद्धान्तिक प्रश्न पत्रों के अनुप्रयोगात्मक कार्यों को इस अवधि में ही पूरा करने के लिए प्रयास करना होगा।

छात्राध्यापक चुने गये विशेष क्षेत्र से सम्बन्धित एवं विद्यालय से सम्बन्धित अनुभवों के बारे में एक विवरण तैयार करता है।

आन्तरिक तथा बाह्य मूल्यांकन

अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में प्रायः इन दोनों ही प्रकार के मूल्यांकन प्रारूप का प्रयोग किया जाता है। यह मूल्यांकनकर्ता निर्भर वर्गीकरण है। आन्तरिक मूल्यांकन वह मूल्यांकन होता है जिसमें मूल्यांकनकर्ता उसी संस्थान या केन्द्र से सम्बन्धित होते हैं। जहाँ अधिगमकर्ता अध्ययन कार्य कर रहा हो। यह आवश्यक नहीं होता है कि मूल्यांकनकर्ता विषयाध्यापक ही हो जिसने सत्र पर्यन्त उनके कार्यों का निरीक्षण किया हो।



उच्चतरमाध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों की निर्देशन दक्षता का तुलनात्मक अध्ययन

शिवेन्द्र सिंह
शोध-छात्र
श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय,
गजरौला, अमरोहा (उ०प्र०)

डॉ० धर्मपाल सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय
श्री गणेशराय, पी०जी० कालेज,
डोभी, जौनपुर, उ०प्र०

मनुष्य ईश्वर की सबसे अनुपम रचना है। मानव शिशु—रूप में नग्न पैदा हुआ। वातावरण से निरन्तर संघर्ष करते हुए उसने जीना सीखा। वह शनैः शनैः अपने को अपने वातावरण में जीवित रखने तथा विकास करने में सक्षम हो सका। मानव—विकास का मूल आधार शिक्षा है। शिक्षा मानव की एक विशेष एवं सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है। सम्पूर्ण प्राणि जगत में केवल मनुष्य ही ऐसा विशिष्ट जीव है जिसने विविध प्रकार के विकास एवं प्रगति की दिशा में अभूतपूर्व उन्नति की है। मनुष्य की इस अभूतपूर्व विकास की प्रक्रिया को वर्तमान रूप प्रदान करने में शिक्षा का सर्वाधिक योगदान है। अतः शिक्षा हमारे समस्त व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता है। मानव सदैव से ही जिज्ञासु रहा है और सदा से ही कुछ न कुछ सीखता आया है तथा सीखने के परिणाम स्वरूप ही वह आज सभ्यता और संस्कृति के उच्च शिखर तक पहुँच गया है। आज वह पृथ्वी के अतिरिक्त चन्द्र, मंगल आदि ग्रहों तक पहुँच गया है। समाज में जन्म लेने के पश्चात् यथासम्भव प्राणी को अपने समाज के अनुकूल ढालना पड़ता है। कहा जाता है कि “मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।” उदात्त प्रवृत्तियों को विकसित करके मानव—शिशु को स्वस्थ समाज का उपयोगी प्राणी बनाने में अर्थात् उसे समाज का योग्य तथा सफल सदस्य बनाने में भी शिक्षा की ही भूमिका सर्वाधिक रही है।

प्राचीन भारत में जीवन का मूल उद्देश्य “पुरुषार्थ चतुष्टय” की प्राप्ति था। “पुरुषार्थ चतुष्टय” से तात्पर्य है—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। जीवन के यही क्रमिक सोपान माने जाते थे। चूँकि शिक्षा के उद्देश्य जीवन के उद्देश्यों पर ही आधारित होते हैं, इसलिए मूलरूप में जीवन के उद्देश्य ही शिक्षा के उद्देश्य थे। तत्कालीन भारत में आध्यात्मिक शिक्षा की प्रधानता रही है।

समय के साथ—साथ सामाजिक आवश्यकतायें बदलती रहती हैं तथा सामाजिक दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आते रहते हैं। आधुनिक शिक्षाशास्त्रियों के अनुसार— शिक्षा प्राणी की उन सभी क्षमताओं का विकास है, जो उसे वातावरण को नियन्त्रित करने तथा उसकी सम्भावनाओं की पूर्ति के योग्य बना सके। अतः यह कहा जा सकता है कि वह शिक्षा, शिक्षा ही नहीं है जो तत्कालीन वैयक्तिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति न कर सके। स्पष्ट है कि वैयक्तिक, सामाजिक तथा राष्ट्र की उन्नति एवं प्रगति के लिए प्रत्येक मनुष्य का शिक्षित होना अत्यन्त आवश्यक है।

कोठारी आयोग (1964–66) के अनुसार — “राष्ट्र के भाग्य का निर्माण कक्षाओं में होता है।” इन कक्षाओं का संचालन शिक्षक करता है। वास्तव में शिक्षक ही शिक्षा का मूलाधार है। भारतीय समाज में शिक्षकों का स्थान प्राचीन काल से ही सर्वोच्च रहा है। श्री जे.एफ. ब्राउन के अनुसार— “पाठ्यक्रम, विद्यालय—संगठन और पठन—सामग्री यद्यपि अध्यापन के महत्वपूर्ण अंग हैं, परन्तु वे सभी तब तक निष्प्राण रहते हैं जब तक कि अध्यापक के सजीव व्यक्तित्व द्वारा उनमें प्राण प्रतिष्ठा नहीं कर दी जाती।” श्री सैयदेन के अनुसार— “हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि शिक्षण एक उदात्त व्यवसाय है और मानव इतिहास की महानतम तथा श्रेष्ठतम विभूतियों ने इस

व्यवसाय को अपनाया था। शिक्षक ही समाज में ज्ञान का आलोक विखेरता है और हजारों-लाखों चिरागों में रोशनी बाँटता है। यद्यपि आज सम्पूर्ण शिक्षा का केन्द्र-बिन्दु बालक है, परन्तु शिक्षक, शिक्षण प्रक्रिया में पथ-प्रदर्शक, निर्देशक, सीखने के लिए उपयुक्त परिस्थिति-निर्माणक, सहयोगी तथा व्यवस्थापक के रूप में आज भी अद्वितीय स्थान रखता है।

तीव्र गति से बदलते वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में योग्य शिक्षकों की कमी से समाज व देश का विकास बाधित रहा है। देश में बढ़ती हुई जनसंख्या, शैक्षिक आवश्यकतायें, शिक्षा को रोजगार का माध्यम बनाये जाने तथा इसे राष्ट्र की प्रगति का आधार माने जाने के कारण सभी देशों की शैक्षिक संरचना का द्रुतगति से विस्तार एवं विकास हो रहा है। शिक्षा के व्यवसायीकरण के कारण भी देश में शिक्षण संस्थाओं की माँग बढ़ी है। फलस्वरूप शिक्षण संस्थाओं की बाढ़ सी आ गयी। अतः बहुत बड़ी संख्या में कुशल शिक्षकों की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। शिक्षक अपने समस्त कार्य, कुशलता एवं सफलता पूर्वक कैसे सम्पन्न करे— यह प्रश्न विचारकों की दृष्टि में आज तक बना हुआ है। इस परिप्रेक्ष्य में दो मत सामने आते हैं। कुछ लोगों का मत है— शिक्षक बनाये नहीं जाते, शिक्षक पैदा होते हैं। उदाहरण के रूप में चाणक्य, समर्थगुरु रामदास, दयानन्द सरस्वती, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, विरजानन्द, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गांधी, अरविन्द घोष, गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि का नाम लिया जा सकता है। परन्तु कुछ शिक्षाविदों का मत है कि शिक्षक के लिए विषय का पूर्ण ज्ञान अर्थात् उसका मेधावी होना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसे शिक्षण कौशल में भी दक्ष होना चाहिए। अतः प्रशिक्षण के माध्यम से शिक्षक तैयार किये जा सकते हैं। ऐसी विचार धारा के शिक्षाविदों ने ही शिक्षकों की बढ़ती हुयी माँग को देखते हुए शिक्षण व्यवसाय के लिए शिक्षक-प्रशिक्षण व्यवस्था को जन्म दिया और सफल शिक्षण के लिये शिक्षकों के प्रशिक्षण पर बल दिया। यही कारण है कि प्रशिक्षण में वैज्ञानिक आविष्कारों का भी उपयोग किया जाने लगा और फिर शैक्षिक तकनीकी का भी आधुनिक शिक्षा में आविर्भाव हुआ। प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले व्यक्तियों में सृजनात्मकता का विकास तो होता ही है, साथ ही साथ उनमें आत्मविश्वास भी बढ़ता है।

शिक्षण के अन्तर्गत शिक्षण के अभीष्ट परिणामों, प्रभावों के मूल्यांकन की चेष्टा की जाती है तथा शिक्षण दक्षता में शिक्षण प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप शिक्षक व्यवहार तथा शिक्षक व्यवहार की सहगामी क्रियायें समाहित होती हैं। अतः शिक्षण दक्षता शिक्षक का एक प्रकार का विशिष्ट एवं प्रभावकारी गुण है। जो किसी विशिष्ट कार्य, पाठ्यक्रम या व्यवसाय में सफलता प्राप्त करने के लिये आवश्यक होता है और जिससे व्यक्ति को अपने कार्य सम्पादित करने में असीम आनन्द की अनुभूति होती है तथा व्यक्तिगत रूप से उसे बड़ा सन्तोष मिलता है।

ऐसी धारणा है कि अप्रशिक्षित शिक्षकों की अपेक्षा प्रशिक्षित शिक्षकों की निर्देशन दक्षता अधिक अनुकूल होती है, किन्तु केवल तर्कसम्मत विचारों को ही किसी तथ्य की सत्यता की कसौटी नहीं माना जा सकता। अतः इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुये प्रस्तुत शोध-पत्र इस तथ्य को प्रायोगिक रूप से जानने का प्रयास है कि क्या प्रशिक्षित तथा अप्रशिक्षित शिक्षकों की निर्देशन दक्षता में स्पष्ट अन्तर है? अन्तर स्पष्ट होने से प्रशिक्षण की महत्ता स्पष्ट हो सकेगी और प्रशिक्षण महाविद्यालयों की उपयोगिता भी स्पष्ट हो जायेगी। इससे नूतन शिक्षण प्रविधियों एवं तकनीकियों का अन्वेषण और विकास तथा विस्तार होगा। फलतः शिक्षा की गुणवत्ता में भी अभिवृद्धि होगी और प्रशिक्षण महाविद्यालयों के स्तर में भी उन्नयन होगा। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुये शोध-छात्र ने शिक्षण दक्षता के एक बिन्दु “उच्चतरमाध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों की निर्देशन दक्षता का तुलनात्मक अध्ययन” नामक प्रकरण को शोध कार्य के लिये प्रस्तावित किया है।

अध्ययन का उद्देश्य :

उच्चतर माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों की निर्देशन दक्षता का अध्ययन एवं उनकी तुलना करना।

अध्ययन की परिकल्पना :

उपर्युक्त उद्देश्य के अध्ययन हेतु परीक्षण के लिये की गयी परिकल्पना निम्नवत् है –

“उच्चतर माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों की निर्देशन दक्षता में सार्थक अन्तर नहीं होता”।

अनुसन्धान विधि :

प्रस्तुत अध्ययन की परिकल्पना एवं उद्देश्य को ध्यान में रखकर अध्ययन को पूर्ण करने के लिए “वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि” का प्रयोग किया गया है।

न्यादर्श :

प्रस्तुत अध्ययन में जौनपुर जनपद के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों (शासकीय, अशासकीय सहायता प्राप्त, वित्तविहीन मान्यता प्राप्त) के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित, शिक्षकों तथा जौनपुर जनपद के ही दो प्रशिक्षण महाविद्यालयों के छात्र –अध्यापकों को समग्र के रूप में लिया गया है। इस प्रकार दोनों समूहों के 500 उच्चतर माध्यमिक शिक्षकों (400 प्रशिक्षित तथा 100 अप्रशिक्षित) का चयन “यादृच्छिक प्रतिदर्श चयन विधि” द्वारा किया गया है।

उपकरण :

प्रस्तुत अध्ययन में उच्चतर माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों की निर्देशन दक्षता के मापन हेतु उपकरण के रूप में आगरा कालेज, आगरा के मनोविज्ञान विभाग के “डॉ० प्रमोद कुमार एवं डॉ० डी०एन० मुथा” द्वारा विकसित “शिक्षण दक्षता मापनी (TES)” का प्रयोग किया गया है।

प्रयुक्त साँख्यिकी :

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण द्वारा प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण के लिये मध्यमान, माध्यिका, बहुलक, प्रामाणिक विचलन तथा ‘t’ परीक्षण आदि साँख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग किया गया है।

आँकड़ों के विश्लेषण की तालिका :

समूह	मध्यमान	प्रामाणिक विचलन	‘t’ मूल्य
प्रशिक्षित	31.83	2.66	4.11
अप्रशिक्षित	22.48	2.27	

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि उच्चतर माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित शिक्षकों की निर्देशन दक्षता का मध्यमान 31.83 तथा अप्रशिक्षित शिक्षकों की निर्देशन दक्षता का मध्यमान 22.48 है। दोनों मध्यमानों के बीच व्याप्त अन्तर की सार्थकता ज्ञात करने के लिये गणना किये गये ‘t’ परीक्षण का मान 4.11 प्राप्त हुआ जो कत्रि के 0.05 विश्वासस्तर पर मान 1.96 से अधिक तथा कत्रि के 0.01 विश्वास स्तर पर मान 2.58 से भी अधिक है। अतः इससे स्पष्ट है कि प्रशिक्षित शिक्षकों की निर्देशन दक्षता तथा अप्रशिक्षित शिक्षकों की निर्देशन दक्षता में सार्थक अन्तर व्याप्त है। इसलिये शून्य परिकल्पना “उच्चतर माध्यमिक स्तर के प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित शिक्षकों की निर्देशन दक्षता में सार्थक अन्तर नहीं होता” को अस्वीकृत किया जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि प्रशिक्षित उच्चतर माध्यमिक शिक्षकों की अप्रशिक्षित शिक्षकों की तुलना में निर्देशन दक्षता बेहतर है।

निष्कर्ष एवं सुझाव :

प्रस्तुत शोध में आँकड़ों के साँख्यिकीय विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रशिक्षित उच्चतर माध्यमिक शिक्षकों की निर्देशन दक्षता अप्रशिक्षित की तुलना में श्रेष्ठतर है। अतः विद्यालयों में प्रशिक्षित शिक्षकों की महत्ता स्वयमेव स्पष्ट है। इस आधार पर शिक्षा-क्षेत्र में निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं :-

1. शिक्षक-प्रशिक्षण आवश्यक है। इसकी गुणवत्ता की वृद्धि में और अधिक ध्यान दिया जाय। इसके लिए कुशल शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाया जाय।
2. अप्रशिक्षित शिक्षकों के लिए सेवाकालीन प्रभावशाली प्रशिक्षण व्यवस्था की जाय।
3. अप्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति न की जाय, क्योंकि अप्रशिक्षित शिक्षकों से शिक्षण की गुणवत्ता प्रभावित होती है।
4. प्रस्तुत अध्ययन से प्रशिक्षण महाविद्यालयों की उपयोगिता पुष्ट होती है। इन महाविद्यालयों का स्तर और ऊँचा उठाया जाय तथा इनमें विशेष रूप से प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति की जाय।

नूतन श्रेष्ठतर प्रशिक्षण विधियों की आवश्यकता है। अतः इसके लिए उत्कृष्ट अनुसन्धान पर बल दिया जाय तथा नीवनतम् उच्च स्तर की तकनीकी का विकास किया जाय क्योंकि किसी कार्य को करने की अपेक्षा उस कार्य को प्रभावी ढंग से करना अधिक श्रेयस्कर होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. प्रकाशम, डी0 (1988) : 'ए स्टडी ऑफ टीचर इफेक्टिवनेस ऐज ए फंक्शन ऑफ स्कूल आर्गेनाइजेशनल क्लाइमेट एण्ड टीचिंग काम्पिटेंसी', पी-एच0डी0, एजूकेशन, रविशंकर विश्वविद्यालय।
2. सिंह, त्रिवेणी (1988) : "ए स्टडी ऑफ टीचिंग इफिसिएंसी इन रिलेशन टू जॉब सैटिस्फैक्शन एण्ड सोसियो-इकोनामिक स्टेटस ऑफ सेकेण्ड्री स्कूल टीचर्स", पी-एच0डी0, एजूकेशन, अवध विश्वविद्यालय।
3. दासारि, राजेन्द्र प्रसाद (1989) : "लर्निंग एक्सपेरियेंस एण्ड देयर इफेक्टिवनेस इन टीचिंग : एन आस्पेक्ट ऑफ एजूकेशनल टेक्नोलॉजी", इण्डियन एजूकेशनल रिव्यू, वाल्यूम 24(2) : 124-130.
4. अदावल, एस0पी0 (1989) : "इयरबुक ऑफ एजूकेशनल रिसर्च", नई दिल्ली, एन0सी0ई0आर0टी0।
5. बीना, एस0 (1995) : "डिटर्मिनेंस ऑफ टीचर इफेक्टिवनेस", अम्बाला कैंन्ट : द इण्डिया पब्लिकेशन्स.
6. गुप्ता, एस0पी0 (1995) : "आधुनिक मापन तथा मूल्यांकन", शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
7. सिंह, एन0 रघुराम (1998) : "रिसर्च इन टीचर एजूकेशन", द हिन्दू, 13 अक्टूबर.
8. कृष्णा प्रसाद, बी0 (2002) : "टीचर इफेक्टिवनेस एण्ड टेम्पेरामेण्ट वैरियेबुल्स ऑफ सेकेण्डरी स्कूल टीचर्स," रिसर्च एण्ड रिप्लेक्शन्स, वाल्यूम-1, नं0-2, जुलाई-सितम्बर (2002)।
9. कपिल, एच0के0 (2004) : "अनुसंधान विधियाँ", हरप्रसाद भार्गव, कचहरी घाट, आगरा।
10. लत्तुका एट.अल. (2007) : "यूजिंग क्वालिटेटिव मेथड्स टू ऐसेस टीचिंग इफेक्टिवनेस", (ईजे 7891715) ईआरआईसी.
11. गुप्ता, प्रो0एस0पी0 (2011) : "अनुसंधान संदर्भिका", शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।



हाईस्कूल कक्षा के विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिरुचियों का तुलनात्मक अध्ययन

वन्दना गुप्ता

सहायक प्राध्यापक शिक्षक शिक्षा विभाग
बंशीधर महाविद्यालय उरई, (जालौन) उ.प्र.

“शिक्षा गति शील है” अति प्राचीन समय से लेकर आज तक शिक्षा अपने लम्बे समय में अनेक परिवर्तन देख चुकी है। ये परिवर्तन उसमें इसलिए होता है ताकि वह समाज की आवश्यकता को पूर्ण कर सके। किसी भी समाज या राष्ट्र को विकसित करने में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। शिक्षा के बिना कोई भी राष्ट्र अपने उस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता जो उसके लिए अपेक्षित है। शिक्षा केवल ज्ञान के लिए ही नहीं हैं, वरन् मानव जीवन के विभिन्न आयामों को विकसित करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आज शिक्षा पाठ्यक्रम-केन्द्रित न होकर बाल-केन्द्रित हो गयी है। अतः बालक की प्रकृति, क्षमताओं, शक्तियों, योग्यताओं और उनकी रुचियों को आधार बनाकर ही शैक्षिक विधान का आयोजन किया जा सकता है। आज बालक शिक्षा के लिए नहीं वरन् शिक्षा बालक के लिए है। अतः बालक की प्रकृति का पूर्ण ज्ञान करके ही उसके स्वाभाविक, निरन्तर व क्रमिक विकास के अवसर जुटाये जा सकते हैं।

किसी भी राष्ट्र के विकास के लिए आवश्यक है कि वहाँ पर शिक्षा का व्यापक रूप से प्रसार हो, प्रत्येक नागरिक को चाहे वह ग्रामीण हो या शहरी, अनुसूचित जाति का हो या सवर्ण सभी को शिक्षा के लिए समान अवसर प्राप्त होने चाहिए। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि जिस समय बालकों को विषयों का चयन करने का अवसर प्राप्त होता है, उन्हें केवल उन्हीं विषयों का चयन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाये, जिसमें कि वे अपनी रुचि रखते हों। एक व्यक्ति क्या और कैसे करेगा, यह बहुत कुछ उसकी रुचियों द्वारा ही निर्धारित होता है। रुचियाँ एक प्रकार की सीखी हुई अभिप्रेरणाएँ हैं जब एक व्यक्ति अपनी पसन्द के आधार पर कार्य करने को स्वतंत्र रहता है तो वह व्यक्ति क्रियाओं को अपनी रुचि के आधार पर करता और चुनता है।

अभिरुचि वह आन्तरिक शक्ति है जो किसी वस्तु, व्यक्ति या क्रिया की ओर आकर्षित होने के लिए प्रेरित करती है तथा उन्हें प्राप्त करने पर उसे संतुष्टि प्रदान करता है, अभिरुचि से व्यक्ति का व्यवहार अपने परिवेश के साथ समायोजित होता है क्योंकि अभिरुचि सम्बन्धी क्रियाओं को करने में उसे आनन्द की अनुभूति होती है। अभिरुचि दो प्रकार की होती है।

1. स्वाभाविक या जन्मजात अभिरुचि
2. अर्जित अभिरुचि

मूल-प्रवृत्तिजन्य अभिरुचियों को जन्मजात अभिरुचि कहते हैं। जैसे खाने-पीने की अभिरुचि, बच्चों की खेलने में अभिरुचि आदि। जबकि अर्जित अभिरुचि, अर्जित संस्कारों जैसे आदतों, स्थायी भाव, झुकाव तथा स्वभाव से उत्पन्न होती है। विद्यार्थी जीवन को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि माता-पिता, अभिभावकों, शिक्षकों तथा समाज की अन्य इकाइयों उनकी रुचियों एवं उनकी अभिक्षमताओं के अनुरूप कार्य करें। बौद्धिक अभिक्षमता के होते हुए भी विद्यार्थी उपयुक्त मार्गदर्शन प्राप्त न करने के कारण अपने उद्देश्य से भटक जाता है। ऐसी स्थिति से बचने के लिए यह आवश्यक है कि बालकों को उचित निर्देशन प्रदान कर उनकी शैक्षिक रुचियों के अनुकूल विषयों के चयन के लिए उन्हें प्रेरित किया जाय।

अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व :-

वर्तमान शोध हाईस्कूल में पढ़ने वाले विद्यार्थियों से सम्बन्धित है जिनकी औसत आयु 14 वर्ष है यह वह अवस्था है जब बच्चों में अनेक ऐसे परिवर्तन होते हैं जो उसमें एक विशेष प्रकार की उथल-पुथल उत्पन्न कर देते हैं। यदि उस समय उन्हें उचित निर्देशन नहीं प्रदान किया गया तो वे अपने मार्ग से भटक सकते हैं। भारत की वर्तमान शिक्षा प्रणाली में अनेक ऐसी कमियाँ देखी गयीं जिनसे बालकों में अनिश्चितता की स्थिति सदैव विद्यमान रहती है। और वे अपने भावी लक्ष्यों को चुनने में सदैव द्वन्द्वों का शिकार बने रहते हैं। जिसका परिणाम यह होता है कि वे किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त नहीं कर पाते हैं और उनका जीवन नैराश्य के तमस में डूबा रहता है। प्रस्तुत अध्ययन हाईस्कूल कक्षा के विद्यार्थियों को उनकी अभिरुचि के अनुकूल विषयों का चयन करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

शोध अध्ययन के उद्देश्य :-

1. हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की कृषि सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की वाणिज्य सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की ललितकला सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
4. हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की गृहविज्ञान सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
5. हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की समाजशास्त्र सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
6. हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की विज्ञान सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि का तुलनात्मक अध्ययन करना।
7. हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की तकनीकी सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पनायें :-

- H01. हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की कृषि सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि में सार्थक अन्तर नहीं है।
 H02. हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की वाणिज्य सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि में सार्थक अन्तर नहीं है।
 H03. हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की ललितकला सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि में सार्थक अन्तर नहीं है।
 H04. हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की गृहविज्ञान सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि में सार्थक अन्तर नहीं है।
 H05. हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की समाजशास्त्र सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि में सार्थक अन्तर नहीं है।
 H06. हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की विज्ञान सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि में सार्थक अन्तर नहीं है।
 H07. हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की तकनीकी सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि में सार्थक अन्तर नहीं है।

अनुसन्धान विधि :- प्रस्तुत शोध अध्ययन की विषय वस्तु एवं प्रकृति को देखते हुए सर्वेक्षण विधि का चयन किया है।

न्यादर्श :- न्यादर्श के रूप में शोधार्थिनी द्वारा हाई स्कूल कक्षा में अध्ययनरत 100 छात्र एवं 100 छात्राओं का चयन यादृच्छिक विधि से किया गया।

शोध उपकरण :- प्रस्तुत शोध में शैक्षिक अभिरुचि का मापन करने के लिए डॉ0 एस0पी0 कुलश्रेष्ठ का

शैक्षिक रूचि प्रपत्र का प्रयोग किया गया।

सांख्यिकीय विश्लेषण :- शोधार्थिनी के द्वारा "हाईस्कूल स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की शैक्षिक अभिरूचि का तुलनात्मक अध्ययन" की समस्या के लिए आंकड़ों का संग्रह करने के लिए मुख्य तीन सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया है।

1. मध्यमान
2. मानक विचलन
3. क्रान्तिक अनुपात

विश्लेषण एवं व्याख्या :-

परिकल्पना नं० 1. — हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की कृषि सम्बन्धी शैक्षिक अभिरूचि में अन्तर की सार्थकता—

तालिका नं० (1)

प्रतिदर्श	छात्र संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	डी0एफ	क्रान्तिक अनुपात	सार्थकता	सारणीमान
छात्र	100	6.20	3.75	198	0.46	.05	1.97
छात्रायें	100	5.95	3.78			.01	2.60

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की कृषि सम्बन्धी शैक्षिक अभिरूचि पर प्राप्त टी मूल्य .46 है जो सार्थकता के दोनों स्तर 0.05 एवं 0.01 पर तालिका मूल्य से कम है। इस प्रकार शून्य परिकल्पना नं०-1 स्वीकृत हुई। इसका तात्पर्य यह है कि हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की कृषि सम्बन्धी शैक्षिक अभिरूचि में सार्थक अन्तर नहीं है।

परिकल्पना नं० 2. — हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की वाणिज्य सम्बन्धी शैक्षिक अभिरूचि में अन्तर की सार्थकता—

तालिका नं० (2)

प्रतिदर्श	छात्र संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	डी0एफ	क्रान्तिक अनुपात	सार्थकता	सारणीमान
छात्र	100	6.00	3.73	198	0.42	.05	1.97
छात्रायें	100	5.78	3.66			.01	2.60

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि हाईस्कूल के छात्र एवं छात्राओं की वाणिज्य सम्बन्धी शैक्षिक अभिरूचि पर प्राप्त टी मूल्य .42 है जो सार्थकता के दोनों स्तर 0.05 एवं 0.01 पर तालिका मूल्य से कम है। इस प्रकार शून्य परिकल्पना नं०-2 स्वीकृत हुई। इसका तात्पर्य यह है कि हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की वाणिज्य सम्बन्धी शैक्षिक अभिरूचि में सार्थक अन्तर नहीं है।

परिकल्पना नं० 3. — हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की ललितकला सम्बन्धी शैक्षिक अभिरूचि में अन्तर की सार्थकता—

तालिका नं० (3)

प्रतिदर्श	छात्र संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	डी0एफ	कान्तिक अनुपात	सार्थकता	सारणीमान
छात्र	100	6.00	3.73	198	0.42	.05	1.97
छात्रायें	100	5.78	3.66			.01	2.60

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि हाईस्कूल के छात्रों एवं छात्राओं की ललितकला सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि पर प्राप्त टी मूल्य .16 है जो सार्थकता के दोनों स्तर 0.05 एवं 0.01 पर तालिका मूल्य से कम है। इस प्रकार शून्य परिकल्पना नं०-3 स्वीकृत हुई। इसका तात्पर्य यह है कि हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की ललितकला सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि में सार्थक अन्तर नहीं है।

परिकल्पना नं० 4. — हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की गृहविज्ञान सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि में अन्तर की सार्थकता—

तालिका नं० (4)

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि शैक्षिक

प्रतिदर्श	छात्र संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	डी0एफ	कान्तिक अनुपात	सार्थकता	सारणीमान
छात्र	100	5.90	3.74	198	0.65	.05	1.97
छात्रायें	100	6.25	3.84			.01	2.60

अभिरुचि (गृहविज्ञान) में हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं का मध्यमान क्रमशः 5.90 एवं 6.25 है तथा मानक विचलन 3.74 एवं 3.84 है। दोनों समूहों के मध्यमान से स्पष्ट है कि छात्रों की तुलना में छात्रायें गृहविज्ञान विषय में अधिक रुचि लेती हैं। गृहविज्ञान सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि पर प्राप्त टी मूल्य का मान 0.65 है जो सार्थकता के दोनों स्तरों पर तालिका मूल्य से कम है। इस प्रकार यह परिकल्पना स्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना नं० 5 — हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की समाजशास्त्र सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि में अन्तर की सार्थकता—

तालिका नं० (5)

प्रतिदर्श	छात्र संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	डी0एफ	कान्तिक अनुपात	सार्थकता	सारणीमान
छात्र	100	5.70	3.40	198	0.11	.05	1.97
छात्रायें	100	5.75	2.94			.01	2.60

उपर्युक्त तालिका से ज्ञात होता है कि हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की समाजशास्त्र सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि पर प्राप्त टी मूल्य .11 है जो सार्थकता के दोनों स्तर के मानों से कम है इस प्रकार यह शून्य परिकल्पना

कि हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की समाजशास्त्र सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है, स्वीकृत की जाती है।

परिकल्पना नं० 6. — हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की विज्ञान सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि में अन्तर की सार्थकता—

तालिका नं० (6)

प्रतिदर्श	छात्र संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	डी0एफ	कान्तिक अनुपात	सार्थकता	सारणीमान
छात्र	100	8.30	3.02	198	5.87	.05	1.97
छात्रायें	100	5.55	3.58			.01	2.60

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की विज्ञान सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि पर प्राप्त टी मूल्य 5.87 है जो सार्थकता स्तर के दोनों स्तरों 0.05 एवं 0.01 स्तर पर सार्थक है इस प्रकार यह परिकल्पना कि हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की विज्ञान सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि में सार्थक अन्तर नहीं पाया जाता है, निरस्त होती है और यह निष्कर्ष निकलता है कि छात्र-छात्राओं की तुलना में विज्ञान विषय में अधिक शैक्षिक रुचि रखते हैं।

परिकल्पना नं० 7. — हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की तकनीकी सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि में अन्तर की सार्थकता—

तालिका नं० (7)

प्रतिदर्श	छात्र संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	डी0एफ	कान्तिक अनुपात	सार्थकता	सारणीमान
छात्र	100	7.55	3.35	198	3.75	.05	1.97
छात्रायें	100	5.70	3.62			.01	2.60

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि छात्राओं की अपेक्षा छात्र तकनीकी विषयों में अधिक रुचि लेते हैं, सार्थकता स्तर के दोनों स्तरों 0.05 एवं 0.01 स्तर पर सार्थक है। इस प्रकार यह परिकल्पना कि हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की तकनीकी सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि में सार्थक अन्तर नहीं है, निरस्त होती है और यह निष्कर्ष निकलता है कि छात्र, छात्राओं की तुलना में तकनीकी विषय में अधिक रुचि रखते हैं।

अध्ययन के निष्कर्ष :—

- हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की कृषि सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।
- हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की वाणिज्य सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।

- (iii) हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की ललितकला सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।
- (iv) हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की गृहविज्ञान सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।
- (v) हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की समाजशास्त्र सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया।
- (vi) हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की विज्ञान सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि में सार्थक अन्तर पाया गया।
- (vii) हाईस्कूल कक्षा के छात्र एवं छात्राओं की तकनीकी सम्बन्धी शैक्षिक अभिरुचि में सार्थक अन्तर पाया गया।

शैक्षिक निहितार्थ :— शोधार्थिनी द्वारा अध्ययन से प्राप्त परिणामों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बालकों को जिस समय विषयों का चयन करने का अवसर प्राप्त होता है, उन्हें केवल उन्हीं विषयों के चयन के लिए प्रोत्साहित किया जाये, जिनमें कि वे अपनी रुचि रखते हों क्योंकि व्यक्ति उन वस्तुओं, व्यक्तियों, विचारों एवं क्रियाओं की ओर विशेष रूप से आकर्षित होता है जिनमें उसकी रुचि होती है क्योंकि रुचि और अवधान एक सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए शिक्षक, माता-पिता या अभिभावकों को विद्यार्थियों की रुचियों पर भी ध्यान देना चाहिए। और उन्हें उचित निर्देशन प्रदान कर उनकी रुचियों के अनुकूल विषयों के चयन के लिए प्रेरित करना चाहिए।

सन्दर्भ :

1. गुप्ता, एस0पी0 (2011). अनुसंधान संदर्शिका सम्प्रव्यय, कार्य विधि एवं प्रविधि, शरदा पुस्तक भवन इलाहाबाद, पृष्ठ-17.
2. राय, पी0एन0 (2011). अनुसंधान परिचय, लक्ष्म-नारायण प्रकाशन आगरा, पृष्ठ-44.
3. वेस्ट, जोन0 डब्लू (2006). रिसर्च इन एजुकेशन, प्रेटिस हाल पेयरसन एजुकेशन, आई0एन0सी0इंडिया.
4. सारस्वत, मालती (2012). शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा आलोक प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ-368.
5. पाठक, पी0डी0 (2010). शिक्षा मनोविज्ञान श्री विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, पृष्ठ-229.
6. लाल, रमन विहारी एण्ड मानव, राम निवास (2004). शिक्षा मनोविज्ञान, रस्तोगी पब्लिकेशन्स मेरठ, पृष्ठ-164.
7. शर्मा, अरविन्द(2002). उच्चतर माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं की बुद्धिलब्धि, शैक्षिक रुचि, आकांक्षा स्तर पर पारिवारिक संबंधों से शैक्षिक उपलब्धि का समन्वय एक तुलनात्मक अध्ययन, पी0-एच0डी0(शिक्षाशास्त्र) कानपुर विश्वविद्यालय।
8. श्रीवास्तव, एस0के0(2002). ए स्टडी ऑफ एजुकेशनल इन्ट्रेस्ट एण्ड मेन्टल हेल्थ ऑफ हिन्दी एण्ड इंग्लिश मीडियम, पी-एच0डी0(शिक्षाशास्त्र) राजस्थान विश्वविद्यालय।
9. त्रिपाठी, कुमुद(2005). माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की शैक्षिक रुचि का उनकी शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन, इण्डियन जर्नल ऑफ साइकोमेट्री एण्ड एजुकेशन।
10. सिंह, अरुण कुमार(2007). मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल बनारसी दिल्ली।
11. सिंह, अरुण कुमार(2007). उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसी दिल्ली, पृष्ठ-267.
12. प्रसाद, ठाकुर(2007). उच्च, मध्य एवं निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर के किशोर छात्र-छात्राओं की शैक्षिक रुचि, स्वबोध I एवं सृजनात्मक शक्ति का तुलनात्मक अध्ययन, पी-एच0डी0(शिक्षाशास्त्र) कानपुर विश्वविद्यालय।
13. उचाट, डी0ए0(1989). विभिन्न सामाजिक आर्थिक स्तर के किशोर के आत्मबोध अकांक्षा स्तर और रुचियों का अध्ययन, पी-एच0डी0 मनोविज्ञान बी0एच0यू0



एम.पी.बोर्ड तथा सी.बी.एस.ई. बोर्ड द्वारा माध्यमिक स्तर पर प्रस्तावित भौतिक विज्ञान की पाठ्य पुस्तक का तुलनात्मक अध्ययन

श्रीमती वन्दना शर्मा

सहा. प्रध्यापक

सर्वधर्म शिक्षा (एस.डी.एस) महाविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

शिक्षा मानव जीवन के विकास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंश है। जब भी कभी किसी राष्ट्र या समाज में परिवर्तन व जनचेतना की आवश्यकता महसूस हुई है, बुद्धिजीवी वर्ग की निगाहें शिक्षा पर ही आकर टिकी हैं! नागरिकों का शिक्षित व जागरूक होना तथा शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति सतत् प्रयत्नशील रहना अति आवश्यक है।

शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति में पाठ्यक्रम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। जब विद्यार्थी विद्यालय में प्रवेश लेता है तो वह पहले पाठ्य सामग्री की जानकारी प्राप्त करना चाहता है। इसके लिये वह विवरण पत्रिका के पृष्ठ उलटता है व पाठ्य पुस्तकों का निरीक्षण करता है। पाठ्यक्रम के प्रस्तुतीकरण में पाठ्यपुस्तकों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान होता है।

पाठ्य पुस्तक के आधार पर कक्षा कार्य को दिशा मिलती है तथा छात्रों का मूल्यांकन संभव हो पाता है। एक अच्छी पाठ्य पुस्तक में निम्न विशेषताएँ होती हैं:-

- ☐ शिक्षा विभाग द्वारा आधारित पाठ्यक्रम पर आधारित।
- ☐ अनुभवी तथा योग्य लेखकों द्वारा लिखित।
- ☐ उपयुक्त व सरल भाषा शैली।
- ☐ उदाहरणों द्वारा स्पष्टीकरण।
- ☐ सूत्र व संकेतों में स्पष्टता।
- ☐ चित्र, ग्राफ आदि का यथास्थान एवं उचित मात्रा में प्रयोग।
- ☐ आकर्षक व मजबूत जिल्द।
- ☐ पृष्ठों की उच्च गुणवत्ता।
- ☐ सुन्दर, स्पष्ट व शुद्ध छपाई।
- ☐ समय-समय पर आवश्यकतानुसार संशोधन दिये जाने का प्रावधान।

शिक्षा नीति 1968 की सिफारिशों के आधार पर जुलाई 1975 में दिल्ली के विद्यालयों, केन्द्रीय विद्यालयों तथा सी.बी.एस.ई. के अन्य विद्यालयों में 10+2+3 शिक्षा प्रणाली लागू की गई जिसमें कक्षा 10 तक विज्ञान शिक्षा सभी के लिए अनिवार्य कर दी गई।

माध्यमिक शिक्षा मण्डल, भोपाल ने 9 जुलाई 1982 से इस नये पाठ्यक्रम का शुभारम्भ किया।

भारत में तीन प्रकार के विद्यालयी पाठ्यक्रम चयन में हैं।

(1) राज्य स्तर पर।

(2) सी.बी.एस.ई. बोर्ड।

(3) आई.सी.एस.सी. बोर्ड।

हर एक बोर्ड ने शैक्षिक उद्देश्यों के अनुसार पाठ्य पुस्तकें प्रस्तावित की हैं। पाठ्य पुस्तकों राष्ट्रीय मूल्यों को विकसित करने में तथा पाठ्यक्रम के उद्देश्यों को प्राप्त कर विद्यार्थी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक होती हैं। अतः इसकी उपयोगिता को देखते हुये NCERT तर्कों की गुणवत्ता बनाए रखने के लिये समय-समय पर पुस्तकों के मूल्यांकन की बात कही।

2. अध्ययन की सार्थकता :- शोध की सार्थकता को निम्न बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है।

1. इस अध्ययन के माध्यम से यह प्रयास किया जायेगा कि दोनों पुस्तकों में समान विषय वस्तु को किस प्रकार गुणवत्तापूर्वक प्रस्तुत कर सकते हैं।
2. यह अध्ययन बालकों के उपलब्धि स्तर में समानता लाने की दृष्टि से सहायक होगा।
3. इस अध्ययन द्वारा यह प्रयास किया जायेगा कि बालकों को किस प्रकार के अधिगम अनुभव प्रदान किये जायें। जिससे दोनों बोर्डों में विद्यमान भिन्नताओं को समाप्त किया जा सके।
4. इस अध्ययन द्वारा पाठ्य पुस्तक की त्रुटियों को जानकर यथासंभव सुधार प्रस्तुत कर पुस्तक की गुणवत्ता को बढ़ाया जा सकेगा।
5. यह अध्ययन दोनों बोर्डों की पुस्तकों में प्रयुक्त मूल्यांकन प्रविधियों में सार्थक भिन्नताओं को ढूंढकर समाप्त करने का उपाय प्रस्तुत करने का प्रयास करेगा।

3. समस्या कथन :- “एम0पी0 बोर्ड तथा सी0बी0ई0 बोर्ड द्वारा माध्यमिक स्तर पर प्रस्तावित भौतिक विज्ञान की पाठ्य पुस्तक का तुलनात्मक अध्ययन”

4. अध्ययन के उद्देश्य :- शोधकर्त्ता द्वारा चयन की गई समस्या निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु है।

1. एम0पी0बोर्ड की कक्षा-9 की भौतिक विज्ञान की पाठ्य पुस्तक का विश्लेषण करना।
2. एम0पी0एस0ई0 की कक्षा-9 की भौतिक विज्ञान की पाठ्य पुस्तक का विश्लेषण करना।
3. एम0पी0 बोर्ड तथा सी0बी0एस0ई0 बोर्ड की कक्षा-9 की भौतिक की पाठ्य पुस्तक का तुलनात्मक अध्ययन करना।

5. अध्ययन की परिसीमायें :-

1. अध्ययन केवल दो बोर्डों एम0पी0 बोर्ड तथा सी0एस0ई0 बोर्ड तक ही सीमित है।
2. अध्ययन केवल कक्षा-9 की भौतिक विज्ञान की पाठ्य पुस्तकों तक ही सीमित है।
3. यह अध्ययन केवल ग्वालियर शहर तक ही सीमित है।
4. अध्ययन में निम्न अध्याय सम्मिलित होंगे – गति, बल तथा गति के नियम, गुरुत्वाकर्षण, कार्य व ऊर्जा तथा ध्वनि।

6. अध्ययन विधि:- यह अध्ययन वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि में विषयवस्तु विश्लेषण पर आधारित है।

7. अध्ययन के स्रोत:- अध्ययन के स्रोत के रूप में एम0पी0 बोर्ड तथा सी0बी0एस0ई0 बोर्ड की कक्षा-9 की भौतिक विज्ञान की पाठ्य पुस्तकों का अध्ययन किया गया है।

8. उपकरण:- उपकरण के रूप में शोधार्थी द्वारा स्वनिर्मित प्रश्नावली का प्रयोग किया गया क्योंकि प्रस्तुत विषय से सम्बंधित कोई भी मानक उपकरण उपलब्ध नहीं है। इसका निर्माण विशेषज्ञों की सहायता से किया गया है। जिसमें कुल 37 कथन हैं जिनके उत्तर 5 प्वाइन्ट स्केल पर मापे गये हैं।

9. अध्ययन की प्रक्रिया :- शोधार्थी द्वारा भौतिक विज्ञान की पाठ्य पुस्तकों से NCERT द्वारा प्रस्तावित मूल्यांकन बिन्दुओं के आधार पर अध्यायवार प्रश्नावली निर्मित की गयी जिस पर विशेषाध्यापकों के विचार लिये गये।

10. सांख्यिकीय प्रविधि :- प्रस्तुत अध्ययन में 'प्रतिशत' सांख्यिकीय प्रविधि का प्रयोग किया गया है।

11. न्यादर्श चयन :- प्रस्तुत अध्ययन में अपनी सुविधानुसार तथा उद्देश्य आधारित विधि से सी0बी0एस0ई0 बोर्ड व एम0पी0 बोर्ड के 5-5 विद्यालयों का चयन किया गया।

प्रत्येक विद्यालय से 2-2 अध्यापकों का चयन किया गया। चयन विद्यालयों व अध्यापकों की संख्या की सूची निम्नवत् है-

क्र. सं.	विद्यालयों के नाम	शिक्षकों की संख्या	
	CBSE Board	M.P. Board	CBSE Board M.P. Board
1.	केन्द्रीय विद्यालय ग्वालियर क्रमांक-1	शासकीय सनातन धर्म विद्यालय ग्वालियर	2 2
2.	कॉर्मल कान्वेंट स्कूल, ग्वालियर	शासकीय गोरखी विद्यालय ग्वालियर	2 2
3.	ग्वालियर ग्लोरी स्कूल, ग्वालियर	शासकीय कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय रेल्वे कॉलोनी, ग्वालियर	2 2
4.	रामकृष्ण पब्लिक स्कूल, ग्वालियर	रेल्वे कॉलोनी	2 2
5.	सेंटपॉल स्कूल, ग्वालियर	कैरियर्स कॉन्वेंट स्कूल, ग्वालियर	2 2
6.	अन्य-शोधार्थी स्वयं		

इस प्रकार न्यादर्श के रूप में प्रत्येक बोर्ड के 10-10 शिक्षक व स्वयं शोधार्थी शामिल हैं।

12. सांख्यिकीय विश्लेषण :- प्रस्तुत प्रश्नावली में शिक्षकों से प्राप्त उत्तरों के आधार पर 'प्रतिशत' सांख्यिकीय प्रविधि का प्रयोग किया गया है जिसका सूत्र निम्न है।

$$\text{प्रतिशत} = \frac{\text{प्राप्तांक}}{\text{पूर्णांक}} \times 100$$

13. आंकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या :- चयनित शिक्षकों को प्रश्नावली को भरने को दिया गया। उनके मतों के आधार पर प्राप्त आंकड़ों का कथनवार विश्लेषण का परिणाम इस प्रकार है।

क्रमांक 1 - प्रस्तुत शोध अध्ययन का प्रथम उद्देश्य म0प्र0 बोर्ड की कक्षा-9 की भौतिक विज्ञान की पाठ्य पुस्तक का विश्लेषण करना था, जिसका कथन इस प्रकार है:-

कथन - पाठ की प्रस्तावना पाठ की शुरुआत करने में सुगम है।

व्याख्या - पाठ्य पुस्तक की योजना के संदर्भ में 46.7% शिक्षक सहमत रहे जबकि 33.3% शिक्षक असहमत तथा 20% शिक्षक अनिश्चित रहे।

- ♦ विषय वस्तु का चयन सुचारु रूप से हुआ है, इस तथ्य पर 46.6% शिक्षकों ने सहमति व्यक्त की तथा 23.4% शिक्षक असहमत और 30% शिक्षक अनिश्चित रहे।
- ♦ 56.3% शिक्षकों ने स्वीकार किया कि पाठ्य पुस्तक में पर्याप्त मात्रा में शिक्षण सामग्री दी गयी है जबकि 23.7% शिक्षक असहमत तथा 20% शिक्षक अनिश्चित रहे।
- ♦ 49.6% शिक्षकों ने माना कि पाठ्यपुस्तक में विषय वस्तु का प्रस्तुतीकरण संतोषजनक है जबकि 26.6%

शिक्षक असहमत तथा 23.8% शिक्षक अनिश्चित रहे।

- ◆ भौतिक पक्ष के संदर्भ में 60% शिक्षक सकारात्मक रहे, वहीं 10% शिक्षकों ने अपनी असहमति व्यक्त की तथा 30% शिक्षक अनिश्चित रहे।

क्रमांक 2 – अध्ययन का द्वितीय उद्देश्य था।

“सी.बी.एस.ई बोर्ड की कक्षा-9 की भौतिक विज्ञान की पाठ्य पुस्तक का विश्लेषण करना।”

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित उपलब्धियाँ प्राप्त हुई :-

- ◆ सी.बी.एस.ई बोर्ड के 80% विज्ञान शिक्षक इस तथ्य पर सहमत थे कि पाठ्य-पुस्तक की योजना संतोषप्रद है जबकि केवल 20% शिक्षक इस तथ्य से असहमत थे।
- ◆ विषयवस्तु के चयन के संदर्भ में 63.3% शिक्षक सहमत रहे, वहीं 10% शिक्षक असहमत तथा 26.7% शिक्षक अनिश्चित रहें।
- ◆ 80.8% शिक्षकों ने स्वीकार किया कि पाठ्य-पुस्तक में विषय वस्तु का प्रस्तुतीकरण सुचारु रूप से हुआ है। जबकि 1.5% शिक्षक असहमत तथा 17.7% शिक्षक अनिश्चित रहे।
- ◆ पाठ्यपुस्तक में दी शिक्षण सामग्री की पर्याप्तता के विषय में 81.9% शिक्षक सहमत थे जबकि 2.6% शिक्षक असहमत तथा 15.5% शिक्षक अनिश्चित रहे।
- ◆ 90% शिक्षकों ने स्वीकार किया कि पाठ्य पुस्तक का भौतिक पक्ष मजबूत है। 10% शिक्षक इस तथ्य पर अनिश्चित रहे।

क्रमांक 3 – शोध-कार्य का तीसरा मुख्य उद्देश्य था।

“एम0पी0 बोर्ड तथा सी0एस0ई बोर्ड की कक्षा-9 की भौतिक विज्ञान की पाठ्य-पुस्तकों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

इस उद्देश्य से सम्बंधित तथ्य ही पुस्तुत शोध अध्यय के निष्कर्ष के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं जो कि निम्न हैं।

- ◆ पाठ्य पुस्तक की योजना के सम्बंध में एम.पी. बोर्ड के 46.7% शिक्षकों ने कहा कि योजना संतोष जनक है जबकि सी.बी.एस.ई बोर्ड के 80% शिक्षक इस तथ्य पर सहमत थे। इससे यह निष्कर्ष निकला कि पाठ्य पुस्तक की योजना म0प्र बोर्ड की तुलना में सी.बी.एस.ई बोर्ड की पाठ्य पुस्तकों में अधिक उच्चस्तरीय है।
- ◆ विषय वस्तु के चयन में एम.पी बोर्ड के 46.6% शिक्षक सहमत थे जबकि सी.बी.एस.ई. बोर्ड के 63.3% शिक्षकों ने अपनी सहमति व्यक्त की। अतः सी.बी.एस.ई बोर्ड की पाठ्य पुस्तकों में एम.पी. बोर्ड की पुस्तकों की अपेक्षा विषयवस्तु का चयन ज्यादा तार्किक व मनोवैज्ञानिक ढंग से किया गया है।
- ◆ एम0पी0 बोर्ड के 49.6% शिक्षक विषयवस्तु के प्रस्तुतीकरण के प्रति सकारात्मक रहे जबकि सी.बी.एस.ई बोर्ड के शिक्षकों में यह प्रतिशत 80.8% रहा अर्थात विषयवस्तु को सी.बी.एस.ई बोर्ड की पाठ्य-पुस्तकों में एम. पी. बोर्ड की अपेक्षा ज्यादा वैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत किया गया है।
- ◆ एम.पी. बोर्ड के 60% शिक्षक पाठ्य पुस्तक के भौतिक पक्ष के प्रति सकारात्मक रहे जबकि सी.बी.एस.ई बोर्ड के 81.9% शिक्षक इस तथ्य के प्रति सहमत थे। अतः एम.पी. बोर्ड की पाठ्य पुस्तक में पर्याप्त मात्रा में शिक्षण सामग्री दी गई है।
- ◆ एम.पी. बोर्ड के 60% शिक्षक पाठ्य पुस्तक के भौतिक पक्ष के प्रति सकारात्मक रहे जबकि सी.बी.एस.ई बोर्ड के लिये यह प्रतिशत 90% रहा। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भौतिक पक्ष में सी.बी.एस.ई बोर्ड की

पाठ्य पुस्तक एम0पी0 बोर्ड की पुस्तकों की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छी है। इन आंकड़ों को निम्नवत् तालिका बद्ध किया जा सकता है।

क्षेत्र	एम.पी. बोर्ड सहमति	सी.बी.एस.ई. सहमति
पाठ्य पुस्तक की योजना	46.7%	80%
विषय वस्तु का चयन	46.6%	63.3%
विषय वस्तु का प्रस्तुतीकरण	49.6%	80.8%
शिक्षण सामग्री	56.3%	81.9%
भौतिक पक्ष	60%	90%

निष्कर्ष :- उपरोक्त अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि सी.बी.एस.ई. बोर्ड की माध्यमिक स्तर की पाठ्य पुस्तकें, पाठ्य-पुस्तकों की योजना, विषय वस्तु के चयन, विषय वस्तु के प्रस्तुतीकरण, शिक्षण सामग्री तथा भौतिक पक्ष के सन्दर्भ में एम.पी. बोर्ड की पाठ्य पुस्तकों में उक्त क्षेत्रों में परिमार्जन की आवश्यकता है, परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि सी.बी.एस.ई. बोर्ड की पाठ्य पुस्तकें स्वयं में सम्पूर्ण हैं। इनमें भी यथा संभव परिमार्जन की आवश्यकता है।

भावी शोध कार्य हेतु सुझाव :- प्रस्तुत शोधकार्य की सीमाओं को आधार बनाकर भविष्य के लिए शोधार्थी हेतु यहां विषय-क्षेत्र प्रस्तावित किये जा रहे हैं जो निम्नलिखित हैं।

प्रस्तुत शोधकार्य को बोड़ न्यादर्श पर लागू कर शोध-परिणामों को अधिक विश्वसनीय व उत्तम बनाया जा सकता है।

- ◆ विद्यालय के विभिन्न स्तरों की विभिन्न कक्षाओं पर यह कार्य किया जा सकता है।
- ◆ विज्ञान के अन्य अध्यायों को भी भावी शोध अध्ययन हेतु चुना जा सकता है।
- ◆ अन्य विषयों को लेकर भी इस प्रकार का शोधकार्य किया जा सकता है।
- ◆ तुलनात्मक अध्ययन हेतु अन्य बोर्डों को चयनित किया जा सकता है।
- ◆ पाठ्य पुस्तक के अतिरिक्त विद्यालयों की उपलब्धि कम होने के अन्य कारणों को लेकर भी भावी शोध किये जा सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

- अग्रवाल, सुभाष चंद एवं वर्मा, कल्पना नाथ 2005 — “सरस्वती विद्या मंदिर एवं अनुदानित विद्यालयों के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन” भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका वर्ष 2005 अंक 1
- गुड, बार एवं स्केट्स 1949 — “द मैथडोलोजी ऑफ एजूकेशनल रिसर्च” एप्लीटोन सैंचुरी क्राफ्ट्स, न्यूयार्क।
- गुप्ता, आर. पी. — “भारतीय शिक्षा शोध संस्थान, सरस्वती कुंज, निराला नगर, लखनऊ, जुलाई-दिसम्बर 2003
- शर्मा, आर. के. — शिक्षा अनुसंधान, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
- पाठक, पी. डी. — भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
- परिप्रेक्ष्य — राष्ट्रीय शैक्षिक योजना और प्रशासन संस्थान (नापा) नई दिल्ली।
- सबके लिए शिक्षा — विश्व मॉनीटरिंग रिपोर्ट, 2002 यूनेस्को पब्लिशर्स।



भारत में महिलाओं की वर्तमान स्थिति की सामाजिक विवेचना

नीलम यादव

टाईप फाइल, रूम नं० 303, विश्वविद्यालय परिसर

डॉ० शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ.प्र.-226017

भारत में महिलाओं की स्थिति सदैव एक समान नहीं रही है। इसमें युगानुरूप परिवर्तन होते रहे हैं। उनकी स्थिति में वैदिक युग से लेकर आधुनिक काल तक अनेक उतार-चढ़ाव आते रहे हैं तथा उनके अधिकारों में तदनुरूप बदलाव भी होते रहे हैं। वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति सुदृढ़ थी, परिवार तथा समाज में उन्हें सम्मान प्राप्त था। उनको शिक्षा का अधिकार प्राप्त था। सम्पत्ति में उनको बराबरी का हक था। सभा व समितियों में से स्वतंत्रतापूर्वक भाग लेती थीं तथापि ऋग्वेद में कुछ ऐसी उक्तियाँ भी हैं जो महिलाओं के विरोध में दिखाई पड़ती हैं। मैत्रेयीसंहिता में स्त्री को झूठ का अवतार कहा गया है। ऋग्वेद का कथन है कि स्त्रियों के साथ कोई मित्रता नहीं है, उनके हृदय भेड़ियों के हृदय हैं। ऋग्वेद के अन्य कथन में स्त्रियों को दास की सेना का अस्त्र-शस्त्र कहा गया है। स्पष्ट है कि वैदिक काल में भी कहीं न कहीं स्त्रियाँ नीची दृष्टि से देखी जाती थीं। फिर भी हिन्दू जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह समान रूप से आदर और प्रतिष्ठित थीं। शिक्षा, धर्म, व्यक्तित्व और सामाजिक विकास में उसका महान योगदान था। संस्थानिक रूप से स्त्रियों की अवनति उत्तर वैदिककाल से शुरू हुई। उन पर अनेक प्रकार के नियोग्यताओं का आरोपण कर दिया गया। उनके लिए निन्दनीय शब्दों का प्रयोग होने लगा। उनकी स्वतंत्रता और उन्मुक्तता पर अनेक प्रकार के अंकुश लगाये जाने लगे। मध्यकाल में इनकी स्थिति और भी दयनीय हो गयी। पर्दा प्रथा इस सीमा तक बढ़ गई कि स्त्रियों के लिए कठोर एकान्त नियम बना दिए गये। शिक्षण की सुविधा पूर्णरूपेण समाप्त हो गई।

नारी के सम्बन्ध में मनु का कथन “पितारक्षति कौमारे.....न स्त्री स्वातंत्र्यम् अर्हति।” वहीं पर उनका कथन “यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता”, भी दृष्टव्य है वस्तुतः यह समस्या प्राचीनकाल से रही है। इसमें धर्म, संस्कृति साहित्य, परम्परा, रीतिरिवाज और शास्त्र को कारण माना गया है। भारतीय दृष्टि से इस पर विचार करने की की जरूरत है। पश्चिम की दृष्टि विचारणीय नहीं। भारतीय सन्दर्भों में समस्या के समाधान के लिए प्रयास हो तो अच्छे हुए हैं। भारतीय मनीषा समानाधिकार, समानता, प्रतियोगिता की बात नहीं करती वह सहयोगिता सहधर्मिता, सहचारिता की बात करती है। इसी से परस्पर सन्तुलन स्थापित हो सकता है।

वैदिक एवं उत्तर वैदिक काल में महिलाओं को गरिमाय स्थान प्राप्त था। उसे देवी, सहधर्मिणी अर्द्धांगिनी, सहचरी माना जाता था। स्मृतिकाल में भी “यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता” कहकर उसे सम्मानित स्थान प्रदान किया गया है। पौराणिक काल में शक्ति का स्वरूप मानकर उसकी आराधना की जाती रही है। किन्तु 11 वीं शताब्दी से 19 वीं शताब्दी के बीच भारत में महिलाओं की स्थिति दयनीय होती गई। एक तरह से यह महिलाओं के सम्मान, विकास, और सशक्तिकरण का अंधकार युग था। मुगल शासन, सामन्ती व्यवस्था, केन्द्रीय सत्ता का विनष्ट होना, विदेशी आक्रमण और शासकों की विलासितापूर्ण प्रवृत्ति ने महिलाओं को उपभोग की वस्तु बना दिया था और उसके कारण बाल विवाह, पर्दा प्रथा, अशिक्षा आदि विभिन्न सामाजिक कुरीतियों का समाज में प्रवेश हुआ, जिसने महिलाओं की स्थिति को हीन बना दिया तथा उनके निजी व सामाजिक जीवन को कलुषित कर दिया।

धर्मशास्त्र का यह कथन नारी स्वतन्त्रता का अपहरण नहीं है अपितु नारी के निर्बाध रूप से स्वधर्म पालन कर सकने के लिए बाह्य आपत्तियों से उसकी रक्षा हेतु पुरुष समाज पर डाला गया उत्तरदायित्व है। इसलिए धर्मनिष्ठ पुरुष इसे भार न मानकर, धर्मरूप में स्वीकार अपना कल्याणकारी कर्तव्य समझता है। पौराणिक युग में नारी वैदिक युग के दैवी पद से उतरकर सहधर्मिणी के स्थान पर आ गई थी। धार्मिक अनुष्ठानों और याज्ञिक कर्मों में उसकी स्थिति पुरुष के बराबर थी। कोई भी धार्मिक कार्य बिना पत्नी नहीं किया जाता था। श्रीरामचन्द्र ने अश्वमेध के समय सीता की हिरण्यमयी प्रतिमा बनाकर यज्ञ किया था। यद्यपि उस समय भी अरुन्धती (महर्षि वशिष्ठ की पत्नी), लोपामुद्रा, महर्षि अगस्त्य की पत्नी), अनुसूया (महर्षि अत्रि की पत्नी) आदि नारियाँ दैवी रूप की प्रतिष्ठा के अनुरूप थीं तथापि ये सभी अपने पतियों की सहधर्मिणी ही थीं।

मध्यकाल में विदेशियों के आगमन से स्त्रियों की स्थिति में जबर्दस्त गिरावट आयी। अशिक्षा और रूढ़ियाँ जकड़ती गईं, घर की चार दीवारी में कैद होती गई और नारी एक अबला, रमणी और भोग्या बनकर रह गई। आर्य समाज आदि समाज-सेवी संस्थाओं ने नारी शिक्षा आदि के लिए प्रयास आरम्भ किये। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में भारत के कुछ समाजसेवियों जैसे राजाराम मोहन राय, दयानन्द सरस्वती, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा केशवचन्द्र सेन ने अत्याचारी सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठायी। इन्होंने तत्कालीन अंग्रेजी शासकों के समक्ष स्त्री पुरुष समानता, स्त्री शिक्षा, सती प्रथा पर रोक तथा बहु विवाह पर रोक की आवाज उठायी। इसी का परिणाम था सती प्रथा निषेध अधिनियम, 1829, 1856 में हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, 1891 में एज आफ कन्सटेन्ट बिल, 1891, बहु विवाह रोकने के लिये वेटिव मैरिज एक्ट पास कराया। इन सभी कानूनों का समाज पर दूरगामी परिणाम हुआ। वर्षों के बाद नारी स्थिति में आयी गिरावट में रोक लगी। आने वाले समय में स्त्री जागरूकता में वृद्धि हुई और नये नारी संगठनों का सूत्रपात हुआ जिनकी मुख्य मांग स्त्री शिक्षा, दहेज, बाल विवाह जैसी कुरीतियों पर रोक, महिला अधिकार, महिला शिक्षा की माँग की गई।

महिलाओं के पुनरोत्थान का काल ब्रिटिश काल से शुरू होता है। ब्रिटिश शासन की अवधि में हमारे समाज की सामाजिक व आर्थिक संरचनाओं में अनेक परिवर्तन किए गए। ब्रिटिश शासन के 200 वर्षों की अवधि में स्त्रियों के जीवन में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष अनेक सुधार आये। औद्योगीकरण, शिक्षा का विस्तार, सामाजिक आन्दोलन व महिला संगठनों का उदय व सामाजिक विधानों ने स्त्रियों की दशा में बड़ी सीमा तक सुधार की ठोस शुरुआत की।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक स्त्रियों की निम्न दशा के प्रमुख कारण अशिक्षा, आर्थिक निर्भरता, धार्मिक निषेध, जाति बन्धन, स्त्री नेतृत्व का अभाव तथा पुरुषों का उनके प्रति अनुचित दृष्टिकोण आदि थे। मेटसन ने हिन्दू संस्कृति में स्त्रियों की एकान्तता तथा उनके निम्न स्तर के लिए पांच कारकों को उत्तरदायी ठहराया है, यह है— हिन्दू धर्म, जाति व्यवस्था, संयुक्त परिवार, इस्लामी शासन तथा ब्रिटिश उपनिवेशवाद। हिन्दूवाद के आदर्शों के अनुसार पुरुष स्त्रियों से श्रेष्ठ होते हैं और स्त्रियों व पुरुषों को भिन्न-भिन्न भूमिकाएँ निभानी चाहिए। स्त्रियों से माता व गृहणी की भूमिकाओं की और पुरुषों से राजनीतिक व आर्थिक भूमिकाओं की आशा की जाती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से सरकार द्वारा उनकी आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक और राजनीतिक स्थिति में सुधार लाने तथा उन्हें विकास की मुख्य धारा में समाहित करने हेतु अनेक कल्याणकारी योजनाओं और विकासात्मक कार्यक्रमों का संचालन किया गया है। महिलाओं को विकास की अखिल धारा में प्रवाहित करने, शिक्षा के समुचित अवसर उपलब्ध कराकर उन्हें अपने अधिकारों और दायित्वों के प्रति सजग करते हुए उनकी सोच में मूलभूत परिवर्तन लाने, आर्थिक गतिविधियों में उनकी अभिरुचि उत्पन्न कर उन्हें आर्थिक-सामाजिक दृष्टि से आत्मनिर्भरता और स्वावलम्बन की ओर अग्रसारित करने जैसे अहम उद्देश्यों की पूर्ति हेतु पिछले कुछ दशकों में विशेष प्रयास किये गए हैं।

उन्नीसवीं सदी के मध्यकाल से लेकर इक्कीसवीं सदी तक आते-आते पुनः महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ और महिलाओं ने शैक्षिक, राजनीतिक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, प्रशासनिक, खेलकूद आदि विविध क्षेत्रों में उपलब्धियों के नए आयाम तय किये। आज महिलाएँ आत्मनिर्भर, स्वनिर्मित, आत्मविश्वासी हैं, जिसने पुरुष प्रधान चुनौतीपूर्ण क्षेत्रों में भी अपनी योग्यता प्रदर्शित की है। वह केवल शिक्षिका, नर्स, स्त्री रोग की डाक्टर न बनकर इंजीनियर, पायलट, वैज्ञानिक, तकनीशियन, सेना, पत्रकारिता जैसे नए क्षेत्रों को अपना रही है। राजनीति के क्षेत्रों में महिलाओं ने नए कीर्तिमान स्थापित किए हैं। देश के सर्वोच्च राष्ट्रपति पद पर श्रीमती प्रतिभा पाटिल, लोकसभा स्पीकर के पद पर मीरा कुमार, कांग्रेस अध्यक्ष सोनिया गांधी, उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री मायावती, वसुन्धरा राजे, सुशमा स्वराज, जयललिता, ममता बनर्जी, शीला दीक्षित आदि महिलाएँ राजनीति के क्षेत्र में शीर्ष पर हैं। सामाजिक क्षेत्र में भी मेधा पाटकर, श्रीमती किरण मजूमदार, इलाभट्ट, सुधा मूर्ति आदि महिलाएँ ख्यातिलब्ध हैं। खेल जगत में पी.टी. ऊशा, अंजू बाबी जार्ज, सुनीता जैन, सानिया मिर्जा, अंजू चोपड़ा आदि ने नए कीर्तिमान स्थापित किये हैं। आई.पी.एस. किरण बेदी, अंतरिक्ष यात्री सुनीता विलियम्स आदि ने उच्च शिक्षा प्राप्त करके विविध क्षेत्रों में अपने बुद्धि कौशल का परिचय दिया है।

20वीं सदी के उत्तरार्द्ध और अब 21वीं सदी के प्रारम्भ में बराबरी व्यवहार वाले जोड़े बनने लगे हैं। नौकरी वाली नारी के साथ पुरुष की मानसिकता में बदलाव आया है। पहले नौकरी वाली औरत के पति को “औरत की कमाई खाने वाला” कह कर चिढ़ाया जाता था। आज यह सोच बदल चुकी है। स्त्री स्वातंत्र्य में अर्थशास्त्र का योगदान अद्भुत है। स्त्रियाँ धन कमाने लगीं हैं तो पुरुष की मानसिकता में भी परिवर्तन आया है। आर्थिक दृष्टि से नारी अर्थचक्र के केन्द्र की ओर बढ़ रही है। विज्ञापन की दुनियां में नारियां बहुत आगे हैं। बहुत कम ही ऐसे विज्ञापन होंगे जिनमें नारी न हो लेकिन विज्ञापन में अश्लीलता चिन्तन का विषय है। इससे समाज में विकृतियाँ भी बढ़ रही हैं। अर्थशास्त्र ने समाजशास्त्र को बौना बना दिया है।

आज की नारी राजनीति, कारोबार, कला तथा नौकरियों में पहुँचकर नये आयाम गढ़ रही हैं। भूमण्डलीकृत दुनियां में भारत और यही की नारी ने अपनी एक नितांत सम्मानजनक जगह कायम कर ली है। आंकड़े दर्शाते हैं कि प्रतिवर्ष कुल परीक्षार्थियों में 50 प्रतिशत महिलाएँ डाक्टरी की परीक्षा उत्तीर्ण करती हैं। आजादी के बाद लगभग 12 महिलाएँ विभिन्न राज्यों की मुख्यमंत्री बन चुकी हैं। भारत के अग्रणी साफ्टवेयर उद्योग में 21 प्रतिशत पेशेवर महिलाएँ हैं। फौज, राजनीति, खेल, पायलट तथा उद्यमी सभी क्षेत्रों में जहाँ वर्षों पहले तक महिलाओं के होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। वहाँ सिर्फ नारी स्वयं को स्थापित ही नहीं कर पायी है बल्कि वहाँ सफल भी हो रही हैं। यदि आपको विकास करना है तो महिलाओं का उत्थान करना होगा। महिलाओं का विकास होने पर समाज का विकास स्वतः हो जायेगा। — जवाहर लाल नेहरू

महिलाओं को शिक्षा देने तथा सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिये जो सुधार आन्दोलन प्रारम्भ हुआ उससे समाज में एक नयी जागरूकता उत्पन्न हुई है। बाल-विवाह, भ्रूण-हत्या पर सरकार द्वारा रोक लगाने का अथक प्रयास हुआ है। शैक्षणिक गतिशीलता से पारिवारिक जीवन में परिवर्तन हुआ है। गाँधीजी ने कहा था कि एक लड़की की शिक्षा एक लड़के की शिक्षा की उपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि लड़के को शिक्षित करने पर वह अकेला शिक्षित होता है किन्तु एक लड़की की शिक्षा से पूरा परिवार शिक्षित हो जाता है। शिक्षा ही वह कुंजी है जो जीवन के वह सभी द्वार खोल देती है जो कि आवश्यक रूप से सामाजिक है। शिक्षित महिलाओं को राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय होने में बहुत मदद मिली। महिलाएँ अपनी स्थिति व अपने अधिकारों के विषय में सचेत होने लगीं। शिक्षा ने उन्हें आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक न्याय तथा पुरुष के साथ समानता के अधिकारों की माँग करने को प्रेरित किया।

संवैधानिक अधिकारों में विभिन्न कानूनों के द्वारा महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार मिलने से उनकी स्थिति में परिवर्तन हुआ। महिलाओं की विवाह विच्छेद परिवार की सम्पत्ति में पुरुषों के समान अधिकार दिये

गये । दहेज पर कानूनी प्रतिबन्ध लगा तथा उन व्यक्तियों के लिये कठोर दण्ड की व्यवस्था की गयी जो दहेज की मांग को लेकर महिलाओं का उत्पीड़न करते हैं । अब सरकार लिव इन पर विचार कर रही है । संयुक्त परिवारों के विघटन होने से जैसे-जैसे एकांकी परिवार की संख्या बढ़ी इनमें न केवल महिलाओं को सम्मानित स्थान मिलने लगा बल्कि लड़कियों की शिक्षा को भी एक प्रमुख आवश्यकता के रूप में देखा जाने लगा । वातावरण अधिक समताकारी होने से महिलाओं को अपने व्यक्तित्व का विकास करने के अवसर मिलने लगे ।

महिला शिक्षा समाज का आधार है । समाज द्वारा पुरुष को शिक्षित करने का लाभ केवल मात्र पुरुष को होता है जबकि महिला शिक्षा का स्पष्ट लाभ परिवार, समाज एवं सम्पूर्ण राष्ट्र को होता है । चूंकि महिला ही माता के रूप में बच्चे की प्रथम अध्यापक बनती है । महिला शिक्षा एवं संस्कृति को सभी क्षेत्रों में पर्याप्त समर्थन मिला । यद्यपि कुछ समय तक महिला शिक्षा के समर्थक कम किन्तु आज समय एवं परिस्थितियों ने महिला शिक्षा को अनिवार्य बना दिया है ।

स्त्री और मुक्ति आज भी नदी के दो किनारे की तरह हैं जो कभी मिल नहीं पाती सतही तौर पर देखा जाये तो लगता है कि भारत ही नहीं, विश्व पटल पर अपनी पहचान बनाती हुई स्त्रियों ने अपनी पुरानी मान्यतायें बदली हैं । आज की स्त्री की अस्मिता का प्रश्न मुखर होता जा रहा है । अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिये संघर्ष करती हुई स्त्रियों ने लम्बा रास्ता तय कर लिया है, परन्तु आज भी एक बड़ा हिस्सा सदियों से सामाजिक अन्याय का शिकार है । “जब-जब स्त्री अपनी उपस्थिति दर्ज कराना चाहती है तब तब जाने कितने रीति-रिवाजों, परम्पराओं पौराणिक आख्यानों की दुहाई देकर उसे गुमनाम जीवन जीने पर विवश कर दिया जाता है ।”

वस्तुतः इक्कीसवीं सदी महिला सदी है । वर्ष 2001 महिला सशक्तिकरण वर्ष के रूप में मनाया गया । इसमें महिलाओं की क्षमताओं और कौशल का विकास करके उन्हें अधिक सशक्त बनाने तथा समग्र समाज को महिलाओं की स्थिति और भूमिका के संबंध में जागरूक बनाने के प्रयास किये गए । महिला सशक्तिकरण हेतु वर्ष 2001 में प्रथम बार प्रथम बार “राष्ट्रीय महिला उत्थान नीति” बनाई गई जिससे देश में महिलाओं के लिये विभिन्न क्षेत्रों में उत्थान और समुचित विकास की आधारभूत विशेषताएँ निर्धारित किया जाना संभव हो सके । इसमें आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में पुरुषों के साथ समान आधार पर महिलाओं द्वारा समस्त मानवाधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रताओं का सैद्धान्तिक तथा वस्तुतः उपभोग पर तथा इन क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी व निर्णय स्तर तक समान पहुँच पर बल दिया गया है ।

आज देखने में आया है कि महिलाओं ने स्वयं के अनुभव के आधार पर, अपनी मेहनत और आत्मविश्वास के आधार पर अपने लिए नई मंजिलें, नये रास्तों का निर्माण किया है । क्या मात्र इस आधार पर उस सफलता के पीछे क्षणांश भी किसी पुरुष के हाथ होने की सम्भावना को नकार दिया जायेगा? यदि नहीं तो फिर समस्या कहाँ है? मैं कौन हूँ का प्रश्न अभी भी उत्तर की आस में क्यों खड़ा है?

जवाब हमारे सभी के अन्दर ही है पर उसको सामने लाने में हम घबराते भी दिखते हैं । स्त्री को एक देह से अलग एक स्त्री के रूप में देखने की आदत को डालना होगा । स्त्री के कपड़ों के भीतर से नग्नता को खींच-खींच कर बाहर लाने की परम्परा से निजात पानी होगी । कोड ऑफ कंडक्ट किसी भी समाज में व्यवस्था के संचालन में तो सहयोगी हो सकते हैं किन्तु इसके अपरिहार्य रूप से किसी भी व्यक्ति पर लागू किये जाने से इसके विरोध की सम्भावना उतनी ही प्रबल हो जाती है जितनी कि इसको लागू करवाने की । क्या बिकाऊ है और किसे बिकना है, अब इसका निर्धारण स्वयं बाजार करता है, हमें तो किसी को बिकने और किसी को जोर जबरदस्ती से बिकने के बीच में आकर खड़े होना है । किसी की मजबूरी किसी के लिए व्यवसाय न बने यह समाज को ध्यान देना होगा ।

नग्नता और शालीनता के मध्य की बारीक रेखा समाज स्वयं बनाता और स्वयं बिगाड़ता है । एक नजर में

उसका निर्धारक पुरुष होता है तो दूसरी निगाह उसका निर्धारक स्त्री को मानती है। उचित और अनुचित, न्याय और अन्याय, विवेकपूर्ण और अविवेकपूर्ण, स्वाधीनता और उच्छृंखलता, दायित्व और दायित्वहीनता, श्लीलता और अश्लीलता के मध्य के धुंधलके को साफ करना होगा। समाज में सरोकारों का रहना भी उतना ही आवश्यक है जितना कि किसी भी स्त्री-पुरुष का। सामाजिकता के निर्वहन में स्त्री-पुरुष को समान रूप से सहभागी बनना होगा और इसके लिए स्त्री पुरुष को अपना प्रतिद्वंद्वी नहीं समझे और पुरुष भी स्त्री को एक देह नहीं, स्त्री रूप में एक इंसान स्वीकार करे। स्त्री की आज़ादी और खुले आकाश में उड़ान की शर्त उत्पादन में उसकी भूमिका हो। स्त्री की असली आज़ादी तभी होगी जब उसके दिमाग की स्वीकार्यता हो, न कि केवल उसकी देह की। अन्ततः कहीं ऐसा न हो कि स्त्री स्वतन्त्रता और स्वाधीनता का पर्व सशक्तिकरण की अवधारणा पर खड़ा होने के पूर्व ही विनष्ट होने लगे और आने वाली पीढ़ी फिर वही सदियों पुराना प्रश्न दोहरा दे कि 'मैं कौन हूँ?'

वर्तमान समय में भारतीय सरकार द्वारा महिलाओं के उत्थान के लिए अनेक कार्यक्रम एवं योजनाओं का संचालन हो रहा है लेकिन इन योजनाओं का क्रियान्वयन निचले स्तर तक उचित ढंग से न पहुँच सकने के कारण स्त्रियों को अपेक्षित लाभ नहीं मिल पा रहा है। यह सत्य है कि वर्तमान समय में स्त्रियों की स्थिति में काफी बदलाव आए हैं, लेकिन फिर भी वह अनेक स्थानों पर पुरुष-प्रधान मानसिकता से पीड़ित हो रही है। इस सन्दर्भ में युगनायक एवं राष्ट्रनिर्माता स्वामी विवेकानन्द का यह कथन उल्लेखनीय है— "किसी भी राष्ट्र की प्रगति का सर्वोत्तम थर्मामीटर है, वहाँ की महिलाओं की स्थिति। हमें नारियों को ऐसी स्थिति में पहुँचा देना चाहिए, जहाँ वे अपनी समस्याओं को अपने ढंग से स्वयं सुलझा सकें। हमें नारी शक्ति के उद्धारक नहीं, वरन् उनके सेवक और सहायक बनना चाहिए। भारतीय नारियाँ संसार की अन्य किन्हीं भी नारियों की भाँति अपनी समस्याओं को सुलझाने की क्षमता रखती हैं। आवश्यकता है उन्हें उपयुक्त अवसर देने की। इसी आधार पर भारत के उज्ज्वल भविष्य की संभावनाएँ सन्निहित हैं।"

संदर्भ ग्रंथ सूची—

1. राजकुमार डा. नारी के बदले आयाम, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस 2005
2. भारतीय संविधान, अनु0 14, 15, 16, 19, 21, 23, 39
3. गुप्ता कमलेश कुमार, महिला सशक्तिकरण, बुक एनक्लेव, जयपुर
4. सिंह करण बहादुर, महिला अधिकार व सशक्तिकरण, कुरुक्षेत्र, मार्च 2006
5. सुरेश लाल श्रीवास्तव, राष्ट्रीय महिला आयोग, कुरुक्षेत्र, मार्च 2007
6. गौतम हरेन्द्र राज, महिला अधिकार संरक्षण, कुरुक्षेत्र मार्च 2006
7. व्यास, जय प्रकाश, नारी शोषण, ज्ञानदा प्रकाशन, 2003
8. शैलजा नागेन्द्र, वोमेन्स राइट्स, ए डी वी पब्लिशर्स जयपुर, 2006
9. आहुजा, राम (1999) भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रावत प्रकाशन जयपुर, नई दिल्ली।
10. अल्टेकर, ए0एस0 (1956) द पोजीशन ऑफ वोमेन इन हिन्दु सिविलाइजेशन, मोतीलाल बनारसी लाल, वाराणसी
11. हसनैन, नदीम (2004) समकालीन भारतीय समाज, भारत बुक सेंटर, लखनऊ।
12. जोशी, पुष्पा (1988) गांधी आन वोमन, सेंटर फार वोमन'स डेवलपमेन्ट स्टडीज, दिल्ली
13. मिश्र, जयशंकर (2006) प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना
14. श्रीनिवास, एम0एन0 (1978) द चेन्जिंग पोजीशन ऑफ इण्डिया वूमन, आक्सफोर्ड, यूनिवर्सिटी प्रेस, बाम्बे
15. राजनारायण डॉ0, स्त्री विमर्श और सामाजिक आन्दोलन
16. अखण्ड ज्योति



महिलाओं को सुरक्षित एवं सशक्त बनाने में पुलिस प्रशासन की भूमिका एवं उनकी चुनौतियाँ

डॉ० लक्ष्मीना भारती
असिस्टेंट प्रोफेसर—राजनीति शास्त्र
राजकीय महिला महाविद्यालय, फतेहपुर

नैतिकता और आधुनिकता के इस युग में लोगों की मानसिकता, उनके सोचने के ढंग और उनकी कार्यशैली में तेजी से बदलाव आ रहा है। आज व्यक्ति रातोंरात अमीर बनकर सारी सुख-सुविधाएँ जुटा लेना चाहता है। व्यक्ति की मानसिकता में आए इस बदलाव के कारण समाज में अपराधों की तीव्रता और उसकी गंभीरता में लगातार वृद्धि होती जा रही है। जैसे-जैसे समाज में अपराध बढ़ रहे हैं वैसे-वैसे महिलाओं से संबंधित अपराधों का ग्राफ भी बढ़ता जा रहा है। समाज में किस प्रकार के अपराध, कितनी संख्या में हो रहे हैं, इसकी बिल्कुल वास्तविक तस्वीर खींच पाना तो सम्भव नहीं है क्योंकि बहुत से अपराध तो ऐसे होते हैं जो प्रकाश में ही नहीं आ पाते हैं। महिलाओं के खिलाफ होने वाले कुछ गंभीर अपराध जैसे-बलात्कार, यौन-उत्पीड़न आदि तो सामाजिक प्रतिष्ठा खोने के डर से परिवार में ही दफन कर दिये जाते हैं और जो मामले कानाफूसी के चलते घर की दहलीज लॉघ भी जाते हैं तो वे थाने तक नहीं पहुँच पाते। कई बार तो ऐसा भी होता है कि पीड़ित महिला को बिना रिपोर्ट दर्ज किये ही थाने से वापस भेज दिया जाता है।

स्त्री एवं पुरुष सृष्टि के निर्माता ईश्वर की अनोखी उपज हैं। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और इसलिए दोनों एक-दूसरे के पूरक भी हैं। दोनों के सहयोग से ही सृष्टि की निरंतरता बनी रहती है। भारत में नारी को देवी का दर्जा तो दिया गया मगर इसके साथ मनुष्यता का व्यवहार कम किया गया। स्त्री की स्तुति के श्लोक तो बहुत लिखे गये, परन्तु उसके शोषण, संघर्ष और उत्पीड़न की गाथाओं का चित्रण नहीं किया गया। उसके सौन्दर्य पर काव्यों की रचना तो बहुत की गई परन्तु उसकी पीड़ा का संगीत कम रचा गया। उसे शास्त्रसम्मत विदुषी कहकर अनुसुइया, मैथी व गार्गी के उदाहरण तो खूब दिये गये किन्तु उसकी निरक्षरता के अभिशाप को धोने का कोई सार्थक प्रयास नहीं किया गया। घर के अंदर उसे गृहणी और गृहलक्ष्मी के संबोधनों से संबोधित तो किया गया, मगर घर में दहेज में लक्ष्मी न लाने पर उसे जिन्दा जलाने के अत्यंत अमानुषिक कार्य करने में कोई संकोच नहीं किया गया। नारी की जिस कोख ने सम्पूर्ण सृष्टि का सृजन किया उसी कोख को बलात्कार तथा यौन उत्पीड़न एवं वैश्यावृत्ति के दर्दनाक हादसों के द्वारा कलंकित करने का प्रयास किया गया। जो नारी माता, बहन, पत्नी, प्रेयसी व पुत्री के रूप में पुरुषों को अपनी ममता, स्नेह, समर्पण, प्रेम और वात्सल्य के अमृतरस से अभिसिंचित करती रही उसी पुरुष की हवस ने कभी उसे वैश्यावृत्ति के नरक में जीने को विवश किया तो कभी पुरुष के अहं और मिथ्याभिमान की शिकारी नारी आत्महत्या के लिए विवश की गई या फिर तंदूर में भून डाली गयी।

भारत में स्त्री का जीवन कितना असुरक्षित, अपमानित, पीड़ामय एवं दुर्भाग्यपूर्ण है, यह राष्ट्रीय अभिलेखन ब्यूरो की इस रिपोर्ट से स्पष्ट हो जाता है, जिसके अनुसार भारत में स्त्रियों के साथ प्रति 6 मिनट में कोई न कोई संगीन अपराध घटित हो जाता है। हर 54वें मिनट में वह एक बर्बर बलात्कार का शिकार हो जाती है। हर 26वें मिनट में स्त्री की अस्मिता से छेड़छाड़ की जाती है। हर 43वें मिनट में उसे पुरुषों द्वारा आपराधिक अपहरण का शिकार होना पड़ता है और हर 96वें मिनट में कोई न कोई नववधू दहेज की दावाग्नि में झोंक दी जाती है। यह

तथ्य 21वीं सदी की विकास की गाथा का यथार्थ सत्य है। कहा जाता है कि कोई व्यक्ति अथवा समाज कितना सुसंस्कृत है इसका पता उस समाज व व्यक्ति के द्वारा नारी के प्रति किये गये व्यवहार से लगाया जा सकता है। हम अपने देश की सदियों पुरानी सभ्यता एवं संस्कृति पर नाज करते नहीं थकते हैं परन्तु हमारे देश की स्त्री का संत्रास, संघर्ष और संकटों से भरा जीवन क्या सभ्यता व संस्कृति पर किये जाने वाले हमारे मिथ्या अभिमान पर अनेक प्रश्न चिह्न नहीं लगाता? नारी के प्रति निरंतर बढ़ते जा रहे अपराध क्या हमारी सांस्कृतिक विरासत को कलंकित नहीं करते? पुरुष तो पुरुष आज महिलायें भी नारी जाति की दुश्मन हो रही हैं। आज हमारे देश में एरिक्शन मैथड द्वारा महिला नस्ल उन्मूलन के परीक्षण प्रारम्भ हो गये हैं। शुरुआत में बम्बई की 16 लेबोरेट्रियों में चालीस हजार परीक्षण प्रतिवर्ष के हिसाब से होने लगे। मजबूरन महाराष्ट्र सरकार को ऐसे परीक्षणों को रोकने के लिए 1979 में कानून बनाना पड़ा। इस परिप्रेक्ष्य में डॉ० कुन्तल अग्रवाल ने मेरठ शहर में एक सर्वेक्षण किया और निष्कर्ष निकाला कि आज से कुछ शताब्दियों के बाद स्त्री प्रजाति भी डायनासोर की तरह ही कहीं इतिहास के पन्नों में ही न सिमटनी शुरू हो जायें।

भारतीय स्त्रियों के प्रति पुरुष हिंसा के संदर्भ में भारतीय सामाजिक परिवेश भी सहायक है क्योंकि भारतीय समाज एक परम्परागद्द, रूढ़िगत समाज है जो पुरुष प्रधानता पर आधारित है। उक्त सामाजिक परिवेश एक ऐसी मान्यता, परम्परा, विचार एवं मूल्य पर आधारित मानसिकता को जन्म देता है जो पुरुष अहंकार को पोषित करता है और स्त्रियों को अपने अधीन रखने की प्रवृत्ति पर बल देता है। पुरुष अपने को स्त्री से श्रेष्ठ मानते हुए उस पर शासन करना अपना अधिकार समझता है और यह प्रवृत्ति ही पुरुष को नारी पर अधिकार रखने, दबाने व असम्भववात्मक परिस्थितियों में अभद्र, अशोभनीय व कभी-कभी हिंसक आपराधिक व्यवहार करने के लिए प्रेरित करता है और नारी की अबला का संस्कारगत मानसिकता है जो पुरुष के अत्याचार को सहने को विवश करती है।

टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन द्वारा महिला समस्याओं पर आधारित मासिक पत्रिका फ़ैमिना के अंक दिसम्बर 1991 के सम्पादकीय ने नारी उत्पीड़न पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि— 'लगता था आजादी के बाद महिलाओं की स्थिति भी बेहतर होगी, नई दिशा एवं एक नई आधुनिकता समाज में जागृति लायेगी और महिलायें पुरुषों की तरह समाज में समान अवसर पाकर एक नये समाज की संरचना में हाथ बँटायेंगी, लेकिन दुर्भाग्य से वैसा हुआ नहीं है। महिलायें आगे जरूर आई हैं और आज लगभग हर क्षेत्र में वह पहले की तुलना में ज्यादा दिखाई दे रही हैं पर महिला उत्पीड़न की घटनायें कम नहीं हुई हैं। नतीजा यह है कि महिलायें आज भी अपने को असुरक्षित महसूस करती हैं। दहेज हत्याओं, बलात्कार, शारीरिक—मानसिक उत्पीड़न के चलते समाज में स्त्री पुरुष विभाजन की भी नई स्थितियाँ बनी हैं। कामकाजी आधुनिक नारी को भी अक्सर कई अवरोधों का सामना करना पड़ता है। यह भी एक सच्चाई है कि उत्पीड़न के तौर-तरीकों में भले ही फर्क हो, पर शहरी और ग्रामीण स्त्रियाँ समान रूप से अवहेलना, उपेक्षा और दमन की शिकार हो रही हैं।

महिला उत्पीड़न की चर्चा करते हुए संगीता महादणी लिखती हैं— ऐसा नहीं है कि महिला उत्पीड़न का दौर सिर्फ भारत में ही है, पश्चिमी देश भी इससे अछूते नहीं हैं। प्राप्त आँकड़ों के अनुसार ब्रिटेन में 50 प्रतिशत पत्नियों से उनके पति ही बलात्कार करते हैं..... 1989 में चीन में हुए आंदोलन में चुन-चुन कर लड़कियों पर अत्याचार किये गये। वर्मा में (वर्तमान म्यानमार) में महिला उत्पीड़न का सबसे आम तरीका बलात्कार है। यहाँ के सैनिक बलात्कार को तहकीकात का एक माध्यम और विद्रोहियों को सजा देने का जरिया मानते हैं। कमोवेश यही स्थिति फिलीपीन्स, सोमालिया, पेरु और ब्रिटेन में है।

महिलाओं की अपने प्रति हुए अपराधों में नारीगत स्वाभाविक लज्जा भी अपराध को बढ़ावा देने में सहायक सिद्ध होती है, इसकी पुष्टि आधुनिकता के द्योतक पश्चिमी देशों के सिरमौर ब्रिटेन में हुए सर्वेक्षणों से किया जा

सकता है। लीडस में कुछ महिलाओं के ऐसे समूह जो कि छोटे क्षेत्र में रहती थी, से इन्टरव्यू लिया गया और पूछा गया कि वह दूसरी महिलाओं और स्वयं अपने प्रतिघटित अपराधों की विस्तृत जानकारी दें, तो पाया गया कि उन महिलाओं ने अपराध होते देखा अथवा अनुभव किया था, में से मात्र 12 प्रतिशत ने पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करायी थी, जो कि कुल अपराधों की तुलना में बहुत कम है।

लंदन में 16-85 आयु वर्ग के मध्य की 60 महिलाओं के एक छोटे समूह में (जिनमें 17 अफ्रीकन वाली और 5 एशियन थीं) किये गये सर्वेक्षण में भी ऐसे ही परिणाम सामने आये। मात्र एक तिहाई महिलाओं ने इन्टरव्यू में पुरुष अत्याचारों की घटनाओं का वर्णन किया और सम्भावित प्रताड़ना की रिपोर्ट उन्होंने पुलिस में नहीं की।

भारतीय पुलिस सेवा अधिकारी श्री योगेन्द्र नारायण सक्सेना ने अपने एक लेख में लिखा है— आज समाज का समूचा समूह दुःखी है, त्रस्त है। विवाहित स्त्रियों को उनके पतियों एवं ससुराल वालों द्वारा दहेज की वेदी पर जला कर मार दिया जाता है। गरज यह है कि कहीं दृष्टि उठाइयें, कहीं भी दृष्टि डालिये, हर जगह घटना-दुर्घटना का क्रूर चक्र ही देखने को मिलता है। पत्नी को मार डालने की दर्दनाक घटनायें अभी तक कम सुनी जाती थीं लेकिन अब मुस्लिम तबके में भी दिन-प्रतिदिन यह अपराध जोर पकड़ रहा है। कहीं नवविवाहिता को उनके ससुराल वाले मिट्टी का तेल छिड़क कर जान से मार डालते हैं, कहीं गला घोटकर और कहीं बेदर्दी से तेल छिड़ककर जान से मार डालते हैं,— सभी इन्तहा ही दर्दनाक वाक्य हैं।

15 फरवरी 1988 को नई दिल्ली में “महिलाओं के विरुद्ध पारिवारिक अत्याचार” विषयक गोष्ठी में न्यायमूर्ति श्री डी०ए० देसाई ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि— “सभ्यता के प्रादुर्भाव के साथ ही नारी शोषण व नारी के प्रति अत्याचार की सामाजिक स्थितियाँ उत्पन्न कर दी गयीं जिनको नारी सदा मूकदर्शक की तरह देखती रही और उसने कभी संगठित होकर विद्रोह नहीं किया। वही स्थिति आज भी है जबकि नारी के साथ हर क्षेत्र में भेदभाव किया जाता है। चाहे वह समान अवसरों का क्षेत्र हो, चाहे सम्पत्ति उत्तराधिकार का। यही नहीं, नारी पर अनेक अत्याचार किये जाते हैं, उनको पीटा जाता है, विवश नारी के साथ बलात्कार किया जाता है और कई प्रकार से प्रताड़ित किया जाता है तथा दहेज न लाने पर मार तक दिया जाता है। मूकदर्शक नारी सदा ही पुरुष समाज व्याधि का शिकार बनी है। शिक्षा के क्षेत्र में समान अवसर न दिये जाने के फलस्वरूप नारी को आर्थिक आत्मनिर्भरता व स्वावलम्बन के अधिकार नहीं मिल पाते, जिससे वह आर्थिक रूप से पुरुष अस्मिता रहकर अन्याय व अत्याचार को चुपचाप सहती है।

पुलिस का व्यवहार भी महिलाओं के प्रति अभद्रतापूर्ण एवं उनकी मानवीय संवेदनाओं और अधिकारों के विरुद्ध होता है जिनसे वे स्वयं समाज की अपेक्षा कहीं अधिक प्रताड़ित एवं अपमानित हुआ अनुभव करती है। पुलिस व्यवहार के संदर्भ में एक छात्रा का कहना है कि— “हमारा देश तो स्वतंत्र हो गया लेकिन पुलिस का रवैया अभी भी ब्रिटिशकालीन है। आम तबका उससे इतनी दहशत खाता है कि यदि कोई पुलिसवाला वर्दी पहनकर किसी को मिलने भी आये तो मुहल्ले में कानाफूसी शुरू हो जाती है। इसका कारण है पुलिस विभाग की खराब छवि। आम आदमी जब देखता है कि एक व्यक्ति को निश्चित रूप से अपराध कर रहा है और पुलिस वाले जानबूझकर उसकी अनदेखी कर रहे हैं, भले ही किसी प्रभाव के कारण तो वह यही सोचता है कि पुलिस वालों में आत्मबल नहीं है। कानून की शक्ति उनके पक्ष में होते हुए भी अपने स्वार्थ के कारण वे न्याय पक्ष के लिए काम करने में अपने को कमजोर महसूस कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में उनसे सुरक्षा अथवा न्याय की आशा रखना मात्र एक मृगतृष्णा है। यही पुलिस जब एक ओर अपराधियों को अनदेखा करती है तो दूसरी ओर असमर्थ गरीब एवं निपराध लोगों को झूठ-मूठ फँसा कर अपनी कर्तव्यनिष्ठा का ढिंढोरा पीटती है, जो उन पर गुस्से के बजाय तरह आता है क्योंकि वह इस तथ्य को बिल्कुल भूल जाते हैं कि उनका अपना परिवार भी आम तबके में आता है और वे अपराधी उनके परिवार पर भी कभी हाथ साफ कर सकते हैं। ऐसी कई घटनाएँ भी घट चुकी हैं। अतः नित्य नये-नये दंगे, फसाद,

चोरी, बलात्कार, महिलाओं से छेड़छाड़ जैसी घटनायें होती रहती हैं। मेरे विचार से यदि पुलिस निष्पक्ष रूप से ईमानदारी से कार्य करें, दोषी व्यक्ति को सजा दिलवाने का प्रयत्न सच्चाई से करें, कुछ रुपयों की रिश्वत लेकर अपराधी को प्रश्रय न दें एवं अपने कर्तव्यों का निष्ठा से पालन करे तो निश्चित रूप से अपराध कम होने के साथ-साथ आम जनता पुलिस को न केवल सहयोग देगी, अपितु अपनी सुरक्षा एवं सहायता करने के लिए उसको हार्दिक सम्मान भी देगी।

हमारी पुलिस व्यवस्था का सबसे पहला उत्तरदायित्व महिलाओं के प्रति होने वाले अपराधों में महिलाओं को संरक्षण प्रदान करना है। यह अपराध एकतरफा हैं और पीड़ित: पूर्णतः स्वयं को उनके अथवा पुलिस सहायता के बिना न्याय पाने में असुरक्षित अनुभव करता है। पुलिस की भूमिका अपराध की रोकथाम की एजेंसी के रूप में, महिलाओं के प्रति अपराधों की रोकथाम करने से अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि ये अपराध एक बार होने पर पीड़ित के नुकसान की भरपाई नहीं कर पाते और पूर्ण समाज में और किसी भी प्रकार का दण्ड अथवा क्षतिपूर्ति उसके खोये सम्मान और प्रतिष्ठा को लौटाने में समर्थ नहीं है। यह केवल पुलिस ही है जो कि महिलाओं को त्वरित सहायता पहुँचा कर और अपराधियों को अधिकतम दण्ड दिलाने का आश्वासन प्रदान कर महिलाओं में सुरक्षा की भावना उत्पन्न कर सकती है। यदि पुलिस किन्हीं कारणों से पीड़िता की मदद करने में नाकामयाब रहती है तो वह (महिला) प्रभावी मदद पाने का कोई दूसरा स्थान नहीं रखती और उसके प्रति हुए भयानक अपराध का प्राथमिक धक्का बहुआयामी होकर कई गुना बढ़ जाता है। इन सभी मामलों में पुलिस का दायित्व सबसे महत्वपूर्ण एवं सर्वोच्च होता है। अधिकांश आपराधिक मामलों में अपराधी प्रायः घर का व्यक्ति ही होता है, ऐसे मामलों में अपराध के संदर्भ में पुलिस के लिए प्रथम या पूर्व सूचना पाना अत्यंत कठिन है। ये मामले अत्यंत दुरुह और संवेदनशील होते हैं इसीलिए पुलिस को उनको सिद्ध करना मुश्किल होता है। वास्तव में पुलिस ऐसा करते हुए डरती है कि उसका अत्यधिक हस्तक्षेप मौजूदा तनावपूर्ण हालात को और अधिक बिगाड़ न दे जबकि वह कुछ अत्यंत उलझे हुए मामलों का यथा दहेज हत्या को सुलझाने में कामयाब रहती है।

ऐसे सभी आपराधिक मामलों की जानकारी पुलिस को न केवल जानबूझकर देर से दी जाती है, अपितु आपराधिक साक्ष्यों को मिटाने का भी प्रयास किया जाता है। पारिवारिक मामलों में झगड़ों के प्रथम अभिकथन प्रायः अपराधी के द्वारा प्राप्त होते हैं और उन्हें प्रायः दुर्घटना मात्र बताया जाता है अथवा उत्पीड़ित महिला पर भी चारित्रिक दोषारोपण कर दिया जाता है। बलात्कार सम्बंधी मामलों में प्रायः उत्पीड़क (महिला) अपराध की सूचना देते हुए हिचकिचाती है और यदि वह रिपोर्ट करना भी चाहती है तो भी वह पूर्ण तथ्य उजागर करते हुए संकोच करती है। परिणामस्वरूप संदेह का लाभ अपराधी को मिल जाता है। जिसके चलते पुलिस को अन्वेषण के दौरान अत्यंत कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। उत्पीड़क के समर्थन में कोई भी सीधी गवाही नहीं मिल पाती है क्योंकि ऐसे अपराधों का चश्मदीद गवाह एकमात्र अपराधी ही होता है। उत्पीड़क के मामलों में उसके समर्थन में जो गवाहियाँ/साक्षियाँ होती हैं वे उसके मित्रों और रिश्तेदारों द्वारा पूर्वाग्रहित होती हैं। ऐसी ही मिलती जुलती कठिनाईयाँ पुलिस को न्यायालय में अभियोजन के समय उठानी पड़ती हैं और अंत में परिणाम यह होता है कि अपराधी छूट जाते हैं

पुलिस का संगठन एवं कार्य करने की शैली भी समाज की अपेक्षाओं के प्रतिकूल है। आज भी पुलिस का संगठनात्मक ढाँचा 1861 के अधिनियम पर आधारित है जो कि बदलती हुई वर्तमान परिस्थितियों एवं समाज की अपेक्षाओं के अनुकूल नहीं है। अधिकांश पुलिस स्टेशन केवल रपट रचना में संलिप्त नजर आते हैं जो मूल रूप से अपने आपको सुरक्षित करने का प्रयास मात्र है। आम जनता ऐसे आतंक गृह में जाने से स्वयं को बचाते हैं। पुलिस न तो अपराध और उत्पीड़न के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करने की आवश्यकता अनुभव करती है और न ही लोगों से मिलने का कोई उद्देश्य मानती है। दुर्भाग्य से आजादी के बाद से अब तक पुलिस संगठन के मौलिक ढाँचे

और कार्यों में कोई बदलाव नहीं आया है जिसका सबसे बड़ा कारण आर्थिक तंगी बताया जाता है, परिणामतः पुलिस कमोवेश आज तक वैसी ही है। कार्यवाही न करने, मामलों का घुमा देना और पक्षपात करने के आरोप पुलिस पर हमेशा लगते रहते हैं जो कभी सत्य भी होते हैं। इससे सबसे अधिक कष्ट महिलाओं को भोगना पड़ता है जो कि वांछित संरक्षण नहीं प्राप्त कर पातीं व पुलिस स्टेशन पर रिपोर्ट करना अथवा जाना भी नहीं चाहतीं।

अक्षेन्द्र नाथ सारस्वत जी ने महिलाओं की सुरक्षा के संदर्भ में पुलिस की भूमिका विषय पर एक सर्वेक्षण किया और पाया कि भारत में महिलाओं की हत्याओं के पीछे जो कारण प्रायः मिलते हैं उनमें पत्नी द्वारा पति के अन्य महिलाओं से सम्बंधों में अवरोधक की भूमिका, महिलाओं के प्रति घृणा (विशेषकर अपनी पत्नी के प्रति), प्रेम की असफलता के फलस्वरूप प्रेमिकाओं की हत्या, प्रतिशोध स्वरूप, डकैती आदि के अवसर पर इच्छा अनुरूप व्यवहार न करना, अवैध सम्बंधों से बचाव के रूप में, सुखवादी विकृत मनोवृत्ति, सम्पत्ति सम्बंधी झगड़ों में पत्नी की लम्बी बीमारी, सामाजिक प्रतिष्ठा, दहेज, कन्याओं की अपेक्षा पुत्रों की महत्ता को अधिक आँकना आदि।

उपरोक्त के संदर्भ में सर्वेक्षण में शामिल 64 महिला सूचनादाताओं ने बताया कि, 'पुलिस मात्र आधे से भी कम (46.8%) अपराधों में ही प्रथम सूचना रिपोर्ट लिखती है, एक तिहाई के लगभग पुलिस अपराध अन्वेषण करती है, छठा भाग से कुछ अधिक मामलों में ही पुलिस अभियुक्तों को गिरफ्तार कर पाती है तथा एक चौथाई मामलों में ही अपराधियों की सम्पत्ति कुर्की और घायलों को उपचार कराती हैं।

महिला हत्या के साथ-साथ समाज में महिलाओं के प्रति बलात्कार की घटनायें भी तेजी से बढ़ रही हैं। महिलाओं की इच्छा के विरुद्ध किया गया शारीरिक संसर्ग एक दण्डनीय अपराध माना गया है और संसार धर्मों में भी इसकी कड़ी निंदा की गयी है। इस घटना से पीड़ित नारी की मानसिक एवं सामाजिक स्थिति को इतना आघात लगता है कि वह स्वयं को इस संसार में जीवित रहने योग्य भी नहीं पाती। अन्य अपराधों की तरह इस अपराध के घटित होने पर भी मात्र पुलिस ही एक ऐसी संस्था है जो कि अपराधों का अन्वेषण करती है। लंदन रेल क्राइम्स जैसे सेंटर के आँकड़ों से पता चलता है कि बलात्कार से पीड़ित महिलाओं द्वारा बहुत कम संख्या में अपराधों का पंजीकरण कराया जाता है। इस सम्बंध में शोधकर्ता द्वारा 64 महिला सूचनादाताओं द्वारा प्राप्त आँकड़ों से पता चलता है कि बलात्कार जैसे जघन्य अपराध के संदर्भ में पुलिस द्वारा और भी कम प्रतिशत में कार्यवाही की जाती है। आधी महिलाओं ने इस पर कोई उत्तर देना उचित नहीं समझा। समग्र की शेष महिलाओं के अनुसार पुलिस सर्वाधिक कार्यवाही (16.1 प्रतिशत) प्रथम सूचना रिपोर्ट लिखने की करती है और सबसे फरार अभियुक्तों की सम्पत्ति की कुर्की (1.3 प्रतिशत) की कार्यवाही करती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि परिस्थितिजन्य तथा अन्य कारणोंवश पुलिस वर्तमान में इस बलात्कार अपराध के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह सम्यक् ढंग से नहीं कर पा रही है।

इसी प्रकार महिलाओं के प्रति होने वाले जघन्य अपराधों में एक जघन्य अपराध दहेज के कारण महिलाओं का शारीरिक एवं मानसिक शोषण एवं हत्या है। आज पुत्र विवाह पूरी तरह से एक सौदा बन चुका है और इसका पूरा लाभ उठाने का प्रयास किया जाता है। यद्यपि दहेज हत्या निवारण हेतु सरकार द्वारा दहेज निरोधक अधि० 1961 में ही पारित कर दिया गया परन्तु पिछले दशक में इस विभीषिका ने सामाजिक बुराई के स्थान पर एक अपराधिक त्रासदी का रूप धारण कर लिया। परिणामतः दहेज निवारण (संशोधन) विधेयक 1984 जो 2 अक्टूबर 1985 से क्रियान्वित हुआ, पारित किया गया। जिसके अनुसार वर एवं वधू को विवाह के समय दिये गये उपहारों की सूची बनानी होगी जिस पर दोनों पक्षों के हस्ताक्षर अनिवार्य हैं। दहेज हत्याओं के संबंध में भारतीय दण्ड विधान की धाराओं के अंतर्गत कार्यवाही कर दण्डित किये जाने का प्रावधान है।

बावजूद इसके इन अपराधिक मामलों के अन्वेषण में पुलिस की भूमिका की अपनी कुछ सीमाएँ होती हैं। प्रायः पुलिस अपराधिक हत्या प्रकरण को किसी प्रभावशाली दबाव के चलते मामले को दबाने का प्रयास करती

है, कभी-कभी प्रशासनिक दबाव के कारण शीघ्र परिणाम की दृष्टि से जल्दबाजी के कारण साक्ष्यों एवं स्थिति का पूर्ण आँकलन नहीं हो पाता जिसके चलते न्यायिक स्तर पर साक्षी निष्फल हो जाता है और अपराधी बच पाने में सफल हो जाता है। हालांकि नवीन संशोधनों के अनुसार दहेज सम्बंधी मामलों में अब स्वयं को निरपराध सिद्ध करने का दायित्व अब अपराधी पर है।

शोधकर्ता ने नारी शोषण, उत्पीड़न अत्याचार एवं हत्या के इस बहुआयामी अपराध के सम्बंध में अपने सर्वेक्षण में पाया कि पुलिस कार्यवाहियों के प्रति महिला सूचनादाताओं की अभिव्यक्ति अपेक्षाकृत और भी कम एवं निराशाजनक थी। आधे से अधिक महिलाओं ने पुलिस पर निष्क्रियता का आरोप लगाते हुए विरोध स्वरूप कोई उत्तर नहीं दिया। एक चौथाई ने प्रथम सूचना रिपोर्ट लिखने की बात कही और इस अपराध के लिए सबसे कम गिरफ्तारी सम्बंधी कार्यवाही करने का स्थान रहा जबकि न्यायालय से दण्डित कराने में गिरफ्तारी की अपेक्षा (1.2%) की अधिकता पायी गयी।

इसी प्रकार समाज में महिलाओं के प्रति किये जा रहे मुख्य अपराधिक कृत्यों में एक कृत्य देह व्यापार भी है। परिस्थितियाँ जब नारी के विपरीत होती हैं तो नारी का पग-पग पर शोषण होता है। अनैतिक व्यापार में महिलाओं को लगाया जाता है। महिलाओं को दिवास्वप्न दिखाये जाते हैं, प्रलोभन देकर आकर्षित किया जाता है, उनको पशुवत बेचा जाता है। उनको कामुकता की प्रतिमूर्ति के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। देह व्यापार के इस अनैतिक धंधे को रोकने के लिए बहुत सारे कानूनी प्रावधान एवं अर्थदण्ड की व्यवस्था की गयी है।

परन्तु इस अपराध के प्रति पुलिस कितनी सक्रिय है, इस बात का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि इन कानूनों के होते हुए भी अब आधुनिक पॉश कालोनियों में विस्तृत कोठियों में देह व्यापार के अड्डे दिन प्रतिदिन अपना प्रभाव जमाते जा रहे हैं और इस अपराध में लिप्त होने वाली महिलाओं की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। गिरोहबंद अपराधियों के भय से जन साधारण इनके प्रति पुलिस में रिपोर्ट नहीं कर पाता है और पुलिस स्वयं अपने स्तर पर इस संदर्भ में कुछ भी करने को तत्पर नहीं होती है।

शोधकर्ता द्वारा अपने सर्वेक्षण में पाया गया कि देह व्यापार सम्बंधी अपराध में पुलिस प्रथम सूचना रिपोर्ट लेखन एवं अन्वेषण का कार्य तो करती है किन्तु पुलिस धन लेकर इस धंधे में लिप्त लोगों के विरुद्ध केवल दिखावटी कार्यवाही ही करती है। पीड़ितों की अपेक्षा अपराधियों के प्रति अधिक सहानुभूति रखती है क्योंकि इस व्यापार में लिप्त लोगों से न केवल उन्हें धन की प्राप्ति होती है अपितु उन्हें ऐसी विवश महिलाओं के साथ मुफ्त में शारीरिक भूख मिटाने की सुविधा भी मिल जाती है। इसलिए महिलायें पुलिस की भूमिका से असंतुष्ट हैं।

उसी प्रकार लड़कियों एवं महिलाओं के प्रति छेड़छाड़ की घटनायें भी आज एक आम बात हो गयी है और शायद ही कोई स्त्री अपने आप को इससे बचा पायी हो। आज स्कूल, कॉलेज, कार्यालयों एवं विभिन्न सार्वजनिक स्थलों पर फर्बियाँ कसना, अश्लील भाव भंगिमा का प्रदर्शन कुछ विकृत मानसिकता वाले व्यक्तियों का आमोद-प्रमोद का एक साधन बन गया है। इस संदर्भ में मैंने अपने वर्तमान महाविद्यालय (राजकीय महिला महाविद्यालय फतेहपुर) में एम0ए0 द्वितीय वर्ष, राजनीति विज्ञान की छात्राओं के बीच एक सामूहिक चर्चा का आयोजन किया जिसमें प्रतिभागी छात्राओं ने अपने अनुभव बाँटे। अधिकांश छात्राओं का मानना था कि ये उनके लिए रोज की बात हो गयी है और वे इसकी आदी भी हो चुकी हैं। कभी-कभार हम गुस्से में पलटवार भी करते हैं, किन्तु उन विकृत लोगों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ये पूछने पर कि क्या आप इन घटनाओं की चर्चा आप अपने माता-पिता या अभिभावक से करते हैं या पुलिस से शिकायत करने की कोशिश करते हैं तो इस संदर्भ में लगभग सभी छात्राओं का जवाब एक जैसा था। उन सभी का कहना था कि अगर वे अपने माता-पिता से शिकायत करती हैं तो उनका कॉलेज आना बंद कर दिया जायेगा, पुलिस में शिकायत करने की बात तो दूर की है और यही स्थिति कमोवेश अधिकांश भारतीय गाँव एवं कस्बों की है। मजेदार बात यह है कि इस घटिया

मनोविनोद में युवा वर्ग से ज्यादा अंधेड़ उम्र के लोग अधिक भद्दी हरकत करते हैं शायद इसलिए कि अंधेड़ उम्र के कारण उनकी हरकतों को सिद्ध करना कठिन होता है।

इन छात्राओं में इन घटनाओं के प्रति जबरदस्त आक्रोश था किन्तु अपने माता-पिता की सोच एवं उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा की मानसिकता के चलते ये सभी मजबूर थीं। ऐसी परिस्थिति में छेड़छाड़ की अधिकांश घटनाओं में पुलिस को कोई सूचना नहीं दी जाती और इसके चलते विकृत मानसिकता वाले लोगों की हिम्मत में इजाफा हो जाता है और वे पूरी दबंगता के साथ इन घटनाओं को अंजाम देते हैं और मौका मिलने पर इसी चुप्पी के कारण संगीन अपराध को अंजाम दे जाते हैं।

उपरोक्त सभी घटनाओं एवं अपराधों में पुलिस प्रशासन की भूमिका बहुत आशाजनक नहीं कही जा सकती। क्या पुलिस की आशाजनक भूमिका के न होने के पीछे केवल हमारी पुलिस व्यवस्था जिम्मेदार है? शायद नहीं, क्योंकि अधिकांश अपराधिक घटनाओं में हम स्वयं आगे बढ़कर नहीं आते और चुप्पी साध लेते हैं। बहुत सारे मामलों में हमारी सामाजिक प्रतिष्ठा आड़े आती है जिसके चलते हम पुलिस के पास नहीं जाते। ऐसी परिस्थिति में महिलाओं की सुरक्षा की नाकामी का टीकरा केवल पुलिस के सर फोड़ना उचित नहीं है। इसके लिए पुलिस के साथ-साथ हम और आप भी जिम्मेदार हैं। इन अपराधिक घटनाओं को रोकने में जितनी भूमिका पुलिस की है उससे कहीं ज्यादा जिम्मेदारी इस पूरे समाज की है। इस संदर्भ में स्वतंत्र भारत के प्रथम गृहमंत्री श्री सरदार बल्लभ भाई पटेल ने कहा था— “हम सबको अच्छी तरह समझना होगा कि कोई भी लोकतांत्रिक सरकार पुलिस राज के आधार पर नहीं चल सकती। यह तभी कार्य कर सकती है जब समग्र रूप से जन सामान्य की स्वेच्छा से सहमति एवं सहयोग प्राप्त हो। अन्य किसी क्षेत्र में जन सामान्य के सहयोग की उतनी आवश्यकता नहीं होती जितनी कि पुलिस के फील्ड कार्य में। भले ही यह कार्य अपराध की रोकथाम या अपराध का पता लगाने का हो अथवा अनियंत्रित भीड़ या उदण्ड व्यक्तियों के जमाव का सामना करने का हो।

पुलिस सरकार का वह साधन है जिसके द्वारा शांति और व्यवस्था को कायम रखा जाता है और व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा की जाती है। पुलिस के बिना देश में अराजकता और अशांति फैल जायेगी। न्याय व्यवस्था से किसी राष्ट्र को जो लाभ प्राप्त होते हैं उनका उपयोग पुलिस के अभाव में नहीं हो सकता। चूँकि वे समाज की जटिलता के साथ रहते हैं और इसीलिए वे और भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं। वे नागरिकों की देखभाल, कार्यों और सभ्य समाज के कानून की संरचना और स्वीकृत सामाजिक व्यवहार को सफल बनाते हैं।

आज बढ़ती हुई जनसंख्या, अपराधों में वृद्धि, आतंकवादी गतिविधियाँ, नशाखोरी, नागरिक कर्तव्यों के प्रति लापरवाही आदि अनेक कारणों के चलते सामान्यजन को सामाजिक न्याय प्राप्त तथा उसके मानवाधिकारों के प्रतिपादन का दर्शन पुलिस तंत्र के लिए नित नयी चुनौतियाँ बनकर तेजी से सामने आ रही हैं। आज पुलिस के प्रति जन मानस का विश्वास खोता जा रहा है। पुलिस का यह कर्तव्य है कि अपने उच्चाधिकारी के आदेशों का निष्ठापूर्वक पालन करे तथा जनता में व्याप्त भय को (पुलिस के भय), दूर करने का प्रयास करे साथ ही उसे अपने कार्यों को सही परिणाम तक पहुँचाने के लिए पग-पग पर जनता का समर्थन एवं सहयोग भी प्राप्त करना होगा। इसके अलावा प्रत्येक पुलिस जन एवं अन्वेषणाधिकारी को न केवल चारित्रिक गुणों से सम्पन्न होना आवश्यक है अपितु बढ़ते हुए अपराधों की तकनीक, निवारण के उपाय एवं जन मानस को समझने की क्षमता होना भी आवश्यक है। पुलिस प्रशासनिक ढाँचे में भी आवश्यकतानुसार बदलाव लाया जाये और पुलिस पारिश्रमिक भी बढ़ाया जाये, ताकि पुलिस बिना किसी लालच या स्वार्थ के अपनी भूमिका का जिम्मेदारी से निर्वहन कर सके।

अंत में हमारी आधी आबादी को भी जागरूक एवं निर्भीक बनकर अपनी समस्याओं को समाज के पटल पर लाना होगा और पुलिस की सहायता से उनका निवारण करना होगा। पुलिस एवं समाज की मानसिकता एवं भूमिका में बदलाव तभी आयेगा जब हम सभी स्त्रियाँ आगे बढ़कर इस बदलाव के लिए एकजुट होंगी। कहते हैं ईश्वर

भी हमारी मदद तभी करता है जब हम अपनी मदद के लिए तैयार होते हैं, लिहाजा पुलिस एवं समाज भी हमारी मदद कर पायेंगे जब हम स्वयं अपनी समस्याओं, शोषण, पीड़ा से लड़ने को तैयार होंगे और शायद हम तभी सही मायने में एक स्वतंत्र एवं सुरक्षित वातावरण में रहकर अपने आपको सशक्त कर पायेंगे..... ।

संदर्भ ग्रंथ :

1. माथुर, डॉ० कृष्ण मोहन—विकासशील समाज में समसामयिक पुलिस की भूमिका, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1989
2. मलिक, बी०एन०—पुलिस: एक दार्शनिक विवेचन, यूनाइटेड इण्डिया प्रेस, लिंक हाउस, नई दिल्ली, 1970
3. मिश्रा, शरतचन्द्र—पुलिस संगठन और प्रशासन, प्रकाशक—पुलिस अनुसंधान तथा विकास ब्यूरो (प्रशिक्षण निदेशालय) गृह मंत्रालय, नई दिल्ली, 1977
4. चतुर्वेदी, डॉ० आर०जी०—जस्टिस—नेचुरल, सोशल, इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल, दि लॉ बुक कम्पनी (प्रा०) लि०, इलाहाबाद, 1990
5. बत्रा, मंजुला—प्रोटेक्शन आफ ह्यूमन राइट्स इन क्रिमिनल जस्टिस एडमिनिस्ट्रेशन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1989
6. अंसारी, एम०ए०—नारी चेतना और अपराध, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1989
7. श्रीवास्तव, टी०एन०—वूमैन एण्ड दि लॉ, इन्टलेक्चुअल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1985
8. अक्षेन्द्र नाथ सारस्वत—सामाजिक न्याय, मानवाधिकार और पुलिस, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1998
9. फेमिना, मासिक पत्रिका
10. योजना, मासिक पत्रिका
11. उ०प्र० पुलिस पत्रिका, मासिक पत्रिका



विज्ञापन और महिला

डॉ० अंजना वर्मा

व्याख्याता—समाजशास्त्र

बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज०)

विज्ञापन एक प्रकार का सम्प्रेषण है, जो सन्देश ग्रहणकर्ता पर संदेश की प्रभावी प्रतिक्रिया से प्रेरित होता है। भूमण्डलीकरण के दौर में विकसित देशों ने विकासशील देशों के बाजार पर अपना प्रभुत्व जमाने के लिए उपभोक्तावादी संस्कृति को जिस तरह से विस्तृत किया है, उससे यदि किसी क्षेत्र को फायदा मिला है, तो वह विज्ञापन का क्षेत्र ही है। आज बिना विज्ञापन के बाजार के क्षेत्र में प्रवेश करना मुश्किल है। प्रवेश के बाद भी बाजार में बने रहने तथा उत्पाद की माँग को और उसकी विश्वसनीयता को बनाए रखने के लिए विज्ञापनों पर बराबर निर्भर रहना पड़ता है। आज बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ विज्ञापन के जरिए अपना बाजार बढ़ाकर तीसरे विश्व के देशों के बाजारों से स्थानीय उत्पादों को समाप्त करती जा रही हैं। यह विज्ञापन का ही कमाल है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बाजार पर अपनी मजबूत पकड़ बना ली है और स्थानीय बाजारों को बेरोजगारी तथा मंदी की ओर धकेल दिया है। एक समय था, जब विज्ञापन के लिए समाचारों के बीच कोई गुंजाइश नहीं थी, समाचार ही सर्वोपरि थे, लेकिन आज, समाचारों के बीच भी एक “छोटा सा विराम” या “ब्रेक के बाद” कहकर राष्ट्रीय-बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के उत्पाद के विज्ञापन प्रदर्शित किए जाते हैं। आज खबर बन गए विज्ञापनों के लिए समाचारों में कटौती की जा रही है। यह वस्तुतः कार्यक्रम संरचना और विज्ञापन के बीच का नया रिश्ता है, जो भूमण्डलीकरण और उदारीकरण की देन है। आज रेडियो, टी.वी., वेबसाइट, अखबार व मैगजीन सभी में विज्ञापनों की भरमार है। आज विज्ञापन प्रिन्ट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की रीढ़ है। अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं में पठनीय विषयवस्तु के अनुपात में विज्ञापनों का अनुपात कहीं ज्यादा होता है। रेडियो, टी.वी. के कार्यक्रमों में भी विज्ञापनों का हस्तक्षेप दिनोदिन बढ़ता हुआ नजर आ रहा है।

विज्ञापन अंग्रेजी शब्द Advertising का हिन्दी रूपान्तरण है। एडवर्टाइजिंग की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द एडवर्टर (Advertor) से हुई, जिसका अर्थ है “टू टर्न टू” यानि किसी ओर मुड़ना – अर्थात् किसी के प्रति लोगों को मोड़ना या आकर्षित करना। हिन्दी में विज्ञापन शब्द का अर्थ विशेष ज्ञान अथवा विशेष सूचना देने से जुड़ा है। विज्ञापन का उद्देश्य विज्ञापनदाताओं की वस्तु का विक्रय करना एवं सार्वजनिक विचारधारा को व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से विज्ञापनदाता के हित में प्रभावित करता है। विज्ञापन विक्रय कला का एक भुगतानपरक, नियंत्रित और निर्धारित अवैयक्तिक संचार है, जिसमें उपभोक्ता या लक्षित जनसमूह को दृष्टि में रखकर मौखिक, लिखित तथा दृश्यात्मक सूचनाओं द्वारा विज्ञापनदाताओं के हक में जन-सहमति और जन-स्वीकृति का आधार तैयार किया जाता है। विज्ञापनों में ध्यानाकर्षण के तत्व को महत्वपूर्ण मानते हुए कई तरह की शैलियों का और चित्रों का प्रयोग विज्ञापनों में किया जाने लगा। चित्रकथा के माध्यम से, संवाद-शैली के माध्यम से विज्ञापन को रोचकता प्रदान की जाने लगी।

जनसंचार के विस्तार ने भी विज्ञापन-जगत को भरपूर लाभ पहुँचाया। प्रिन्ट मीडिया के साथ-साथ इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने भी विज्ञापन का स्तर उन्नत बनाया। सन् 1957 में आकाशवाणी ने और 1976 में दूरदर्शन ने व्यावसायिक प्रसारणों का रास्ता साफ करके विज्ञापन की दुनिया को आकर्षक रंग-रूप प्रदान किया। रेडियो की “विविध भारती” सेवा के अन्तर्गत प्रसारित होने वाले विज्ञापन लोगों की विभिन्न उत्पाद संबंधी रुचियों को

प्रभावित करने लगे। दूरदर्शन पर पहले स्थिर चित्रों के द्वारा विज्ञापन का प्रसारण किया जाता था। लेकिन शीघ्र ही चलचित्र के साथ विज्ञापन प्रदर्शित किए जाने लगे।

विज्ञापन की दुनिया आज केवल प्रेस विज्ञापन, रेडियो, टेलीविजन के विज्ञापन तक ही सीमित नहीं है। फिल्म, टैलेक्स, टेलीफोन, यातायात के साधन आदि ने विज्ञापन को व्यापक क्षेत्र उपलब्ध कराया है। उच्च प्रौद्योगिकी में विज्ञापन को बहुत विस्तार दिया है। आज इन्टरनेट विज्ञापन की अलग ही दुनिया है, जिसे “वेबवरराइजिंग” नाम दिया गया है। इन्टरनेट पर विज्ञापन देना विज्ञापन के अन्य कई विज्ञापनों में सस्ता है तथा इसमें विश्व के कोने-कोने में मौजूद उपभोक्ताओं तथा अपने उत्पाद की जानकारी पहुँचाई जा सकती है। आज भूमण्डलीय समय में मुक्त बाजार व्यवस्था के चलते विज्ञापन की माँग व उसकी जरूरत बढ़ी है। विज्ञापन एजेंसियाँ राष्ट्रीय प्रसार के साथ-साथ विश्व फलक पर विज्ञापन की दुनिया को फैला रही हैं। इस तरह संचार क्रांति के कारण विज्ञापन के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई है। आज विज्ञापन केवल व्यावसायिक दृष्टि से ही अपनी कारगर भूमिका नहीं निभा रहे, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का भी प्रभावकारी माध्यम सिद्ध हो रहे हैं। पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक स्तर पर प्रगति एवं परिवर्तन की मुहिम चला रहे हैं।

आज विज्ञापन रचनात्मक विज्ञापन के दौर से काफी आगे निकलकर व्यावसायिक विज्ञापन के दौर में है। आज विज्ञापन आधुनिक जीवन-शैली और बाजार संस्कृति की बड़ी शक्तिशाली तथा महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति के रूप में अपनी पहचान बना रहे हैं। आज विज्ञापन के बिना किसी भी व्यापार का फूलना-फलना असम्भव है। बिना विज्ञापन के किसी उत्पाद की जानकारी समाज तक पहुँचाकर उसे बेचना अब असम्भव सा है।

विज्ञापन केवल सत्य से कोसों दूर ही नहीं होते, बल्कि बड़ी अमानवीय और हिसंक तस्वीर भी सामने रखते हैं। विज्ञापन की दुनिया में आज विज्ञापन और स्त्री, दोनों एक-दूसरे के पर्याय बन गये हैं। विज्ञापनों में स्त्री की छवि और उसकी देह को कामुक अपील बनाकर प्रस्तुत किया जाता रहा है। आज विज्ञापन एजेंसियाँ और उद्योग जगत् विज्ञापन सारी आचार संहिताओं और हमारे परम्परागत मान व नैतिक मूल्यों की धज्जियाँ उड़ाते हुए स्त्रियों की कामुक छवि को विज्ञापनों में दर्शाकर भारी मुनाफा कमा रहे हैं।

आज की मुक्त बाजार व्यवस्था में स्त्री देह, उसका सौन्दर्य, विज्ञापनदाताओं के हक में बहुत कारगर भूमिका निभा रहा है। स्त्री देह का बाजारीकरण करके विज्ञापन एजेंसियाँ अपनी और अपने ग्राहकों की हित-साधक बनी हुई हैं। उनके द्वारा तैयार विज्ञापन एक तरफ स्त्री के सौन्दर्य का विकृतिकरण कर रहे हैं। तो दूसरी तरफ मनुष्य की उच्च स्तरीय क्षमताओं को कुंठित करके चकाचौंध की कैद में डालने की बड़ी साजिश भी रच रहे हैं। स्त्रियाँ अपना बौद्धिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक विकास करने की बजाय सस्ते, कामुक और उपभोक्तावादी जाल में फँसती जा रही हैं। दरअसल स्त्री का गुलामी की तरफ बढ़ता हुआ यह एक और कदम है इसे दासी प्रथा का आधुनिक संस्करण भी कह सकते हैं।

शेविंग ब्लेड, टी.वी., टायर, जूते आदि के विज्ञापन में स्त्री का देह प्रदर्शन अनेक सवालिया निशान उठाता है, क्योंकि इस तरह के उत्पादों का स्त्री विशेष से कोई संबंध नहीं है। इस तरह के विज्ञापनों ने स्त्री के सौन्दर्य को बाजार की वस्तु बनाकर उपभोग की ही एक वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। चेहरे की ताजगी, कोमलता, शारीरिक सौष्ठव के अनुसार ही विज्ञापन के बाजार में एक स्त्री के दाम लगाए जाते हैं। यानि स्त्री के विकास को बड़े सस्ते ढंग से आत्म-केन्द्रित बना दिया जाता है। इस तरह ये विज्ञापन स्त्री पुरुष के बीच की भेद भरी अवधारणा या सोच को ही आगे बढ़ाते हैं।

ऐसा नहीं है कि विज्ञापनों में पुरुष मॉडल नहीं होते। विज्ञापनों में पुरुष मॉडल भी होते हैं फिल्मी दुनिया और खेल जगत के चर्चित और जाने-माने सितारे व खिलाड़ी विज्ञापन की दुनिया का आकर्षण बनते हैं। लेकिन विज्ञापनों में यदि पुरुष और स्त्री, मॉडल पर शोध किया जाए तो पुरुष मॉडल के मुकाबले स्त्री मॉडल का अनुपात

बहुत ज्यादा रहेगा।

विज्ञापनदाता का सीधा-सच्चा, सिद्धान्त अथवा दर्शन है। विज्ञापनों में स्त्री देह को “कामुक प्रतीक” के रूप में प्रदर्शित कर “कामाकांक्षा” उददीपक का प्रसार कर त्वरित गति से उपभोक्ताओं को उत्पाद की ओर इस सीमा तक लुभाना कि जल्दी ही उनका उत्पाद या ब्रांड उपभोक्ताओं की पहली पसन्द बन जाए। “फेमिना”, “फिल्म-फेयर” जैसी पत्रिकाओं के विज्ञापनों में कामुक अपील की भरमार रहती है।

विज्ञापन की दुनिया में स्त्री की छवि का विश्लेषण करें तो उसमें दो तरह की स्त्री दिखाई देगी। एक ऐसी परम्परागत भारतीय स्त्री की छवि है जिसके जीवन की बागडोर, जिसकी सांस, जिसका सुख-चैन पति और ससुरालवालों के हाथों में है। जो दिन-रात इनको खुश करने के नुस्खों की तलाश में रहती हैं। वह दो रूपए के साबुन से पति की पेंट-शर्ट चमका देना चाहती है। जो “मूव” लगाकर अपने कमर दर्द को तुरन्त दूर कर जल्दी ही काम पर पुनः जुट जाती है। जिसकी कराह लोगों को बड़ी मुश्किल से सुनाई पड़ती है। जो दिन-रात पति-बच्चों के स्वास्थ्य की चिन्ता में पौष्टिक खाद्य पदार्थों का अम्बार लगा देती है। वह ऐसी लक्ष्मी है, जो घर को ऐसी बरकत देती है कि दो रूपए, चार रूपए की आकर्षक छूट का अवसर भी हाथ से जाने नहीं देती, जो लाजवाब खाना बनाती है। जो ऑफिस से लौटे पति का सज-धजकर, पूरे बनाव श्रृंगार के साथ स्वागत करती है। खास ब्रांड की चाय या कॉफी के प्याले से उसकी थकान दूर करती है, जो बाथरूम को चमकाकर रखती है, जो ऑफिस जाते पति को रुमाल देना नहीं भूलती। यह सदियों से शोषित भारतीय स्त्री की ऐसी छवि है जो ममतामयी माँ, आदर्श बहू और “दुल्हन वही जो पिया मन भाये” के आदर्श को समेटती हर क्षण अपना बलिदान करने को तत्पर है। घर को स्वर्ग जैसा बनाने की जिम्मेदारी उसी के कंधों पर है। उसकी पहचान अपने पति के नाम से बनती है। उसमें स्वचेतना की आकांक्षाएँ कभी अँगड़ाई नहीं लेती। यह समूची तस्वीर वस्तुतः उस आश्रिता स्त्री की है, जिसकी दुनिया का दायरा पति, घर और बच्चों तक ही सीमित है। उसकी आकांक्षाएँ, इच्छाएँ इसी दायरे में अपना विस्तार पासकती है या तो इस दायरे को लॉघने की हिम्मत उसमें नहीं है या फिर वह खुशी-खुशी इस दायरे में अपनी इच्छा से कैद है। विज्ञापनों में स्त्री की दूसरी छवि ऐसी आधुनिक स्त्री की है जो राह चलते नवयुवक को देखकर “टॉक टु मी” कहकर आमंत्रण दे सकती है, जो अपनी देह को उन्मुक्तता के साथ उभार सकती है, जो खुलेआम कजरारे नेत्रों की भाषा से ही उन्माद का ज्वार ला सकती है, जो सौन्दर्य को अपने व्यक्तित्व का प्राणतत्व मानते हुए इस सौन्दर्य की रक्षा ही जीवन का सबसे बड़ा ध्येय मानती है। शरीर की चरबी को कॉस्मेटिक सर्जरी के द्वारा घटाती है। फैशन, मौज-मस्ती और ग्लैमर की दुनिया से जिसका गहरा रिश्ता है, अपनी मन मस्ती से अपना चाहे जैसे इस्तेमाल की भावना का प्राबल्य है, जो विज्ञापन की दुनिया में प्रवेश करके सौन्दर्य के बाजार में मुक्ति का सपना सच होते हुए मानती है। सौन्दर्य के व्यवसायीकरण ने इस स्त्री में एक खास तरह की उन्मुक्तता की चाह भरी है। उसमें शरीर का एक-एक अंग अपनी उन्मुक्त भंगिमाओं सहित आजादी की ऊँची उड़ान भरता प्रतीत होता है। विज्ञापन की दुनिया में स्त्री की दोनों ही छवियाँ विज्ञापनदाताओं के बड़े काम की हैं। “बाजारवाद” की लहर में वह इन दोनों की छवियों को खूब भुना रहा है। मसाले, मिक्सी, दूध, दही, खाद्य पदार्थों, खाद्य तेल आदि के विज्ञापन में स्त्री की रुढ़िबद्ध छवि को चुनता है तो कपड़े, वस्त्रों, फैशन, सौन्दर्य, प्रसाधन, नशेवाले पेय पदार्थों के विज्ञापन में उसकी मोहक, कामुक अदाओं वाली छवि को।

रुढ़िबद्ध छविवाली ‘स्त्री’ में थोड़ा सा बदलाव विज्ञापनदाताओं ने दिखाया है कि अब यह स्त्री डिटर्जेंट, चना मसाला, शैम्पू, कोल्ड क्रीम, डार्ई तथा सेल के मौसम 20, 30, 40 प्रतिशत छूट पर ढेरों सामान अपने पति और ससुराल वालों की इजाजत के बगैर खरीद लेती है। बेबी का फ्राक, बेबी की ड्रेस, मुन्ना की टी-शर्ट तथा छोटे-मोटे गहने पति की गैर मौजूदगी में खरीद लेती है। यह परिवर्तन विज्ञापनदाताओं के हक में अधिक हुआ है। औरत की इस थोड़ी सी आजादी ने उनकी बिक्री-वृद्धि में भारी इजाफा कर दिया है बहुत कम ही विज्ञापन में महिलाएँ

सम्मानित तरीके से, बुद्धिमानीपूर्ण निर्णय लेते हुए सामने आती है। कभी-कभी उसे एक प्रबुद्ध और जागरूक महिला के रूप में दरशाया जाता है। उसकी चेतना सम्पन्नता उसमें स्पष्ट झलकती है, जो पुरुष की तरह जीवन और समाज के महत्वपूर्ण दायित्वों का निर्वाह बखूबी कर सकती है मगर ऐसे, विज्ञापन क्वार की बारिश की तरह यदा-कदा ही देखने को मिलते हैं। विज्ञापन में नारी की मोहक और आकर्षक छवि का इस्तेमाल करके विज्ञापनदाता अपभोक्ताओं को अपने उत्पाद की ओर आकर्षित करने की चेष्टा करते हैं इस कोशिश में महिलाओं को भोग की वस्तु बनाकर विज्ञापन के बाजार में प्रस्तुत किया जाता है। कभी-कभी उनकी बड़ी अश्लील आश्लिष्ट छवि अमर्यादित ढंग से प्रस्तुत की जाती है। यद्यपि 1986 में स्त्री-शरीर प्रदर्शन के सन्दर्भ में अश्लीलता चित्रण प्रतिषेध अधिनियम बनाया गया। जिसमें स्त्री की ऐसी अपमानजनक छवि को प्रस्तुत करने वाले विज्ञापनों को प्रतिबंधित कर दिया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत पहली बार दोषी पाए गए व्यक्तियों को दो वर्ष का कारावास और दो हजार रुपये का जुर्माना दण्ड स्वरूप निर्धारित किया गया है। दूसरी बार दोष सिद्ध होने की स्थिति में भारी सजा का प्रावधान है। कानून बन जाने के उपरान्त भी, आज भी, महिलाओं के प्रति विज्ञापनों से देहवादी शोषण बदस्तूर जारी है।

जब विज्ञापन के सन्दर्भ में सामाजिक हित की बात उठाई जाती है तब विज्ञापन में महिलाओं के प्रति दरशाए जा रहे, इस नकारात्मक दृष्टिकोण पर भी चर्चा की जानी चाहिए। विज्ञापन जगत के ऊँचे खिलाड़ी महिला आजादी के नाम पर जो देहवादी आन्दोलन चला रहे हैं, सौन्दर्य का जिस तरह बाजारीकरण कर रहे हैं, उन्मुक्तता और स्वतन्त्रता के नाम पर बाजार का हित-साधक बनाकर स्त्री के लिए जो नए किस्म की गुलामी का इतिहास बना रहे हैं, उसके खिलाफ स्वयं उसे ही खड़ा होना होगा। अपनी दीन-हीन, कमजोर छवि के साथ-साथ देह-प्रदर्शन के विरोध की आवाज उसी को बुलन्द करनी होगी। वास्तविक रचनात्मकता के विकास की संभावनाओं की ओर बढ़ना होगा अन्यथा भूमण्डलीय मीडिया बाजार का वर्चस्ववादी साम्राज्यवादी स्वरूप सांस्कृतिक दृष्टि से गंभीर संकट पैदा कर देगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

- शर्मा, डॉ० कुमुद, विज्ञापन की दुनिया, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 2001
- हाडा, डॉ० माधव, मीडिया, साहित्य और संस्कृति श्याम प्रकाशन, जयपुर, 2006
- यादव व भट्ट, डॉ० पूरणमल एवं डॉ० दिनेश चन्द्र वैश्वीकरण एक समाजशास्त्रीय अवधारणा, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2010
- रत्न, डॉ० कृष्ण कुमार, संचार क्रान्ति और बदलता सामाजिक सौन्दर्यबोध पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 1998
- राय, डॉ० त्रिभुवन, जनसंचार माध्यम चुनौतियाँ और दायित्व, यूनिवर्सिटी बुक हाउस, (प्रा०) लिमिटेड जयपुर, 2004
- समाचार-पत्र।
- दैनिक भास्कर।
- राजस्थान पत्रिका।
- पंजाब केसरी।
- नवभारत टाइम्स।



महिला उद्यमी-आर्थिक चुनौतियाँ

डॉ. निशा जैन

सहायक प्राध्यापक-समाजशास्त्र
शासकीय कन्या महाविद्यालय, बीना, म.प्र.

स्वतंत्र भारत में महिलाओं को समाज में आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से पुरुषों के समकक्ष समानता का दर्जा देने का प्रयास किया गया। देश में महिला शिक्षा की ओर केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारें अनेक योजनाओं के अंतर्गत अवसर प्रदान कर रही हैं। स्त्री शिक्षा के विस्तार के साथ-साथ महिला आर्थिक सशक्तिकरण की अवधारणा को समर्थन देने का भी प्रयास किया जा रहा है। उन्हें स्वावलम्बी बनाने के लिए अनेक प्रशिक्षण एवं स्वरोजगार योजनाओं को केन्द्र स्तर पर एवं राज्य स्तर पर भी चलाया जा रहा है। केन्द्र सरकार में पृथक रूप से महिला एवं बाल विकास विभाग की स्थापना की गई है तथा यह विभाग अपनी क्षमतानुसार सकारात्मक कार्यवाही कर महिला आर्थिक सशक्तिकरण एवं महिला रोजगार विषयक अनेक कार्यक्रमों का संचालन कर रहा है।

उद्यमिता के रूप में महिलाएँ समाज की महत्वपूर्ण कड़ी हैं। सृजन महिलाओं की स्वभाविक प्रवृत्ति होती है यदि इसे कलात्मकता के साथ व्यवसाय से जोड़ दिया जाए तो न केवल महिलाओं के आर्थिक स्वावलम्बन की आवश्यकता पूर्ण होगी बल्कि इससे उनके आत्मबल, विश्वास और विचार भी उन्नत होंगे। महिलाओं को अर्थिक विकास की प्रक्रिया से पीछे रखकर देश को सुदृढ़ आधार प्रदान नहीं किया जा सकता है। भारतीय महिलाओं में खालीपन की भावना, निराशा, घुटन और स्वावलम्बन की चाह के बीच यह भावना कि “हम कुछ नहीं कर सकते” न केवल उनके लिए बल्कि उनके परिवार, समाज और देश के लिए भी घातक है। स्वावलम्बन की बढ़ती चाह को उनकी शिक्षा, सामर्थ्य, रुचि और परिवेश के अनुरूप पहचान कर समुचित उद्योग की स्थापना द्वारा महिलाओं को आर्थिक सफलता और सामाजिक बराबरी प्रदान की जा सकती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त महिलाओं के विकास पर सरकार का निरंतर ध्यान रहा है परन्तु इस संदर्भ में कल्याणकारी नीति के स्थान पर विकास की नीति अपनाने पर जोर छटवीं पंचवर्षीय योजना (वर्ष 1980-85) के दौरान ही गया। आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) में यह सुनिश्चित करने का वचन दिया गया था कि विभिन्न क्षेत्रों में विकास के लाभ में महिलाओं की अनदेखी या उपेक्षा न करें और ये लाभ उन्हें भी मिले। इसी दौरान गरीब और परिसंपत्ति विहीन महिलाओं की ऋण संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए 1993 में राष्ट्रीय महिला कोष की स्थापना की गई। नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) में महिलाओं के विकास की योजना तैयार करने की नीति में दो उल्लेखनीय परिवर्तन किए गए पहले परिवर्तन के अंतर्गत “महिलाओं का सशक्तिकरण” प्रमुख उद्देश्य बन गया और दूसरे परिवर्तन के अनुसार महिलाओं के लिए विशेष रूप से बनाई गई और वर्तमान उपलब्ध सेवाओं को मिलाने का प्रयास किया गया। दसवीं योजना (2002-07) में सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन के एजेंट के रूप में महिलाओं को शक्ति प्रदान करने का वचन दिया गया है। महिलाओं के सशक्तिकरण की राष्ट्रीय नीति पर आधारित दसवीं योजना में सशक्तिकरण हेतु तिहरी रणनीति का सुझाव दिया गया है— सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण के जरिए सदियों से शोषण का शिकार स्त्रियों को न्याय दिलाकर।

भारत में अभी भी पुरुषों की तुलना में महिलाओं की व्यवसाय उद्यम के क्षेत्र में उपस्थिति काफी कम है हालांकि यह पूरी धीरे-धीरे कम होती जा रही है। भारत में महिला उद्यमियों को अपना व्यवसाय स्थापित करने

और उसे चलाने में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। कुछ शीर्ष में बैठी महिलाओं को छोड़ दिया जाए तो अधिकांश महिला उद्यमी सिर्फ नाम की महिला उद्यमी हैं। क्या कारण है ऐसी वस्तुस्थिति के ? निःसंदेह यह बिल्कुल नहीं कहा जा सकता कि महिलाएं किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से कम हैं। विशेषकर यह तो सभी जानते हैं कि महिलाओं में प्रबंधन का गुण जन्मजात होता ही है क्योंकि वे जितनी खूबी से वे घर का प्रबंधन करती हैं उससे सभी परिचित हैं ही। फिर भी यह प्रश्न चिह्न महिला उद्यमी की कार्यशैली पर है कि ऐसे कौन से कारण हैं जिनकी वजह से महिला उद्यमी उतनी सफल समाज का 50 प्रतिशत भाग (महिलाएँ) समस्त क्षमताएँ होने के बावजूद समाज के आर्थिक विकास में वह योगदान नहीं दे पा रही जितना कि अपेक्षित है। सम्भवतः इसका प्रमुख कारण हो सकता है महिलाओं की वे जिम्मेदारियाँ/ कठिनाइयाँ जो पुरुष उद्यमियों के सामने नहीं होती। पुरुष उद्यमी तो प्रायः बिजली की समस्या, मार्केट की समस्या आदि समस्याओं से त्रस्त रहते हैं। जबकि महिला उद्यमियों को इन रुकावटों के साथ-साथ अन्य समस्याओं से भी जूझना पड़ता है। ऐसी ही विभिन्न समस्याओं को उजागर करना है जो प्रायः महिला उद्यमियों के उद्यमीय जीवन में कठिनाइयाँ लाते हैं इन अवरोधों का पूर्वाभास होने से इनका सामना करने के लिए न केवल वे पहले से ही तैयार रहेंगी बल्कि उनका सामना करने के लिए उचित रणनीति भी तैयार कर सकती हैं। इसलिए महिला उद्यमियों को जिन अवरोधों का सामना करना पड़ता है उन्हें यहाँ रेखांकित करना आवश्यक है –

1. गतिशीलता की समस्या – महिला उद्यमियों पर किए गए एक शोध कार्य में जिसमें केरल राज्य की 415 महिला उद्यमियों से साक्षात्कार किया गया तो यह पाया गया कि महिला उद्यमियों की सर्वप्रमुख समस्या थी— (क) अपने उत्पादों के विपणन के संबंध में क्रयादेश प्राप्त करने हेतु आने-जाने में कठिनाई होना (ख) कच्चा माल खरीदने हेतु किसी दूसरे शहर में आने जाने में कठिनाई होना। निः संदेह महिला उद्यमियों द्वारा अपने व्यवसाय के संचालन से संबंधित महसूस की जाने वाली यह प्रमुख कठिनाई है। जब भी किसी कार्यवश किसी दूसरे शहर जाना पड़े तो महिलाएं शुरु से ही सोचने लग जाती हैं कि वह वहाँ जाएँगी कैसे, अर्थात् आने-जाने का साधन मिलेगा या नहीं ? वहाँ पहुँचगे किस वक्त। वहाँ रुकेगें कहाँ? यही सोच कर अधिकांश महिलाएँ तो कही आने का विचार ही छोड़ देती हैं। जिसका परिणाम यह होगा सहज ही लगाया जा सकता है। क्योंकि यदि व्यवसाय सही रूप से चलाना है तो कच्चे माल की खरीद हेतु, मार्केट बनाने हेतु उधारी वसूलने हेतु आदि अनेक कार्यों हेतु विभिन्न शहरों में तो जाना ही पड़ेगा। जो महिला उद्यमी इस वस्तु स्थिति का सामना करने के लिए तैयार रहती हैं वे अंततः सफल हो जाती हैं, तथा जो इस वस्तु स्थिति से घबरा जाती हैं। वे उद्योग/व्यवसाय छोड़कर बैठ जाती हैं। अतः गतिशीलता एक ऐसा पहलू है जिसके लिए यदि महिलाएँ तैयार रहें तो उनकी काफी परेशानियाँ दूर हो सकती हैं। परन्तु यदि उनमें गतिशीलता नहीं है तथा उन्हें कही आने-जाने में परेशानी झिझक या दिक्कत है तो उनका उद्योग/ व्यवसाय के क्षेत्र में सफल होना काफी कठिन हो सकता है।

2. निर्णय लेने की क्षमता का अभाव – महिलाओं को उद्यमिता के क्षेत्र में सफल होने के लिए आवश्यक बात होती है उचित समय पर निर्णय लेने की क्षमता। दुर्भाग्यवश महिलाओं में इस क्षमता का बहुदा अभाव पाया जाता है। यहाँ तक कि छोटे से छोटे निर्णय भी वे स्वयं नहीं ले पातीं। दैनिक दिनचर्या के छोटे-छोटे कार्यों में ही देखें तो हम पाएँगे कि शायद ही ऐसी कोई गृहिणी होगी जो पति से यह न पूछती होगी – “आज खाना में क्या बना लें” और यहीं से आरंभ होता है छोटे-छोटे निर्णय लेने में उनकी दूसरों पर निर्भरता। निर्णय लेने की क्षमता का अभाव किसी दूसरे कार्य क्षेत्र में तो चल सकता है परन्तु उद्योग अथवा व्यवसाय के क्षेत्र में इस क्षमता के अभाव में सफल हो पाना लगभग असंभव होता है तथा यही वजह है कि अधिकांश महिलाएँ यही निर्णय नहीं ले पाती कि वह कोई उद्योग/ व्यवसाय प्रारंभ करें या न करें करे तो कौन सा उद्योग प्रारंभ करें ? सम्भव तथा इस वस्तुस्थिति के लिए प्रमुख रूप से जिम्मेदार है भारतीय सामाजिक व्यवस्था जिसके अंतर्गत महिलाओं को बचपन

से ही अधिकांश आत्मनिर्णय लेने की स्वतंत्रता नहीं होती तथा वस्तुस्थिति से उसे जीवन भर गुजरना पड़ता है। इस प्रकार जीवन भर उन्हें स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने का मौका ही नहीं मिलता है। तथा स्वतंत्र रूप निर्णय न ले पाने की उनकी क्षमता अंततः उद्यमी के रूप में उनकी सफलता को प्रभावित करती है।

3. वर्तमान व्यवसाय व्यवस्थाओं/आचार व्यवहार के साथ समझौता न कर पाना – व्यवसायिक प्रक्रियाओं, शासकीय/अशासकीय प्रक्रियाओं में वर्तमान में जो भ्रष्टाचार व्याप्त है इससे सभी परिचित हैं विशेषकर जब इन मगरमच्छों द्वारा नए उद्यमी को भविष्य के उद्योगपति/व्यवसायी के रूप में देखा जाता है तो प्रत्येक स्तर पर उनका दोहन करना संबंधित अधिकारी अपना परम कर्तव्य मानता है। आज भ्रष्टाचार, शिष्टाचार का रूप ले चुका है तो यह रास्ता अपनाने में महिलाओं को सबसे ज्यादा परेशानी रिश्ततबाज अधिकारियों से होती है क्योंकि बार-बार बात करने के लिए बुलाना, कभी घर में तो, कभी होटल में, कभी पार्क में, कभी कॉफी हाउस में ऐसा करने का उद्देश्य संबंधित व्यक्ति की विश्वसनीयता का परीक्षण लेना भी होता है। किन्तु प्रचालित व्यावसायिक प्रणाली से समझौता न कर पाने के कारण इनमें से अधिकांश महिलाएं अपना कार्य नहीं करवा पातीं। वैसे भी महिलाएं अधिकांशतः 'बिजनेस डीलिंग्स' में ईमानदार होती हैं। जो सदैव व्यवसाय के हित में नहीं होता। उसका अंततः प्रतिकूल प्रयास व्यवसाय पर पड़ सकता है।

4. भारतीय पुरुष की दोहरी मानसिकता – उपरोक्त वर्णित अन्य समस्याओं से निजात पाना तो महिला उद्यमी के लिए फिर भी आसान है परन्तु अधिकांशतः पतियों द्वारा उनके सामने जो समस्याएं खड़ी की जाती हैं उनसे अधिकांश महिलाएं उबर नहीं पाती हैं तथा यहीं पर आकर महिला उत्थान अथवा महिला स्वतंत्रता की अधिकांशतः बातें धरी की धरी रह जाती हैं वस्तु स्थिति और भी ज्यादा खराब हो जाती है जब इसमें भारतीय पुरुष, विशेषकर मध्यवर्गीय भारतीय पुरुष की दोहरी मानसिकता आड़े आने लगती है क्योंकि एक तरफ तो उसकी आर्थिक स्थिति उसे इस बात के लिए मजबूर करती है कि उसके स्वयं के वित्तीय स्रोतों के साथ-साथ कुछ अतिरिक्त वित्तीय स्रोत भी हों जो उसके परिवार का भरण-पोषण सही रूप से हो सके दूसरी ओर वह यह भी चाहता है कि उसकी पत्नी उसकी समस्त आज्ञाओं का पालन सदैव सिर झुकाकर करती रहे। पति जैसा व्यवसाय चाहे वैसा ही वह अपनाएं। पति चाहे तो वह कार्य क्षेत्र में जाए, चाहे तो न जाए जिस पुरुष से व पति चाहे तो बात करे तथा जिससे पति न चाहे वह बात न करें अर्थात् कार्य पति की मनमर्जी से होना चाहिए छोटे शहरों में रहने वाले मध्यम वर्गीय पतियों की इस दोहरी मानसिकता में महिला उद्यमियों की बड़ी फजीहत होती है तथा इसका अंततः प्रभाव देखा जा सकता है – महिलाओं द्वारा संचालित उद्योगों की 'सिकनैस/क्लोजर' के रूप में। ऐसे कई उदाहरण हमें देखने को मिल जाएंगे जब पति या व्यवसाय में से किसी को चुनना पड़ता है तो भारतीय नारी का दंश सहते हुए उद्योग बंद कर अपना जीवन पति एवं परिवार को चुन लेती है। कितनी आश्चर्य जनक स्थिति है। बात-बात पर 21वीं सदी की बात करने वाला यह पुरुष आज भी वही दोहरी मानसिकता लिए बैठा है जिसमें पिस रही है— महिला उद्यमी।

5. समय प्रबंधन – महिला उद्यमी के कार्य में सबसे बड़ा अवरोध समय प्रबंधन का है। भारतीय महिला चाहे कितने भी बड़े पर्दे पर कार्य कर रही हो चाहे, कितनी भी 'एडवांस' अथवा 'लिबराइज्ड' हो उसकी सर्वप्रथम प्राथमिकता उसका घर संसार होता है। बचपन से यह बात उसके मन मस्तिष्क में बैठा दी जाती है कि यदि उसने अपने घर, परिवार, बच्चों को पर्याप्त समय नहीं दिया एवं बच्चों का पालन-पोषण सही ढंग से नहीं कर पाती तो "वाकी सब बेकार" है। क्योंकि पति बच्चे घर सम्हालने की पूरी जिम्मेदारी महिला की है उसमें पति का कोई सहयोग नहीं। यही वजह है कि महिलाओं द्वारा स्थापित उद्योग में वे पर्याप्त ध्यान एवं समय नहीं दे पाती तथा प्रायः उनके द्वारा स्थापित उद्योग अपनी स्थापित क्षमता के 40-50 प्रतिशत तक भी नहीं चल पाते। अतः महिला उद्यमियों के 'डबल रोल' के कारण तथा उसमें भी प्रथम प्राथमिकता पति, घर और बच्चों को देने

के कारण अधिकांश महिला उद्योग परेशानियों में आते देखे जा सकते हैं।

उपरोक्त अवरोधों के साथ-साथ कुछ ऐसे अवरोध भी हैं जो महिला उद्यमी की सफलता को प्रभावित करते हैं जैसे— श्रमिकों तथा कर्मचारियों के साथ मिलकर अथवा उनके साथ बैठकर कार्य नहीं कर पाती, शारीरिक रूप से अपेक्षाकृत ज्यादा स्ट्रॉंग नहीं होने के कारण वे लगातार ज्यादा देर तक कार्य नहीं कर पाती तथा जल्दी घबरा जाती है। उपरोक्त वर्णित चर्चा का मूल उद्देश्य महिलाओं को उन परेशानियों का पूर्वाभाष दिलवाना है जिनके उद्यमी व्यवसायिक जीवन अपनाने की दशा में उनके सामने आने की सम्भावना है क्योंकि इसमें से अधिकांशतः स्थितियां ऐसी हैं जिनके संदर्भ में उचित रणनीति अपनाकर उन पर नियंत्रण पाया जा सकता है अतः यह महिला उद्यमियों के विशेष हित में हो यदि इसमें वस्तु स्थिति से निपटने हेतु वे पहले से ही तैयार रहें। उदाहरण एक प्रमुख अवरोध जिनके बारे में उपरोक्त बिन्दुओं के अंतर्गत चर्चा की गई है वे हैं महिला उद्यमी के सामने पति तथा सास द्वारा खड़ी की जाने वाली परेशानियां। परंतु यहां भी प्रमुख समस्या 'इगो' की है। यदि महिला उद्यमी सही रणनीति अपना कर सास और पति का इगो संतुष्ट करने में सफल हो जाए तो उसकी प्रमुख समस्या अपने आप ही दूर हो जायेगी। इसी प्रकार गतिशीलता की समस्या का भी समाधान हो जायेगा। यदि अपने पति अथवा किसी पुरुष संबंधी को अपनी ईकाई में महत्वपूर्ण स्थान दे दे तो इन तमाम अवरोधों को समाप्त किया जा सकता है यदि इन समस्याओं के आने के पूर्व ही इन पर विचार कर लिया जाये तथा उचित रणनीति तैयार कर ली जाये एक महिला उद्यमी की स्थिति में तभी सुधार आ सकता है।

1. जब महिला अपनी क्षमता और विकास के अधिकार के प्रति अधिक जागरूक रहें।
2. शिक्षा स्वास्थ्य और रोजगार के अवसरों में पूर्ण समानता से महिलाओं में आत्मविश्वास बढ़ेगा।
3. संगठित होकर उन्हें अन्याय के विरुद्ध आवाज उठानी पड़ेगी।
4. वर्तमान में लागू महिला संबंधी कानूनों में व्यप्त विसंगतियों को दूर करना जिसमें महिलाओं को राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक सभी क्षेत्रों में पुरुषों के समान कानूनी और वास्तविक रूप में सभी मानव अधिकार हासिल हों।
5. महिलाओं को व्यवसायिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए जिससे उनकी कार्य करने की क्षमता को बढ़ावा दिया जा सकें।
6. व्यापार, व्यवसाय का क्षेत्र एक विशाल क्षेत्र है साथ यदि महिला उद्यमी एक बड़ी सोच के साथ छोटे पैमाने पर ही अपना कारोबार शुरू करें तो यह कदम उनके लिए नये क्षितिज की राह अवश्य आसान करेगी।

दृढ़ इच्छा शक्ति और चुनौती पूर्ण उत्तरदायित्व को व्यवहारिक कसौटी पर तभी खरा उतारा जा सकता है जब अपनी शक्तियों, कमजोरियों, संसाधनों, गुणों एवं प्रवृत्तियों के साथ परिस्थितियों का आंकलन करके कुछ न कुछ हासिल कर गतिशीलता के साथ सुदृढ़ मुकाम पर अपनी स्वाभाविक चेतना को पहचान कर अपने उद्योग व्यवसाय को नवीन स्वरूप प्रदान किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची—

1. उद्यमिता विकास—त्रिभुवन नाथ शुक्ल
2. भारतीय समाज एवं मुद्दे एवं समस्याएँ—महाजन एवं महाजन
3. औद्योगिक समाजशास्त्र—डी.एस. वघेल
4. परिवर्तन एवं विकास का समाजशास्त्र—जी. आर. मदान



पंचायती राज और दलित महिलाओं का सशक्तीकरण

प्रियंका सिंह

जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली

भारत कृषि प्रधान गाँवों का देश है। जहाँ अधिक संख्या में ग्रामीण आबादी अशिक्षा का दंश झेल रही है। ऐसा माना जाता है कि यहाँ पर पंचपरमेश्वर (लघु पंचायत) एवं महिला स्वतन्त्रता की परम्परा प्राचीन काल से ही प्रचलन में थी। पंचपरमेश्वर के रूप में ईमानदार और निष्ठावान सदस्य निष्पक्ष होकर सस्ता और सच्चा न्याय देते थे एवं महिलाएँ स्वतन्त्रतापूर्वक अपने को शिक्षित व सशक्त बनाकर सामाजिक व्यवस्था को सर्वहितकारी व संतुलित बनाने में समानता के स्तर पर भागीदारी करती थीं, किन्तु महिला स्वतन्त्रता एवं पंचायतों का यह स्वर्णिम दौर बाधाओं के आने के कारण टिक नहीं सका। दुर्भाग्यवश भारत में सैकड़ों वर्षों की पराधीनता के काल में विदेशी शासकों ने अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए पंचायती राज व्यवस्था एवं महिला स्वतन्त्रता को चाहारदीवारी में कैद रखने के निरंतर प्रयास जारी रहें, जिससे वे निरक्षर, विकासहीन और शक्तिहीन बन जाँएँ। ऐसी व्यवस्था स्थापित करने में वे एक सीमा तक सफल भी हुये।

जब 1947 में भारत आजाद हुआ, तो पंचायती राज व्यवस्था को पुनः जीवित करने के लिये देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने राजस्थान के नागौर जिले से इसकी शुरुआत की। यह प्रणाली नेहरू जी के लिये एक ओर गाँधी जी के ग्राम स्वराज्य के स्वप्न को धरातल पर उतारने का जरूरी उपक्रम थी, वहीं लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की दिशा में एक जरूरी कार्यवाही थी। किन्तु पंचायती राज व्यवस्था आजादी के कई दशक बाद भी उतनी सशक्त नहीं बन पायी। कुछ कमियों के कारण पंचायतें अपने उद्देश्यों में कामयाब नहीं हो पा रही थीं। इसी को ध्यान में रखते हुये एक लंबे अन्तराल के बाद पंचायती राज में शक्ति के संचार के लिये 1992 में 73वाँ 74वाँ संविधान संशोधन किया गया जिसमें पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक मान्यता दी गयी। इस व्यवस्था के तहत महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण प्रदान किया गया।

महिलाओं को दिये गये 33 प्रतिशत आरक्षण द्वारा मिले लाभ की वास्तकिकता को जानने के लिये कानपुर जिले की 34 दलित महिला प्रधानों को सर्वेक्षण में शामिल किया। जिसमें उनसे पंचायत में करवाये जा चुके कार्यों का विवरण, पंचायत के विकास के लिये चलायी जा रही वर्तमान योजनाओं की जानकारी, ग्राम पंचायत की शक्तियों के बारे में जानकारी, पंचायती कार्यों को करवाने में स्वयं निर्णय लेने की आजादी से संबंधित सवाल पूछे।

सर्वेक्षण में चौंकाने वाले परिणाम निकले। केवल 2 दलित महिलायें को पंचायत पंचायती कार्यों, कार्यों में स्वतन्त्र निर्णय लेने की आजादी थी, एवं 20 महिलाओं को अधूरी जानकारी थी और 12 महिलायें पंचायत और उसके कार्यों से पूरी तरह अनभिज्ञ थीं। सर्वेक्षण में ये तथ्य उजागर, हुआ कि सभी जानकारी रखने वाली महिलायें ग्रेजुएट हैं एवं कम जानकारी रखने वाली महिलायें या तो मैट्रिक पास हैं या तो प्राथमिक शिक्षा

प्राप्त हैं, और जबाब न दे पाने वाली महिलायें अशिक्षित हैं।

संविधान संशोधन के बाद पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी तो बढ़ी है, लेकिन अभी समस्यायें खत्म नहीं हुयी हैं। उत्तर प्रदेश में 33: आरक्षण के बाद जो महिलायें चुनकर पंचायतों में आयी हैं, उनमें से अनेक पर अब भी पितृसत्ता की गहरी छाया है। इन पंचायत सदस्यों के पति या अन्य परिवारी जन ही पंचायत में असली भूमिका निभाते हैं एवं जहाँ बताया जाता है वहाँ महिलायें दस्तखत या अगूठे का निशान लगा देती हैं। इस प्रक्रिया में पंचपति, सरपंचपति प्रधानपति आदि सम्बोधन सामने आये हैं। अनुसूचित जातियों की जो महिलायें चुनकर पंचायतों में आयी हैं, उनकी स्थिति तो बेहद चिन्तनीय है। उन्हें पंचायत के वर्तमान सख्त ढाँचें में उनका प्राप्य नहीं दिया जाता। कहीं उन्हें जमीन पर बैठने को मजबूर किया जाता है, कहीं उनकी बात सुनी नहीं जाती और कहीं-कहीं तो उन्हें पंचायत की बैठक में बुलाया भी नहीं जाता। बहुत जगहों पर तो दलित महिला प्रतिनिधि केवल ऊँचे वर्गों के हाथ की कठपुतली बनकर रहती हैं। प्रधान के नाम से आयी आधिकारिक चिट्ठियाँ दूसरों (उच्च वर्गों) द्वारा रख ली जाती हैं, जबकि कम महत्वपूर्ण पत्रों (शादी के निमन्त्रण, किसी अन्य समारोह के कार्ड) को उन तक पहुँचाया जाता है। इसके अतिरिक्त जब दलित महिला पंचायत में जीत कर आयी तो पूर्व उच्च जाति प्रधान ने उन्हें अधूरे कागज दिये, एवं पंचायत में चल रही योजनाओं का रूपया वे बाद में भी उठाये रहे। कई दलित महिला प्रधान ने तो यहाँ तक कहा कि जीतकर आने के बाद पूर्व उच्च जाति के प्रधान ने उन्हें पंचायत की मुहर तक नहीं दी, एवं सारे आधिकारिक कागज देने से इनकार कर दिया। राजनीति और कानून ने महिलाओं को सत्ता में जो हिस्सेदारी दी है, समाज उसे मान्यता देने के लिये अब भी तैयार नहीं है। हमारे प्रधान मंत्री माननीया नरेन्द्र मोदी जी ने कहा है कि प्रधानपति की भूमिका समाप्त होनी चाहिए। आने वाले समय में इससे क्या बदलाव आता है? यह अभी बता पाना संभव नहीं है। क्योंकि इसके पीछे मूल कारण है अशिक्षित समाज। जो पंचायत प्रतिनिधि शिक्षित हैं वे तो अपनी जिम्मेदारी बखूबी निभा रहीं हैं। सरकार की ओर से भी उन्हें सहयोग मिल रहा है, लेकिन जहाँ अभी तक शिक्षा का अभाव है वहाँ महिला प्रतिनिधि की भागीदारी अभी भी प्रभावित हो रही है। ग्रामीण परिवेश में अभी भी महिलायें पर्दा प्रथा रूढ़िवादिता आदि के जंजाल में जकड़ी हुयी हैं। यही कारण है कि वे आज भी पंचायतों की बैठकों में जाने से घबराती हैं। इस प्रवृत्ति को खत्म करना होगा। जो महिलायें जन प्रतिनिधि चुनी जाती हैं, उन्हें किसी भी कीमत पर स्टांपपैड नहीं बनना होगा, बल्कि अपनी जिम्मेदारी का अच्छी तरह से निर्वहन करते हुये पंचायती कार्यो से जुड़े फ़ैसले खुद लेने होंगे। समाज और मुख्यतया पुरुष वर्ग की भी जिम्मेदारी बनती है कि वह अपनी रूढ़िवादी मानसिकता बदले और आधी आबादी को सहयोग दें।

जिन स्थानों पर महिलायें अशिक्षित हैं वहाँ की महिलाओं को प्रशिक्षण दिये जाने की आवश्यकता है क्योंकि समानता की स्थिति आरक्षण के बाद भी नहीं बन पा रही है। एक व्यापक स्तर पर जन जागरूकता अभियान चलाने की सख्त जरूरत है जिससे समाज अपनी रूढ़िवादी सोच को बदल सके। समाज के आधे हिस्से की यह पराधीन चेतना अगर आजाद नहीं हुयी और इसे सही दिशा एवं दृष्टि नहीं मिली तो देश की प्रगति में यह एक बड़ी बाधा सिद्ध होगी। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वतन्त्र चेतना विकसित करने की जरूरत है। सभी व्यक्तियों को अपनी भागीदारी निभानी होगी। इसके लिये कौशल विकास की जरूरत है। वर्तमान केन्द्र सरकार कौशल विकास को बढ़ावा दे रही है जो कि देश के लिये सकारात्मक प्रयास है। अगर गाँव में इसके

लिये सही रास्ता तैयार नहीं किया गया तो पंचायती राज की वह संभावना नष्ट हो जायेगी, जो गाँव के लिये सकारात्मक भूमिका लेकर आयी है। इसलिये यह केवल महिलाओं से सम्बन्धित मुद्दा नहीं है। यह तो आधी आबादी के अधिकारों से जुड़ा हुआ मामला है।

ग्राम पंचायत को सशक्त बनाने में प्रत्येक मतदाता को अपनी जिम्मेदारी निभानी होगी। पंचायती राज के गर्भ में कई संभावनाएँ विद्यमान हैं। इसके माध्यम से भारत के पूरे सामाजिक ढाँचे को बदला जा सकता है; लेकिन एक तथ्य ध्यान देने योग्य है कि सबकी सोच सकारात्मक हो तब ही हम इस लक्ष्य को प्राप्त कर पायेंगे। भारत का भविष्य सच्चे लोकतंत्र का भविष्य हो। इसके लिये प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्तर पर सहयोग करना होगा। गाँव के स्तर पर एक न्यायपूर्ण व्यवस्था का निर्माण करना होगा।

सन्दर्भ सूची

1. पंचायती राज और महिला सशक्तिकरण, सीमा सिंह, विद्या बिहार प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2010
2. महिला सशक्तिकरण, डॉ. प्रियंका माथुर ज्योति प्रकाशन, जयपुर, 2014
3. दैनिक जागरण, अप्रैल, 2015
4. कुरुक्षेत्र, अक्टूबर, 2010
5. कुरुक्षेत्र, मार्च, 2015



नोटा के अधिकार के प्रति जागरूकता – एक अध्ययन

डॉ.(श्रीमती) सुजाता सैमुएल
सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान)
शासकीय महाविद्यालय, मस्तूरी,
जिला बिलासपुर, छ.ग.

डॉ.(सुश्री) सपना कौर
शासकीय महाविद्यालय अरमरीकला,
जिला बालोद, छ.ग.

भारत जैसे अति विस्तृत एवं बहुसांस्कृतिक देश में शासकीय एवं राजनैतिक व्यवस्था का सुचारु संचालन एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या है, जिसका सामाजिक पक्ष भी राजनैतिक पक्ष जितना ही महत्वपूर्ण है।

भारतीय संविधान निर्माताओं ने आजादी के बाद उचित ही भारत के लिए प्रतिनिधि शासन की लोकतांत्रिक प्रणाली का चयन किया, और भारत ने विश्व के सबसे बड़े और गतिशील लोकतंत्र के रूप में आजादी के छह दशक भी पूर्ण कर लिए हैं।

आजादी के बाद प्रारंभ के दो-तीन चुनावों में तो निर्वाचकीय प्रक्रिया आशानुरूप ही चली, परंतु बाद के वर्षों में इसमें उल्लेखनीय परिवर्तन दृष्टिगत होने लगे। राष्ट्रीय स्तर के दलों से पृथक छोटे प्रांतीय दलों का उद्भव और प्रचार-प्रचार होने लगा जो क्षेत्रीय, भाषाई और जातिगत आधारों पर संगठित थे। इन छोटे दलों ने राजनीति पर ऐसा प्रभाव डाला कि अब राष्ट्रीय स्तर के दल भी चुनावों में प्रत्याशी चयन के समय उसकी “जीतने की क्षमता” अर्थात् धनबल और जातिगत समीकरणों का ध्यान रखते हैं। यही कारण है कि आपराधिक पृष्ठभूमि के उम्मीदवार भी सरलतापूर्वक राष्ट्रीय दलों से उम्मीदवारी करते हैं और उनमें से कई संसद में भी पहुंचते हैं।

प्रत्याशी चयन के समय राजनीतिक दलों द्वारा एक आम मतदाता की आशाओं और अपेक्षाओं का ध्यान प्रायः नहीं रखा जाता, साथ ही भारत में चुनावों में एकल बहुमत प्रणाली अपनाई जाती है, जिसके अंतर्गत जिस उम्मीदवार को कुल वैध मतों में सर्वाधिक मत प्राप्त हों, उसे विजेता घोषित कर दिया जाता है। इस प्रणाली का सबसे बड़ा दोष यह है कि भले ही अधिसंख्यक मतदाता चुनाव लड़ रहे हों। किसी भी प्रत्याशी को पसंद न करते हो, लेकिन उनमें से एक न एक, जातिगत, धार्मिक, आर्थिक अथवा प्रलोभन के समीकरणों के आधार पर उनका प्रतिनिधि पद हासिल कर ही लेता है।

नोटा का अधिकार :- इस पृष्ठभूमि में अशासकीय संगठन पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज (पी. यू.सी.एल.) एवं अन्य बनाम भारत संघ तथा अन्य में सर्वोच्च न्यायालय में दायर याचिका क्रमांक WP(C) 161-2004 में सर्वोच्च न्यायालय ने एक ऐतिहासिक फैसला देते हुए भारत के मतदाताओं को नकारात्मक मतदान का अधिकार दिया, इस निर्णय को देते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि—“किसी मतदाता के गोपनीयता के अधिकार की रक्षा करते हुए उसे किसी भी उम्मीदवार के पक्ष में मतदान न करने का अधिकार प्रदान करना लोकतंत्र में अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह विकल्प राजनीतिक दलों द्वारा खड़े किये गये उम्मीदवारों को अनुमोदित नहीं करने का अधिकार मतदाताओं को प्रदान करता है। इससे व्यवस्था में धीरे-धीरे परिवर्तन आएगा तथा राजनीतिक दलों को लोगों की इच्छाओं को स्वीकार करते हुए ऐसे व्यक्तियों को उम्मीदवार बनाने के लिए बाध्य करेगा, जो अपनी सत्यनिष्ठा और ईमानदारी के लिए जाने जाते हैं।”

नोटा अधिकार के संबंध में वस्तुस्थिति यह है कि शब्द नोटा अंग्रेजी के वाक्य None of the above (उपर्युक्त में से कोई नहीं) का संक्षिप्ताकार है।

नोटा का अधिकार केवल भारत में ही नहीं, ग्रीस, यूनाइटेड स्टेट आफ नेवादा, यूक्रेन, स्पेन, कोलंबिया में भी है। रशिया के चुनाव मतपत्रों में भी ऐसा विकल्प था जो 2006 में समाप्त कर दिया गया। बंगलादेश ने इस विकल्प को 2008 में स्वीकार किया। 2013 के चुनावों में पाकिस्तान ने इस विकल्प को अपनाया लेकिन बाद के चरणों में इलेक्शन कमीशन ऑफ पाकिस्तान ने इसे निरस्त कर दिया। चूंकि नोटा का अर्थ ही है, उपर्युक्त में से कोई नहीं अतः स्वाभाविक रूप से इसका बटन सभी प्रत्याशियों के नाम के नीचे सबसे अंत में होता है।

वास्तव में नोटा का प्रयोग प्रारंभिक तौर पर लोकतांत्रिक रूप से ही किया गया है। पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त श्री कुरेश ने इंडियन एक्सप्रेस को दिये गये अपने एक इंटरव्यू में इसे उदाहरण सहित स्पष्ट करते हुए बताया कि यदि पड़ने वाले वैध मतों में से 99 नोटा के पक्ष में हैं और किसी एक प्रत्याशी को 1 वैध मत मिला है तो उस प्रत्याशी को निर्वाचित घोषित कर दिया जाएगा।

अध्ययन का उद्देश्य :- प्रस्तुत शोध पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

- (1) महान उद्देश्यों के साथ लागू हुए इस चुनाव सुधार के प्रति ग्रामीण महिलाओं का क्या दृष्टिकोण है।
- (2) ग्रामीण क्षेत्र की अल्पशिक्षित महिलाओं में इस अधिकार के प्रति जागरूकता का स्तर क्या है।
- (3) यह अधिकार स्वयं में कितना प्रभावशाली है।

परिकल्पना :-

- (i) नोटा के अधिकार के प्रति ग्रामीण महिलाओं में पर्याप्त जागरूकता है।
- (ii) वे इसे प्रत्याशी चयन के विकल्प रूप में देखती हैं।

शोध प्रविधि :-

- (i) शोध कार्य हेतु अध्ययन क्षेत्र के रूप में छत्तीसगढ़ के मस्तूरी ब्लाक (जिला-बिलासपुर) के तीन गांव तथा गुंडरदेही ब्लाक (जिला-बालोद) के दो गांव का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के आधार पर किया गया है।
- (ii) ग्रामीण क्षेत्र में रहकर कृषि मजदूरी करनेवाली महिलाओं को उत्तरदाता के रूप में चयनित किया गया है जिनकी आयु 18-25 वर्ष है तथा वे पांचवीं तक शिक्षित हैं। कुल उत्तरदाताओं की संख्या 50 है।
- (iii) तथ्य संकलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची तथा अवलोकन प्रविधि प्राथमिक स्रोत के रूप में प्रयोग किये गये हैं।
- (iv) इंटरनेट तथा पत्र पत्रिकाओं से संकलित सामग्री का उपयोग तथ्य संकलन के द्वैतीयक स्रोत के रूप में किया गया है।

नोटा अधिकार जागरूकता साक्षात्कार अनुसूची से प्राप्त आंकड़े निम्न तालिका द्वारा प्रदर्शित हैं –

तालिका क्रमांक –1

नोटा जागरूकता

क्रमांक	नोटा का पूरा नाम ज्ञात होना	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हां	24	48
2	नहीं	26	52
योग		50	100

तालिका क्रमांक -2
अन्य देशों में नोटा का अस्तित्व

क्रमांक	अन्य देशों में भी ऐसे अधिकार की जानकारी	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हां	7.5	15
2	पता नहीं	42.5	85
योग		50	100

तालिका क्रमांक -3
इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन में, नोटा बटन का स्थान

क्रमांक	इ.वी.एम. में नोटा बटन का स्थान, पता है	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हां	11.5	23
2	नहीं	32.5	65
3	कह नहीं सकते/याद नहीं	6	12
योग		50	100

तालिका क्रमांक -4
नोटा को सर्वाधिक मत मिलने पर उत्पन्न होनवाली स्थिति

क्रमांक	क्या नोटा को सर्वाधिक मत मिलने पर भी कोई प्रत्याशी जीतेगा	आवृत्ति	प्रतिशत
1	हां	5	10
2	नहीं	16.5	33
3	फिर चुनाव होंगे/कह नहीं सकते	28.5	57
योग		50	100

निष्कर्ष :-

आंकड़ों के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष इस प्रकार हैं -

1. अध्ययन हेतु चयनित 52 प्रतिशत उत्तरदाता संक्षेपाक्षर नोटा का पूरा नाम नहीं बता सकीं।
2. नोटा का अस्तित्व भारत के अलावा अन्य देशों में भी है अथवा नहीं, 85 प्रतिशत उत्तरदाता इस तथ्य से अनजान थीं।
3. नोटा के बटन का स्थान इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन में कहाँ है, इस तथ्य से 65 प्रतिशत उत्तरदाता मतदाता अनजान थीं।
4. नोटा को सर्वाधिक मत मिलने पर उत्पन्न होनवाली स्थिति का अनुमान लगाने में 57 प्रतिशत उत्तरदाता असमर्थ थीं।

इन निष्कर्षों से स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्रों में नोटा अधिकार के विषय में अल्पशिक्षित ग्रामीण महिलाओं विशेषकर नए मतदाता के रूप में पंजीकृत उत्तरदाताओं में जागरूकता की कमी है।

सुझाव :- नोटा के अधिकार को और अधिक प्रभावशाली बनाने हेतु निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं :-

- (i) इस अधिकार का व्यापक प्रचार-प्रसार का कार्य यथासंभव स्थानीय भाषा और बोलियों में हो।
- (ii) किसी निर्वाचन में नोटा को सर्वाधिक मत मिलने पर दोबारा चुनाव की व्यवस्था होनी चाहिये।
- (iii) वापस बुलाने का अधिकार (Right to Recall) पर भी व्यापक विचार होना चाहिये।

संदर्भ-सूची

1. Russians Divided over Electoral Reforms – Angus Reid Global Monitor - angus reid.com
2. Bangladesh amends election law incorporating '40' vote option Times of India July 14, 2008.
3. Fund, John (September 10, 2012) none of the above should be on the Ballot-National Review.
4. Sorabjee, Solij, (1 March, 2009) Right of negative voting The Indian Express.
5. Indian Votes get right to reject election candidates BBC News - 27 September, 2013.
6. (23) SC landmark judgment: Voters get right to reject Deccan chronicle 27September, 2013.
7. India Today Online - New Delhi October 3, 2013.
8. Voter has right to negative voting: SC the Hindu 27 September, 2013.
9. Jain, Bharti (27 September, 2013) "Will implement voters right to reject candidates straight away- Election Commission" The Economic Times.
10. प्रतियोगिता दर्पण : "नोटा कितना सार्थक कितना व्यापक ?" मार्च, 2014



राजनैतिक सुधारों की प्रासंगिकता और चुनौतियाँ

डॉ० रणविजय सिंह

प्रवक्ता—राजनीति विज्ञान विभाग

एल०डी० आर० एस० वाई० महाविद्यालय ऊसरगाँव, जालौन (उ.प्र.)

क्या लोकतंत्र को मजबूत करने वाले राजनैतिक सुधार वास्तविक रूप से शुरू हो गये हैं? वर्तमान समय में देश का आम नागरिक बिना किसी झिझक के और पूर्ण सहमति के साथ इस प्रश्न का उत्तर देना चाहता है। लेकिन देश के राजनैतिक परिदृश्य की धुंधली तस्वीर देखकर आज यह कहने में संकोच महसूस होता है, लेकिन आशाएँ हमेशा जिंदा रहती हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि निश्चित रूप से राजनैतिक सुधारों की शुरुआत हो चुकी है। राजनैतिक सुधारों के प्रयास सन् 1999-2000 ई० में तब प्रारम्भ हुए थे जब राजनीतिक सुधारों के उद्देश्य से कुछ समूहों ने न्यायपालिका का रुख किया और जनहित याचिकाएँ दायर कीं। उसकी शुरुआती उपलब्धी सन् 2000-03 ई० में ही देखने को मिल गयी जब लम्बित आपराधिक मामलों की जानकारी देना कानूनी तौर पर अनिवार्य हो गया।

सन् 2003-05 के बीच निर्वाचन प्रणाली और राजनैतिक सुधारों के लिए अनेक समूहों ने उत्साहित होकर कई जनहित याचिकाएँ दाखिल कीं। लगभग चौदह साल पहले प्रारम्भ हुए इन प्रयासों के निष्कर्ष अब उन याचिकाओं के निर्णयों के जरिये फलीभूति हो रहे हैं। सुधारों की ताजा उपलब्धि 3 जून 2013 को केन्द्रीय सूचना आयोग के उस निर्णय से भी हुई जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया कि सूचना के अधिकार एक्ट के तहत छैः राष्ट्रीय राजनैतिक पार्टियाँ सार्वजनिक प्रतिष्ठान हैं। इस निर्णय को राजनैतिक दलों ने अभी तक स्वीकार नहीं किया है और इसके विरोध में खड़े हैं। फिलहाल प्रकरण संसद की स्थायी समिति के पास विचाराधीन है। राजनैतिक सुधारों के परिदृश्य में सुप्रीमकोर्ट के 10 जुलाई 2013 के निर्णय ने भी वर्तमान राजनैतिक परिस्थितियों को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। इस निर्णय में कहा गया है कि आपराधिक मामलों में सक्षम अदालत द्वारा दो या उससे अधिक वर्षों की सजा सुनाये जाने के बाद सम्बंधित व्यक्ति संसद सदस्य या विधायक नहीं रह सकता। इससे पहले उच्च अदालत में अपील करने के बाद राजनैतिक प्रतिनिधि अपने पद पर बरकरार रहते थे। इस निर्णय का भी तीव्र विरोध करते हुए सरकार ने पुनर्विचार याचिका दायर की लेकिन सुप्रीमकोर्ट ने 4 सितम्बर 2013 को सरकार के तर्कों से असहमति व्यक्त करते हुए सुप्रीमकोर्ट में पुनर्विचार याचिका खारिज कर दी।

इसी तरह 27 सितम्बर 2013 को एक अन्य निर्णय में सुप्रीमकोर्ट ने चुनाव आयोग को निर्देश देते हुए कहा कि वह इलैक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन में मतदाताओं को “किसी भी प्रत्याशी को वोट नहीं (नोटा)”, सम्बंधी विकल्प का बटन उपलब्ध कराये। इस निर्णय के लागू होने पर भी एक तरह से विवाद ही चल रहा है। लेकिन जबरदस्त विरोध करने के बाद भी अन्ततः सम्पूर्ण राजनैतिक तंत्र को लिली थामस निर्णय को अन्तिम रूप से स्वीकार करना पड़ा। इससे यह शुभ संकेत मिलता है कि दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र को मजबूती और सही दिशा देने वाले चुनाव सुधारों की शुरुआत हो चुकी है। लेकिन अभी भी बहुत से राजनैतिक सुधार होना बाकी है। राजनैतिक सुधारों की लम्बी सूची में एक सबसे बड़ा सुधार राजनैतिक दलों के वित्तीय मसलों से सम्बंधित भी है। इसलिए 30 अगस्त 2013 को चुनाव आयोग ने सभी मान्यता प्राप्त राजनैतिक दलों को पार्टी फण्ड में पारदर्शिता और जबाबदेही के लिए लिखा था। इसमें चुनाव आयोग ने कहा कि स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव के हित के लिए यह बहुत जरूरी है कि राजनैतिक दलों के फण्ड में पारदर्शिता और जबाबदेही लाने के लिए गाइड लाइंस होनी ही चाहिए।

चुनाव आयोग ने दस प्रमुख मुद्दों को सूचीबद्ध कर राजनैतिक सुधारों की दृष्टि से विभिन्न राजनैतिक दलों से उनके विचार या सुझाव मांगें हैं। यह एक शुभ संकेत है कि कुछ राजनैतिक दलों ने चुनाव आयोग के इन सभी दस बिन्दुओं पर सहमति प्रदान की है।

भारतीय जनतंत्र की गरिमा को पुनः प्रतिष्ठित करने वाले सुप्रीमकोर्ट के राजनैतिक सुधार सम्बन्धी निर्णयों का असर निश्चित रूप से चुनाव प्रणाली, राजनैतिक दलों और राजनैतिक व्यवस्था पर दिखायी देने लगा है। लेकिन हमें लगता है कि जनतंत्र के शुद्धिकरण की इस यात्रा में निर्णायक हार-जीत अभी बाकी है। वैश्वीकरण के बाद जैसे-जैसे पैसा आया उसी के साथ-साथ देश के राजनैतिक प्रतिनिधियों की भूख भी बढ़ी। लेकिन साथ ही साथ नई टेक्नोलॉजी के कारण सरकारी कामकाज में पारदर्शिता भी आयी। लेकिन एक ओर नेताओं के भाव भी बढ़े और अप्रत्याशित रूप से भ्रष्टाचार का स्तर भी बढ़ा। देश के सामने एक ऐसी परिस्थिति बनी की सरकार के ढाँचे में फैले भ्रष्टाचार ने आम लोगों को परेशान करना शुरू कर दिया। लेकिन इसी कारण से राजनैतिक भ्रष्टाचार के खिलाफ मुहिम को बढ़े पैमाने पर आम आदमी का समर्थन भी मिला। सुप्रीमकोर्ट के निर्णयों और राजनैतिक सुधारों के दबाव के कारण ही अनेक राजनैतिक दलों के प्रतिनिधियों को अदालतों ने सजा सुनाई। प्रश्न यह उठता है कि क्या इससे राजनेताओं की चेतना जागेगी और राजनैतिक सुधारों की प्रक्रिया अपने अन्जाम तक पहुँचेगी।

आश्चर्यजनक रूप से राजनैतिक सुधारों को एकाएक गति मिलती दिखाई दे रही है। आश्चर्यजनक इसलिए कि इन राजनैतिक सुधारों की पहल जहाँ से होनी चाहिए थी वहाँ से नहीं हुई, बल्कि कहीं और से हुई। कानून बनाने वाले हमारे राजनैतिक वर्ग ने इन राजनैतिक और चुनाव सुधारों में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई, बल्कि राजनैतिक सुधारों की राह में अनेक रुकावटें पैदा कीं। जब कि देश की अन्य संस्थाओं द्वारा चुनाव सुधार को लेकर अनेक बढ़े कदम उठाये गये। 27 सितम्बर 2013 के सुप्रीमकोर्ट के आदेश के पश्चात चुनाव आयोग को अब ईवीएम मशीनों में एक अतिरिक्त बटन लगवाना होगा। इस बटन के सामने (इनमें से कोई नहीं), या फिर ऐसा ही कुछ लिखा जा सकता है। लिली थामस और लोक प्रहरी बनाम भारत सरकार मामले में 10 जुलाई 2013 के फैसले में सुप्रीमकोर्ट ने स्पष्ट किया कि अदालत से दोषी करार होने पर यदि किसी जनप्रतिनिधि को कम से कम दो साल की सजा होती है तो तत्काल प्रभाव से उसे अपनी सदस्यता छोड़नी होगी।

जरूरी राजनैतिक सुधार की आवश्यकता :-

1. राजनीतिक दलों में आन्तरिक लोकतंत्र लागू करने के लिए कानून।
2. राजनीतिक दलों की कार्य प्रणाली को नियंत्रित करने वाला कानून।
3. राजनीतिक दलों के लिए अपने बैंक खातों को पारदर्शी रखने की जरूरत है।
4. कैग द्वारा सुझाए गये ऑडिटर ही राजनीतिक दलों के खातों का ऑडिट करें।
5. राजनीतिक दलों के खातों के बारे में आम जनता को भी जानकारी हो।
6. नोटा का प्रभावी रूप से लागू करना।
7. दो या दो से अधिक वर्षों की सजा प्राप्त प्रत्याशियों के चुनाव लड़ने पर रोक लगायी जाए।
8. प्रत्याशी द्वारा दाखिल शपथ पत्र की जाँच चुनाव के बाद एक केन्द्रीय एजेन्सी द्वारा करायी जाए।
9. गलत जानकारी देने वाले प्रत्याशियों के खिलाफ दण्डात्मक कार्यवाही का प्रावधान होना चाहिए।
10. चुनाव में धन बल के द्वारा मतदाताओं को प्रभावित करने, झूठी सूचनाओं द्वारा चुनाव परिणाम प्रभावित करने आदि अवैध कोशिशों को आपराधिक कृत्य घोषित होना चाहिए। और इन कृत्यों के लिए दो या उससे अधिक वर्षों की सजा का प्रावधान होना चाहिए।

11. चुनावी या राजनीतिक लाभ के लिए धर्म, जाति, समुदाय आदि के इस्तेमाल की अनुमति नहीं मिलनी चाहिए।
12. राजनैतिक दलों की मान्यता खत्म करने का अधिकार निर्वाचन आयोग को दिया जाना चाहिए।

03 जून 2013 को केन्द्रीय सूचना आयोग ने एक महत्वपूर्ण फैसला सुनाते हुए कहा कि देश के छैः प्रमुख राजनीतिक दल (कांग्रेस, भाजपा, राकापा, बसपा, सीपीआई और माकपा) आर . टी .आई के दायरे में आते हैं। क्योंकि यह सरकार से वित्त सहित कई सुविधाओं को प्राप्त करते हैं। इस निर्णय का यह अर्थ है कि देश का कोई भी नागरिक इन राजनीतिक दलों से इनके संचालन की प्रक्रिया और वित्त सम्बंधी जानकारी माँग सकता है। 05 जुलाई 2013 को सुप्रीम कोर्ट ने चुनाव आयोग को निर्देश दिया कि वह सभी राजनीतिक दलों के साथ विचार विमर्श करके एक ऐसा दिशा निर्देश तैयार करे जिससे सभी राजनीतिक दलों द्वारा चुनाव के समय उनके घोषणा पत्रों में मुफ्त उपहारों वायदों का नियमन किया जा सके। जिससे स्वतंत्र एवं निष्पक्ष चुनाव को सम्भव किया जा सके।

व्यवस्था :- गणतांत्रिक प्रणाली, एक खुशनुमा अहसास आजादी का, स्वच्छंदता का, स्वतंत्रता का, अलमस्ती का, मनमौजी का, अलहडपन का और साथ ही जवाबदेही, जिम्मेदारी एवं पारदर्शिता का भी। गणतांत्रिक व्यवस्था हमारी थाती रही है। भले ही हम राष्ट्र का 65 वां गणतंत्र मना रहे हों लेकिन हजारों साल पहले दुनिया का पहला गणतंत्र हमारे यहां होने के इतिहास से किस भारतीय का सीना गर्व से नहीं फूलेगा। हमारे साथ राजनीतिक क्रांतियां करने वाले कई देशों में पूरी व्यवस्था बदल चुकी है। राष्ट्रपतियों और प्रधानमंत्रियों के तख्तापलट से हिंसक क्रांतियां हुईं। इन सबके विपरीत हमारा गणतंत्र समय के साथ-साथ पुष्पित-पल्लवित होता रहा। इसलिए आज भारतीय समाज में खुशहाली की जो भी रोशनी दिखती है वह इसी गणतंत्र की ही देन है।

विलगाव :- यह सही है कि समय के साथ गणतंत्र के दोनों मूल तत्वों 'गण' और 'तंत्र' के बीच सामंजस्य गड़बड़ाया है। लगातार दोनों मूल तत्वों से आती शिकायतें इस बात का संकेत हैं कि शायद हम गणराज्य की अवधारणा को व्यवहारिक रूप से साकार नहीं कर सके हैं। हिंसक आंदोलन, अलगाववाद और विद्रोह की सुलगती चिंगारी, कुशासन के चलते भ्रष्टाचार और महंगाई का दंश, शिक्षा, स्वास्थ्य और सुरक्षा की गैरमौजूदगी जैसे कई कारक इस बात को स्पष्ट करते हुए दिखाई देते हैं।

बदलाव :- यह भले ही सही हो कि विगत छह दशक के अनवरत प्रयासों के बावजूद आदर्श गणराज्य की संकल्पना को हम मूर्त रूप न दे सके हों, लेकिन जनमानस ने उम्मीद नहीं छोड़ी है। यही गणतंत्र की आस्था है जिसके सहारे हम हर तूफान को झेलते हुए आगे बढ़े हैं। भारतीय गणतांत्रिक व्यवस्था पर रूदन करने वाले भूल जाते हैं कि संसदीय व्यवस्था के बजाय अधिनायकवादी अथवा तानाशाहों के जंगी हाथों से संचालित देशों में स्थितियाँ हमसे कई गुना बदतर हैं। ऐसे में अपने गणतंत्र को खुद की पहल द्वारा और मजबूत और सशक्त करना आज हम सभी देशवासियों के लिए एक ज्वलंत मुद्दा है।



लोकतन्त्र में मीडिया की भूमिका

डॉ० भावना यादव

सहायक प्राध्यापक—राजनीति विज्ञान

शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर, उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

वर्षों पहले लोकतन्त्र में समाचार पत्रों के महत्व के विषय में “ब्रिटिश राजनीतिज्ञ बर्क ने प्रेस को ‘फोर्थ स्टेट’ की संज्ञा दी है अर्थात् पहली व्यवस्थापिका, दूसरी कार्यपालिका, तीसरी न्यायपालिका और चौथी प्रेस।”¹ तानाशाह नेपोलियन का मानना था कि प्रेस अत्याचार, अदक्षता और अन्याय के खिलाफ एक सशक्त शस्त्र है। नित नवीन परिवर्तनों से स्वरूप ले रहे आधुनिक काल में, मीडिया मानव मूल्यों की गरिमा को बनाये रखने और मनुष्य के राजनैतिक व सामाजिक अधिकारों की रक्षा करने वाला एक सशक्त माध्यम बन कर उभरा है।

मीडिया का यह सफर प्रारंभ हुआ जब “1780 में जेम्स आगस्ट्स हिक्की ने ‘द बंगाल गजट’ के नाम से पहला समाचार पत्र निकाला।..... 1780 में कलकत्ते में श्री मेलिन और पीटर रीड नामक दो अंग्रेजों ने ‘इंडियन गजेट’ नाम से एक और पत्र प्रकाशित करना आरंभ किया।”² “कलकत्ता जर्नल भारत का पहला पत्र था जिसने इस देश में प्रगतिशील तथा उदार नीति सम्पन्न पत्रकारिता को जन्म प्रदान किया।”³ “हिन्दी भाषा का प्रथम समाचार पत्र ‘उदत्तमार्तण्ड’ भी बंगाल में सन् 1836 ईसवी में प्रकाशित हुआ।”⁴ समाचार पत्रों की यह संख्या क्रमशः बढ़ती गयी और साथ ही राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन और स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् इनकी भूमिका में प्रभावशाली महत्वपूर्ण परिवर्तन भी होते गये। इस दौर के पत्रकारों ने प्रतिकूल परिस्थितियों में जनचेतना, जनजागरूकता हेतु गौरवपूर्ण परम्परा को स्थापित किया। फलस्वरूप मीडिया लोकमत का सुधारक और सृजनशील माहौल के निर्माणकर्ता के रूप में विकसित हुआ। जिसकी झलक 1975 से 1977 की राजनैतिक परिस्थितियों में प्रेस ने अपनी निडर भूमिका के रूप में दिखाई।

समय के साथ प्रेस मीडिया में परिवर्तित हो गया। “मीडिया का अर्थ है — संचार तन्त्र अर्थात् समाचार और सन्देश प्रसारण का तन्त्र। Medium अर्थात् माध्यम। Medi इसी शब्द का बहुवचनीय रूप है। आरंभ में समाचार या सन्देश प्रसारण के माध्यम थे दूरभाष (टेलीफोन), तार (टेलीग्राम), समाचार पत्र, रेडियो (आकाशवाणी), टेलीविजन (दूरदर्शन), सिनेमा (चलचित्र)। अतः यह सभी संचार तंत्र चूँकि समाचार—संदेश के माध्यम थे, अंग्रेजी शब्द Medi में रूपान्तरित हो गये। इसी क्रम में संचार तन्त्र ने इलेक्ट्रानिक और अन्तरिक्ष विज्ञान के युग में प्रवेश किया, जिन्होंने संचार तन्त्र को नये आयाम दिये, अतः इसके व्यापक और विराट परिवेश ने इसे नाम दे दिया मल्टी मीडिया अर्थात् बहुव्यापक या विराट संचार तंत्र जिसने कम्प्यूटर से जुड़कर अपने स्वरूप को वास्तव में ब्रह्माण्डीय रूप दे दिया।”⁵

मीडिया के उपरोक्त रूपों में से हमारे शोध पत्र का केन्द्र प्रेस, रेडियो तथा टी.वी. चैनल्स पर प्रसारित विषय वस्तु है क्योंकि प्रजातंत्र में मीडिया को नागरिक अधिकारों का प्रहरी माना जाता है। मीडिया ने बोफोर्स कांड, ताबूत घोटाला, सैन्य अस्त्रों की खरीद से संबंधित घोटाला, मैच फिक्सिंग, कामनवैल्थ गेम्स घोटाला, टू जी स्पेक्ट्रम घोटाला जैसे अनेकों मामलों की सच्चाई को जनता के समक्ष रख कर उचित कार्यवाही हेतु मार्ग प्रशस्त किया है। मीडिया ने ऐसी सभी जानकारियाँ प्रायः समाचारों के माध्यम से जनता तक पहुँचायी।

“समाचार को परिभाषित करना कठिन है विभिन्न विद्वानों ने इसे अपनी तरह से परिभाषित किया है इसी क्रम में दिल्ली पत्रकार यूनियन के तत्वावधान में आयोजित ‘भारतीय प्रेस पर गोष्ठी 27 जनवरी 1968 का शुभारम्भ करते हुए ‘नेशनल हेरल्ड’ के सम्पादक मनुकोण्डा चलपतिराव ने समाचार की एक नई व्याख्या की। उनके अनुसार

समाचार की नवीनता इसी में है कि वह परिवर्तन की जानकारी दे। यह जानकारी चाहे राजनीतिक, सामाजिक अथवा आर्थिक हो।..... पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित और रेडियो टेलीविजन जैसे इलेक्ट्रॉनिक जनसंचार माध्यमों से प्रसारित होने वाले सामयिक महत्व के सार्वजनिक विचारों, घटनाओं और क्रिया कलापों के उस विवरण को 'समाचार' कहते हैं जिससे हमें किसी प्रकार की शिक्षा, सूचना या मनोरंजन प्राप्त होने की अनुभूति होती है।⁶

वास्तव में समाचार के माध्यम से मीडिया मनुष्य के मन को उसके विवेक को प्रभावित करता है। अतः मीडिया का यह नैतिक दायित्व बनता है कि जनमानस के समक्ष निष्पक्षतापूर्वक वस्तु स्थिति को रखे। इस संदर्भ में "सुप्रसिद्ध पत्रकार और इंडियन एक्सप्रेस के भूतपूर्व सम्पादक फ्रेंक मोरेस ने लिखा है – किसी सम्पादक, पत्रकार या समाचार पत्र का उत्तरदायित्व किसी देश के शासन के प्रति नहीं बल्कि उन देशों के लोगों के प्रति होता है। हमारे जैसे समाज, जिसमें ऐसे लोग नहीं हैं, जो अपने विचार आग्रहपूर्वक रख सकें या पर्याप्त शक्तिशाली जनमत नहीं है, समाचार पत्रों का दायित्व बढ़ जाता है और इसमें से प्रत्येक का दायित्व यह हो जाता है कि हम जनमत को प्रतिबिम्बित ही नहीं करें, बल्कि उसके अग्रणी हों।"⁷ इस प्रकार मीडिया जनमत को वाणी देकर तैयार करता है। राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर लोगों का ध्यानाकर्षित कर समाधान रूपी सुझाव जनता के बीच रखे जाते हैं परिणामस्वरूप लाखों करोड़ों लोगों की एक समान प्रतिक्रिया आती है जो शासन, प्रशासन पर जनमत के हित में दबाव बनाती है। वास्तविकता यह है कि वर्तमान में मीडिया ने सूचनाओं की ताकत को बढ़ाकर उनके मजबूत संजाल को वैश्विक स्तर पर स्थापित किया है। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता देने वाला भारत जैसा समृद्ध लोकतांत्रिक परम्पराओं वाला देश जो विकास के नित नवीन आयामों को छू रहा है, जिसमें मीडिया की प्रभावशाली भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। वर्तमान भारतीय "पत्रकारिता जहां अच्छे कार्यों की प्रशंसा करती है वहीं अन्याय, दमन, प्रतिशोध आदि की खुलकर निन्दा भी करती है। आवश्यकता पड़ने पर इन बुराईयों का सामना भी करती है। इसकी महिमा अपार है क्योंकि कभी यह जगत गुरु का रूपधारण कर समाज को शिक्षित करती है तो कभी न्यायाधीश बनकर न्याय की कुर्सी पर आसीन होकर निर्दोष व्यक्ति को न्याय दिलाती है। कभी सफेद पोश नेताओं के चेहरे से नकाब हटाकर उनका असली चेहरा समाज के समाने लाती है पत्रकारिता सही अर्थों में समाज में उच्च मूल्यों और आदर्शों की स्थापना करती है।"⁸

यही कारण है कि स्वतन्त्र और निष्पक्ष मीडिया किसी भी लोकतांत्रिक देश की प्रथम आवश्यकता है। आज किसी भी देश में लोकतंत्र का मूल्यांकन उसमें सक्रिय मीडिया को परख कर किया जा सकता है। किसी देश के राजनैतिक समाज में मीडिया जितनी ईमानदारी, निर्भीकता और निष्पक्षता से अपने कर्तव्यों को पूरा करती है उस राजनैतिक समाज को उतना ही उत्कृष्ट, सुदृढ़ और पूर्ण माना जाता है। इसीलिये लोकतांत्रिक देशों में मीडिया की स्वतंत्रता और निष्पक्षता को बनाये रखने पर विशेष बल दिया जाता है। परन्तु "ज्यों-ज्यों मीडिया एक जन चौकीदार की भूमिका में आता जा रहा है, त्यों-त्यों उस पर दबाव बढ़ते नजर आते हैं यों हर किस्म का मीडिया बहुत से 'अंदरूनी दबावों' के भीतर काम करता है इस मानी में कोई भी मीडिया सर्वत्र स्वतंत्र नहीं होता।"..... मीडिया को लेकर हर सरकार का नजरिया एक सा है। सरकारी मीडिया सरकारी तरकारी माना जाता है। केन्द्र में जो सरकार होती है, प्रसार भारती स्वायत्त होने के बावजूद उसकी सीमाओं में बंधा रहता है।"⁹

इस प्रकार जहां मीडिया की भूमिका एक मार्गदर्शक की होनी चाहिये, वहां मीडिया स्वयं किसी पार्टी विशेष के मार्ग पर चलता नजर आता है और सूचनाओं, तथ्यों को इस प्रकार तोड़-मरोड़ कर जनमत के समक्ष रखता है कि जनमत भ्रमित हो जाता है यह स्थिति लोकतंत्र के लिये घातक और खतरनाक है। वास्तव में "प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था की कुशलता एवं उसका विकास और निर्धारण उसके नागरिकों में व्याप्त सचेतना द्वारा होता है जिस मात्रा में नागरिक मूलाधिकार, संविधान एवं राजनीतिक व्यवस्था के अवयवों से अवगत होते हैं उसी के अनुरूप लोकतंत्र की सफलता निश्चित होती है संज्ञानता प्रजातंत्र का प्राण तत्व है। नागरिकों में संचेतना के प्रसार

का प्रभावी माध्यम संचार तंत्र है।¹⁰ अर्थात् आज की मीडिया। जिसमें “पत्रकारिता के आदर्श-शान्ति स्थापना, जन सेवा, विशाल मानव परिवार की एकता (विश्व-बन्धुत्व)।”¹¹ स्थापना सर्वोपरि नहीं रह गयी। बल्कि “समय के साथ-साथ पत्रकारिता का स्वरूप भी बदला है और साधन भी बदले हैं। पत्रकारिता कभी एक मिशन हुआ करती थी, लेकिन आज वह उद्योग है और यह उद्योग भी उपभोक्तावाद की आंधी में उसी की तरह दौड़ रहा है। लेकिन एक पत्रकार के लिए उसका दायित्व उद्योग नहीं हो सकता। व्यावसायिकता के बावजूद पत्रकार सामाजिक दायित्वों तथा मानवीय मूल्यों और मान्यताओं से बंधा रहेगा। उसके कार्य के यह अनिवार्य तत्व हैं। वर्तमान पत्रकारिता को स्वीकार करने के बावजूद मानव मूल्यों के प्रति पत्रकार निष्ठावान रह सकता है। समाज में यही उसके लिये सर्वस्वीकार्यता और पत्रकार के दायित्वों की सफलता भी होगी।”¹² जिसे मीडिया से जुड़े लोगों को समझना होगा।

कई बार ऐसा लगता है कि वर्तमान मीडिया पूर्णतः बाजार द्वारा नियंत्रित है। मीडिया के लिये यह खतरे की घंटी है। यह सही है कि समाचार पत्र या टी.वी. चैनल चलाने के लिये धन की आवश्यकता होती है परन्तु जब ये ही धन एकत्र करने का जरिया बन जाये तो जनता के बीच क्या प्रस्तुत करना है यह धन के स्रोत ही निर्धारित करेंगे। हम कई समाचार चैनलों को देखते हैं जिन्हें समाचार के नाम पर लाइसेंस मिला है परन्तु उन चैनल्स पर भूतप्रेत, ज्योतिष, खेल, अपराध, सिनेमा यहां तक की टी.वी. सीरियल्स का विश्लेषण तक दिखाई देता है प्राइम टाइम में समाचार के अलावा। इतना ही नहीं जब समाचार दिखायें जायेंगे तो समाचार की गंभीरता के स्थान पर समाचारों को रोचक और चटपटा बनाने का हर सम्भव प्रयास किया जायेगा। फलस्वरूप समाचार का बाह्य आवरण तो रोचक हो जायेगा पर मूल स्वरूप समाप्त हो जायेगा। इतना ही नहीं 24 घण्टों के समाचार चैनल्स पर समाचारों की विविधता हेतु अनावश्यक सूचनाओं का विश्लेषण और न प्रसारित की जाने वाली सूचनाओं को भी ‘सबसे पहले’ के दबाव में प्रसारित कर दिया जाता है। आज समाचार चैनल खबरों के युद्धस्थल से दिखाई पड़ते हैं। परन्तु “खबरों के युद्ध देश को सशक्त बनाने के नहीं होते, बल्कि कमजोर करते हैं।”¹³

ये कमजोरी चुनौती बनकर उभरती है। आज मीडिया की सबसे बड़ी चुनौती यही है कि जनता के समक्ष एक संतुलित सूचना समाचार के रूप में प्रेषित की जाये। “एक समाचार में तथ्यपरकता, संतुलन, न्याय संगतता और वस्तुपरकता के तत्व होने चाहिये। इसके अलावा उसमें स्रोत का भी समुचित रूप से उल्लेख होना चाहिए। दरअसल समाचार के इन्हीं मूलभूत तत्वों के प्रति दृष्टिकोण में भिन्नता से एक ही घटना के कई रूप सामने आते हैं जो अकसर समान नहीं होते और यदा-कदा परस्पर विरोधी भी होते हैं।”¹⁴ लोकतन्त्र में वैचारिक विरोध सामान्य बात है और किसी वैचारिक क्षेत्र को व्यापक कर जनमत में परिवर्तित करने का माध्यम मीडिया है। मीडिया से अपेक्षा की जाती है कि प्रशिक्षित जानकार लोगों के द्वारा भिन्न विचारों, सूचनाओं को जनता के मध्य अभिव्यक्त किया जाये। परन्तु व्यवहारिक धरातल पर ऐसा होता दिखाई नहीं देता। “प्रत्येक पद के लिये कोई न कोई योग्यता और अर्हता निर्धारित है लेकिन समाचार पत्र उद्योग में कार्य करने के लिये किसी विशेष योग्यता की आवश्यकता नहीं है।”¹⁵ राजनीति और मीडिया उद्योग आज हर किसी के लिये खुला हुआ है। यह सही है कि पत्रकारों के लिये पत्रकारिता की डिग्री होना अनिवार्यता है परन्तु यह अनिवार्यता प्रायः बड़े शहरों या बड़े चैनल्स में लगभग अपनायी जाती है छोटे शहरों के लोकल समाचार चैनल्स में इस प्रकार की सीमायें प्रायः नकार दी जाती हैं।

परिवर्तन के दौर में, जहां मीडिया से अपेक्षाएं बढ़ी हैं वहीं “पत्रकारिता के समक्ष विद्यमान चुनौतियों पर गौर करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि आधुनिक संचार क्रान्ति के कारण इसकी अस्मिता पर नये प्रश्नवाचक चिह्न लग रहे हैं। आज पत्रकारिता की मौलिकता के संरक्षण संवर्धन की आवश्यकता है। समाज में नित दिन बढ़ते भ्रष्टाचार तथा घट रही नैतिकता ने पत्रकारिता जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्र को भी प्रभावित कर रखा है। इसीलिये नये सिरे से आत्ममंथन और उद्देश्यपूर्ण दृढ़ प्रयास की जरूरत है।”¹⁶ इसका एक और कारण मीडिया की निरन्तर सकारात्मक भूमिका है। आज मीडिया ने भ्रष्टाचार के खिलाफ जनआन्दोलन खड़ा कर दिया है। वहीं

पर्यावरण प्रदूषण, मद्यनिषेध, मानवाधिकार, सूखा, बाढ़, परिवार नियोजन, एड्स, भूकम्प, शिक्षा, रोजगार, विभिन्न शासकीय योजनाओं की जानकारी आदि के क्षेत्र में मानव को जागरूक व सचेत कर निर्माणकारी व लोक कल्याणकारी कार्यों को व्यावहारिक स्वरूप दिया है। आज उपेक्षित वंचित लोगों को अपने अधिकार मिले, नारी की प्रतिभा को पुरुष के समान माना गया, अशिक्षा, गरीबी, टी.वी., पोलियों से मुक्ति का मार्ग, स्वच्छ जल और स्वच्छ भारत हेतु आम जनता को जागरूक करने में मीडिया की भूमिका अति महत्वपूर्ण है।

डॉ. रामचन्द्र तिवारी लिखते हैं कि “पत्रकार भविष्य दृष्टा होता है वह समस्त राष्ट्र की जनता की चित्तवृत्तियों, अनुभूतियों और आत्मा का साक्षात्कार करता है। पत्रकार किसी को ब्रह्म ज्ञानी नहीं बना सकता परन्तु मनुष्य की भांति जीते रहने की प्रेरणा देता है। जहां उसे अन्याय, उत्पीड़न, प्रवंचना, भ्रष्टाचार, कदाचार दिखाई देता है। वह उसका ताल ठोककर विरोध करता है। आत्मविश्वास और दृढ़ता से प्राणी-प्राणी में शान्ति एवं सद्भावना की स्थापना करता है। सच्चा पत्रकार निर्माण क्रान्ति की लपटों से समाज की बुराइयों को भस्म करने का आयोजन करता है। पत्रकार ऐसे समाज का विधिवत विकास करता है। जिससे आत्म साक्षात्कार के इच्छुक लोगों को अपनी पहचान करने की दृष्टि मिलती है।”¹⁷ यह कार्य आज मीडिया मुस्तैदी से करता नजर आ रहा है और युवा वर्ग के लिये सामाजीकरण का सशक्त माध्यम बन गया है।

भारतीय मीडिया लोकतंत्र के प्रति अपने दायित्व का निर्वहन सजगता से करता आया है परन्तु कई बार उन्मुक्तता के रूप में अतिवाद को भी बढ़ावा देता नजर आता है। जिससे अनुशासनहीनता और उच्छृंखलता को बढ़ावा मिलता है तथा मीडिया असंपादित सूचनाओं को नागरिकों के बीच पहुंचा देता है। इस संदर्भ में “सुप्रीम कोर्ट के जज मारकंडेय काटजू ने मीडिया पर कुछ इल्जाम लगाये— 1. मीडिया तथ्यों को तोड़ मरोड़कर प्रस्तुत करता है, 2. खबरें खरीदी जा सकती हैं अर्थात् विज्ञापन खबरों की तरह छापे जा सकते हैं और पाठक को भ्रमित किया जा सकता है, 3. मीडिया में गैर जरूरी बातों को मुद्दे की तरह उठा दिया जाता है, 4. आतंकवाद को बिना आधार के मुसलमानों से जोड़ दिया जाता है।”¹⁸ उन्होंने इससे निवारण की दो राहें बताई— जनतांत्रिक तरीका , दूसरा गलती करने वालों से सख्ती से पेश आना और दंड-विधान।

वास्तव में “मीडिया का काम समाज और सरकार के बीच एक प्रकार की ‘जन पंचायत’ करने का होता है। जहां शिकायतें अपना जबाब मांगती हैं और जिम्मेदार लोग जबाबदेही निभाते हैं जिन समाजों में जनतंत्र है वहां मीडिया जनतंत्र के ऐसे विस्तार की तरह होता है जो कथनी और करनी के बीच एकसूत्रता की कसौटी लागू करता है। यही मीडिया की नैतिकता है कि कहे और करे के बीच की तुलना करता रहे।”¹⁹ परन्तु आज टी.आर.पी. के पीछे भागता मीडिया वही दिखा रहा है जो लोग देखना चाहत हैं। लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ के रूप, विधायिका, कार्यपालिका और न्यायापालिका द्वारा किये जा रहे कार्यों के प्रति जनता को अवगत कराना तथा बिना झुकाव के सही के प्रति जनमत को तैयार करने के स्थान पर हम सब कुछ मीडिया से पाते हैं। फलस्वरूप मीडिया की छवि ‘बुद्धबाक्स’ की रह गई है। इस संदर्भ में मीडिया ने विशेषकर टी.वी. चैनलों ने अपनी छवि सुधारने हेतु स्वयं एक नियामक संस्था का गठन किया है। जिसका कार्य गैर जिम्मेदाराना रिपोर्टिंग को रोकने से संबंधित दिशा-निर्देश तैयार करना है। इसके अध्यक्ष पूर्व मुख्य-न्यायाधीश जे.एस. वर्मा हैं। साथ ही केन्द्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भी मीडिया को नियंत्रित करने के लिये ‘कंटेन कोड’ पर विचार कर रहा है। “मीडिया काउंसिल में अगर कहीं से ताकत आ सकती है तो जनता की हिस्सेदारी से आ सकती है। वह कैसे हो इस पर बात की जानी चाहिये। मीडिया के व्यापक प्रभाव की सतत् समीक्षा, उसका लगातार आंकलन और निष्कर्ष हर बार जनता के बीच जाते रहने चाहिये। अंकुशवाद की जगह बहस और तथ्यमूलक समीक्षाओं पर बल होना चाहिये। मीडिया के कंटेन को भी समीक्षा का विषय बनाना चाहिए। स्तर के साथ सामाजिक न्याय की बात रहनी चाहिए। आजादी तो रहनी ही चाहिए लेकिन मीडिया को इस आड़ में जनहित के प्रति गैर-जिम्मेदार नहीं होने देना चाहिए। जाहिर है कि मीडिया से ताल्लुक रखने वाले अनन्त पहलुओं के बारे में ठहरकर विचार करने के लिए बड़े पैमाने पर जनता

को शामिल कर बात की जानी चाहिये।²⁰

मीडिया की स्वतन्त्रता निरपेक्ष नहीं है। सुप्रीम कोर्ट के एक निर्णय के अनुसार हर प्रकार के अधिकारों पर उचित प्रतिबंध लगाया जा सकता है यदि प्रेस को अवमानना आदि से पूर्ण मुक्ति दे दी जाए तो वह समाज में पीत पत्रकारिता के माध्यम से अशान्ति फैला सकती है। मीडिया के भी सिक्के की तरह दो पहलू होते हैं। अतः मीडिया की स्वतन्त्रता का अर्थ उत्तरदायित्वों से मुक्ति नहीं बल्कि अपने दायित्व के प्रति उदासीनता पर मीडिया दण्डित भी किया जा सकता है। मीडिया को अपने अधिकार का उपयोग करते समय सदैव देश की एकता-अखण्डता, शान्ति बनाये रखने संबंधित दायित्व को ध्यान रखना चाहिये और बिना पक्षपात या पूर्वाग्रह के जनता को सही तथ्यों से अवगत कराना चाहिये। जिससे राष्ट्र व समाज का सही अर्थों में हित हो। पुराने समय से यह कहा जाता रहा है कि तलवार से ज्यादा शक्ति विचार और कलम में होती है और मीडिया-संवाददाताओं व पत्रकारों के माध्यम से विचार और लेखन शक्ति का प्रसारण आम जनता में करती है तथा जहां तलवार के एक बार से एक व्यक्ति प्रभावित होता है वहीं एक संवाददाता या समाचार पत्र की खबर लाखों लोगों को एक ही समय में प्रभावित करती है। अतः लोकतंत्र में मीडिया को सदैव चौकना रह कर अपने उत्तरदायित्वों को पूर्ण करना चाहिये साथ ही राजनैतिज्ञों, औद्योगिक घरानों, सरकार और आम जनता में सच्चाई और देश हित की सीमाओं तक खबरों को जानने की इच्छा शक्ति का होना भी लोकतंत्र के हित में मीडिया की भूमिका का मार्ग प्रशस्त करेगा।

संदर्भ ग्रंथ :

1. भगवानदास-समाचारों की दुनिया, ओमेगा पब्लिकेशन्स , दिल्ली 2010, पृ. 23
2. भारत भूषण डल्लू- भारतीय पत्रकारिता के आधार, ओमेगा पब्लिकेशन्स , दिल्ली 2005, पृ. 73-74
3. भारत भूषण डल्लू - पूर्ववर्णित , पृ. 80-81
4. भारत भूषण डल्लू - पूर्ववर्णित , पृ. 87
5. डॉ. यू.सी. गुप्ता - पत्रकारिता के विविध आयाम, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस , दिल्ली 2009, पृ. 108-109
6. भगवानदास - पूर्ववर्णित पृ. 3, 5
7. भगवानदास - पूर्ववर्णित पृ. 25
8. डॉ. राजकुमार रानी - पत्रकारिता विविध विधाएँ, जय भारती प्रकाशन, इलाहाबाद पृ. 20
9. सुधीश पचौरी - नया मीडिया और नये मुद्दे, वाणी प्रकाशन, पृ. 175, 176
10. डॉ. राजेन्द्र मिश्र, डॉ. देवी सिंह राठौर - पत्रकारिता के विविध आयाम, तक्षशिला प्रकाशन, 2012, पृ. 20, 21
11. डॉ. यू.सी. गुप्ता - इलेक्ट्रानिक मीडिया एवं सूचना प्रौद्योगिकी, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 2009, पृ. 14
12. डॉ. राम विद्रोही - नए दौर की पत्रकारिता, अमृत प्रकाशन, ग्वालियर 2006, पृ. 17
13. टी.डी.एस. आलोक - इलेक्ट्रानिक मीडिया, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली 2001, पृ. 86
14. राजकिशोर - समकालीन पत्रकारिता मूल्यांकन और मुद्दे, वाणी प्रकाशन , जयपुर 2006, पृ. 184-185
15. सुषमा चतुर्वेदी - जनसंचार एवं पत्रकारिता, ज्योति प्रकाशन, जयपुर 2008, पृ. 167
16. सुषमा चतुर्वेदी - पूर्ववर्णित, पृ. 167
17. डॉ. रामचन्द्र तिवारी - जनसंचार और हिन्दी पत्रकारिता, वि.वि. प्रकाशन, इलाहाबाद 2002, पृ. 291
18. द हिन्दू 22 अक्टूबर 2011
19. सुधीश पचौरी - उत्तर आधुनिक मीडिया, विमर्श, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2006, पृ. 67-68
20. सुधीश पचौरी - पूर्ववर्णित, पृ. 157-158



भारत में न्यायिक सक्रियता

डॉ० आदित्य प्रकाश सिंह

अध्यक्ष—राजनीतिशास्त्र विभाग

रा० स्नात० महावि० बेरीनाग, (पिथौरागढ़) उत्तराखण्ड

पिछले दो दशकों में भारत के न्याय व्यवस्था के स्वरूप में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है। इन दशकों में न्यायपालिका का आकार, व्यवहार, क्षेत्राधिकार विशेष रूप से उसका लक्ष्य ही बदल गया है। वर्तमान में न्यायपालिका का लक्ष्य व्यक्तिगत न्याय के साथ-साथ सामाजिक न्याय की भी स्थापना करना है। न्यायपालिका केवल न्याय प्रदान करने का ही कार्य नहीं कर रही है वरन् वह प्रशासक, सुधारक और नीति-निर्धारक की भी भूमिका भी अदा कर रही है। दूसरे शब्दों में न्यायपालिका न्याय सम्बन्धी कार्यों के सम्पादन के अतिरिक्त ऐसे कार्य भी कर रही है, जो कार्य मूल रूप से कार्यकारिणी द्वारा सम्पादित किये जाने चाहिए। न्यायपालिका द्वारा कार्यकारिणी की शक्तियों का प्रयोग करना ही न्यायिक सक्रियता कहलाता है।

भारतीय न्यायपालिका का परम कर्तव्य है कि वह एक राज्य के साथ, दूसरे राज्यों के साथ, संघ और राज्यों के बीच उभरने वाले संघर्षों, शिकायतों एवं समस्याओं पर सही निर्णय करें। गरीब और अमीर के बीच शक्तिशाली और कमजोर के बीच उठने वाले मामलों पर भी बिना किसी भय, लालच के काम करें। भारत में न्यायपालिका की भूमिका मानव अधिकारों के विकास एवं संरक्षा से भी जुड़ा हुआ है जिसके विचार भारतीय संविधान, अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भारतीय संसद द्वारा दिये गये निणयों में निहित हैं।

न्यायिक सक्रियता कार्यकारिणी की निष्क्रियता का स्वभाविक परिणाम हैं। कार्यकारिणी की बढ़ती हुई उदासीनता, स्वेच्छाचारिता, अनुशासनहीनता तथा निष्क्रियता ने न्यायिक सक्रियता को जन्म दिया है। जेलों में वर्षों से सुनवाई की प्रतीक्षा में बन्द कैदी, अवैध बन्दीकरण स्त्रियों, बच्चों और श्रमिकों का शोषण जेल और महिला संरक्षण गृहों की अमानवीय दशा, पुलिस अत्याचार न्याय मिलने में अत्यधिक विलम्ब ऐसी असंख्य समस्याओं का निराकरण करने में कार्यकारिणी अप्रभावी सिद्ध हुई। कार्यकारिणी की इस निष्क्रियता के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली स्थिति को न्यायपालिका ने विधि के शासन की विफलता माना। न्यायपालिका जो पारम्परिक मूल्यों और मानकों का अनुपालन करते हुए अभी तक मूकदर्शक थी, विधि के शासन को सुरक्षित रखने के लिए उठ खड़ी हुई। न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती के अनुसार विधिक व्यवस्था को बनाये रखना न्यायपालिका का कर्तव्य है। विधि के शासन को सुरक्षित रखने के लिए सरकार के प्रत्येक अंग को अपनी सीमाओं में रहकर कार्य करना चाहिए तथा कानून अथवा संविधान द्वारा उन पर आरोपित दायित्वों को पूरा करना चाहिए। इस तरह न्यायमूर्ति भगवती ने न्यायिक सक्रियता को संवैधानिक आधार प्रदान किया।

न्यायपालिका किस तरह कार्यकारिणी के क्षेत्र में प्रवेश करके समाज में हो रहे अन्याय तथा शोषण को रोक सकती है और उन दशाओं को उत्पन्न कर सकती है जो व्यक्ति और समाज के विकास के लिए आवश्यक है। दूसरी सबसे बड़ी समस्या मानवाधिकार के सम्बर्द्धन और संरक्षण की है। यदि सामान्य तौर पर देखा जाय तो मानव के अधिकारों का शोषण, उत्पीड़न और अत्याचार हो रहा है। अधिकार वे परिस्थितियाँ हैं जिनके बगैर सामान्यतः कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर सकता है। मनुष्य के लिए जहाँ रोटी, कपड़ा और मकान अनिवार्य है। वहीं इसकी और चीजें भी जो आधुनिक मानव समाज के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। न्यायिक सक्रियता न्यायपालिका द्वारा शासक की संज्ञा दी गयी है।

ब्लैकस लॉ शब्दकोश के अनुसार, " न्यायिक सक्रियता एक ऐसा दर्शन है जो न्यायपालिका को प्रगतिशील व्याख्या के सिद्धान्त से जोड़ता है"।

न्यायमूर्ति बी.आर.कृष्ण अय्यर के अनुसार, न्यायिक सक्रियता सामाजिक न्याय के अति महत्वपूर्ण लक्ष्य को प्राप्त करने का एक मन्त्र है।

न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह, "जनहित याचिका में उच्चतम न्यायालय को निर्वहन अथवा वर्णन करने का दूसरा तरीका बताया है"।

न्यायिक सक्रियता को के.जी. बालकृष्णन ने प्रासंगिक बताते हुए कहा है कि यह न्यायिक संवेदनशीलता स्थापित करते हुए प्रशासन को जनोन्मुखी बनाने के लिए न्यायपालिका द्वारा सकारात्मक प्रयत्न किया जाना न्यायोचित है।

अतः इस प्रकार न्यायिक सक्रियता का आशय है, 'संविधान , कानून और अपने दायित्वों के प्रसंग में कानूनी व्याख्या से आगे बढ़कर सामाजिक , आर्थिक परिस्थितियों और सामाजिक, आर्थिक, न्याय की आवश्यकता को पृष्ठ में रखते हुए संविधान और कानून की रचनात्मक व्याख्या करते हुए जनसाधारण के हितों की रक्षा के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना। इसके साथ ही इसके अन्तर्गत यह तथ्य भी सम्मिलित है कि जनसामान्य की हित की दृष्टि से आवश्यक होने पर शासन को निर्देश देना और शासन की स्वेच्छाचारिता पर रोक लगाना न्यायपालिका का दायित्व है।

न्यायिक सक्रियता के स्वरूप के अन्तर्गत जनहितकारी अभियोगों को मान्यता, कानूनी न्याय के साथ-साथ आर्थिक, सामाजिक न्याय पर बल शासन की स्वेच्छाचारिता पर नियंत्रण व शासन को आवश्यक निर्देश देना सम्बन्धी बातों को सम्मिलित किया गया है। इसके साथ ही न्यायिक सक्रियता को दो वर्गों में विभक्त करते हुए प्रथम रूढ़िवादी या अनुदारवादी द्वितीय उदारवादी सक्रियतावाद के फलस्वरूपों को बताया गया है।

न्यायिक पुनर्विलोकन के रूप में न्यायिक सक्रियतावाद का आरम्भ संयुक्त राज्य अमेरिका के उच्चतम न्यायालय द्वारा मार्बरी बनाम मेडिसन में दिये गये निर्णय को कहा जाता है। भारत में न्यायिक पुनरावलोकन के सिद्धान्त का उदय देश की स्वाधीनता के पश्चात् हुआ। संविधान के अनु. 13, 32, 131-136, 143, 145, 226, 246, 251, 254 और 372 विधान के न्यायिक पुनरावलोकन हेतु उपबन्ध करते हैं। अनु0 13 का महत्व बहुत है। इसमें उपबन्धित किया गया है कि कोई विधि जो मूल अधिकार के उपबन्धों का उल्लंघन करती है, शून्य होगी अमेरिका में न्यायिक पुनरावलोकन न्यायिक आविष्कार है, क्योंकि वहाँ संविधान में कोई उपबन्ध विधान का न्यायिक पुनर्विलोकन करने के लिए नहीं है। इस प्रकार यह न्यायिक सक्रियता ही है। भारत में न्यायिक पुनर्विलोकन हेतु संवैधानिक आधार है जैसा कि अनु0 13 में घोषित किया गया है। तदनुसार भारत में संविधान सर्वोच्च है।

सन् 1967 में गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य के मामले में उच्चतम न्यायालय ने न्यायिक पुनर्विलोकन के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया परन्तु उच्चतम न्यायालय ने उनके पूर्व मत, जो गोलकनाथ के मामले में प्रतिपादन किया गया था, उसको केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य में बदल दिया और अभिनिर्धारित किया कि संसद अनु0 368 के अधीन अपनी संविधायी शक्ति का प्रयोग करके संविधान के किसी भी उपबन्ध में संशोधन कर सकती है, फिर भी संविधान की अधारित संरचना में कोई संशोधन नहीं कर सकती है।

न्यायिक सक्रियतावाद बहुत लोकप्रिय है। श्रेष्ठ विधिशास्त्रियों जैसे- न्यायाधीश कृष्ण अय्यर, भारत के मुख्य न्यायाधीश पी.एन.भगवती, न्यायाधीश डी.ए. देशाई और न्यायाधीश चिनप्पा रेड्डी ने न्यायिक सक्रियतावाद की संकल्पना का विकास करने में बहुत बड़ी भूमिका अदा की है। जबकि न्यायिक पुनर्विलोकन विधिक प्रक्रिया को केवल पुनर्विलोकन और विश्लेषण है, न्यायिक सक्रियतावाद आधुनिक, सामाजिक, आर्थिक समस्याओं के प्रति न्यायपालिका की अनुक्रिया है। न्यायपालिका अपने सक्रियतावाद को सामाजिक चित्र के अनुसार लाकहितवाद या

सामाजिक कार्यवाहीवाद से प्रवर्तित करती है। जैसे —हुसेनारा बनाम बिहार राज्य, पीपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ में है तथा इसके साथ ही न्यायिक सक्रियता के विकास के उत्तरदायी कारणों को बताया गया है।

मानव एक बुद्धिमान व विवेकपूर्ण प्राणी है। इसी कारण उसको कुछ ऐसे मूल तथा अहरणीय अधिकार प्राप्त होते हैं, जिसे मानव अधिकार कहा जाता है। मानव अधिकार वे न्यूनतम अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यकता के अनुरूप प्राप्त होने चाहिए क्योंकि वह समाज का सदस्य हैं। मानव अधिकार की अवधारणा मानव गरिमा से जुड़ी है। अतः जो अधिकार मानव गरिमा को बनाये रखने के लिए आवश्यक है उन्हें मानव अधिकार कहा जाता है। मानव अधिकार संरक्षण का, दार्शनिक आधार के अन्तर्गत कुछ यूनानी व रोमन दार्शनिकों में प्लेटों, अरस्तु, शिसरो, सोफोअलेज, स्टोपक तथा थामस इक्विनास के प्राकृतिक विधि को मानवाधिकार से जोड़ते हुए बताया गया है। इसके साथ ही मानवाधिकार की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि जिसमें अमेरिकी क्रान्ति एवं फ्रांसिसी क्रान्ति को बताते हुए भारत में मानवाधिकार को वेदों, बौद्ध काल, इस्लाम धर्म, स्वामी विवेकानन्द, राजाराम मोहन राय, दादा भाई नरौजी, बाल गंगाधर तिलक, गोखले, रविन्द्रनाथ टैगोर, विनोबा भावे, मानवेन्द्र नाथ राय, सर्वपल्ली राधाकृष्णन तथा पण्डित जवाहर नेहरू तथा भारतीय संविधान के प्रावधानों के अन्तर्गत मानवाधिकार के तथ्यों को सम्मिलित किया गया है।

न्यायिक सक्रियता न होती तो बाल श्रमिक, बंधुआ मुक्ति मोर्चा के मामले में मानवाधिकार का अतिक्रमण, भागलपुर जेल में अन्धा करने का मामला, पागलों के मानसिक अस्पताल में, औरतों के रक्षा भवनों के मानव अधिकारों का अतिक्रमण प्रकाश में नहीं आता। न्यायिक सक्रियता ऐसेवादों को उजागर करके जनता में चेतना लाता है। न्यायिक सक्रियताओं जो बच्चों के बाल श्रम से सम्बन्धित हैं। जिसमें न्यायालय द्वारा सक्रियता दिखायी गयी उसके निम्नवत् उदाहरण है—

रामनगर जिला बीडी वर्क्स सचिव बनाम तमिलनाडु राज्य, बंधुआ मुक्ति बनाम भारत संघ, शीला वर्से बनाम भारत संघ तथा एम.सी.मेहता बनाम तमिलनाडु राज्य, इसी के साथ ही सामाजिक बुराई बंधुआ मजदूरी के बारे में बताते हुए संवैधानिक प्रतिबद्धता और बन्धुआ मजदूरी इसके अन्तर्गत बंधुआ मजदूरी अधिनियम 1976 का उल्लेख किया है। इससे सम्बन्धित केश बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम तमिलनाडु राज्य, छत्तीसगढ़ कृषक मजदूर संग बनाम मध्य प्रदेश राज्य तथा लिंग भेदभाव के अन्तर्गत संवैधानिक प्रतिबद्धता और महिला संरक्षण पर भी प्रकाश डाला गया है।

भारत में जनहित याचिका संबन्धी अवधारणा का बीजारोपण सर्वप्रथम न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर द्वारा मुम्बई कामगार सभा बनाम अब्दुल भाई के वाद में किया गया है लेकिन फर्टिलाइजर कारपोरेशन यूनियन बनाम यूनियन आफ इण्डिया के वाद में जनहित याचिका शब्दावली का प्रयोग हुआ तथा ए.पी. गुप्ता बनाम यूनियन आफ इण्डिया के वाद में जनहित याचिका के सिद्धान्त एवं उद्देश्य को बताया गया है और पीपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम यूनियन आफ इण्डिया के वाद में यह तर्क था कि इस प्रकार के मामले से न्यायालय मेंवादों की संख्या में वृद्धि होगी, अतः उन्हें बढ़ावा नहीं देना चाहिए, इसका उत्तर न्यायमूर्ति श्री भगवती ने कहा कि किसी राज्य को अपने नागरिकों से यह कहने का अधिकार नहीं है कि 'चूँकि हमारे न्यायालय में धनी व्यक्तियों के अनेक मामले लम्बित हैं अतः हम निर्धनों को न्यायालय में न्याय पाने के लिए तब तक नहीं आने देंगे जब तक कि उनके मुकदमों को जो धनी वकीलों की सहायता प्राप्त कर सकते हैं निपटारा न कर दिया जाय'। न्यायालय मेंवादों में वृद्धि इस बात का कोई उत्तर नहीं कि समाज निर्बल एवं कमजोर वर्ग के लोगों के लिए न्याय पाने का रास्ता ही बन्द कर दिया जाय। एम.सी. मेहता बनाम यूनियन आफ इण्डिया के मामलों में जनहित याचिका के प्रयोग के नियम को प्रतिपादित किया है। इस प्रकार उच्च न्यायालय उन व्यक्तियों के दरवाजे पर न्याय लेकर

आयी है जो गरीबी, भुखमरी, अशिक्षित एवं असंगठित स्थिति में रहते हैं।

भूमण्डलीकरण के दौर में जनहित याचिका एवं न्यायिक सक्रियता का स्वरूप, चुनाव सुधार का मामला, श्रमजीवी महिलाओं के यौन उत्पीड़न के संरक्षण का मामला, समान नागरिक संहिता का मामला, सेना का जवानों द्वारा यौन उत्पीड़न का मामला, ध्वनि प्रदूषण का मामला दोषसिद्ध व्यक्ति को मुख्यमन्त्री नियुक्त करने का मामला, राष्ट्रीय धरोहर को बचाने का मामला, पुलिस बल में सुधार का मामला, फुटपाथ पर व्यापार का मामला आदि के बारे में बताया गया है। जनहित याचिका आज न्यायिक शक्ति के क्षेत्र में विस्तारित करने का महत्वपूर्ण भाग है और वैधता अर्जित कर लिया है। नयी अधिकारिता के माध्यम से भारतीय न्यायपालिका सरकार और उसके अभिकरणों के आलोचक और अवीक्षक के रूप में विस्तृत उत्तरदायित्व को ग्रहण कर लिया है। वर्तमान में जनहित याचिका की सक्रियता भारतीय विधिक विद्वानों और न्यायिक विधि की मुख्य धारा में प्रशासन के लिए केन्द्र हो गया है, जो अन्य राजनैतिक साधनों को अंगीकार करने की अपेक्षा न्यायालयों के समक्ष अलाभ प्राप्त समूहों को अंगीकार करने के संकेत प्राप्त कर रहा है।

भारत में उच्च न्यायालय की नवीन भूमिका को लेकर विधिवेत्ता, न्यायविद्, संविधान विशेषज्ञ और राजनीतिज्ञ आमने सामने खड़े हैं एक ओर जहाँ विधि विशेषज्ञों व संविधान विशेषज्ञों ने इसका स्वागत किया है प्रधानमंत्री डॉ मनमोहन सिंह ने सन् 2006 में मुख्यमन्त्रियों और मुख्य न्यायाधीशों के सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए कहा कि न्यायपालिका के हाथ में जनहित याचिका, 'कमियों के लिए एक हथियार है'।

इसमें कोई संदेह नहीं कि न्यायपालिका की सक्रियता ने मानवाधिकार संरक्षण, सामाजिक न्याय की विधि के शासन को स्थापित करने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इस दृष्टि से हमें न्यायिक सक्रियता का स्वागत करना चाहिए।



‘वैश्वीकरण’ और विश्व भाषा के रूप में हिन्दी

अजेन्द्र सिंह (शोधार्थी)

पीएच.डी. (हिन्दी साहित्य)

देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)

कम्प्यूटर तकनीक इन्टरनेट और सूचना प्रौद्योगिकी के आशातीत विकास एवं उत्तरोत्तर प्रगति से विश्व के लगभग सभी देश सूचना, व्यापार, संस्कृति आदि के आदान-प्रदान की दृष्टि से एक दूसरे के अत्यधिक निकट आ गये हैं। वैश्विक व्यापार एवं सूचनाओं के आदान-प्रदान की बढ़ती सरलता ने विश्व को एक ही छत के नीचे ला खड़ा किया है। तेजी से हो रहे इसी परिवर्तन का परिणाम वैश्वीकरण है। वैश्वीकरण दिन-प्रतिदिन जितना बढ़ता जा रहा है उतनी ही गति से आज विश्व की एक भाषा की जरूरत महसूस की जा रही है। विश्व भाषा के रूप में सरल सक्षम एवं उपयुक्त भाषा की कल्पना की जा रही है। विश्व भाषा किसे कहा जाये? विश्व भाषा बनने योग्य कौन-सी भाषा है? इन प्रश्नों के उत्तर यदि, खोजने का प्रयास किया जाये तो हम पायेंगे कि जो भाषा संयुक्त राष्ट्र में मान्य है वह विश्व भाषा है। इस दृष्टि से अंग्रेजी, रशियन, फ्रेंच, चीनी, अरबी आदि भाषाएँ जिन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मान्यता प्राप्त है, विश्व भाषा की श्रेणी में आती हैं। लेकिन क्या ये भाषाएँ विश्वभाषा बनने योग्य हैं? उन भाषाओं को संयुक्त राष्ट्र की भाषा बनाने के आधार क्या थे? यदि इन प्रश्नों पर विचार किया जाये तो हम पाएँगे कि इनमें से किसी भी भाषा की लिपि विश्वभाषा की लिपि बनने योग्य नहीं है। जब संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई तो द्वितीय विश्व युद्ध में विजयी राष्ट्र की भाषाओं को संयुक्त राष्ट्र की भाषा का दर्जा दे दिया गया। बाद में जो राष्ट्र द्वितीय विश्व युद्ध में अमेरिका के साथ थे तथा बीस-बाईस अरब देश जिनके पास धन की ताकत थी उन देशों की भाषाओं को भी संयुक्त राष्ट्र की भाषा के रूप में मान्यता मिल गई। लेकिन संयुक्त राष्ट्र की भाषा बनाने के ये मापदण्ड, ये आधार क्या न्याय संगत एवं उचित हैं? जबकि जर्मन लैटिन और जापानी आदि भाषाएँ जो कभी विश्वभाषा थीं अथवा जिनमें विश्वभाषा बनने की संभावना थी ये भाषाएँ पराजित भाषाएँ होने का कारण संयुक्त राष्ट्र में मान्य नहीं हुई।

आज भारत विश्व की तमाम बड़ी-बड़ी कंपनियों में निर्मित माल के विक्रय का सबसे बड़ा बाजार है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए अपने उत्पादों की खपत का सबसे उत्तम स्थान है। ये सभी कंपनियाँ अपनी-अपनी भाषाओं में अपने उत्पाद का प्रचार करके तो अपना माल भारत में नहीं बेंच सकती। न ही नौकर शाही तथा चंद लोगों द्वारा जाने वाली अंग्रेजी भाषा में व्यवहार तथा प्रचार करके बहुराष्ट्रीय कंपनियों के उत्पाद भारत में बेचे जा सकते हैं। जाहिर है हिन्दी ही वह भाषा है जिसको अपने प्रचार-प्रसार का माध्यम बनाकर ये कंपनियाँ अपना माल विक्रय कर सकती हैं। यही कार्य ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी किया था। ईसाई मिशनरियों ने भी अपने मत के प्रचार के लिए हिन्दी भाषा को ही अपनाया।

इसके अतिरिक्त हिन्दी भारत के बाहर अस्मिता की प्रतीक के रूप में, भारत की वैविध्यपूर्ण संस्कृति के रूप में मान्य हो रही है। विदेशियों के भारत प्रेम के कारण और भारतवासियों तथा प्रवासी भारतीयों की विश्व के लगभग सभी देशों में उपस्थिति के कारण हिन्दी लोकप्रिय भाषा बन चुकी है। वैश्वीकरण के दौर में विश्वभाषा के रूप में हिन्दी की अनेक विशिष्ट भूमिकाएँ हो सकती हैं। अतः विश्वभाषा के रूप में हिन्दी ही

प्रबल दावेदार हैं।

भाषा तथा विश्व में हिन्दी की वर्तमान स्थिति एवं संभावनाएँ— संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के समय हिन्दी पराजित गुलाम राष्ट्र की भाषा थी। अतः उस समय संयुक्त राष्ट्र में हिन्दी को मान्यता कैसे मिलती? लेकिन आज हिन्दी में विश्वभाषा बनने की पूरी अर्हता भी है तथा संभावनाएँ भी हैं। कुछ समय पहले सूरीनाम में हुए विश्व हिन्दी सम्मेलन में इसे विश्वभाषा बनाने का प्रस्ताव भी पारित किया गया था। किन्तु यहाँ प्रश्न यह भी है कि जो भाषा अपने ही देश में अमान्य हैं, जिस देश का अधिकांश राजकाज अंग्रेजी भाषा में होता है जो विदेशी तथा गुलामी का प्रतीक है, उस देश की भाषा हिन्दी को सारे विश्व में मान्यता कैसे मिल सकती है। ऐसी स्थिति में इससे बड़ा ढोंग और क्या होगा कि भारत में तो अंग्रेजी चलती रहे और संयुक्त राष्ट्र की भाषा 'हिन्दी' बनाने की वकालत की जाए।

आजादी के सरसठ वर्ष बाद भी भारत में कोई भी कानून मूलतः हिन्दी में नहीं बना। आज तक उत्तम एवं सर्वोच्च न्यायालय का कोई भी फैसला हिन्दी में नहीं हुआ बावजूद इसके यदि हिन्दी संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रतिष्ठित हो जाती है तो उसकी शक्ति और प्रभाव के कई नए आयाम खुल जाएंगे। एक लाभ तो यह होगा कि जो लोग संयुक्त राष्ट्र में हिन्दी में काम करेंगे उन्हें मजबूरन हिन्दी बोलनी पड़ेगी अन्यथा वे उपहास के पात्र बनेंगे।

भारतीय नौकरशाही को भी हिन्दी में काम करने के लिए विवश होना पड़ेगा। भारतीय प्रधानमंत्री व अन्य नेताओं को अपना मूल भाषण हिन्दी में लिखने का साहस होएगा। विश्व में बसे भारतीयों, भारतीय मूल के लोगों और हिन्दी प्रेमियों को हिन्दी भाषा के प्रति गर्व का अनुभव होगा।

विश्व भाषा के रूप में हिन्दी की विशेषताएँ —

क—विश्व भाषाओं में सबसे अधिक सरल तथा वैज्ञानिक लिपि—हिन्दी भाषा की लिपि देवनागरी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह विश्व की सब भाषाओं की लिपियों से अधिक सरल तथा वैज्ञानिक है, यह विश्व की किसी भी भाषा की ध्वनियों, शब्दों का उच्चारण करने में समर्थ है। इसमें जैसा बोला जाता है वैसा ही लिखा जाता है। दुनिया की अनेक भाषाओं की अपनी कोई लिपि नहीं थी। विवश होकर उन्होंने बड़ी विचित्र लिपियाँ स्वीकार की। मंगोल भाषा को रूसी लिपि स्वीकार करनी पड़ी तथा तुर्की को रोमन लिपि। और वह भी इस तरीके से स्वीकार करनी पड़ी, जो रोमन पढ़ने और लिखने के मानक तरीकों से भिन्न है। यदि हिन्दी विश्वभाषा के स्तर पर पहुँच जाती है तो दुनियाँ के कम से कम 50 देश ऐसे हैं, जो रोमन, रूसी, अथवा चीन और जापान में चलती वाली द्विचित्रलिपि की बजाय देवनागरी लिपि स्वीकार करेंगे। यदि दुनिया की 50 भाषाएँ देवनागरी को स्वीकार कर ले तो संस्कृत और हिन्दी के सैकड़ों शब्द अन्य विदेशी भाषाओं में हमें ज्यों के त्यों पढ़ने को मिल जाएंगे। लिपि की समानता हिन्दी की विश्वभाषा के दर्जे के निकट तो ले जाएगी, वह विश्व संस्कृति की अनेक मूलभूत समानताओं को भी रेखांकित करेगी। इसका एक और लाभ यह होगा कि भारत की समस्त भाषाएँ जिनका अनुभव संसार एक जैसा है, और जिनमें सदियों से खुला आदान-प्रदान चला आ रहा है, उनकी एकता भी सुदृढ़ होगी। नेपाली, संस्कृत, मराठी, प्राकृत, पाली आदि भाषाओं की लिपि भी देवनागरी ही है। इसके अलावा सभी भारतीयों की लिपियाँ भले ही अलग-अलग दिखायी पड़ती हैं, लेकिन osHKh मूलतः देवनागरी ही हैं। इस प्रकार हिन्दी का संसार बहुत विस्तृत है।

ख—हिन्दी की विशाल शब्द संपदा : हिन्दी की शब्द संपदा अपार है अंग्रेजी के एक-एक शब्द के लिए हिन्दी में पचास-पचास पर्याय हैं। पर्याय ऐसे ही नहीं निकलते। करोड़ों-अरबों लोगों के लम्बे अनुभवों से शब्द निकलते

हैं। हजारों वर्षों की घिसाई के बाद शब्दों में सामर्थ्य और सूक्ष्मता उत्पन्न होती हैं। हिन्दी तथा संस्कृत में शरीर के एक-एक अंग के लिए, हरेक अंग में उपांगों के लिए तथा उपांगों में भी उप-उपांगों के लिए सुनिश्चित शब्द मिलते हैं। इसी प्रकार मानवीय मनोभावों, गहन तर्क-वितर्क और मानवीय संबंधों के सूक्ष्मतम चित्रण में भी हिन्दी पूर्ण सक्षम हैं। हिन्दी में शब्दों की कोई कमी नहीं है। पाणिनि ने दो हजार से अधिक धातुओं का वर्णन किया है। लगभग एक हजार अन्य धातुएँ भी उपलब्ध हैं। एक धातु से कम से कम तीन हजार शब्द बनाए जा सकते हैं, विभक्तियाँ, प्रत्यय, उपसर्ग, वचन, पुरुष इत्यादि लगाकर। संस्कृत हिन्दी की जननी है। संस्कृत का शब्द भंडार करोड़ों तक पहुँचता है और वह हिन्दी को स्वतः ही उपलब्ध है। इस प्रकार हिन्दी की शब्द संपदा असीम है। लेकिन हमारे पास शब्द कोश इसलिए नहीं हैं कि आजादी के बाद एक भी सरकार ऐसी नहीं बनी, जो समाज – निर्माण में भाषा की भूमिका को ठीक से समझती हो।

हिन्दी ने स्वदेशियों और विदेशियों के बीच सदियों से चले आ रहे संसर्ग से उत्पन्न शब्दों को अपनी भाषा का अभिन्न अंग बनाया है। विदेशी भाषा का दाना भारत की चक्की में पिसकर हिन्दी के आटे में घुल-मिल जाता है।

इसके अलावा दक्षिण एशिया के सवा अरब लोगों की दर्जनों भाषाओं और सैकड़ों बोलियों के शब्दों और मुहावरों को भी हिन्दी आत्मसात करती जा रही है। हिन्दी में अन्य भाषाओं के शब्दों और मुहावरों को भी हिन्दी आत्मसात करती जा रही है। हिन्दी में अन्य भाषाओं के शब्दों और मुहावरों को पचाने की अद्भुत क्षमता है।

ग-विश्व में हिन्दी भाषियों की विशाल आबादी – यदि सही अर्थों में हिन्दी भाषा बोलने और समझने वालों की आबादी का आकलन किया जाए तो निश्चित रूप से हिन्दी भाषा बोलने समझने वालों की संख्या विश्व में सर्वाधिक होगी। वर्तमान स्थिति यह है कि हिन्दी बोलने वालों की संख्या चीनी भाषा बोलने वालों से भी अधिक है। यह कागज की लेखी नहीं आँखिन की देखी है। विश्व जनसंख्या को स्रोत – ग्रन्थ कहते हैं कि चीनी भाषियों की संख्या लगभग 80 करोड़ हैं। लेकिन चीन जाकर इस दावे को परखा जाए तो पता चलेगा कि चीन की राजभाषा जिसे 'मंडारिन' कहते हैं सभी चीनी लोग नहीं बोलते। जो भाषा पेइचिंग में बोली जाती है वह शंघाई में नहीं बोली जाती और जो केटन में बोली जाती है वह नानचिंग में नहीं बोली जाती। लेकिन जो हिन्दी कश्मीर में बोली जाती है वही कन्याकुमारी में भी बोली जाती है। जो हिन्दी फिजी में बोली जाती है, वही मॉरिशस और सूरीनाम में भी बोली जाती है। दक्षिण एशिया के लगभग सभी देशों में ज्यादातर लोग हिन्दी समझते हैं। जो भाषा दुनियाँ के एक छोर से दूसरे छोर तक लगभग सभी देशों में मातृभाषा की तरह बोली जाती है और जिसके समझने वालों की कुल संख्या एक अरब से भी ज्यादा है, उसके मुकाबले अंग्रेजी को खड़ाकर दिया जाता है जो साढ़े चार देशों की भाषा है और सारी दुनियाँ में जिसे अपनी मातृभाषा कहने वाले लोगों की संख्या 35 करोड़ भी नहीं है। फिर भी अंग्रेजी विश्वभाषा केवल इसलिए बनी हुई है क्योंकि वह महाप्रभुओं की भाषा है, महाशक्तियों की भाषा है। पूर्व गुलाम देशों के सत्ताधारियों की भाषा है। जिस दिन हिन्दी इस भाषाई गुलामी से मुक्त हो जायेगी, उस दिन इसे विश्वभाषा बनने से कोई भी नहीं रोक सकता। हिन्दी बोलने और समझने वालों की संख्या वैश्वीकरण के चलते लगातार बढ़ रही है।

घ- वैश्विक साहित्य और मीडिया में बढ़ता हिन्दी का प्रयोग – आज विश्व के अनेक देशों में जहाँ भारत वंशी और भारतीय मूल के लोग रहते हैं, हिन्दी समाचार पत्र पत्रिकाओं का प्रयोग बढ़ रहा है। फिजी, मॉरिशस, सूरीनाम आदि कई देशों में या तो हिन्दी समाचार पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होते हैं या अन्य देशों में भारत से मंगाए जाते हैं।

इंटरनेट पर भी हिन्दी पत्र पत्रिकाओं का प्रकाशन एवं प्रसारण होता है जिन्हें विश्व में बसे भारतीय तथा हिन्दी

प्रेमी पढ़ते हैं। अनेक देशों में भारतीय मूल के लेखकों द्वारा हिन्दी भाषा में कहानी, नाटक, उपन्यास, निबंध, यात्रा वृत्तांत आदि विधाओं में लगातार उत्कृष्ट लेखन किया जा रहा है। इस समय भारत में हिन्दी के अखबार अंग्रेजी के अखबारों के मुकाबले कई गुना बिक रहे हैं।

हमारे देश में हिन्दी की पुस्तकें सारी भाषाओं की पुस्तकों से अधिक छपती हैं। जितनी देशी और विदेशी भाषाओं की किताबों का हिन्दी में अनुवाद होता है किसी अन्य भारतीय भाषा में नहीं होता। हिन्दी भाषा की फिल्में ल्हासा से अलमाती और रंगून से तेहरान तक देखी जाती हैं।

हिन्दी भाषा बोलने वाले और समझने वाले लगभग एक अरब से भी ज्यादा लोग विश्व में फैले हुए हैं जो हिन्दी मीडिया से भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए हैं। दुनिया के अस्सी देशों के विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जाती है। भारत तथा विदेशों के अनेक हिन्दी समाचार – टी0 वी0 चैनलों के पत्रकार एवं संवाददाता विश्व में फैले हुए हैं जो विश्व की तमाम खबरों को हिन्दी में संपादित कर लोगों तक पहुँचाते हैं। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और प्रिंट मीडिया दोनों ही माध्यमों में पिछले वर्षों में लगातार हिन्दी के प्रयोग में वृद्धि हुई है। इस प्रकार वैश्विक साहित्य और मीडिया में हिन्दी का रथ तेज गति से आगे बढ़ रहा है। इसे कोई रोक नहीं सकता।

वैश्वीकरण और हिन्दी – वैश्वीकरण के साथ-साथ निरन्तर हिन्दी तेजी से आगे बढ़ी है। जैसे-जैसे वैश्वीकरण बढ़ेगा हिन्दी भी बढ़ेगी। यदि किसी फ्रांसीसी, जर्मन अथवा मेलिशिया निवासी को भारत में अपना माल बेचना है तो वह फ्रांसीसी, जर्मन, जापानी या अन्य भाषा हम पर नहीं लादेगा। जिस भाषा में उसका माल बिकेगा, उसी भाषा में हमारे साथ बोलेगा। यही हो रहा है। आज सैकड़ों बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारत में अपना माल हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रचार करके ही बेच रही हैं।

वैश्वीकरण के दौर में विवश होकर विदेशी कंपनियों को आज हिन्दी तथा अन्य भाषाओं का सहारा लेना ही पड़ रहा है। बिल गेट्स को क्या पड़ी है कि वह अपने साफ्टवेयर भारतीय भाषाओं में बना रहे हैं। रूपर्ट और मर्डोक ने अपना चैनल आखिर हिन्दी में क्यों चलाया। मोबाइल फोन वाली विदेशी कंपनियाँ अब मोबाइल फोनों में भारतीय भाषाएँ क्यों डाल रही हैं। अमेरिका सरकार हिन्दी को सीखने-सिखाने पर आखिर बीस करोड़ डालर क्यों खर्च कर रही है।

जैसे-जैसे वैश्वीकरण और ग्लोबल मार्केट बढ़ रहा है। लगातार हिन्दी भाषा के चैनल तथा हिन्दी भाषा का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। आज भारत के अनेक छोटे बड़े शहरों में व्यापारी नाम पट भले ही अंग्रेजी भाषा में अपनी दुकानों पर लगा लें, लेकिन अपने ग्राहकों से बात हिन्दी में ही करते हैं। वैश्वीकरण का सबसे अधिक प्रभाव व्यापार पर पड़ा है। और व्यापारी चाहे स्थानीय हो या वैश्विक उसे केवल मुनाफे से मतलब है। इसके लिए चाहे कोई भी भाषा अपनायी पड़े वह अपनाएगा। यही कारण है कि आज हिन्दी बिना किसी सरकारी सहायता या प्रयास के चलते अपनी विशाल आबादी व अपने दमखम के बल पर आगे बढ़ रही है।

निष्कर्ष – भूमंडलीकरण के नये दौर में हिन्दी की कुछ विशिष्ट भूमिकाओं पर गौर करना जरूरी है। पहला यह कि प्रौद्योगिकी की वैकल्पिक भाषा के रूप में इसे जन-जन तक पहुँचाना है। इस दिशा में विभिन्न संस्थाओं ने काफी प्रशंसनीय कार्य किए हैं फिर भी हिन्दी को प्रौद्योगिकी की भाषा बनाने के लिए अभी विश्व व्यापी प्रयास जरूरी हैं। विश्व भर में फैले हुए भारतीय वैज्ञानिकों और प्रौद्योगिकी विदों का ध्यान इस ओर जाना आवश्यक है।

हिन्दी साहित्य को भारतीय साहित्य तथा विश्व साहित्य से जोड़ते हुए अनुवाद और कलनात्मक अध्ययन

और अनुसंधान को महत्व देना होगा। इसके लिए अनुवाद प्रौद्योगिकी और भाषा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हिन्दी में क्रान्तिकारी कदम उठाने पड़ेंगे। हिन्दी शिक्षण की प्रणालियों को मल्टीमीडिया के सहारे विश्वस्तरीय बनाने की सख्त जरूरत है। आशा है प्रौद्योगिकी की भाषा के रूप में हिन्दी को विकसित करने और भारतीय संस्कृति को हिन्दी के माध्यम से विश्व व्यापी बनाने की दिशा में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग का एक नया दौर शुरू होगा।

प्रवासी भारतीयों ने अपने बुद्धि बल से बात विश्व के सामने स्पष्ट कर दी है कि यदि भारतीयों को सही अवसर मिल जाए तो वे पत्थर में भी फूल खिला सकते हैं। भारत का बाजार दुनिया का सबसे बड़ा अन्तर्राष्ट्रीय बाजार बनने जा रहा है। यदि हम अपने दैनंदिन जीवन में हिन्दी का प्रयोग बढ़ाते जाएँ और अपने श्रेष्ठतम कर्म और विचार का वाहन हिन्दी को बनाने का आग्रह रखें तो वह दिन दूर नहीं जब हिन्दी विश्वभाषा के अपने स्वाभाविक पद पर स्वयं प्रतिष्ठित हो जाएगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. 'बहुवचन' अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी त्रैमासिक – अप्रैल-जून – 2007 अंक
2. हिन्दी राष्ट्रभाषा, राजभाषा, जनभाषा – डॉ. शंकर दयाल सिंह
3. 'वीणा' मासिक – सितंबर 2008, सं. राजेन्द्र मिश्र
4. आदर्श हिन्दी निबंध – डॉ. विजय नारायण सिंह
5. समसामयिक निबंध – डॉ. चतुर्वेदी – उपकार प्रकाशन
6. 'नवनीत' – मासिक – सितंबर 2000, सं. विश्वनाथ प्रकाशन



हिन्दी कहानियों व निबंधों में व्यंग्य

डॉ. मीना सिंह

वरिष्ठ प्रवक्ता—हिन्दी

जुहारी देवी गर्ल्स पी.जी. कालेज, कानपुर (उ.प्र.)

हिन्दी कहानी का विकास 1900 के बाद होता है। उससे पूर्व की कुछ छुट-पुट कहानियाँ हैं, किन्तु उनमें कलात्मकता व कथ्यात्मक शैली का अभाव परिलक्षित होता है। कहानी के प्रारम्भिक विकास से ही कहानियों में व्यंग्य की धार दिखाई देती है। बंग महिला की कहानी 'चन्द्रदेव से मेरी बातें' में जातिगत पक्षधरता, बेरोजगारी एवं नारी की स्थिति आदि समस्याओं पर व्यंग्य किया गया है। गिरिराजदत्त बाजपेयी की कहानी 'पंडित और पंडितानी' में तत्कालीन समाज में प्रचलित अव्यवस्थाओं पर व्यंग्य की चोट है। प्रेमचन्द की कहानियों में समाज की अनेक जड़ तथा खोखली मान्यताओं के साथ-साथ व्यवस्था के अत्याचार व अनाचार पर भी व्यंग्य है। 'सवा सेर गेहूँ' में प्रेमचन्द साधुओं के नाम पर जनता को लूटने एवं ढिठले बैठ के आराम से खा-खाकर मोटी तोंद बढ़ाने वाले महात्माओं तथा पूंजीपतियों पर इस प्रकार व्यंग्य करते हैं — 'गले में माला, जटा सिर पर, पीतल का कमंडल हाथ में, खड़ाऊँ पैर में, ऐनक आँखों पर, सम्पूर्ण वेश उन महात्माओं का सा था, जो रईसों के प्रसादों में तपस्या, हवा गाड़ियों पर देवस्थानों की परिक्रमा और योगसिद्धि प्राप्त करने के लिए रुचिकर भोजन करते हैं।' पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' की कहानियों में अंग्रेजी शासन व्यवस्था एवं उसकी चाटुकारिता करने वालों पर व्यंग्य दिखाई देता है। इनके अतिरिक्त सुदर्शन, निराला, यशपाल और अमृतराय आदि की कहानियों में भी राजनीति तथा समाज की विद्रूपताओं पर व्यंग्य किया गया है।

आजादी के बाद हर क्षेत्र में विसंगतियाँ इतनी विषद व विद्रूप हो चुकी थीं कि कहानियों में व्यंग्य के छोटे अब यत्र-तत्र न होकर सर्वत्र नजर आते थे, जिसके कारण उसे कहानी में व्यंग्य के बजाय, व्यंग्य कहानी कहा जाने लगा। कविता एवं उपन्यास की तरह व्यंग्य कहानियाँ भी अपना स्थान व्यंग्य के क्षेत्र में विशिष्ट रखती हैं। आकार की लघुता के कारण व वर्तमान में अनेक मासिक पत्रिकाओं में कथाओं के विस्तार के कारण कहानी पाठक तथा लेखक दोनों का आकर्षण अपनी ओर खींचती हैं। व्यंग्य कहानी कम ही लिखी गई।

हरिशंकर परसाई से हिन्दी व्यंग्य कहानियों की शुरुआत होती है। परसाई जी अपनी छोटी-छोटी कहानियों में व्यंग्य की वह कारगर शक्ति भर देते हैं कि उसकी मार समाज में अन्दर तक होती है। भोलाराम का जीव पेंशन के लिए परेशान एक आम निम्न कर्मचारी की करुण दासता ही नहीं है, वरन् भारतीय समाज के इस वर्ग का एक दस्तावेज है यह कहानी। कार्यालयों की भ्रष्टाचारी पर इससे तीखा व्यंग्य और क्या हो सकता है — 'भोलाराम ने दरखास्तें तो भेजी थीं, पर उन पर वजन नहीं रखा था, इसलिए कहीं उड़ रही हैं। परसाई की 'सदाचार का तावीज', 'एकलव्य ने गुरु को अंगूठा दिखाया', 'प्रेमियों की वापसी', 'हनुमान की रेल यात्रा', गांधी जी का शाल' आदि कहानियों में भी व्यंग्य दिखाई देता है।

समाज में व्याप्त व्यक्ति के व्यवहारिक आचरण की विसंगतियों को व्यंग्यकार अपनी पैनी नजर से खूब भाप लेता है। केशवचन्द्र वर्मा की कहानियाँ समाज में व्याप्त इसी असंगत व्यवहारिकता पर व्यंग्य करती हैं। इनकी प्रमुख व्यंग्य कहानियाँ हैं — 'वृहन्नला का वक्तव्य', 'एक असली और छह नकली कहानियाँ', 'एक रिटायर्ड शेर और लालची विप्र की कथा', 'धांधलेश्वर की क्रांति', 'करने वाला हो तो', 'जिस्म वाली एक लड़की की कहानी' आदि।

डॉ. शेरजंग गर्ग केशवचन्द्र वर्मा की कहानियों के लिए कहते हैं— केशव जी का व्यंग्यकार हर विधा में प्रत्येक प्रकार की विसंगति को कुरेदने के प्रति प्रयत्नशील रहा है। यही कारण है कि व्यंग्यकार की यह पीड़ा भी कि समग्र

विसंगतियों को ईमानदार ढंग से व्यक्त करने के बाद भी यदि समाज में किसी प्रकार कास बदलाव नहीं आ पा रहा है तो फिर भविष्य में व्यंग्य लेखन से क्या लाभ होगा। केशवचन्द्र वर्मा अपनी कहानियों में लगातार समाज की अनेक कुरीतियों तथा विसंगतियों पर व्यंग्य बाण चलाते हैं, फिर वह शिक्षा, प्रेम, विवाह, अंधपरम्परा, धर्म का आडंबर, राजनीतिक भ्रष्टता और समाज, परिवार के ढकोसले आदि कुछ भी हों। किन्तु आजादी के इतने वर्षों बाद भी एवं इन विसंगतियों पर खूब व्यंग्य लिखने के बाद भी जब परिवर्तन या सुधार के नाम पर कुछ हासिल नहीं होता है तो वे दुखी होते हैं तो वे दुखी होते हैं और यह दुख सच्चे व्यंग्यकार व सच्चे व्यक्ति का दुख है।

शरद जोशी ने भी अपने लेखन के प्रारम्भिक दौर में अनेक व्यंग्य कहानियां लिखीं। शरद जोशी की कहानियों में राजनीति, समाज एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में घर गई अव्यवस्थाओं तथा समस्याओं पर व्यंग्य हैं 'शेर की गुफा' में न्याय कहानी के माध्यम से वे अपात्काल के डिकटेटरी शासन पर तंज करते हैं— इमजेंसी के दौर में जो पशु न्याय की तलाश में शेर की गुफा में घुसा, उसका अन्तिम फैसला कितनी शीघ्रता से हुआ, इसे सब जानते हैं।

शरद जोशी की अन्य प्रमुख व्यंग्य कहानियां हैं— जीवन की इच्छा, द्रौपदी की साड़ी, उल्लू है वे बिल्ली से सबक, दो भाई दो जूतों की कहानी, पुजारी व तरखामा और सिरागी आदि।

इनके अलावा भी आधुनिक काल में अनेक कहानीकार हैं जिनकी कहानियों में व्यंग्य लक्षित होता है। किन्तु पृथक से व्यंग्य कहानियां रचनाकार नहीं के बराबर लिख रहे हैं। कुछ प्रमुख व्यंग्य कहानीकार निम्न हैं। जी.पी. श्रीवास्तव, रविन्द्रनाथ त्यागी, लतीफ घोंघी, श्रीलाल शुक्ल, संतोष नारायण नौटियाल, सत्यप्रकाश सेंगर, सूर्यबाला और विष्णु नागर आदि।

हिन्दी निबंधों में व्यंग्य

निबंध एक सशक्त विधा है निबंध एक स्वतंत्र एवं सशक्त विधा इसलिए है क्योंकि इसमें भावों व विचारों को एक सूत्र में बांधने की शक्ति होती है। निबंधों में व्यंग्य का प्रादुर्भाव भारतेन्दु हरिश्चन्द्र व उनके सामयिक रचनाकारों से ही माना जाता है। भारतेन्दु के समय में निकलने वाली पत्र-पत्रिकाओं जैसे—हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, (संपादक— भारतेन्दु हरिश्चन्द्र) हिन्दी प्रदीप, (संपादक—बालकृष्ण भट्ट) ब्राह्मण (संपादक—प्रतापनारायण मिश्र), आनंद कादम्बिनी (संपादक— बदरीनारायण चौधरी प्रेमधन) आदि में संपादकों ने एवं अन्य रचनाकारों ने अपने निबंधों में उस समय की ब्रिटिश हुकूमत के शोषण के विरुद्ध व सामाजिक, धार्मिक अव्यवस्थाओं के विपक्ष में खूब व्यंग्य किया। भारतेन्दु जी सबै जात गोपाल की निबंध में धर्म एवं जाति के भेदभाव पर इस तरह से व्यंग्य करते हैं — “क्यों इसमें दोष क्या हुआ? सबै जात गोपाल की” और फिर यह तो हिंदुओं का शास्त्र पनसारी की दुकान हैं और अक्षर कल्पवृक्ष हैं। इसमें तो सब जात की उत्तमता निकल सकती है, पर दक्षिणा आपको बाएं हाथ से रख देनी पड़ेगी। भारतेन्दु जी ने अनेक ऐसे निबंध लिखे जिनमें विसंगतियों पर व्यंग्य किया, इनमें तो सब जात की उत्तमता निकल सकती है

जिनमें विसंगतियों पर व्यंग्य किया, इनमें प्रमुख हैं— लेवी प्राण लेवी, अंग्रेज स्रोत, पांचवे पैगंबर स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन आदि। इनके अलावा बालमुकुन्द गुप्त ने शिवशम्भू केस चिट्ठा नामक जो निबंध लिखे वे लार्ड कर्जन को संबोधित करते हुए लिखे। इन निबंधों में उस समय की राजनीति पर तीक्ष्ण व्यंग्य किया गया है। राधाचरण गोस्वामी भी उस समय के प्रमुख व्यंग्य निबंधकार हैं। इनके निबंधों में समाज में व्याप्त धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों तथा रूढ़ियों पर व्यंग्य दिखाई देता है। यमपुर की यात्रा में वें लिखते हैं—“यदि गौ की पूंछ पकड़कर पार उतर जाते हैं तो क्या क्या बैल से नहीं उतर सकते? जब बैल से उतर सकते हैं। तो कुत्ते ने क्या चोरी की है?” पण्डित बालकृष्ण भट्ट भी उस समय के व्यंग्य निबंधों के लिए जाने जाते हैं। व्यंग्य की भाषा कैसे चटकीली तथा पैनी होती है तथा वह किस तरह से ढंग व आवरण का भंडाफोड़ करती है यह भट्ट जी के निबंधों में देखने को मिलता है। कल्पना की शक्ति निबंध में वे लिखते हैं।— अनुमान करते-करते हैरान मुनि

गौतम हो गए। कणाद किनका खा –खा कर तिनका बीनने लगे पर मन की मनभावनी कन्या, कल्पना ही कल्पना, मिथ्या नाशवान और क्षणभंगुर है, अतएव हेय है।” इनके अलावा बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन और प्रतापनारायण मिश्र आदि के निबंधों में भी व्यंग्य का प्रभाव लक्षित होता है।

हिन्दी निबंधों के विकास में महावीर प्रसाद द्विवेदी का बहुत योगदान है। सरस्वती पत्रिका के माध्यम से उन्होंने ऐसी अलख जगाई कि हिन्दी भाषा, व्याकरण एवं साहित्य में शुद्धता का असर व्यापक रूप से निबन्धकारों पर पड़ा। हाँलाकि इस युग में ज्यादातर निबंध विचार प्रधान ही रहे, व्यंग्य का समावेश कम ही दिखाई देता है। इस युग के प्रमुख निबंधकारों में स्वयं महावीर प्रसाद द्विवेदी, गोविन्द नारायण मिश्र, अध्यापक पूर्णसिंह, पदम सिंह शर्मा, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी आदि हैं। इनमें से अध्यापक पूर्णसिंह व चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के निबंधों में व्यंग्य की अभिव्यक्ति नजर आती है। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ‘मारेसि मोहि कुठांव’ में कहते हैं—“हम अपने आपको ‘आर्य’ नहीं कहते ‘हिन्दू’ कहते हैं, जैये परशुराम के भय से क्षत्रिय कुमार माता के लहँगों में छिपाए जाते थे वैसे विदेशी शब्द हिन्दू की शरण लेनी पड़ती है और आर्यसमाज पुकार-पुकारकर जले पर नमक छिड़कता है कि हैं! क्या करते हो? हिन्दू माने काला, चोर, काफिर!! अरे! कहीं बसने भी दोगे? हमारी मंडलियां भले ‘सभा’ कहलावें, समाज नहीं कहला सकती?”⁸ इनके अन्य प्रमुख निबंध हैं—‘गोबर गणेश संहिता’, ‘कछुआ धर्म’ आदि। अध्यापक पूर्णसिंह के निबंधों में भी विसंगतियों पर खूब व्यंग्य दिखाई देता है। इनके प्रमुख निबंध हैं— ‘आचरण की सभ्यता’, ‘मजदूरी और प्रेम’, और ‘सच्ची वीरता’ आदि। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य एवं निबंधों में पदार्पण हिन्दी साहित्य के लिए बहुत विशिष्ट बात है। शुक्ल जी के समय के लिखे निबंधों में व्यंग्य की छटा देखी जा सकती है। शुक्ल जी ने अपने निबंधों में अनेक विकृतियों पर व्यंग्योक्ति की है। चिन्तामणि के निबंध—‘श्रद्धा-भक्ति’, ‘लज्जा और ग्लानि’ आदि में व्यंग्य परिलक्षित होता है। लोभी व्यक्तियों पर शुक्ल जी इस प्रकार व्यंग्य करते हैं—“मोटे आदमियों तुम जरा से दुबले हो जाते अपने अंदेश से ही सही, तो न जाने कितनी ठठरियों पर मांस चढ़ जाता।”⁹ आचार्य शुक्ल के अतिरिक्त इस युग के अन्य निबंधकारों में बाबू गुलाब राय, वियोगी हरि, शिवपूजन सहाय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, वासुदेव शरण अग्रवाल आदि प्रमुख हैं। किन्तु इन निबंधकारों में अन्योक्ति के बजाय समासोक्ति के ही लक्षण अधिक नजर आते हैं। इनमें से पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के ‘कुछ’, ‘पंचपात्र’, ‘रामलाल पंडित’, ‘श्रद्धाजलि के दो फूल’ आदि निबंधों में व्यंग्य का समावेश दिखाई देता है। शिवपूजन सहाय के निबंधों में भी व्यंग्य परिलक्षित होता है।

शुक्ल जी के बाद हिन्दी में निबंध लेखन का विविधमुखी विकास हुआ। विषयों की व्यापकता आई, शैली एवं भाषा में नवीनता व तीखापन आया। इस युग के प्रमुख निबंधकार हैं— आचार्य हजारी द्विवेदी, नन्द दुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी, प्रभाकर माचवे, विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय और रामविलास शर्मा आदि। इनमें कुबेरनाथ राय व विद्यानिवास मिश्र आदि के निबंधों में व्यंग्य की छटा दिखाई देती है। कुबेरनाथ राय ‘बहुरूपी’ निबंध में शासन व्यवस्था पर इस तरह से व्यंग्य करते हैं—“यह सही है कि भ्रष्टाचार और मंहगाई, दोनों के बीज अंगरेज बोकर गये। परन्तु इनकी प्राथमिक अवस्था में ही राष्ट्रीय शासन की स्थापना हुई। पर ये घटने के बजाय बढ़े। काले कुत्तों न सफेद कुत्तों को भी मात कर दिया।”¹⁰ इनके अन्य प्रमुख संकलन हैं— ‘महाकवि की तर्जनी’, ‘त्रेता का वृहत साम’, ‘रस आखेटक’ आदि। विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में भाषा, धर्म, राजनीति एवं व्यक्ति की दोहरी व दिखावटी चालों पर व्यंग्य दिखाई देता है। उदाहरण के लिए, अंग्रेजी मानसिकता वालों पर व्यंग्य करते हुए मिश्र जी कहते हैं—“कौन जाने लड़का काना पैदा हो तो ऐसे लोग निदान करें कि अंग्रेजी की उपेक्षा करने पर लड़के काने ही पैदा होंगे। अंग्रेजी हिन्दूस्तान की आँख जो ठहरी।”¹¹ मिश्र जी के अन्य निबंध हैं— ‘तुम चन्दन हम पानी’, ‘मैंने सिल पहुँचाई’, ‘बंसत आ गया पर कोई उत्कण्डा नहीं’ आदि। स्वतंत्रता के बाद निबंधों में व्यंग्य की बहुत व्याप्ति हुई। कुछ रचनाकार तो मात्र व्यंग्य निबंध ही लिखने लगे। अर्थात् उनके निबंधों में व्यंग्य शैली का

प्रभाव इतना अधिक दिखाई देता है कि उनके निबंधों को व्यंग्य निबंध कहा गया। हिन्दी व्यंग्य निबंध लिखने वालों की एक लम्बी फेहरिस्त है। किन्तु उनमें से प्रमुख हैं—हरिशंकर परसाई। जिन्हें मुख्य रूप से व्यंग्य निबंधों का सच्चा मसीहा कहा जा सकता है। व्यंग्य को अपने निबंधों के माध्यम से परसाई जी ने ही एक पृथक पहचान दिलाई। परसाई जी समाज एवं राजनीति में व्याप्त विसंगतियों पर खूब जम के प्रहार करते हैं। 'पंगडण्डियों का जमाना' में व्यवस्था में आई दलाली, रिश्वत तथा चाटुकारिता को व्यंजित करते हुए कहते हैं—'सफलता के महल का सामने का आम दरवाजा बंद हो गया है। कई लोग भीतर घुस गये हैं और उन्होंने कुण्डी लगा दी है। जिसे उसमें घुसना है, वह रूमाल नाक पर रखकर नाबदान में से घुस जाता है। आसपास सुगंधित रूमालों की दुकानें लगी हैं। लोग रूमाल खरीदकर उसे नाक पर रखकर नाबदान में से घुस रहे हैं।' ¹² परसाई जी के प्रमुख निबंध संग्रह हैं—'हंसते हैं रोते हैं', 'विकलांग श्रद्धा का दौर', 'काग भौगड़ा', 'टिटुरता हुआ गणतंत्र', और 'सदाचार का तावीज' आदि। शरद जोशी ने भी अनेक व्यंग्य निबंध संग्रह लिखे। शरद जोशी ने समाज में व्याप्त प्रत्येक क्षेत्र की विसंगति पर व्यंग्य किया। वोट एक इंजेक्शन है जो पाँच साल में एक बार लगता है, बीमारी ज्यादा बढ़ जाने से इस बार चार साल में ही लग रहा है। ¹³ इनके प्रमुख निबंध संग्रह हैं—'हम भ्रष्टन के भ्रष्ट हमारे', 'यथासंभव', 'तिलस्म', 'दूसरी सतह', 'जीप पर सवार इल्लियाँ' और 'पिछले दिनों' आदि। इनके अलावा रविन्द्र नाथ त्यागी ने 'खुली धूप में नांव', 'भित्ति चित्र', 'मल्लिनाथ की परम्परा', 'कृष्ण वाहन की कथा', और 'शोक सभा' आदि। लतीफ़ घोषी ने 'उड़ते उल्लू के पंख', 'मृतक से क्षमा याचना सहित', 'किस्सा दाढ़ी का', 'जूते का दर्द', 'मुर्दानामा' और 'मेरी मौत के बाद' आदि निबंधों में समाज के सभी क्षेत्रों में मौजूद विसंगतियों पर व्यंग्य किया है। इनके अलावा प्रमुख व्यंग्य निबंध रचनाकार हैं— सुदर्शन मजीठिया, नरेन्द्र कोहली, बरसाने लाल चतुर्वेदी, बालेन्दु शेखर तिवारी, शंकर पुणतांबेकर, के. पी. सक्सेना, गोपाल चतुर्वेदी, मधुसूदन पाटिल, प्रेम जनमजेय, अजातशत्रु, गोविन्द व्यास, प्रदीप पंत और गोविन्द चतुर्वेदी आदि। हिन्दी में ज्यादातर व्यंग्य, निबंध विधा में ही लिखा गया है। क्योंकि व्यंग्य को लम्बे समय तक साधना एवं किसी ढाँचे में बांधना सरल नहीं है। अतः निबंध लघु तथा एक स्वतंत्र विधा है जो व्यंग्य के लिए बहुत ही सटीक है। व्यंग्य निबंध के बारे में डॉ. शेरजंग कहते हैं—'व्यंग्य निबंध को व्यंग्य की रम्य रचना की संज्ञा दी जा सकती है। यह निबंध यद्यपि किसी एक विषय से पूर्णतः बंधा होता है, मगर इस बंधन में स्वच्छन्दता का उपयोग करता हुआ व्यंग्यकार उसे मनचाहे बंधन में ही बांधता है। यही कारण है कि इसका विकास उत्फुल्लता के साथ ही विसंगतियों को वर्णित भी करता है।' ¹⁴ हिन्दी निबंधों में व्यंग्य के विषयों में जितनी व्यापकता है उतनी अन्य विधाओं में नहीं। जन्म से लेकर मृत्यु शोक सभा, स्वर्ग, नरक की यात्रा एवं उसके बाद के घटना कर्म तक पर व्यंग्य निबंध लिखे गये हैं। वर्तमान में प्रत्येक साहित्यिक व अन्य पत्र पत्रिकाओं में भी व्यंग्य खूब लिखा जा रहा है। यह चाहे अखबारी कॉलम हो या पत्रिकाओं का स्थाई स्तंभ या लेख, मगर उसका ढाँचा निबंध के अन्तर्गत ही रखा जाता है। इसके साथ-साथ समसामयिक घटनाओं के चरित्रों को लेकर भी व्यंग्य निबंधों का आविर्भाव हो रहा है।

संदर्भ संकेत :

1. प्रेमचन्द. 'मानसरोवर चार', प्रकाशन भारत पुस्तक भंडार, फेस ई-1/265, ए गली नं.-16, सोनिया विहार, दिल्ली-110094-2011, पृ.-149
2. हरिशंकर परसाई, 'सदाचार का तावीज', प्रकाशन ज्ञानपीठ, 18-इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110003, चौदहवां संस्करण-2012, पृ.-66
3. डॉ.शेरजंग गर्ग, 'व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न', आलेख प्रकाशन, वी-8, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032, तीसरा संस्करण-2004, पृ.-139
4. शरद जोशी, 'घाव करे गंभीर', राजकमल प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, 1-बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली -110002, प्रथम संस्करण- 2012, पृ.-92

5. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, 'निबंधों की दुनिया', सं. डॉ. निर्मला जैन व कुसुम बौठिया, वाणी प्रकाशन, 21-ए. दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण -2012, पृ.-122
6. राधाचरण गोस्वामी, 'निबंधों की दुनिया', सं. डॉ. निर्मला जैन व कुसुम बौठिया, वाणी प्रकाशन, 21-ए. दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण -2008, पृ.-61
7. बालकृष्ण भट्ट, 'निबंधों की दुनिया', सं. डॉ. निर्मला जैन व कुसुम बौठिया, वाणी प्रकाशन, 21-ए. दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-2007, पृ.-55
8. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, 'निबंधों की दुनिया', सं. डॉ. निर्मला जैन व कुसुम बौठिया, वाणी प्रकाशन, 21-ए. दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-2007, पृ.-43
9. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, सं. 'हिन्दी का गद्य साहित्य', विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक, वाराणसी-221001, सप्तम संस्करण-2009, पृ.-86
10. कुबेरनाथ राय, 'प्रिया नीलकण्ठी', भारतीय ज्ञानपीठ, 18-इंस्टीट्यूशन एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110003, तीसरा संस्करण-1998, पृ.-97, 98
11. विद्यानिवास मिश्र, 'आंगन का पंछी और बनजारा मन', वाणी प्रकाशन, 21-ए. दरियागंज, नई दिल्ली -110002, प्रथम संस्करण-2002, पृ.-72
12. हरिशंकर परसाई, 'पंगडडियों का जमाना', राजकमल प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, 1-बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, पहला संस्करण -1997, दूसरी आवृत्ति-2000, पृ.-80
13. शरद जोशी, 'यथासमय', भारतीय ज्ञानपीठ, 18-इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110003, चौथा संस्करण-2011, पृ.-206
14. डॉ. शेरजंग गर्ग, 'व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न', आलेख प्रकाशन, वी-8, नवीन शाहदरा, दिल्ली-10032, तीसरा संस्करण-2004, पृ.-145



महिला उपन्यास और उनकी दुखात्मक अभिव्यक्तियाँ

डॉ. नीतू सिंह

प्रवक्ता – हिन्दी विभाग

कुँवर महेश सिंह जगरूप सिंह स्मारक महाविद्यालय बक्तूखेड़ा, अजगैन, उन्नाव

जीवन सुख-दुख की क्रीड़ा स्थली है। सुख-दुख अतिथि की भाँति हैं जो बिना बुलाये आ जाते हैं और चले जाते हैं। उपन्यास यथार्थ की कटुता वहन करने में सक्षम है। उपन्यासकार पलायन या मुक्ति नहीं बल्कि अपनी पूरी शक्ति के साथ संघर्ष करना चाहता है। यथार्थ का यह अनुभव जीवन में पूरी समग्रता के साथ ग्रहण करके व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करता है। उसे बाँटने के स्थान पर ऐसे नये आयाम देता है। जिसमें नये जीवन मूल्य उद्घटित होते हैं। मानवीय चेतना नये संदर्भों में प्रतिष्ठित होती है, तथा अनुभूतियों को नया परिवेश मिले इसी लिए आज के उपन्यासों में परम्परा का ठहराव नहीं है। वह व्यक्तित्व आचरण एवं अन्तः संघर्षों को व्यापक अनुभूति के धरातल पर प्रतिष्ठित करता है। दुखात्मक सर्वेदना की यथार्थवादी अभिव्यक्ति आज के उपन्यासकारों की विशेषता है।

आज का मानव पारिवारिक जीवन की अनेक प्रकार की समस्याओं से घिरा है। वह मुक्ति की चाह में छटपटा रहा है। किन्तु मुक्ति कहाँ है। चारों ओर समस्याएँ हैं। प्रश्न ही प्रश्न हैं पर समाधान और उत्तर एक भी नहीं। जब दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति कठिन हो जाये पग-पग पर भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी का नाच सुकून की दो रोटी भी कमाना दूभर कर दे तो खुशहाल जिन्दगी जीने के लिए एक छोटे से सपने को दम तोड़ते कितनी देर लगेगी।

नित्य नई जन्म लेती आवश्यकतायें मनुष्य को चैन से बैठने नहीं देती वह उन्हें पूरा करने के लिए जिन्दगी की रफ़्तार से भी तेज भाग रहा है। जो स्पर्धा के इस युग में उसे अन्धेरे गड्ढे में धकेले जा रही है। महिला उपन्यासों ने इस दुखात्मक मनोवृत्ति को गंभीरता से लिया और अध्ययन किया। उन्होंने जो कुछ भी अपनी कलम से लिखा वह यथार्थ के बहुत निकट था। दुखात्मक अभिव्यक्ति की दृष्टि से हिन्दी की महिला उपन्यासकार पूर्ण सफल रही हैं। व्यक्ति का अकेलापन पीड़ा आदि दुखात्मक अभिव्यक्ति का उन्होंने यथार्थ अंकन किया है। उन्होंने तो सर्वेदना को खण्डित किया है और न आदर्श अथवा दूसरी चीजों के आरोपण से उसे अविश्वसनीय बनाना चाहा। निरूपमा सेवती ने “पतझड़ की आवाजें” में लिखा है “स्थितियाँ, माहौल और जिन्दगी से जुड़ी हुई आवश्यकता ही तो गहरी गढ़ती रहती हैं। बेसक इससे दिमागी चेतना में फैलाव जरूर आता है। पर तकलीफ तो सहनी पड़ती है।” अपने उपन्यास “मेरे और मैं” में भी मृदुला गर्ग ने अंतर को आकुल बना देने वाली पीड़ा को व्यक्त किया है। “तमाम रिश्ते, मूल्य, धारणायें, झूठी हैं। हम सब मरे हुये लोग हैं, लाशें जिन्हें कठपुतली वाले ने डोर से बाँध रखा है। और इधर-उधर नचा रहा है। उसके इशारों पर नाचने को जिन्दगी नाम दे भलें ही दे है वह मौत का हिस्सा।”

आज मनुष्य अभावों और संघर्षों के बीच पिस रहा है। खत्म होती जिजीविषा को बड़े प्रयत्न से सम्भालने का प्रयास कर रहा है। आवश्यकताओं के अन्धेरे में वह पूर्ति की किरण को छटपटा रहा है। कब, कहाँ स्वाभिमान दाँव पर लग जाये और लम्पटों की चाटुकारिता करनी पड़े, उसे स्वयं नहीं मालूम। मृदुला गर्ग आम आदमी की इस पीड़ा को, उसके जीवन की भयावह सच्चाई को अत्यन्त यथार्थ के साथ “मेरे और मैं” में व्यक्त करती है—“जिस आदमी के सामने कोई मंजिल न हो, वह जाने से हमेशा कतराता है” राजनीति में बढ़ता हुआ धन का लालच और स्वार्थपूर्ति व्यक्ति को इतना गिरा देती है कि नैतिकता समाप्त हो जाती है। नेता, मन्दिर, अनाथ आश्रम और स्कूल में अपनी सम्पत्ति का छोटा सा भाग दान करके एक और पुण्य और वाहवाही लूटते हैं तो दूसरी ओर आय कर अधिकारियों से बचने की चतुराई दिखाते हैं। ऐसे लोग हम सब के बीच में ही हैं परन्तु इनका विरोध कौन करे?

इनकी पोल कौन खोलें? ऐसे लोग आम आदमी का खून पी रहे हैं। और अच्छे भी बने हैं। इस त्रासदी की अत्यन्त सशक्त अभिव्यक्ति दीप्ति खण्डेलाल ने “प्रतिध्वनियों” में इस प्रकार की है— अपने अंतस में रह रह रहकर कुछ कहने के लिए फड़क उठते होंठों पर चुप की उंगली शख्ती से रख देना मुझे आता था। मेरे अन्तस के होठ मानवीय स्पंदनों के होते थे। किन्तु मेरे चुप की उंगली के ठोस भार के नीचे दबकर मौन हो जाती थी।” उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में भी दुखात्मक मनोवृत्ति और संघर्ष की अत्यन्त मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती हैं। “पचपन खम्भे लाल दिवारें” की सुषमा अपनी सामाजिक, आर्थिक विवशताओं के कारण सहज जीवन नहीं जी पा रही थी। उसके जीवन में नील का आगमन किसी प्रकाश पुंज की भांति होता है। किन्तु उसका आश्रय भी उसे उस अन्धरे से नहीं निकाल पाता। उसके जीवन का यह अन्धरा मानो उसकी नियति बन गया हो। लेखिका ने उसकी पीड़ा का अत्यन्त यथार्थ चित्रण किया — “सुषमा को लगा की जैसे वह शरशरया पर लेटी है बुरी तरह बिंधी हुई, दारुण यंत्रणा से छटपटाती हुई..... दुख के इन क्षणों में वह नितान्त अकेली थी और आँखों की सजलता में उसे नील का बढ़ा हुआ हाथ भी नहीं दिखाई देता था। सब कुछ डूब गया था— जीवन के प्रति उत्साह, परिवार के प्रति मोह, फूलों के रंग। सुषमा अकेली थी। अपने दुख, अपमान और लज्जा की गहराईयों में भटकती आर्त चित्कार करती हुई।” दुखात्मक मनोवृत्ति की यथार्थवादी अभिव्यक्ति की दृष्टि से दिनेश नंदनी डालमिया का लेखन भी महत्वपूर्ण है। कटु जीवन अनुभवों का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है “अवमानना के जख्म सूखने के बजाय भीगे हुये उस कम्बल की तरह भारी होते जा रहे थे, जो न हटाकर एक ओर रखा जा सकता था, न ऊपर ओढ़कर अन्दर की घुटन में जिया जा सकता था”।

हिन्दी उपन्यास लेखिकाओं में निरूपमा सेवती का महत्वपूर्ण योगदान है। उनके उपन्यासों में विचारों एवं चिन्तन की प्रधानता के साथ समाज की सम सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण है। उन परिस्थितियों में उन्होंने उद्भूत होने वाली समस्याओं, विसंगतियों एवं दर्द की अनुभूतियों को मुखर किया है।

“दहकन के पार” उपन्यास में निरूपमा सेवती ने व्यक्ति की सामाजिक सापेक्षता को सिद्ध किया है। इस उपन्यास की नायिका तुषार समाज के बन्धनों में बँधी है। किस प्रकार यह सामाजिक बन्धन उसे पीड़ा पहुँचाते हैं। इसका मार्मिक चित्रण इन शब्दों में किया है— “रिलीजन से यानी सोसाइटी से कट कर चलो तो मुश्किलें तो आयेंगी ही। वे नियम जिनकी जंजीरों से तूम खुद को अलग करोगे घूम फिर कर बदला लेते रहेंगे।”

“पचपन खम्भे लाल दिवारें” उषा प्रियंवदा का पहला उपन्यास है। इसकी कथा नायिका सुषमा आज के परिवर्तित परिवेश में पारिवारिक उत्तरदायित्वों का वहन करती, संघर्षों के उत्पाप से पल-पल झुलसती और बदलती सामाजिक मान्यताओं के तहत एक नई प्रेम वृत्ति का पोषण करती दिखाई देती है। वह आज उन नौकरी पेशा लड़कियों की प्रतिनिधि है जो घरेलू समस्याओं की भट्टी में जलकर अपने विवाह की उम्र गवाँ बैठती है। सुषमा का या यों कहें कि उसके वर्ग की लड़कियों का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि घर का आर्थिक बोझ उठाने के लिए तो समाज उन्हें स्वतंत्रता दे देता है, पर जहाँ जीवन के अन्य क्षेत्रों में स्वाधीनता की बात आती है, यही समाज उनके पथ में गति अवरोधक बन जाता है। सौ-सौ रोड़े अटकाकर उसका जीना दूभर कर देता है। उसके चारों ओर दीवारें हैं उत्तरदायित्व की, परिवार की, पद एवं तज्जन्य गरिमा की और शायद भीतरी कुण्ठा की भी। अपने रिटायर पिता और थकी हारी माँ की देखभाल के साथ ही छोटे भाई बहन के सपने साकार करना भी उसी का दायित्व है। किशोर वय में एक पड़ोसी लड़के से उसका भावात्मक सम्बन्ध जुड़ा था, पर लड़के के पिता ने बड़े दो टूक लहज में उस रिश्ते को नकार दिया। तब से सब कुछ भूलकर सुषमा अपनी जिम्मेदारियों में खो गई। वह अपने मन को समझाती है।

“जीवन में बहुत महत्वपूर्ण काम हैं, सिर्फ विवाह ही तो नहीं।” आज के जीवन में व्याप्त विघटन, संक्रास, अजनबीपन मूल्यों की टूटन और विषमता का अनेक महिला उपन्यासकारों ने अपनी- अपनी मनोवृत्ति से चित्रण किया है कृष्णा सोबती का “सूरजमुखी अन्धरे में तथा यारों के यार, तिन पहाड़, मेंहरुन्निशा परवेज का “आँखों

की दहलीज" ममता कालिया का बेधर बिन्दुसिन्हा "सागर पाखी" और मन्नू भण्डारी का "महाभोज" संघर्ष मय जीवन और दुखात्मक मनोवृत्ति की यथार्थ की भूमि पर उठकरने वाले प्रभावशाली उपन्यास बन पड़े हैं।

मन्नू भण्डारी के "महाभोज" में आदर्श और महानता के ऊपरी खोल के भीतरी छिपी राजनीतिज्ञों की धिनौनी तस्वीर को उजागर किया गया है। इसमें वर्णित कुछ प्रतीकात्मक स्थल देखिये " थाने में टंगी गाँधी और नेहरू की तस्वीरें उस विसंगती की प्रतीक हैं, जिसमें आज जन सामान्य को हर अन्याय और अत्याचार भी गाँधी, नेहरू के नाम पर बरदाश्त करना पड़ता है"

"दा साहब का भव्य व्यक्तित्व उस बाहरी खोल का प्रतीक है जिसके भीतर धिनौनी राजनीति छिपी हुई है।"

दीप्ति खण्डेलाल वाल के "प्रतिध्वनियों" उपन्यास की निम्न पंक्तियाँ अंधेरे अभावग्रस्त जीवन की भयावहता और चाँद सितारे सुख समृद्धि से परिपूर्ण जीवन के प्रतीक हैं....."अंधेरों के बीच, उन चाँद सितारों से मुझे क्या इनकार हो सकता था? ऊषा प्रियंवदा के "शेष यात्रा" में अन्धेरी – लम्बी सुरंग नायिका के लम्बे लक्ष्य विहीन जीवन की प्रतीक है। "पिछले वर्षों से उसे लगता है कि जैसे वह एक लम्बी अन्धकार मय सर्द सुरंग से यात्रा कर रही है जहाँ न लक्ष्य दिखाता है, न उसका अन्त ।" यथार्थ बड़ा भयावह होता है। सपने जितने कोमल, मृदु, मधुर होते हैं, यथार्थ उतना ही कठोर होता है। क्योंकि कल्पनाओं में तो स्वप्न होते हैं। जबकि यथार्थ में संघर्ष होता है। जीवन का प्रत्येक क्षण इन संघर्षों से गुजरकर सुख-दुख की अनुभूति करता है। जहाँ यह संघर्ष जीवन में कुछ सीख दें जाता है। वही यह संघर्ष समुद्र की तेज लहरों की भाँति जीवन का बहुत कुछ बहा भी ले जाता है। जिनकी मात्र स्मृतियाँ ही रह जाती हैं। आज का अति व्यस्तता से भरा जीवन, अनचाहे बन्धनों को उम्र भर ढोये जाने की विवशता, अनुभूतियों को आछन्न करती बौद्धिकता और आदमी की भटकना, रोजमर्रा के जिन्दगी के संघर्ष और दुखात्मक मनोवृत्तियों को ही दर्शाते हैं। निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि हिन्दी की प्रायः सभी महिला उपन्यासकार सुख-दुख की अनुभूति, जीवन संघर्ष और दुखात्मक मनोवृत्ति के चित्र उठकरने में सिद्ध हस्त हैं। उनके उपन्यासों में जीवन संघर्ष और दुखात्मक मनोवृत्तियों का स गाढ़ा रंग विद्यमान है। यह महिला लेखन की शशक्तता है कि कोरी भावना से परे हटकर उन्होंने यथार्थ बोध के प्रति आग्रहशीलता की चेष्टा दिखाई। न तो उन्होंने भावनाओं की निधि को तोड़ा है। और न ही बुद्धिवाद के आग्रह को छोड़ा है। हिन्दी की महिला उपन्यासकारों ने खुली आँखों से सामाजिक यथार्थ को देखा है और संघर्ष का वास्तविक दुखभरी अवस्था का चित्रण किया है।

सन्दर्भ संकेत :

1. पतझड़ की अवाजें— निरूपमा सेवती, पृ. 24-25, 162
2. प्रतिध्वनियाँ— दीप्ति खण्डेलवाल, पृ. 23, 33, 11
3. पचपन खंभे लाल दीवारें, पृ. 33, 97
4. और सूरज डूब गया —दिनेश नंदनी डालमिया, पृ0 55
5. मैं और मैं— मृदुला गर्ग पृ0 3.9.10
6. दहकन के पार — निरूपमा सेवती, पृ. 17
7. महाभोज मन्नू भण्डारी, पृ. 158
8. स्वतंत्रोत्तर कथा लेखिकायें— डा0 उर्मिला गुप्ता, पृ0190
9. हिन्दी उपन्यास —डा0 सुषमा धवन, पृ0 140
10. आज का हिन्दी साहित्य: सर्वेदना और दृष्टि — डा0 रामदरश मिश्र पृ.142
11. आठवें दशक के हिन्दी उपन्यास— डा0 रामविनोद सिंह, पृ0. 165
12. हिन्दी उपन्यास में प्रतीकात्मक शिल्प — डा0 सुशीला शर्मा, पृ0. 429



निराला के काव्य में राष्ट्रीय चेतना

डॉ० आशा वर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर-हिन्दी विभाग

डी० बी० एस०(पी० जी०) कॉलेज, गोविन्द नगर, कानपुर-208006

‘चेतना’ का अर्थ अत्यन्त गहन एवं अपरिभाष्य है। कुछ विचारकों ने चिन्तन प्रक्रिया को ही चेतना कहा है। डॉ० देवराज पथिक के अनुसार – ‘चेतना’ एक शक्ति है जो समग्र विश्व में व्याप्त होकर जड़ चेतन सबको धारण किए हुए है।¹ चेतना के विभिन्न स्वरूप व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक स्तर पर तथा देश, राष्ट्र और विश्व स्तर पर पाए जाते हैं। इस प्रकार मानव जीवन में चेतना अनेक रूपों में अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित होती है। अपने समग्र रूप में वह सत्य, शिव और सुन्दर की कल्याणकारी शक्ति है। व्यक्तिगत स्तर से ऊपर उठकर परिवार, समाज, जाति, धर्म आदि सारे सोपानों को पार करती हुई चेतना की असंख्य धाराओं की गति राष्ट्रीयता के उच्च शिखर को स्पर्श करते हुए राष्ट्र की स्वतन्त्रता, अखण्डता और प्रभुता को अक्षुण्ण बनाये रखने में पूरे वेग से जब गतिमान होता है तब वह ‘राष्ट्रीय चेतना’ का रूप धारण करती है। राष्ट्रीय चेतना राष्ट्र की जननी है, उसकी धारणा शक्ति है। वह मानव मन में प्रादुर्भूत एक अत्यन्त प्रबल भावना है, जिसका विकास उत्तरोत्तर होता रहता है।

निराला के काव्य में राष्ट्रीय चेतना कूट-कूटकर भरी है। कवि ने अपने राष्ट्र-प्रेम के विविध रूपों को अपनी रचनाओं में बड़ी मनोमयता के साथ शब्दायित किया है। “हिन्दी जगत के लिए निराला की राष्ट्रीय भावना का एक ज्वलन्त इतिहास है जिसके लिखने में कवि के हृदय का रक्त उबल कर अनगिनत स्रोतों में बह निकलता है।”²

मातृभूमि के प्रति श्रद्धा एवं प्रेम की भावना राष्ट्रीय चेतना के लिए परम आवश्यक है। कविवर निराला ने भी जनकष्ट में मातृभूमि का स्तवन ध्वनित करने के लिए अनुराग में श्रद्धा तथा गर्व की भावना का सम्मिश्रण करके, भारतभूमि का देवीकरण करते हुए उसका अलौकिक गान किया तथा उन्होंने पवित्र शब्द ‘ओंकार’ की सर्वत्र गूंजने वाली ध्वनि का वर्णन करते हुए यह स्पष्ट किया है कि भारत भूमि प्रत्येक अवस्था में मंगलदायिनी एवं कल्याणकारी है –

“भारती, जय विजय करें !
कनक-कस्य-कमल धरें
लंका पदतल शतदल गर्जितोर्मि सागर-जल,
धोता शुचि चरण युगल, स्तव कर बहु अर्थ-भरे !
तृण-तृण-वनलता-बसन, अंचल में रवचित सुमन
गंगा-ज्योतिर्जल-मन, धवल धार हार गले !
मुकुट शुभ्र हिम-तुशार, प्राण प्रणव ओंकार
ध्वनित दिशायें उदार शतमुख-शतरव मुखरै !”³

मातृभूमि के प्रति अनुराग की महती भावना के कारण कवि वीणावादिनी से भारत माँ के उत्थान की कामना करता है कि हे सरस्वती ! अन्धकार का विनाश करके भारत में नूतन आलोक को विकीर्ण कर दो –

“वर दे वीणावादिनी वर दे !

प्रिय स्वतन्त्र रव अमृत मन्त्र नव

भारत में भर दे !
 काट अन्ध उर के बन्धन—स्तर
 बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर,
 कलुश भेद, तम हर, प्रकाश भर
 जगमग जग कर दे !
 नव गति, नव लय, ताल—छन्द नव,
 नवल कण्ठ, नव जलद—मन्द रव,
 नव नभ के नव विहग—वृन्द को
 नव पर नव स्वर दे !”⁴

गौरवमयी अतीत की पुण्य स्मृति पुनरुत्थान का मूलाधार होती है, जब निराशा का घोर अन्धकार मानव—हृदय को तमसाच्छन्न कर उसे किंकर्तव्य—विमूढ़ सा कर देता है तब अतीत की स्मृति उसमें नवीन साहस का संचार करती हुई, उसे परिस्थितियों से संघर्ष करने की प्रेरणा देती है तथा भविष्य के प्रति आशान्वित करके उन्नति की ओर अग्रसर करती है। प्राचीन काल में भारत को ‘सोने की चिड़िया’ से सम्बोधित किया जाता था और सभ्यता का अग्रदूत समझा जाता था। निराला ने वैभव—सम्पन्नता से परिपूर्ण भारत की स्थिति का स्मरण किया है—

“यह वही देश है परिवर्तित होता हुआ ही देखा गया जहां
 भारत का भाग्यचक्र ? आकर्षण तृष्णा का,
 खींचता ही रहा जहां पृथ्वी के देशों को स्वर्ण—प्रतिभा की ओर ?”⁵

भारतीय संस्कृति को कवि ने अनेक स्थलों पर स्मरण किया है कभी वह उसकी उन्नति पर खुश होता है तो कभी उसके पतन पर दुःखी होता है। इस स्थिति के अनेक दृश्य ‘यमुना के प्रति’ कविता में दृष्टिगोचर होते हैं। कवि को खेद है कि “वंशीवट और वृन्दाधाम अब भी हैं, किन्तु जीवन की वह सहजता नहीं है। पनघट वे ही हैं, किन्तु चंचल चरणों के नूपुर वहाँ अब नहीं बजते। यमुना—कछार में प्रिय वियोग के कारण आंसू अब नहीं गिरते, घरों में भले ही आठ—आठ आंसू गिरते हों। नेत्रों में अन्जन राग अब भी लगते हैं और कदम्ब के पुष्प अब भी खिलते हैं, किन्तु अन्जनराग न तो कुंजों में घुलते हैं और न कदम्ब—पुष्पों को कबरी में युवतियाँ गूथती हैं। निर्भय अभिसार का लोप हो गया, सहज प्रेम का कहीं नाम तक नहीं रह गया”⁶

“कहां आज वह निद्रित जीवन बँधा बाहुओं में भी मुक्त ?

कहाँ आज वह चितवन चेतन श्याम—मोह—कज्जल अभियुक्त ?”⁷

कहाँ है भारत के अतीत की महिमा ? कहाँ है जैमिनी, पतंजलि, व्यास जैसे ऋषियों की जन्मभूमि ? मनुष्य रूप में अवतरित राम, कृष्ण, भीम, अर्जुन और भीष्म जैसे देवता जिसमें चले थे, कहाँ है वह देश ? अपनी कविता ‘खंडहर के प्रति’ में निराला प्रश्न करते हैं। सब गायब हो गया ! रह गया है केवल खंडहर, जो उन महान दिनों की याद दिलाता है, जब भारत अजेय शक्तिशाली था —

“खंडहर ! खड़े हो तुम आज भी ?
 अद्भुत अज्ञात इस पुरातन के मलिन साज !
 विस्मृति की नींद से जगाते हो क्यों हमें —
 करुणाकर, करुणामय गीत सदा गाते हुए ?
 पवन—संचरण के साथ ही
 परिमल—परागमय अतीत की विभूति—रज—

आशीर्वाद पुरुष पुरातन का
भेजते सब देशों में
क्या है उद्देश्य तब ?⁸

राष्ट्र को एक सूत्र में संगठित करने हेतु एक भाषा की आवश्यकता होती है। “वर्तमान भारत में व्यापकता के लिहाज से राष्ट्रभाषा का पद हिन्दी को मिल रहा है। कितने ही विद्वानों ने गहरी जाँच करके उसे संस्कृत की जेठी लड़की बताया है।⁹ उसी संस्कृत की बड़ी बेटी हिन्दी का अभिवर्दन करता हुआ कवि उसके समृद्ध, वैभवशाली रूप पर मुग्ध है —

“विश्व की वाणी प्राचीन,
आज रानी बन गयी नवीन।”¹⁰
सामर्थ्यवान हिन्दी के प्रति कवि का पूज्य भाव देखिए —
बन्दू पद सुन्दर तब, छन्द नवल स्वर गौरव,
जननि, जनक—जननि—जननि, जन्म भूमि भाषे।
जागो, नव अम्बर भर, ज्योतिस्तर — वासे।
उठे स्वर रोमियों — मुखर, दिक्कुमारिका — पिक—रव।
दृग—दृग को रंजित कर अंजन भर दो भर।
बिंधे प्राण पंचबाण के भी परिचय शर !
दृग—दृग की बंधी सुछवि बाँधे सचराचर भय।”¹¹

भारतीय संस्कृति में जननी को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ बताकर नारी वर्ग के प्रति सम्मान प्रकट किया गया है। “निराला ने भी नारी शक्ति की उपासना की। वह उनकी दृष्टि में अबला न रहकर सबला होकर समाहत हुई। नारी की दीनता, निराशा और असहायता का चित्रण करते हुए भी निराला ने उसे प्रेरणा—स्रोत के रूप में देखा। वह वासना का विश न होकर साधना का अमृत है।”¹² कवि की अभिलाषा है कि नारियाँ पार्वती के समान होकर सत्य, शिव और सुन्दर को देती हुई बागडोर संभाले और भ्रमित लोगों को सन्मार्ग पर लाएं —

“गृह—गृह की पार्वती !
पुनः सत्य—सुन्दर—शिव को संवारती
उर—उर की बनी आरती।
भ्रान्तों की निश्चल ध्रुवतारा।”¹³

इसीलिए निराला समस्त नारी वर्ग को दासता कारा को उतार फेंकने का आह्वान करते हैं —

“तोड़ो—तोड़ो, तोड़ो कारा
पत्थर की निकली फिर गंगा जलधारा।”¹⁴

प्रकृति परिवेश राष्ट्रीय चेतना को प्रखर रूप से विभास करता है। यह स्पष्ट है कि रचनाकार अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए प्रकृति का ही सहारा लेता है। प्रकृति के माध्यम से ही वह अपनी सौन्दर्यानुभूति, सांस्कृतिक दृष्टि और राष्ट्रीय चेतना का अनावरण करता है, लोकार्पण करता है निराला भी इस धारणा के अपवाद नहीं हैं। कवि बादलों से सुख और शान्ति की याचना करता है जिससे राष्ट्रीय विकास हो, मानव समाज में अनुराग बढ़े —

बरसों मेरे आंगन बादल
नई शक्ति अनुरक्ति जगा दो

विकृति भाव की भक्ति भगा दो
उत्पादन का भाग लगा दो
साहित्यिक वैज्ञानिक केवल।”¹⁵

राष्ट्रवासियों को जीवन के नवीन प्रेरणा सन्देश उन्होंने प्रकृति को ही माध्यम बनाकर दिए हैं –

“गर्जित—जीवन झरना
उद्देश्य पार पथ करना।
ऊँचा रे नीचे आता
जीवन भर—भर दे जाता —
बंधु तारना, तारना
सूखे हुए निर्जीवन
होने से पहले तक, मन
बढ़ना, भरकर बनना धन
धारा नूतन भरना।”¹⁶

जनमानस में राष्ट्रीय भावों का स्फुरण करके नवनिर्माण की चेतना तभी जगाई जा सकती है, जब समाज रूपी शरीर के सभी अंग पूर्ण रूप से स्वस्थ एवं संतुष्ट हों। समाज की उन्नति देश की उन्नति है। व्यक्ति का समुचित विकास समाज में ही होता है। अतः समाज में रहने वाले व्यक्ति का कर्तव्य है वह समाज के लिए कार्य करे और जो कुछ देश के, समाज के लिए अनुपयोगी हो उसका त्याग कर दिया जाए। इसलिए निराला सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए प्रचलित उन रुढ़ियों, रीति-रिवाजों तथा परम्पराओं का बहिष्कार कर देना उचित समझते हैं जिनसे सामाजिक उन्नति में व्याघात उत्पन्न होने का भय है। रुढ़ियाँ मनुष्य के जीवन में जागृति नहीं पैदा होने देतीं, बल्कि उसके जीवन को नीरस एवं शुष्क बना देती हैं। इसीलिए धर्म के नाम पर जनता को गुमराह करने वाले साधुओं, सन्तों और पण्डों पर निराला करारा व्यंग्य करते नजर आते हैं –

“आ रे गंगा के किनारे
झाऊ के वन से पगडण्डी पकड़ हुये
रेती की खेती छोड़कर, फूस की कुटी
बाबा बैठे झार—बुहारे।”

X X X

“पण्डों के सुघर—सुघर घाट हैं, तिनके टट्टी के ठाठ हैं।

यात्री आते हैं; श्राद्ध करते हैं, कहते हैं कितने तारे।

बाबा साधक हैं कढ़े भी हैं, खारुए की पोथियां पढ़े भी हैं।

आँखों में तेज है छाया है, उस छवि की गेह सुधारे।”¹⁷

पुरातन जड़ संस्कारों का विरोध करते हुए निराला शिव से भैरव नृत्य कर उन्हें मिटाने और नवीन सन्दर्भों को निर्माण करने का आह्वान करते हैं –

“नाचो हे, रुद्रताल, आंयों जग मृतु—अराल

झरे जीवन जीर्ण—शीर्ण, उद्भव हो नवीन प्रकीर्ण।

करने को पुनः तीर्ण हो गहरे अन्तराल।

फिर नूतन तन लहरें, मुकुल-ग्रन्थ का छहरे,
उर तरु-तरु का हहरे, नव मन सायं अकाल।¹⁸

राष्ट्रीय चेतना के बहुआयामी होने के कारण निराला देश के युवकों से राष्ट्र निर्माण तथा राष्ट्रोत्थान की गहरी अपेक्षा रखते हैं। इस सन्दर्भ में निराला का कथ्य है कि “जिस देश में युवक जानदार नहीं, जिस देश के भावी उत्तराधिकारी के लिए युवकगण प्रयत्नशील नहीं, वह देश गुलामी की बेड़ियाँ काट नहीं सकता देश की मर्यादा तथा सम्मान की रक्षा करने के लिए हमारे युवक ही हृदय के अन्तःस्थल से देश की मदद कर सकते हैं।”¹⁹ देश को समाज के संकट से भी मुक्ति दिलाने की क्षमता देश के युवक ही रखते हैं। युवावस्था में उसमें एक जोश, उत्साह और कठिन से कठिन काम करने की शक्ति होती है। अतः समग्र क्रान्ति करने की क्षमता निराला भारत के युवावर्ग में ही देखते हैं क्योंकि युवाशक्ति संसार को झुकाने का सामर्थ्य रखती है –

“बहने दो
रोक-टोक से कभी नहीं रुकती है।
यौवन-मद की बाढ़ नदी की
किसे देख झुकती है
बहती कैसी पागल उसकी धारा,
हाथ जोड़ खड़ा देखता हीन,
विश्व यह सारा।”²⁰

भारत के युवा वर्ग पर विशेष आस्था और विश्वास रखते हुए निराला जी लिखते हैं कि “संसार की आँखों को भारत के युवक ही वह दृश्य दिखला सकते हैं, जो भारत के अतीत गौरव के अनुकूल हो।”²¹ ‘राह पर बैठे’ रचना में निराला युवा वर्ग को रचनात्मक कार्य करने की प्रेरणा देते हुये उन्हें दीन, दलित, गरीबों को उठाने और विदेशी सत्ता को समाप्त करने को प्रोत्साहित करते हैं और हिम्मत न हारने की प्रेरणा देते हैं –

“राह पर बैठे उन्हें आबाद तू जब तक न कर,
चैन मत ले गैर को बरबाद तू जब तक न कर।”²²

X X X
प्रगति में तुम्हारे यदि बिछा कांटों का जाल,
उड़ती है सदा धूल, हिम्मत न हारो तुम।

निराला की राष्ट्रीय चेतना से सम्बद्ध कविताओं के अनेक पक्षों को भावित करने के उपरान्त कहा जा सकता है कि निराला जी राष्ट्रीय चेतना के प्रतिष्ठित कवि हैं। “निराला की राष्ट्रीयता भारत की इस मिट्टी में उगती, पनपती है, परन्तु इसमें प्रफुल्लित एवं पल्लवित होती हुई बहुत दूर जाकर वह समस्त मानवता में अपने को समेट लेती है। इसलिए उनकी राष्ट्रीय कविता का धरातल बड़ा विस्तृत और बहुरंगी है।”²³ निश्चय ही निराला की राष्ट्रीय चेतना में देश की संस्कृति और गरिमा मुखरित हुई है और इसके माध्यम से उन्होंने जनमानस में अपूर्व उत्साह और ऊर्जा भरने की अनुकरणीय भूमिका निभाई गई है।

सन्दर्भ –

1. डॉ० देवराज पथिक : नयी कविता में राष्ट्रीय चेतना, पृ० 18
2. टैगोर – अवध प्रसाद बाजपेयी ; टैगोर और निराला, पृ० 239
3. निराला : गीतिका, पृ० 73
4. निराला : गीतिका, पृ० 3

5. निराला : अनामिका, पृ0 58
6. निराला के काव्य के विविध आयाम : डॉ0 देशबन्धु, पृ0 62
7. निराला : परिमल (यमुना के प्रति), पृ0 50
8. निराला : परिमल, पृ0 55
9. निराला : चयन : भाषा की गति और हिन्दी की शैली
10. निराला : गीतिका, पृ0 80
11. निराला : गीतिका, पृ0 83
12. डॉ0 पदमसिंह शर्मा : निराला, पृ0 50
13. निराला : अनामिका, पृ0 131
14. निराला : अनामिका, पृ0 141
15. गीतिका : रचनावली भाग-1, पृ0 263
16. गीतिका : निराला रचनावली भाग-1, पृ0 263
17. निराला : वेला, पृ0 60
18. निराला : आराधना, पृ0 55
19. राष्ट्र की युवा शक्ति : निराला रचनावली भाग-6, पृ0 243
20. धारा : निराला रचनावली भाग-1, पृ0 72
21. राष्ट्र की युवा शक्ति : निराला रचनावली भाग-6, पृ0 243
22. राह पर बैठे (बेला) : निराला रचनावली भाग-2, पृ0 139
23. डॉ0 भगीरथ मिश्र : निराला काव्य का अध्ययन, पृ0 65



आज के नवगीत : समय से संवाद

डॉ. रचना भारतीय

प्रवक्ता

स्व. यशोदा कन्या महाविद्यालय, मिश्रिख, सीतापुर

आज के नवगीत समय से संवाद पर चर्चा करने से पूर्व नवगीत के उद्भव पर विचार करना अनिवार्य है। आज से लगभग छः वर्ष पूर्व वीरेन्द्र मिश्र ने इलाहाबाद के साहित्य सम्मेलन में 1956 में 'नया गीत' शब्द का प्रयोग किया था। इस कविता गोष्ठी में पढ़े गये निबन्ध 'नयी कविता; नया गीत : मूल्यांकन की सीमाएँ' में किया। तत्पश्चात् श्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने हिन्दी-समीक्षा में 'नवगीत' शब्द का प्रयोग गीतांगिनी (सम्पादित ग्रन्थ) में 1958 में किया, जिसे सर्वस्वीकृति प्राप्त हुयी। बाद में 'बासन्ती' पत्रिका में 1962 से 'नये गीत : नये स्वर' की लेखमाला के माध्यम से इस संज्ञा को स्वीकार किया गया। हालांकि बहुत सारे समीक्षकों ने इसके लिए 'गीत' शब्द का प्रयोग भी किया, लेकिन अपनी प्रवृत्ति की विशिष्टता के कारण इस काव्य धारा को 'नवगीत' कहना ही उपयुक्त माना जायेगा। इस संदर्भ में मुझे डॉ० शम्भुनाथ सिंह का यह तथ्य महत्वपूर्ण लगता है कि –

1. यह पारम्परिक गीत धारा से अलग हैं।
2. कथ्य और शिल्प के स्तर पर भिन्नता है।
3. मार्मिक समग्रता की आत्मीयता पूर्ण स्वीकारोक्ति है।¹

समय से संवाद की बात करते हुए लगभग 22-22 वर्ष तक के समय को महत्वपूर्ण माना जा सकता है। वर्तमान समय में जब सबसे गहरा संकट संवेदना पर है। ऐसे में नवगीत के लिए 'नवगीत का मानवीय अस्मिता से जूझने के लिए संकल्प लेना, वर्तमान संदर्भों में यथार्थ के धरातल पर जहाँ लोक सम्प्रति पर खतरा, त्रासदी, आपाधापी, मशीनीकरण, रिश्तों की टूटन और सामाजिकता से अकेलेपन की त्रासदी भरपूर दिखायी दे रही है। तो क्या हम इस बात से इन्कार कर सकते हैं कि नवगीत, समय से संवाद करने में अक्षम है। समय को साथ लेकर चलने की संकल्प शक्ति ही नवगीत की पहचान है। नवगीत में इतिहास बोध है। नवीन विचारशीलता है। अन्तर्द्वन्द्व के मध्य प्रतिरोध और प्रतिकार के गीत इस बात के साक्षी हैं।² ऐसे में कुमार रवीन्द्र, मनोज जैन, यश मालवीय, डॉ० महेश्वर तिवारी, डॉ० अजय पाठक, आनन्द गौरव, शैलेन्द्र शर्मा, जय चक्रवर्ती, डॉ० विनय भदौरिया, योगेन्द्र वर्मा के गीतों की महत्वपूर्ण भूमिका नवगीत को वृहत आकार देती दिखायी देती है –

ऐसे दिन आने वाले हैं / जो आंसू पर भी पहरें बैठाने वाले हैं /
आकर आस-पास भर देंगे, ऐसी चिल्लाहट /
सुन न सकेंगे हम अपने ही भीतर की आहट /
शोर शराबे ऐसा दिल बहलाने वाले हैं।

डॉ० माहेश्वर तिवारी

x x x x x

x x x x x

x x x x x

मशीनीकरण के दौर में व्यक्ति की असहायता की बात
मनोज जैन –

चुप्पी ओढ़े रात खड़ी है / सन्नाटे दिन बुनता

हुआ यंत्रवत, यहाँ आदमी
 नहीं किसी की सुनता
 बात-बात में / टकराहट है कभी नहीं दिल मिलते
 ताले जड़े हुए होठों पर / हाँ ना में सिर हिलते
 पीढ़ीगत इस / अंतराल की / खाई को अब कैसे पाटें।
 दिन पहाड़ से कैसे काटें।

X X X X X

X X X X X

X X X X X

जैसा कि मैंने पहले भी कहा कि रिश्तों की टूटन तथा मनुष्य के अकेलेपन को नवगीत इस पीढ़ा को कैसे व्यक्त करता है —

क्या बतलाएँ / इस घर में बच्चे उदास हैं
 घर में सब कुछ है / फ्रिज, टीवी और कम्प्यूटर
 सूना कब से नदी किनारे का पूजाघर
 वेबसाइट भी हर बच्चे के लिए खास है
 जुड़े हुए हैं सारे कमरे डॉटकाम से
 सपने बुक हैं हर बच्चे के अलग नाम
 मम्मी-पापा के कमरे बस पास-पास हैं।

— कुमार रवीन्द्र

डॉ० नगेन्द्र नवगीत के समय से संवाद करने में सक्षमता के पीछे इसकी कलात्मक सादगी, जन प्रचलित शब्दावली को माना है। अभिधात्मक प्रयोग इसके शिल्प की विशेषता है।³ इसके अतिरिक्त लोकगंधी चेतना इसकी एक मुख्य प्रवृत्ति दिखाई देती है। 'नवगीत' के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि 'नया काव्य नये मूल्य' में ललित शुक्ल (पृ० 257) में नवगीत हिन्दी को निराला के 'वीणावादिनी सरस्वती' के नव स्वतन्त्र रव, नव ताल, नव छन्द, नव गति से माना है। हालांकि इसकी काफी आलोचना हुयी। खैर इन सबके तर्कों के आगे डॉ० नगेन्द्र के 15-02-1966 में 'नवभारत टाइम्स' में नवगीत या फिर हम कह सकते हैं कि कविता की मात्रा को 'आत्मबोध' से जोड़ते हुए उसे केन्द्र बिन्दु माना। उनका मानना है कि 'नवगीत' का समय से संवाद करने में सक्षम होने का मूल कारण 'आत्मबोध' से होकर युगबोध के परिप्रेक्ष्य में होकर गुजरना है। क्योंकि यदि आत्मबोध नहीं है, तो सारे बोध शोध का विषय का बनकर रह जाते हैं। लगभग तीन-चार दशक से नवगीत की सफलता के पीछे जन-मन की वाणी ही नवगीत की पहचान है।

आखिर नवगीत समय के साथ चलने में सक्षम इसलिए रहा क्योंकि उसने अपने समय के यथार्थ के विस्तृत फलक को कविता में स्थान दिया। इतना ही नहीं युग संवेदना को गीतोन्मुखी बनाया। मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष, हर भाव संघर्ष को गीतों के माध्यम से वाणी दी। डॉ० विनोद गोहरे (छायावादोत्तर प्रगति — पृ० 13) में कहते हैं कि "सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि स्वातंत्र्योत्तर भारत का एकमात्र विशुद्ध प्रगीत-प्रवाह है तथा इस युग का सृजनात्मक मुहावरा है।" मेरा तो मानना यह है कि नवगीत समकालीन काव्य प्रयोगों में सबसे सशक्त माध्यम है क्योंकि नवगीत में है —

1. लोकसंवेदना की गतिशीलता
2. आधुनिक भावबोधों का स्थितिनुरूप प्रकटीकरण
3. पाश्चात्य अंधानुकरण के प्रति आक्रोश एवं विद्रोह

4. श्रव्य दृश्य माध्यम से भारतीयता के अपहरण के प्रति विद्रोह

अपसंस्कृतिकरण से नगर और गाँवों के प्रभावित होने की पीड़ा आदि लेकिन वह हार नहीं मानता, कह उठता है —

नगर की बेहद नशीली
नित्य आयातित हवाएँ
गाँव को भरमा रही हैं,
पीढ़ियों की पूर्व अर्जित सम्पदाएँ
गिद्ध दृष्टि जमा रही हैं,
लोग मिट्टी की महक को
आज देने जा रहे वनवास
चुप कैसे रहूँगा।

(डॉ० शम्भूनाथ सिंह)

नवगीतकार केवल गाँव या शहर के दृश्य नहीं देखता बल्कि गहन अनुभूतियों के कारण वह घर—आंगन, गाँव—शहर में झाँककर, मानवीन विश्वास पर गहराते संकट के प्रति चिन्तनशील है। कहीं सारस्वत प्रतिभा का सम्मान नहीं है, तो कहीं कॉलोनी और गमलों में सिमटी जिन्दगी की पीड़ा है और प्रतिस्पर्धा के दौर में गंदी या फिर कहें गलाकाट भावना हर संवेदनशील हृदय को व्याकुल कर रही है। ऐसे में नवगीतकार कह उठता है —

छार—छार हो दुख का पर्वत / ऐसा बने सुयोग
गला काट इस प्रतिस्पर्धा में । कठिन हुआ जीवित रह पाना
डॉ० अवनीश चौहान

x x x x x x x x x x x x x x x
अपठनीय हस्ताक्षर जैसे / कॉलोनी के लोग
सम्बन्धों की शंकाओं का / पौधारोपण है
केवल अपने में ही अपना / पूर्ण समर्पण है
एकाकीपन के स्वर लगते / कॉलोनी के लोग
महानगर की दौड़—धूप में / उलझी खुशहाली
जैसे गमलों में ही / सिमटी जग की हरियाली
गुमसुम ढाई आखर जैसे / कॉलोनी के लोग (योगेन्द्र वर्मा)

x x x x x x x x x x x x x x x
राजमहल के इर्द—गिर्द / मंगल ही मंगल है
धू—धू कर जल रहा / हर समय बाकी जंगल है
भय, दावानल की / दहशत में
पत्ता—पत्ता है / आसमान की हालत भाई बेहद खस्ता है। (विनय भदौरिया)

x x x x x x x x x x x x x x x
मन उदास चेतना ठगी सी है
टूट रहे रिश्तों के नाम।

कहाँ गये दृश्य समारोहों के
एकाकी दिखता त्योहार।

अपनत्व के कुंठित होने, संत्रास, स्वार्थपरता के बढ़ते प्रभाव से क्षरण होते रागात्मक सम्बन्धों को जनगीतकार कह उठता है —

जुड़ा हुआ था / कहने को / वह बिखर गया परिवार
दौलत चुनता रहा आदमी / सम्बन्धों के मोल
स्वजन और परिजन का सारा / बदल गया भूगोल
किससे शिकवा करें / जबकि अपने ही हो बटमार (विद्यानन्दन राजीव)

जैसा कि मैंने 'नवगीत' की विशेषता विस्तृत फलक बताया था। नवगीतकार लोक जीवन में उतरकर बहुला चौथ, तुलसी का चौरा, नदी से आत्मपीड़ा का व्याख्यान, प्रकृति से जुड़े हर पक्ष तथा जीव जन्तुओं से अपना सम्बन्ध स्थापित करता दिखायी देता है। गाँव असुविधाओं के बीच सूरज से विनती, गाँव में तरह-तरह के शगुन पर विचार, आस्था और विश्वास के साथ जुड़े लोक-जीवन की व्याख्या करने में कहीं भी नवगीतकार चूका नहीं है। यहाँ तक कि उसने लोक उत्सवों, फागुनी उत्सव, जन्मोत्सव, विवाह के ढोल, कटती फसलों के दृश्य तथा लोक जीवन को धर्म बताने का प्रयास करता दिखाई देता है। उत्सव का अर्थ है व्यक्ति पीड़ा भुला, उल्लास में डूबकर नई जीवनी शक्ति पाये। पंकज गौतम, ठाकुर प्रसाद सिंह, प्रेमशंकर रघुवंशी, अनूप अशेश, राजेन्द्र प्रसाद सिंह पूरे लोक-जीवन का गीतों के माध्यम से ताना-बाना बुनते दिखाई देते हैं।

दादी जगे पराती ले
माँ हुलसे संझवाती ले
मुसके आठों पहर बहुरिया लड़कौरी
राम जिलाए भैया-भौजी की जोड़ी (प्रेमशंकर रघुवंशी)
x x x x x x x x x x x x x x x
छानी छप्पर खोल चुका है गाँव
अब न पुरेगी आंगन चौकें
न मुंडेर पर काँव
बाबा की ओसार भर खाँसी / अम्मा की फटकार
छुटकी बहू और बड़की की / मुँह जोरी तकरार
(अनूप अशेश, मेरे गांव की हंसी, पृ० 31)

x x x x x x x x x x x x x x x
सूरज तुम डूबो, आज अम्मा बीमार है
ढिबरी तक बुझ गयी, थोड़ा था घासलेट
चावल के माड़ को तरसेगा पुनः पेट
नंगे कर्तव्य को दुलार रहा, गूंगा अधिकार है
कफन बड़ा महंगा है, आत्मा पुकारेगी
ठंडी दुर्दान्त हवा मूसल से मारेगी
कस्बे में एक अदद हृदयहीन / ढीढ साहूकार है

बेचने पड़ेंगे कुछ टूटे-फूटे बर्तन
कौन रखेगा गिरवी / गिलट के घिसे कंगन
चन्द्रमा करेगा क्या, वह भी सरमायादार है
सूरज तुम मत डूबो, आज अम्मा बीमार है।

(नारायण लाल परमार, सब कुछ निस्पन्द है, पृष्ठ 68)

नवगीतकार से मानव जीवन से सम्बद्ध कोई भी पल अछूता नहीं रहा है। भारतीय राजनीति जहाँ एक लोकतंत्र की व्याख्या करती है, वहीं इसके छद्म रूप से परदा उठाने का प्रयास करती दिखाई देती है। राजनीति के कारण नैतिकता किस प्रकार प्रभावित हो रही है। सीमित स्वार्थ के लिए राजनीति शिखण्डियों के हाथ में पहुँच गयी है। ऐसा नवगीतकार मानता है। एक ओर व्यक्ति के मोहभंग की स्थिति है, वहीं राजनीतिक लालसा ने व्यक्ति को आदमखोर बनाकर रख दिया है।

क्रान्त मदन लाल वर्मा, अरुण कमल, कुँआर बेचैन, डॉ० उर्मिलेश व्यंग के माध्यम से चिन्ता व्यक्त करते दिखाई देते हैं –

अमन चैन की बातें / करते हैं लोग
परदे में साजिश का / चलता उद्योग
सिंहासन हंसों का / बगुलों के हाथ
बेल ज्यों करेले की / नीम पर चढ़ी

(ओम प्रकाश तिवारी, पांचजन्य 31-01-1993, पृष्ठ 25)

स्वातन्त्र्योत्तर भारत में गीतकार की पीड़ा देखने योग्य है –

फिर शिविर में लौट आए हैं / वे सलीबों से सुलह करके
बन्धु अब कैसे मनाएं हम / विजय उल्लास का यह पर्व
अब करें किसकी बिना पर हम / झूठ को सच मानने का गर्व
कुम्भकर्णी नौद सोये हैं / लोग सिंहासन फतह करके।

(क्रान्त मदन वर्मा, पांचजन्य, 11-10-1992, पृष्ठ 9)

अन्ततः नवगीत पर समय से संवाद की बात करते हुए चर्चा को अनवरत जारी रखते हुए मैं संक्षेप रूप में बताना चाहूँगी कि आखिर नवगीत छायावाद, छायावादोत्तर, व्यक्तिवादी धारा, प्रगतिवादी काव्यधारा, प्रयोगवादी, नयी कवितावादी काव्यधारा से भिन्न और विशिष्ट इसलिए है क्योंकि वह वायवीय कल्पनाओं का, अतीतजीवी काव्य नहीं है, व्यक्तिवादी काव्यधारा से भिन्न इसलिए है क्योंकि उसमें एकान्त का महत्व नहीं है। अनुभव संसार सीमित न होकर वृहत है। सस्ती लोकप्रियता के लिए मंचीय चमत्कार प्रियता को अस्वीकार करता है। नवगीत छन्द को कविता की शक्ति मानता है, सीमा नहीं। प्रगतिवाद से भिन्न इसलिए है क्योंकि केवल सिद्धान्त ढोना ही कर्तव्य नहीं मानता, लेकिन उसकी मूल चेतना प्रगतिवाद से जुड़ी है।

नवगीत – (1) यथार्थ बोध, (2) आधुनिकतापरक दृष्टि, (3) समष्टि उन्मुखता, (4) वैयक्तिकता का समन्वय, (5) प्रकृति एवं सौन्दर्य के प्रति नवीन दृष्टि, (6) समृद्ध सांस्कृतिक चेतना, (7) जातीय अस्मिता के प्रति सजगता, (8) शोषण एवं अन्याय जन्य स्थितियों के प्रति आक्रोश, (9) बिम्ब प्रधान अभिव्यञ्जना शिल्प, (10) मौलिकता सम्पन्न अप्रस्तुत विधान, (11) अभिनव गीति शिल्प है।

नवगीत परिवेश की अभिव्यक्ति देने में तत्पर रहने के कारण, युगबोध के प्रति चिन्तनशील रहने के कारण मानव मन पर छाप अंकित करता दिखायी देता है। नवगीतकार आशंकित हैं, 'आल्डस हक्सले' के इस वक्तव्य से

— “हम जो प्राप्त करते हैं, वास्तव में हम उसे खोते हैं। आने वाला समय ऐसा आयेगा कि संवाद का माध्यम खो चुकेगा।” तभी शैलेन्द्र शर्माकी व्यथा दिखायी देती है —

प्रेक्षा रानी! सुनो कहानी / आने वाले कल की
वन सिमटेंगे उपवन में / उपवन कल क्यारी में
मिला करेगी प्राण वायु
काला बाजारी में / अजायबघर में दिखा करेगी
लकड़ी संदल की ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची —

1. हिन्दी नवगीत उद्भव और विकास—राजेन्द्र गौतम, पृ० 37, पराग प्रकाशन, दिल्ली
2. आजकल, जनवरी, 2014, पृ० 40-41



नागार्जुन के काव्य में आम आदमी का चित्रण

प्रा. डॉ. प्रतिभा रं. धारासूरकर

कला विज्ञान व वाणिज्य महाविद्यालय बदनापुर, जि. जालना

“जमींदार है साहूकार हैं बनिया है व्यापारी हैं
अन्दर अन्दर विकट कसाई बाहर खद्दरधारी हैं
सब घुस आये भर पड़ा है भारतमाता का मन्दिर
एक बार जो फिसलो अगुआ फिसल रहे हैं फिर-फिर फिर!”¹

इस प्रकार की व्यंग्यभरी पंक्तियाँ लिखने वाले भारत माता से प्यार करने वाले शोषितों के प्रति सहानुभूति रखनेवाला थे बाबा नागार्जुन! उनकी मान्यता थी कि जब तक इस देश में धनी और निर्धन का रूप व्याप्त रहेगा, तब तक इस समाज में न्याय नहीं हो सकता! समाज का नेतृत्व करने वाले स्वयं अपने आदर्शों से फिसलते रहेंगे!

नागार्जुन ने कल्पना के धरातल से हटकर प्रगतिवाद को अपनाकर जीवन के यथार्थ से अपना रिश्ता जोड़ा! वे निरंतर अभावों एवं कठिनाइयों का सामना करते हुए समाज के दुखी एवं अभावग्रस्त लोगों के जीवन को सुधारने के लिए प्रयास करते रहे। इस संदर्भ में डॉ. विश्वम्भर मानव का कहना है—“व्यक्तिगत दुख पर न रुक कर वे बार-बार व्यापक दुःख पर प्रकाश डालते हैं और यह सच्चे, कवि की पहचान है। अतः धरती जनता और श्रम के गीत गाने वाले इस युग के संवेदशील कवियों में नागार्जुन का नाम सदैव अमर रहेगा।”²

नागार्जुन एक ऐसे कवि हैं जो सच्चे अर्थों में आम-आदमी के कवि हैं। जिस प्रकार प्रेमचंद आम आदमी के लेखक हैं उसी प्रकार नागार्जुन कवि हैं। उन दोनों के साहित्य में भोगा हुआ यथार्थ चित्रित हुआ है।

गरीबों के दुःख दर्द को व्यक्त करने में उनसे बढ़कर कोई नहीं।

मानव मात्र में जो स्थापित होता है, जो यश प्राप्त करता है। दुनिया उसे प्रणाम करती है। यह स्वाभाविक भी है, लेकिन जो बहुत कोशिश करके भी स्थापित नहीं हो पाता उसे प्रणाम करने वाले कम ही मिलते हैं। ऐसे लोगों को ढुँढ़कर नागार्जुन उन्हें प्रणाम करना चाहते हैं।

उनको प्रणाम में वे कहते हैं —

“जो नहीं हो सके पूर्ण काम
मैं उनको करता हूँ प्रणाम।
एकाकी और अकिंचन हो
जो भू-परिक्रमा को निकले
हो गए पंगु, प्रति-पद जिनके
इतने अदृष्ट के दाँव चले।
उनको प्रणाम।”³

जिनकी इच्छाओं आकांक्षाओं को जिनके साहस दृढ़ निश्चय को, जिनकी उग्र साधना, तपस्या को कभी समाज ने तो कभी नियति ने चूरचूर कर दिया उन्हें कवि प्रणाम करना चाहते हैं।

“जिनकी सेवाएँ अतुलनीय
पर विज्ञापन से रहे दूर
प्रतिकूल परिस्थिति ने जिनके
कर दिए मनोरथ चूर-चूर।
उनको प्रणाम”⁴

चाहे मानव, चाहे परिस्थिति चाहे नियति उनके असफल होने का जो भी कारण हो उन्हें मैं प्रणाम करता हूँ ऐसा कवि का कहना है। नागार्जुन एक ऐसे कवि हैं जो चाहे जो शिल्प लेकर, चाहे जिस ढंग से हो, प्रेत के मुँह से क्यों न हो समाज की हालत बयान करने की उस पर व्यंग्य करने की उसकी बुराई सामने लाने की कोशिश करते हैं। बिहार के पूर्णिया जिले के मास्टर जी की भूखमरी की कहानी वह स्वयं यमराज को ‘प्रेत का बयान’ के माध्यम से बता रहा हैं—

“जहां तक मेरी अपनी बात है
तनिक भी मेरी पीर नहीं
दुख नहीं, दुविधा नहीं
सरलता—पूर्वक निकले थे प्राण
सह नहीं सकी आँत जब पेचिश का हमला
सुनकर दहाड़
स्वाधीन भारतीय प्राइमरी स्कूल के
भूखमरे स्वाभिमानी सुरक्षित प्रेत की
रह गया निरुत्तर
महामहिम नरकेश्वर।”⁵

इस प्रकार स्वाधीन भारत के गरीब मास्टर का दिल दहाला देने वाला चित्रण किया है। किसी व्यक्ति को कैसे अच्छी संगत में ने रहने के कारण दुख सहना पड़ता है। मैं पहले ही बुरा था संगत के कारण अधिक बुरा हो गया इस बात को चित्रित करते हुए वे

रहा उनके बीच मैं में लिखते हैं।

“रहा उनके बीच मैं।
था पतित मैं नीच मैं
दूर जाकर गिरा, बेबस उड़ा पतझड़ में
घंस गया अकंठ कीचड़ में
सड़ी लाशें मिलीं
उनके मध्य लेट रहा आँखे मीचं
उठा भी तो झाड़ आया तुकड़ों पर स्पीच में

रहा उनके बीच मैं।

था पति मैं नीच मैं।”⁶

सगम आदमी को चिंता बिगाड़ती हैं इसका चित्रण है।

नागार्जुन ने समाज की आर्थिक खस्ता हालत का चित्रण अधिक किया है। निम्न वर्ग की हालत तब बहुत बिगड़ जाती है जब अकाल आता है अकाल और उसके बाद’ कविता में इस प्रकार का चित्र प्रस्तुत है

“कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास

कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास”⁷

इस प्रकार अकाल पड़ने का चित्रण है तो उसके बाद के चित्रण में

“दाने आए घर के अन्दर कई दिनों के बाद

धुआँ उठा आंगन से ऊपर कई दिनों के बाद

चमक उठी घर भी की आँखे कई दिनों के बाद

कौए ने खुजलाई पाँखे कई दिनों के बाद”⁸

कई दिनों के बाद घर में आने से जो घर भर आँखें चमकती हैं कौए ने पाँखे खुजलाने का, खुशी व्यक्त करने का चित्रण है। यह सब आम आदमी के घर की स्थितियाँ हैं। अकाल में भी उच्च वर्ग की स्थितियों में कोई अन्तर नहीं आया।

गरीबी, भुखमरी एवं अभावग्रस्त जीवन जीने वाले गरीबों की स्थिति देखकर नागार्जुन जी का हृदय व्याकुल हो उठता है

“देश हमारा भूखा—नंगा घायल है बेकारी से

मिले न रोटी—रोजी भटके दर—दर बने भिखारी से

स्वाभिमान सम्मान कहाँ है होली है इन्सान की।”⁹

इस प्रकार का चित्रण दिल दहला देने वाला है स्वाधीन देश में बिना रोजी—रोटी के भूखे नंगे इन्सान का चित्रण है जिसे अपमानित जीवन जीना पड़ता है यह उसकी मजबूरी है।

नागार्जुन के काव्य में व्यंग्य राजनीतिक व्यंग्य, इन्सान की अपेक्षा उसकी कठिनाईयाँ दुख दर्द मजबूरी आदि का चित्रण किया है। उन्होंने संस्कृत, पाली आदि भाषाओं के साथ भारतीय दर्शन का भी अध्ययन किया था। उनकी मातृभाषा मैथिली थी और वे उस भाषा में यात्री के नाम से रचना लिखते थे। साधुओं—फक्कड़ों की तरह धूमते रहते थे इस अर्थ में वह रमते राम थे। वे संवेदनशील व्यक्ति थे। स्वभाव से उग्र और भावुक भी थे। निरंतर संघर्ष का डटकर सामना करते रहे साथ ही आम जनता के भी करते थे। गरीबों के जीवन को सुधारना दुखियों के जीवन में आशा का संचार करना ही उनका कवि धर्म था।

नागार्जुन के काव्य का महत्व एवं विशेषताओं का उल्लेख करते हुए डॉ. प्रकाश चन्द्र कहते हैं “नागार्जुन जी का हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। प्रेमचंद जैसी भारतीय कृषक, मजदूर वर्ग के प्रति आत्मीयता, निराला जैसा फक्कड़प और अक्खड़पण तथा अनुचित बातों पर कबीर जैसे फटकार सबका मिला जुला रूप ही नागार्जुन के व्यक्तित्व का आधार है।”¹⁰ इससे स्पष्ट है कि नागार्जुन काव्य में एक श्रेष्ठ कवि के सभी गुण विद्यमान हैं।

बिहार प्रदेश के दरभंगा जिला अन्तर्गत ग्राम तरैनी में सन् 1911 में जन्में नागार्जुन बाबा नागार्जुन के नाम से जाने जाते हैं उनकी कृतियों में देश-प्रेम मानवता, विश्व बंधुत्व तथा जीवमात्र के प्रति प्रेम के भाव सर्वत्र व्याप्त हैं। इसलिये साहित्य जगत में उन्हें सदैव सम्मानपूर्वक याद किया जायेगा।

सन्दर्भ :

1. हिन्दी के प्रतिनिधि कवि — डॉ. विजय प्रकाश मिश्र, पृष्ठ 256, 257
2. हिन्दी के प्रतिनिधि कवि — डॉ. विजय प्रकाश मिश्र, पृष्ठ 256
3. कविता की जमीन — डॉ. चन्द्रकांत पाटील, पृष्ठ 28, 29
4. कविता की जमीन — डॉ. चन्द्रकांत पाटील, पृष्ठ 29
5. कविता की जमीन — डॉ. चन्द्रकांत पाटील, पृष्ठ 31
6. कविता की जमीन — डॉ. चन्द्रकांत पाटील, पृष्ठ 31
7. कविता समय — डॉ. चन्द्रकांत पाटील, पृष्ठ 35
8. कविता समय — डॉ. चन्द्रकांत पाटील, पृष्ठ 35
9. हिन्दी के प्रतिनिधि कवि — डॉ. विजय प्रकाश मिश्र, पृष्ठ 258
10. हिन्दी के प्रतिनिधि कवि — डॉ. विजय प्रकाश मिश्र, पृष्ठ 266



कृष्णा सोबती की कहानियों में नारी विमर्श

डॉ० सुमन सिंह

वरिष्ठ प्रवक्ता-हिन्दी विभाग
दयानन्द गर्ल्स कालेज, कानपुर।

साहित्य मानव जीवन की व्याख्या करने वाला सर्वोत्तम साधन है, मानव समाज के सम्पर्क में आकर ही सामाजिक बनता है, समाज से जुड़कर जीवनयापन करता है। मानव के समाज के साथ विभिन्न सन्दर्भों में संबंध स्थापित करने, जीवन मूल्यों का निर्माण करने और नैतिक दायित्वों का निर्वहन करने का यथार्थ चित्रण उपन्यास व कहानी द्वारा किया जाता है। कहानी की विधा उतनी ही पुरानी है जितनी मानव जाति, भारतवर्ष में मानवता के इतिहास की कहानी ही चित्रित करती आयी है। अपने कलात्मक सौन्दर्य के साथ कहानी आधुनिक युग में ही पूर्ण विकास पाती है। सामूहिक जीवन की सत्ता को रूपायित करने में अन्य विधाओं की तुलना में कहानी ही पूर्ण सफल हुई है। जीवन में रहते हुए हम जीवन के धरातल पर तैरते रहते हैं, पर कहानी में हम डुबकी लगाकर जीवन के अंतस्तल तक पहुँचते हैं और जीवन का वास्तविक रूप देखते हैं।

आधुनिकता बोध ने व्यक्ति जीवन में अवनति, अनास्था, अनैतिकता और अन्याय को बढ़ावा दिया। जीवन की नव-मान्यताओं और मूल्यों ने सामंजस्य के स्थान पर संघर्ष की स्थिति निर्मित कर दी। इन सभी पक्षों में सर्वाधिक शोषण व प्रताड़ित स्त्री रही है। वह निरन्तर समाज व परिवार से सामंजस्य स्थापित करने व अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती रही। नारी मन के भावों को मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रस्तुत करने में कहानी ने पूर्णतया सफलता प्राप्त की है।

स्वातन्त्र्योत्तर काल के परिवर्तित परिवेश ने नारी जीवन को गहराई से प्रभावित किया, नारी की स्वतंत्रता ने उसे शिक्षित कार्य कुशल और आत्मनिर्भर बनाया। पुरुष के साथ पारिवारिक सम्बन्धों को लेकर घिरी हुई नारी का सम्पर्क क्षेत्र बढ़ा और वह अन्य पुरुषों का विवेचन करने वाली दृष्टि व शक्ति प्राप्त कर सकी। आधुनिक हिन्दी कहानी अपने सफर में आज जहाँ पहुँची है उसमें महिला लेखन का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के आठवें दशक में अनेक महिला कथाकारों ने अपनी रचना धर्मिता का परिचय दिया। जिसमें नारी अपने यथार्थ रूप में प्रस्तुत हुई। कृष्णा सोबती समकालीन कथाकारों में एक अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्तित्व हैं। नारी होने के कारण उन्होंने नारी हृदय की पीड़ा को गहराई से अनुभूत किया है। नारी मन के विशिष्ट भावों का अत्यन्त सूक्ष्म, मार्मिक व सांगोपांग चित्रण करने में उनके कथा साहित्यपूर्ण सफल हुए हैं तथा वर्षों से उपेक्षित युगों से तिरस्कृत, शोषित नारी में नव्य जीवन की आशा जाग्रत करने में सक्षम है। उन्होंने नारी की सम्पूर्ण दुर्बलताओं को दूर करके उसे अदम्य शक्ति सम्पन्न बनाया है। “जीवन की यथार्थ, स्त्री की अस्मिता का सवाल, नारी-पुरुष सम्बन्ध सभी विषय बेबाक होकर प्रस्तुत करने वाली लेखिकाओं में सबसे अलग और सशक्त लेखिका हैं – कृष्णा सोबती।” सोबती जी की कहानियों का प्रमुख केन्द्र बिन्दु स्त्री है। स्त्री के शोषित दमित व कुण्ठित व्यक्तित्व को उभारने का भरसक प्रयत्न लेखिका ने किया है। “वे स्त्री को अपने अस्तित्व की पहचान व निर्माण करने की प्रेरणा देती हैं। परिवार की प्रमुख सूत्रधार

और धुरी नारी ही है। अस्तु उसे परिवार के परिप्रेक्ष्य में चित्रित करने का प्रयास उनकी कहानियों में है। नारी सम्बन्धों को विभिन्न सन्दर्भों में चित्रित किया गया है, जिसमें हर सम्भव नारी गरिमा व महत्ता को रूपायित करता है।" व्यक्ति का परिवार से सम्बन्ध तथा व्यक्ति और समाज के संबंध आज शिथिल होते जा रहे हैं। लेखिका इन रिश्तों की संवेदना और रिश्तों में आते बिखराव को गहरायी से महसूस कर उसे पाठकों के सम्मुख सच्चाई से प्रस्तुत करने में सफल हुई है। अनुभवों के सहज संप्रेषण और मानवीय विसंगतियों को समेटने की दृष्टि से कृष्णा जी की रचनायें विशेष महत्व रखती हैं।

'बादलों के घेरे' कहानी संग्रह में चौबीस कहानियाँ संकलित हैं। जिसमें "भोला-बादशाह, एक दिन, बहिन, दादी अम्मा और बदली बरस गयी कहानियाँ नारी सम्बन्धों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करती है।"³ इसमें स्त्री के अनेक रूप अपने विशेष चरित्रों को लेकर पूर्णक्षमता के साथ प्रस्तुत है। कहीं वह माँ है, कहीं दादी, कहीं सास, कहीं बहू और कहीं पत्नी के रूप में उद्भूत हैं। इतने अधिक सम्बन्धों में बंधी स्त्री अकेली नहीं है, परन्तु वह इनके बीच उपेक्षित और पीड़ित है, ऐसी उपेक्षा और पीड़ा से बाहर निकालकर इसे अपने साहस से परिचित कराने का प्रयास कृष्णा जी ने किया है। इन कहानियों में नारी अपने पराजय को स्वीकार नहीं करती और जीवन के प्रति अटूट आस्था व्यक्त की गयी है। संकलन की सभी कहानियाँ अपने आपमें कृष्णा सोबती के सृजन और सामाजिक सजगता के प्रमाण हैं।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में नारी की परिवर्तित स्थिति और दृष्टिकोण के बाद भी नारी शोषण का शिकार हो रही है। समाज, अर्थ, धर्म, व्यक्ति सभी के द्वारा आज भी नारी कहीं न कहीं शोषित है। नारी नवीन और पुरातन के मध्य संघर्ष करती हुयी कहीं पुरातन को मान रही है और कहीं उनके विरोध में नयी स्थापनाएं कर रही हैं। कृष्णा सोबती की बहनें, बदली बरस गई, तथा न गुल था न चमन था' कहानियों में स्त्री की यातना को सामाजिक सन्दर्भों में प्रस्तुत किया है। बदली बरस गई' एक ऐसे युवती की कहानी है जो अपनी यंत्रवत् जिन्दगी से ऊब गयी है और पलायन करने का निर्णय लेती है। कल्याणकारी आश्रम के भोजन गृह में काम करती फूल चुनती, भजन कीर्तन करती परन्तु उसका मन उन सबमें नहीं लगता था। एक दिन कल्याणी ने हिम्मत करके महाराज और माँ के सामने आश्रम छोड़कर अपना घर बसाने की बात की। कल्याणी के माध्यम से लेखिका ने ऐसी नारी का चित्रण किया है। जो आधुनिक है, जिसके लिए सबसे महत्वपूर्ण उसका स्वअस्तित्व है। लड़की बड़ी होने पर ईश्वर को फिर स्वामी और माँ की अधिभौतिकता की सत्ता को अस्वीकार करके अपना घर बसाने की इच्छा से आश्रम छोड़ देती है। झूठे आदर्शों के नगर को वह सहज मानवीय आवश्यकता और भौतिकता के प्रहार से ध्वस्त करती है। वटरोही जी ने कल्याणी के संबंध में कहा है कि "इसमें स्त्री के तन-मन के विकास को अत्यंत सूक्ष्म ढंग से रेखांकित किया गया है।"⁴

ऊपरी दृष्टि से तो स्त्री-पुरुष संबंध दांपत्य, परिवार, प्रेम जैसे सरल समीकरण लगते हैं किन्तु इन संबंधों की इतनी सपाट स्थितियाँ नहीं होती। अंतर्मन के और बाहर के ऐसे अनेक कारण होते हैं। जिनसे ये और इनसे जुड़े अन्य संबंध सूक्ष्मतर अनुभवों तथा प्रतिक्रियाओं को जन्म देती हैं। कृष्णा सोबती ने संबंधों की सूक्ष्मता को गहराई से पकड़ा है और इन संबंधों का सही और प्रतीतिपूर्ण विश्लेषण किया है। 'बादलों के घेरे' 'कुछ नहीं-कोई नहीं', 'दोहरी सांझ', 'पहाड़ों के साए तले' जैसी कहानियाँ स्त्री-पुरुष संबंधों के विभिन्न परिपाश्वर्य तथा अनुभवों के अंतरंग चित्र हैं। 'बादलों के घेरे' कहानी की नायिका मन्नो टी0बी0 की मरीज है। परिवार के लोगों के साथ मन्नो को उठने-बैठने नहीं दिया जाता वह निःसंगभाव से सब कुछ सहती है और अपना दुःख प्रकट नहीं करती। बिखरी हुयी नारी संपर्कों के लिए तरसने का चित्रण इस कहानी में हुआ

है। व्यक्ति-मन की विवशता को कृष्णा सोबती ने बड़े ही सूक्ष्म और कलात्मक ढंग से व्यक्त किया है। “बादलों के घेरे” जीवन की सहज-स्थितियों का अत्यंत यथार्थ और संवेदनशील चित्र प्रस्तुत करती है और अकेलेपन की व्यथा से संबद्ध एक सनातन मानवीय संवाद भी।⁵ लेखिका को प्रेम की कोमल संवेदनाओं की छुअन के एहसास को मूर्त करने में पूरी सफलता मिली है। इसी के साथ जीवन में उनकी आस्था इतनी प्रबल है कि निराश प्रेम द्वारा छोड़े गए खालीपन और विवाद के बावजूद उन्होंने उसे पलायन या विरक्ति में परिणत नहीं दिखाया। जीवन तो जीना ही पड़ता है। भले ही विगत प्रेम की स्मृति से मुक्त न हो पाने के कारण हम उसकी याद को ही जीवन का आधार बना लें।

मूल्य संक्रमण की दिशा में सबसे तीव्र और भीषण परिवर्तन पति-पत्नी संबंधों में आया है। पति-पत्नी का एक दूसरे को प्रेम करना, एक दूसरे के प्रति प्रतिबद्ध रहना, त्याग करना आदि बातें आज थोथी भावुकता मात्र रह गयी है। वर्तमान की अतीत से तुलना तब अधिक त्रासद होती है जब अतीत अधिक सुखद और प्रिय हो। अतीत की स्मृति वर्तमान को आच्छन्न किए रहती है। ‘कुछ नहीं-कोई नहीं’ कहानी में शिवा को केंद्र में रखकर इसी मोहभंग और द्वन्द्व को चित्रित किया गया है। शिवा आजीवन अतीत और वर्तमान के द्वन्द्व में जीती रहती है। दस साल तक आनन्द के साथ रहकर भी वह रूप से जुड़ी स्मृतियों से मुक्त नहीं हो पाती। रूप ही उसके जीवन की सबसे गहरी स्मृति है, लेकिन इस स्मृति को साकार करने का साहस उसमें नहीं है। अपनी स्थिति स्वयं ही स्पष्ट करते हुए वह कहती है- “अंधियारे में कुछ हाथ नहीं लगा। पराए प्यार का झूठा अधिकार तक नहीं। कोई दावा तक नहीं।”

एक दिन कहानी में आधुनिक परिवेश में जी रहे स्त्री-पुरुष के संबंधों के नग्न यथार्थ का चित्रण हुआ है। निरंतर बदलते हुए स्त्री-पुरुष संबंधों में कृष्णा सोबती ने आज के जीवन की कड़वी सच्चाई को प्रस्तुत किया है। यह संबंधों के त्रिकोण की कहानी है। मध्यवर्गीय नारी की स्थिति परिवर्तित समाज में भी परंपरागत जैसी ही है। शीला एक ऐसी नारी है। जिसके लिए पति में ही उसकी आत्मा है चाहे वह उन्हें कितना भी प्रताड़ित या अपमानित करें। लेखिका ने बहुत दिनों से अलग-अलग जिन्दगी जी रहे पति-पत्नी के बीच पनपते एकांतों तथा अविश्वास का जीवंत चित्रण मिलता है। शोभन और कुंतल का वैवाहिक जीवन सहज नहीं रह पाया। वे दोनों अलग-अलग व्यक्ति होकर अपने-अपने घेरे में अकेले हैं। शोभन सोचता है- “जो प्यार एक दिन उनकी बांहों में आ लगा था, वह शेष हो गया..... वह शेष हो गया।”⁷

वेश्यावृत्ति एक सार्वभौम समस्या है, जिससे उत्पन्न परिणामों के लिए अकेली नारी जिम्मेदार नहीं है। आर्थिक विषमता और पुरुष की दुर्दमनीय काम-चेतना के कारण ही नारी वेश्यावृत्ति को अपनाती है या उसे विवश किया जाता है। कृष्णा सोबती ने ‘गुलाब जल गंडेरियां, आजादी शम्मो जान की, जैसी कहानियों के माध्यम से इस समस्या की भयंकरता और अमानवीयता से साक्षात्कार कराया है। “वेश्यावृत्ति समाज में व्याप्त एक ऐसा रोग है जिसका उपचार करना अति दूभर है और जिसके लिए पूर्णरूपेण जिम्मेदार कोई है तो आज का समाज।”⁸

इस प्रकार सोबती जी की कहानियाँ सामाजिक सन्दर्भों की रचनाएं हैं। नारी मन की अनुभूतियों की सुन्दर व्याख्या करने में उन्हें दक्षता प्राप्त है। वे निरन्तर नारी अस्तित्व की पहचान हेतु सजग दिखायी देती हैं। वे नारी को पुरुष के समकक्ष स्थान पर आसीन करने का सफल प्रयास अपने नारी पात्रों के माध्यम से करती हैं। उनका चिन्तन सुखानुभूति कराता हुआ निरन्तर संघर्ष करने और प्रगति के मार्ग पर बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करता है। उनके मतानुसार- “जो चिन्तन पलायन की जड़ रोपता है। वह न सिर्फ कमजोर करता है।

वह स्वयं भी कमजोर होता चला जाता है। चिन्तन कितने ही गौरवशाली भव्य आदर्शों से बना हो जीवन के यथार्थ को समेट लेने की स्वीकृति देने की सामर्थ्य नहीं रखता तो नकार दिया जायगा।⁹ सोबती जी ने नारी मनोवैज्ञानिक आधार देकर उसका मनोविश्लेषण करती है। उनकी नारी समाज के रूढ़ियों का विरोध करते हुए अपने ऊपर लगाये गये निरर्थक बन्धनों से मुक्त होकर सभी सामाजिक नैतिक मूल्यों को चुनौती देती है— जो उसके अस्तित्व के प्रश्न को मिटाता है।

सन्दर्भ —

1. सोबती की कहानी कला, सुप्रिया पी-पृ०-दिल की बात से
2. कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में स्त्री का स्वरूप—डॉ० अनिता, पृ०-77
3. बादलों के घेरे—कहानी संग्रह—कृष्णा सोबती—पृ० अनुक्रम से
4. कहानी: संवाद का तीसरा आयाम—बटरोही —पृ० 146
5. वही.....पृ० 145
6. बादलों के घेरे: कृष्णा सोबती—पृ० 88
7. वही.....पृ० 194
8. कृष्णा सोबती की कहानी कला—सुप्रिया पी०—पृ० 84
9. कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में स्त्री का स्वरूप —डॉ० अनिता— पृ० भूमिका से



सांस्कृतिक धरातल पर कोहली के औपन्यासिक चरित्रों में आधुनिकता बोध

श्रवण कुमार प्रजापति
NET, JRF (शोध छात्र)
बाबू शोभाराम कला
महाविद्यालय, अलवर (राज.)

डॉ. हेमा देवरानी
शोध निर्देशक
बाबू शोभाराम कला
महाविद्यालय, अलवर(राज.)

संस्कृति' एक बहुआयामी शब्द है। यह अनेक तत्वों का समन्वित रूप है। भूगोल से इतिहास तक, दार्शनिक विचारधारा से सामाजिक संरचना तक, राजनीतिक चिन्तन से व्यावसायिक व्यवस्था तक, ऋतुओं से लेकर पर्यावरण के स्वरूप तक, जितने भी तत्व हैं सब संस्कृति में समाहित हैं। अथवा यह कह सकते हैं कि इन सबका सामूहिक प्रभाव संस्कृति के स्वरूप का निर्धारण करता है और संस्कृति के अंग—काव्य, संगीत और कला के स्वरूप, लोक—जीवन और सामान्य नागरिक जीवन से अनुप्राणित भी होते हैं और उसे दिशा भी देते हैं। संस्कृति अपने देश की सभ्यता का मापदंड होती है। किसी भी राष्ट्र की अस्मिता की पहचान उसकी संस्कृति से ही होती है। अपनी इसी अस्मिता को बनाये रखने के लिए प्रत्येक राष्ट्र निरन्तर कुछ न कुछ नवीनता को अर्जित करता है। जिसका प्रभाव उसकी संस्कृति पर भी पड़ता है और संस्कृति की इसी आधुनिक अवधारणा को वर्तमान समय में साहित्यकारों ने अपने साहित्य का विषय बनाया है। प्राचीन कथाओं को लेकर आधुनिक स्वरूप में प्रस्तुत करने वाले साहित्यकारों में नरेन्द्र कोहली का नाम प्रमुख है। इन्होंने रामकथा व कृष्णकथा पर आधारित वृहद् उपन्यास लिखे हैं।

उपन्यासकार नरेन्द्र कोहली का औपन्यासिक साहित्य भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का संवाहक रहा है। कोहली ने संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में ही भारतीय मानस की आधुनिकता के सन्दर्भ में पहचान की है। उन्होंने अपने उपन्यासों में अनेक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाए हैं, मसलन—ईश्वर, आस्तिकता—नास्तिकता, बुद्धि और भावना, अंतः प्रेरणा और तर्क, हिंसा—अहिंसा, प्रेम और वासना, पति और पत्नी, सतीत्व, शरीर की पवित्रता, पाप—पुण्य, समर्पण, पुनर्निर्माण आदि। ये प्रश्न हमारी संस्कृति, आचरण तथा जीवन पद्धति के मूल में समाविष्ट हैं, जो आधुनिक जीवन में भी उतने ही प्रासंगिक हैं। इन प्रश्नों को उठाकर नरेन्द्र कोहली ने मानस जगत को सोचने पर विवश कर दिया है। वस्तुतः संस्कृति और समाज से सम्बद्ध मूलभूत प्रश्नों को उठाना और एक बौद्धिक वातावरण में हलचल पैदा करना महान साहित्यकार का दायित्व भी होता है, जिसे कोहली जी ने सफलतापूर्वक निभाया है।

कोहली के उपन्यासों में आधुनिक संस्कृति के संवाहक चरित्रों की सृष्टि हुई है। इनमें राम, लक्ष्मण, सीता, अगस्त्य, मूर्तू, विभीषण, अहल्या, विश्वामित्र आदि 'अभ्युदय' के चरित्रों और कृष्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, द्रोपदी, कुंती, विदुर, अक्षय, व्यास आदि 'महासमर' के चरित्रों ने आधुनिक संस्कृति के विचारों का पोषण किया है। आठ खंडों में लिखा गया 'महासमर' उपन्यास महाभारत के संपूर्ण कलेवर को अपने में समेटे हुए भारतीय जीवन दर्शन तथा व्यवहार को एक साथ रूपायित कर रहा है। लेखक मौलिक ढंग से मानव—जीवन को उसकी जीवंतता में उपस्थित कर सका है। उपन्यास के पात्र पौराणिक होते हुए भी हमारे बीच के हैं। महासमर—4 (धर्म) में द्रोपदी के माध्यम से आधुनिक नारी की पीड़ा को उजागर किया गया है। नारी को समाज में गलत दृष्टि से देखा जाता है उसे केवल भोग की वस्तु माना जाता है। जबकि संस्कृति की अहम कड़ी नारी का विकास सज्जनों में हर्ष और दुर्जनों में द्वेष उत्पन्न करने में सहायक है "सहसा द्रोपदी गम्भीर हो गई। जिस प्रकार किसी विद्वान को अपने ज्ञान का विकास

करने से, वीर को अपने राजनीतिक प्रभाव के प्रसार से तथा व्यापारी को अपने धन में वृद्धि करने से नहीं रोक सकते वैसे ही आप नारी को अपने सौन्दर्य को धार देने से नहीं रोक सकते। और महाराज! हमारा विकास सज्जनों में हर्ष उत्पन्न करेगा तथा दुर्जनों में द्वेष। तो फिर आप हमारा विकास रोक देंगे।”

रामकथा पर आधारित उपन्यास ‘अभ्युदय’ के प्रमुख चरित्रों ‘राम’ और ‘परशुराम’ की नवीन व प्राचीन संस्कृति के संवाहक के रूप में सृष्टि हुई है। समय के प्रवाह के साथ जड़ मानसिकता वाले लोग बदले या न बदले परन्तु युग तो बदल ही जाता है क्योंकि प्रत्येक युग की अपनी एक दृष्टि होती है। जो जड़ दृष्टि को त्यागकर क्रान्ति में सहायक नवीन युगदृष्टि का निर्माण करती है—“तुम शायद ठीक कह रहे हो। मेरी क्रांति—दृष्टि पुरानी पड़ चुकी है, रुढ़ हो गई है। क्रांति तो निरन्तर चलने वाली एक प्रक्रिया है। नित नये संदर्भों को पहचानने वाली। संसार को आगे, और आगे ले जाने वाली। तुम्हारा कहना उचित ही है, न्याय का शत्रु सदा एक ही रूप में नहीं आता। मुझे अत्याचार को उसके नये रूप में भी पहचानना चाहिए था। तुम्हारा निष्कर्ष सही है राम में शायद पुराना पड़ गया हूँ। पिछड़ गया हूँ। प्रत्येक युग की अपनी एक दृष्टि होती है हमारी दृष्टि चाहे न बदले, युग तो बदल जाता है। और सम्मान केवल युग—दृष्टि का ही होता है.....।”

‘राम’ के रूप में कोहली ने एक युग द्रष्टा चरित्र प्रस्तुत किया है जो प्राचीन संस्कृति के आदर्शों के अनुरूप गढ़ा हुआ प्रतीत होता है, परन्तु वही चरित्र वर्तमान समस्याओं के साथ भविष्य में होने वाले सांस्कृतिक अवमूल्यन की ओर ध्यान आकर्षित करता हुआ दिखाई पड़ता है। राम के माध्यम से वर्तमान विवाह संबंधी विसंगतियों को उठाया है। एक स्त्री अपने बिना किसी अपराध के भी इस समाज में उपेक्षा की पात्र क्यों है—“अद्भुत! राम के मुख से अनायास ही निकल गया, चकित हूँ एक असाधारण रूपवती राजकुमारी से विवाह के लिए कोई आर्य राजकुमार प्रस्तुत नहीं। यदि वह अज्ञातकुलशीला है तो उसमें उस कन्या का क्या दोष? हमारा समाज कैसा जड़ है गुरुदेव! वनजा बिना अपराध के दंडित है सीता बिना दोष के अपमानित है। ऐसा क्यों गुरुदेव?”

कोहली ने पति—पत्नी प्रेम और दाम्पत्य सम्बन्धों को भी बड़े सुन्दर ढंग से राम—सीता के चरित्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है ऐसा प्रेम भारतीय संस्कृति का अहम पहलू है इसमें कोहली न केवल पौराणिक चरित्रों की नयी व्याख्या करते हैं, अपितु नारी जीवन को एक नयी आस्था, कोमलता और साथ ही नया आत्मविश्वास प्रदान करते हैं इन्होंने सीता को मानवीय गुणों से भरपूर आदर्श नारी के रूप में प्रस्तुत किया है। जड़ संस्कृति के स्वरूप को भी ‘सीता’ अपने नवीन रूप में प्रस्तुत करती है तथा उसकी नयी अवधारणा प्रस्तुत कर वर्तमान से जुड़ी हुई प्रतीत होती है—“व्यस्त राम को विलंब हो जाता है और वे भोजन के समय घर नहीं पहुँच पाते तो स्वयं भी भूखी रहकर सीता उन्हें शक्ति नहीं पहुँचाती। वे जानती हैं वे स्वयं को अनावश्यक पीड़ा दे रही हैं। सीता के लिए यह संस्कार की बात नहीं है। अपनी बौद्धिकता के बल पर व्यर्थ के संस्कारों को तोड़ने में वे पूर्णतः सक्षम हैं। किन्तु जब पति बाहर से आता है और उसे मालूम होता है कि पत्नी उसके लिए भूखी बैठी है, तो उस कामकाजी जीवन में भी दोनों के बीच कुछ कोमल क्षण जाग उठते हैं। सम्बन्धों की इस कोमलता ने इस कर्तव्यपूर्ण जीवन में भी हरीतिमा बना रखी है। सीता उस हरीतिमा को कैसे छोड़ दें?”

हमारा वर्तमान सांस्कृतिक अधोपतन का प्रत्यक्ष साक्षी है, जिसके चित्र और सन्दर्भ महासमर के वृहत कलेवर में आज की गाथा कह रहे हैं। धृतराष्ट्र के चरित्र के रूप में ऐसे राजा को वर्णित किया है, जो स्वयं अन्याय के रास्ते पर चलता है तथा अपने पुत्र को भी प्रेरित करता है। वह पाण्डवों को राज्याधिकार से वंचित करने के लिए षडयन्त्र रचता है और अपने पुत्रों में भी ऐसे ही संस्कारों को पोषित करता है। इसके परिणामस्वरूप दुर्योधन का उच्छृंखल राजपुत्र के रूप में विकास हुआ, जो अपनी इच्छाओं, स्वार्थों और महत्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने में किसी का प्रतिरोध स्वीकार नहीं कर सकता। कुसंस्कारित दुर्योधन के सम्बन्ध में एक पिता की धारणा भी अच्छी नहीं है। धृतराष्ट्र इस सम्बन्ध में भीष्म से युवा—पीढ़ी में अवमानना—भाव के आधिक्य की चर्चा करते हुए कहता है—“मुझे

अपने पुत्र को पुत्र ही मानना पड़ेगा न! जैसा भी वह है! वयस्क हो जाने पर ये लड़के किसी की बात मानते भी तो नहीं हैं। आप भीम को आदेश दे सकते हैं कि वह दुर्योधन के कार्यों में हस्तक्षेप न करे? न हम इनमें परिवर्तन ला सकते हैं, न इनका किसी और व्यक्ति से विनिमय कर सकते हैं। स्वयं अपना ही दमन कर सकते हैं, इनका दमन तो हमसे होता नहीं। आज की पीढ़ी में विद्रोह बहुत है। मुझे शंका है कि इनमें से किसी का दमन करने का प्रयत्न करूँ, तो कहीं वह अमर्यादित होकर, कुछ ऐसा न कर बैठे जो अशोभनीय अथवा दुःखदायक हो.....।”

आज की युवा पीढ़ी ऐसी संस्कारहीन पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती है जिसमें न धैर्य है, न बड़ों के प्रति सम्मान भाव। उनमें किसी बात या उपदेश को सुनने, ग्रहण करने और मानने का न अवकाश है और न ही संयम—सामर्थ्य। इसके लिए न हमारी शिक्षा व्यवस्था अपितु परिवार और समाज कहीं न कहीं अवश्य ही जिम्मेदार है। इस अपाधापी के युग में शिक्षा का व्यावसायीकरण, संयुक्त परिवारों का विघटन और सेवारत माता—पिता के पास बच्चों के लिए समयाभाव उनके व्यक्तित्व में सुसंस्कारों को भला कैसे पोषित कर सकते हैं?

आधुनिक काल में पुराकथाएँ साहित्य के लोकप्रिय विषय बनकर उभरे हैं। जिनमें समकालीन राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक युगबोध या युग सन्दर्भों को रचनाकर बखूबी अपनी रचनाओं में प्रस्तुत कर रहे हैं। नरेन्द्र कोहली ने पूरा साहित्य की इन्हीं क्षमताओं का उपयोग अपने पौराणिक उपन्यासों के सृजन में किया है, उन्होंने अपने काल के पात्रों व घटनाओं और परिवेश के सूत्रों के दर्शन पौराणिक—साहित्य में किये और पौराणिक महाकाव्यों के खाके में अपने युग सन्दर्भों को आरोपित किया है।

संदर्भ सूची

1. तुलसी—काव्य का सांस्कृतिक अध्ययन — डॉ. जितेन्द्रनाथ पाण्डेय
2. महासमर — 4 (धर्म) — नरेन्द्र कोहली
3. अभ्युदय भाग —1 (दीक्षा) — नरेन्द्र कोहली
4. अभ्युदय भाग —1 (अवसर) — नरेन्द्र कोहली



मंगलेश डबराल व उनकी संवेदना

यदुमति शर्मा

हिन्दी विभाग

बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर (राज0)

मंगलेश डबराल पहाड़ (उत्तराखण्ड) के रहने वाले हैं। अतः पूरा पहाड़ी लोक-जीवन की संवेदना इनके 'पहाड़ पर लालटेन' में साकार हो उठी है। व्यक्ति, समूह, परिवेश, गाँव, शहर, सब पर कवि की दृष्टि गई है। पहाड़ी क्षेत्र के श्रमिकों के सदियों से चले आ रहे शोषण और उसमें पनपी संघर्ष-चेतना को इन्होंने उभारा है। 'लालटेन' संघर्ष-चेतना का प्रतीक है। पहाड़ी इलाके का पहाड़ हर साल दुःख के पहाड़ की तरह ही श्रमिकों पर टूटता है। जन-जीवन में व्याप्त दुःखों का प्रभावशाली चित्र है :

जिसे तुम्हारे पूर्वज लाये थे यहाँ तक
वह पहाड़ दुःख की तरह टूटता आता है हर साल
सारे वर्ष सारी सर्दियाँ
बर्फ की तरह जमती जाती है निःस्वप्न आँखों में
तुम्हारी आत्मा में।

पहाड़ी लोक जीवन में भी संघर्ष-चेतना सम्पन्न नेतृत्व का जन्म हो चुका है। पहाड़ पर 'तेज आँख की तरह' लालटेन जल चुकी है और 'आग' बनती जा रही है :

'दूर एक लालटेन जलती है पहाड़ पर/एक तेज आँख की तरह टिमटिमाती धीरे-धीरे आग बनती हुई।'

मंगलेश जी की कविताएँ उन अनेक चीजों की आहटों से भरी हैं जो हमारी क्रूर व्यवस्था में या तो खो गयी हैं या लगातार नष्ट हो रही हैं। वे उन खोयी हुई चीजों को 'देख' लेती हैं, उनके संसार तक पहुँच जाती हैं और इस तरह एक साथ हमारे बचे-कुचे वर्तमान जीवन के अभावों को पैदा करने वाले तंत्र की पहचान कराती हैं। शहरों में भीड़ क्यों हो रही है? इन सब प्रश्नों का उत्तर देती है डबराल जी की कविताएँ। 'घर' कविता में श्रमिक माँ की यथार्थ तस्वीर वास्तव में यही भारत माता है। इनकी कविताओं में 'मकान' सिर्फ मकान नहीं होता है, पारिवारिक इतिहास भी होता है।

आम जन जब शोषण और अत्याचार को सहन करते-करते थक जाता है तो उसके भीतर न्याय पाने की चेतना जाग्रत होने लगती है। बाबा साहब ने भी ठीक ही कहा था—गुलाम को अहसास करा दो, वह जाग जायेगा। ऐसी ही स्थिति पर्वतीय प्रदेश के शोषितों की है। न्याय और सत्य के लिए संघर्ष करता हुआ मनुष्य ही मंगलेश की कविता का काव्य नायक है :

"दूर एक लालटेन जलती है पहाड़ पर
एक तेज आँख की तरह
टिम टिमाती धीरे-धीरे आग बनती हुई
देखो अपने गिरवी रखे हुए खेत
बिलखती स्त्रियों के उतारे गये गहने
देखो भूख से, महामारी से बाढ़ से भरे हुए

सारे लोग उभर आये हैं चट्टानों से
दोनों हाथों से बेशुमार बर्फ झाड़कर
अपनी भूख को देखो
जो एक मुस्तैद पंजे में बदल रही है
जंगल से लगातार दहाड़ आ रही है
और इच्छाएं दाँत पैने कर रही हैं
पत्थरों पर।”

पहाड़ी लोक गीतों से ये प्रभावित रहे हैं। इस सन्दर्भ में ‘तुम्हारा प्यार’ कवि की आकर्षक कविता है। ‘प्यार लड्डुओं का थाल है, प्यार लाल रुमाल है, प्यार हरा पेड़ है, प्यार गहरी झील है, जहाँ मैं होता हूँ।’

मंगलेश की कविता पेड़ को “करोड़ों चिड़ियों की नींद” से जोड़ती हुई जैसे इस तरह के कब्जे के खिलाफ ही खड़ी है। इनकी कविता में भी वर्तमान राजनीति की कुचक्रता, जो जन-पक्षीय संभावनाओं के लिए दमनकारी ही सिद्ध हुई है, का खुलासा हुआ है। ‘तानाशाह’ कविता में ‘तानाशाह’ सत्ता और राजनीति की भाषा बोलता हुआ अपना जन विरोधी रुख न चाहते हुए भी इस प्रकार जनता के समक्ष ही व्यक्त कर देता है :

‘फिर ही तुम खुश रह सकते हो
अगर हमारे होकर रहो
हम तुम्हारे लिए ही आये हैं
कहते हुए तानाशाह नेपथ्य से आता है
जो हमारा नहीं, उसकी खैर नहीं
कहकर मुस्कराता है।’

एक ओर जहाँ इनकी कविता में राजनीति, कवि की अनिवार्य समझदारी के रूप में अभिव्यक्त हुई है, कवि दूसरी ओर आमजन को हर प्रकार की लोकतांत्रिक, लफ्फाजी और राजनीतिक षडयन्त्र बाजी के विरुद्ध सचेत करता है। राजनीतिक व्यवस्था का आतंक लोक जीवन के मानस तक को आतंकित करता रहता है। कवि ने आम जनता के भीतर व्याप्त व्यवस्था के आतंक को अनुभव कर उसे अपनी संवेदना, ज्ञान और सृजन क्षमता के बल पर अभिव्यक्ति दी है। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था से फैलने वाला आतंक आपातकाल के दौरान जितना बना था, उस समय उतनी ही सशक्त और जनपक्षीय सोच से सम्पन्न कविता ‘तानाशाह’ आई। कवि की करुणा केवल मानव तक ही सीमित हो, ऐसा नहीं है। वह अनुभव करता है कि आज का यह आदमी जो अपने को सभ्य और सुसंस्कृत मानता है, प्रकृति एवं मानवोत्तर जीवों के लिए विनाश का कारण बन जाता है। डबराज जी के प्रति जागरूक हैं। युग-बोध की सोच को कवि ने कई कविताओं में व्यक्त किया है। प्रभावशाली बिंब इनकी कविताओं में आते हैं :

इन ढलानों पर बसन्त
आयेगा हमारी स्मृति में
चारों और पत्थरों से दबा हुआ मुख
फिर उभरेगा झाँकेगा कभी
किसी दरार से अचानक
पिघल जायेगा जैसे बीते साल की बर्फ
शिखरों से टूटते आयेंगे फूल

अंतहीन आलिंगनों के बीच एक आवाज
छट-पटाती रहेगी
चिड़िया की तरह लहलुहान।'

करुणा और विनम्र शिल्प, मंगलेश की कविता की परिचित विशेषताएं हैं। सामाजिक यथार्थ का आश्रय लेते हुए इनकी रचनाओं में धारदार व्यंग्य भी है। ये सचमुच पर्वतीय लोक चेतना के कवि हैं। प्रकृति के मोहक और विश्वसनीय चित्र, वर्ण, गन्ध और स्वर, बार-बार उभर कर आये हैं।

मंगलेश डबराल जनवादी चेतना के कवि हैं। इनकी काव्य कृतियों पर एक विहंगम दृष्टि डालकर कहा जा सकता है कि आज के उपभोगतावाद की बज-बजाती दुनिया के बावजूद समाज में कविता के व्यापक और संवेदनशील कोने बचे हुए हैं। बहुत सामान्य सी लगने वाली चीजों का मर्म भी मंगलेश की कविता इस तरह खोलती है कि उसमें से पूरी दुनिया झांकने लगती है। पहाड़ी प्रदेश की जनता के भीतर संघर्ष चेतना पैदा की है। इन्होंने नारी की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति पर भी प्रकाश डाला है। आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के बावजूद भी नौकरी करने वाली स्त्रियां सुरक्षित महसूस नहीं करती हैं :

'मैंने देखा है कई साल से। स्तब्ध लड़कियों को
जो दफ्तरों से निकलकर
कटे हुए पौधों की तरह फैल जाती हैं
सड़कों पर कहीं न देखती हुई।'

इनकी कविताओं में औरतें हैं, बच्चे हैं और बूढ़े तथा युवकों की यथार्थ स्थिति का चित्रांकन भी है :

जंगल में औरतें हैं, लकड़ियों के गढ़र के नीचे बेहोश
जंगल में बच्चे हैं, रूपमय दफनाये जाते हुए
जंगल में नंगे पैर चलते बूढ़े हैं
डरते-खाँसते अन्त में गायब हो जाते हैं।

इनकी कविता में घर परम्परा से, उत्तरदायित्व से जुड़ा है। घर उत्तरदायित्व के रूप में अंधकार भरे स्वप्न लेकर आता है। मध्यवर्गीय व्यक्ति, परिवार से विरासत में हताशा और निराशा ही प्राप्त करता है :

'यह तो हाथ बांधे सामने खड़ा है, घर है
इसमें काठ का एक सन्दूक है
जिसके भीतर चीथड़ों और स्वप्नों का
एक मिला जुला अंधकार है
इसे पिता ने दादा से प्राप्त किया था
और दादा ने खुद कमाकर।'

दादा की विरासत इन नयी पीढ़ी तक पहुँचते-पहुँचते निःशेष हो जाती है। इस घर में अब भी कुछ व्यक्ति रहते हैं लेकिन उनके जीवन की सारी आशाएं धूमिल होती जा रही हैं। वे जीवन को ढो रहे हैं। एक क्षीण सी आशा की किरण के लिए :

दिन भर लकड़ी ढोकर, यों आग जलाती हैं
पिता डाकखाने में, चिट्ठी का इन्तजार करते हैं
लौटते हैं हाथ पांव में

दर्द की शिकायत के साथ
रात में जब घर कांपता है
पिता सोचते हैं जब मैं नहीं दूंगा
क्या होगा इस घर का तब?

माता—पिता घर के प्रति चिन्तित हैं। मध्यवर्गीय व्यक्ति के मन में परिवार की यह चिन्ता वर्तमान में रहती है लेकिन वह कुछ नहीं कर पाता है। वह परिस्थितियों के सामने विवश है। इनकी कविता महाशक्तियों की होड़, साम्राज्यवादी नीतियों का विरोध करती हुई, विश्वबंधुता, विश्वमैत्री को पुष्ट करती है। इनकी कविता व्यक्ति के मन में उत्तरदायित्व—बोध को जाग्रत कर क्रियाशील बनाती हैं। इनकी काव्य—भाषा जन जीवन की भाषा है। उसमें अभिजात्य, संस्कारों की सजावट नहीं अपितु लोक—चेतना का टकटकापन विद्यमान है तथा मानवीय मूल्यों के स्वस्थ विकास और सार्थक जीवन दृष्टि की कामना करती है।



से.रा. यात्री के उपन्यासों में आम आदमी

डॉ. सुनिल पानपाटील
कला, वाणिज्य महिला महाविद्यालय
नंदुरबार (महाराष्ट्र)

“साहित्यकार अपने युग का प्रतिनिधि होता है, युग की यथार्थ पृष्ठभूमि से प्रभाव ग्रहण करके उन्हें रचनात्मक संगति प्रदान करता है। उसके साहित्य में युग चेतना का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।”¹ इसीलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। स्वातंत्रोत्तर हिंदी उपन्यासकारों में से.रा. यात्री एक ऐसे उपन्यासकार रहे हैं, जिन्होंने युगीन परिवेश को आँका और अपने उपन्यासों में उसे अभिव्यक्त किया। यात्री जी के उपन्यासों के केंद्र में शहरी परिवेश में जीवन जीने वाला मध्यवर्गीय आम आदमी रहा है। इसलिए मध्यवर्गीय आम आदमी के जीवन संघर्ष को यात्री जी के उपन्यासों में पाया जाता है। यह सत्य है कि वर्तमान में शहरी मध्यवर्गीय आम आदमी को जितना संघर्ष करना पड़ रहा है उतना किसी अन्य वर्ग को नहीं करना पड़ रहा है। शहरी मध्यवर्गीय आम आदमी अपने स्टेटस को बनाए रखने के लिए निरंतर प्रयत्नशील है। आम आदमी के जीवन से संबद्ध अनेक सामाजिक एवं पारिवारिक घटनाओं में यातनाओं, मुसीबतों, संघर्ष का मार्मिक अभिव्यक्तीकरण से.रा. यात्री के कुछ उपन्यासों में प्रमुखता से हुआ है। इस शोधलेख के लिए से.रा. यात्री लिखित उपन्यास— कई अंधेरों के पार, अपरिचित, शेष कलंदर, यातना शिविर इन चार उपन्यासों को केंद्र में रखा गया है।

कई अंधेरों के पार

प्रस्तुत उपन्यास में दिल्ली जैसे महानगर में रहनेवाले मध्यवर्गीय आम आदमी की पारिवारिक समस्याओं का चित्रण करते हुए वैवाहिक संबंधों में दरार पैदा करने वाली मध्यवर्गीय मानसिकता की ओर संकेत किया है।

उपन्यास में चित्रित परिवार में धीरेन्द्र, उसके माता-पिता, छोटी बहनें—रानी और रजनी, छोटे भाई—मोहन और अखिलेश एक साथ संयुक्त रूप में रहते हैं। पिता अनाज की आढ़त पर दलाली का काम किया करते थे। उन्हीं के बल पर घर के सारे सदस्यों का गुजारा होता था किन्तु जब खरीद की पुरानी परंपरागत व्यवस्था बदल गई और अनाज की खुलेआम आमद ठप हो गई तब तो सारे घर में कोहराम मच जाता है। घर की स्थिति के बारे में अगर उनसे कोई कुछ कहता तो चिल्लाकर कहते— “मरो सालों—सब मरों—मैंने तुम्हारा नरक भरने का कोई ठेका नहीं ले रखा है।”² यह उस मध्यवर्गीय आम आदमी की खीज है जो परिवार का निर्वाह करते-करते थक चुका हो।

डॉ. थॉमस के विचारानुसार—“मध्यवर्ग का व्यक्ति साधारणतया अधिक व्यावहारिक और समझौतावादी होता है— जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण यथार्थवादी रहता है और उसकी यह यथार्थ वादिता ही उपन्यास जैसी आधुनिक साहित्यिक विधाओं के आविर्भाव में प्रेरक शक्ति रहती है।”³ “कई अंधेरों के पार” में यही व्यावहारिकता और समझौतावादी दृष्टि देखने को मिलती है। धीरेन्द्र का अन्तर्जातीय विवाह इसलिए कराया जाता है कि लड़की नौकरी करती है और उसकी आय से इस बड़े परिवार को सहायता मिलेगी। “छोटा भाई हायर सेकेण्डरी में फर्स्ट डिवीजन लेकर पास हुआ था। पिता की हार्दिक आकांक्षा उसे डॉक्टर बनाने की थी। घर में कमाने वाले पुत्र के साथ कमाउ बहू रहने से एक बेटे को डॉक्टरी पढ़ाना असंभव न रहता, इसलिए खानदान वगैरे को बरफत करके करके अन्तर्जातीय बहू लाने की सोची।”⁴ पिता की इस सोच में व्यावहारिकता के दर्शन होते हैं।

“आम आदमी में समायोजन की प्रवृत्ति विशेष रूप में देखी जाती है। पारिवारिक बीहड़ताओं को ध्यान में

रखकर 'एडजेस्टमेंट' करना ही पड़ता है। इतना बड़ा परिवार और एक ही कमरा होने की वजह से धीरेन्द्र और उसकी विवाहिता शालिनी की सुहागरात छत पर बनी बरसाती में मनाई जाती है। जिस तरह फिल्मों में सुहागरात दिखाई जाती है वैसी मध्यवर्गीय परिवारों में कहाँ होती है? धीरेन्द्र कहता है—“उस बरसाती में फूल, बेल सजावट की कोई गुजाइश नहीं बनती थी। इसके अलावा एक बात यह भी थी कि भले ही माता—पिता ने मेरा अन्तर्जातीय विवाह किया हो, मगर उन लोगों को यह पता नहीं था कि आजकल हर खास—आम सुहागशैया सजाए बिना सुहागरात नहीं मनाता अब मेरी मधुयामिनी महज चांदणी के बल पर ही मधुर होकर टिकी रह सकती थी।”⁵

जहाँ स्वतंत्र कमरे का अभाव हो वहाँ मधुर चांदणी में सुहागरात मनाना मध्यवर्गीय आम आदमी के लिए मजबूरी बन जाती है। इसलिए समझौतावादी दृष्टि उसमें अधिक होती है, जो धीरेन्द्र खन्ना में दिखाई देती है। “जिस लड़की या लड़के का पिछले दिन ही विवाह हुआ हो, वह उस कचकौंध को जरा भी पसंद नहीं करना चाहता है कि उसे जरा—सा एकान्त मिल जाए, मगर हमारे निम्न—मध्यवर्गीय परिवारों में अभी ऐसा वातावरण मिलना बहुत आसान नहीं है।”⁶

मध्यवर्ग के परिवार में आम आदमी हमेशा आर्थिक अभावों के कारण संघर्षरत पाया जाता है। वह अपनी सामान्य आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयत्न होता है। अर्थात् उसमें जीवन जीने का संघर्ष तो है साथ ही सुनहरे भविष्य के प्रति आशावाद भी है। धीरेन्द्र के छोटे भाई मोहन का मेडिकल में चुने जाने का वास्तविक पक्ष सामने आते ही परिवार की आर्थिक स्थिति खुलकर सामने आ जाती है, इसके बावजूद धीरेन्द्र कहता है — “पुरा परिवार बीहड स्थितियों से जुझने की शक्ति अर्जित कर रहा था और धीरे—धीरे मुझे यह विश्वास होता जा रहा था कि मेहनत और निष्ठा के बल पर हम लोग इस जंगी जहाज को तूफान के विरुद्ध निकाल ले जाएंगे।” यहाँ मध्यवर्ग के आम आदमी का यह आशावाद बरकरार है कि वह मेहनत और निष्ठा से पारिवारिक समस्याओं का समाधान कर सकता है।

मध्यवर्ग की सोच और संस्कार आज भी सनातन है। पूरे परिवार के साथ सिनेमा देखना हो तो पत्नी के साथ बैठने को लेकर समस्या बन जाती है। परदे पर नायिका चाहे एकदम नग्न होकर आए और यौनाशय को उदीप्त करने की हर प्रकार की हरकतें करें, इसे हर कोई स्वीकार कर लेता है किन्तु छोटे भाई—बहन साथ हों तो मध्यवर्गीय पति पत्नी की बगल में बैठते हुए भी शर्म का अनुभव करता है। धीरेन्द्र का आत्मालाप है— “शालिनी के साथ अगर मैं अकेला होता तो संभवतः इन दृश्यों का कुछ आनंद लेता। हो सकता है कि मेरा हाथ शालिनी की कलाई या कंधे तक भी पहुँच जाता, परंतु इस समय मैं घोर अपमानित और निस्संग अनुभव कर रहा था। बहिन और भाई निम्न—मध्यवर्गीय नैतिकता के तहत इन अश्लील दृश्यों को सोंस रोककर बर्दाश्त कर रहे थे और मैं अपनी असमर्थता के कारण बेचैनी अनुभव कर रहा था।”⁸ इस तरह स्पष्ट है कि मध्यवर्गीय परिवार का आदमी संस्कारों के कारण उल्लास के क्षणों में भी जड़ और तनावयुक्त रहता है।

उपन्यास में कहाँ—कहीं रचनाकार ने पात्रों के व्यवहार के माध्यम से भी निम्न—मध्यवर्गीय जीवन की ओर संकेत दे दिया है। धीरेन्द्र कहता है—“स्कूल में पढ़ते समय जो ‘सेकेंडहैंड’ साइकिल मुझे दिलवाई गई थी उसे अब मेरे अलावा छोटे भाई ने भी घसीटना शुरू कर दिया।”⁹ यहाँ सेकेंडहैंड साइकिल शब्द प्रयोग ही आम आदमी की सहजता और सामान्यता को प्रकट कर देता है।

धीरेन्द्र और शालिनी के वैवाहिक जीवन में दरार पैदा कर उसे तोड़ने का षडयंत्र शालिनी के माता—पिता और भाइयों द्वारा रचा जाता है और उसमें उन्हें सफलता भी मिल जाती है। वास्तव में पति—पत्नी के बीच ऐसी कोई कड़वाहट नहीं थी किन्तु जिस माता—पिता की नजर बेटी की तनख्वाह पर हो वे ऐसी कुटिल चाल रचते ही रहते हैं। बेटी शादी के बाद स्वतंत्र रहे, परिवार के अन्यो का निर्वाह करने से मुक्त हो जाए यह सोच मध्यवर्गीय

परिवारों में कहीं न कहीं जरूर देखी जाती है। इस दृष्टि से 'कई अंधेरो के पार' उपन्यास में मध्यवर्गीय परिवार की स्वार्थी मानसिकता को दिखाया गया है। डॉ. एम. बी. हिरे लिखते हैं कि " धीरेन्द्र खन्ना को जिन आर्थिक स्थितियों से गुजरना पड़ा है, उसका वर्णन तो यात्री जी ने बेहद शानदार ढंग से किया है। कथा के विस्तार को संक्षेप में समेटने की ओर पात्रों के चरित्र-चित्रण के अलग-अलग पहलुओं को उकेरने की कला में यात्री जी ने कमाल कर दिया है। मध्यवर्गीय युवक के मानसिक उथल-उथल को बड़े ही सुन्दर ढंग से सयंत भाषा में यात्री जी ने प्रस्तुत किया है।"¹⁰

अपरिचित शेष 1988

से.रा. यात्री कृत 'अपरिचित शेष' उपन्यास में निम्न-मध्यवर्गीय आम आदमी की संवेदना को सजीवता के साथ चित्रित किया गया है। इस उपन्यास में रामबाबू एक अवकाश प्राप्त चरित्र है जो अपने परिवार की समस्याओं से आबद्ध है। नौकरी के दौरान वे केवल एक ही बेटी की शादी कर पाये थे। परिवार में सात लड़के-लड़कियों के चार बच्चे कुल बारह-तेरह लोग थे। पेंशन का प्रावधान न होने के कारण प्राविडेण्ट फण्ड की रकम ही मिली थी, जो कुछ दिनों के बाद खत्म हो जाती है। शहरी परिवेश में दो कमरे के सरकारी क्वार्टर में दस-बारह लोगों का निर्वाह करना, ऊपर से बढ़ती महँगाई में लड़के-लड़कियों की पढाई का खर्चा उठाना आदि सारी समस्याएँ रामबाबू के जीवन में दिखाई देती हैं। आम आदमी के जीवन में साधनों का अभाव सबसे बड़ी समस्या होती है। प्रस्तुत उपन्यास का केंद्रीय भाव इसी बात को उद्घाटित करता है। परिवार में घर-बार चलाते समय अनेक बार साधन-सामग्री के अभाव का परिणाम सामने दिखाई देता है। इला कहती हैं- "चाय का पानी मैंने स्टोव पर चढ़ा दिया है। तेल कम है-स्टोव ठीक से नहीं जल रहा है-थोड़ी देर लगेगी चाय बनाने में।" प्रस्तुत संवाद में निम्न मध्यवर्गीय परिवार की समस्या प्रदर्शित हो रही है। चाय का पानी स्टोव पर रखना स्टोव में तेल की कमी स्टोव का ठीक से न जलना आदि कुछ समस्याएँ निम्न मध्यवर्गीय परिवार में देखने को मिलना आम बात है।

मध्यमवर्ग के आम आदमी के जीवन की समस्याएँ भी सामान्य और आम होती हैं। छोटा-मोटा घर, बच्चों की पढाई, उनके लिए नौकरी की तलाश, बच्चों की शादी इन्हीं सारी बातों के जुगाड़ में वह अपना जीवन खपा देता है। डॉ. प्रेमलता गाँधी के मतानुसार, "मध्यवर्ग में शिक्षा का सर्वाधिक प्रचार-प्रसार होता है और वह अपने बच्चों की पढाई-लिखाई का विशेष ध्यान भी रखता है। कोई बँधा-बँधाकर रोजगार न होने के कारण पढाई-लिखाई ही वह साधन है जिससे वह रोजगार पाने की आशा करता है।"¹² उपन्यास में रामबाबू अपनी पत्नी से कहता है। "अच्छा-खासा सुघड़ मेहनती लड़का घर में है। आवारा नहीं है-पढा-लिखाकर काबिल भी बनाया है पर हम अपनी तकदीर को कहाँ ले जाए? इसे सौ दो सौ रुपये तक की चाकरी नहीं मिल रही है, आखिर कोई रास्ता तो निकालना ही पड़ेगा। सबको जहर तो नहीं दिया जा सकता। सुरसा के मुँह जैसे ही बढ़ती महँगाई में हम लोग कितने देर जिंदा रह सकेंगे? हजार-डेढ़ हजार में अभि का दाखिल हो जाएगा तो यह बाद में किसी तरह पढ़-पढ़ाके चार पैसे का कोई काम करने लगेगा।"¹³ रामबाबू के इस कथन में आम आदमी की बेटे के प्रति चिंता तो है साथ ही बढ़ती महँगाई ने निम्न-मध्यवर्ग को किस तरह झकझोर दिया है, यह बात सामने आ जाती है।

डॉ. पी.एम. थॉमस के मतानुसार-"आर्थिक क्षमता, सुख-सुविधाएँ सामाजिक-प्रतिष्ठा आदि कार्यों में सफलता प्राप्त करके ऊपर उठने की धुन में मध्यवर्ग का मन हमेशा अशांत रहता है। अगली पीढ़ी को अपने से अच्छे ओहदों पर देखने की अभिलाषा मध्यवर्ग को अपने बच्चों को सख्त अनुशासन में रखने और उच्चतर शिक्षा दिलवाने की प्रेरणा देती है।"¹⁴ उपन्यास में रामबाबू अपने बेटे अभिषेक की आगे की पढाई के लिए जी तोड़ कोशिश

करते हैं। इसी कोशिश में वे सरकारी क्वार्टर पर पच्चीस हजार रुपये की पगडी ले लेते हैं और स्वयं किराये के मकान में रहने चले जाते हैं। अभिषेक को आगे की पढ़ाई ले लिए लखनऊ भेजते समय रामबाबू कहते हैं—“देखो बेटा, कम-से-कम में गुजारा चलाने की कोशिश करना—घर की हालत तो तुमसे छिपी हुई नहीं है।”¹⁴

दूसरी ओर माँ तो यह चाहती है कि अभिषेक आगे की पढ़ाई के लिए न जाए और कहीं छोटी-मोटी नौकरी हासिल कर घर की जिम्मेदारी उठा ले। माँ अभिषेक से कहती है—“तेरे पिताजी कह रहे थे कि तीन साल तक पढ़ना पड़ेगा। तू इतना पढ़-लिख के कोई काम क्यों नहीं ढूँढ़ता—कहीं कलरकी में ही चला जाता तो कुछ तो मिलता। तू भी और बालकों की तरह पढ़ाई में लग जाएगा तो इस घर की गाड़ी कैसे खिचेंगी? एक-एक पैसे को सबका हाथ तंग है। कितनी महगाई है और सारा घर मोहताज होकर तेरा ही आसरा देख रहा है।”¹⁶ अर्थात् एक ओर पिता में बेटे को आगे पढ़ाकर सुख-सुविधा और सामाजिक प्रतिष्ठा को बढ़ाने की सोच है तो दूसरी ओर माँ आर्थिक क्षमता को देखते हुए परिवार के उदर-निर्वाह के बारे में सोचती है। निश्चित ही निम्न मध्यवर्गीय परिवार में दोनों स्तर की मानसिकता देखी जा सकती है।

आम आदमी की मानसिकता एवं उसके स्वभाव के पीछे उसका परिवेश कहीं न कहीं कारण होता है। विरोधी स्थितियों को जो व्यक्ति भुगतता है उसकी मानसिकता में चिड़चिड़ापण, निराश, हताशा तथा आत्म केंद्रीता आदि प्रवृत्तियों सहज दिखाई देती है। रामबाबू का परिवार इन प्रवृत्तियों से अछूता नहीं है। इस तरह उपन्यासकार ने शहरी परिवेश में रहते एक मध्यवर्गीय परिवार की आर्थिक स्थिति का चित्रण सूक्ष्मता के साथ कर आम आदमी की संवेदना को उजागर किया है।

कलंदर (2001)

‘कलंदर’ उपन्यास में शहरी परिवेश में जीवन जीनेवाले अध्यापक परिवार की विशेषताओं को रेखांकित किया गया है। डॉ. पी.एम.थॉमस के मतानुसार—“आधुनिक समाज में वेतन पानेवाले सरकारी कर्मचारी, छोटे पैमाने के उद्योग-धन्धों के मालिक और व्यवस्थापक, व्यापारी, दुकानदार, डॉक्टर, वकील, साहित्यकार जैसे स्वतंत्र पेशों के लोग, अध्यापक, छोटे या मध्यम दरजे के भू-स्वामी आदि आर्थिक दृष्टि से मध्यवर्ग के सदस्य माने जाते हैं।”¹⁷ से.रा.यात्री स्वयं मध्यवर्गीय जीवन जीने वाले अध्यापक होने के कारण प्रस्तुत उपन्यास में प्रो. नियोग। और रुप। तथा प्रो. दिनेश और निशा के पारिवारिक जीवन को सधे हाथों चित्रित कर उच्च-मध्यवर्गीय परिवार की संवेदना को उद्घाटित किया है।

उच्च-मध्यवर्गीय परिवार के व्यक्ति में आर्थिक सबलता प्राप्त करने की महत्वाकांक्षा अधिक प्रबल होती है। “आर्थिक क्षमता, सामाजिक प्रतिष्ठा, उपभोग का दर आदि में अपने से ऊपरवालों को वह आदर्श मानता है—दूसरों को प्रभावित करके सामाजिक प्रतिष्ठा हड़प लेने की मध्यवर्गीय व्यक्ति की कोशिशें प्रायः खोखली प्रदर्शन की ही रह जाती हैं।”¹⁸ प्रो. नियोगी की पत्नी रुपा दिल्ली के शाहदरा में हायर सैकेण्डरी स्कूल में बिना वेतन अध्यापिका की नौकरी करती है। इस आशा में कि आगे अनुदान प्राप्त होते ही वेतन मिलेगा। कुछ दिनों बाद वह नौकरी छोड़नी पड़ती है किन्तु बाद में गाजियाबाद के इण्टर कॉलेज में अध्यापिका की नौकरी मिल जाती है। आर्थिक संपन्नता की महत्वाकांक्षा के कारण पति-पत्नी दोनों को नौकरी करनी पड़ती है। अतः भागदौड़ उनके जीवन का अंग बन जाता है। इस भागदौड़ भरी जिन्दगी में पति-पत्नी के बीच कुछ तकरार भी होती है। “कौन गृहस्थ होगा जहाँ पति-पत्नी में किसी बात को लेकर कभी न कभी विचारों में भिन्नता न होती हो? पति-पत्नी हमेशा एक-दूसरे के दृष्टिकोण को पूरी तरह ठीक दृष्टिकोण ही समझें या उनमें किसी बात को लेकर सर्वदा मतैक्य ही हो यह व्यावहारिकता में कम ही होता है।”¹⁹ तात्पर्य यह कि उच्च-मध्यवर्ग में जब पति-पत्नी दोनों नौकरी करते हों वहाँ दोनों के विचारों में भिन्नता अधिक दिखाई देती है।

उच्च-मध्यवर्ग में अपने स्टेटस् को बनाए रखने तथा हम अन्यों से सभ्य एवं सुसंस्कृत हैं यह खोखला भाव

जरूरत से ज्यादा देखने में आता है। इसी कारण प्रो. नियोगी के परिवार में कहीं न सहीं यही कुंठा दिखाई देती है।" लगता था रुपा जी अपने मैके और ससुराल की शान को साधनहीनता के बावजूद बरकरार रखने की जी-तोड़ कोशिश में मुक्तिला रहती थी।²⁰

कभी-कभी ऐसी स्थिति भी आ जाती है कि घर में एक पैसा भी न हो और कोई मेहमान घर आ जाए। तब तो जुगाड़ करने के लिए दोस्तों से कुछ रुपये उधार भी लेने पड़ते हैं किन्तु यह मध्यवर्ग का व्यक्ति अपनी आर्थिक स्थिति को प्रदर्शित करने में हिचकिचता है। पैसे उधार माँगने का तरीका भी कुछ अलग ही होता है। प्रो. नियोगी के रिटायर्ड पिता उसके घर कुछ दिनों के लिए आये तो उसने प्रो. दिनेश से आर्थिक सहायता माँगते हुए कहा— "दिनेश भाय! वह ऐसा हैं कि फादर पहली बार ही हमारे पास आये हैं इसलिए उनको ऐसा तो नहीं लगना चाहिए कि हमारी फाईनेन्सल हालत बहुत खस्ता हैं— मेरे और रुपा के पैसे एकदम खत्म हो गये हैं— कम से कम सौ रुपये का खर्चा है। मैं यही पूछने आया था कि क्या आपके पास सौ एक रुपये पड़े होंगे?"²¹ इस तरह उच्च-मध्यवर्गीय परिवार के प्रो. नियोगी अपनी शान को बनाए रखने की हर प्रकार की कोशिश करते हैं। प्रो. नियोगी का परिवार आर्थिक अभाव की पूर्ति कई लोगों से कर्जा लेकर अपने स्टेटस को बनाए रखने में प्रयत्न दिखाया गया है।

यातना शिविर (2006)

'यातना शिविर' उपन्यास में उस मध्यवर्गीय आम आदमी की त्रासदी को अभिव्यक्त किया गया है, जो समस्त परिस्थितियों से जूझता हुआ परिवारिक स्थायित्व के लिए भटक रहा है। इसके लिए उस व्यवस्था के वर्तमान स्वरूप को उजागर किया गया है, जिसके कारण सामान्य जन को यातना शिविर में छटपटाने के लिए विवश होना पड़ता है। " यातना शिविर उन समस्त त्रासदियों को मुखरता से व्यक्त करता है जो इस देश, समाज और परिवेश की नियति की तरह स्वीकार कर ली गई है। समाज में साधारण जन कितना उदासीन, उपेक्षित और फालतू बनकर रह गया है— यही इस 'यातना शिविर' का उपजीव्य है।"²²

आज का युग अर्थ प्रधान है। आर्थिक अभावों भरी जिन्दगी से ऊपर उठने की महत्वाकांक्षा मध्यवर्गीय आम आदमी में जरूरत से अधिक होती है। इसके लिए मध्यवर्गीय आम आदमी रोजगार की तलाश में बड़े शहरों की ओर आकर्षित हो रहा है। प्रस्तुत उपन्यास का नायक वीरेन्द्र कौशिक नौकरी की तलाश में अपना गांव बदायूँ छोड़कर दिल्ली चला आता है। "कौशिक जी के पिता बदायूँ की तहसिल में कारकून थे। वीरेन्द्र जी से छोटे तीन भाई—बहन स्कूल और कालेजों में शिक्षार्थ थे।.... बेरोजगारी की स्थिति में कौशिक बदायूँ जाकर पिता के साथ रहने की बात सोच भी नहीं सकते थे। पहले से ही एक मात्र कमाने वाले पिता लम्बे-चौड़े परिवार का पालन—पोषण करने में हकलान थे।"²³

दिल्ली में कई जगह छोटा—मोटा काम करते हुए वीरेन्द्र कौशिक 'टीचर्स ट्रेनिंग' का कोर्स पूरा कर लेता है। जिसके कारण कस्बा खैर के हाईस्कूल में हेडमास्टर की नौकरी मिल जाती है। नौ बरस तक हेडमास्टर की किन्तु ज्यों ही स्कूल को इन्टर कालिज की मान्यता मिली तो मैनेजमेन्ट ने किसी और को प्रिन्सिपल बना दिया और वीरेन्द्र को सैकिण्ड मास्टर कर दिया गया। वीरेन्द्र वहाँ से त्याग-पत्र देकर धौलाना के 'जनता हाईस्कूल' में हेडमास्टर का पद प्राप्त कर लेता है। वहाँ भी प्राइवेट स्कूल—कालिज की दलगत राजनीति के कारण तनखाह को लेकर महीनों मारामारी मची रहती। अतः वह नौकरी छोड़कर गाजियाबाद के कालेज में प्रवक्ता की नौकरी प्राप्त की जाती है। इस तरह मध्यवर्गीय आम आदमी अपने रोजमर्रा की जिन्दगी को, परिवार की अपेक्षाओं को पूरी करने के लिए निरंतर प्रयत्नशील होता है, यह वीरेन्द्र के जीवन संघर्ष से अनुभव होता है।

देश आजादी के बाद अपेक्षा भंग के कारण मध्यवर्ग के आम आदमी की मानसिकता में बदलाव जरूर आ गया है। उसके सपने और आकांक्षाएँ आर्थिक आघातों के कारण टूट रही हैं। अपनी उलझनों से भरी जिन्दगी को जीना उसकी नियति बन गई है। सामान्य मध्यवर्ग का व्यक्ति अपनी आकांक्षाओं और अपेक्षाओं के साथ

सीधी-सादी जिन्दगी बसर करना चाहता है किन्तु विरोधाभाषों के बवंडर उसे घेरे हुए हैं। वीरेन्द्र कहता है कि "पूँजीवादी, साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों ने हमारी उपनिवेशवादी मानसिकता को अंगद का पाँव बनाकर रख दिया है।"²⁴ जहाँ देखो वहाँ बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। मैन पाँवर के बदले मशीन पाँवर बढ़ गया है, नतीजा नौकरियों की कमी होती जा रही है। ऐसी स्थिति में विशिष्ट नौकरी ही चाहिए; यह मध्यवर्ग का चाव खत्म होता जा रहा है। क्या प्राइवेट, क्या सरकारी, जहाँ पाँव रखने को जगह मिले वही धँस जाओ" की स्थिति बन चुकी है।

वीरेन्द्र जीवन भर अपने परिवार की समृद्धि के लिए संघर्ष करता रहा क्योंकि मध्यवर्ग संघर्ष से टकराकर ही कुछ अर्जित करता रहा है। जीवन के उत्तरार्द्ध में असाध्य बीमारी में जकड़ जाना, पत्नी द्वारा उपेक्षित किया जाना, उसकी मृत्यु आदि घटनाएँ उसी जीवन सत्य की ओर संकेत करती हैं, जहाँ आम आदमी इस संसार में भरे परिवार के पालन-पोषण और तरह-तरह की माया जोड़ने में ही लगा देता है। डॉ. सारिता शुक्ला लिखती हैं कि "दिन-प्रति-दिन गहराते आर्थिक संकट ने शहरों और गाँवों में रहने वाले मध्यवर्गीय जीवन को अत्यधिक झकझोर डाला है। वह विवश होकर टूटता चला जा रहा है।"²⁵ "इस दृष्टि से से.रा. यात्री कृत यह उपन्यास आम आदमी की समस्त पारिवारिक त्रासदियों को उजागर करता है।

निष्कर्षतः :-

कहा जा सकता है कि से.रा. यात्री के उपर्युक्त उपन्यासों में शहरों में जीवन जीने वाले आम आदमी का चित्रण बड़े ही संवेदनशीलता के साथ सजीव रूप में हुआ है। इन उपन्यासों में आम आदमी के जीवन के कई चित्र अत्यंत प्रामाणिकता के साथ अभिव्यक्त हुए हैं। आम आदमी की विभिन्न समस्याओं का लेखा- जोखा परिलक्षित होता है। आम आदमी रोटी, कपड़ा, मकान की जरूरतें जैसे-तैसे पूरी करता दिखाई दे रहा है तो साथ ही शहरी सभ्यता के साथ अपने आप को एडजस्ट करने की कोशिश में व्यस्त दिखाई दे रहा है। वह अपने आप को अभावग्रस्त पा रहा है। इस तरह हम देखते हैं कि शहरी परिवेश में आम आदमी के जीवन के विविध आयाम उपन्यासकार से.रा. यात्री के उपन्यासों में उद्घाटित हुए हैं।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. धर्मवीर भारती: युग चेतना और अभिव्यक्ति, - डॉ. सारिता शुक्ला, पृ. 19
2. कई अंधरों के पार - से.रा. यात्री, पृ. 28
3. भारतीय मध्यवर्ग और सामाजिक उपन्यास, - डॉ. पी.एम. थॉमस, पृ. 37
4. कई अंधरों के पार - से.रा. यात्री पृ. 32
5. उपरिवत्, पृ 34-35
6. उपरिवत्, पृ 35
7. उपरिवत्, पृ 31
8. उपरिवत्, पृ 70-71
9. उपरिवत्, पृ 29
10. कथाकार से. रा. यात्री : व्यक्तित्व एवं कृतित्व - डॉ.ए. म.बी. हिरे, पृ.193
11. अपरिचित शेष, - से. रा. यात्री, पृ. 18
12. नरेश मेहता के उपन्यासों का सांस्कृतिक अनुशीलन, - डॉ. प्रेमलता गांधी, पृ. 103
13. अपरिचित शेष, - से. रा. यात्री, पृ. 42
14. भारतीय मध्यवर्ग और सामाजिक उपन्यास, - डॉ. पी.एम. थॉमस, पृ. 36
15. अपरिचित शेष, - से. रा. यात्री, पृ. 49

16. उपरिबत्, पृ. 32
17. भारतीय मध्यवर्ग और सामाजिक उपन्यास,— डॉ. पी.एम. थॉमस, पृ. 35
18. उपरिबत्, पृ. 36
19. कलंदर — से. रा. यात्री, पृ. 41
20. उपरिबत्, पृ. 41
21. उपरिबत्, पृ. 68
22. यातना शिविर — से. रा. यात्री, पलैप से
23. यातना शिविर — से. रा. यात्री, पृ. 22
24. उपरिबत्, पृ. 10
25. धर्मवीर भारती : युग चेतना और अभिव्यक्ति— डॉ. सरिता शुक्ला, पृ. 104



भारतीय साहित्य में दलित चेतना के विद्रोही स्वर

डॉ. हेमलता सुमन
एसोसिएट प्रोफेसर
नारायण पी० जी० कालेज, शिकोहाबाद

आधुनिक दलित साहित्य का आरम्भ हिन्दी में सन् 1914 ई० में प्रकाशित हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' से माना जाता है। हीरालाल सामाजिक इतिहास में गहरी जानकारी रखते थे उन्होंने जब देखा कथित उच्चवर्गीय आर्य दलित और अति पिछड़ी जाति के बच्चों के स्कूल में छुआछूत की भावना के तहत अलग बिठाया जाता है, तो उन्होंने आर्य समाज से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया और अपना नाम 'अछूतानन्द' रख लिया। इसके बाद अछूतानन्दजी ने दलितों के सामाजिक, आर्थिक संघर्ष को अपनी कविताओं, कहानियों, गजलों और नाटकों के माध्यम से समाज के सामने रखना शुरू किया। अछूतानन्दजी एक समर्थ सम्पादक भी थे उन्होंने 'अछूत' तथा 'आदि हिन्दू' नामक पत्रों का सम्पादन भी किया सही मायने में अछूतानन्द जी दलित चेतना में डॉ० वी०आर० से पूर्व की पीढ़ी को प्रतिनिधित्व कर रहे थे। महात्मा बुद्ध, गोरखनाथ, कबीरदास, रविदास व नामदेव की अगली कड़ी डॉ० अम्बेदकर जी की प्रेरणा से प्रेरित स्वामी अछूतानन्द जी तथा पंजाब से बाबू मंगूराम, महाराष्ट्र से साहित्यकार गोपाल वुबा बलंकर ने दलित साहित्य को अपनी लेखनी द्वारा समृद्ध किया तथा दलित चेतना की अलख जगाई।

सन् 1914ई० से प्रारम्भ दलित साहित्य 100 वर्ष पूरे कर रहा है सामाजिक समता-सम्मान के संघर्ष और देश की आजादी की लड़ाई के कार्य क्रम को ध्यान में रखकर स्वामी जी के साहित्य की बात कर, उनके सम्पादकीय देखने और उनके द्वारा रचित नाटकों की विषय वस्तु का अध्ययन करें तो निर्विवाद रूप से यह एहसास होता है कि वह इस युग के पहले दलित चरमकार भी है और वह उनका प्रभाव कथा या तो रंगभूमि के नायक में 'दलित नायक की छबि' तलाश करने का काम 'प्रेमचन्द की नीली आंखें' में धर्मवीर ने किया—¹

भारत में उन्नीसवीं सदी से मुक्ति आन्दोलन की लहर प्रारम्भ हो गयी थी। सन् 1857 में प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की लड़ाई लक्ष्मीबाई के साथ दलित वीरांगना झलकारी बाई ने भी लड़ी थी, बीसवीं सदी स्वामी विवेकानन्द जी ने 'दलितों की सदी' बताई थी। दलित चेतना की लड़ाई सामाजिक स्तर पर दक्षिण में ई० वी० रामास्वामी नायकर (पेरियार) ने पश्चिम में ज्योतिबाफूले सावित्रीबाई फूले तथा डॉ० अम्बेडकर ने प्रारम्भ की।

हिन्दी साहित्य का आरम्भ लगभग एक हजार ई० से हिन्दी साहित्य के आरम्भिक कवियों में सरयया जी से सिद्धनाथ योगी थे। आदिकाल में गोरखनाथ, आदिनाथ, जालंधरनाथ, या आदि की नाथों-जिनकी संख्या लगभग 76 से लेकर 106 तक मिलती है, मध्यकाल में कबीरदास जी, रविदास सहजोबाई, दयाबाई आदि सन्त कवियों ने भारतीय समाज में सर्वाधिक प्रताड़ित-शोषित दलितों को अपनी वाणी द्वारा मानवीय गरिमा प्रदान की। मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन एक प्रकार से सम्पूर्ण भारत में सामाजिक उत्पीड़न के अनेक रूपों के प्रति उठा विद्रोही स्तर ही था जो आध्यात्मिक स्वरूप लिए हुए था। इन भक्त एवं सन्त कवियों ने अपनी वाणी में जहाँ एक ओर धार्मिक कट्टरता, पाखण्ड, आडम्बर एवं कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठाई

वहीं नानक देव ने बाबर के अत्याचारों से त्रस्त हो कहा –

खुरसान खसनामा किया, हिन्दोस्तान डराया
ऐतिं मार पयी कुरलावे, नैं कि दरदु न आया !—²

कबीरदास जी ने ब्राह्मणों के पाखण्ड पर करारा व्यंग करते हुये कहा—

जे तू बामन बामनी जाया तो आन वाट काहे नहीं आया,
जे तू तुरक तुरकिन जाया तो खतना भीतर काहे न कराया

मुस्लिम समुदाय को भी उन्होंने नहीं छोड़ा –

दिन में रोजा रखत हो, रात हनत हो गाई,
यह खून वह बन्दिगी कैसे खुशी खुदाई ।

वे वैष्णवों तथा क्षत्रियों को भी सचेत करते हुए सभी जातियों के अपनाने, सम्मान देने को कहते हैं—

“साकत बाभण मति मिले वैसनों मिलै चाण्डाल
अंकमाल ते मेरिये, मानो मिले गुपाल ।”

सन् 1960 के लगभग महाराष्ट्र में मराठी भाषा में दलित साहित्य एवं दलित आन्दोलन की शुरुआती मानी जाती है । अमेरिका के ब्लैक पैंथर से प्रेरित महाराष्ट्र में “ दलित पैंथर ” आन्दोलन आठवें दशक में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप ग्रहण कर आम भारतीय भाषाओं में पहुंचा । 1960 में दलित चेतना को “प्रबुद्ध भारत” नामक पत्रिका ने खूब बढ़ाया यह पत्रिका बाद में डॉ० अम्बेडकर जी की ‘ रिपब्लिकन पार्टी का मुख्य पत्र बनी । डॉ० अम्बेडकर एवं ज्योतिबाफुले ने सदियों से उत्पीड़ित दलितों के सोये प्राणों में जान फूंक दी तथा इन्सानी आत्म सम्मान, सामाजिक-आर्थिक हक को दिलाने के लिये इन्हें संगठित किया ।

महाराष्ट्र में ज्योतिबाफुले एवं सावित्री बाई फुले के दलित आन्दोलन प्रारम्भ किया जो बाद में 20वीं सदी में डॉ० अम्बेडकर के नेतृत्व में सही अर्थों में आगे बढ़ा । जर्मनी विश्व विद्यालय से कानून की डिग्री प्राप्त डॉ० अम्बेडकर ने इस मिथक को पुरे जोर तरीके से तोड़ा कि बुद्धि के क्षेत्र में दलित किसी से भी कमतर नहीं है । सन् 1927 में डॉ० ने चावदार झील पर दलितों को पानी देने के अधिकार के लिये आन्दोलन किया, इस अवसर पर डॉ० अम्बेडकर जी ने जो भाषण दिया वह फ्रांसीसी क्रान्ति के समानता व भाईचारे जैसा ही था । डॉ० अम्बेडकर ने कहा कि दलित न तो हिन्दू है न मुसलमान । मुसलमानों की भौति दलितों को भी असेम्बली में आरक्षित सीटें मिलनी चाहिये । डॉ० अम्बेडकर ने दलितों को अपृथ्यता की घिनौनी साजिश से मुक्ति दिलाने के लिये 1947 की सत्ता परिवर्तन के समय पाकिस्तान की भौति आजाद देश – ‘अछूतिस्तान’ की मॉग की जो महात्मा गान्धी को पसन्द नहीं आई और वह विरोध में अनशन पर चले गये । पूना पेक्ट में दलितों के लिये नौकरियों के आरक्षण की व्यवस्था की गई । स्वतन्त्रता, समता, व बन्धुत्व की आकांक्षा रखने वाले हर समाज को संघर्ष की प्रेरणा देते हुये डॉ० अम्बेडकर कहते हैं – ‘मेरे विचार में इस देश के दो दुश्मन हैं, ब्राह्मणवाद और पूँजीवाद.... । ब्राह्मणवाद से हमारा आशय स्वतंत्रता समता और बन्धुत्व की भावनाओं के निषेध से है । यद्यपि ब्राह्मण इसके जनक हैं लेकिन वह ब्राह्मणों तक ही सीमित ना होकर सभी जातियों में घुसा है ।—³

मराठी के बहुचर्चित व सम्मानित दलित लेखक बाबू राव बागुल के अनुसार “दलित साहित्य मानवतावादी साहित्य ही है । इसका मूल्य बोध विश्व के कान्तिकारी साहित्य से जुड़ा है । जो साहित्य आम आदमी को

अपना नायक बनाता है और समाजवाद का पक्ष लेता है वही दलित साहित्य का आदर्श है”।⁴

मराठी दलित साहित्य के प्रारम्भिक लेखकों में अन्नाभाउ साठे का नाम सबसे पहले आता है। सन् 1968 ई. में बम्बई में पहला दलित लेखक सम्मेलन “दलित साहित्य संघ” के नाम से आयोजित हुआ। इस सम्मेलन में पहली बार “दलित साहित्य” एक पारिभाषिक शब्द के रूप में पारिभाषित हुआ। आज इतने वर्षों पश्चात भी जिन मुद्दों पर हिन्दी के दलित लेखकों में बहस हो रही है, उनमें एक महत्वपूर्ण मुद्दे पर इस सम्मेलन के प्रस्ताव संख्या पाँच में कहा गया –

“मराठी में दलितों द्वारा व दलितों पर अन्य लोगों द्वारा लिखे साहित्य की अलग पहचान ‘दलित साहित्य’ के रूप में स्वीकार की जानी चाहिए। इस साहित्य के सांस्कृतिक महत्व को देखते हुए विश्वविद्यालय व साहित्यिक संगठनों को इसे समुचित स्थान देना चाहिए।”⁵

आज दलित साहित्य मराठी में केन्द्रीय स्थान प्राप्त कर चुका है हिन्दी व अन्य भाषाओं में अब यह मुद्दा उठ रहा है कि दलित साहित्य का रचयिता कौन हो सकता है”। हिन्दी में अधिकांश दलित साहित्य के प्रणेता इस मत के पक्षधर हैं” दलितों द्वारा दलितों के जीवन पर दलितों के लिए लिखा साहित्य ही ‘दलित साहित्य’ कहलाने का हकदार है।⁶

अब बात आती है ‘दलितों के जीवन पर’ लिखने के अधिकार की, तो समाज एक ऐसी इकाई है जिसमें विभिन्न समुदाय अपनी प्रकृति एवं प्रकृति के साथ रहते हैं उनमें परस्पर हर प्रकार के सम्बन्ध होते हैं। कोई भी लेखक समाज को जब अपनी रचना का विषय बनाता है तो एक दूसरे से संवेदनाएं जुड़ जाती हैं इस प्रकार दलित लेखक की दलित समुदाय से निकटता या उस समुदाय का अंग होने की स्थिति— अपने समुदाय के प्रति संवेदना, सहानुभूति या अधिक वस्तु स्थिति समझने की बात सहायक हो सकती है, किन्तु समाज के अन्य विभिन्न समुदायों को एक दूसरे के साथ किसी भी रूप में जैसे – विरोध, संघर्ष, जलन आदि में देखा जा सकता है किन्तु उन्हें एक दूसरे से काटकर देखना सम्भव नहीं। इस प्रकार हर लेखक अपनी रचना में एक ही समुदाय के बहुत सारे लोग तथा विभिन्न समुदायों को अपना रचना में चित्रित करता है तब इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि उस रचनाकार की अंतर्दृष्टि उसकी संवेदनाएं उसी समुदाय से न जुड़ जायें या दूसरे के साथ न हों। हिन्दी में अनेक रचनाकार ऐसे सलाहकार हैं जिन्होंने मानवीय संवेदनाओं से अपनी रचनात्मकता में दलित समुदाय से स्वयं को न जोड़ा हो यहाँ तक कि उनमें बिल्कुल घुला मिला न दिया हो। ऐसे रचनाकारों में प्रेमचन्द (गोदान, कथन, रंगभूमि, सद्गति, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला (तोड़ती पत्थर, कुकुरमुत्ता) नागार्जुन, (बुलन्दनामा, कल्चर झील हाजिरगाथा) धूमिल जगदीशचन्द्र माथुर, महादेवी वर्मा आदि प्रमुख हैं।

धूमिल की ‘मोचीराम’ नामार्जुन की ‘हरिजन गाथा’ दलित जीवन की त्रासदी के केन्द्र में रखकर लिखी गयी रचनाएं जो सन् 1932 में मुल्कराज आनन का सर्वप्रथम प्रकाशित उपन्यास ‘अनटचेबुल’ (अछूत) एक महत्वपूर्ण कृति है जो दलित व्यवस्था के मार्मिक ढंग से दर्शाती है। प्रेमचन्द की दलित रचनायें सद्गति, ठाकुर का कुँआ, गवन, अवन, गोदान तथा निराला जी की कुल्लीभाट, चतुरी चमार, अमृतलाल नागर की ‘नाचौ बहुत गोपाल’ जगदीश माथुर कृत तीन उपन्यास ‘धरती धन व अपना’, ‘नरम कुण्ड में वास’ व ‘जमीन अपनी तो थी’ गिरिराज किशोर की ‘परिशिष्ट’ मन्नू भण्डारी का ‘महाभोज’ तथा ओमप्रकाश बाल्मीकि का ‘जूठन’, ‘बस्स बहुत हो चुका’, ‘शायद आप जानते हो’ आदि में दलित जीवन की पीड़ा, क्षोभ तिरस्कार तथा जातिगत भयंकरता को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है—

ओमप्रकाश जी कहते हैं—

“पैदा हुए वैसे ही जैसे होते हैं पैदा
गलियों में कुत्ते बिल्ली,
पैदा हुये वैसे ही
जैसे होती हैं खेत में पैदा—हरी दूब
खर—पतवार, ही इन झाड़, झंखाड़
पैदा हुए वैसे ही
जैसे खाड बनने की प्रक्रिया में
पैदा होता है शीरा,
पेट्रोल से तारकोल।—⁸

पूँजीवाद पर प्रहार करते हुए मार्क्सवादी समर्थक, चिंतकराम, धारीसिंह दिनकर दलितों की अभाव ग्रस्तता पर कराह उठते हैं—

“खाने को मिलता दूध वस्त्र
भूखे बालक अकुलाते हैं
माँ की हड्डी से चिपक
जाड़ों की रात बिताते हैं।—⁹

प्रेमचन्द जी के गोदान में दलितों, शोषितों की सोच को इस प्रकार दर्शाया है “कौन कहता है हम आदमी हैं। हममें आदमीयत कहाँ ! आदमी तो वह है जिसके पास धन है, इख्तियार है, इलम है। हम लोग तो बैल हैं—¹⁰

प्रेमचन्द जी की दलित विमर्श सम्बन्धी लगभग 50 कहानियाँ हैं दर्जनों उपन्यास जिसमें शोषकों द्वारा गरीबों, दलितों के शोषण का वर्णन हृदयस्पर्शी ढंग से किया है। 1934 में एक आन्दोलन में जातिवाद और सम्प्रदायिकता को राष्ट्र का घोर विरोधी बताते हुए प्रेमचन्द जी ने कहा —

“हिन्दू जाति का सबसे घृणित कोढ़ सबसे लज्जाजनक कलंक टके पन्थी दल हैं जो एक विशाल जोंक की भोंति उसका खून चूस रहा है राष्ट्रीयता की पहली शर्त समाज में साम्य भाव का दृढ़ होना है।—¹¹

इसी प्रकार ओमप्रकाश बाल्मीकि जी सीधा—सीधा ब्राह्मण (अपर्था) से प्रश्न करते हैं —

“चूहड़े या डोम की आत्मा
ब्रह्म का अंश क्यों नहीं है
मैं नहीं जानता
शायद आप जानते हों।—¹²

“आदिम रूप ‘कविता में कवि शब्द की शक्ति पर अपना विश्वास व्यक्त करता हुआ कहता है—

“शब्द ! तुम्हें कसम है
एक न एक दिन तुम
उतरोगे पृथ्वी पर — धूप बनकर ।

कबीर की भोंति ओमप्रकाश जी का मन भी त्राहि—त्राहि कर पूँछता है —

“वह दिन कब आयेगा
जब वामनी नहीं जनेगी वामन
चमारी नहीं जनेगी चमार
भंगिन भी नहीं जनेगी भंगी ।
क्या ऐसे दिन कभी आयेंगे

की परम्परा को गिरिराज किशोर ने इस प्रकार स्वीकारते हुए लिखा है –

“रंगभेद और वर्णभेद ऐसा ही नहीं कि केवल रामायण या महाभारत काल में ही हो । आधुनिकता के इस युग में और सभ्य माने जाने वाले देशों में भी वह मौजूद रहा है । हिटलर इस श्रेष्ठतावाद का सबसे बड़ा प्रतीक है”।¹³

मराठी दलित साहित्य में अपनी पीड़ा को आत्मकथा के रूप में अत्यधिक संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत किया है। अब तक लगभग 30 आत्मकथाएँ रची गयी हैं जिनका अन्य भारतीय भाषाओं में भी अनुवाद हुआ है जिनमें प्रमुख हैं – दयापवार कृत बालूत (अछूत) पी० ई० सोन काँवले कृत ‘अठावनीच पक्षी (यादों के पक्षी) लक्ष्मण मानेकृत उपरा (पराया) लक्ष्मण गायकवाड़ कृत ‘उचाल्मा’ उपाल्या (उठाईगीर) शरण कुमार लिम्कले कृत ‘अक्करमासी आदि इन सभी आठ भाषाओं में दलित उत्पीड़न को उभारा है । डॉ० एन० सिंह की ‘‘दर्द के दस्तावेज’’, सुनो ब्राह्मण, मलिखान सिंह की ‘यह तुम भी जानो’ सुशीला टाकमौरै की ‘कुसुम योगी’ की व्यवस्था के विषधर’ प्रमुख साहित्यिक दलित कृतियाँ हैं ।

इसके अतिरिक्त मोहनदास नैमीषरणराय, कंवलभारती जी, सोहनपाल, पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, रनेही जयप्रकाश कर्दम, श्यामसिंह शशी, चन्द्र कुमार वरठै, महिला लेखिकाओं में अमृता पीतम (पंजाबी) रंगनायकम्मा (तेलगू), राजमकृष्ण (तमिल), एम.टी. इन्दिरा (कन्नड़), माधवी कुट्टी, सुजाता कुमारी (मलयालम) आशापूर्णा देवी, महापूर्वतादेवी (बंगला), प्रतिभाराय (इण्डिया), इन्दिराराय गोस्वामी (असमिया), वर्ष अदालजा (गुजराती), बेवी काँवले, कुमुद पावड़े, मल्लिका उमरशेख, कौशलया वैसन्नी (मराठी) आदि ने अपनी अलग पहचान स्थापित की।

पिछले दो दशकों से भारतीय साहित्य में ‘दलित साहित्य–विमर्श’ तथा ‘स्त्री–विमर्श’ केन्द्रीय भूमिका के रूप में उभरा उसने एक सशक्त आधार ग्रहण किया जिसका प्रभाव अन्य भाषाओं–गुजराती, हिन्दी, पंजाबी, मराठी, कन्नड़, मलयालम, तमिल आदि पर सम्माननीय ढंग से पड़ा । इन भाषाओं में प्रगतिवाद से जुड़े प्रसिद्ध कथाकार तथा हंस पत्रिका के सम्पादक–राजेन्द्र यादव, कहानीकार कमलेश्वर महीपसिंह, डॉ० मैनेजर पाण्डे आदि शामिल हैं । रमणिका गुप्ता, जवरीमल पारिख आदि जनवादी लेखक दलित धारा के प्रगतिशील दृष्टि से व्याख्यायित व विश्लेषित करने के उत्सुक हैं ।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय साहित्य में दलितों एवं स्त्रियों का भविष्य प्रगतिपथ पर अग्रसर है । आज ओमप्रकाश वाल्मीकि, दयाशंकर, पी० ई० सोनकाँवले, अर्जुन डांगले, गंगाधर पानतावणे, महीपसिंह, मैनेजर पाण्डे, रमणिका गुप्ता आदि दलित चेतना के सशक्त हस्ताक्षर हैं । इनका साहित्य हमें सत्य – शिव – सुन्दर की भावना से जोड़ता है । जो वस्तु सत्य है भले ही सुन्दर नहीं किन्तु मानवीयता तथा सामाजिक सरोकारों की समर्थक है वही कल्याणकारी व विश्व समुदाय के लिए उपयोगी है । इसमें किसी भी समुदाय के हेय दृष्टि से तथा जातिगत भेद से नहीं बाँटा जा सकता न देखा जा सकता यह कर्म

तो सर्वदा निन्दनीय व घृणित है हमें मानव मात्र के लिए समभाव-समदृष्टि तथा संवेदना लानी होगी तभी हमारा देश उत्तरोत्तर उन्नति करने में सक्षम हो पायेगा और तभी हम सही रूप में मानव कहलाने के अधिकारी बन पायेंगे ।

सन्दर्भ ग्रन्थ —

1. एम समीर— पृ- 69
2. दलित साहित्य, प्रो० चमनलाल, पृ. 13
3. गेल ओमवेट अम्बे एण्ड आफटर द दलित मूवमेन्ट इन इण्डिया घनश्यामशाह, सेजपाल्ले
4. दलित साहित्य और मार्क्सवाद : प्रो० चमनलाल, पृ. 35
5. माता प्रसाद-हिन्दी काव्य में दलित काव्य धारा वि.वि. प्रकाशन, वारणसी 1993, पृ०. 4
6. द पायज द ग्रेड "अर्जुन डामले प्रबुद्ध भारत 4/3/1958, पृ. 242
7. दलित साहित्य एम मूल्यांकन, डा० चमनलाल, पृ. 20
8. उन्नयन-9 धीरज-ओमप्रकाश बाल्मीकि, फु० सिंह 203, पृ. 29
9. दिनकर-हुंकार (विपथगा) पृ 73
10. मुंशी प्रेमचन्द-गोदान-पृ-120
11. विविध प्रसंग पूनम एम. 1962 संस्करण पृ 471
12. 20वीं सदी में हिन्दी दलित कविता : डा० चमनलाल, पृ. 69
13. गिरिराज किशोर : दलित विमर्श, सन्दर्भ गांधी- पृ. 12



प्रेमचन्द की कहानियों में दलित प्रतिरोध

योगेश यादव

हिन्दी विभाग—बी०एच०यू० वाराणसी

दलित शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के दल् धातु से हुई है, जिसका अर्थ है तोड़ना, हिस्से करना या कुचलना। हिन्दी शब्दकोश में इसका अर्थ मसला हुआ, दबाया हुआ, रौंदा हुआ, मान—मर्दित किया गया कहा गया है। अंग्रेजी में दलित शब्द के लिए डिप्रेस्ड कास्ट अनुवाद मिलता है। स्वामी विवेकानन्द एवं रानाडे ने दलित शब्द, महात्मा गांधी ने हरिजन शब्द तथा भारतीय संविधान ने दलित जातियों लिए अनुसूचित जाति शब्द का प्रयोग किया है।

प्रेमचन्द हिन्दी साहित्य में ऐसे पहले साहित्यकार के रूप में आते हैं, जिन्होंने समाज के कमजोर वर्ग—दलित, नारी या पशु को अपनी रचना का केन्द्र बनाया है। प्रेमचन्द को पढ़ते हुए यह अनुभव होता है कि वे दलित की पीड़ा एवं यातना को स्वयं जीकर विश्वसनीयता प्राप्त करते हैं। प्रेमचन्द की कहानियों एवं उपन्यासों में दलितों, कृषकों, मजदूरों, स्त्रियों आदि की पीड़ा तथा उससे मुक्ति प्राप्त करने की चेष्टा सर्वत्र दिखाई पड़ती है।

प्रेमचन्द की 'सद्गति' कहानी में दलित जीवन की बेगारी का यथार्थ चित्रण मिलता है। समाज में सवर्णों द्वारा दलितों का प्रायः शोषण ही किया जाता रहा है। उनसे काम लेकर दाम न देने का जैसे एक नियम सा बना लिया गया था। कहानी में दुखी नाम का एक चमार है, जो अपनी बिटिया की सगाई कर रहा है। प्राचीन परम्परा को मानते हुए साइत पूछने के लिए पंडित घासीराम के घर जाता है। पंडित जी को नजराना देने के लिए घास का गट्ठर भी ले जाता है। पंडित घासीराम ईश्वर के पक्के भक्त थे। आधे घंटे तक चन्दन रगड़ते, फिर तिलक लगाते थे। ठाकुर जी की मूर्ति निकालकर उसे नहलाते, चन्दन लगाते, फूल चढ़ाते, आरती करते, घंटी बजाते, यही उनका नित्य काम था। जब दुखी पंडित जी से साइत दिखवाकर घर जाना चाहता है तो वे अपने घर का सारा काम जैसे गाय को घास डालना, झाड़ू लगाना, बैठक की लिपाई करना, लकड़ी को चीरना तथा खलिहान से भूसा लाकर भूसे के घर में रखना आदि करने के लिए कहते हैं। दुखी जल्दी—जल्दी कार्य करके लकड़ी फाड़ने लगा। लकड़ी फाड़ने के लिए उसने अपनी भूख दबायी, पसीने से लथपथ हो गया, हाँफने लगा किन्तु लकड़ी नहीं फटी। यह देखकर गाँव का एक गोंड जिसका नाम चिखुरी है, वह कहता है "क्यों जान देते हो बूढ़े, दादा, तुम्हारे फाड़े यह गाँठ न फटेगी। नाहक हलकान होते हो।" दुखी ने माथे से पसीना पोंछकर कहा : 'अभी गाड़ी भर भूसा ढोना है भाई।' गोड़ : "कुछ खाने को मिला कि काम ही करना जानते हो, जाके माँगते क्यों नहीं?" दुखी — "कैसी बात करते हो चिखुरी बाम्हन की रोटी हमको पचेगी।" गोड़— पचने का पच जायेगी, पहले मिले तो। मूँछों पर ताव देकर भोजन किया और आराम से सोये, तुम्हें लकड़ी फाड़ने का हुक्म लगा दिया। जमींदार भी कुछ खाने को देता है। हाकिम भी बेगार लेता है, तो थोड़ी—बहुत मजदूरी दे देता है। यह उनसे भी बढ़ गये, उस पर धर्मात्मा बनते हैं।" यह कथन तत्कालीन व्यवस्था पर प्रकार डालता है। साथ ही उस समय दलितों के साथ किये जाने वाले शोषण का भी पता चलता है। चिखुरी गोंड के इस कथन में दलित प्रतिरोध के भी स्वर सुनायी पड़ते हैं।

अन्त में आधे घंटे की कड़ी मेहनत के बाद लकड़ी फट जाती है, लकड़ी के फटते ही दुखी चक्कर खा कर गिर पड़ता है। भूखा, प्यासा, थका हुआ वह मर जाता है। क्षर भर में इसकी खबर पूरे गाँव में फैल जाती है। पंडित जी के घर से कोई भी चमार लाश उठाकर लाने को तैयार नहीं होता है। पंडित ने चमारों को बहुत धमकाया, समझाया, मिन्नत की फिर निराश होकर लौट आये। पंडित चमारों को भ्रष्ट कहते हैं। आज स्वयं चमारों का कार्य

करने जा रहे हैं। प्रेमचन्द लिखते हैं— “पंडित ने एक रस्सी निकाली। उसका फंदा बनाकर मुरदे के पैर में डाला और फंदे को खींचकर कस दिया। अभी कुछ-कुछ धुंधला था। पंडित ने रस्सी पकड़कर मुरदे के पैर में डाला और फंदे को खींचकर कस दिया। अभी कुछ-कुछ धुंधला था। पंडित ने रस्सी पकड़कर लाश को घसीटना शुरू किया और गाँव के बाहर घसीट ले गये। वहाँ से आकर तुरन्त स्नान किया, दुर्गापाठ पढ़ा और घर में गंगाजल छिड़का। उधर दुखी की लाश को खेत में गीदड़ और गिद्ध, कुत्ते और कौए नोच रहे थे। यही जीवनपर्यन्त की भक्ति, सेवा और निष्ठा का पुरस्कार था। एक चमार की ब्राह्मण भक्ति की पराकाष्ठा और एक ब्राह्मण की अस्पृश्यता की क्रूरता की पराकाष्ठा ये दोनों ही चीजें कहानी में उद्घेलित करती हैं। दुखी की लाश की सद्गति का दृश्य चित्र वर्ण व्यवस्था तथा जाति व्यवस्था के कारण भारतीय समाज में व्याप्त मनुष्य- मनुष्य के बीच घृण का ज्वलन्त उदाहरण है।

दलित विमर्श पर आधारित प्रेमचन्द की एक अन्य कहानी ‘ठाकुर का कुँआ’ है। इस कहानी का मूल स्वर यह है कि इन्सान होने की हैसियत से जीने के लिए हरिजन का प्रकृति-प्रदत्त वस्तुओं पर अधिकार नहीं है। साफ हवा और पानी, जिस पर किसी भी व्यक्ति का निजी स्वामित्व नहीं है, उसे भी वह अपनी मर्जी से नहीं पा सकता। ‘ठाकुर का कुँआ’ कहानी का पात्र जोखू बीमार है। हरिजनों की बस्ती कुँएँ में कोई जीव मर गया है। पानी सड़ जाने के कारण पीने लायक नहीं है। जोखू की पत्नी गंगी ठाकुर साहब के कुँएँ से पानी लाकर जोखू को पिलाना चाहती है किन्तु जोखू सवर्णों के रवैये को जानता है और गंगी को ऐसा करने से मना करते हुए कहता है “हाथ पाँव तुड़वा आयेगी और कुछ न होगा। बैठ चुपके से। ब्रह्म देवता आशीर्वाद देंगे, ठाकुर लाठी मारेंगे, साहूजी एक के पाँच लेंगे। गरीबों का दर्द कौन समझता है। हम तो मर भी जाते हैं, तो कोई दुआर पर झाँकने तक नहीं आता। कंधा देना तो बड़ी बात है। ऐसे लोग कुँएँ से पानी भरने देंगे।”² जोखू के इस कथन पर गंगी की जबरदस्त प्रतिक्रिया होती है। उसका विद्रोही दिल रिवाजी पाबन्दियों पर चोटें करने लगा— “हम क्यों नीच हैं और यह लोग क्यों ऊँच हैं। इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं? यहाँ तो जितने हैं, एक से एक छँटे हैं। चोरी ये करें, जाल-फरेब ये करें, झूठे मुकदमें ये करें। अभी इस ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गड़ेरिये की भेड़ चुरा ली थी और बाद में मारकर खा गया। इन्हीं पंडित जी के घर में बारहो मास जुआ होता है। यहीं साहू जी तो घी में तेल मिलाकर बेचते हैं। काम करा लेते हैं, मजदूरी देते नानी मरती है। किस बात में हैं हमसे ऊँचे? हाँ मुँह में हमसे ऊँचे हैं। हम गली-गली चिल्लाते नहीं कि हम ऊँचे हैं, हम ऊँचे हैं। कभी गाँव में जाती हूँ तो रस भरी आँखों से देखने लगते हैं, जैसे सबकी छाती पर साँप लोटने लगता है। परन्तु घमंड यह कि हम ऊँचे हैं।” किसी हरिजन महिला के मुँह से इस तरह की बातें दलित प्रतिरोध के ही स्वर हैं। प्रेमचन्द की यह कहानी हिन्दू समाज में दलित जीवन के अन्तर्विरोधों एवं अन्तर्सम्बन्धों को बड़ी सहजता से व्यक्त करती है।

सन्दर्भ—

1. प्रेमचन्द— मानसरोवर— चतुर्थ भाग, पृ०—23.
2. प्रेमचन्द— मानसरोवर— भाग एक, पृ०—126.



दलित आत्मकथाओं का यथार्थ

डॉ० सियाराम
हिन्दी विभाग
तिलक महाविद्यालय, औरैया

दलित आत्मकथाओं में समय और समाज की आवश्यकतानुरूप चिन्ताओं, समस्याओं और ज्वलंत चुनौतियों को गम्भीरता से उठाया गया है। इनमें परम्परावाद, रूढ़िवाद, ब्राह्मणवाद, सामंतवाद और अमानुषिक व्यवस्था के विरोध-प्रतिरोध का स्वर अत्यधिक प्रबल है। इसीलिए अब तक की प्रकाशित दलित आत्मकथाओं ने हिन्दी साहित्य जगत के पाठकों व आलोचकों में विचित्र प्रकार की बेचैनी उत्पन्न कर दी है क्योंकि "वर्ण और जाति व्यवस्था की कुटिल परम्परा ने जिन्हें जन्मना अछूत माना और उत्पादन के तमाम साधनों और संपदाओं से वंचित रखकर गुलामी की शृंखलाओं में जकड़कर हजारों वर्षों से उनका शोषण-उत्पीड़न किया, आज वे ज्ञान की रोशनी में उसी हृदय-विदारक सत्य को उजागर कर रहे हैं। बहिष्कृतों की वेदना, पीड़ा, वंचना को स्वर दे रहे हैं।"¹ हिन्दी के बेचैन धुरन्धर आलोचक अब दलित साहित्य को फैशन मानते हुए इसकी प्रामाणिकता पर ही प्रश्न उठाने लगे हैं। उन्होंने दलित आत्मकथाओं को बाकायदा उपन्यास के रूप में प्रस्तुत करना आरम्भ कर दिया है। डॉ० नामवर सिंह आदि प्रगतिवादी आलोचकों के अलावा दलित एवं स्त्री विमर्श के प्रख्यात समर्थक राजेन्द्र यादव जी भी विरोधियों की इसी परम्परा में खड़े होते प्रतीत होते हैं क्योंकि प्रो० तुलसीराम की आत्मकथा 'मुर्दहिया' के विमोचन के अवसर पर उन्होंने इसे आत्मकथात्मक उपन्यास कहा। 'मुर्दहिया' यानी 'मुर्दाघर' ऐसे शीर्षक साहित्य के मठाधीशों को नाकाबिले बरदाश्त हैं। स्यात् इसीलिए हिन्दी दलित साहित्यकार डॉ० श्यौराज सिंह बेचैन कहते हैं— "पाषाण हृदय को पिघला देने वाला यह वाक्य सुनकर भी किसी का दिल न पिघले तो साहित्यिक संवेदनशीलता कहाँ बचती है? हिन्दी के दो महारथी, एक आलोचक और दूसरे कथाकार पहली बार पुस्तक के विरोध में एक साथ हो गये। नामवर सिंह की दलित विषयक सीमाएँ तो खैर पहले से ही जाहिर थीं लेकिन राजेन्द्र यादव तो दलित साहित्य के पक्षधर के रूप जाने जाते हैं। उनके स्त्री और दलित विमर्श के बारे में अब तक तो बहुत संदेह की गुंजाइश नहीं थी। फिर भी उस आयोजन में विरोध में इस बिन्दु पर नामवर सिंह, राजेन्द्र जी से सहमत हुए और इस आत्मकथा को उपन्यास माना।"²

आत्मकथा लेखन के लिए आवश्यक साहस और ईमानदारी के मौजूद रहते भी दलित आत्मकथा लेखन की रचनाशीलता से वर्ण-परम्परावादी आलोचक क्यों बौखला गये हैं? वे क्यों दलितों की अमानवीय पीड़ा और व्यथा कथा पर संदेह कर रहे हैं? क्यों हिन्दी के आलोचना के तथाकथित पुरोधा दलित आत्मकथाओं को लगातार उपन्यास कहने का उपक्रम करते हैं? क्या हिन्दी दलित आत्मकथाओं को वे साजिशान नकार रहे हैं कि कहीं ये रचनाएँ हिन्दू समाज के दलितों पर जुल्म का दस्तावेज न बन जायें? ये अथवा ऐसे ही प्रश्न अब दलित रचनाकारों तथा उनकी आत्माभिव्यक्तियों को विचलित नहीं करते और न ही दलित लेखक/चिन्तक इनसे विचलित होते हैं। फिर भी मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अब वह समय आ गया है जब दलित विमर्शकों एवं साहित्यकारों को ऐसे प्रश्नों का माकूल जवाब देना चाहिए, ऐसे अथवा और इस तरह के जो भी प्रश्न हैं उनसे टकराकर जरूरी न होते हुए भी इन पर शोध-पर्यवेक्षण किया जाना चाहिए। ऐसा करने से जो सामाजिक व्यवस्थाएँ चरमरा रही हैं, वे अवश्य ध्वस्त होंगी और जिनका वर्चस्व टूट रहा है, वह शीघ्र टूट जायेगा तथा वर्णवादी आलोचकों की संवेदनशीलता पल भर में उड़न छू हो जायेगी। इस परिप्रेक्ष्य में डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव का प्रस्तुत कथन उचित ही है— "दलित

आत्मकथाओं को उपन्यास कहना, उनकी पीड़ा, दर्द और यातना के संत्रास को तथा अभिव्यक्ति के तेवर को कम करना, मजाक उड़ाना है। दलित आत्मकथाओं पर जो प्रश्न उठाये जा रहे हैं वे तिलमिलाहट के प्रतिरूप हैं या एक सकारात्मक दिशा देने की कोशिश, इस पर गम्भीरता से सोचने-विचारने की जरूरत है। जब कोई दलित लेखक अपने को दोगली संतान कहता है, जब अपने परिवार और समाज की सच्चाइयों को उकेरता है तो क्या उसमें ईमानदारी नहीं है? जीते-जी अपने जीवन की कड़वी सच्चाइयों को बयान करना, कोई मजाक की बात नहीं है और किसी में इतना साहस, ईमानदारी और सच कहने का माददा भी नहीं।³ इसीलिए डॉ० विमल थोराट कहती हैं—“इन आत्मकथाओं में समता, स्वतंत्रता और न्याय की स्पष्ट माँग है। इनमें मुक्ति-आन्दोलन की ताप और ताकत है। ये वेदना के गर्भ से प्रसूत हैं और पुरानी सामाजिक संरचनाओं को अस्वीकार करती हैं। घुटन भरे सामाजिक परिवेश से निकले व्यक्ति की नई दुनिया और समाज की तलाश, परिकल्पना और निर्माण की इच्छा शक्ति और उम्मीद की अभिव्यक्ति इनमें मौजूद है। बेशक बहुत से लेखकों के अपने पूर्वाग्रह भी इनमें मौजूद होंगे लेकिन एक अभिशप्त जिन्दगी के अनुभव को कोई नकार नहीं सकता। इनसे जो स्वर निकल रहे हैं उन्हें सहानुभूति नहीं न्यायपूर्ण ध्यान की आवश्यकता है।”⁴

यद्यपि कतिपय गैर दलित आलोचक-समीक्षक दलित आत्मकथनों की सच्चाई, प्रामाणिकता और कटु यथार्थ पर संदेहशील हैं तथापि गैर-दलितों का एक बहुत बड़ा ऐसा वर्ग भी है जो न केवल दलित आत्मकथाओं को पढ़ता है वरन् इनमें चित्रित यथार्थ को बखूबी जानता, समझता और स्वीकार भी करता है। मानवीय संवेदना से दूर रहने वाले शुतुर्गुर्गी आलोचक-समीक्षक आज इक्कीसवीं सदी में भी देश के छोटे-छोटे कस्बों तथा गाँवों में जाकर (विशेषतः उत्तर प्रदेश, बिहार आदि राज्यों में) देख सकते हैं कि आज भी समर्थ गैर दलितों के घर पर होने वाले मांगलिक आयोजनों तथा मृतक शुद्धि संस्कारों के समय ‘जूठन’ कहाँ जाती है? अथवा त्योहारों या उत्सवों के अवसरों पर जब महिला सफाई कर्मचारी अपने कर्मक्षेत्र में ‘त्योहारी’ माँगती हैं तो उन्हें क्या दिया जाता है? या कि इतनी योजनाओं-परियोजनाओं के संचालन के बाद भी नटों जैसी घुमन्तू जातियों में ‘सिर ढकाई’ की प्रथा आज भी क्यों प्रचलित है? किसी भुक्तभोगी के जीवनानुभव को सदियों से नकारने अथवा कम करने की जिनके पूर्वजों की (क्षमा प्रार्थना के साथ) प्रवृत्ति ही नहीं बल्कि शौक रहा हो, वे दलित तो क्या अपने घरों में रहने वाली माँ-बहनों, बेटियों और पत्नियों की पीड़ा, दर्द अथवा यातनाओं को समझ पाये हैं क्या? राजनैतिक-साहित्यिक गिरोह बनाकर गुटबाजी कर लेना और अपने प्रभुत्व के मोह में ‘सावन के आँधरे’ की तरह सब कुछ ठीक-ठाक देखना ही जिनका शगल है वे दलित साहित्य की पीड़ा तो क्या सामान्य मनुष्य के दुःख दर्द को भी नहीं समझ सकते। दलित साहित्यकारों को न इनकी परवाह थी, और न ही करनी ही चाहिए; उनके लिए जो करणीय है वह वे कर रहे हैं—रचनात्मक-अनुभूतिपूर्ण लेखन। शेष कार्य समाज स्वयं कर लेगा क्योंकि अब समाज का अधिकांश भाग चेतना संचालित है और दलित लेखन के प्रति संजीदा भी।

दलित रचनाकारों के समक्ष गैर-दलित आलोचकों के अस्वीकार व नकार के अलावा भी अन्य अनेक महत्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं। अपनी अस्मिता के स्थापन हेतु उन्हें अभी अनेक अवरोध तोड़ने हैं। अतः उन्हें छोटे-छोटे दुराग्रहों से मुक्त रहते हुए अपनी सम्पूर्ण सृजन शक्ति को दलित साहित्यान्दोलन को गतिशील बनाने में लगाना होगा। फुले-पेरियार-नारायण गुरु-अम्बेडकर ने दलित आत्म-सम्मान और अस्मिता की जो रचनात्मक भावभूमि तैयार की है, संघर्ष का जो दीप प्रज्ज्वलित किया है, वह साम्प्रतिक दलित रचनाकारों के अवदान से और प्रदीप्त हो उठा है। वेदना, आक्रोश और समूल परिवर्तन की आकांक्षा ने सामाजिक समरता को आकार देना शुरू कर दिया है। सदियों से समाज और साहित्य में जो हाशिये के बाहर फेंक दिया गया था, वह आज भारतीय समाज और साहित्य के केन्द्र में आ गया है। इस पर समान रूप से चर्चा और चिन्तन जारी है। समाज और साहित्य में अब अछूतों, अस्पृश्यों, शूद्रों, अतिशूद्रों, चाण्डालों, अन्यजों, अवर्णों, पंचमों तथा हरिजनों की स्वीकृति बढ़ी है। अब इनसे मात्र

घृणा, हिकारत अथवा दया का ही व्यवहार नहीं किया जाता है बल्कि अब इन्हें अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत, अस्मिताबोध की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील माना जाता है। आत्मकथाएँ अब दलित साहित्य के केन्द्र में आ गयी हैं। विविध पेशों, व्यवसायों में कार्यरत दलित व्यक्तियों ने जिस प्रकार का आत्मलेखन किया है उससे स्पष्ट है कि वे अपने बहाने अपनी जाति व समाज के भयावह किन्तु यथार्थ को शेष समाज के समक्ष प्रस्तुत करना चाहते हैं। इस क्रम में उन्होंने सवर्णों-गैर दलितों की शोषण वृत्ति, जातिवादी संस्कृति, सामाजिक भेदभाव उत्पन्न करने वाले कुसंस्कार-अंधविश्वास तथा खान-पान आदि का कटु वर्णन भी किया है। इन आत्मकथाओं के लेखन ने समाज के अन्तिम पायदान पर खड़े दलित-शोषित मनुष्य की व्यथा कथा से न केवल सम्पूर्ण समाज का परिचय कराया है अपितु उनकी दयनीय-दारुण अवस्था में परिवर्तन के लिए आवश्यक चेतना का मार्ग भी प्रशस्त किया है। श्री भगवानदास की 'मैं भंगी हूँ', मोहनदास नैमिशराय द्वारा लिखित 'अपने-अपने पिंजरे', ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन', कौसल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप', डॉ० दयाराम जाटव की 'मेरा सफर मेरी मंजिल', डॉ० माता प्रसाद की 'झोपड़ी से राजभवन', सूरजपाल चौहान विरचित 'तिरस्कृत' और 'संतप्त', श्यौराज सिंह बेचैन की 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर', प्रो० तुलसीराम विरचित 'मुर्दहिया', डॉ० सुशीला टाकमौरे की 'शिकंजे का दर्द', श्री रूपनारायण सोनकर की 'नागफनी', जय प्रकाश कर्दम की 'मेरी जात', एन० आर० सागर की 'जब मुझे चोर कहा', सूरज पाल चौहान की 'घूँट अपमान के', बुद्ध शरण हंस की 'टुकड़े-टुकड़े आइना' डॉ० धर्मवीर की 'मेरी पत्नी और भेड़िया', श्यौराज सिंह बेचैन की 'लदोई' जैसी आत्मकथाएँ भी दलित जीवन के कालिमापूर्ण पृष्ठों को अनावृत्त करती हैं। यदि हम 'कथाक्रम' के हवाले से अपनी बात कहें तो 'ये आत्मकथाएँ दलितों की जीवन-शैली, जीवन-प्रक्रिया और जीवन अनुभवों की यथार्थाभिव्यक्ति कराती हैं और दलित साहित्य की लोकप्रिय विधा भी हैं। इतना ही नहीं, यह एक मूर्त विधा भी है, जो क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं, द्वन्द्वों, कुण्ठाओं, प्रतिरोधों, बिडम्बनाओं का ऐसा इतिवृत्त प्रस्तुत करती हैं। अनुरंजन और काल्पनिक सुख के बरक्स सार्थक जीवन दृष्टि भी जिसमें उपलब्ध होती है, जो व्यावहारिक जीवन में काम आती है। अतः परम्परागत मानदण्डों के अतिरिक्त भी बहुत कुछ है जो मापा जाना चाहिए। अब प्रश्न यह उठ रहा है, वैचारिकता, सार्थक जीवन दृष्टि, अनुभव की सहज निष्कर्षबद्धता क्या आत्मकथा की विधागत स्वाभाविकता के भीतर उसकी सहजात प्रवृत्ति के रूप में अन्तर्लिप्त नहीं है। यदि आप दूसरों की पीड़ा का एहसास नहीं कर सकते तो आप मनुष्यता से कोसों दूर हैं। दलित साहित्य के लेखक इसी एहसास को जगाना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि समाज उनकी पीड़ा को समझे। उनके भोगे हुए दर्द को समझकर शेष समाज उनको बराबरी का दर्जा देना और उसका हकदार होना दोनों स्वीकार कर सकें।'⁵ आज समाज के युवावर्ग में समानता की भावना प्रखर होती जा रही है। निश्चित ही इस सकारात्मक परिवर्तन में दलित आत्मकथा लेखन का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

सन्दर्भ—

1. दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर : डॉ० विमल थोराट, पृ०— 127.
2. www.dalitmat.com. जनवरी— 2011
3. दलित साहित्य के विविध आयाम : डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव, पृ०— 279.
4. दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर : डॉ० विमल थोराट, पृ०— 25.
5. कथाक्रम, जनवरी-मार्च, 2004, पृ०— 50.



समग्र विकास की ओर संगीत चिकित्सा के बढ़ते कदम

डॉ० ज्योति सिनहा

प्रवक्ता-संगीत विभाग

भारती महिला पी०जी० कालेज, जौनपुर (उ.प्र.)

संगीत चिकित्सा पद्धति के निमित्त एक संगीत चिकित्सक music therapist की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। किसी भी रोगी को अपने चिकित्सक के सम्पर्क में अधिक रहना पड़ता है, ऐसे में चिकित्सक के साथ वह मानसिक व भावनात्मक रूप से जुड़ जाता है तथा औषधि के साथ ही चिकित्सक के व्यक्तित्व से भी वह प्रभावित होता है। ऐसे में रोगी की न सिर्फ सुरक्षा की भावना बलवती होती है बल्कि रोग प्रतिरोधक क्षमता में भी वृद्धि होती है। रोग से लड़ने की शक्ति उपचार को सफल बनाने में, निरोग व दीर्घायु होने में सहायक होती है। अतः हर रोगी का अपने चिकित्सक के साथ एक मनोवैज्ञानिक भावात्मक लगाव होता है। ऐसे में चिकित्सक की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

प्राचीन ग्रंथों में भी चिकित्सक व उसके गुण-दोषों की चर्चा मिलती है। ग्रंथों के अनुसार “ईश्वर अर्थात् परमेश्वर भव रोग वैद्य कहे गये हैं। श्री रुद्रध्याय में उन्हें ‘भिषक्’ कहा गया है, इसीलिये उसमें प्रार्थना आती है “हे त्रायम्बक वेद रूप पुण्यात्मा परमेश्वर। मृत्यु के पाश से हमको बचाओ, जन्म-मरण से हमें मुक्त करो और हमको अमृतत्व प्रदान करो।”¹ आयुर्वेद में चिकित्सकों के सन्दर्भ में उल्लेख मिलता है। चरक संहिता के अनुसार ‘चिकित्सा के चार आधारों भिषक, द्रव्य, उपचारक व रोगी में भिषक् अर्थात् वैद्य का स्थान सर्वोपरि है। किसी भी चिकित्सा में प्रधान कारण वैद्य ही है। जिस वैद्य में विद्या, वितर्क, विज्ञान, स्मृति, तत्परता और क्रिया रहती है। उसके लिये साध्य रोग को नष्ट करना असम्भव नहीं। रोग के ठीक होने में रोगी की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। रोगी के गुण, उसकी याददाश्त अच्छी हो, निर्देश के अनुसार कार्य करे, डरपोक ना हो और रोग शिकायत को बता सके। चरक संहिता के संग्रहाध्याय में वैद्य के गुण बताये गये हैं।”² आयुर्वेद में चिकित्सकों की आचार संहिता का विवरण चरक, सुश्रुत ने 406 राग, रोग व रोगी: अन्तः सम्बन्धों का विश्लेषणात्मक अध्ययन स्थान-स्थान पर किया है। चरक लिखते हैं कि जो चिकित्सक अपने स्वार्थ को एक तरफ रख केवल प्राणियों की हित की कामना से चिकित्सा कार्य करते हैं, वे ही सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक हैं। उन्हें समस्त व्याधि ग्रस्तों को पुत्र मानते हुये उन्हें रोगमुक्त करने का प्रयास करना चाहिये। चिकित्सक को आजीविका के बारे में आश्वस्त करते हुये कहा गया है कि “कहीं धन मिलेगा, कहीं मित्रता, कहीं पुण्य, कहीं यश, कहीं से कर्माभ्यास। अतः चिकित्सा कार्य कभी निष्फल नहीं होता। चिकित्सक के प्रति रोगी का विश्वास इतना होता है कि वह अपना जीवन उसे सौंप देता है। चिकित्सक को सदैव पक्षपात रहित होकर सत्य निष्ठा से कार्य करना चाहिये।”³ संगीत चिकित्सा के संदर्भ में हम देखें तो पाते हैं कि यह चिकित्सा पद्धति अन्य पद्धतियों से बेहद पृथक है, अतः संगीत चिकित्सक को पद्धति के अनुरूप ही कार्य करने की आवश्यकता है। संगीत चिकित्सा को भली प्रकार समझने के लिये कुछ सहायक शास्त्रों का अध्ययन भी नितांत आवश्यक है। जैसे ध्वनि विज्ञान (Acoustics) सौन्दर्यशास्त्र (Aesthetics) विभिन्न मानव जातियों के व्यवहार के सम्बन्ध में संगीत शास्त्र का अध्ययन (Ethnomusicology) मनोविज्ञान (Psychology) शरीर रचना विज्ञान (Physiology) समाजशास्त्र (Sociology) एवं संगीत शिक्षण शास्त्र व संगीत शास्त्र (Musicology)। इन विषयों के साथ संगीत को जोड़कर संगीत चिकित्सा को सबल एवं प्रभावी बनाया जा सकता है। संगीत चिकित्सा से पूर्व चिकित्सक को कुछ महत्वपूर्ण बातों को जानना, जो रोग व रोगी से सम्बन्धित है, अत्यंत आवश्यक है”⁴ —1. पारिवारिक पृष्ठभूमि को जानना।

2. पारिवारिक सदस्यों का रोगी के प्रति व्यवहार व कार्य को जानना। 3. परिवार में रोग का इतिहास क्या है, जानना। 4. रोगी की अनुभूति व भावनाओं को जानने समझने की कोशिश करना। 5. मनोचिकित्सकों से काउंसलिंग करके यह जानने की कोशिश करना कि रोगी के मन-मस्तिष्क में कैसा विचार चल रहा है। 6. जरूरत पड़ने पर शारीरिक परीक्षण भी करवाना हितकर है ताकि शारीरिक अवस्था व मन पर पड़ रहे उसके प्रभाव को समझा जा सके। सांगीतिक उपचार पद्धति में सर्वप्रथम किसी भी रोगी को स्वस्थ करने के लिये उसकी मानसिक स्थिति को पूरी तरह समझना अति आवश्यक है। उसका स्वभाव, बर्ताव और रोग के अनुसार उसका पूरा अध्ययन करने के बाद ही चिकित्सा पर विचार किया जा सकता है। रोगी अपनी प्रकृति के अनुरूप ही संगीत सुनता है एवं प्रभावित होता है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक विशिष्ट रुचि होती है। ऐसे में संगीत चिकित्सक को संगीत सुनाने व सुनने की सलाह देने में काफी सोच-समझ की आवश्यकता होती है।

समस्त विश्व में भिन्न-भिन्न प्रकार का संगीत प्रचलित है। चिकित्सा करने से पूर्व रोगी की पसंद व देश, काल, संस्कृति को ध्यान में रखना अति आवश्यक है। रोगी का उनके देश के एवं पसंदीदा संगीत द्वारा चिकित्सा ज्यादा लाभकारी एवं असरकारक होगा। रोगी/मनुष्य अपनी पसन्द व स्वभाव के अनुसार ही शांत/उत्तेजक संगीत सुनना पसन्द करता है। उसे ध्यान में रखकर ही संगीत चिकित्सक को भावयुक्त संगीत सुनाना चाहिये जिससे वह मनोवांछित लाभ प्राप्त कर सके। क्योंकि संगीत चिकित्सा का यह आवश्यक तत्व है कि सुनाये जाने वाले संगीत, शैली, विधा का रोगी को समझना व पसन्द होना चाहिये। एक ही संगीत के प्रति कोई रोगी अति संवेदनशील हो सकता है तथा कोई रोगी प्रतिकार भी कर सकता है। सभी की आकलन शक्ति भी एक समान नहीं होती। अपने-अपने भावात्मक और चिन्तनात्मक विकास के अनुसार प्रत्येक को कोई विशेष संगीत ही अच्छा लगता है। रोगी यदि संवेदनशील नहीं हुआ तो उसके रोग के ठीक होने की सम्भावना भी कम हो जाती है। चिकित्सा के रूप में संगीत के प्रयोग करने से पहले यह आवश्यक निर्धारित करना चाहिये कि किस प्रकार के संगीत का उपयोग हो। रोग व रोगी के समस्त विशिष्ट कारणों को ज्ञात करने के पश्चात् अनुभवी व धैर्यवान चिकित्सिक गायन-वादन, नृत्य का आश्रय लेकर मनोवैज्ञानिक पाने से शोर के समान है एवं उसे आनन्द देने की अपेक्षा विचलित भी कर सकता है। साथ ही मात्र संगीत चिकित्सा से रोगी का इलाज नहीं होना चाहिए वरन् दवाओं के माध्यम से रोगी का इलाज करते हुये संगीत चिकित्सा को सहायक पद्धति के तौर पर प्रयोग किया जाना चाहिए। इसलिए हर रोगी के लिए उसकी स्थिति के अनुरूप दवा का चयन करने की ही तरह संगीत का लाभ दिया जाना लाभप्रद है। प्रत्येक रोगी को बिना उसकी विशिष्ट स्थिति एवं आवश्यकता को समझे बिना उपचार की दिशा सही नहीं होगी। मनोरंजन व चिकित्सा भिन्न-भिन्न है। जो संगीतज्ञ 'संगीत चिकित्सक' (Music Therapist) के रूप में अपना कैरियर बनाना चाहते हैं उन्हें धैर्य, सहनशीलता, व्यावहारिकता व संवेदनशीलता का गुण स्वयं में विकसित करना होगा। इसके अतिरिक्त उनमें ध्वनियों को खोजने तथा उनकी व्याख्या करने की क्षमता होनी चाहिए।

'संगीत चिकित्सक' अत्यंत महत्वपूर्ण पद है जिसमें वे लय व माधुर्य का प्रयोग कर भावनात्मक तथा मानसिक रोगों का उपचार करते हैं। ये सभी आयुवर्गों के लोगों की विकासात्मक अपंगता, मानसिक विकृतियाँ, शारीरिक विकलांगता, मानसिक अवसादों सहित न्यूरोलाजिकल समस्याओं का संगीत से निदान करते हैं। एक प्रोफेशनल संगीत चिकित्सक बनने के लिए शिक्षा-रोजगार के क्षेत्र में भी अनेक पाठ्यक्रम विभिन्न संस्थाओं द्वारा संपादित किये जा रहे हैं। संगीत चिकित्सा से स्नातक, मास्टर या डॉक्टरेट डिग्री प्राप्त किया जा सकता है।¹ राग, रोग व रोगी: अन्तः सम्बन्धों का विश्लेषणात्मक अध्ययन संगीत चिकित्सा में डिग्री के लिए भारत व अन्य देशों में अनेक संस्थायें कार्यरत हैं। संगीत चिकित्सा में डिग्री के लिए स्वर वाद्यों, ताल वाद्यों के ज्ञान, स्वर संगीत सिद्धांत, संगीत इतिहास, संगीत प्रदर्शन के साथ ही मूल्यांकन, प्रलेखन तथा अन्य स्वास्थ्य कौशल के भिन्न स्तरों में प्रवीणता की आवश्यकता होती है। एक सहायक चिकित्सा पद्धति के रूप में संगीत चिकित्सा पद्धति उपयोगी व उत्कृष्ट साबित

हो, लाभकारी व फलप्रद हो, इसके लिए योग्य संगीत चिकित्सक का होना अपेक्षित है। उचित ज्ञान व अनभ से संगीत चिकित्सक रोगी के रोग को दूर कर उसे निरोग व दीर्घायु जीवन प्रदान कर सकता है। रोगी के पसन्द-नापसन्द का ध्यान रखते हुए उचित संगीत का प्रयोग, संगीत की एकात्मता एवं उसमें निहित विशिष्ट गति भाव रोगियों के मन को स्थिर एवं शान्त रखने में समर्थ सिद्ध होती है। विद्वानों ने भी कहा है कि "It is however important to know the method and duration for while Music Therapy is to be administered. This knowledge can be obtained through regular experiments and experience. The first step towards this is the correct diagnosis of the disease and than the selection of the precise raga that will be helpful. Procedure, discipline and a systematic method will help achieve this goal."⁸ संगीत चिकित्सा की प्रक्रिया शान्त वातावरण में अपेक्षित है। रोगियों को यदि नियमित रूप से रोज संगीत सुनाया जाये तो वे शीघ्र आरोग्य लाभ पाते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि चिकित्सा के रूप में संगीत का प्रयोग करने से पहले यह अवश्य पता करना चाहिये कि किस प्रकार के संगीत का उपयोग हो। संगीत चिकित्सा का सिद्धान्त, सही स्वर शैली तथा संगीत के मूल तत्वों के सही प्रयोग पर ही निर्भर करता है। संगीत सदा से ही मानव के लिये कल्याणकारी रहा है। आज भी उसी रूप में इसके प्रयोग पर बल देना चाहिये। संगीत अपने मूल उद्देश्य को पूरा कर सके, अपने शाश्वत-सनातन स्वरूप को स्थिर रख सके इसके लिये हमें पूरा प्रयत्न करना चाहिए और उसे सउद्देश्य के लिए प्रयुक्त होने देना चाहिए साथ ही यह सदैव स्मरण रखा जाना चाहिए कि संगीत की उपयोगिता तभी है जब उसे उच्च उद्देश्य के लिये प्रयुक्त किया जाये। पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने कहा है कि "यह विश्व संगीतमय है, संगीत ही इसकी प्रेरणा और प्राण शक्ति है। यह तत्व इतना महत्वपूर्ण और शक्ति सम्पन्न है कि इसके उपयोग से हम मृत्युन्मुख जीवन को अमरत्व की ओर, निराश जीवन को आशा की ओर तथा व्यथित और परिक्लान्त जीवन को शाश्वत शांति और आनन्द की ओर अग्रसर कर सकते हैं।"⁹

संदर्भ सूची :

1. अखण्ड ज्योति पत्रिका, अंक-अक्टूबर 2009, पृ. सं. 18
2. आयुर्वेद का इतिहास, अत्रिदेव वेदालंकार, पृ. सं. 128
3. अखण्ड ज्योति पत्रिका, अंक-अक्टूबर 2009, पृ. सं. 20
4. विभिन्न चिकित्सों से व्यक्तिगत संवाद के आधार पर
5. [www.indiannetzone.com/15/concept music therapy](http://www.indiannetzone.com/15/concept%20music%20therapy)
6. एस नायक व अन्य (2000) गम्भीर मस्तिष्कीय घाव व दौरों से पीड़ित व्यक्तियों के बीच उनकी मनोदशा और सामाजिक सम्बन्धों पर संगीत चिकित्सा का प्रभाव, पुनर्वास मनोविज्ञान 45(3) 274-283
7. संगीतज्ञों, विद्वत्तजनों से साक्षात्कार के आधार पर
8. <http://ayurveda-foryou.com/music>
9. पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वांगमय-शब्दब्रह्म-नाद ब्रह्म, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा, पृ. सं. 517414 राग, रोग व रोगी

अन्य संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. राग, रोग व रोगी: अन्तः सम्बन्धों का विश्लेषणात्मक अध्ययन, पृ. 413



लोकसाहित्य और मानव जीवन में उसके अध्ययन का महत्त्व

सरिता विश्नोई
जे.आर. एफ. शोधछात्रा
हिन्दी विभाग, वनस्थली विद्यापीठ

लोक साहित्य जनसाधारण द्वारा निर्मित सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्य है। मानव हृदय की सरल और सरस अभिव्यक्ति लोक साहित्य में ही पाई जाती है। यह सर्वसाधारण लोक समाज की वह मौखिक एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी पारम्परिक रूप में चलती रहती है। साधारण जनता का गाना, हंसना, बोलना, खेलना, रोना जिन शब्दों में अभिव्यक्त होता है, वह सब लोक साहित्य की परिधि में आ जाता है। जनता की सम्पत्ति होने के कारण यह लोक संस्कृति का दर्पण है। लोक साहित्य किसी भी देश की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक, ऐतिहासिक और राष्ट्रीय चेतना को जानने का पैमाना है। 'लोक साहित्य' शब्द अंग्रेजी के 'फोक-लिटरेचर' का अनुवाद है। हिन्दी साहित्य-कोश में लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो पर आज जिसे सामान्य लोकसमूह अपना ही मानता है और जिसमें लोक की युग-युगीन वाणी साधना समाहित रहती है, जिसमें लोक-मानस प्रतिबिम्बित रहता है।" उनके ज्ञान का आधार विज्ञान नहीं होता अपितु पूर्व प्रचलित परम्पराएँ और पीढ़ी-दर-पीढ़ी श्रुत ज्ञान होता है। समाज में व्याप्त विश्वास, भावनाएँ आदर्श ही इनकी जीवनधारा का निर्धारण करते हैं। अतः बनावट से दूर हृदय की निश्चल सरल धारा में अवगाहन कर ये सरलता का रसपान करते हैं। इनकी भाषा व्याकरण के नियमों से सदा मुक्त होती है। जनभाषा के माध्यम से चिन्ता, पीड़ा, वेदना तथा हर्ष-उल्लास की अकृत्रिम अभिव्यक्ति लोक साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है। लोक साहित्य के विधायक तत्वों का उल्लेख करते हुए डॉ. सत्येंद्र ने लोक साहित्य को परिभाषित करते हुए लिखते हैं— लोक साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त बोली या भाषागत अभिव्यक्ति आती है जिसमें —

1. आदिम मानव के अवशेष उपलब्ध है।
2. परम्परागत मौखिक क्रम में उपलब्ध बोली या भाषागत अभिव्यक्ति हो, जिसे किसी की कृति न कहा जा सके, जिसे श्रुति ही माना जाता हो और जो लोक मानस की प्रवृत्ति में समाई हुई हो।
3. कृतित्व हो वह लोक मानस के सामान्य तत्वों से युक्त हो, कि उसके किसी व्यक्तित्व के साथ सम्बद्ध रहते हुए भी जो उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करें।

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के अभिमत से—“सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली अपनी सहजतावस्था में, वर्तमान में जो निरक्षर जनता है, उनकी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जीवन-मरण, सुख-दुःख की अभिव्यंजना जिस साहित्य में होती है, उसे लोक साहित्य कहते हैं।” डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी लोक साहित्य को किसी निश्चित परिभाषा के अन्तर्गत सीमित करना दुष्कर कार्य मानते हैं। उनका कहना है कि “साधारण मौखिक परम्परा से प्राप्त और दीर्घकाल तथा स्मृति के बल पर चले आते हुए गीत और कथानक ही लोक-साहित्य कहे जाते हैं.....इन बातों से पता चलता है कि लोक-साहित्य को ठीक-ठाक परिभाषा में बांधना कठिन कार्य है।” डॉ. कैलाश चन्द्र अग्रवाल की दृष्टि में —“लोक-साहित्य कृत्रिमता एवं शास्त्रीयता से दूर लोकजीवन की सहज, स्वाभाविक एवं सजीव

अभिव्यक्ति है, जिसमें किसी रचयिता विशेष के व्यक्तित्व की छाप न मिलकर सर्वसाधारण की कृति होने का आभास मिलता है और जो कथ्य रूप में अबाध गति से प्रवाहित होकर जनसाधारण को उसके संस्कार जन्य कार्य कलापों को बताता है, उसका मार्गदर्शन करता है और उसका सच्चा साथी बनकर उसके कण्ठ में विराजता है। ऐसी आत्मीयता के साथ बनकर रह जाते हैं। इस प्रकार लोक जीवन की भाव-भंगिमा, थिरकन-घुटन, उल्लास-अट्टाहास, मनन-चिन्तन आदि का उद्घाटन उसी की भाषा में लोकसाहित्य के द्वारा होता है, इस साहित्य पर उसी लोक का अधिकार है, जिससे वह सम्बद्ध है। यह किसी व्यक्ति विशेष की धरोहर, उसी लोक की धरोहर है।" डॉ. रवीन्द्र भ्रमर के अनुसार—"लोक साहित्य लोक-मानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति है। यह बहुधा अलिखित ही रहता है और अपनी मौखिक परम्परा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आगे बढ़ता रहता है। इस साहित्य के रचयिता का नाम प्रायः अज्ञात रहता है। लोक का प्राणी जो कुछ कहता सुनता है, वह समूह की वाणी बनाकर और समूह में घुल-मिलकर ही कहता है। सम्भवतः लोक साहित्य, लोक संस्कृति का प्रतिबिम्ब भी होता है। अभिजात, परिष्कृत या लिखित साहित्य के प्रतिकूल लोक साहित्य परिमार्जित भाषा, शास्त्रीय रचना पद्धति और व्याकरणिक नियमों से मुक्त रहता है। लोक भाषा के माध्यम से, लोकचित्त की अकृत्रिम अभिव्यक्ति, लोक साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है।"

पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से चलते रहने के कारण यह लोक की नित नई परिवर्तित विशेषताओं को भी अपने में समेटता चलता है। इस दृष्टि से आज के युग में तो लोक साहित्य के अध्ययन का महत्त्व तब और बढ़ जाता है जब हम सभ्यता के विकास की ओर बढ़ते जा रहे हैं। हमारी नई पीढ़ी के समक्ष ज्ञान और विज्ञान के नये द्वार खुल रहे हैं। नये आदर्श, नये जीवन मूल्य, नये विचार, नई भावनाएँ जन्म ले रही हैं। लोक साहित्य जो आज तक मौखिक परम्परा के रूप में विकास पा रहा था, उसे आज की नई पीढ़ी भूलती जा रही है। इस परिवर्तन के युग में हमारा कर्तव्य है कि हम अपनी पुरानी मान्यताओं, आदर्शों और मूल्यों के महत्त्व को समझे और उनकी परम्परा को बनाएँ रखें। इस दृष्टि से इस अलिखित साहित्य के संकलन व मनन की ओर भी आवश्यकता हो जाती है। इसमें हमारी संस्कृति का मूल रूप धरोहर के रूप में सुरक्षित है। लोक साहित्य अब तक लोक कण्ठ में अवस्थित है किन्तु आज इस बदलते दौर में लोक साहित्य के जानने और उसकी अभिव्यक्ति धीरे-धीरे कम होती जा रही है, यह सुरक्षित तभी तक है जब तक लोक-मानस की अभिव्यक्ति करने वाले जीवित हैं। इस दृष्टि से लोक मानस की इस अमूल्य धरोहर को बनाएँ रखने की आवश्यकता आज और बढ़ती जा रही है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम जितना इस अमूल्य साहित्य को प्राप्त कर सकें उतना प्राप्त करें और लिपिबद्ध करें। डॉ. सिन्धुलता जैन लोक साहित्य की महत्ता का प्रतिपादन करती हुई लिखती हैं कि, "विश्व और मानव की रहस्यमय पहेली के सुलझाने के लिए, उसके प्राचीनतम रूपों की खोज के लिए और उसके यथार्थ स्वरूप को जानने के लिए जहाँ इतिहास के पृष्ठ हैं शिलालेख और ताम्रपत्र मलीन हैं वहाँ उस तमसाच्छन्न स्थिति में लोक साहित्य ही दिशा निर्देश करता है। लोक साहित्य का गंभीर अध्ययन जीवन और जगत् की मौलिक एवं प्रमाणिक खोज के लिए अत्यन्त आवश्यक है। आदि मानव की आदिम प्रवृत्तियों को जानने का सबसे सरल, प्रमाणिक एवं रोचक साधन लोक साहित्य ही है। सभ्य कही जाने वाली जातियों के वास्तविकतावादी लेखकों की भांति अनेक असंस्कृत जातियों के मौखिक साहित्य में भोग व लिप्सा की दुर्गन्ध नहीं है इनके गीतों में जीवन की निदृष्ट दशा को छोड़ जीवन के रमणीय पक्ष का प्रदर्शन हुआ है।" लोक साहित्य के अन्तर्गत—लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, मुहावरें, कहावतें, पहेलियाँ और मुकरियाँ आदि आते हैं जो लोक में मौखिक रूप में प्रचलित हैं।

किसी भी देश, समाज या जाति की वास्तविक संस्कृति का दर्शन उसके लोक साहित्य में किया जा सकता है। लोक साहित्य लोक समाज की स्वाभाविक चेतना, जीवन, विश्वास और संस्कृति का वास्तविक प्रतिबिम्ब है,

जिसमें स्वाभाविकता के दर्शन होते हैं। किसी भी समाज की वास्तविक स्थिति को जानने के लिए उसके लोक साहित्य को जानना आवश्यक है। डॉ. सत्येन्द्र के शब्दों में “लोक साहित्य और समाज का सम्बन्ध इसलिए निर्विवाद है कि लोक और समाज परस्परवलम्बी है किसी भी युग में लोक बिना समाज के और समाज बिना लोक के नहीं हो सकता है।” लोक जीवन की विस्तृत रूपरेखा अर्थात् परिवार, वर्ण व्यवस्था, संस्कार, लोक प्रथाओं को अपने में समाहित किए हुए लोक साहित्य युगों युगों से वर्तमान तक की यात्रा तय करता है। लोक साहित्य में समाज के रहन-सहन, आचार-विचार, खान-पान, रीति-रिवाज, आदि का विस्तृत वर्णन देखने को मिलता है। लोक समाज में व्याप्त लोकप्रथाएँ एवं लोक विश्वास को उजागर करने में लोक साहित्य अपनी महत्वपूर्ण भूमिका रखता है। लोक साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि हमारे समाज में परम्परा से प्रचलित प्रथाएँ और विश्वास आज भी लोक मानस श्रद्धा भाव के साथ यथावत् विद्यमान है। समाज के कटु सम्बन्धों पर भी लोक साहित्य प्रकाश पड़ता है। कहने का अर्थ यह है कि लोक मानस लोक साहित्य में समाज के किसी कोने को लोक साहित्य से अछूता नहीं रखता है। डॉ. सत्या गुप्ता के शब्दों में, “लोक साहित्य का अध्ययन किसी भी देश की सभ्यता, संस्कृति, धर्म, रीति-रिवाज, कला एवं साहित्यिक-सामाजिक जागरण तथा आकांक्षाओं का सूक्ष्म अवलोकन करने में सहायक होता है। लोक साहित्य में प्रस्तुत समाज का नैतिक पक्ष, सामाजिक जीवन के संबंध में भिन्न नैतिक मान्यताएँ, उनसे संबंधित लोककथाएँ व गाथाएँ भी इसी लोक-साहित्य में आती हैं। समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिए लोक साहित्य का अध्ययन बहुत आवश्यक है। यह सामाजिक रीति-रिवाजों की रीढ़ की हड्डी है।” डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय इस सन्दर्भ में लिखते हैं कि, “लोक साहित्य में जन-जीवन का जितना सच्चा और स्वाभाविक वर्णन उपलब्ध होता है उतना अन्यत्र नहीं। सच तो यह है कि यदि किसी समाज का वास्तविक चित्र देखना अभीष्ट हो तो उसके लोक साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। लोक कवि मानव समाज को जिस रूप में देखता है वह उसका उसी रूप में वर्णन करता है। अतः उसका वर्णन सत्य से दूर नहीं होता। इतिहास की बड़ी-बड़ी पोथियों में लड़ाई, झगड़ों और संघर्षों का विस्तृत विवरण भले ही मिल जाय परन्तु समाज के यथातथ्य चित्रण के लिए लोक साहित्य का अनुसंधान वांछनीय ही नहीं अनिवार्य भी है। इन लोक गीतों, गाथाओं और कथाओं में मनुष्यों के रहन-सहन, आचार-विचार, खान-पान और रीति-रिवाज का सच्चा चित्र देखने को मिलता है।..... आगे वे लोक साहित्य की व्यापकता की ओर दृष्टिपात करते हुए लिखते हैं कि “लोक साहित्य में यथार्थवाद तथा आदर्शवाद का बड़ा ही सुन्दर सामन्जस्य उपलब्ध होता है। लोकगीतों में जहाँ भाई-बहन, माता-पुत्री और पति-पत्नी के आदर्श चरित्र का चित्रण किया गया है जहाँ लोक कवि यथार्थवाद के वर्णन की ओर जागरूक दिखायी पड़ता है। ननद-भावज, सास-बहू और सपत्नियों के शाश्वतिक विरोध के सम्यक् विवेचन करने में उसने कुछ उठा नहीं रखा है। लोकगीतों में सुखी समाज के धन, धान्य, ऐश्वर्य और विभूति के वर्णन के साथ कठिन गरीबी, अकाल तथा घोर दरिद्रता का दृश्य भी दिखाई पड़ता है। जो काव्य मानव जीवन के केवल एक ही पहलू का वर्णन उपस्थित करता है वह सच्चा काव्य नहीं कहा जा सकता। जिस काव्य में जन काव्य में जन-जीवन की आशा-निराशा, सुख-दुख, हर्ष-विषाद आदि सभी भावनाओं का सजीव चित्रण हो वही सच्चा, अमर और लोक प्रतिनिधि काव्य है। इस दृष्टि से लोक साहित्य अमर साहित्य की कोटि में रखा जा सकता है।”

ऐतिहासिक दृष्टि से यदि लोक साहित्य के महत्व को आंका जाए तो हम कह सकते हैं कि लोक साहित्य न केवल वर्तमान को बल्कि किसी भी देश व समाज के प्राचीन रूप को (झाँक) देख लेने का अनुपम साधन है। लोकगीतों और गाथाओं में इतिहास की ऐसी प्रचुर सामग्री बिखरी पड़ी है जिनके सम्यक् अध्ययन से हम समाज विशेष के ऐतिहासिक स्थिति को जान सकते हैं। इनमें अभिव्यक्त भावों में स्थानीय इतिहास का पुट भी गहरे रूप में अभिव्यक्ति पाती है। लोक-साहित्य के अध्ययन से इतिहास की बिखरी और विस्मृत सामग्री भी प्रकाश में आ

सकती है। जिस इतिहास को हम पढ़ते हैं। वह केवल राजा-महाराजाओं का इतिहास है। उसमें हमें जन-जीवन की झांकी नहीं मिलती। परन्तु लोक-कवि ने अपने सामने इतिहास बदलते देखा है, विदेशियों के अत्याचार देखे हैं। कहने का तात्पर्य है कि राज-दरबार में रहने वाला इतिहासकार और युद्धभूमि में तलवार चलाने वाला इतिहासकार जो कुछ अज्ञानतावश, प्रभाववश, भयवश न लिख सका वह सब लोक-साहित्य में सुरक्षित है। इससे हमारे पुराने इतिहास की कड़ियाँ जुड़ती हैं। इसके बिना देश के वास्तविक इतिहास का निर्माण असम्भव है। लोक साहित्य ऐतिहासिक तथ्योद्घाटन की दृष्टि से अपना महत्त्व रखती है। आदिम मानव की प्रचीनतम रूपरेखा एवं यथार्थ रूप को स्पष्ट करने में जहाँ इतिहास सफल नहीं होता, शिलालेख, खुदाई में मिलने वाले प्रमाण और खण्डर मूक हो जाते हैं, वहाँ लोक साहित्य मनुष्यों को ऐतिहासिक तथ्यों से हमें परिचित कराता है। लोक साहित्य दीर्घ काल से मौखिक परम्परा से चली आने के कारण लोक मानस ने कथा तंतुओं की सृजना करते हुए अनेक चमत्कारिक घटनायें जोड़ देता है तथा किसी कथा या उसके अनेक कथारूप प्रचलित हो जाते हैं किन्तु उनके प्रमुख पात्रों के नाम, घटनायें एवं स्थान आदि ऐतिहासिक होते हैं। लोक साहित्य के अध्ययन से समाज और संस्कृति के वे तत्व उभरकर सामने आते हैं जो विस्मृति की गहनता में दब गए हैं। इनके द्वारा जन-मानस की वे भावनाएँ प्रकाश में आती हैं जो कालचक्र के चलते दब गया है। लोक साहित्य के अध्ययन से वह ऐतिहासिक विकासक्रम उभरकर सामने आता है जिसे आज का समाज अपने जीवन से विस्मृत करता चला जा रहा है। इसके अध्ययन से वे तथ्य उभरकर सामने आए हैं जो किसी जाति और समाज को जीवित और गतिशील बनाये रखने के लिए आवश्यक है। लोक साहित्य युग और संस्कृति को सजीवता प्रदान करता है। समय के आघात से विस्मृत एवं विलुप्त घटनाएँ लोक की अनुभूति के द्वारा लोक साहित्य में स्थान पाती हैं।

आज विश्व मनीषी को लोक साहित्य के माध्यम से अतीत की उन सभी अमूल्य घटनाओं की जानकारी प्राप्त हो जाती है जो उसके विचारों और ज्ञान को पुष्टि दे सके। डॉ. सत्या गुप्ता के अनुसार, “लोक साहित्य में विशेषतः जीवन की भावात्मक अभिव्यक्ति ही मिलती है और इसकी सीमाएँ भावों से ही निर्मित होती हैं। इसीलिए लोक साहित्य के अध्ययन में भावभूमि का विशेष महत्त्व है। लोकगीतों की लोकभावना का प्रतिनिधित्व जीवन के स्तर और अवसर, भाव और अभाव में मानव जीवन को प्रभावित करता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक हमारा सामाजिक लोकजीवन गीतमय है। मानवीय चेतना के विभिन्न रूपों में राष्ट्रीयता, धार्मिकता, सामाजिकता और साहित्यिकता के आधार पर इनका निर्माण हुआ है। लोक साहित्य की भाव-संगति सम्पूर्ण लोक की मंगलकामना के रूप में ही उद्भासित होती है। लोक साहित्य लोकमंगल के अतिरिक्त कोई भी मर्यादा नहीं मानता। लोकमानस की इस भावभूमि में जड़-पदार्थ भी चेतन हो उठते हैं तथा पशु-पक्षी भी मानव भाषा में बोलते हैं। लोक साहित्य में ऐसा समाजवाद है जहाँ ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ का सर्वोच्च उदाहरण है। जहाँ जड़-चेतन, देवी-देवता, मनुष्य-दानव-सब ही एक तल पर आ जाते हैं। मानवोचित सब ही भावनाओं को भी उतना ही स्थान मिला है, जो उच्च से उच्च भावना को मिला है। लोक साहित्य, लोक मंगलकामनाओं की विराट् सौन्दर्याभिव्यक्ति है जिसमें किसी भी प्रकार की विकृति नहीं आ सकती। इस विराट् सौन्दर्य को जो संसार में भी हर लोक मानव तथा लोक समाज की पृष्ठभूमि में समानरूप से जीवित है, समझने और जानने के लिए इस भावभूमि को समझना अत्यधिक आवश्यक है।”

लोक समाज धर्म में अपनी अटूट आस्था रखता है। लोक साहित्य में जिस लोक समाज का चित्रण हुआ है वह धार्मिक विश्वास से ओतप्रोत है। पाप पुण्य के प्रति सजग है, पाप-पुण्य के परिणाम में उसकी अटूट आस्था है। लोक समाज में माँ-पिता, गुरु, भाई-बहन, नाते-रिश्तेदार, पशु-पक्षी सभी पूज्य हैं। लोक साहित्य में समाज के हर वर्ग और प्रचलित धार्मिक विश्वास और आस्था का वर्णन पर्याप्त मात्रा में होता है। लोक साहित्य में लोक-मानस की धार्मिक आस्थाएँ, चिन्तन और मनन के स्वर अभिव्यक्त हुए हैं। लोक गीतों के माध्यम से वह अपनी

आनन्दी वृत्ति को युग-युग से सजग बनाता है। विविध पर्वोत्सवों, संस्कारों, कार्यों, उपासनाओं आदि के गीत तो उसने गाए ही हैं, मृत्यु का भी गीतों से ही स्वागत किया है। लोक-साहित्य के माध्यम से धर्म व दर्शन का विकास को खोजा जा सकता है। अतः व्यक्ति ने किस समय क्या सोचा, उसे किस प्रकार जीवन में उतारा, धर्म उसके जीवन का एक प्रमुख अंग किस प्रकार बन गया, प्रारम्भ में उसका क्या रूप था, आगे कैसे विकास हुआ, टोना-टोटका, देवी-देवता आदि सब प्रश्नों का क्रमिक उत्तर लोक-साहित्य के अनुशीलन से प्राप्त किया जा सकता है। “लोक साहित्य में धर्म, संस्कृति, दर्शन व कलाओं का समन्वित व मूल रूप खेजा जा सकता है।” समाज में प्रचलित देवी-देवता की पूजा-अर्चना-वंदना, अनेक रहस्यमय भाव, व्रत अनुष्ठान की विधियों का पता लोक साहित्य के अध्ययन से चलता है। डॉ. सत्या गुप्ता के इस सम्बन्ध में लिखती हैं कि, “लोक जीवन पूर्णतया धर्म के ऊपर ही आधारित है। अपने जीवन-धर्म तथा जीवन दर्शन के अनुरूप ही उनके आचरण भी होते हैं। इसमें देवी-देवताओं की कहानियाँ, अनेक प्रकार की कहानियाँ, अनेक प्रकार के व्रत-उपवास, मंत्र-तंत्र इत्यादि का वर्णन भी मिलता है। पूजा, अनुष्ठान, व्रत, लोककथाएँ, अंधविश्वास, टोने-टोटके तथा इससे सम्बन्धित लोककलाएँ सर्वांगरूप से लोक साहित्य में मुखारित होती हैं जो लोकमानव की कड़ी से कड़ी मिलाती चलती हैं।” डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लिखा है कि, “धर्म की आधारशिला पर ही लोक साहित्य की प्रतिष्ठा हुई। जनता के इस लोकप्रिय साहित्य में वर्णित विधि-विधानों रीति-रिवाजों, विश्वास, परम्पराओं तथा रहन-सहन का अनुशीलन किया जाये तो इससे ज्ञात होगा कि उनको धर्म से कितनी प्रेरणा प्राप्त हुई है, कितना बल मिला है। यदि लोक साहित्य के निर्माण में धर्म का आधार प्राप्त न होता तो उसका इतना सजीव, स्वस्थ तथा सबल होना संभव न था।” व्यक्ति और समष्टि कल्याण की भावना से समृद्ध धर्म के दर्शन हमें लोक साहित्य में प्राप्त होता है। लोक साहित्य धार्मिक सर्कीर्णता से परे अपनी उदार दृष्टि व कल्याणकारी भावना से समृद्ध रहता है। लोक समाज के धर्म और दर्शन में परमसत्ता के प्रति विश्वास, योगियों तथा संन्यासियों के प्रति श्रद्धा, ज्योतिष व भविष्यवाणी के प्रति विश्वास, दान की भावना, पशुओं के प्रति आदर का भाव, नारी के प्रति श्रद्धा व आदर का भाव, शाप के अनिष्ट के प्रति आशंका, वरदान में आस्था आदि मिलते हैं। लोक साहित्य में समाज में प्रचलित कर्म और अनुष्ठानों, अन्धविश्वासों, अलौकिक तत्त्व का भी वर्णन मिलता है। यह साहित्य लोक जीवन के अधिक निकट एवं अधिक विश्वसनीय होती हैं। ये गेय होने के कारण एवं लोकरंजन के गुण के कारण अधिक ग्राह्य होती हैं। इसलिए लोकप्रिय भी होती हैं। स्थानीय बोली में जब इसकी अभिव्यक्ति होती होती है तो यह सीधे हृदय में उतर जाती हैं, इनका संदेश जन-जन तक पहुँच तक पहुँच जाता है। जिससे प्रेरित होकर समाज नवीन जीवन मूल्यों को परिष्कृत कर सकता है।

आधुनिक युग में लोक साहित्य का अध्ययन एक स्वतन्त्र विषय का रूप ले चुका है। इसके अध्ययन से ही हम राष्ट्र के विकास की धारा से पृथक् जन समुदाय की वास्तविक जीवन पद्धति का ज्ञान प्राप्त हो सकेगा। उनके प्रचलित रीति-रिवाज व ऐतिहासिक परम्पराओं का ज्ञान उसके विकास की योजनाएँ बनाने में साधन बन सकता है। किसी क्षेत्र विशेष के लोक साहित्य के अध्ययन से वहाँ के जनसमुदायों की ऐतिहासिक परम्परा, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक क्रियाकलापों, जनमानस के कल्पना व यथार्थ और स्वप्नों की सही जानकारी हो सकती है। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकसाहित्य की आदर्श भूमिका को उद्घाटित करते हुए लिखा है कि, “लोक साहित्य उस निर्मल दर्पण के समान है, जिसमें जनता जनार्दन का अस्तित्व तथा विराट स्वरूप पूर्णरूपेण दिखायी पड़ता है। लोक संस्कृति का जैसा दिव्य तथा अकृत्रिम प्रतिबिम्बित इस साहित्य में उपलब्ध होता है, उसका दर्शन अन्यत्र कहाँ इसमें जिस समाज का चित्रण किया गया है वह स्वस्थ, सदाचार तथा धर्मभिरू है, जैसी नीति की प्रतिष्ठा की गयी है वह कल्याणकारी मार्ग की ओर ले जाने वाली है, वह मंगलमय मार्ग की प्रदर्शिका है, जिस धर्म का वर्णन किया गया है वह संसार में शान्ति तथा प्रेम का उपदेश देता है, जिस आर्थिक संगठन का उल्लेख हुआ है वह पीड़ित और दलित मानवता के शोषण के ऊपर अवलम्बित नहीं है। जिस राजनीति का दिग्दर्शन कराया गया

है वह मनोरम चित्रण इस साहित्य की महत्ता में चार चाँद लगा देता है।" लोक साहित्य की यही स्वस्थ परम्पराएँ आज की राजनीतिक-सामाजिक स्थितियों में और भी अधिक प्रासंगिक हो जाती हैं। लोक साहित्य का अध्ययन राष्ट्रीय जीवन व विकास के लिए उपादेय है। डॉ. सत्या गुप्ता लोक साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता और महत्त्व में लिखती हैं कि, "वस्तुतः किसी भी देश के लोक साहित्य का अध्ययन उनकी सभ्यता, संस्कृति, धर्म, रीति-रिवाज, कला एवं साहित्य, सामाजिक जागरण एवं आकांक्षाओं का सूक्ष्म अवलोकन करने में सहायक होता है।" किसी भी भाषा का जीवन्त रूप लोक साहित्य में ही मिलता है। लोक भाषा के शब्दों के अर्थ उद्घाटन से कई सामाजिक तथ्यों का पता चलता है। इस साहित्य में प्रयुक्त शब्दों के द्वारा उत्पत्ति व प्रयोग के उदाहरणों द्वारा कई भाषा वैज्ञानिक गुणधर्मों को सुलझाया जा सकता है। ध्वनि परिवर्तन, अर्थ परिवर्तन एवं शब्दों का ऐतिहासिक विकास के लिए लोक साहित्य का अध्ययन महत्वपूर्ण है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मानव जीवन में लोक साहित्य का अनेक दृष्टियों से महत्त्व है। लोक साहित्य के सम्बन्ध में यह निःसंकोच स्वीकार किया जा सकता है कि लोक साहित्य लोक जीवन, रीति-रिवाज, रूढ़ियों, धर्म, विश्वास, जीवन-दर्शन अर्थात् जीवन के सर्वांग दर्पण है। यह साहित्य क्षेत्र विशेष की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक व भाषा की स्थिति को स्पष्ट करता है। इस कारण आज लोक साहित्य के अध्ययन का महत्त्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। डॉ. रवीन्द्र भ्रमर लोक साहित्य के समग्र अध्ययन के महत्त्व के बारे में लिखते हैं कि, "आधुनिक युग में लोक साहित्य के अध्ययन का महत्त्व मुक्त कंठ से स्वीकार किया जाता है। सांस्कृतिक, समाजशास्त्रीय अथवा साहित्य शास्त्रीय दृष्टि से इस प्रकार के परम्परागत मौखिक साहित्य की विशेष उपयोगिता स्वीकार की गई है। जाति-विशेष अथवा सम्बद्ध प्रदेश की इतिहास, भूगोल या आर्थिक अवस्था विषयक जानकारी के लिये भी लोक साहित्य प्रभूत सामग्री प्रदान करता है। अभिजात वर्गीय शिष्ट साहित्य के अध्येता के लिये तो लोक-साहित्य का अध्ययन और अनुशीलन कुछ अनिवार्य सा जान पड़ता है क्योंकि लेखकों और कवियों के द्वारा रचे गये परिष्कृत साहित्य की आधार भूमि यह लोक साहित्य ही है। अभिजात साहित्य की विषय, रूप तथा शिल्पगत अनेक परिपाटियाँ और पद्धतियाँ लोक साहित्य से छनकर आई हुई जान पड़ती हैं। अभिजात साहित्य की भाषा-शैली भी कई अर्थों में लोक साहित्य और लोकभाषा की ऋणी होती है। लोक साहित्य का अध्ययन स्वतन्त्र रूप से भी कम रोचक कार्य नहीं है। इसमें लोक जीवन की अनेक झांकियाँ तथा परम्पराएँ एवं लोकचित्त की अनेक अनुभूतियाँ बड़े मार्मिक रूप में उपलब्ध होती हैं। लोक साहित्य तो सहज मानवता का साहित्य होता है। मानव के निश्छल तथा कृत्रिम स्वरूप की प्रतिछवि प्राप्त करने के लिये लोक साहित्य के अतिरिक्त और दूसरा कौन सा अवलम्ब ग्रहण किया जा सकता है।" डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, "किसी भी देश के राष्ट्रीय जीवन में लोक साहित्य का महत्त्व बहुत अधिक है। लोक साहित्य से राष्ट्रीय जीवन की गति और प्रगति प्राप्त होती है। यह राष्ट्रीय जीवन का बल और सम्बल है।"

सन्दर्भ :

1. हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1, सम्पादक-धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल लिमि0, 1963, वाराणसी
2. डॉ. सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, 1962, आगरा, पृ. 25
3. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1957, पृ. 25
4. जनपद, वर्ष-1, अंक-1, काशी विश्वविद्यालय, संवत् 2009, वाराणसी, पृ. 62
5. डॉ. कैलास चन्द्र अग्रवाल, लोक साहित्य : विधायें एवं दिशाएँ, चिन्मय प्रकाशन, आगरा, 1986, पृ. 1
6. डॉ. रवीन्द्र भ्रमर, हिन्दी भक्ति साहित्य में लोकतत्त्व, भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली, 1965, पृ. 5
7. डॉ. सिन्धुलता जैन, लोकतत्त्व की दृष्टि से आधुनिक कविता का अनुशीलन, रचना प्रकाशन, जयपुर, 2007, पृ. 82
8. डॉ. सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान, पृ. 500

9. डॉ. सत्या गुप्ता, खड़ी बोली का लोक साहित्य, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1967, पृ. 6
10. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, पृ. 253
11. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, पृ. 272
12. डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, विचार और वितर्क, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1954, पृ. 211
13. डॉ. देवेन्द्र सत्यार्थी, बेल फूल आधी रात, राजहंस प्रकाशन, दिल्ली, 1948, पृ. 29
14. डॉ. सत्या गुप्ता, खड़ी बोली का लोक साहित्य,, पृ. 5
15. डॉ. चन्द्रशेखर भट्ट, हाडौती लोक-गीत, पृ. 20
16. डॉ. चन्द्रशेखर भट्ट, हाडौती लोक-गीत, डॉ. पृ. 23
17. डॉ. सत्या गुप्ता, खड़ी बोली का लोक साहित्य, पृ. 6
18. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, पृ. 270
19. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, पृ. 271
20. डॉ. सत्या गुप्ता, खड़ी बोली का लोक साहित्य, पृ. 3
21. डॉ. रवीन्द्र भ्रमर, लोक साहित्य की भूमिका, साहित्य सदन, कानपुर, 1991, पृ. 22-23
22. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, पृ. 262



बुन्देली लोकगाथा का प्रतीक 'आल्हा'

डॉ० सविता मसीह

सहा.प्रध्यापक हिन्दी

शास.स्नात.महाविद्यालय, सिवनी

बुन्देली लोक साहित्य का क्षेत्र व्यापक है। लोकसाहित्य और लोक संस्कृति में जीवन्त बुन्देली लोकगाथाओं की परम्परा अत्यन्त प्राचीन और समृद्ध है। वाचिक और मौखिक परम्परा की सजीव अभिव्यक्ति है 'लोकगाथा'। बुन्देलखण्ड अंचल में ग्रामीण जीवन की संस्कृति में अनेक लोकगाथाएँ कहीं और सुनी जाती हैं। इन लोकगाथाओं में ऐतिहासिकता, साहित्यिकता, उत्सुकता, नाटकीयता देखने को मिलती है। बुन्देली लोकगाथाएँ लोक समाज, संस्कृति के वैभव, उत्कृष्ट मानवीय जीवन मूल्य, आदर्श सामाजिक, धार्मिक एकता का प्रतीक हैं। इन्हीं लोकगाथाओं में प्रचलित नीति, उपदेश, वीरता, त्याग, संसार की असारता का ज्ञान तथा भारतीय संस्कारों की सशक्त अभिव्यक्ति है 'आल्हा'।

कालिंजर के राजा परमार के आश्रित कवि जगनिक ने महोबे के दो प्रतापी देश भक्त वीरों— आल्हा और ऊदल के शौर्य एवं वीरता का वर्णन एक वीर गीतात्मक काव्य के रूप में लिखा था। 'परमाल रासो' का एक खण्ड 'आल्हा खण्ड' के नाम से लोक गायकों एवं साहित्यकारों के पास संरक्षित है। "वीर गाथाओं की परम्परा को समृद्ध करने में 'आल्हा' का ऐतिहासिक महत्व है। हिन्दी के भाषा भाषी प्रांतों के गाँव—गाँव में 'आल्हा' के वीर गीतों की गूँज सुनाई पड़ती है। 'आल्हा खण्ड' का कोई साहित्यिक रूप न रहने पर ही जन—जन के कन्ठ से यह शौर्य गाथा वर्षाऋतु में जीवन्त हो जाती है।¹

लोक नाद, संगीत, नाटक की परम्परा का विस्तार है लोकगाथा 'आल्हाखण्ड'। "गाँव—गाँव में यह लोक काव्य 'आल्हा' के नाम से जाना जाता है। 'आल्हा' गायक को बुन्देलखण्ड की लोक भाषा में 'अल्हैत' कहा जाता है। लोककाव्य 'आल्हा' सरस है, गेय है एवं अभिगेय है, 'आल्हा' में संगीत, काव्य एवं नाट्य—तीनों ललित कलाओं का त्रिवेणी, संगम साकार होता है। इसलिए भावोद्रेक करने की अद्भुत सामर्थ्य से सम्पन्न 'आल्हा' कालजयी लोक काव्य है।"² 'आल्हा' काव्य में महोबे के प्रबल चंदेल सम्राट परमाद्रिदेव के मांडलिक नरेश 'आल्हा' और 'ऊदल' और मलखान तथा युवराज ब्रह्मदेव, कन्नौज के राठौर सम्राट जयचंद और युवराज लक्ष्मण सिंह तथा पृथ्वीराज चौहान एवं उनके पुत्रों और सामंतों के साथ विभिन्न राजपूतों का लोमहर्षक युद्ध वर्णन मिलता है।

तत्कालीन राजनीति, समाजनीति तथा धर्म, अर्थव्यवस्था का पूर्ण परिचय 'आल्हाखण्ड' में मिलता है। लगभग 12वीं शताब्दी में रचा गया लोक संस्कृति के वाहक के रूप में लोकगाथा के रथ पर सवार पीढ़ी दर पीढ़ी जनसमुदाय के बीच अवतरित होता रहा। 'आल्हा' के संबंध में बुन्देलखण्ड के गाँव—गाँव में अल्हैत ढोल के गंभीर घोष के साथ ये दो बातें अवश्य कहते हैं।—

1. "भरी दुपहरी सरवन गइये, सोरठ गइये आधी रात।

आरव्हा पवाड़ा बादिन गइये, जा दिन झड़ी लगे दिन रात।।

2. बारह बरस लौ कूकर जियें और तेरह लौ जियें सियार।

बरस अठारा छत्री जियें, आगे जीवन को धिक्कार।"³

"लोकगाथा कथात्मक, छन्दोबद्ध, गेय और लोककण्ठ पर अवस्थित काव्य है, जिसका रचयिता अज्ञात तथा यह सम्पूर्ण समाज की सम्पत्ति है। 'आल्हाखण्ड' आज मौखिक रूप से सुना जाता है। वह किसी अज्ञात रचनाकार

द्वारा लिपिबद्ध कराया गया है। लेकिन इस परम्परा की अगली रचना के रूप में 'परमाल रासों' का नाम लिया जाता है। इसे आल्हाखण्ड भी कहते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे "बैलेड" तथा डॉ. रामकुमार वर्मा ने इसे वीर गाथा काव्य भी कहा है। इसे आल्हाखण्ड भी कहते हैं।⁴ यह पूरी तरह से मौखिक परम्परा पर आधारित 13वीं शताब्दी के प्रारंभ की कृति है इसके रचयिता जगनिक हैं। रचनाकार ने इस काव्य में महोबे के देश प्रसिद्ध वीरों, आल्हा और 'ऊदल' के वीर चरित्र को यथार्थ ढंग से प्रस्तुत किया है। "फर्रुखाबाद 1865 में वहाँ के तत्कालीन कलेक्टर सर चार्ल्स इलियट ने अनेक भाटों की सहायता से इसे लिखवाया था। डॉ. ग्रियर्सन ने बिहार में और विसेंट स्मिथ ने बुन्देलखण्ड में भी आल्हाखण्ड के कुछ भागों का संग्रह किया था।"⁵ आल्हा एक कथा काव्य है जिसमें विभिन्न युद्धों के माध्यम से राष्ट्रभक्त स्वामीभक्त 'आल्हा' और 'ऊदल' की शौर्य गाथा को अनेक प्रकार से चित्रित किया गया है। आल्हा और 'ऊदल' दोनों भाई थे जिन की बराबरी का बुन्देलखण्ड में दूर-दूर तक कोई दूसरा वीर नहीं था। चंदेलों की ओर से जगनिक आल्हा-ऊदल को पृथ्वीराज चौहान के विरुद्ध लड़ने को राजी करते हैं।

"जगनिक" कृत आल्हाखण्ड की अभी तक कोई भी प्रति उपलब्ध नहीं हुई है। इस काव्य का प्रचार-प्रसार केवल उत्तर भारत में है। आल्हा इसी समय की वीरता व शौर्य का गुणगान करता है। तत्कालीन राजनीति, समाजनीति, धर्म, अर्थव्यवस्था का पूर्ण परिचय इस ग्रंथ में मिलता है। 12वीं शताब्दी का इतिहास भी कल्पना के साथ व्यक्त हुआ है। वीर गाथाओं की परम्परा को समृद्ध करने में आल्हा का ऐतिहासिक महत्व है। अतः विषय-वस्तु की दृष्टि से लोकगाथा आल्हा-खण्ड में निम्नलिखित तत्व हैं-

1. श्रृंगार वर्णन 2. युद्ध वर्णन 3. देश वर्णन 4. घटना वर्णन

1. श्रृंगार वर्णन :- रानियों के सौन्दर्य हाव-भाव, चेष्टा का वर्णन करता हुआ आल्हाखण्ड का पद"-

रानी तिलका के महलन में, दोनों तुरंत गये अरगाय ।

"हाल सुनायों सब तिलका कौ तब रानी ने कही सुनाय ।

बारह रानिन का इकलौता, है सोरह कौ सबै सिंगार ।।"⁶

2. युद्ध वर्णन :- इस लोकगाथा में वीर भावना का जितना प्रौढ़ रूप मिलता है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। आज भी जब इसे गायक संगीत के साथ गाते हैं, तब दुर्बलों में भी तलवार चलाने की स्फूर्ति आ जाती है। विवाह और शत्रु प्रतिरोध युद्ध वीरता के प्रदर्शन का आधार रहे हैं। "युद्धों के अत्यन्त प्रभावशाली वर्णनों की इस काव्य में भरमार है। गेयता का गुण इस काव्य को विकासशील लोक गाथा काव्य की श्रेणी में ले जाता है।"⁷

"कौन सूरमा जो तुमरे दल, घोड़ा हमसों लेय छुड़ाय ।

बार हमारी रोक न पैहो, तुम सुन लेब चौड़िया राय ।।

दई चुनौती सर संधानी, चौड़ा बोलो वचन रिसाय ।

तुरतै उतर परौ घोड़ा सें, नातर दैहों मार गिराय ।।

कोड़ा चटकौ घोड़ा दंदकौ उठि के ऊँची भरी उड़ान ।

पिछली टापें धरि गज माथें, अगली होंदा धरी जमाय ।।

ढाल की ओजड़ जगनिक मारी, सोने कुलसा दियौ गिराय ।

पहिले मारों पीलवान कों, चारों हने गुर्जबरदार ।

लैकें फलगी फिर चौड़ा की जगनिक बढ़ चले वा पीर ।।"⁸

युद्ध वर्णन के अन्तर्गत विविध रसों के साथ यह लोकगाथा वीर, रौद्र, भयानक आदि रसों का सजीव चित्रण करती है-

1. वीर रस - आल्हा खण्ड वीर रस का काव्य गाथा ग्रंथ होने के कारण इसमें वीर रस की प्रधानता है ।

“आन बड़ी उमड़ी घेरा लख, जगनिक मन में कियो विचार ।
 प्रान बचाकें महुबे लौटे, तौ का जी है बरस हजार ।।
 स्वामी के कारण तन दै हैं साका करें तरें संसार ।
 प्रान हथेरी पै धर जगनिक, बोले वीर वचन ललकार ।।
 कौन सूरमा जो तुमरे दल, घोड़ा हमसों लेय छुड़ाय ।
 बाट हमारी रोक न पैहो, तुम सुन लेव चौड़िया राय ।।
 दई चुनौती सर संधानी, चौड़ा बोलों वचन रियाय ।’
 तुरतै उतर परौ घोड़ा सै नातर दैहों मार गिराय ।।”⁹

2. रौद्र रस :- “जागन बोले हरनागर सैं अब तो बजे सिरोही ढाल ।
 जग रूठै रूठैं रामहु जों चाहे रूठि जायँ परमाल ।
 उड़न बछेरा तै । न रूठियौ, नदी वेतवा के मैदान ।
 कोड़ा चटको, घोड़ा दँदको, उठि के भरी उड़ान ।।”¹⁰

3. भयानक एवं वीभत्स रस- “इंद्र डोल जाँय इंद्रासन सैं, औ शिव डोल- जाँय कैलास ।
 लाखन डोलन के नाहीं हैं, जो लौं तन में रैहैं सांस ।।
 माया सपथ माता तिलका की पितु जयचन्द के रक्त न हँऊ ।
 कटि कटि मांस गिरैं धरती पै, पैन धरो पिछारू पौऊ ।।”¹¹

4. ओज वर्णन :- आल्हा लोकगाथा के गायक संगीत स्वरों के उतार चढ़ाव पर अधिक जोर देते हैं। आल्हा गाथा गाते समय भावों के ओज के साथ लोकगायक के स्वर में भी ओज आ जाता है। उसके हाथ और पैरों में गति उत्पन्न हो जाती है, आँखें ऊपर चढ़ जाती हैं, वह ढोलक को और अधिक तेजी से बजाने लगता है। इस प्रकार वह श्रोताओं में वीर रस का भाव जगाकर गाथा को प्रभावात्मक बनाता है-

“पांव पिछारू ना धरियों तुम, नहीं क्षत्रियन जाय नसाय ।
 सो सुनि नौहों भगे ककौजी, तो मैं पेट -नसाय ।।
 फारि मरि जाँऊ सम्मुख रण में जूझेंगे लैकें साथ सती हो जाँऊ ।
 इतना सुनि हँसि लाखन बोले रानी बचपन करौ परमान ।।”¹²

5. लय, गति, नाद वर्णन :- लोकगायक, ‘आल्हा’ गाथा को झूम-झूम कर भावपूर्ण मुद्रा में गाते हैं। गाथा गाने के लिए रमतैरा, ढोलक, सांरगी चिकाड़ा आदि लोकवाद्य प्रयोग किए जाते हैं। लोकगाथा में टैकपदों की पुनरावृत्ति का अपना पृथक् महत्व है। उसकी पुनरावृत्ति से श्रोताओं को ‘आल्हा’ गाथा सुनने में अधिक आनन्द प्राप्त होता है आल्हा की भाषा ठेठ बुन्देली है जिसमें अभिधा, लक्षणा व्यजना तीनों शब्द शक्तियों के प्रयोग को ध्यान में रखा गया है-

“चढ़ी पालकी मल्हना रानी, जगनेरी में पहुँची जाए ।
 गऔ हर कारा जगनायक पै, और जगानिक सौ कहीं सुनाय ।।
 मल्हाना आई दरवाजे पै, जल्दी चलौ हमारे साथ ।
 जगनिक आये दौर द्वार पै, मल्हाना छाती लियो लगाय ।।
 रो-रो मल्हाना बात सुनाई, हम पै चढ़ै पिथोरा राय ।
 नगर महोबा उन धिरवा लऔ, फाटक बंद दये करवाय ।।”¹³

6. आल्हाखण्ड गेय एवं लयात्मक, मधुर एवं नादात्मक है—

“इतनी सुन तै लै लाखन कों, चलिगे बेदुल के असवार ।
लाखन चढ़ि गये सतखण्डा पै, जहाँ पै हती पद्मनी नार ।।
तिरछै नैननि निरखि छबीलों, कुसुमा बात कही मुसुकाय ।
कौन हेत दिन में आये हो, सो तुम हमें देउ बतलाय ।।
पृथ्वी राज दिल्ली के राजा, दिखा लयौ महोबा ठाँव ।
संग जेहैं हम उदल के, अपने भरु पुराने दौव ।।”¹⁴

3. देश वर्णन — आल्हाखण्ड लोकगाथा में सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड के युद्ध क्षेत्रों का वर्णन के अन्तर्गत युद्ध की दुर्दशा आदि वहाँ के वातावरण को अत्यन्त सजीव और मार्मिक वर्णन प्रभावित करता है, जगनिक ने सटीक वर्णन किया है—

1. ‘ ‘डंका बाजों गढ़ दिल्ली में ,लश्कर तुरत होय तैयार ।
बजौ नगाड़ा ,तब लश्कर मे क्षत्री सबै भये हुशयार ।।
2. सिरसा गढ़ पै राय पिथौरा, करी चढ़ाई भयो घमासान ।
साका करि के समरभूमि में, मारे गये वीर मलखन ।।
3. चढ़ौ पिथौरा दिल्ली बारो, गोंसो नगर महोबे आए ।
बिदा मांगि के अब तिलका सौ, चलिये संग कनौजी राय ।।”¹⁵

4. घटना वर्णन :- ‘आल्हाखण्ड’ रचित लोक कवि जगनिक कालिंजर के राजा परमार के आश्रित दरबारी कवि के साथ-साथ राजा के मित्र और कुशल योद्धा भी थे। आदिकाल में बुन्देलखण्ड भू-भाग में छोटे-छोटे राजाओं के राज्य थे। उस समय के राजाओं की दो समस्याएँ विशेष रूप से थीं। बाहरी आक्रमणों से राज्य की रक्षा और दूसरी अपने राज्य का सीमा विस्तार करना । दोनों ही कारणों का मूल उद्देश्य था। हमेशा राजा और प्रजा को युद्ध के लिए तैयार रहना। इस वातावरण का उस समय के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर प्रभाव पड़ा । जिसका घटना वर्णन लोकगाथा में सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, पृष्ठभूमि को रेखांकित करता है।

1. देश रक्षा की गौरव गाथा :- बुन्देलखण्ड के अतीत के गुणगान करने वाली गौरव गाथा के रूप में आल्हाखण्ड की गाथा मातृभूमि के लिए बलिदान देने के लिए प्रेरित करती थी । उस समय छोटे-छोटे राजा और सामन्त मुगलों की सत्ता से स्वतंत्र होना चाहते थे। देश भक्ति, देश की रक्षा की भावना कूट-कूट कर भरी थी, वीरता पूर्ण कार्यों और वीरों को प्रशंसात्मक दृष्टि से देखा जाता था। आल्हाखण्ड में राजा और प्रजा दोनों को अपने देश की रक्षा हेतु प्रेरित किया—

“सुनी जग नायक आल्हा—ऊदल तीनों चले शीश को नाय ।
ऊदल पहुँचे लाखन के ढिंग औ सब हाल कहौ समझाय ।।
चढ़ौ पिथौरा दिल्ली बारों गांसो नगर महोबे आय ।
विदा मांग के अब तिलका सौ चलिये संग कनौजी राय ।।”¹⁶

2. स्वाभिमान तथा समर्पण की भावना— उस समय के बुन्देलखण्ड के समाज में अपने मान सम्मान एवं स्वाभिमान की रक्षा हेतु अपने प्राणों को न्यौछावर करने की भावना पाई जाती थी, यदि आत्म सम्मान चला गया तो बाकी का जीवन धिक्कर है। इस प्रकार स्वाभिमान की भावना प्रबल थी । जगनिक द्वारा रचित आल्हाखण्ड में उस समय के समाज में आल्हा,ऊदल, मलखान और जगनिक जैसे वीरों के अपने आश्रयदाता के प्रति समर्पण की भावना स्पष्ट दिखाई देती है—

“अपनी बड़ी उमड़ी घेरा लख, जगनिक मन में कियो विचार ।
 प्रान बचाके महोबे लौटे, तौ का जीहैं बरस हजार ।।
 स्वामी के कारज तन दैहैं साका करें तरै संसार ।
 प्रान हथेरी पै धर जगनिक, बोले वीर वचन ललकार ।।”¹⁷

3. आदर्श देश प्रेम, त्याग, वचनबद्धता :- इस लोकगाथा में आदर्श देश प्रेम, आदर्श त्याग, आदर्श वचनबद्धता के जीवन और उनके चरित्र का सांगो पांग वर्णन मिलता है -

“मल्हाना’ दे रानी ने पाला, बेटा फोहन दूध पियाय ।
 मैंने प्रन उनसों कीनो तो, देहों उन हित पूत कटाय ।।
 क्षत्राणी माता को प्रन तुम, राखो दोउ पूत बलधाम ।
 साका करौ, सत्रु संहारो पत राखो, जग मैं लो नाम ।।
 ‘धन्न जनम है वा क्षत्री कौ पर हित सीस देय कटवाय ।
 जग में सुख के साथी सब ही, दुख में बिरले होत सहाय ।
 तुम बिन विपदा हम पै पर गई, बेटा हमकौ होउ सहाय ।
 आन राखियाँ । चंदेल की, तुम बिन कौन सके निखार ।
 पत राखौ मल्हना माता की, और राखियों धरम हमार ।
 पत गयै फिर पानी ढर जैहै, बिन पानी जीवन धिक्कार ।।”¹⁸

निष्कर्ष - आल्हा खण्ड ऐतिहासिक लोकगाथा के रूप में राष्ट्रभक्त, स्वामी भक्त आल्हा और ऊदल की शौर्य गाथा को चित्रित करने के साथ-साथ आल्हा की देशभक्ति और कर्तव्यपरायण निष्ठा, प्रेम को भी अभिव्यक्त करता है। इस वीर रस प्रधान लोकगाथा में ततयुगीन क्षत्रियों को मानवता का धर्म पालन करने, अनीति का विरोध करने तथा भारतीय समाज, धर्म, संस्कृति का उद्धार करने का उपक्रम कथाकाव्य का सम्प्रेष्य है। जगनिक द्वारा रचित आल्हाखण्ड बुन्देली का प्रथम ऐतिहासिक लोकगाथा काव्य सांस्कृतिक धरोहर की अमूल्यनिधि का प्रतीक तथा सामान्य जनता को चाहे वह किसी भी क्षेत्र की क्यों न हो अपनी प्रभु रोचकता के कारण अपील करता है। बुन्देलखण्ड के चौपालों पर आल्हा के स्वर हुंकार भरते हैं। आल्हा के सजीव मर्मस्पर्शी प्रसंग आज भी प्रत्येक व्यक्ति के मानस पटल पर अंकित है।

संदर्भ ग्रंथ-

1. बुन्देली भाषा और साहित्य -संपादक -डॉ. शर्मा अशोक, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, पृ.सं. 48 ।
2. राष्ट्रीय स्तर पर लोक साहित्य का महत्व (स्मारिका राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी) - 19 एवं 20 जनवरी मातागुजरी कॉलेज जबलपुर ।
3. बुन्देली भाषा और साहित्य -संपादक-डॉ. शर्मा अशोक, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ.सं. 24 ।
4. लोक साहित्य और प्रयोग-डॉ. शर्मा श्रीराम, विनोद पुस्तक सदन आगरा, पृ.सं. 79
5. बुन्देली भाषा और साहित्य-डॉ. त्रिपाठी आर.पी. विश्वविद्यालय प्रकाशन ग्वालियर, पृ.सं. 42 ।
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास-डॉ. नगेन्द्र, मयूर पेपर बेक्स, पृ.सं. 71 ।
7. बुन्देली भाषा और साहित्य-संपादक-डॉ. शर्मा अशोक, पृ.सं.-हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल ।
8. 8 से 18 तक वही, पृ.सं.-बुन्देली भाषा और साहित्य-संपादक-डॉ. शर्मा अशोक, पृ.सं. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल ।



भोजपुरी भाषा में लोक संस्कृति के विविध सरोकारों का मूल्यांकन

डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव

एसोसिएट प्रोफेसर—हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

डॉ० शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ.प्र.—226017, भारत

किसी देश अथवा समाज—विशेष की संस्कृति से हम उसके उत्कर्ष और अपकर्ष का इतिहास जान सकते हैं। भाषा एवं संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करने का सबसे सरल साधन साहित्य का अध्ययन है। साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है; उसमें मानव की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और जीवन—सम्बन्धी सभी चेतनाओं का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप विद्यमान रहता है।

“सभ्यताएँ अपनी आत्म—कथाएँ तीन प्रकार की हस्तलिपियों में लिखती हैं। कृत्यों की हस्तलिपि में, शब्दों की हस्तलिपि में और कलाओं की हस्तलिपियों में, इनमें से कोई भी हस्तलिपि दो अन्य को पढ़े बिना बोधगम्य नहीं हो सकती हैं, परन्तु इन तीनों में से विश्वसनीय केवल तीसरी ही हस्तलिपि है।” रस्किन के ये शब्द लोक—संस्कृति के सन्दर्भ में अत्यन्त सार्थक हैं, क्योंकि लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है। उसमें भूत, भविष्य और वर्तमान सभी संचित रहता है। लोक ही राष्ट्र का अमर स्वरूप है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक में परम्परा द्वारा प्राप्त ज्ञान की संभावनाएँ रहती हैं। परिवेशगत परिस्थितियों, परिवर्तनों, भूत, वर्तमान तथा भविष्य के साथ संचरण करने वाला ‘लोक’ समय की गति के साथ—साथ अपनी चेतना का पूर्ण परिष्कार तथा संस्कार करता रहता है। यह सच है कि किसी देश की वास्तविक संस्कृति उस देश के लोक साहित्य में ही उपलब्ध होती है। लोक साहित्य के अन्तर्गत वे सभी वस्तुएँ आती हैं जो “लोगों में मौखिक रूप में प्रचलित हैं।”¹

लोक संस्कृति वाह्याडम्बरों से दूर आधुनिक कृत्रिम सजावट से परे सीधी—सादी प्राकृतिक धारा के समान निरन्तर बहने वाली एक विशिष्ट प्रकार की संस्कृति है। लोक संस्कृति साहित्य की अक्षय सम्पत्ति है जिसके कारण कोई भी साहित्य उस देश की सांस्कृतिक गरिमा से जुड़ता है। लोक संस्कृति की निर्मल निर्झरिणी में अवगाहन कर मात्र शरीर ही नहीं वरन् आत्मा भी शीतल और पावन बन जाती है। पर्वों, उत्सवों, परम्पराओं, विश्वासों, व्यथा एवं उल्लास के अवसरों से लिपटी हुई ग्राम्य जीवन की सुगन्ध हमें ऊर्जा और चेतना प्रदान करती है। अर्थात् “जब साहित्य राज प्रासादों के विलास कक्ष में बन्द हो गया तब प्रणय का पावनकारी मुक्तिनाद ग्राम बहूटियों एवं ग्राम तरुणों के कंठों से अमराइयों के बीच फूटा, तब साहित्य की सरस्वती सहस्र होकर लोक कंठ पर तरंगित हुई, तब संस्कृति अत्यन्त विश्वासों एवं प्रेरणाओं का आधार लेकर मीरा की भक्ति चरणों में घुंघरू बन गयी। तब वह लक्ष—लक्ष ग्राम निवासों की दीवारों पर शिल्प बनकर उभरी तब उसने सहस्र शिलाओं को जीवित अहिल्या का रूप दिया, संगीत और हृदय उसकी झंकार से मुखरित हो गये। जीवन अंगणित तरंगों में बहा, अंगणित नदियों में बजा और अंगणित गीतों में फूटा। यही सब ‘समष्टिवत आत्मप्रकाश’ लोक संस्कृति है।”² किसी राष्ट्र के सांस्कृतिक वैभव का परिचायक वहाँ का लोक साहित्य होता है, जिसमें उस राष्ट्र के संस्कार, परंपराएँ, जीवनादर्श, उत्सव—विषाद, नायक—नायिकाएँ, ऋतु गीत, विवाह गीत, भजन, राजनैतिक—सामाजिक गीत, विरह गीत इत्यादि को वाणी प्रदान की जाती है। यँ तो प्रायः प्रत्येक देश में लोक साहित्य की एक सुदीर्घ परंपरा प्राप्त होती है, परन्तु अधिकांश देशों का लोक साहित्य एकाध भाषाओं अथवा बोलियों तक सीमित रहता है। भारतवर्ष इस मामले में सौभाग्यशाली है

क्योंकि इस देश की कोस-कोस पर बदले पानी, चार कोस पर बानी की परंपरा ने इसे बोलियों एवं भाषाओं का एक विस्तृत कोश प्रदान किया है, जिसमें लोक साहित्य के अलबेले रंग-रूप क्रीड़ा करते हुए देखे जा सकते हैं। कहना न होगा, भोजपुरी भी इस कोश की अक्षय मंजूषा है।

लोक संस्कृति की उपर्युक्त समस्त सम्भावनायें भोजपुरी भाषा में सन्निहित हैं। इस भाषा में माधुर्य, काव्यात्मक, संगीतात्मकता एवं सहज भावनाओं की अनुपम छटा है—जिस कारण आज के परिवेश में इसे अत्यधिक लोक प्रियता प्राप्त हो रही है। जीवन के कोलाहल से दूर एकान्तिक क्षणों में अपने प्रियतम की तलाश करती हुयी विरहिणी अपनी पीड़ा से किसके हृदय को विगलित नहीं करती ? भोजपुरी लोक संस्कृति में करुण रस की जो सरिता प्रवाहित होती है वह किसको द्रवित नहीं करती। स्पष्ट है कि विकास की अनन्त सम्भावनाओं को लेकर भोजपुरी भाषा आज अपना एक महत्वपूर्ण स्थान बना चुकी है। देश-प्रेम और वीरता भोजपुरी लोक संस्कृति की विशिष्टता है। इस विशेषता को लक्ष्य करके जार्ज ग्रियर्सन ने लिखा है कि “भोजपुरी उस शक्तिशाली, स्फूर्तिपूर्ण और उत्साही जाति की व्यावहारिक भाषा है जो परिस्थिति और समय के अनुकूल अपने को बनाने के लिए सदा प्रस्तुत रहती है और जिसका प्रभाव हिन्दुस्तान के हर भाग पर पड़ा है। हिन्दुस्तान की सभ्यता फैलाने का श्रेय बंगालियों और भोजपुरियों को ही जाता है। जार्ज ग्रियर्सन के शब्दों में यदि हम कुछ परिवर्तन करके यह कहें कि इस कार्य में बंगालियों ने अपनी कलम से काम लिया और भोजपुरी भाषियों ने अपनी विनम्र वाणी से इसकी लोकप्रियता में चार चाँद लगाए, तो भोजपुरी लोक संस्कृति की प्रतिष्ठा और बढ़ जाती है। इस भाषा में लोक संस्कृति अपने चरमोत्कर्ष पर दिखाई देती है। इसमें कोई दो राय नहीं कि गेयता, संगीतात्मकता, कलात्मकता एवं करुण रस के अनुपम सौन्दर्य को लेकर भविष्य में और भी समृद्ध होगी।

भोजपुरी शब्द का भाषा के रूप में सर्वप्रथम उल्लेख पटना के ‘गजेटियर्स रिवीजन स्कीम’ के विशेष अफसर पी.सी. राय चौधरी के अनुसार “भोजपुरिया नाम से सन् 1789 ई० में हुआ।”³ भोजपुरी भाषा का नामकरण बिहार में बक्सर के निकट स्थित ‘भोजपुर’ नामक स्थान से हुआ है, जो बिहार के बक्सर सब डिवीज़न में डुमराँव से दो मील की दूरी पर स्थित है। यह पटना से सौ मील की दूरी पर है। माना जाता है कि भोजपुर किसी जमाने में मालवा अर्थात् उज्जैन से आए शक्तिशाली राजपूतों की राजधानी था। इसके नामकरण के विषय में प्रमुखतः प्रचलित मत निम्नांकित हैं—“भोजपुरी एक अत्यन्त मधुर एवं संगीतात्मकता से परिपूर्ण भाषा है, जिसकी मिठास केवल भारत ही नहीं वरन् नेपाल, फिजी, मॉरीशस, सूरीनाम, गुयाना, ट्रिनिडाड और टोबैगो, सिंगापुर दक्षिण अफ्रीका, मलेशिया, थाईलैण्ड आदि देशों में भी गूँज रही है। नेपाल में तो भोजपुर को वहाँ की 14 मान्यता प्राप्त भाषाओं की सूची में स्थान दिया गया है।”⁴ आज विश्व के लगभग 44 करोड़ से अधिक भारतवंशी लोगों की मातृभाषा के रूप में भोजपुरी समादृत है।

ग्रियर्सन ने अपने भाषा सर्वेक्षण में लिखा है—गंगा से उत्तर इस भाषा (भोजपुरी) की सीमा मुजफ्फरपुर जिले के पश्चिमी भाग की मगही है। फिर उस नदी के दक्षिण इसकी सीमा गया और हजारीबाग की मगही से मिल जाती है। वहाँ से यह सीमान्त रेखा दक्षिण-पूर्व की ओर हजारीबाग की मगही भाषा के उत्तर घूमकर सम्पूर्ण राँची पठार और पलामू तथा राँची जिले के अधिकांश भागों में फैल जाती है। दक्षिण की ओर यह सिंहभूमि की उड़िया और गंगपुर स्टेट की तद्देशीय भाषा से परिसीमित होती है। यहाँ से भोजपुरी की सीमा जसपुर रियासत के मध्य से होकर राँची पठार के पश्चिमी सरहद के साथ-साथ दक्षिण की ओर जाती है, जिससे सरगुजा और पश्चिमी जसपुर की छत्तीसगढ़ी भाषा से इसका विभेद होता है। पलामू के पश्चिमी प्रदेश से गुजरने के बाद भोजपुरी भाषा की सीमा मिर्जापुर जिले के दक्षिणी प्रदेश में फैलकर गंगा तक पहुँचती है। यहाँ यह गंगा के बहाव के साथ-साथ पूर्व की ओर घूमती है और बनारस के निकट पहुँचकर गंगा पार कर जाती है। इस तरह मिर्जापुर जिले के “उत्तरी गांगेय प्रदेश के केवल अल्प भाग पर ही इसका प्रसार रहता है। मिर्जापुर के दक्षिण में छत्तीसगढ़ी से इसकी भेंट होती

है, परन्तु उस जिले के पश्चिमी भाग के साथ-साथ उत्तर की ओर घूमने पर इसकी सीमा पश्चिम में पहले बघेलखण्ड की बघेली और फिर अवध की अवधी से जा लगी है।⁵ सरिता बुद्ध ने “मुजफ्फरपुर तथा वैशाली में भी भोजपुरी की व्याप्ति मानी है”,⁶ जबकि डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने “फैजाबाद को भी इसमें परिगणित कर लिया है।”⁷

भोजपुरी मात्र भारत हिन्दी प्रदेशों में नहीं अपितु भारत के बाहर भी आज बोली एवं समझी जाती है। भोजपुरी हिन्दी की एक मात्र ऐसी भाषा है जिसका विस्तार विदेशों में भी है और अनेक राष्ट्रों की मुख्य भाषा के रूप में भोजपुरी प्रतिष्ठित है। अंग्रेजी शासन में गिरमिटिया मजदूर के रूप में भारत के बाहर जाकर नौकरी करने वाले लोगों में पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के व्यक्तियों की संख्या अधिक थी जो धीरे-धीरे उन राष्ट्रों की प्रमुख शक्ति बन गयी। इस प्रकार उनकी भाषा के रूप में भोजपुरी उन राष्ट्रों में प्रतिष्ठित हो गयी। भोजपुरी भाषा की पृष्ठभूमि के बारे में केवल मॉरीशस की बात करें तो साढ़े चार लाख गिरमिटिया मजदूर अप्रवासी-गिरमिटिया पहले अल्प संख्या में मॉरीशस में आये। यह सिलसिला (सन् 1834 ई०-सन् 1924 ई०) तक चला। हिन्दी भाषा के बाद भोजपुरी भारत में सबसे ज्यादा (दो करोड़ से अधिक) बोली जाने वाली भाषा है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि भोजपुरी क्षेत्र की लोक संस्कृति काफी समृद्ध है। इसकी एक अपनी अलग पहचान है। यह लोक संस्कृति विदेशों में मॉरीशस, त्रिनिडाड, युगांडा, फीजी आदि देशों में भी फैल चुकी है।

भोजपुरी लोक-साहित्य का सबसे महत्वपूर्ण लक्षण है कि यह साधारण लोगों के सुख-दुख, आँसू और हँसी को चित्रित करने में सक्षम है। वास्तव में देखा जाये तो ये बार-बार घटित होने वाले विषय आम व्यक्ति के सामाजिक, धार्मिक और पारिवारिक जीवन को अंकित करते हैं। यह एक अत्यन्त प्राचीन तथा अविच्छिन्न परम्परा है। भारतीय लोकवार्ता से सम्बन्धित कार्य करने वाले विद्वानों में सर्वाधिक प्रसिद्ध नाम है, जार्ज ग्रियर्सन का जो प्रसिद्ध भाषाविद् थे। सन् 1886 ई० में ग्रियर्सन का ग्रन्थ “सम भोजपुरी फोक सॉंग्स” प्रकाशित हुआ जिसमें बिहार के भोजपुरी जनपद के बिरहा, जतसार तथा सोहर नामक गीतों का संकलन किया गया था। इसके पश्चात् अनेक लेख लिखे गये। एच. दामंत, विलियम क्रुक, आर. एम. कांकरनैस, डब्ल्यू. टी. डेल्स इत्यादि अंग्रेजी विद्वानों ने भोजपुरी लोक साहित्य, लोकगीतों पर कार्य किया।

भारतीय आर्य भाषाओं की पूर्वी अथवा मगध परिवार की पश्चिमी प्रमुख बोली भोजपुरी पूर्वी अपभ्रंश से प्रमुखतः तथा संस्कृत-प्राकृत और पालि से परिवर्तित हुई है। ब्रिटिश अफसर डॉ० ग्रियर्सन, जिन्होंने भारत का भाषावैज्ञानिक सर्वेक्षण किया, ने भोजपुरी को ‘बिहारी हिन्दी’ की संज्ञा दी। बिहारी से तात्पर्य है कि जिसमें मगही, मैथिली, अवधी और भोजपुरी समाविष्ट हैं। भोजपुरी को आम तौर पर बोली, जनपदीय भाषा या लोक भाषा कहा जाता है। विद्वानों के अनुसार भोजपुरी एक समर्थ और जीवन्त भाषा है। भोजपुरी भाषा की विशेषता उसकी कोमलता और विशाल जनजीवन में समायी हुई लोक संस्कृति की अस्मिता है। भोजपुरी के अपने ही कई बोली रूप हैं। चार की चर्चा तो ग्रियर्सन ने ही की है—उत्तरी, दक्षिणी, पश्चिमी और नगपुरिया। साथ ही भोजपुरी को ग्रियर्सन ने ‘बिहारी’ बोली वर्ग में मैथिली और मगही के साथ रखा है। अपनी पुस्तक ‘भारत का भाषा वैज्ञानिक सर्वेक्षण’ खण्ड 5, भाग 2 में डॉ० ग्रियर्सन लिखते हैं—भोजपुरी उस शक्तिशाली, स्फूर्ति पूर्ण उस सक्रिय जाति की व्यवहारिक भाषा है जो हमेशा अपने को परिस्थितियों के अनुकूल ढालने के लिए तत्पर रहती है, जिसने समस्त भारत पर अपना प्रभाव छोड़ रखा है। परन्तु अन्य विद्वानों जैसे उदय नारायण तिवारी, श्री जयकान्त मिश्र, भोलानाथ तिवारी, डॉ० सुनीति चटर्जी, रास बिहारी पाण्डेय इत्यादि ने भोजपुरी भाषा व बोली के सन्दर्भ में अपने अलग-अलग तर्कसंगत मत प्रस्तुत किये हैं।

भोजपुर क्षेत्र के निवासियों ने कूपमण्डूकता से सदैव परहेज किया है और अपनी निर्धनता तथा बेकारी से मुक्ति पाने हेतु उन्होंने न सिर्फ भारत, अपितु विदेशों में भी काम की तलाश में जाने से गुरेज नहीं किया है।

अट्टारहवीं शताब्दी में वे गिरमिटिया मजदूर के रूप में विभिन्न देशों में मजदूर बनकर गए और अपनी मेहनत, दृढ़ इच्छा शक्ति तथा संकल्पनिष्ठता के बल-बूते पर उन्होंने प्रगति एवं विकास की ऐसी अमर गाथा लिखी कि आज अनेक देशों में वे राजनीति के शिखर तक पहुँचे हैं। आज भी देश-विदेश के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में परिश्रम तथा ईमानदारी की मिसाल पेश करते भोजपुरी जन देखे जा सकते हैं। मॉरीशस, फिजी तथा ट्रिनिडाड और टोबैगो में तो उन्होंने राष्ट्राध्यक्ष के पद को भी सुशोभित किया है। सर शिवसागर रामगुलाम, वासुदेव पाण्डेय तथा महेन्द्र पाण्डेय ऐसे ही नाम हैं। युवा मोहनदास को महात्मा गाँधी के रूप में परिवर्तित करने का श्रेय दक्षिण अफ्रीका के भोले-भाले अधिकांश गिरमिटिया भोजपुरी मजदूरों को ही है, जिनके साथ अंग्रेजों द्वारा किए गए क्रूर अत्याचारों का सफलतापूर्वक विरोध करने के बाद ही गाँधी जी को सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्धि हासिल हुई थी और भारत आने पर उन्हें देश का निर्विवाद नेता स्वीकार कर लिया गया था। यहाँ आते ही महात्मा गाँधी ने भोजपुरी क्षेत्र चम्पारन के नील उत्पादक किसानों को शोषण से बचाने के लिए आन्दोलन छेड़ा और जन-जन के कण्ठहार बन गए।

जॉर्ज ग्रियर्सन ने भोजपुरी लोगों की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि “भोजपुरी वाले साहसी कार्य करने हेतु उत्सुक रहते थे। जिस प्रकार आयरलैण्ड के लोग छड़ी के शौकीन हैं, उसी प्रकार हष्ट-पुष्ट भोजपुरी लोग अपने घर से दूर अपने हाथों में लाठी लिए खेतों में काम करते हैं। हजारों की संख्या में ये मजदूर ब्रिटिश उपनिवेशों में गए।”⁸

ग्रियर्सन ने ही भोजपुरी भाषा तथा लोगों के विषय में एक अन्य स्थान पर लिखा है कि “भोजपुरी उस उत्साहित जाति की व्यावहारिक भाषा है, जो परिस्थिति के अनुरूप ढलने को हमेशा तैयार रहती है और जिसका प्रभाव हिन्दुस्तान के हर एक भाग पर पड़ा है।”⁹ और आज ऐसा ही हो रहा है। आज भोजपुरी भारत एवं विश्व की सर्वाधिक तेजी से विकसित एवं लोकप्रिय हो रही सह भाषाओं में से एक है।

भोजपुरी में प्राचीन साहित्य उपलब्ध नहीं मिलता। मध्यकालीन सन्त साहित्य पर भोजपुरी का प्रभाव अवश्य पड़ा है। आधुनिक काल में भोजपुरी साहित्य का विकास अवश्य हुआ है। राहुल सांकृत्यायन, कृष्णदेव उपाध्याय, चतुरी चाचा, रघुवीर, भिखारी ठाकुर आदि की रचनाएँ भोजपुरी में मिलती हैं। इसके अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हो रही हैं। आज इस भाषा की लोकप्रियता बहुत अधिक है। भोजपुरी साहित्य अकादमी द्वारा स्वीकृत भाषा है तथा उ.प्र. एवं बिहार सरकार ने भोजपुरी अकादमी बनाकर इसके विकास का महत्वपूर्ण प्रयत्न किया है। भोजपुरी लोक साहित्य की अत्यन्त समृद्ध भाषा है।

यदि हम भोजपुरी लोक-साहित्य का विश्लेषण करें तो हमें उसमें प्रधानतया गीत, गाथायें और कथायें उपलब्ध होती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसा भी मौखिक साहित्य प्राप्त होता है जो उपर्युक्त तीन विभागों में अंतर्भुक्त नहीं होता। भोजपुरी लोक संस्कृति का कोई ऐसा कोना नहीं है जो इससे अछूता है। विदेशों में लोक-साहित्य की रक्षा के लिये अनेक समिति और संस्थाएँ बनी हुई हैं। हमारे देश में विद्वानों का ध्यान इस आवश्यक विषय की ओर अभी कुछेक दशकों से गया है। हर भाषा के साहित्य में इस विषय पर अब ज्यादा सतर्कतापूर्वक कार्य किया जा रहा है तथा भोजपुरी लोक-साहित्य भी इससे अछूता विषय नहीं रह गया है। भोजपुरी लोक-साहित्य से संबंधित यह कार्य लगभग दो से तीन दशक पूर्व प्रमुख रूप से प्रकाश में आया तथा तब से यह अनवरत जारी है। अतः भोजपुरी लोक संस्कृति की रक्षा की दृष्टि को ध्यान में रखते हुए ये नितांत आवश्यक है कि हम भोजपुरी की साहित्यिक धरोहर का पुनः सृजन एवं संरक्षण करें।

भारतीय विद्वानों द्वारा भी लोक साहित्य पर कार्य आरम्भ हुआ। हिन्दी में लोक साहित्य पर पुस्तक लिखने का कार्य सर्वप्रथम मन्नन द्विवेदी ने किया। बाद में लाला संतराम, पं० रामनरेश त्रिपाठी, श्री देवेन्द्र सत्यार्थी, श्री नरोत्तम स्वामी, ठाकुर राम सिंह, श्री दुर्गाप्रसाद सिंह, श्रीमती रामकिशोरी श्रीवास्तव, श्याम चरण, श्री मारकण्डेय, श्री कृष्णदेव उपाध्याय, श्री कृष्णदास, डॉ. उदय नारायण तिवारी, सत्यव्रत अवस्थी एवं सरिता बुद्धु इत्यादि लोक

संस्कृति, लोकगीतों के प्रेमियों ने जो सत्प्रयास किये वो अवर्णनीय हैं। इनके अतिरिक्त साहित्यिक संस्थाओं ने भी इसे आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, हिन्दुस्तानी एकेडमी तथा 'भोजपुरी', 'लोक वार्ता', 'लोकवाणी' तथा 'लोक साहित्य' इत्यादि संस्थाओं व पत्रिकाओं ने जो कार्य इस दिशा में किया वह सराहनीय है। भोजपुरी लोक साहित्य के अवलोकन करने में हमें आश्चर्य होता है कि कैसे शताब्दियों के हस्तक्षेप के बावजूद कुछ परम्पराएँ वर्तमान में भी अपने मौलिक रूप में आज भी जीवन्त हैं। मॉरीशस, त्रिनिनाद, टुवैगो तथा विश्व के अन्य देशों में भारत के उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग और बिहार में प्रचलित परम्पराओं से उनकी अद्भुत समानता परिलक्षित होती है।

लोकसाहित्य और संस्कृति को दूसरे से श्रेष्ठ सिद्ध करने का प्रयत्न हुआ। ये दोनों दृष्टियाँ एकांगी हैं लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि ये हमारे जीवन व उसकी सच्चाइयों से प्रत्यक्ष रूबरू कराते हैं। आर्यों ने लोक संस्कृति से क्या-क्या नहीं सीखा। नागाओं, निशादों, किरातों, और द्रविणों से इन्होंने बहुत कुछ ग्रहण किया। शिवपूजा, लिंग पूजा, पशु, पाषाण, वनस्पति पूजा के गुण इतर जातियों से लेकर यज्ञ, हवन आदि अपनी विशेषताओं में जोड़ लिया। ऐसे ही आज भारतवर्ष की सभी लोकसंस्कृतियों, लोकभाषाओं से कुछ-कुछ ग्रहण कर सम्पूर्ण भारत वर्ष की एकता के लिये कोशिश की आवश्यकता है। भूल से भी क्षेत्रीय दावों और क्षेत्रीय संस्कृतियों के अलगाव को हवा देने की गलती हमारे अस्तित्व को कमजोर बनाने की दिशा में कुछ कदम चलने जैसा होगा। आज सबको महत्व और आदर देने की आवश्यकता है क्योंकि इस महान राष्ट्र के निर्माण में उन सबका कुछ न कुछ योगदान है। हमारे समाज का यथार्थ आज बदल गया है इसके प्रति विरोधी रुख हमें प्रगति विरोधी बनायेगा। हमें देश काल के अनिवार्य दबावों को भी सकारात्मकता से स्वीकार कर आगे बढ़ना होगा। तभी हम वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा को आत्मसात कर सकते हैं।

अधिकांश विद्वानों ने इस बात पर आश्चर्य जताया है कि भोजपुरी भाषा के इतनी सरस, मधुर एवं जीवन्त होने के बावजूद इसमें अपेक्षित मात्रा में साहित्य सृजन नहीं हुआ है, जबकि इसकी पड़ोसी अवधी तथा मैथिली साहित्य सृजन की दृष्टि से इससे कोसों आगे हैं। विद्वानों ने इसका कारण भी खोजने का प्रयत्न किया है और इस सम्बन्ध में मूलतः दो मत ही सामने आए हैं। प्रथम मत के अनुसार भोजपुरी को राज्याश्रय नहीं मिल सका, इसी कारण इसके साहित्य में अपेक्षित श्रीवृद्धि नहीं हो सकी। "वास्तव में भोजपुरी साहित्य की अभिवृद्धि न होने का प्रधान कारण है, राज्याश्रय का अभाव। ज्यादातर भोजपुरी प्रदेशों में किसी प्रभावशाली, व्यापक एवं प्रतापी नरेश का पता नहीं चलता। अधिकतर इसमें किसानों की ही बस्तियाँ हैं। किसी गुणग्राही नरेश का आश्रय न मिलने से इस भाषा का साहित्य समृद्ध न हो सका। भोजपुरी को तो न विद्यापति मिले, न सूर ही। मैथिली और ब्रज के समान इसकी वृद्धि हो तो कैसे।"¹⁰

डॉ० सम्पूर्णानन्द जी भी प्रायः इसी दृष्टिकोण को व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि "तुलसी ने अवधी और विद्यापति ने मैथिली को गौरवान्वित किया है, परन्तु मेरी जानकारी में भोजपुरी को किसी महाकवि ने अपनी प्रतिभा के माध्यम के रूप में नहीं अपनाया। कबीर भोजपुरी प्रदेश के रहने वाले अवश्य थे, परन्तु उनकी काव्य साधना प्रायः खड़ी बोली में हुई है। लेकिन जहाँ लिखित साहित्य के क्षेत्र में यह खटकने वाला अभाव दीख पड़ता है, वहाँ भोजपुरी का अलिखित वाङ्मय भण्डार, उसका लोक साहित्य बहुत समृद्ध है, इसमें कोई सन्देह नहीं।"¹¹

डॉ० सत्यव्रत सिन्हा ने भोजपुरी के लिखित साहित्य के विकसित न हो पाने के दो कारण बताए हैं—“प्रथम, प्राचीन काल में जहाँ बंगाल एवं मिथिला के ब्राह्मणों ने संस्कृत के साथ-साथ अपनी मातृभाषा को भी साहित्यिक रचना के लिए अपनाया, वहाँ भोजपुरी पण्डितों ने केवल संस्कृत के अध्ययन और अध्यापन पर ही विशेष बल दिया। संस्कृत के अध्ययन का प्राचीन केन्द्र काशी भोजपुरी प्रदेश में ही स्थित है। संस्कृत साहित्य को उत्तरोत्तर परिष्कृत करने में तथा उसके प्रचार को अक्षुण्ण बनाए रखने के कारण भोजपुरी पण्डितों द्वारा मातृभाषा की उपेक्षा की गयी।

भोजपुरी में साहित्य के अभाव का द्वितीय कारण है राज्याश्रय का अभाव।¹²

यद्यपि डॉ० सत्यव्रत सिन्हा इस बात को पूर्णतः स्वीकार नहीं करते कि भोजपुरी में साहित्य का सर्वथा अभाव है। अपने मत के समर्थन में सिन्हा जी ने भोजपुरी में साहित्य सृजन करने वाले कवियों, संतों के नाम दिए हैं, जिनमें प्राचीन काल के “धरमदास, शिवनारायण, धरनीदास तथा लक्ष्मी सखी एवं आधुनिक काल के बिसराम, तेजअली, बाबू रामकृष्ण वर्मा, दूधनाथ उपाध्याय, बाबू अम्बिका प्रसाद, भिखारी ठाकुर, मनोरंजन प्रसाद सिन्हा, रामबिचार पाण्डेय, प्रसिद्ध नारायण सिंह, पण्डित महेन्द्र शास्त्री, श्याम बिहारी तिवारी, चंचरीक, रघुवीर शरण तथा रणधीरलाल श्रीवास्तव के नाम उद्धृत किए हैं।¹³

डॉ० उदय नारायण तिवारी तथा डॉ० मैनेजर पाण्डेय ने कबीरदास जी को भोजपुरी के प्रथम कवि की संज्ञा दी है। डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने “कबीर, जायसी, तुलसी आदि कवियों के साहित्य में अनेक स्थलों पर प्रयुक्त हुए भोजपुरी शब्दों की पहचान कर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि उनकी भाषा पर भोजपुरी की छाप अवश्य है।¹⁴ राज्याश्रय के अभाव के कारण साहित्य के विकसित न हो पाने का कारण बहुत अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत नहीं होता क्योंकि यदि किसी भाषा के साहित्य के विकसित होने के लिए राज्याश्रय अपरिहार्य होता तो अवधी में साहित्य सृजन सम्भव ही नहीं हो पाता क्योंकि अवधी को भी प्रायः राज्याश्रय नहीं मिला था, किन्तु वह न सिर्फ विकसित हुई बल्कि भक्तिकाल के सन्त कवियों की वाणी बनकर प्रवाहित हुई। यह अवश्य अंशतः सत्य हो सकता है कि संस्कृत साहित्य को उत्तरोत्तर परिष्कृत करने में तथा उसके प्रचार को अक्षुण्ण बनाए रखने के कारण भोजपुरी पण्डितों द्वारा मातृभाषा की उपेक्षा की गयी हों, किन्तु आम जनता ने इस क्षेत्र में सभी जनभाषाओं को पर्याप्त सम्मान दिया है। भोजपुरी क्षेत्र अर्थात् पश्चिमी बिहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश ने कभी भी संस्कृत का अंधानुकरण नहीं किया और पालि, प्राकृत आदि जनभाषाओं को भी पूर्ण सम्मान दिया है। यहाँ संस्कृत के प्रधान केन्द्र काशी स्थित सारनाथ में चिरकाल से पालि का पर्याप्त प्रचार रहा है। अतः भोजपुरी में लिखित साहित्य प्राप्त न हो पाने के पीछे यही कारण हो सकता है कि भोजपुरी का प्रचार ग्रामीण जनता में अधिक रहा होगा तथा प्रबुद्ध लोगों ने इसे साहित्यिकता की दृष्टि से उपयोगी न समझा होगा।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि किसी भी भाषा को साहित्य का माध्यम बनाना राज्य के अधिकार की बात नहीं है। “यह तो कोई सिद्ध हस्त प्रतिभा सम्पन्न लेखक ही कर सकता है। राज्य अधिक से अधिक इस दिशा में यही कर सकता है कि वह उस भाषा के गद्य को अपने राजकीय कामों के लिए व्यवहार में लावे। सो, इसको सभी राज्यों ने पूर्वकाल से ही करना शुरू किया, जो आज तक जारी है। यही नहीं, वर्तमान सरकार ने भी जब-जब उसे प्रचार की आवश्यकता पड़ी है, इसको अपनाया है। पर तब भी भोजपुरी में न तो विद्यापति जी ऐसा मातृभाषा प्रेमी कोई कवि ही हुआ, जो अपनी प्रतिभा इसमें दिखा कर विद्वानों को भोजपुरी की ओर आकृष्ट कर सके और न ही हरिश्चन्द्र जी के ऐसा इसको कोई गद्य लेखक ही मिला, जो इसके गद्य साहित्य की अभिवृद्धि कर सके।¹⁵

आज जब हम नई सदी के दूसरे दशक में प्रवेश कर रहे हैं ऐसे में भोजपुरी ने स्वयं को एक सर्वप्रमुख भाषा के रूप में स्थापित करने में सफलता प्राप्त की है, जिसका श्रेय विदेशों में रहने वाले भारतवंशी भोजपुरी भाषी लोगों को दिया जाना चाहिए। इनमें एक बड़ी संख्या ऐसे लोगों की है, जिनका जन्म भी भारत में नहीं हुआ और आज से 250-300 साल पहले उनके पूर्वज गिरमिटिया मजदूर के रूप में विदेश गए थे किन्तु उन्होंने अपनी माटी एवं पूर्वजों की भाषा के प्रति अपनी अटूट आस्था दिखाते हुए न सिर्फ अपनी जड़ों को बचाकर रखा है, बल्कि भारतीयों को भी विवश किया है कि वे भोजपुरी भाषा की ताकत को पहचानें और इसके संवर्धन हेतु प्रयत्नशील हों।

इक्कीसवीं सदी के अत्याधुनिक संचार उपकरणों ने भोजपुरी भाषा एवं संस्कृति को लोकप्रिय बनाने में सहायता दी है। आज मात्र भोजपुरी में कार्यक्रम प्रसारित करने वाले अनेक चैनल भोजपुरी क्षेत्र में ही नहीं वरन्

देश के प्रत्येक अंचल में रुचिपूर्वक देखे जा रहे हैं। इक्कीसवीं सदी के आरम्भ में भोजपुरी सिनेमा अपनी तन्द्रा से जागा है और भोजपुरी फिल्मों की बाढ़ सी आ गई है। गंगा मझ्या तोहरे पियरी चढ़इबो, बिदेसिया, बलम परदेसिया, गंगा किनारे मोरा गाँव, ससुरा बड़ा पइसा वाला, पण्डितजी बताई ना ब्याह कब होई, दरोगा बाबू आई लव यू, दूल्हा मिल दिलदार, दगाबाज बलमा, दंगल आदि भोजपुरी फिल्मों ने बॉक्स ऑफिस पर सफलता की नयी इबारत लिखी हैं। और तो और अमिताभ बच्चन जैसे सदी के महानायक तथा लोकप्रिय दक्षिण भारतीय बॉलीवुड अभिनेत्री नगमा ने भी भोजपुरी फिल्मों में काम करके इन फिल्मों की महत्ता में चार चाँद लगा दिए हैं। बहुत से दक्षिण भारतीय फिल्मकार भी भोजपुरी फिल्मों का निर्माण कर रहे हैं। 'रविकिशन, मनोज तिवारी 'मृदुल', राकेश पाण्डेय, कमाल खान, सुजीत कुमार, कुणाल सिंह, श्वेता तिवारी आदि भोजपुरी अभिनेता-अभिनेत्रियों की लोकप्रियता हिन्दी अभिनेताओं को टक्कर दे रही हैं।¹⁶ भोजपुरी धारावाहिक टी0 वी चैनलों पर देश-विदेश में अपनी लोकप्रियता से लोगों का दिल जीत रहे हैं। अगले जनम मोहे बिटिया ही कीजो (ज़ी टी0 वी0), भाग्यविधाता (कलर्स), स्वर्ग (कलर्स) आदि धारावाहिकों ने अपनी लोकप्रियता के नए प्रतिमान गढ़े हैं। महुआ चैनल पर प्रसारित होने वाले भोजपुरी कार्यक्रमों को लोग काफी रुचिपूर्वक देख रहे हैं। भारत सरकार ने भी भोजपुरी के संरक्षण-संवर्धन हेतु राजधानी नई दिल्ली में भोजपुरी अकादमी की स्थापना की है एवं राज्य सरकारें भी भोजपुरी भाषा एवं साहित्य के प्रति सतत संवर्धन हेतु प्रयत्नशील हैं। ये सभी प्रयोजन भोजपुरी के उज्ज्वल भविष्य के परिचायक हैं।

यह बात सत्य है कि जितना कार्य, जितना विकास हिन्दी साहित्य में हुआ, उतना भोजपुरी में उतनी मात्रा में नहीं हुआ, और हुआ भी है तो वह प्रकाशित नहीं हो पाया है। डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय भोजपुरी भाषा के विकास में अवरोधक तत्वों पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि "इतना होने पर भी यह कम दुःख की बात नहीं है कि इसका साहित्य अभी तक समृद्ध रूप में नहीं दीख पड़ता। वह अभी तक लिखित अवस्था में भी नहीं है बल्कि जीविका के लिए इधर-उधर भ्रमण करने वाले गायकों और अनपढ़ देहातियों की जिह्वा पर निवास कर रहा है। भोजपुरी साहित्य की अभिवृद्धि न होने का प्रधान कारण है राजाश्रय का अभाव। भोजपुर मण्डल में किसी प्रभावशाली, व्यापक प्रतापी नरेश का पता नहीं चलता। अधिकतर इसमें किसानों की बस्तियाँ हैं। किसी गुणग्राही नरपति के आश्रय न मिलने से साहित्य सम्पन्न न हो सका। भोजपुरी को तो न विद्यापति ही मिले, न सूर ही। मैथिली और ब्रज के समान इसकी वृद्धि हो तो कैसे हो ? विद्यापति के कारण मैथिली साहित्य का उदय हुआ और सूरदास के कारण बृजभारती चमक पड़ी, और ये दोनों रसिक काव्य की भाषा समझी जाने लगीं; किन्तु उत्साह तथा प्रतिभा के अभाव में भोजपुरी साहित्य पनप न सका। यदि प्रतिभा सम्पन्न कवि इसमें मिल गये होते, तो स्वभावतः सरस तथा मधुर होने के हेतु इसका भी साहित्य, रसिकों के गले का हार बन गया होता।" फिर भी आशा की किरण के रूप में इस सबके बावजूद आज सरकारी व गैर सरकारी संगठन भोजपुरी, भाषा व बोली एवं इसकी दिशा को सहेजने संवारने में लगे हैं, अनेक कवि रचनाकारों की रुचि भोजपुरी साहित्य को समृद्ध करने में हो रही है इधर पिछले दिनों देश की राजधानी दिल्ली में महत्वपूर्ण भोजपुरी संगठनों ने मिलकर भोजपुरी भाषा को मान्यता दिलाने के लिये सक्रिय आन्दोलन किया जिसमें इन्हें सफलता भी मिली और इसके लिए बाकायदा एक्शन प्लान बनाने की घोषणा के पीछे भोजपुरी भाषा के प्रति हार्दिक लगाव का प्रतीक है। वैश्विक परिदृश्य की बात करें तो मॉरीशस आदि देशों में यह भाषा भारतीय प्रवासियों की आत्मा में आज भी जीवंत है। भोजपुरी के हर क्षेत्र में बढ़ते स्वर्णिम कदम साहित्य, कला (विशेषकर सिनेमा जगत) संस्कृति को देखते हुए ऐसा लगता है अब भोजपुरी की उपेक्षा बहुत अधिक समय तक नहीं की जा सकती है। और निश्चित ही इसका भविष्य स्वर्णिम होगा।

आज एक विराट परिवर्तन की पृष्ठभूमि बन रही है, हर क्षेत्र में राजनीति का हावी होना, पश्चिम का अनुकरण, आर्थिक उदारीकरण, साम्प्रदायिक कट्टरता और राष्ट्रीयता की भावना का क्षरण इस बदलाव के स्पष्ट संकेत हैं। अपसंस्कृतियों की जड़ें धीरे-धीरे जम रहीं हैं, इन अपसंस्कृतियों का करारा जवाब अगर कहीं और कुछ भी है तो

वह हमारी लोक संस्कृति और लोकसाहित्य की अबाध परम्परा ही है। भोजपुरी लोकसाहित्य काव्य और भाषाशास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सांस्कृतिक दृष्टि से भी भोजपुरी का संरक्षण नितान्त आवश्यक है। भारत की सभ्यता ग्रामीण है अतः यह सभ्यता लोकसाहित्य में छिपी पड़ी है। वर्तमान में भोजपुरी लोकसाहित्य के अनुसन्धान तथा संरक्षण की परम आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ—

1. कृष्णदेव उपाध्याय, भोजपुरी लोक साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, संस्करण—2008, पृ. 1.
2. सम्मेलन पत्रिका (श्री रामनाथ सुमन का लेख—लोक संस्कृति विशेषांक)—पृ. 9.
3. सरिता बुद्ध, मारीशस की भोजपुरी परंपराएँ, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2003, पृ. 21.
4. सरिता बुद्ध, मारीशस की भोजपुरी परंपराएँ, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2003, पृ. 25.
5. जॉर्ज ए0 ग्रियर्सन, लिग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया, भाग 2, 1903, पृ. 44.
6. सरिता बुद्ध, मारीशस की भोजपुरी परंपराएँ, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2003, पृ. 27.
7. डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय, भोजपुरी लोकगीत भाग1, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, द्वितीय संस्करण, सं0 2011, पृ. 24.
8. सरिता बुद्ध, मारीशस की भोजपुरी परंपराएँ, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2003, पृ. 36.
9. डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय, भोजपुरी लोकगीत भाग 1, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, द्वितीय संस्करण, सं0 2011, में जॉर्ज ग्रियर्सन के वक्तव्य से उद्धृत, पृ. 23.
10. डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय, भोजपुरी लोकसाहित्य का अध्ययन (अप्रकाशित) पृ0 12 तथा डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय, भोजपुरी लोकगीत भाग 1, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, द्वितीय संस्करण, सं0 2011, पृ. 24.
11. डॉ. श्रीधर मिश्र, भोजपुरी लोकसाहित्य : सांस्कृतिक अध्ययन, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1971, भूमिका, पृ. 1.
12. सत्यव्रत सिन्हा, भोजपुरी लोकगाथा, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1957, पृ. ठ.
13. सत्यव्रत सिन्हा, भोजपुरी लोकगाथा, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1957, पृ. ठ-ड.
14. डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय, भोजपुरी लोकगीत भाग 1, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, द्वितीय संस्करण, सं0 2011, पृ. 33-35.
15. दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह, भोजपुरी लोकगीत में करुण रस, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, द्वितीय संस्करण, 1965, पृ. 72.
16. डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव—लोक संस्कृति के आइने में भोजपुरी भाषा (चिन्तन के विविध आयाम)—ओमेगा पब्लिकेशन्स, 4378/4 B,G-4 जे0 एम0 डी0 हाउस गली मुरारी लाल अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण—2010, पृ. 330-340



गढ़वाली लोकगीतों में स्त्री संवेदना का रागात्मक स्वरूप

प्रियंका सहगल

जे.आर.एफ., शोधछात्रा

हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय (जयपुर)

लोकगीत लोक की संवेदना को प्रकट करने का सर्वोत्कृष्ट माध्यम है। ये लोक की सामूहिक अनुभूति को व्यक्त करते हैं। इनमें परिवेश, उसकी प्रतिक्रियाएँ जब रागात्मक जीवन का अंग बनती हैं तो उसके पीछे लोकमानस का अनुभव तथा उससे निकले हुए निष्कर्ष ही होते हैं। इस प्रकार हम यह भी कह सकते हैं कि लोकगीत अनुभूत होते हैं, घटित होते हैं। लोकगीतों में जो भाव व्यक्त किए जाते हैं वे किसी न किसी समय किसी समाज विशेष में यथार्थ रूप में रह चुके होते हैं उन घटित यथार्थों को जब लोक द्वारा अपने गीतों में रूपायित किया जाता है तो लोकगीत अपनी पुरानी घटनाओं को शब्दबद्ध अथवा वाणीबद्ध करने का एक सरल तरीका माना जाता है। आज के युग में लोकगीतों का स्वरूप नष्ट हो रहा है। हालांकि गढ़वाल जैसी देवभूमि में गीतों में संचित सभ्यता को, संस्कारों को हमें अपने काव्य में संजोकर रखना चाहिए। ये हमारी सभ्यता तथा संस्कृति का अनुभूत किया गया नमूना है तथा जो राग हम यथार्थ की घटनाओं से प्राप्त करते हैं वे काल्पनिक राग में मिलना संभव ही नहीं है।

लोकगीतों का जो भावात्मक मूल्य गूंगे के गुड़ की भाँति लोक हृदय की रसानुभूति में निहित रहता है वह लोकानुभूति से दूर बैठे आलोचक और सामान्य श्रोता की पकड़ में अनेक कारणों—संस्कार, सांस्कृतिक रुचिभेद और जीवन की भिन्न परिस्थितियों से संभव नहीं होता। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जब लोक की वस्तु को लोक की दृष्टि से न देखा जाये और न ही लोकगीतों के आलोचक अपने अन्दर वह लौकिक दृष्टि समाहित कर पायें तो लोकगीतों की बहुत सी रसात्मकता वहीं की वहीं छूट जाती है जो लोकगीतों की सच्ची अनुभूति का विनाश है।

गढ़वाली लोकगीतों में स्त्रियों का चरित्र पवित्र रूप में चित्रित किया गया है। स्त्रियों द्वारा अपनी संवेदनाओं को प्रकट करने के लिये लोकगीतों का सहारा लिया जाता है तथा गढ़वाल की पहाड़ी भूमि पर स्त्री जीवन अत्यधिक कठिनाईयों का सामना करते हुए व्यतीत होता है। वे अपनी सभी प्रकार की यथा – रागात्मक, दुःखात्मक, सुखात्मक आदि व्यथाओं को गीतों द्वारा गाकर प्रकट करती हैं।

आदि मानव ने वस्तुओं, वनस्पतियों और जीवों में पारलौकिक शक्ति के दर्शन ही नहीं किए वरन उसने जड़ और चेतन को अपनी अन्तर्जगत की भावना से एक भिन्न व्यक्तित्व भी प्रदान किया। गढ़वाली जनजीवन मानव धर्म की इन प्रमुख प्रवृत्तियों के दर्शन करवाता है और गढ़वाली लोकगीतों में उनके अवशेष हमें आज भी मिलते हैं।

यदि हम लोकगीतों के प्रारम्भ की बात करें तो प्रकृति के गीत हमें गढ़वाली लोकगीतों में प्रमुख रूप से सुनने को मिलते हैं। उदाहरण के लिए गढ़वाल में गाया जाने वाला अग्नि के आवाहन सम्बन्धी गीत हमें अग्नि के आविष्कार, प्रसार तथा उपयोगिता बोध के ऐसे युग में ले जाता है जब अग्नि एक देवता के रूप में पूज्य थे और जहाँ द्यौ लोक पितृलोक के रूप में माने जाते थे। अग्नि के आवाहन संबंधी एक गीत यहाँ उल्लेखनीय है—

“ऐ जा अग्नी मेरा मात लोक, मेरा मातलोक,

तू बिना अग्नी ब्रह्मा भूखो रैगे, भूखो रैगे!

कसु कैकि औलू, कसु कैकि औलू तेरा मात लोक,
तेरो मातलोक यो बुरा अत्याचार, बुरो अत्याचार।
क्या होलो अगनी बड़ो अत्याचार, बुरो अत्याचार?
तेरा मातलोक माया धीया माया धीया ऊजो-पैछो;
तेरा मातलोक बेटा-बाबू को लेखो-जोखो!"

इस लोकगीत में अग्नि देव से मातृलोक जाने का आवाहन किया जा रहा है लेकिन अग्नि द्वारा उस मातृलोक में बुरे अत्याचार होने के कारण अग्नि अपने न जाने की विवशता प्रकट कर रहा है। गढ़वाल में जितने भी लोकगीतों को गाया जाता है उनमें खुदेड़ गीतों का उल्लेख सर्वाधिक रूप में मिलता है।

'खुदेड़' शब्द 'खुद' के साथ 'एड़' प्रत्यय से बना है। खुद शब्द की व्युत्पत्ति क्षुधा अथवा क्षुब्ध शब्द से मानी जाती है। अपने प्रियजनों के वियोग में उनसे मिलने की आत्मिक क्षुधा कर देने वाली उत्कंठा सामान्यतः 'खुद' कहलाती है। खुदेड़ गीतों के प्रारम्भ में उद्दीपन के रूप में प्रकृति की शोभा का वर्णन होता है। उत्तरार्द्ध में जीवन की कठोरताओं तथा कटुताओं के बीच समय बिताने वाली उस नवविवाहिता की संवेदनाओं का करुण पक्ष प्रकट होता है जो वह अपने ससुराल में अपने मायके की स्मृति, नए घर, नए परिवार, तथा नए लोगों के बीच व्यतीत करती है, अनुभव करती है।

गढ़वाल एक पर्वतीय क्षेत्र है तथा पर्वतीय प्रदेशों में श्रम की स्थिति निरन्तर बनी रहती है ऐसे क्षेत्रों में पति के दुर्व्यवहार, आर्थिक अभावों, नारी के प्रति हीनता की दृष्टि और सास की अधिकार भावना के कारण स्त्री का जीवन यंत्रणाओं से परिपूर्ण होता है। फिर ऐसी स्थिति में ससुराल को एक कैद से कम नहीं माना जा सकता। स्त्री की सारी भावनाएँ, सारे अधिकार न किसी के लिये सुनने योग्य हैं न ही मान्य। गढ़वाल प्रदेश की नारी ऐसी स्थिति में अपनी संवेदनाओं को लोकगीतों के माध्यम से व्यक्त करती है।

"मै छऊं मांजी निरदया, नगरी, लोक बोल देंदा मारी, नौं देंदा धरी!
बरछियों की मार देंदा, तरवरियों का देंदा धौऊ!
विदेशी लोक मांजी मूं डली मूं डला, कूंदड़ी फाडला;
जौंकी भाख्या नी बीगेंदी मांजी, तौंकी गठी कनकै सहेली?
जैकू बाटो नी हिंदेटो मां जी, तौका पैरु कनकै सेयलू!"

इस लोकगीत में गढ़वाली स्त्री ने ससुराल पक्ष द्वारा किया जाने वाला अत्याचार, उनके द्वारा बोले जाने वाले कटु वचन तथा उनकी निर्दयतापूर्ण व्यवहार की संवेदना को प्रकट किया है।

गढ़वाल का जीवन श्रमशीलता से पूरिपूर्ण है गढ़वाल के अधिकांश गीत श्रमशील परिस्थितियों की उपज नहीं हैं बल्कि वे श्रम की घड़ियों में गाये भी जाते हैं। यद्यपि ये गीत विषय की दृष्टि से श्रमगीत नहीं कहे जा सकते क्योंकि श्रम की भावना का इन गीतों के साथ सीधा सम्बन्ध नहीं है। गढ़वाली लोकगीतों में ऐसे गीतों का अभाव है जो श्रम की भावना को लेकर गाये गये हों। श्रम की भावना से पूरिपूर्ण गढ़वाली लोकगीत का उल्लेख हमें कठिनाई से ही मिल पाता है :

"रिंगळी पिंगळी फसल हैवो दाथी उठौ दाथी!
दाथी उठौ दीदी मेरी, दाथी उठौ भुली मेरी!
धन्य तेरी मिनगत, धन्य तेरी माटी,
उठ फसल पकी, फसल दे तू काटी।

छप्प पुंगड़ी भरीन, सब भरीन सारी,
काटी काटी बाँध पूछा आज ज्यू न हारी!
दाथी उठौ माँजी मेरी, दाथी उठौ दाथी!

इस लोकगीत में फसल के पककर पीली हो जाने का वर्णन है इसमें बड़ी व छोटी बहन को तथा अपनी माता को भी दराँती उठाने को सम्बोधित किया जा रहा है।

लोकगीतों की संजीवनी ने ही भीषण विभीषिकाओं से संत्रस्त नारी—जीवन पर विषाद और अवसाद का ग्रहण नहीं लगने दिया। लोकगीतों का उद्देश्य यही है कि हँसते—गाते जीवन को भरभूर आनन्द के साथ जिया जाये तथा संवेदना, सहानुभूति तथा समरसता की अन्तर्धारा अक्षुण्ण रूप से प्रभावित होती रहे।

सन्दर्भ :

1. डॉ. गोविन्द चातक, गढ़वाली लोकगीत—एक सांस्कृतिक अध्ययन, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृ. 341
2. वही, पृ. 342
3. डॉ. गोविन्द चातक, भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भ : मध्य हिमालय, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 73
4. वही, पृ. 74
5. डॉ. गोविन्द चातक, गढ़वाली लोकगीत विविधा, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ. 29
6. डॉ. गोविन्द चातक, भारतीय लोक संस्कृति का संदर्भ : मध्य हिमालय, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 151
7. वही, पृ. 207
8. वही, पृ. 208
9. मधुमति, दिसम्बर, 2014—जनवरी, 2015, पृ. 39



गोंडवाना क्षेत्र की सांस्कृतिक व्यवस्थाएँ : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

स्थापत्य कला—गढ़ा, रामनगर तथा मण्डला के विशेष संदर्भ में (15वीं
शताब्दी से 17वीं शताब्दी तक)

डॉ. डिलेश्वर ग्वालवंशी

सहायक प्राध्यापक —इतिहास विभाग

शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिवनी (म.प्र.)

जब हम भारतीय समाज और संस्कृति की ओर देखते हैं तो हमें सर्वत्र अनेकता के दर्शन होते हैं। संस्कृति किसी भी देश और समाज की आत्मा होती है हम उसे देखकर उस समाज के अतीत और वर्तमान की समृद्धि को समझ सकते हैं। इसके ही माध्यम से हम उस समाज के जीवन की सामूहिक एवं अच्छी क्रियाओं को जान सकते हैं चूँकि प्रत्येक समाज की अपनी एक संस्कृति होती है और यही क्रियायें सामाजिक जीवन की नींव बनती हैं जिस पर किसी समाज का भवन निर्मित होता है। कोई भी संस्कृति मानव जीवन के उन गुणों का सूचक होती है, जिसके आधार पर वह समूह एक विशिष्ट समूह बन जाता है और अन्य मानव समूहों से अलग देखा तथा समझा जा सकता है। किसी भी संस्कृति के यही विशिष्ट तत्व उसके मूल्यांकन और स्थायित्व के आधार बनते हैं।

सैकड़ों भाषाओं और बोलियों का यह देश अनेक आदिवासियों के सामाजिक जीवन की विचित्रताओं से युक्त है परंतु इस देश की संस्कृति में इन अनेक विभिन्नताओं का समन्वय है। इन विभिन्नताओं के बावजूद भी भारतीय संस्कृति ने उन्हें इस प्रकार आत्मसात किया है कि सांस्कृतिक एकता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि भारतीय सामाजिक जीवन के अति प्राचीन काल के इतिहास से ही विकसित भारतीय संस्कृति विविधता में एक अपूर्व एकता का अनूठा रूप और आदर्श प्रस्तुत करती रही है।

गोंडवाना क्षेत्र में गोंड शासकों ने अपने शासनकाल के दौरान अपनी शासन व्यवस्था के संचालन हेतु विभिन्न दुर्गों तथा महलों का निर्माण कराया जो स्थापत्य कला के बेजोड़ नमूने हैं, वे खण्डहर के रूप में आज भी अपनी शाही व्यवस्था को प्रदर्शित करते हैं। अतः गोंड शासकों द्वारा बनवाए गए विभिन्न महलों तथा किलों में मदनमहल, चौरागढ़ का किला, सिंगौरगढ़ का किला, रामनगर का किला तथा मण्डला का किला प्रमुख है। इस शोध पत्र में गढ़ा, मण्डला तथा रामनगर पर अध्ययन समाहित है।

गोंड शासन काल : राजधानी गढ़ा :-

गोंडवाना क्षेत्र के गढ़ा का स्थान गोंड शासकों के शासन काल में अत्यंत महत्वपूर्ण था। गढ़ा वर्तमान में मध्य प्रदेश के जबलपुर शहर का हिस्सा है, चूँकि वहां तत्कालीन अवशेष अधिक नहीं है। गढ़ा का पुराना किला बहुत पहले भूमिसात हो चुका है और कहा जाता है कि उनकी सामग्री रेल बनाने वाली कंपनी ने प्रयुक्त कर ली थी।¹ संग्राम सागर के पास स्थित भैरव मंदिर (बाजनामठ), संग्राम सागर के मध्य में स्थित आमखास और हस्तिशाला, मदनमहल और पंचमठा के मंदिर गढ़ा के उल्लेखनीय निर्माण हैं।

भैरवमंदिर, आमखास और हस्तिशाला अत्यंत जीर्णवस्था में हैं। केवल कुछ दीवारें और कुछ मेहरावें ही अब शेष हैं। ये तीनों काल के भवन सामान्य विशेषताओं से युक्त हैं।

मदनमहल गढ़ा (जबलपुर) के निकट एक पहाड़ी पर स्थित है। परंपरा के अनुसार इसे मदनसिंह नामक गोंड शासक ने बनवाया था। मदनसिंह का समय बारहवीं शताब्दी का बताया जाता है। लेकिन तथ्यों के अनुसार तब उसका अस्तित्व विश्वसनीय नहीं है। यदि उसका अस्तित्व माना भी जाये तो उसे खरजी के कुछ पहले अर्थात् चौदह सौ ईस्वी के आसपास रखा जा सकता है। संग्रामशाह या उसके बाद के गोंड शासकों के समय बने भवनों से भी मदनमहल काफी मिलता जुलता है। अतः एक संभावना यह भी है कि इसे संग्रामशाह या उसके बाद के किसी शासक ने अपनी क्रीड़ा हेतु प्रकृति की गोद में बनवा कर कामदेव (मदन) के नाम पर इसका नाम मदनमहल रख दिया हो। अतः यह अनुमान है कि इसे संग्रामशाह ने ही बनवाया था।

यह एक सामान्य भवन है, जो आंशिक रूप से एक विशाल चट्टान पर बना है। इस इमारत में कई छोटी और पास-पास स्थित मेहरावें हैं, जिनके ऊपर ऊपरी मंजिल है। ऊपरी मंजिल में एक बरामदा है, जो दोनों ओर से सामान्य कमरों से घिरा है। पहले संभवतः चारों ओर ऐसे कमरे रहे होंगे इन कमरों के खंभों के सिरे विकृत आयोनी शैली के हैं। बेगलर के अनुसार ये खंभे अठारहवीं शताब्दी के पहले चतुर्थांश से अधिक पुराने नहीं हैं, हां नीचे का भाग अवश्य कुछ पुराना है। प्रवेशद्वार की मेहरावें पठान शैली की हैं और यह केवल अपने भारीपन के कारण प्रभावशाली है। दीवारों पर प्लास्टर है। भवन की स्थिति देखकर ऐसा लगता है कि इस भवन का उपयोग निरीक्षण चौकी या शिकारगाह के लिये भी होता था।

गढ़ा स्थित पंचमठा में गोंड शासनकाल के दौरान बने कुछ मंदिर हैं। 1603 ई. (संवत् 1660) में स्वामी चतुर्भुजदास का बनवाया राधाकृष्ण मंदिर अब अपने मूल रूप में नहीं है। इसका जीर्णोद्धार हो चुका है। राधाकृष्ण मंदिर के निकट ही अनेक शिवमंदिर हैं, जो अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के हैं। ये मंदिर ऊंचे चबूतरे पर बने हैं और इनमें से प्रत्येक में कलशयुक्त गुम्बद के नीचे के वर्गाकार प्रकोष्ठ के मध्य में शिवलिंग हैं। कुछ मंदिरों में गुम्बद के आसपास चारों कोनों पर चार छोटी छतरियां हैं। मंदिरों में गुम्बद के आसपास चारों कोनों पर चार छोटी छतरियां हैं। कुछ मंदिरों के गुम्बदों के आस-पास आठ छोटी छतरियां हैं। मंदिरों के कंगूरेदार छज्जे, जो गुम्बद के आसपास बने हैं, आकर्षक लगते हैं। अधिकांश मंदिरों में बड़ा गुम्बद वाले प्रकोष्ठ के सामने एक छोटे मंडप प्रवेशद्वार में बना हुआ है। ये मंडप किन्हीं मंदिरों में ईंट गारे के और शंक्वाकार बने हैं। ईंट-गारे के ये मंडप प्रभावशाली नहीं दिखते, लेकिन कुछ मंडप तराशे गये लाल पत्थर के स्तंभों पर आधारित हैं और सुन्दर हैं। ऐसे मंडप मंदिर के मूल निर्माण की तुलना में बिल्कुल भिन्न दिखते हैं। मंदिर की सादगी के विरुद्ध ये अलंकृत तो हैं ही साथ ही ईंट गारे के मंदिर से संलग्न पत्थर के ये मंडप ऐसे लगते हैं जैसे इन्हें मंदिर के बनने के बाद जोड़ा गया हो।

उपर्युक्त शिव मंदिरों में से दो शिवमंदिरों की चौखट पर क्रमशः 1764 ई. (1821 सं.) और 1766 ई. (1823 सं.) के शिलालेख हैं।

गोंड शासनकाल : राजधानी रामनगर :—

गोंडवाना क्षेत्र में गोंड राजवंश के संपूर्ण निर्माणों में रामनगर के भवन सर्वाधिक आकर्षक और महत्वपूर्ण हैं। हृदयशाह ने सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में रामनगर को अपनी राजधानी बनाया। रामनगर गढ़ा राज्य की राजधानी के रूप में लगभग आधी शताब्दी तक रहा। नरेन्द्रशाह ने 1698 ई. के लगभग रामनगर से राजधानी हटाकर मंडला को अपना केन्द्र बनाया था।

रामनगर नर्मदा के दक्षिण तट पर मंडला से 16 किलोमीटर दूर स्थित है। इसकी स्थिति अत्यंत आकर्षक है। यह राजधानी दुश्मनों से रक्षा हेतु दुर्गम स्थान पर बनाई गई थी। उत्तर में नर्मदा नदी है और दक्षिण में सघन वन है। एक और काला पहाड़ नामक ऊंचा पर्वत है। शहर की लंबाई संभवतः चौड़ाई से अधिक थी और यह मोटे तौर पर अर्द्धचंद्राकार थी। आजकल तो रामनगर का क्षेत्रफल लगभग एक हजार एकड़ है परंतु परम्परा के अनुसार पास के 4-5 ग्राम भी रामनगर में आते थे। शहर कम से कम पांच हजार एकड़ में फैला रहा होगा।

इतने वर्षों के पश्चात रामनगर में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ जो भवन हैं वे हृदयशाह के ही हैं। मुख्य भवन हैं – मोतीमहल, मंदिर, भागवतराय का महल, बघेला रानी का महल, दल और बादल महल।

मोतीमहल इस स्थान की सुन्दरतम तत्कालीन इमारतों में से एक है। आयताकार यह भवन बाहर से 63 मीटर लंबा, 60 मीटर चौड़ा है और मध्य का आंगन पचास मीटर लंबा तथा साढ़े छियालीस मीटर चौड़ा है। आंगन के मध्य में एक 12 मीटर वर्ग का सरोवर है, जिसमें फव्वारे लगे हुये हैं। भवन के सामने की भुजा चार मंजिल की है। जबकि शेष तीन भुजाएँ तीन मंजिल की हैं। इस भवन में अनेक कमरे हैं जो भूलभुलैया जैसे भागों से जुड़े हुये हैं। महल के दाहिनी ओर हाथीखाना है। इस महल की दीवारें बहुत मोटी हैं और उन पर गारे का प्लास्टर है। दरवाजे हिन्दू शैली के हैं। कलशयुक्त गुम्बद आनुपातिक और प्रभावशाली है। भवन में किसी प्रकार की सजावट नहीं है। प्रत्येक मंजिल में द्वारों के ऊपर पानी की बौछार रोकने के लिये बरसाती है। रामनगर का प्रख्यात शिलालेख अब इसी भवन में लगा हुआ है।

इस भवन के सामने नदी में एक बांध के अवशेष हैं। बांध जलप्रदाय व्यवस्था से सम्बद्ध था। मंदिर मोतीमहल के 30 मीटर दक्षिण में स्थित है। 16.8 मीटर वर्ग के इस वर्गाकार मंदिर को रानी सुन्दरदेवी ने 1667 ई. निर्मित कराया था और रामनगर के शिलालेख के अनुसार इसे विष्णु को समर्पित किया, इसमें विष्णु, शिव, गणेश, दुर्गा और सूर्य की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित कराई गई थीं। रामनगर का शिलालेख वस्तुतः इसी मंदिर में था, किन्तु सुरक्षा के लिये बाद में उसे मोतीमहल में रख दिया गया। भवन के मध्य में 5.7 मीटर वर्ग का एक प्रकोष्ठ है जो धारीदार गुम्बद से अच्छादित है। कमरे के चारों कोनों में चार धारीदार गुम्बद वाली कोठरियों में एक-एक खुला बरामदा है। दरवाजे भारतीय शैली के हैं। बाहर से देखने में यह मंदिर मुस्लिम मकबरे के समान या आधुनिक बंगाली पंचरत्न मंदिर के समान दिखता है। इमारत में गारा बहुत अच्छी प्रकार का प्रयुक्त हुआ है।

भागवतराय का महल भी मोतीमहल के पीछे निकट ही स्थित है। हृदयशाह के मंत्री भागवतराय का यह महल तीन मंजिला है और इसमें ईंट की अपेक्षा पत्थर का प्रयोग अधिक किया गया है। आकार में यह मोतीमहल से लगभग आधा है। कहा जाता है कि पहले यह मोतीमहल से ऊँचा बना किन्तु बाद में तोप से इसकी अधिक ऊँचाई गिरा दी गई। इस भवन में सामने के भाग में श्वेत पत्थर का प्रयोग और बाहरी दीवाल के कंगूरे उल्लेखनीय हैं। ब्रेकेट युक्त मुख्य प्रवेश द्वार के ऊपर बनी मंजिलें प्रभावोत्पादक हैं। भवन के चारों कोनों में धारीदार गुम्बद और बरसाती वाले प्रकोष्ठ हैं।

बघेला रानी का महल मोतीमहल से लगभग ढाई किलोमीटर पूर्व की ओर स्थित है। यह एक प्रभावशाली और सुन्दर निर्माण है, इसमें एक विशाल प्रकोष्ठ है, जिसके चारों ओर कुछ कमरे और मेहराबदार गलियारें हैं। मुख्य विशाल प्रकोष्ठ के ऊपर जो कमरा बना है उसकी छत राजपूत शैली की अर्द्ध चंद्राकार है। चारों कोनों के कमरों के ऊपर कमरों की दूसरी मंजिल भी है जो धारीदार गुम्बद वाले हैं। गुम्बदों के चारों ओर बरसाती निकली है। भवन से लगी एक गहरी बावली है, जिसके प्रवेश द्वार की छत अर्द्धचंद्राकार है। इमारत के निकट सुन्दर उद्यान होने के चिह्न हैं। अध्ययन से पता चलता है कि हृदयशाह ने इसे अपनी बघेलवंशीय रानी के लिये बनवाया था।

गोंड शासनकाल : राजधानी मंडला –

गढ़ा राज्य के उदय के समय से ही मंडला एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। नरेन्द्र शाह ने जब सन् 1698 ई. के लगभग मंडला को अपनी राजधानी बनाया तब मंडला का महत्व बहुत बढ़ गया। तब से गढ़ा राज्य के पतन तक मंडला राजधानी रहा। राजकीय और प्रशासकीय आवासों के लिये राजधानी मंडला में एक किला बनवाया गया, जिसके ध्वंसावशेष आज भी विद्यमान हैं। यह दुर्ग नरेन्द्रशाह ने बनवाया था और भीतर के भवन नरेन्द्रशाह और उसके उत्तराधिकारियों के समय बने।

नर्मदा नदी के दिशा परिवर्तन से बने मोड़ पर किला बना है। नदी पूर्व से पश्चिम की ओर बहती हुई अचानक दक्षिण और फिर उत्तर की ओर मुड़ जाती है। किला नदी के घुमाव पर ही स्थित है और इसके तीन ओर नदी है। चौथी ओर अर्थात् उत्तर की ओर किला एक गहरी तथा चौड़ी खाई द्वारा सुरक्षित किया गया है। पहले इस खाई से होकर नदी का पानी बहता था पर अब यह काफी उथली हो गई है और सिर्फ नदी में बाढ़ आने पर पानी इससे बहता है। इस प्रकार किला नर्मदा के एक कृत्रिम द्वीप पर स्थित है। खाई (परिखा) अपने मूल रूप में कम से कम 2211 मीटर गहरी और 24 मीटर चौड़ी रही होगी। किले के चारों ओर साढ़े तीन मीटर ऊंची चहारदीवार थी, जो अब ध्वस्त हो चुकी है। कहीं-कहीं, विशेषकर पश्चिम की ओर की चहारदीवार अभी शेष है।

ऐसा लगता है कि किले में दो प्रवेश द्वार थे। एक उत्तर में तथा दूसरा दक्षिण में। अभी भी इनके अवशेष दिखाई देते हैं। दक्षिण का दरवाजा अभी ठीक है। ये मुस्लिममोत्तर काल के दरवाजों के समान हैं, जिनमें दोनों बाजुओं में रक्षकों के लिये स्तंभयुक्त कमरे थे। प्रवेश द्वार की मेहराबें तराशे गये रेतीले पत्थर की थीं। “कार्बल वाले स्तंभ-शीर्ष जौनपुर शैली के हैं, जबकि खम्भे प्रारंभिक मुगल शैली के दिखते हैं।” इसे प्रवेश द्वारों के दोनों ओर बनी बुर्जियों द्वारा और बाहरी चहारदीवारी द्वारा सुरक्षित किया गया है। बाहरी दीवार में भी दरवाजे थे। बाहरी चहारदीवारी के दरवाजे से प्रवेश करने के उपरांत ही मुख्य प्रवेश द्वार आते थे।

चहारदीवारी में कुल चौदह बुर्जियां थीं। चार कोनों में, दोनों प्रवेश द्वारों के बाजुओं पर, चार प्रवेश द्वारों की बुर्जियां और कोनों की बुर्जियों के बीच एवं दो बुर्जियों शेष भुजाओं के मध्य में। बुर्जियों में अब केवल तीन बुर्जियां शेष हैं, बाकी सब ध्वस्त हो चुकी हैं, इनमें दक्षिण की बुर्ज सबसे अच्छी हालत में हैं। बुर्जियां नौ मीटर से साढ़े दस मीटर तक व्यास की हैं और खोखली हैं। बुर्जियों की दीवाल की भीतरी मोटाई से होकर सीढ़ियां ऊपर के चबूतरे तक गई हैं। ऊपर के फर्श के चारों ओर कंगूरे हैं, जिनमें विभिन्न कोणों पर बने छोटे-बड़े छेद हैं जो बन्दूक से मार करने के लिये थे। तोपों के लिये बुर्जियों में कोई व्यवस्था नहीं दिखती। अतः लगता है कि बुर्जियों से केवल बन्दूकों का प्रयोग किया जाता था। फसलें सिर्फ आधा मीटर मोटी हैं और सिरे पर आड़मात्र 12-15 सेमी मोटी हैं। बुर्जियों के भीतर के कमरे किले के भीतर खुलते हैं।

मंडला के दुर्ग को देखकर लगता है कि गहरी नदी से तीन ओर से घिरा होना इसे प्राकृतिक रूप से शक्तिशाली बनाता था, आकार के सहूलियत के लिये इस महान प्राकृतिक लाभ का बलिदान कर दिया गया है क्योंकि किला नदी के घुमाव के सिर्फ एक छोटे भाग में हैं।

दुर्ग के भीतर सब ध्वस्त हो गया है किन्तु दुर्ग के मध्य में एक महल के अवशेष अभी विद्यमान हैं। दक्षिण की ओर दो मंदिरों के अवशेष हैं। ये मंदिर अनगढ़ पत्थरों की मोटी प्लास्टर युक्त दीवारों के हैं और ऊपर गुम्बद है। दक्षिणी भाग में ही नरेन्द्रशाह द्वारा बनवाया गया राजराजेश्वरी मंदिर है। ऐसा अनुमान है कि अब यह कुछ परिवर्तित रूप में हैं, इसके निकट एक शिवमंदिर भी है, जिसे भोंसला शासन के समय अंताजी बलवंत तांबे ने, जो तहसीलदार थे, बनवाया था। किले के भीतर कहीं-कहीं कलचुरि कालीन मूर्तिखंड या इमारती पत्थर मिले हैं, जिनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि दुर्ग जहां बना वहां या तो कलचुरियों के समान कोई भवन रहा होगा या दुर्ग के निर्माण के लिये कलचुरिकालीन अवशेषों की सामग्री प्रयुक्त की गई थी।

दुर्ग के पूर्वी भाग में नर्मदा तट पर एक विशाल भवन है, जिसे सतखण्डा कहते हैं। भूमि के ऊपर तीन मंजिलें तो स्पष्ट दिखती हैं। शेष चार मंजिलें नदी की बाढ़ के कारण मिट्टी से भर गई हैं। इमारत बाहर से देखने में प्रभावशाली है एवं इसमें वास्तुशिल्प का अच्छा प्रदर्शन किया गया है। प्लास्टरयुक्त मोटी दीवारों वाले इस भवन के भीतर छोटे प्रकोष्ठ हैं और पत्थर की शहतरों से बनी छतों पर एकाधिक मंजिलें बनी हैं। भीतर अच्छे किस्म

की छापाई है। दरवाजे, कहीं चौखटें और कहीं कोणों पर गोलाई लिये हैं। सामने की ओर बने सफेद पत्थरों के छोटे ब्रेकेट प्रकट करते हैं कि कभी उन पर बरसाती ठहरी थी। इस भवन की ऊपरी मंजिल के झरोखे से नर्मदा का दृश्य अत्यंत मनोहर दिखता है। निश्चित ही यह भवन पहले अपनी स्थिति के कारण आकर्षण का केन्द्र रहा होगा। संभवतः स्नान और दृश्यावलोकन के लिये राजपरिवार के लिये इसका प्रयोग किया जाता था।

संदर्भ ग्रंथ :—

1. आर्कियोलॉजी सर्वे रिपोर्ट, सात
2. सुरेश मिश्र, 1986—गोंड राज्य का उत्थान और पतन, रा.दु.वि.वि.,जबलपुर
3. ग्राण्ट, सी.पी. गैजेटियर, नरसिंहपुर, डिस्ट्रिक्ट गैजेटियर
4. भावे, 1943—नागपुर युनिवर्सिटी जर्नल
5. रामनगर शिलालेख, श्लोक 40,हाल,
6. गैजेटियर ऑफ दि सेंट्रल प्राविन्सेज, प्रथम संस्करण,1868,
7. सी.यू. विल्स,स्लीमेन, ग्राण्ट, जे.एन.सील, नटेश, अय्यर, गणेशदत्त पाठक आदि।
8. मंडला डिस्ट्रिक्ट,गैजेटियर
9. रामभरोसे अग्रवाल, 1988—गोंड जाति का सामाजिक अध्ययन, गोंडी पब्लिक ट्रस्ट, मण्डला



अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण का संरक्षण

डॉ. सविता कुमारी

सहायक प्रवक्ता

डॉ. उषा दहिया

सहायक प्रवक्ता

सी0आर0ए0 कॉलेज, सोनीपत, हरियाणा

विज्ञान की उन्नति तथा विकास ने मानव जीवन को बहुत अधिक भौतिक सुविधाएँ प्रदान की हैं। भौतिक सुख-सुविधाओं में दिन-प्रतिदिन वृद्धि हो रही है। विज्ञान की उन्नति के कारण जहाँ एक ओर जीवन सुलभ हुआ है। विज्ञान और नगरीकरण, बड़े-बड़े उद्योगों से निकलते हुए गंदे पानी के कारण जल प्रदूषण, शोर मचाती तथा धुआं छोड़ती मोटर गाड़ियाँ, जनसंख्या विस्फोट, रासायनिक प्रवाह, विज्ञान तथा तकनीक का अप्रत्याशित प्रसाद आदि तथा अनेक अन्य कारणों से सबसे बड़ी तथा उग्र होती जा रही है समस्या-पर्यावरण की। एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका के देशों में अशिक्षा तथा निर्धनता के कारण पर्यावरण की समस्या और भी तीव्र है।

वर्तमान में पर्यावरण बहुत बड़ी समस्या है क्योंकि पर्यावरण हमारे जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। जीवन पर वातावरण का बहुत प्रभाव पड़ता है इसलिए वातावरण के प्रभाव का अध्ययन किए बिना जीवन को समझना बहुत कठिन है। पर्यावरण संबंधी विषय इतना महत्वपूर्ण हो चुका है कि इसको नजर-अंदाज करना अपने जीवन में खतरे पैदा करना है। पर्यावरण की अवधारणा में मनुष्य के चारों ओर निर्णात्मक तत्वों को शामिल किया जाता है। पर्यावरण का क्षय केवल राष्ट्रीय समस्या ही नहीं वरन् अन्तर्राष्ट्रीय समस्या बन गई है और बनती जा रही है।

पर्यावरण की समस्या आरम्भ से इतनी जटिल नहीं थी इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय कानून में प्रदूषण तथा पर्यावरण की समस्या पर बहुत ज्यादा चिंतन किया गया। परंतु यह माना जाता था कि किसी राज्य के कार्यकलापों की सीमा यह है कि उससे अन्य राज्यों के क्षेत्र पर कोई क्षति नहीं पहुँचनी चाहिए। इसके विपरीत अनेक आर्थिक हितों के लिए प्रकृति की गति को परिवर्तित करने की मानव जाति की क्षमता ने व्यापक रूप से पर्यावरण को प्रभावित किया है। पेड़ धड़ाधड़ कटने से वन समाप्त हो रहे हैं तथा इससे प्रकृति का संतुलन बिगड़ता जा रहा है। वर्तमान में पर्यावरण की सुरक्षा का विषय किसी एक राष्ट्र का नहीं है वरन् समूचे अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास के फलस्वरूप ही इस समस्या के निदान की कुछ सम्भावना है। आज हम विकास की इस अंधी दौड़ में तीव्र गति से दौड़ रहे हैं परंतु विकास के नाम पर पर्यावरण को दूषित करना मानव जाति के लिए हानिकारक है। विकास इस तरह से किया जाए कि मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी हो तथा पर्यावरण भी सुरक्षित रहे। पर्यावरण के मामले में विश्व में एकरूपता नहीं है। राष्ट्र की स्थिति पर्यावरण के मामले में भिन्न-2 है। एक ही सभी स्थानों के लिए उपयुक्त नहीं होगा। जब समस्या अन्तर्राष्ट्रीय है तो निदान भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ही संभव है यह कहना अनुचित होगा कि अन्तर्राष्ट्रीय कानून के सामान्य सिद्धान्तों पर नियमों की दूषण तथा पर्यावरण ह्रास की समस्याओं के लिए कोई उपयोगिता नहीं है।

अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अन्तर्गत यह कल्पना की गई है कि राज्यों द्वारा ऐसा कोई कार्य नहीं किया जाना चाहिए जिससे अन्य राज्यों को क्षति पहुँचे। अन्तर्राष्ट्रीय कानून के तहत प्रत्येक राज्य का यह कर्तव्य है कि वह अपने राज्य क्षेत्र में कोई ऐसा कार्य न करे जिससे इस क्षेत्र से बाहर पर्यावरण संबंधी हानि पहुँचे। पर्यावरण की समस्या का निराकरण करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कानून की रचना की जा सकती है। अन्तर्राष्ट्रीय कानून के माध्यम से ही पर्यावरण का संरक्षण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किया जा सकता है। समस्या की गंभीरता को ध्यान में

रखते हुए 1960 से ही मानव ने पर्यावरण की सुरक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय समझौता किए जाने की आवश्यकता का अनुभव करना प्रारम्भ कर दिया था।

पर्यावरण संरक्षण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कानून बनाने संबंधित प्रयास इस प्रकार हैं :-

लेक सैक्स सम्मेलन 1946 :- संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा लेक सेक्स ने 1949 में एक सम्मेलन का आयोजन किया गया जिससे इस बात पर जोर दिया गया कि प्रकृति के उपकरण एक नैसर्गिक बपौती है जिसे नष्ट नहीं करना चाहिए।

स्टॉकहोम सम्मेलन 1972 :- संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 1968 में एक निर्णय किया था कि मानव पर्यावरण की क्षति को सीमित करने के लिए तथा मानव की प्राकृतिक परिस्थितियों के संरक्षण तथा सुधार के लिए राष्ट्रीय, क्षेत्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्यवाही की आवश्यकता है। इस निर्णय को ध्यान में रखते हुए जून 1972 में संयुक्त राष्ट्र मानवीय पर्यावरण सम्मेलन स्टॉकहोम में हुआ। इस सम्मेलन में नदियों के जल, वायुमण्डल, खाद्य सामग्री को प्रदूषित करना, शास्त्रीकरण की होड़, रासायनिक युद्ध प्रणाली, नाभिकीय परीक्षण और औद्योगिक बस्तियों के विकास पर चिंता व्यक्त की गयी। इस सम्मेलन के मानव पर्यावरण की घोषणा की गयी जिसमें उत्तम पर्यावरण के मानव अधिकार तथा भावी पीढ़ियों पर्यावरण की घोषणा की गयी जिसमें उत्तम पर्यावरण के मानव अधिकार तथा भावी पीढ़ियों के लिए पर्यावरण का संरक्षण तथा सुधार का दायित्व सदस्य देशों का निश्चित किया गया। यह घोषणा दो भागों में विभाजित है।

पहले भाग में सात सच्चाईयां हैं:-

1. मानव अपने पर्यावरण निर्माता तथा ढालने वाला दोनों ही है।
2. पर्यावरण मनुष्य को शारीरिक रूप से जीवित रखता है।
3. पर्यावरण ही व्यक्ति को बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक विकास का अवसर प्रदान करता है।
4. मानवीय पर्यावरण का संरक्षण तथा विकास एक अहम् मामला है, जिसका प्रभाव लोगों की भलाई तथा विश्वभर के आर्थिक विकास पर पड़ता है।
5. विकासशील देशों में अधिकांश समस्याएँ अल्प विकास से परिणामस्वरूप है।
6. जनसंख्या की समस्याएँ निरंतर उपस्थित होती हैं तथा समस्याओं का सामना करने के लिए उपयुक्त रीतियाँ तथा उपाय आवश्यक हैं।
7. इतिहास में एक समय ऐसा आ गया है कि सारे विश्व में हमें अपने क्रियाकलाप पर्यावरण के परिणामों को देखते हुए अधिक सावधानीपूर्वक करने चाहिए।

घोषणा के दूसरे भाग में 26 सिद्धांत प्रतिपादित हैं जिनमें से कुछ सिद्धांत सारणीबद्ध रूप में निम्नलिखित हैं :-

1. सामान्य प्रकृति के प्रथम सिद्धांत के अनुसार मनुष्य को स्वतंत्रता, समानता तथा जीवन की उपयुक्त दशाओं का मौलिक अधिकार है।
2. द्वितीय सिद्धान्त में यह व्यवस्था है कि पृथ्वी के प्राकृतिक द्रव्यों (वायु, पानी, भूमि एवं जड़ वाले पौधे शामिल हैं) को वर्तमान व भावी पीढ़ियों के लिए सावधानीपूर्वक उपयुक्त योजना एवं प्रबन्ध द्वारा सुरक्षित किया जाना चाहिए।
3. सिद्धान्त सात में कहा गया है कि समुद्र में होने वाले प्रदूषण जो मानवीय स्वास्थ्य, जीवित द्रव्यों तथा सामुद्रिक जीवन के लिए हानिप्रद है को सभी संबंध उपायों से रोका जाना चाहिए।

4. आठवें सिद्धान्त में यह स्वीकार किया गया है कि मनुष्य हेतु अनुकूलन जीवन तथा उचित पर्यावरण बनाने के लिए आर्थिक तथा सामाजिक विकास आवश्यक है।
5. सिद्धान्त 22 में बताया गया है कि ऐसे राज्यों के क्षेत्राधिकार या नियंत्रण की सीमाओं के बाहर प्रदूषण से पीड़ितों तथा अन्य पर्यावरण के नुकसान के संबंध में दायित्व तथा मुआवजे से संबंधित अन्तर्राष्ट्रीय विधि के विकास करने के लिए सहयोग करेंगे।
6. सिद्धान्त 26 में यह प्रावधान है कि मनुष्य तथा उसके पर्यावरण को आण्विक हथियारों तथा अन्य सभी प्रकार के जनविनाश के साधनों से बचा कर रखा जाए।

इसमें एक ऐसी कार्ययोजना को भी स्वीकृति दी गयी जिसमें जीवन रक्षा, प्रदूषणों का नियंत्रण और शहरों तथा मानव बस्तियों के लिए सरकारी और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा उपायों की सिफारिशें थी। इस सम्मेलन में 5 जून को 'विश्व पर्यावरण दिवस' के रूप में मनाया गया तथा पर्यावरण संरक्षण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को आवश्यक माना गया है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ पर्यावरण कार्यक्रम :-

स्टॉकहोम सम्मेलन की सिफारिशों के आधार पर संयुक्त राष्ट्र महासभा ने पर्यावरण कार्यक्रमों के लिए 58 सदस्यीय अधिशासी परिषद की स्थापना की जिसका मुख्यालय नैरोबी में है। इसके प्रयास से विश्व पर्यावरण निगरानी की जा रही है जो प्रदूषण से सम्बन्धित सूचना तथा उनके उपचार के उपाय सरकारों को बताते हैं। इसके प्रयास से राज्यों द्वारा 1975 ई. में कुछ सन्धियाँ स्वीकृत की गयीं :-

1. संकटग्रस्त जंगली पेड़ पौधों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अभिसमय 1973.
2. अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की नम भूमि तथा विशेषकर पानी में रहने वाले पक्षियों के स्थान पर अभिसमय 1971.
3. विश्व सांस्कृतिक तथा प्राकृतिक विरासत के संरक्षण से संबंधित अधिनियम 1972।
4. तेल प्रदूषण के अपघातों के मामलों में खुले समुद्र में हस्तक्षेप से संबंधित अन्तर्राष्ट्रीय अभि. 1969।
5. तेल प्रदूषण के नुकसान के लिए असैनिक दायित्व पर अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय 1969।
6. जलपोतों द्वारा हवाई जहजों द्वारा ढेर लगाने से सामुदायिक प्रदूषण को बचाने के लिए अभिसमय 1973।
7. कूड़ा-करकट तथा अन्य सामानों द्वारा ढेर लगाने से सामुद्रिक प्रदूषण को बचाने के लिए अभियम 1972।

1973 के संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण की सहायता से समुद्रतटीय प्रदूषण को रोकने तथा पर्यावरण विकास के लिए मरुस्थलों का फैलाव रोकने के लिए कार्य किया जा रहा है।

संयुक्त राष्ट्र जल सम्मेलन, 1977

जल प्रदूषण की समस्या विश्वव्यापी है। इस समस्या के समाधान के लिए अर्जेंटीना में सम्मेलन हुआ, जिसमें 1981-1990 तक के दशक के लिए अन्तर्राष्ट्रीय जल आपूर्ति तथा जल प्रदूषण निवारक दशक के रूप में मनाने का निश्चय किया।

इसके अंतर्गत 2 अरब जनसंख्या को प्रदूषण रहित जल उपलब्ध कराने के लिए वृहद् कार्यक्रम बनाया।

10-18 1982 तक नैरोबी में मानवीय कार्यक्रम पर संयुक्त राष्ट्र का सम्मेलन 10वीं वर्षगांठ मनाने के लिए हुआ। उसके एक घोषणा द्वारा विश्व समुदाय के राज्यों ने स्टॉकहोम के प्रति पुनः आस्था प्रकट की।

विश्व की पर्यावरण संबंधी समस्याओं को हल करने के लिए संयुक्त राष्ट्र विशिष्ट समिति की स्थापना मई 1984 में हुई। फरवरी 1987 में इसकी बैठक हुई जिसमें उष्ण देशों के कम होने तथा रेगिस्तानों तथा तेजाब वर्षा रोकने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय निर्देश बनाने के लिए चर्चा हुई।

रियो पृथ्वी सम्मेलन 1992

3 जून 14 जून 1992 तक चलने वाले इस सम्मेलन का ब्राजील की पुरानी राजधानी रियो डि जेनेरो में संयुक्त राष्ट्र महासचिव बुतरसघाली ने उद्घाटन किया। यह सम्मेलन पर्यावरण एवम् विकास पर 'संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन' था, इसमें 150 से अधिक राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। यह सम्मेलन स्टॉकहोम के मानवीय पर्यावरण सम्मेलन-1972 की 20वीं वर्षगाँठ पर आयोजित किया गया था जिसमें भाग लेने वाले सभी राज्य प्रमुखों की ओर से एक संयुक्त घोषणा पत्र जारी किया गया। इस घोषणा पत्र में पर्यावरण एवं विकास को अन्योन्यात्रित स्वीकार करते हुए मानव जाति के घर 'पृथ्वी' के पर्यावरण की सुरक्षा के लिए सभी देशों के सामान्य अधिकारों एवं कर्तव्यों को सैद्धान्तिक रूप से सुपरिभाषित किया गया। इस घोषणा पत्र में कहा है –

स्थायी विकास के सभी सरोकारों का केन्द्र-बिन्दु मानव जाति ही है और उसे प्रकृति के साथ पूर्ण समरसता रखते हुए स्वस्थ तथा उत्पादनशील जीवन जीने का अधिकार है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के घोषणा-पत्र तथा अन्तर्राष्ट्रीय विधि सिद्धान्तों के तहत प्रत्येक राज्य को अपने संसाधनों का शोषण अपनी ही पर्यावरण नीति के अनुसार करने का सम्प्रभु अधिकार है और उनका यह भी दायित्व है कि वे अपनी समस्त गतिविधियों का संचालन इस ढंग से सुनिश्चित करें कि उनकी राष्ट्रीय सीमाओं के बाहर कोई अन्य राज्य अथवा क्षेत्र उससे दुश्प्रभावित या क्षतिग्रस्त न हो।

विकास के सम्प्रभु अधिकारों का प्रभाव इस प्रकार हो कि विकास एवं पर्यावरण का सामंजस्य बनाया जाये जिससे वर्तमान तथा भावी पीढ़ियों पर इसका प्रतिकूल या विपरीत प्रभाव न पड़ने पाये। स्थायी प्रकृति के विकास के लाभों को प्राप्त करते हुए पर्यावरण संरक्षण पर भी ध्यान दिया जाये क्योंकि ये दोनों ही परस्पर एक दूसरे के अविभाज्य अंग हैं। उन्हें अलग-2 करके नहीं देखा जा सकता।

सभी राज्य और सम्पूर्ण जनता विश्व से गरीबी समाप्त करने के आवश्यक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए परस्पर सहयोग कर स्थायी विकास के लाभों को पाने के लिए सक्रिय होंगे। क्योंकि यह एक अनिवार्य आवश्यकता है। पर्यावरण एवं विकास में संतुलन बनाये रखने के लिए विकासशील तथा अत्यधिक अविकसित देशों की विशेष स्थिति तथा आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए तथा पर्यावरण की दृष्टि से अधिक संकटग्रस्त देशों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी विशेष प्राथमिकता प्रदान की जायेगी और विकास एवं पर्यावरण संगठन के सभी क्रिया-कलाप सभी देशों के हितों और आवश्यकताओं को लक्ष्य करके ही सम्पादित तथा संचालित होंगे।

विश्व समुदाय के विकास एवं उन्नत जीवन स्तर के लिए सभी विकसित तथा विकासशील राष्ट्रों सभी देशों को चाहिए कि पर्यावरण विरोधी उत्पादन तथा उपयोग की सीमाओं को संकुचित करें और ऐसी जनसंख्या नीति अपनायें जिससे आवश्यक संतुलन बना रहे।

सभी देशों का परस्पर सहयोग द्वारा स्थायी विकास की ऐसी प्रविधियाँ अपनानी चाहिए, जो पर्यावरण के अनुकूल हों। इसके लिए उन्हें विज्ञान तथा तकनीकी ज्ञान में वृद्धि के साथ-2 आपस में उनका लेनदेन तो करना ही चाहिए, साथी ही स्थानिक आवश्यकताओं के अनुरूप उनमें वांछित सुधार भी करते रहना चाहिए। तकनीक भी ऐसी होनी चाहिए जिसमें नवीनीकरण के साथ पुनर्नवीकरण की भी सुविधा हो।

पर्यावरण संबंधी विभिन्न मसलों का समाधान सम्बद्ध स्तर पर ही संबंधित नागरिकों की सहभागिता से किया जा सकता है। राष्ट्रीय स्तर पर प्रत्येक व्यक्ति को पर्यावरण संबंधी जानकारी सहज सुलभ होनी चाहिए। इसमें क्षतिकारक पदार्थ तथा संक्रियाओं की जानकारी शामिल है। प्रत्येक समुदाय को निर्णय लेने की प्रक्रिया में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

इसी को ध्यान में रखते हुए राज्यों का कर्तव्य होगा कि वे जानकारीयां सुलभ कराकर जनता में पर्यावरण

चेतना जगायें तथा संरक्षण के लिए उसे प्रोत्साहित करते रहें। पर्यावरण संरक्षा के लिए जरूरी तथा प्रभावी विधिक तथा प्रशासनिक कार्यवाही एवं उपायों का भी सुलभता बनाये रखी जानी चाहिए।

विभिन्न देशों को आवश्यक कानून बनाकर पर्यावरण मानकों का निर्धारण, तत्सम्बन्धी लक्ष्यों, प्राथमिकताओं तथा उपायों को सुपरिभाषित करना चाहिए। विकास एवं पर्यावरण संतुलन निश्चित करने के साथ ही उपयुक्त प्रबंध प्रविधियों का भी इस कानूनों में स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए। संभव है, कुछ विकसित देशों के मानक उनकी सामाजिक तथा वित्तीय परिस्थितियों के कारण अन्यान्य देशों के लिए अनुपयुक्त अथवा अवांछित है।

राज्यों के पास्परिक सहयोग से एक ऐसी वित्तीय प्रणाली का विकास भी वांछनीय है जो एक दूसरे के लिए सहायक हो तथा इस हद तक खुली हो जिसके माध्यम से प्रत्येक देश का आर्थिक विकास तो संभव हो ही सके, पर्यावरण को होने वाली क्षति भी न्यूनतम हो। पर्यावरण की दृष्टि से व्यापार नीतियाँ भी इस प्रकार तैयार की जाये, जो न तो एकतरफा हो और न ही उनमें कोई भेदभाव बरता गया हो। प्रच्छन्न अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिबन्धनों से भी उन्हें पूर्णतः मुक्त होना चाहिए। आयातक देशों को भी यथासंभव ऐसे प्रयास करने चाहिए कि विश्व पर्यावरण उससे प्रतिकूल रूप से प्रभावित न हो। पर्यावरण के सभी मुद्दों पर अन्तर्राष्ट्रीय निर्णय यथासंभव सर्वसम्मत ही होने चाहिए।

राज्यों को ऐसे कानून भी बनाने चाहिए जिनमें प्रदूषण तथा अन्य प्रकार की पर्यावरण संबंधी क्षतियों से दुष्प्रभावित जनों की क्षतिपूर्ति का प्रावधान हो। इसी तरह के प्रावधानों से युक्त अन्तर्राष्ट्रीय विधि के विकास से तो सभी देशों को सहयोग करना चाहिए ताकि किसी एक देश की गलती से दुष्प्रभावित अन्य देशों की क्षतिपूर्ति संभव हो सके।

राज्यों को परस्पर ऐसे प्रभावी उपाय भी करने चाहिए, जिनसे मानव स्वास्थ्य अथवा पर्यावरण के लिए क्षतिकारक पदार्थों तथा प्रक्रियाओं का पुनराबंटन अथवा हस्तान्तरण निरुत्साहित हो।

रियो पृथ्वी सम्मेलन

रियो में आयोजित शिखर सम्मेलन में ताप बढ़ाने वाले गैसों के बढ़ते उत्सर्जन में जलवायु परिवर्तन तथा समुद्र स्तरों में बढ़ोतरी के खतरों को रेखांकित किया गया है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया कि ऐसे गैसों की ज्यादा मात्रा विकसित देश ही वायुमण्डल में उल्लेख है। सन्धि पर हस्ताक्षर करने वाले देशों से आग्रह किया गया कि वे शीघ्र ही रिपोर्ट तैयार करें कि ऐसे उत्सर्जन को घटाने के लिए वे क्या उपाय कर रहे हैं। यही नहीं, सन्धि में यह भी आग्रह किया गया कि विकसित देश ऐसे उत्सर्जन को सन् 2000 तक 1990 के स्तर पर लाभ का प्रयास करें। हालांकि इस लक्ष्य के लिए कोई कानूनी बंधन अस्तित्व में नहीं आ सका। जैव विविधता समझौते में कहा गया है कि विकसित देश (G.E.F. Global Environment Facility) में उपलब्ध फण्ड की सहायता से विकासशील देशों को जैव विविधता की रक्षा करने के लिए प्रेरित किया गया था।

इसके पश्चात एक वृहत दस्तावेज एजेण्डा 21 तैयार किया गया जिसमें समुद्र, तापमान, जैव विविधता के बारे में चर्चा की गई और ऐसे तरीके बताये गये जिसमें पर्यावरण की सुरक्षा के लिए विकास किया जा सके।

सतत विकास आयोग महासभा में 'आर्थिक तथा सामाजिक परिषद' के अधीन स्थापित किया गया है इसकी स्थापना सरकारों, उद्योगों तथा अन्य संस्थाओं द्वारा एजेण्डा-21 के कार्यान्वयन पर निगरानी रखने के लिए हुआ।

पृथ्वी सम्मेलन सचिवालय ने एजेण्डा-21 को क्रियान्वित करने के लिए 350 खरब पौण्ड वार्षिक खर्च का अनुमान लगाया, जिसमें से 70 खरब पौण्ड विकासशील देशों को अनुदान के रूप में दिया जाए। 30 लाख पौण्ड पहले से ही विकसित देश विकासशील देशों को दे रहे थे। 40 खरब पौण्ड की सहायता की उम्मीद जी-77 देशों को थी परंतु जापान, जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन, कनाडा आदि ने थोड़े से खरब पौण्ड की घोशणा ही की। रियो सम्मेलन में पर्यावरण असंतुलन को कम करने के लिए अमीर-उत्तर तथा गरीब दक्षिण देशों में मतभेद उभरे। दक्षिण गुट का

विचार था कि उत्तर ने अपने विकास के लिए पर्यावरण का असंतुलित शोषण किया है तथा दुनिया में प्रदूषण बढ़ाया है। इसलिए पर्यावरण को संतुलित करने तथा प्रदूषण दूर करने के लिए खर्चा दक्षिण को उठाना चाहिए। परंतु सम्मेलन में दक्षिण देशों ने प्रदूषण पर चिंता तो व्यक्त की परंतु किसी भी दशा में विभिन्न संधियों में वर्णित ऐसे प्रस्तावों को स्वीकार करने को तैयार नहीं हुए जिनसे जीवन शैली परिवर्तित होने का खतरा था। अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश ने जैव विविधता तथा जलवायु परिवर्तन संधियों पर हस्ताक्षर नहीं किए क्योंकि उनसे अमेरिका के उद्योग, व्यवसाय एवं जीवन शैली परिवर्तित होने का खतरा था। जैव विविधता संधि पर जून 1992 में 153 देशों ने पृथ्वी सम्मेलन में हस्ताक्षर किये। यह संधि 29 दिसंबर 1993 से प्रभावी हो गयी।

1992 में रियो पृथ्वी सम्मेलन में लिए गए निर्णयों की प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए 23-27 जून 1997 न्यूयार्क में हुआ। इस संयुक्त राष्ट्र पृथ्वी शिखर सम्मेलन में 170 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसमें वनों, प्रजातियों और मत्स्य संग्रह की कमी पर चिंता व्यक्त की गयी। विकासशील राष्ट्रों ने विकसित राष्ट्रों से मिलने वाली कम सहायता के बारे में बताया तथा यह सम्मेलन बिना उचित समाधान के समाप्त हो गया।

पृथ्वी के बढ़ते हुए तापमान को बचाने के लिए दिसंबर 1997 में जापान के क्योटो नगर में यह सम्मेलन हुआ। विश्व पर्यावरण सम्मेलन तथा ग्रीन हाउस सम्मेलन नामक इस सम्मेलन में वातावरण को गर्म करने वाली गैसों के उत्सर्जन को नियंत्रित करने के लिए यद्यपि सभी राष्ट्र सहमत थे परंतु इसकी सीमा का निर्धारण निश्चित नहीं हो पाया।

वायुमण्डल में ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन पृथ्वी की हरियाली के लिए-वनों, कृषि तथा सामान्यता पूरे जीवन के लिए एक भारी खतरा है। यह एक भारी विसंगति है किंतु वैज्ञानिक तौर इन दोनों के बीच में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध दिखाई देता है। यदि ठीक परिमाण में हो तो कार्बन डाइ ऑक्साइड, मिथेन, नाइट्रस, ऑक्साइड सल्फर डाइऑक्साइड आदि ग्रीन हाउस गैसों की उपस्थिति जीवन तथा जलवायु की स्थिरता के लिए आवश्यक है। जब ये ग्रीन हाउस गैसों अधिक मात्रा में एकत्रित हो जाती हैं तो पृथ्वी गर्म हो जाती है और जलवायु में परिवर्तित करने लगते हैं। समुद्रों के जल स्तर में वृद्धि हो सकती है क्योंकि ध्रुवीय क्षेत्रों से बर्फ पिघलने लगेगी। कृषि तथा पेड़ पौधों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा, सूखा या अति वर्षा की संभावना हो सकती है तथा अनेकों बीमारियाँ बढ़ जाती हैं। अब इन गैसों का वायुमण्डल में अनुचित मात्रा में एकत्र हो जाना ही समस्या की जड़ है इसलिए इस स्थिति की जिम्मेदारी उन देशों पर है जिनकी प्रति व्यक्ति ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन की दर बहुत ऊँची है। सम्मेलन में विकसित तथा विकासशील देशों के मध्य मतभेद उभर कर आये। विकासशील देशों ने इसके लिए अमेरिका को जिम्मेदार ठहराया, क्योंकि वह ग्रीन हाउस गैसों को उत्सर्जित करने वाला सबसे प्रमुख देश है। विचार विमर्श के उपरान्त एक समझौते के अनुसार विभिन्न औद्योगिक राष्ट्रों के लिए उत्सर्जन की मात्रा में अलग-2 कटौती करना निश्चित हुआ। इसके अनुसार 2008 से 2012 के बीच कटौती इस प्रकार करनी होगी-अमेरिका 7 प्रतिशत, यूरोपीय संघ 8 प्रतिशत, जापान 6 प्रतिशत तथा अन्य 21 औद्योगिक राष्ट्र भी इसी प्रकार कटौती करेंगे। उत्सर्जन नियंत्रण सभी छह ग्रीन हाउस गैसों पर लागू होगा। परंतु उत्सर्जन नियंत्रण की प्रक्रिया का कोई निर्णय नहीं हुआ।

मौसम में परिवर्तन के मुद्दे पर यूरोपीय संघ तथा अमेरिका में गतिरोध बना हुआ था लेकिन 31 अगस्त 2002 को इस दिशा में उल्लेखनीय प्रगति हुई। कुछ देशों ने 71 पृष्ठों वाली कार्य योजना के प्रारूप में क्योटो संधि पारित करने की जरूरत पर बल दिया था। लेकिन अमेरिका और आस्ट्रेलिया ने इस पर हस्ताक्षर करने से इन्कार करके इसकी राह में रोड़े अटका दिए। 31 अगस्त 2002 को जिस मसौदे पर सहमति हुई, उसमें चिंता व्यक्त की गयी है कि सभी देश, खासकर विकासशील देश मौसम में परिवर्तन के नकारात्मक प्रभावों से जूझ रहे हैं। इस वक्तव्य में कहा गया है कि जिन देशों ने क्योटो संधि की पुष्टि कर दी है, वे उन देशों से अपील करते हैं कि वे समय से इसकी पुष्टि कर दें। इसके लिए हर स्तर पर काम जरूरी है। डेनमार्क के पर्यावरण मंत्री हैंस क्रिस्टियान शिमट

ने बताया कि क्योटो पर सहमति बन गयी है। इस संधि के मुताबिक विकसित देशों को ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी करने के लिए कहा गया है। इन गैसों की वजह से ही पृथ्वी के वातावरण का तापमान बढ़ रहा है। विभिन्न गैर सरकारी समूहों ने क्योटो पर बनी इस सहमति का सावधानीपूर्वक स्वागत किया। इससे पहले रूस द्वारा क्योटो संधि की पुष्टि से इंकार की धमकी की पुष्टि सम्मेलन में हिस्सा ले रहे मौसम विशेषज्ञों के जरिए नहीं हो सकी। अमेरिका, जापान तथा कुछ अन्य विकसित देशों का कहना है कि उन पर कोई समयबद्ध कार्यक्रम नहीं थोपा जाये जबकि यूरोपीय संघ का मानना है कि समय बनाकर कार्यक्रम चलाये जाएं। संघ चाहता था कि दुनिया 2010 तक सतत् ऊर्जा स्रोतों से 15 प्रतिशत तक ऊर्जा लेने का लक्ष्य रखे। लेकिन इस पर सहमति नहीं बन सकी। संयुक्त राष्ट्र अधिकारियों के अनुसार जिन मसलों पर सहमति नहीं बन सकी उनमें सतत् ऊर्जा, व्यापार वित्त तथा विश्वीकरण, गरीबों के लिए स्वच्छता, उत्पादन एवं खपत के लिए टिकाऊ तरीके, प्राकृतिक संसाधन तथा जैव विविधता प्रमुख हैं।

2007 में बाली कार्यवाही योजना के इण्डोनेशिया के शहर बाली में 13वें चक्र की वार्ताओं के परिणामस्वरूप स्वीकृत किया गया था। इसमें जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए विकसित देशों द्वारा तकनीकी हस्तांतरण के संबंध में सहमति बनी थी। तथापि विकसित देशों ने ग्रीन-हाउस गैसों में कटौती के लिए किसी नये बाध्यकारी लक्ष्य को स्वीकार करने से मना कर दिया था।

जलवायु परिवर्तन वार्ताओं का 15वां चक्र दिसंबर 2009 में स्वीडन की राजधानी कोपेनहेगन में संपन्न हुआ। विकसित तथा विकासशील देशों के मध्य मतभेदों के चलते इस सम्मेलन में कोई बाध्यकारी निर्णय नहीं लिया गया। विकासशील देशों का पक्ष **Basic (Brazil, South Africa, India, China)** समूहों के देशों ने प्रस्तुत किया। सम्मेलन के अंत में जो राजनीतिक समझौता स्वीकृत हुआ उसमें सभी पक्षों ने जनवरी 2010 के अंत तक अपने यहाँ ग्रीन हाउस गैसों की कटौती को स्वैच्छिक लक्ष्य घोषित करने हेतु कहा गया था। क्योटो संधि को 2012 के बाद आगे बढ़ने पर भी कोई सहमति नहीं बन सकी। फिर भी विकसित देशों ने विकासशील देशों को जलवायु संकट से निबटने के लिए प्रतिवर्ष 100 बिलियन डॉलर की अतिरिक्त सहायता देने पर सहमति व्यक्त की। परंतु एक साल बाद भी इस तरह की सहायता का लक्ष्य पूरा नहीं हो सका है। यह सहायता वर्ष 2020 तक प्रतिवर्ष दी जायेगी।

जलवायु परिवर्तन वार्ताओं का 16वां शिखर सम्मेलन मैक्सिको के शहर कानकुन में नवंबर-दिसंबर 2010 में संपन्न हुआ है। इस सम्मेलन में 194 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया है। इस सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व पर्यावरण मंत्री जयराम रमेश ने किया। भारतीय प्रतिनिधि मण्डल व पर्यावरण मंत्री ने विकसित व विकासशील देशों के मध्य-मतभेदों को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस बार चार देशों के समूह **Basic** में भी मतभेद उभरकर सामने आये हैं। जहाँ दक्षिण अफ्रीका का ब्राजील कार्बन उत्सर्जन के संबंध में बाध्यकारी कटौती के पक्षधर थे वहीं चीन तथा भारत विकासशील देशों के लिए ऐसी किसी बाध्यकारी कटौती को स्वीकार नहीं करना चाहते थे। इससे उनका आर्थिक विकास प्रभावित होगा।

कानकुन सम्मेलन की प्रमुख असफलता यह थी कि यह सम्मेलन क्योटो संधि के बाध्यकारी प्रावधानों को 2012 के बाद जारी रखने में असफल रहा। विकसित देश विशेषकर अमेरिका व जापान इस तरह की किसी बाध्यकारी कार्बन कटौती व्यवस्था के विरुद्ध थे।

जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र संघ का बहुप्रतीक्षित सम्मेलन कॉप-15 (COP-15) डेनमार्क की राजधानी कोपेनहेगन में 7-18 दिसंबर 2009 को संपन्न हुआ। क्योटो संधि जिसकी अवधि 2012 में समाप्त होने को है, के स्थान पर किसी नये समझौते के लिए इस सम्मेलन का आयोजन संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में किया गया था। 192 देशों के प्रतिनिधियों ने जलवायु परिवर्तन के विभिन्न पहलुओं पर सर्वसम्मत समझौते पर पहुँचने का प्रयास 12 दिन चले इस सम्मेलन में किया, किंतु इसमें वे नाकामयाब ही रहे। क्योटो समझौते को ही

बरकरार रखने से लेकर कुछ अन्य प्रस्तावों पर चर्चा इस सम्मेलन में की गई, किंतु सर्वसम्मत समझौते पर नहीं पहुंचा जा सकता। 18 दिसंबर को सम्मेलन के अंतिम दौर में एक गैर-बाध्यकारी कोपेनहिगन समझौते को स्वीकार किया गया। अमेरिका तथा बेसिक देशों को सर्वसम्मत नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि अनेक राष्ट्रों ने इसका पुरजोर विरोध बाद में किया है।

ग्लोबल वार्मिंग पर अंकुश के लिए 1997 की क्योटो संधि के स्थान पर एक नई बाध्यकारी संधि लाने के लिए विभिन्न पहलुओं पर विचार के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में 17वां संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन कान्फ्रेंस ऑफ पार्टिज 28 नवंबर-11 दिसंबर 2011 के दौरान द0 अफ्रीका में डरबन में संपन्न हुआ। यह सम्मेलन 9 दिसंबर तक निर्धारित था। जो बाद में दो दिन बढ़ा दिया गया था। 192 देशों के प्रतिनिधि इस सम्मेलन में उपस्थित थे। क्योटो संधि के स्थान पर लाई जाने वाली नई संधि को 2015 तक अंतिम रूप प्रदान करने का फैसला 14 दिन तक चले इस सम्मेलन में स्वीकार किए गए डरबन पैकेज में किया गया। 1997 में हस्ताक्षरित क्योटो संधि में ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन लक्ष्य जहाँ केवल विकसित देशों के लिए ही बाध्यकारी थे, वहीं नई लाई जाने वाली संधि में सभी देशों के लिए बाध्यकारी लक्ष्य निर्धारित किये जायेंगे। नई प्रस्तावित संधि के लिए प्रक्रिया डरबन प्लेटफॉर्म फॉर एन्हांस्ड एक्शन के तहत शुरू किए जायेंगे तथा इन्हें 2015 तक अंतिम रूप दे दिया जायेगा। नई संधि 2020 से लागू की जाएगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची—

1. मुकुन्द गोविन्द राजन, ग्लोबल एनवायरमेंट पोलिटिक्स : इण्डियन एण्ड दी नोर्थ-साऊथ पोलिटिक्स ऑफ ग्लोबल एनवायरमेंट इश्यूस, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय, 1997.
2. स्नेहलता पाण्डा, जेण्डर, एनवायरमेंट एण्ड पार्टिसिपेशन इन पोलिटिक्स, एम.डी. पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1995
3. मोहम्मद नसिब, एनवायरमेंट लॉ इन इण्डिया, कलुवर लॉ इंटरनेशनल, नीदरलैंड, 2011
4. आर.के. शर्मा, एनवायरमेंट इश्यूस इन इण्डिया, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2007
5. स्प्रिंगर, केपेसिटी बिल्डिंग इन नेशनल बिल्डिंग इन नेशनल एनवायरमेंट पोलिसी, वेरलेंग बोरलिन हेडिबर्ग, न्यूयार्क, 2002
6. बेनी रोस और एलेक्स हण्ट, पोस्ट कोलोनियल ग्रीन एनवायरमेंटल पोलिटिक्स और वर्ड नैरेटिव, वरगिनिया प्रैस, यू0एस0ए0, 2010
7. मनीष प्रीयम, कृष्ण मेनन मधुलिका बेनेर्जी, हयूमन राइट्स जेण्डर एण्ड दी एनवायरमेंट, डॉरलिंग किण्डरसकाई प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2007



भारत में पर्यावरण शिक्षा के प्रति जागरूकता

डॉ. अंजूलता

असिस्टेंट प्रोफेसर-शिक्षाशास्त्र
राजकीय महिला महाविद्यालय, झाँसी

पर्यावरण हर प्रकार के जीवन का आधार है। यह समस्त जीवों एवं पेड़ पौधों को जीवन देता है, जो जीने योग्य वातावरण के साथ-साथ हमें रोटी-कपड़ा और जरूरत की सभी चीजें प्रदान करता है। हमारी वैज्ञानिक उन्नति, प्रौद्योगिक उन्नति, आनुवांशिक इंजीनियरी, खेती और उद्योग सभी का आधार प्राकृतिक संसाधन है। पर्यावरण प्रत्येक व्यक्ति के जीवित रहने का आधार है।

पर्यावरण शिक्षा पर्यावरण सम्बन्धी जानकारी व समझ उत्पन्न करने की एक प्रक्रिया है। यह वह शिक्षा है जो पर्यावरण के माध्यम से, पर्यावरण के विषय में, पर्यावरण के लिए होती है। इस प्रक्रिया में पर्यावरण तथा मानव के पारस्परिक सम्बन्धों, पर्यावरण के संरक्षण व संवर्धन की शिक्षा दी जाती है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं, कि पर्यावरण शिक्षा पर्यावरण के बारे में जानकारी, अवबोध, रुचियों अभिवृत्तियों, कौशलों व जागरूकता के विकास सम्बन्धी क्रियाओं को पर्यावरण शिक्षा कहा जाता है। वर्तमान समय में पर्यावरण के लिए सबसे बड़ा खतरा प्रदूषण है। प्रदूषण पर्यावरण को ग्रहण की तरह ग्रसित करता जा रहा है। मानव और पर्यावरण का बहुत गहरा नाता है। पर्यावरण का प्रभाव प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से मानव पर ही पड़ता है। पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाली कोई क्रिया की जाएगी तो उसकी प्रतिक्रिया भी अवश्य होगी और इस प्रतिक्रिया की चपेट में अन्य जीवों समेत मानव भी आ जाता है। यह प्रदूषण काफी कुछ वैज्ञानिक और औद्योगिक उन्नति के कारण हो रहा है। जबकि मनुष्य तुरन्त मिलने वाले लाभों एवं सुविधाओं के कुचक्र में फँसकर गलतियाँ करता चला जाता है और फिर उनसे उभरना उसके लिए मुश्किल हो जाता है।

पर्यावरण सुरक्षा हेतु :- भारत वर्ष में राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण शिक्षा के क्षेत्र में विस्तृत कार्यक्रम प्रारम्भ किए गए हैं। केन्द्रीय वन और पर्यावरण मन्त्रालय ने अपने कार्यक्रमों में पर्यावरण शिक्षा के विकास को प्राथमिकता प्रदान की है। अपने कार्यक्रमों के द्वारा विभिन्न आयुवर्ग के जन समूहों में पर्यावरण के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने तथा सभी पर्यावरण सूचना तन्त्र (Environment Information System) नेटवर्क माध्यम का प्रयोग किया जा रहा है। पर्यावरण शिक्षा के औपचारिकेत्तर माध्यम (Non formal media) जैसे सेमिनार, सिम्पोजिया, वर्कशॉप, प्रशिक्षण कार्यक्रम, ईको-शिविर दृश्य-श्रव्य, कार्यक्रमों के आयोजन पर अधिक बल दिया जा रहा है। मानव संसाधन विकास मन्त्रालय जुलाई 1986 से राष्ट्रीय पर्यावरण जागृति मुहिम (National Environment Awareness Campaign) (NEAC) का आयोजन कर रहा है। इस मुहिम के अंतर्गत 19 नवम्बर से लेकर 18 दिसम्बर तक प्रतिवर्ष राष्ट्रीय पर्यावरण मास (Environment Month) का आयोजन होता है।

दसवीं योजना में पर्यावरण तथा वन-क्षेत्र की प्रत्येक प्रमुख गतिविधियों के तहत प्रस्तावित कुछ कार्यक्रम इस प्रकार हैं :-

1. केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड :- पर्यावरण सुरक्षा प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख मुद्दों पर जोर देगा। वाहनों और औद्योगिक श्रोतों से निकलने वाले प्रदूषकों की बढ़ती मात्रा को देखते हुए सूक्ष्म कण (फाइन पार्टिकुलेट मैटर), कार्बन मोनोआक्साइड और ओजोन जैसे विविध प्रदूषकों पर नजर रखने का काम इन निगरानी केन्द्रों पर

किया जाएगा। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय वायु निगरानी कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय जलगुणवत्ता कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय जलगुणवत्ता कार्यक्रम भी बनाने होंगे। बोर्ड कुछ अन्य क्षेत्रों पर भी ध्यान केन्द्रित कर सकता है, जिसमें वाहन-प्रदूषण, जैव-चिकित्सकीय अपशिष्ट प्रबंध, औद्योगिक प्रदूषण- नियंत्रण शामिल हो सकता है।

2. साझा उत्सर्ग उपचार – संयंत्र :- इस योजना में संगत लघु उद्योग समूह से निकलने वाले उत्सर्जकों को साझा उत्सर्जक उपचार संयंत्रों में उपचारित करके उनसे प्रदूषण तत्वों को निकाला जाता है। इन संयंत्रों की स्थापना केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकार की वित्तीय भागीदारी तथा आवश्यकता पड़ने पर वित्तीय संस्थानों से प्राप्त ऋणों से की जाती है। इन साझा संयंत्रों का मुख्य उद्देश्य अवशिष्ट जल उपचार एवं जल संरक्षण है।

3. ताज संरक्षण मिशन सहित पर्यटन केन्द्रों में पर्यावरण प्रबंधन :- एक याचिका में उच्चतम न्यायालय के सितम्बर 1996 के आदेशों के अनुसरण में राज्य सरकार के परामर्श से योजना आयोग ताजमहल के संरक्षण से सम्बन्धित विभिन्न योजनाओं को केन्द्र और राज्य के बराबर-बराबर के हिस्से यानी 50:50 के आधार पर लागू करता है। ताज ट्रेपेजियमजोन प्रदूषण अथारिटी (निवारण एवं नियंत्रण) ताज संरक्षण मिशन योजना के तहत विभिन्न परियोजनाओं के क्रियान्वयन पर निगह रखता है। इस परियोजनाओं में अबाध विद्युत आपूर्ति, जलापूर्ति में वृद्धि और स्वच्छता में सुधार तथा पूरे शहर में पेड़ लगाने की योजनाएँ शामिल हैं।

4. पर्यावरण स्वास्थ्य :- यह एक ऐसी योजना है जिसमें एक राष्ट्रीय पर्यावरण स्वास्थ्य रूपरेखा विकसित करने पर जोर दिया गया है। इसमें पर्यावरण से जुड़े महामारी विज्ञानी अध्ययनों और बुरी तरह प्रदूषित क्षेत्रों, विशिष्ट प्रदूषक तत्वों जल प्रदूषित क्षेत्रों, वायु प्रदूषक तत्वों, भीतरी प्रदूषण से सम्बन्धित कार्यों पर जोर दिया गया।

5. स्वच्छ प्रौद्योगिकी को बढ़ावा :- इसके अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य व परियोजनाएँ हैं-

- ♦ इस्पात, कोयला तथा अन्य क्षेत्रों के लिए जीवन चक्र आकलन अध्ययन।
- ♦ ऊपरी यमुना थाले के लिए किए गए पहले के अध्ययनों की तर्ज पर प्राकृतिक संसाधन गणना अध्ययन।
- ♦ उद्योग, स्वास्थ्य, पर्यटन, परिवहन और कृषि के लिए अंतर क्षेत्रीय नीतियों में तालमेल।
- ♦ उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में बांस-आधारित कम्पोजिटों के विकास जैसी प्रदर्शन परियोजनाएँ।

6. खतरनाक पदार्थ प्रबंध :- खतरनाक अवशिष्ट प्रबंध कार्यक्रम में राज्य प्रदूषक नियंत्रण बोर्डों के माध्यम से खतरनाक कचरे के उपचार और निपटान के लिए साझा सुविधाओं की स्थापना तथा बेसल संधि के तहत दायित्वों का निर्वहन (अर्थात् प्रशिक्षण के लिए उपक्षेत्रीय केन्द्र, बंदरगाहों/सीमा शुल्क प्रयोगशालाओं में क्षमता/सामर्थ्य निर्माण, निर्यात आयात नीति में अपशिष्टों की प्रतिबन्धित सूची को शामिल करना) शामिल करने होंगे।

7. भारतीय वनस्पतिक सर्वेक्षण/भारतीय प्राणि विज्ञान सर्वेक्षण :- अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप एक वनस्पतिक उद्यान नोएडा में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में स्थापित किया जाएगा जिसमें पूरे देश की वनस्पतियों का प्रतिनिधित्व होगा। भारतीय प्राणि विज्ञान सर्वेक्षण को जिन क्षेत्रों पर जोर देना होगा, उनमें राज्य वनस्पति अन्वेषण सर्वेक्षण (जिलावार) भारतीय क्षेत्र की चयनित परिस्थितिकीय प्रणालियों का अध्ययन बाध आरक्षण क्षेत्र सहित संरक्षण क्षेत्रों का सर्वेक्षण, वनस्पति घटकों के विषाक्तता अध्ययन, संकट ग्रस्त प्रजातियों का स्थिति सर्वेक्षण, क्रोमोसोम, माप चित्रण, तथा डी0एन0ए0 फिंगर प्रिंटिंग आदि शामिल होगी।

8. जैव मण्डल रिजर्व :- जैव मण्डल रिजर्व स्थलीय या तटवर्ती परिस्थितिक प्रणालियों के ऐसे क्षेत्र हैं जिन्हें प्रमुख जैव भौगोलिक जोनों के संरक्षण में मदद के लिए चुना जाता है। इस योजना में मोटे तौर पर स्थानीय संसाधनों का मूल्यवर्धन और उनका निरन्तर इस्तेमाल आता है। इसमें महत्वपूर्ण क्षेत्र पर दबाव घटाने के लिए स्थानीय समुदायों को अजीविका विकल्प उपलब्ध कराने पर भी जोर दिया जाता है।

9. जैव विविधता संरक्षण :- दसवीं योजना में औषधीय पौधों के संरक्षण, पावन वृक्ष समूहों के संरक्षण एवं प्रबंध, तटवर्ती और समुद्री जैव-विविधता संरक्षण, राष्ट्रीय जैव विविधता रणनीति एवं कार्य योजना के तहत सूक्ष्म स्तरीय योजना के निर्माण और देश में जैव-विविधता नियामक ढांचे के क्रियान्वयन पर जोर दिया जाएगा।

10. पर्यावरण शिक्षा :- 10वीं योजना की पर्यावरण शिक्षा देने और जन-सामान्य में जागरूकता उत्पन्न करने की कुछ बड़ी योजनाएँ इस प्रकार हैं पर्यावरण शिक्षा तथा प्रशिक्षण, सेमिनार/संगोष्ठी/कार्यशाला तथा उत्कृष्टता केन्द्र। पर्यावरण शिक्षा और प्रशिक्षण में राष्ट्रीय पर्यावरण जागरूकता, अभियान, स्कूलों में पारिस्थितिक क्लबों की स्थापना तथा प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के माध्यम से विभिन्न अभियान आते हैं। ए0आई0सी0टी0ई0 के मान्यता प्राप्त स्कूलों, प्रबंध संस्थाओं के व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में पर्यावरण विज्ञान को एक औपचारिक विषय के रूप में शामिल करने के प्रयास किए जा रहे हैं। अब तक पर्यावरण विज्ञान और प्रबंध के विभिन्न क्षेत्रों में आठ उत्कृष्टता केन्द्र स्थापित किए जा चुके हैं या उन्हें मदद की गयी है। 10वीं योजना में अब तक स्थापित न किए गए विषयों के लिए नए केन्द्र खोलने का प्रस्ताव है।

11. अंतर्राष्ट्रीय नेटवर्किंग :- भारत पर्यावरण, जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता और माट्रियल प्रोटोकॉल निरंतर-विकास आयोग से पर्यावरण सम्बन्धी विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय बैठकों/सम्मेलनों में सक्रिय रूप से भाग लेता रहा है। कुछ योजनाएँ हैं। भारत कनाडा पर्यावरण सुविधा, भारत सरकार यू0एन0डी0पी0सी0एफ0 कार्यक्रम, विश्व पर्यावरण सुविधा, कनाडा से सहायता प्राप्त उत्कृष्टता केन्द्र, भारत, जर्मन तकनीकी सहयोग परियोजना।

12. पर्यावरण रिपोर्ट स्थिति :- योजना का केन्द्रीय उद्देश्य वास्तविक मापदण्डों का आकलन विकास योजनाकारों को संवेदनशील बनाना तथा पर्यावरण सम्बन्धी सरोकारों को मुख्य धारा में लाने हेतु सुधारात्मक उपाय लागू करना है।

13. राष्ट्रीय नदी संरक्षण निदेशालय :- नदियों झीलों के सफाई कार्यक्रमों की निरन्तरता में सुधार की दृष्टि से संभावित तथा सम्पूर्ण दृष्टिकोण में कई उपाय प्रस्तावित किए गए हैं।

14. राष्ट्रीय झील संरक्षण योजना :- इस योजना के अन्तर्गत संरक्षण और प्रबंध हेतु दस शहरों झीलों की पहचान की गयी। इसमें तमिलनाडु की ऊँटी ओर मुम्बई की पोवई तथा नैनीताल की तीन झीलों को लिया गया है।

15. भारत को हरा-भरा बनाना :- भारत को हरा-भरा बनाने की योजना में 33 प्रतिशत भूमि को वनों/वृक्षों से आच्छादित करने को राष्ट्रीय लक्ष्य की प्राप्ति हेतु वन क्षेत्रों के बाहर वृक्ष लगाने में लोगों की भागीदारी को शामिल किया गया है। ये वृक्ष सड़कों नहरों तटों, रेल लाइन के साथ-साथ लगाए जा सकते हैं। तथा निजी भूमियों को भी शामिल किया जा सकता है।

भारत में पर्यावरण चेतना के अभियान सफल रहे हैं। इसमें 1970 के दशक के चिपको आन्दोलन (हिमालय क्षेत्र केवल एवं जैव विविधता को बचाने के लिए) अप्पिको आन्दोलन केरल में प्रस्तावित जल विद्युत परियोजना जिससे पश्चिमी घाट के वनों एवं जैव विविधता का संरक्षण हुआ। राजस्थान का अरावली बचाओ आन्दोलन तथा दून घाटी आन्दोलन महत्वपूर्ण हैं जो पर्यावरण संचेतना विकसित करने में सफल रहे।

रेडियो, दूरदर्शन, अखबारों तथा पत्र पत्रिकाओं में तथा लोगों में मुंह से प्रदूषण की चर्चा सुनाई देती है। आज प्रदूषण का दानव पूरे जल मण्डल, स्थल मण्डल एवं वायु मण्डल पर छा गया है। हमारा जीवन प्रदूषण के भूत से त्रस्त है। लेकिन इससे मुक्ति पाने के लिए वैज्ञानिकों नियोजकों प्रशासकों, व्यवस्थापकों तथा सरकारी प्रयासों के साथ-साथ सामान्य ग्रामीण जनता को भी निरंतर विवेक पूर्ण एवं संयमित पद्धति से जीवनयापन करना होगा।

हमारे देश में वर्तमान में यद्यपि पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी अनेकों सावधानियाँ बरती जा रही है, जैसे

सार्वजनिक कूड़ादान एवं शौचालय, विद्युत शवदाह गृह, ईंधन हेतु गैस, मृत जानवरों के शवों को नदियों में प्रवाहित करने में प्रतिबंध, उद्योग से निकलने वाले अवशिष्टों एवं धुएँ में प्रतिबन्ध, वाहनों से निकलने वाले धुएँ को साफ करने के लिए विशेष फिल्टरों का प्रयोग, पर्यावरण शिक्षा, पर्यावरण शिक्षा के प्रति जागरूकता हेतु संचार माध्यमों का प्रयोग, स्वैच्छिक संस्थाओं तथा सरकार का पर्यावरण संरक्षण हेतु प्रयास, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चर्चाएँ इत्यादि। परन्तु वास्तव में जब तक शैक्षिक माध्यम से यह जागरूकता तथा चेतना विकसित नहीं की जायेगी तब तक देश का हर नागरिक न तो पर्यावरण संरक्षण में प्रतिभागी हो जायेगा और न ही अपना पूर्ण योगदान दे पाएगा। अंततः अपने पर्यावरण का संरक्षण हम विकास की गति के सापेक्ष नहीं कर पायेंगे।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपने भौतिक पर्यावरण को स्वच्छ रखने के प्रति जागरूक हो। तथा समाज, राष्ट्र एवं विश्व के पर्यावरण को स्वच्छ रखने में अपना महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान करते हुए स्वस्थ जीवन यापन करे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची —

1. भारतीय शिक्षा में उदीयमान प्रवृत्तियाँ—डॉ० प्रतिभा उपाध्याय
2. शिक्षा सिद्धान्त—प्रो० राम शकल पाण्डेय
3. पर्यावरण शिक्षा—आर०ए० शर्मा
4. भारतीय शिक्षा का इतिहास विकास एवं समस्याएँ— डॉ० एस०पी० गुप्ता
5. योजना— जनवरी 2003
6. पर्यावरण शिक्षा—एम०के० गोयल
7. योजना—अक्टूबर 2010



समकालीन कविता और पर्यावरण चेतना

डॉ. राजेश कुमार गर्ग
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
ई0सी0सी0, इलाहाबाद
(इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

डॉ. मलखान सिंह
प्रवक्ता
एल0आई0जी0,5, कालिन्दीपुरम्, राजरूपपुर
इलाहाबाद-211011

समकालीन कविता संकीर्ण दायरों से मुक्त जीवन के यथार्थ धरातल में विकसित समग्रता बोध की कविता है। समकालीन कवि मनुष्य के सुख-दुख, भाव-विचार, अनुभूति-संवेदना, संघर्ष-अन्तर्विरोधों आदि का प्रामाणिक चित्रण ही नहीं अपितु प्रकृति के प्रति मनुष्य के वैरभाव और उसके परिणाम का चित्रण और चेतावनी भी रचता है।

विश्व की सभी भाषा के कवियों ने अपनी रचनाओं में प्रकृति सौन्दर्य के वैविध्यमय रूपों के अनगिनत चित्र उकेरे हैं। उसे कभी दृष्टान्त, उदाहरण, अन्योक्ति, रूपक, यमक तथा अन्य अलंकारों उपमानों के रूप में प्रयुक्त किया है, तो कभी आलम्बन, उद्दीपन के रूप में। प्रकृति सदैव काव्य का एक अनिवार्य उपादान रही है। कविता के समस्त बिम्बों, चित्रणों में प्रकृति आलम्बन अथवा उद्दीपन विभाव के रूप में उपस्थित रही है, इसलिए कविता और प्रकृति का यही रूप अब तक हमारे लिए परिचित रहा है।

20वीं सदी ईस्वी के उत्तरार्द्ध की कविता में पहली बार प्रकृति इससे भिन्न रूप में उपस्थित हुई है। वह सन्दर्भ है उसका पर्यावरणीय रूप, जिसमें प्रकृति मात्र सौन्दर्यानुभूति की आलम्बन, उद्दीपन अथवा उपमान-प्रतिमान न होकर स्वयं एक विषय वस्तु है। प्राकृतिक पर्यावरण हमारे अस्तित्व का आधार है। वह हमारे भीतर भी और हमारे चारों ओर भी। वह हमारे जगत जीवमात्र के होने न होने का सबसे प्रमुख कारक है। वह अक्षुण्ण और सुरक्षित है तो पृथ्वी का जीवन सुरक्षित है। उसकी सुरक्षा का क्षरण पृथ्वी के जीवन का क्षरण है। प्रकृति के इस आसन्न संकट के लिए प्रमुख रूप से मनुष्य ही उत्तरदायी है। यह बात 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध तक संसार के प्रमुख चिन्तकों को समझ में आने लगी। मानव समाज की भौतिक प्रगति, वैज्ञानिक उन्नति तथा उपभोग की बढ़ती प्रवृत्ति से एक ओर प्रकृति का अंधाधुंध दोहन होने लगा, दूसरी ओर उसका निष्कलुष रूप प्रदूषित और असंतुलित होने लगा। इसके दूरगामी भयावह परिणामों के प्रति चिन्ता ने पर्यावरण संरक्षण के आन्दोलनों को जन्म दिया। पर्यावरण चिंतक अपने-अपने स्तर से इस ओर प्रयासरत हुए। पर्यावरण चिंतन के विभिन्न क्षेत्रों में से एक महत्वपूर्ण क्षेत्र साहित्य है, जो शब्द रचनाओं के माध्यम से पर्यावरण के प्रति सामाजिक चेतना जाग्रत करता है।

वैश्वीकरण के इस दौर में पर्यावरण काफी चिन्ता का विषय है। प्रकृति के असंतुलित दोहन का भीषण परिणाम मानव जाति किसी न किसी रूप में भोग रही है। समकालीन कविता में कई कवि इस आशंका को अभिव्यक्त करते हैं। मानव निर्मित पारिस्थितिक समस्याएँ अब ज्यादा हैं। ऐसी आशंका नवल शुक्ल की कविता 'खड़े-खड़े देखेंगे' में अभिव्यक्त हुई है—

खड़े-खड़े देखेंगे
खेतों में बनते
बड़े-बड़े पहाड़
कहीं दूर जाते खनिज
गिने चुने पेड़
असमय उड़ती चिड़िया।

ऐसी स्थिति में सभी चीजें धरती से विदा ले रही हैं। हवा, पानी, पेड़-पौधे, नदियां, फूल, जीव आदि गायब हो रहे हैं इस धरती से। इसीलिए एकान्त श्रीवास्तव को लगता है कि (इस संसार की जलवायु में)

ऋतुओं की महक घिर गई है

केमिकल्स की गन्ध से

श्रीवास्तव की तरह बलदेव वंशी भी अपनी चिन्ता 'तेजाबी वर्षा' में इस तरह व्यक्त कर रहे हैं—

बरस रहीं मरीं मछलियाँ

बादलों से कभी

बरसता तेजाबी जल और

धरती आवाक/असमर्थ/अमृत कोख भी

विष पचाने में

पेट में पड़े तुम्हारे नये उत्पाद

रसायनों के नये समीकरण

प्लास्टिक के रूप-अरूप।

ये काव्य पंक्तियाँ पर्यावरण के प्रति हमारी वर्तमान चिन्ताओं को और गम्भीर बनाती हैं। यह युग समकालीन कविता का है, वैश्वीकरण का भी। दोनों सच हैं। वैश्वीकरण के इस युग में विकास की अवधारणायें बेहद खतरनाक हैं। ये अवधारणायें विकास के नाम पर पर्यावरण का विनाश करती हैं और प्रकृति का दोहन करती हुयी उसे निरंतर रौंदती रहती हैं। इसलिए "प्रकृति ही जीवन में सृजनात्मकता की माँ है। उसे उजाड़ना या दास बनाना जीवन की सहजता को तोड़ना है।"

समकालीन कविता प्रकृति के रूप रंग वैविध्य के आकर्षण में डूबे हुए प्रकृतिवादी की कविता नहीं है, बल्कि प्रकृति के मूलतत्त्व और उसके भीतर निहित विश्वशक्ति की पहचान कराने वाले कवियों की कविता है। प्रकृति पर रचित समकालीन कवियों की छोटी-बड़ी कवितायें जिस प्रकृति को हमारे भीतर जीवंत करती है वह दुर्लभ है। वे प्रकृति के रूप वर्णन में व्यस्त होने के स्थान पर उसके स्पंदन को सुनते और सुनाते हैं। हिन्दी साहित्य में पर्यावरण चेतना के प्रथम प्रमुख कवि भवानी प्रसाद मिश्र हैं उन्होंने प्रकृति के पर्यावरणीय महत्व को पहचानते हुए सर्वप्रथम उसके अवैज्ञानिक अस्वाभाविक दोहन तथा विविध प्रकार के प्रदूषणों द्वारा उसका असंतुलन बढ़ाने के प्रति सावधान किया है।

हम प्रकृति से टूट गये हैं

जिस डाली को पकड़े थे हमारे हाथ

उससे हमारे हाथ छूट गये हैं।

और अब हम एक गति में हैं

ज्यादातर लोग समझ रहे हैं

हम प्रगति में हैं।

(परिवर्तन जिये, 49)

कवि को कष्ट है कि प्रकृति से दूरी बढ़ाते-बढ़ाते मनुष्य अपने लिए नये संकट उत्पन्न कर रहा है। जिसे वह प्रगति समझ रहा है, वास्तव में वह सच्ची प्रगति नहीं है।

आधुनिक युग में वैज्ञानिक आविष्कारों तथा औद्योगीकरण के उत्पादों ने जितनी तीव्रता से मानव सभ्यता को

आगे बढ़ाया उतनी ही तेजी से प्राकृतिक पर्यावरण का असंतुलन भी बढ़ा है। इसी के परिणामस्वरूप पृथ्वी के समस्त जीवों का अस्तित्व संकटग्रस्त हो गया। जनसंख्या के बढ़ते दबाव से प्राकृतिक संसाधन नष्ट होते गये। यांत्रिक उपकरणों के अत्यधिक प्रयोगों में प्रयुक्त होने वाले तथा उनसे उत्सर्जित होने वाले हानिकारक रसायनों ने वातावरण को विशाक्त बना दिया। भूमण्डलीय तापवृद्धि तथा जलवायु परिवर्तन के संकट लिए मानव की ये प्रवृत्तियाँ भी कम उत्तरदायी नहीं हैं।

कहीं नहीं बचे हरे वृक्ष
न ठीक सागर हैं न नदियां
कहीं नहीं बचा चमकता सूरज
चाँदनी उछालता चाँद। (परिवर्तन जिये, 106)

समकालीन कवि समाज को निरंतर सचेत करता है और इस बात का बोध भी कराता है कि पर्यावरण को प्रदूषित और असंतुलित बनाने के लिए मनुष्य स्वयं उत्तरदायी है।

धरती की माटी अगर
पलीत होती जा रही है
पानी की छाती अगर
भयभीत होती जा रही है
या साफ—सुथरी हवा

ज्यादा जहरीली मौत की किसी घाटी से
तो यह सब हमारा फैलाया हुआ जाल है। (अनाम.....100)

अत्यधिक आधुनिक बनने की होड़ के कारण मनुष्य अपने ही फैलाये जाल में फँसता जा रहा है। अत्यधिक भोग की प्रवृत्ति ने उसके मानस के उदात्त मूल्यों को पोंछ डाला है। इसीलिए व्यक्ति रहन—सहन ही नहीं, उसकी वैचारिकता और चिंतन शक्ति भी बदलती जा रही है। यही कारण है कि दिन—प्रतिदिन जन—जीवन में गम्भीरता के स्थान पर उथलापन और आडम्बर छाता जा रहा है। इसीलिए कवि लिखता है..

पक्के घरों में रहने वाले
पक्के आदमियों ने
सिवा विचारों के
सबकुछ पक्का रखा है। (खुशबू के शिलालेख.....141)
और कभी लिखता है—
लेना—देना आपस में
न चीजों का है, न विचारों का है
वे चीज़ ले लेते हैं
बाजारों से

विचार ले लेते हैं अखबारों से। (खुशबू के शिलालेख.....140)

इस प्रकार समकालीन कवियों ने पर्यावरण की दुर्दशा का एक कारण वैचारिक खोखलापन माना है। प्रकृति के प्रति उसकी संवेदनहीनता को आज के इस भीषण प्रदूषण और असंतुलन के लिए जिम्मेदार माना है। हमने प्रकृति से सिर्फ लिया है, उसके हित में किया कुछ नहीं। ऐसा आचरण वैचारिक शून्यता का परिणाम है।

इसी प्रकार उत्तर आधुनिक सभ्यता पर टिप्पणी करते हुए कवि मानिक बच्छावत लिखते हैं—

जब भी तुम चाहते हो
मैं फल देता हूँ
चिलचिलाती धूप में
छाँह
घर के लिए तन देता हूँ
मरने पर तुम्हारे साथ जलता हूँ
पेड़ हूँ
तुम्हारे लिए जीता हूँ।

इन काव्य पंक्तियों में कवि ने पेड़ की जीवनशक्ति और मनुष्य के प्रति समर्पण वृत्ति का अंकन किया है लेकिन जो मूल चिन्ता है इस कविता के केन्द्र में वह है कि पेड़ों का काटना, पर्यावरण का असंतुलित होना और प्रकृति के प्रति मनुष्य का उदासीन होना। जो वर्तमान पर्यावरणीय त्रासदियों के लिए पूर्णतः जिम्मेवार है।

वस्तुतः हिन्दी कविता ने प्रकृति वर्णन को अपने अभिन्न अंग की तरह अपनाया है और युगानुरूप उसका रूप गढ़ा या उसके जरिए मनुष्य को विविधांगी रूप में साकार किया। प्रतीक, बिम्बों में उसे गढ़ा। विचारों—भावों में उसे गूँथा। लेकिन पर्यावरण रक्षा के विचारों में गूँथी ये कविताएँ अपने आप में अनूठी हैं।

पृथ्वी के पर्यावरण को बचाने का संकल्प हिन्दी कविता में सदैव गूँजता रहेगा :

सुगन्धे लिखूँगा/सुगन्धे गाऊँगा धूल और धूँ आकाश में
वह भले ही निराशा और कोलाहल और कुंठा से भरा हो। (खुशबू के शिलालेख.... 122)

सन्दर्भ :

1. नवल शुक्ल—खड़े—खड़े देखेंगे—सन्दर्भ—सम्मेलन पत्रिका, प्रकाशक— साहित्य सम्मेलन प्रयाग, इलाहाबाद
2. एकान्त श्रीवास्तव—इस संसार में जलवायु में— सन्दर्भ—सम्मेलन पत्रिका, प्रकाशक—साहित्य सम्मेलन प्रयाग, इलाहाबाद
3. बलदेव वंशी— तेजाबी वर्षा— सन्दर्भ—सम्मेलन पत्रिका, प्रकाशक— साहित्य सम्मेलन प्रयाग, इलाहाबाद
4. भवानी प्रसाद मिश्र— परिवर्तन जिये, सरला प्रकाशन दिल्ली 1977
5. भवानी प्रसाद मिश्र— अनाम तुम आते हो, सरला प्रकाशन दिल्ली 1976
6. भवानी प्रसाद मिश्र— खुशबू के शिलालेख, सरला प्रकाशन दिल्ली 1973
7. कवि मानिक बच्छावत— फूल मेरे साथ हैं—सन्दर्भ—समकालीन हिन्दी कविता की नयी सोच—डॉ० पद्मजा घोरपड़े, वाणी प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली
8. वागर्थ—2010 संपादक ,विजय बहादुर सिंह भारतीय भाषा परिषद, कोलकाता



भारत में भूमंडलीकरण के सामाजिक-सांस्कृतिक निहितार्थ

डॉ० चमन लाल शर्मा

सहायक प्राध्यापक-हिन्दी

शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, रतलाम (म.प्र.)

भूमंडलीकरण के दौर में भारतीय सामाजिक ढाँचे में बहुत सारे परिवर्तन आये हैं, जिन्होंने पुरानी परम्परा और संस्कृति को जबर्दस्त चुनौती दी है। दरअसल संस्कृति और सभ्यता ये दो शब्द हमारे यहाँ उस रूप में प्रचलित नहीं थे जिस रूप में आज प्रचलित हैं। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में आधुनिक सन्दर्भों के ये दो शब्द यूरोप से अनुवाद द्वारा हिन्दी में आये। यूरोप के लोग जब असभ्य और आदिवासी लोगों के बीच अध्ययन करने गये, तब उन्हें पता चला कि जिन्हें असभ्य और हीन समझा जा रहा था उनकी भी अपनी संस्कृतियाँ हैं। भारतीय समाज की यदि हम बात करें तो भारतीय समाज में बहुत तेजी से बहुत अन्दर तक परिवर्तन देखने को मिल रहा है। प्रत्येक समाज में कुछ स्थापित मूल्य होते हैं, जिनमें समय के साथ कुछ बदलाव की जरूरत तो होती है, और इस प्रक्रिया में कुछ पुराने मूल्य खारिज करते हुए नये मूल्य स्थापित होते हैं। इन दोनों प्रक्रियाओं के बीच एक संक्रमण काल भी आता है, जहाँ पुराने मूल्यों की प्रासंगिकता तो समाप्त हो जाती है, लेकिन नये मूल्यों का निर्माण नहीं हो पाता। यह स्थिति कई तरह के संकट और भ्रमों को भी जन्म देती है। पिछले दो दशकों से भी अधिक समय से भारतीय समाज मूल्यों के स्तर पर संक्रमण और भ्रम की स्थिति में है। भूमंडलीकरण के दौर में पश्चिमी अपसंस्कृति का राष्ट्रीय जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ रहा है। आज हर वस्तु बाजार की दृष्टि से देखी जाने लगी है। आज हमारी संस्कृति पर तथाकथित ग्लोबल विलेज के बाजारवाद एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का प्रभाव अधिक है। हम यह भूल गये कि संस्कृति का निर्माण सामान्य जनता द्वारा होता है, तथा यह मनुष्य के उस सामूहिक परिश्रम का परिणाम है, जिसकी आस्था मनुष्य की शक्ति और उसकी सुन्दरता में है। आज हम सब इस कदर भ्रमित हो रहे हैं कि ऐसा कभी नहीं लगा कि हम एक संस्कृति के विकास की चिंता कर रहे हैं जिसके केन्द्र में सामान्य जन है, तथा जिसकी जड़ें कहीं हमारे अतीत में हैं।

हर विराट संस्कृति के इतिहास में प्रतिसंस्कृति, काउन्टर-कल्चर, की धाराएं फूटती हैं। ये उसके लक्ष्यों और साधनों को पुनर्परिभाषित करती हैं और समय की माँगों तथा सामाजिक दबावों से प्रेरित हो, इसमें परिवर्तन की दिशा और गति निर्धारित करती हैं। प्रति-संस्कृतियों के दूरगामी प्रभाव होते हैं। एक ओर वे अपने नवाचारों और प्रयोगों से चौंकाती हैं तो दूसरी ओर उनमें नयी दिशाओं के संकेत भी अन्तर्निहित होते हैं। बदलते सांस्कृतिक परिदृश्य का सबसे भयानक पहलू है अपसंस्कृतियों का उदय। इसके प्रभाव से समाज के कुछ विशेषाधिकार प्राप्त अंग सामाजिक सरोकारों से कट जाते हैं और व्यक्ति केन्द्रित भोगवादी जीवनदृष्टि से नियंत्रित होने लगते हैं।

वस्तुतः संस्कृति बहुत व्यापक शब्द है— संगीत, साहित्य, धर्म, कला, सिनेमा, रीति-रिवाज, आचरण—संहिता आदि सभी तो संस्कृति के अन्तर्गत आते हैं, इतना ही नहीं स्थापत्य, समस्त वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास, सारी भौतिक सम्पदा सभी तो संस्कृति के उपादान हैं। किन्तु यह और भी बड़ा सत्य है कि संस्कृति इन सबसे कहीं अधिक है। वस्तुतः संस्कृति किसी भी मानव जाति की समग्र जीवनशैली है। संस्कृति को समझना मनुष्य के सामूहिक जीवन को समझना है संस्कृति मनुष्य का मनुष्य के साथ संवाद है, एक जाति का दूसरी जाति के साथ संवाद है एवं एक युग का दूसरे युग के साथ संवाद है। यह संवाद विभिन्न कलारूपों के माध्यम से भी होता है।

जिन उपादानों से संस्कृति समृद्ध होती है उनमें शिक्षा तथा भाषा का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान सांस्कृतिक संकट हमारी शिक्षा तथा भाषा को लेकर भी है क्योंकि शिक्षा मूलतः किसी भी मानव जाति की मानसिक क्षमता को विकसित करने का सबसे कारगर साधन है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य जाति अपनी परम्परा का अभिक्रमण करती है, परम्परा का पुनर्परीक्षण करती हुई उसे नयी क्षमताएं प्रदान करती है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री प्रो. श्यामाचरण दुबे ने ठीक लिखा है—“शिक्षा का स्वरूप अतीत, वर्तमान और भविष्य के सम्बन्ध में हमारा दृष्टिकोण निर्धारित करता है। लोक व्यापी शिक्षा, दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य में, सामाजिक संरचना के स्वरूप और उसकी प्रकृति को बदलती है। शिक्षा का प्रभाव लोक—रुचियों और व्यक्तिगत अभिरुचियों पर भी पड़ता है। स्पष्ट है कि शिक्षा संस्कृति के क्षेत्र में हस्तक्षेप है।” वैश्वीकरण ने शिक्षा के क्षेत्र को बाजार के मुनाफे से जोड़कर लोकरुचि की संस्कृति को भी अपनी गिरफ्त में ले लिया है।

भूमण्डलीकरण एक अमूर्त चीज है, लेकिन बहुराष्ट्रीय निगम इसके मूर्त रूप हैं। उनकी वैश्विक कारगुजारियाँ सबके सामने हैं। दुनिया भर के लोग उनसे त्रस्त हैं। खास तौर से तीसरी दुनिया के भारत जैसे देशों के लोग। उन्होंने “मुक्त व्यापार का अधिकार” दुनिया का सबसे बड़ा अधिकार बना लिया है। मानवाधिकार, नागरिक अधिकार, श्रमिकों के अधिकार, स्त्रियों और दलितों के अधिकार, पर्यावरण सम्बन्धी अधिकार और यहाँ तक कि जनतांत्रिक ढंग से चुनी गयी सरकारों के अधिकार भी उनके इस अधिकार के सामने कुछ नहीं रह गये हैं। मुक्त व्यापार के अधिकार को सारी दुनिया से मनवाने के लिए उन्होंने जो विश्व व्यापार संगठन बनाया है, वह कोई निर्वाचित संस्था नहीं है। फिर भी वह इतना ताकतवर है कि अपने सदस्य देशों की निर्वाचित सरकारों को आदेश दे सकता है कि मुक्त व्यापार के लिए अपने कानून और संविधान भी बदल दें। और मुक्त व्यापार का अधिकार किनको है? बहुराष्ट्रीय निगमों को, जो मुनाफे के लिए दुनिया में कहीं भी जा सकते हैं। कहीं भी अपने दफ्तर और कारखाने खोल सकते हैं। स्थानीय कानून—कायदों की धज्जियाँ उड़ाते हुए अत्यन्त क्रूरता के साथ मनुष्यों का शोषण और प्राकृतिक संसाधनों का दोहन कर सकते हैं। मानवीय समाज, सभ्यता, संस्कृति, प्रकृति, पर्यावरण आदि सब चीजों को नष्ट कर सकते हैं। उन्हें दुनिया के किसी भी देश में यह सब करने का अधिकार है। अगर कोई देश उनके इस अधिकार को चुनौती देता है तो उनके पीछे शक्तिशाली देशों की सेनाएँ हैं, या अपनी पूँजी निकाल ले जाने और आर्थिक प्रतिबन्ध लगवा देने जैसे विनाशकारी उपाय हैं। अखिल भूमण्डल पर उनका प्रभुत्व—स्थापन ही भूमण्डलीकरण है।

मानव—समाज के इतिहास में पूँजीवाद की युगान्तरकारी भूमिका रही है। पूँजीवाद अब तक के इतिहास में सर्वाधिक गतिशील, क्रांतिकारी एवं परादेशीय समाज व्यवस्था है। पूर्व औद्योगिक समाज की सीमाओं को दहस—नहस कर पूरी दुनिया को एक राजनीतिक—आर्थिक इकाई में बदल देने में पूँजीवाद का निर्णायक योगदान रहा है। जीवन के विविध रूपों और मानवीय इच्छाओं का उसने अभूतपूर्व विस्तार किया है। उत्पादन की निरन्तरता और विश्व—बाजार को जन्म देकर उसने कल्पनातीत मानव—ऊर्जा को साकार किया है। उत्पादक शक्तियों का इतना भव्य और विराट संचयन इतिहास में पहली बार सम्भव हुआ। जिसने हर तरफ के बन्धन और दबाव से मुक्त एक खुली समाज—व्यवस्था के सपने को व्यवहार में उतारा। लेकिन इन उपलब्धियों को हाशिल करने में हमारी समाज व्यवस्था और संस्कृति को भारी कीमत चुकानी पड़ी है। दरअसल वैश्विक संस्कृति बहुलवादी चरित्र पर बल देती है और उसकी मूल्यगत धारणा मूलतः पूँजीवादी संस्कृति की वर्चस्विता की स्वीकृति है। इस पूँजीवादी संस्कृति में राज्य की ताकत लगातार कमजोर हो रही है। जनमानस में राज्य के प्रभामंडल का क्षय होना शुरू हो गया है। राष्ट्र—राज्य को सामाजिक—राजनीतिक बदलाव के प्रमुख माध्यम के रूप में देखने का रोमानी नज़रिया अब असरदार नहीं रह गया है। सीमाहीन उपभोग के जरिये नये किस्म की संस्कृति पनप रही है। नया भूमण्डलीकरण व्यक्तिगत या सामूहिक सृजनशीलता के लिए काफी कम गुंजाइश छोड़ रहा है। हम पूँजीवादी

संस्कृति के तहत विकास का ऐसा मॉडल लागू करने की कोशिश कर रहे हैं, जो लोगों के एक बड़े हिस्से की रोजी-रोटी के सवाल को महत्वहीन मानता है। वह अचानक खामोशी से ऐलान करता है कि हमारी आबादी का एक बड़ा हिस्सा फेंकने के काबिल हो चुका है। हम ऐसी संस्कृति नहीं चाहते जिसमें समाज के एक बड़े वर्ग को महत्वहीन समझा जाय, बल्कि हम ऐसी संस्कृति चाहते हैं जिसमें तमाम तरह की विविधताओं के लिए और आपसी संवाद तथा सहयोग के लिए पर्याप्त जगह हो।

संकल्प-हीनता की स्थिति में ही बाजार और मीडिया ने हमारे सभी सांस्कृतिक प्रतीकों को डस लिया है। चिन्तन पर उपभोक्तावादी संस्कृति की जो काई जमी है उसने हमारे सामाजिक सांस्कृतिक ढांचे को तहस-नहस कर के रख दिया। वैश्वीकरण ने हमारी चिर-गहन संस्कृति को भी बाजारु मनोरंजन का महा उत्सव बना डाला। इसी के चलते हमने लोक कलाओं का व्यापार किया और गुलाबो जैसे अनगढ़ कलाकार को बिकाऊ बना दिया। यही हाल देश में विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों द्वारा आयोजित उत्सवों का रहा। सांस्कृतिक चेतना के इस औपचारिक आक्रामक रूप ने किसी सांस्कृतिक आन्दोलन का स्फुरण तो नहीं किया पर लोक कलाओं की समृद्ध परम्परा को भी मनोरंजन की चीज जरूर बना कर छोड़ दिया। भूमण्डलीकरण ने मीडिया के माध्यम से भी भारतीय समाज और संस्कृति को आत्यन्तिक रूप से प्रभावित किया है। जिस मीडिया का उपयोग तीन कार्यों के लिए हो सकता था- मनोरंजन, सूचना और शिक्षा। तीनों ही संस्कृति को प्रभावित भी करते हैं, और संस्कृति के ही अवयव हैं। यह दुखद स्थिति है कि जनसंचार माध्यमों का प्रयोग केवल मनोरंजन तक सीमित रह गया जिसमें पूरे समाज को वस्तुओं की प्रतिबद्धता में धकेल दिया। जिस मीडिया का उपयोग समाज की संस्कृति को विकसित करने के लिए कारगर ढंग से हो सकता था, उसका जो उपयोग हो रहा है, उसका प्रतिफलन हम देख ही रहे हैं। यह हमारी संस्कृति का आधुनिकतम या कहिये उत्तर आधुनिकतम रूप है, जिसने सारे जीवन-मूल्यों का तिरस्कार कर दिया है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया हमारे समय की पूरी रचनात्मकता के समक्ष गम्भीर चुनौती बनकर खड़ा है किन्तु हम इसके दुष्परिणामों का आनन्द ले रहे हैं, किसे चिन्ता है समाज की, संस्कृति की या उसके विकास की?

बाजार और मीडिया के संस्कृति पर आक्रमण ने हमें उस दोराहे पर ला खड़ा किया है जहाँ हमें संस्कृति और समाज के अन्तःसम्बन्धों तथा उनके परस्पर द्वन्द्वात्मक रिश्तों पर विचार करते हुए उस राह को चुनना ही होगा जो मनुष्यता की रक्षा कर सके। वैश्वीकरण के इस दौर में ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृति कहीं दूर निकल गयी है तथा संस्कृति अब मानवीय चिंतन न रहकर मात्र दिखावे की वस्तु रह गयी है। भूमण्डलीकरण के दुष्प्रभावों से समाज और संस्कृति के बचाव की दिशा में गम्भीरता से सोचने की जरूरत इसलिए भी है क्योंकि मूल्यों की बुनियाद पर टिकी भारतीय समाज व्यवस्था के छिन्न-भिन्न होने का खतरा भी है। कुछ बेहद जरूरी उपायों से भूमण्डलीकरण के कुपरिणामों को रोका जा सकता है-

- भूमण्डलीकरण की अवधारणा को बाजारवादी आक्रामकता के बजाय सामाजिक प्रतिबद्धता से जोड़ा जाना चाहिए।
- बहुराष्ट्रीय निगमों की आर्थिक स्वेच्छाचारिता को सीमित कर मानव-केन्द्रित आर्थिक विकास को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
- राजनीतिक, सामाजिक बदलाव के माध्यम के रूप में राष्ट्र-राज्य की कमजोर हो रही शक्ति के पुनर्बहाली के प्रयास किये जाये।
- भारत में शिक्षा का व्यवसायीकरण बन्द हो। शिक्षा केवल आर्थिक प्रगति का माध्यम न बने बल्कि शिक्षा को सामाजिक रूपान्तरण के प्रमुख माध्यम के रूप में देखा जाय।
- समाज के प्रति मीडिया की जवाबदेही सुनिश्चित की जाय तथा किसी भी कीमत पर मीडिया के माध्यम से अपसंस्कृति के प्रचार-प्रसार को बढ़ावा न दिया जाय।

- विकास का ऐसा मॉडल तैयार किया जाय जिसमें आबादी के एक बड़े हिस्से की अनदेखी न हो।
- laxPN/oa laon/oa की भारतीय अवधारणा को भूमण्डलीकरण का ध्येय वाक्य घोषित किया जाय।
- बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा सम्पूर्ण विश्व को बाजार या मंडी के रूप में विकसित करने की सोच को चुनौती देते हुए एकीकृत विकास को प्राथमिकता दी जाय।

संदर्भ :-

1. विजय प्रताप, वैकल्पिक भूमण्डलीकरण की ओर, कथन, अप्रैल-जून, 2004।
2. सहारा समय, 25 जून 2005, बाजार और बाजारवाद।
3. आहुजा राम, भारतीय समाज, रावत प्रकाशन, जयपुर।
4. रूप नारायण त्रिपाठी, रामदेव साहू, भारतीय संस्कृति, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
5. रवि श्रीवास्तव, मूल्यों का विध्वंस और उत्तर आधुनिकता, अभिव्यक्ति, जनवरी-2007।
6. डॉ० शीतल प्रसाद महेन्द्रा, भूमण्डलीकरण : भारतीय संस्कृति एवं रचना धर्मिता, रिसर्च लिंक, मई-2006।
7. जवरीमल्ल पारख, वैकल्पिक दुनिया बनाम आभासी दुनिया, कथन, अप्रैल-जून, 2004।
8. डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव, डॉ. रावेन्द्र कुमार साहू, मीडिया विमर्श, उभरते क्षितिज एवं गहराती चुनौतियाँ, पैसिफिक पब्लिकेशन, दिल्ली।



वैश्वीकरण की अवधारणा एवं उभरती चुनौतियाँ

डॉ. (श्रीमती) राजेश जैन

विशेष कर्तव्यस्थ अधिकारी, उच्च शिक्षा

क्षेत्रीय अतिरिक्त संचालनालय, सागर संभाग, सागर (म.प्र.)

वैश्वीकरण शीतयुद्ध की समाप्ति और सोवियत संघ के विघटन के पश्चात् रोलिंग गेंद की दिशा में वैश्विक प्रकृति के साथ नब्बे के दशक के बाद से दुनिया पर हावी हो गया था। वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है जहाँ वैश्विक मुद्दों को संसार की नजर से देखा जाता है तथा उन मुद्दों को समझने एवं समझाने के लिये विश्वव्यापी सहयोग तथा संबंधों को बनाये रखने के प्रयास किये जाते हैं। वैश्वीकरण राज्यों के बीच वस्तुओं, मानवीय संसाधनों, सूचनाओं तकनीकी एवं पूँजी आदि का खुला आदान-प्रदान है। अतः वैश्वीकरण अधिक से अधिक विदेशी निवेश और अधिक से अधिक विदेशी व्यापार का परिणाम है। विद्वान डेविड हैल्ड का मत है कि वैश्वीकरण ने समकालीन सामाजिक जीवन के समस्त पहलुओं को एक दूसरे के निकट लाकर खड़ा कर दिया है। इसके विपरीत विद्वान रार्वटसन ने कहा है कि वैश्वीकरण एक ऐसी अवधारणा है जिसका संबंध विश्व के सिकुड़ने तथा पूरे विश्व की चेतना एवं घनिष्ठता से है। साधारण शब्दों में कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण एक गाँव है, जहाँ लोगों के बीच सामाजिक और आर्थिक व्यवहार परस्पर निर्भरता पर आधारित है।¹

वैश्वीकरण को अंग्रेजी में Globalisation कहते हैं जो अंग्रेजी भाषा के शब्द Globe से बना है जिसका अर्थ है गोल अथवा पृथ्वी। ग्लोब का अर्थ है— पूरे विश्व को समाहित करने वाला। ग्लोब से बनी हुई क्रिया की संज्ञा के रूप में परिवर्तित करने पर इस प्रक्रिया को व्यक्त करने वाला शब्द ग्लोबलाइजेशन (Globalisation) है, जिसका अर्थ है— पूरे विश्व को समाहित करने वाली प्रक्रिया। अंग्रेजी शब्द Globalisation का हिन्दी अनुवाद “वैश्वीकरण” है और इसका पर्यायवाची शब्द भूमण्डलीकरण भी है। इस शब्द की व्युत्पत्ति “अविश्वम् विश्वम् यथा स्यात् तथा इति वैश्वीकरणम्” है अर्थात् जो विश्व नहीं है, वह जैसे विश्व बन जाये, वैसा करना वैश्वीकरण है। विश्व शब्द संस्कृत भाषा की विष् धातु में “व” प्रत्यय लगाने पर व्युत्पन्न होता है। वैश्वीकरण बनाने के लिए इसमें विश्व प्रत्यय लगाया जाता है। एंथनी गिडिन्स ने इस शब्द का बहुत अधिक प्रयोग किया था। फलतः कहीं दिखाई न देने वाला यह शब्द वर्तमान में चारों ओर दिखाई देने लगा है। तब हमें यह जानना आवश्यक है वैश्वीकरण क्या है? वैश्वीकरण किन कारकों के फलस्वरूप पनप रहा है? वैश्वीकरण की विलक्षणतायें क्या हैं? वैश्वीकरण के विभिन्न आयाम क्या हैं? विभिन्न क्षेत्रों पर वैश्वीकरण का क्या प्रभाव पड़ रहा है? क्या विकासशील देश वैश्वीकरण की अवधारणा से संतुष्ट हैं? आदि प्रश्नों पर गंभीरता से विचार करना होगा।²

अतः वैश्वीकरण शब्द आज अंतर्राष्ट्रीय मंच पर गुंजायमान हो रहा है। यह शब्द व्यापारिक अवसरों की जीवतन्ता तथा उनके विस्तार का घोटक है। वैश्वीकरण वस्तुतः व्यापारिक क्रियाकलापों विशेषकर विपणन संबंधी क्रियाओं का अंतर्राष्ट्रीयकरण करना है, जिसमें संपूर्ण विश्व बाजार को एक ही क्षेत्र के रूप में देखा जाता है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक देश का अन्य देशों के साथ वस्तु, सेवा, पूँजी एवं बौद्धिक सम्पदा का अप्रतिबंधित आदान-प्रदान ही वैश्वीकरण कहलाता है। वैश्वीकरण एकरूपता एवं समरूपता की वह प्रक्रिया है, जिसमें संपूर्ण विश्व सिमटकर एक हो जाता है। एक देश की सीमा से बाहर अन्य देशों में वस्तुओं एवं सेवाओं का लेन-देन करने वाले अंतर्राष्ट्रीय निगमों अथवा बहुराष्ट्रीय कम्पनी के साथ देशों के उद्योगों की सम्बद्धता वैश्वीकरण है।³

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वैश्वीकरण एक जटिल आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक प्रक्रिया है।

इसका उदारीकरण और निजीकरण से अभिन्न संबंध है। यह पूंजी, श्रम, उत्पाद प्रौद्योगिकी और सूचना के माध्यम से आधुनिकीकरण, राष्ट्र निर्माण एवं राष्ट्रों के बीच गठबंधन, निर्माण के साथ ही उत्पन्न हो रहे हैं।

वैश्वीकरण के कारक – वैश्वीकरण विभिन्न प्रकार के कारकों के फलस्वरूप पनप रहा है जो इस प्रकार है—

1. आर्थिक परिवर्तनों की तीव्र गति।
2. संचार साधनों में विकास।
3. वैश्वीकरण संस्कृति की ओर वृद्धि।
4. समय तथा गति का सम्पीडन।
5. बढ़ती समशील गतिविधियाँ।
6. विकसित हो रही वैश्वीय राजनीति।⁴

वैश्वीकरण की विशेषतायें – वैश्वीकरण एक नये प्रकार की अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था की स्थापना की एक प्रवृत्ति है। जिसकी कुछ प्रमुख विशिष्टतायें इस प्रकार हैं—

1. वैश्वीकरण दूरियों को नजदीकियों में बदलने की एक प्रक्रिया है। यह संस्कृतियों का आदान-प्रदान है। यह जीवनशैलियों को एक दूसरे से जोड़ने का नाम है। यह विश्व सभ्यता के निर्माण की एक प्रक्रिया है।
2. वैश्वीकरण एक आर्थिक प्रक्रिया का बोध कराती है परन्तु वास्तव में यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका स्वरूप बहुमुखी है।
3. वैश्वीकरण राज्यों की अर्थव्यवस्थाओं को एक-दूसरे के निकट लाने की एक प्रक्रिया है। यह मुक्त व्यापार, वस्तुओं, पूंजी एवं मानव संसाधनों आदि का खुला आदान-प्रदान है। वैश्वीकरण अमीर अर्थव्यवस्था को और अमीर बनाती है तथा विकासशील देशों को अपनी अर्थव्यवस्था को सुधारने का अवसर प्रदान करती है।
4. वैश्वीकरण, विश्व की समस्याओं को विश्व सहयोग से सुलझाने का प्रयास है। वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो विश्व स्तर पर राज्यों के सहयोग से अनेक समस्याओं को सुलझाती है।
5. वैश्वीकरण सहयोग, पारस्परिक निर्भरता तथा पारस्परिक संबंधों को व्यवहार में बदलने की एक प्रक्रिया है।
6. वैश्वीकरण एक विश्व-एक राज्य की ओर बढ़ता एक प्रयास है।⁵

वैश्वीकरण के विभिन्न आयाम – वैश्वीकरण के आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और सामाजिक आदि विविध आयाम हैं। ये सभी आपस में अंतर्सम्बन्धित तथा परस्पर निर्भर हैं।

आर्थिक वैश्वीकरण अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक बाजारों में चलने वाले आंदोलनों द्वारा किसी देश की राष्ट्रीय सरकार की आर्थिक नीतियों का निर्धारण होता है। संपूर्ण विश्व को एक समग्र इकाई के रूप में तथा बाजार को इसके एक उपकरण के रूप में स्वीकार किया जाता है। एक वैश्वीकृत दुनिया में अर्थव्यवस्था की महत्वपूर्ण विलक्षणता खुला, उदार, मुक्त बाजार तथा मुक्त व्यापार है। इसे अंतर्राष्ट्रीय निवेश और तात्कालिक पूंजी के प्रवाहों द्वारा चिन्हित किया जाता है।

सांस्कृतिक वैश्वीकरण संपूर्ण विश्व में बढ़ी हुई सांस्कृतिक अन्तर्सम्बद्धता का प्रतीक है। व्यक्तियों के उत्प्रवास, पर्यटन, वैश्विक अर्थव्यवस्था और राजनीतिक संस्थाओं के कारण दुनिया के विभिन्न भागों में सादृश्य जीवन पद्धति के रूप में इसे देखा जा सकता है। वैश्वीकरण क्षेत्रीय संस्कृति के लिए विकल्प उपलब्ध कराता है। मानव अधिकारों, जनतंत्र, बाजार, अर्थव्यवस्था, उत्पादन के तरीकों, उपयोग हेतु नये उत्पादों आदि के विचारों को क्षेत्रीय संस्कृति के नवीन दृष्टिकोण द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। सांस्कृतिक वैश्वीकरण की प्रक्रिया एक पक्षीय नहीं

है। भूमण्डलीय संस्कृति अनेक सामाजिक और सांस्कृतिक विधाओं का परिणाम है। दुनिया की अधिकांश संस्कृतियों के मार्ग सामान्यता दूसरी संस्कृतियों के लिए टी.वी. चैनल्स, इंटरनेट एवं मोबाईल फोन आदि के माध्यम से दूसरी संस्कृतियों के लिए खुल गये हैं।

राजनीतिक वैश्वीकरण राष्ट्र, राज्य और समाज के संदर्भ में प्रमुख है जिसके परिणामस्वरूप अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में शासन की भूमिका महत्वपूर्ण होगी जबकि राजनीतिक संगठनों के कार्य तुलनात्मक दृष्टि से कम सफल होंगे। अन्तर्राष्ट्रीय जगत में एक राज्य की वैधता का प्रमुख स्रोत उसे दूसरों द्वारा मिलने वाली स्वीकृति होती है। अतः वैश्वीकरण और राष्ट्र-राज्य का विश्लेषण प्रासंगिक है क्योंकि दुनिया के आर्थिक संकट अथवा राज्य राजनीति द्वारा उत्पन्न वैश्विक गति नृजातीय पहचानों को पुनर्निर्मित कर सकती है।⁶

अतः कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण एक मिश्रित प्रक्रिया है। इसकी असाधारण उपस्थिति और प्रभाव प्रत्येक समाज की ऐतिहासिकता द्वारा संचालित होते हैं।

वैश्वीकरण से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांतों में यथार्थवादी सिद्धांत, उदारवादी सिद्धांत, मार्क्सवादी सिद्धांत एवं प्रलक्षितवादी सिद्धांत आदि अपनी कारगर भूमिका अदा करते हैं।

वैश्वीकरण का विभिन्न क्षेत्रों पर प्रभाव

1. वैश्वीकरण की प्रक्रिया के तीव्र विस्तार ने विश्व अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण बदलाव ला दिये हैं जिनमें वैश्विक वित्तीय साझा बाजार का विकास, बाह्य एवं वित्तीय सुधार तथा लेनदारी में वृद्धि प्रमुख है।
2. वैश्वीकरण के रूप में विश्व सरकार का उदभव एवं औद्योगिक विकास के साथ शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों का उत्थान हो रहा है। आज संपूर्ण विश्व सिकुड़कर एक गांव बन गया है। सरकारों की भूमिका में पारदर्शिता आ रही है।
3. वैश्वीकरण ने सूचना तकनीक के माध्यम से विश्व को जोड़ दिया है। वैश्वीकरण के युग में तकनीकी दौड़/होड़ की शुरुआत दूरसंचार एवं इंटरनेट माध्यमों में वृद्धि की वजह से देशकाल की सीमायें समाप्त हो गयी हैं।
4. आधारभूत वैश्विक तकनीकी व्यवस्था के विकास के साथ-साथ वैश्विक उच्च स्तरीय आंकड़ों की उपलब्धता तकनीकी आधार पर वैश्विक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्रों की पहचान विशेष उल्लेखनीय है।
5. अपराध के प्रति तीव्र जागरूकता तथा अंतर्राष्ट्रीय विधियों का विकास वैश्वीकरण की एक अनोखी देन है।
6. अंतर्राष्ट्रीय न्यायालयों की स्थापना तथा अंतर्राष्ट्रीय सामाजिक आंदोलनों में वृद्धि के साथ नैतिक तथा विधिक क्षेत्र में विश्वस्तरीय व्यापक परिचर्चा वैश्वीकरण का एक नया स्वरूप है।
7. उपभोक्ता एवं कम्पनी दोनों के क्षेत्रों में देशी-विदेशी वस्तुओं की माँग एवं कच्ची व निर्मित सामग्री का एक दूसरे देशों में आदान-प्रदान एवं वैश्विक साझा बाजार का विकास आदि महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ रहा है।
8. विश्वव्यापी पर्यावरण के मार्ग में जलप्रदूषण, वायु प्रदूषण की चुनौती विशेष रूप से वैश्वीकरण को प्रभावित कर रहा है।
9. वैश्वीकरण के कारण अन्तर-संस्कृति का विकास, संस्कृतियों में विरोध की संभावना, रहन-सहन की क्षमता में अभिवृद्धि, विचारों का आदान-प्रदान तथा उत्पादों का उपभोग आदि विशेष प्रभावित क्षेत्र है। यूनेस्को की 2009 की रिपोर्ट बताती है कि सांस्कृतिक आदान-प्रदान पारस्परिक सहयोग का रूप ले रहा है। जनवादी

चीन सांस्कृतिक उत्पादों का तीसरा बड़ा देश घोषित किया गया था।⁷

वैश्वीकरण : एक समीक्षा — वैश्वीकरण की यदि समीक्षा की जाये तो यह स्पष्ट दिखाई देता है कि वैश्वीकरण के कारण निर्धन देश पीड़ित हो रहे हैं। विकसित देश अपने किसानों को आर्थिक सहायता देकर उनके उत्पादों को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में विकासशील देशों के मुकाबले में सस्ता माल बेच रहे हैं। वैश्वीकरण के कारण श्रमिकों की स्थिति बिगड़ रही है। विकासशील देशों के मजदूरों को अपनी सरकारों से सुरक्षा का आश्वासन नहीं मिल रहा है। यह बालश्रम शोषण में वृद्धि करता है, विकासशील देशों में बालकों से श्रम लेकर तथा उन्हें कम मजदूरी देकर उनका शोषण किया जा रहा है। वैश्वीकरण में लाभ कम और हानि उठाने वालों की संख्या अधिक है।

विकसित और विकासशील देशों की दृष्टि में वैश्वीकरण कैसा भी हो वैश्वीकरण तो बना है और बना रहेगा। इसका अस्तित्व इस कारण बना हुआ है, क्योंकि यह लोगों के जीवन को हर दृष्टि से प्रभावित कर रहा है। यह इसलिए बना हुआ है क्योंकि इसे कोई चुनौती देने वाला नहीं है। विकसित देश वैश्वीकरण को इसलिए पसंद करते हैं कि यह उन्हें लाभ पहुँचा रहा है। विकासशील देश इसे इस कारण पसंद कर रहे हैं कि वह न तो इसका तिरस्कार कर सकते हैं तथा न ही अनदेखी।

अतः स्पष्ट है कि विकसित देश वैश्वीकरण को सकारात्मक रूप से देखते हैं पश्चिमी यूरोप देश वैश्वीकरण को एक ऐसी प्रक्रिया मानते हैं जिनके दायरे में मुक्त व्यापार के लिए मार्ग खुल गया है। भारत के संदर्भ में देखा जाये तो भारत में आर्थिक गतिविधियों के विभिन्न क्षेत्रों में निवेश करने के लिए विदेशी कम्पनियों को सुविधायें उपलब्ध कराने के लिए अनुमति प्रदान करता है जिससे बहुराष्ट्रीय कम्पनी के प्रवेश के लिए द्वार खुल गये। भारत में वैश्वीकरण की पहचान 1991 के नीतिगत सुधारों के साथ की गई है क्योंकि उस समय भारत की अर्थव्यवस्था गहरे संकट में थी। विदेशी मुद्रा का भंडार लगभग एक अरब डॉलर घट गया था। विदेशी निवेशकों और अप्रवासी भारतीयों ने आत्मविश्वास खो दिया था। नब्बे के दशक में वैश्वीकरण और उदारीकरण की नीति एक रक्षक रूप में दिखाई दे रही थी जिसे अपनाकर भारत ने विकास दर को सुधारने में सफलता प्राप्त की।

अतः आवश्यकता इस बात कि है वैश्वीकरण के प्रति विकसित एवं विकासशील देशों का दृष्टिकोण परिवर्तित किया जाये। बाजारी ताकतों को पूरी स्वतंत्रता दी जाये। वैश्वीकरण प्रशासन मजबूत एवं निष्पक्ष रखा जाये, तभी वैश्वीकरण की संकल्पना साकार होगी।

संदर्भ सूची

1. इंटरनेट, गूगल — डॉ. चन्द्रशेखरन बालकृष्णनन का लेख
2. अरोड़ा, एन.डी. — राजनीति विज्ञान सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, ताटा एम.सी. ग्रो-हिल एजुकेशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2011, पृ. 30
3. इण्डिया टुडे — नई दिल्ली, 21 अगस्त 2006, पृ.28
4. कुरुक्षेत्र पत्रिका — नई दिल्ली, सितम्बर 2004, पृ.37
5. प्रतियोगिता दर्पण — आगरा, फरवरी 2003, पृ.1241
6. अरोड़ा, एन.डी. — राजनीति विज्ञान सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, ताटा एम.सी. ग्रोहिल एजुकेशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2011, पृ. 30
7. ओझा, डॉ. ए.के.—वैश्वीकरण और उदारीकरण, नई विश्वव्यवस्था की संभावनायें, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ.378



वैश्वीकरण का दौर : समाजवाद का बदलता स्वरूप

रेनू कमल

सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग

जगद्गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उ०प्र०

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर व विभिन्न गतिविधियों का आंकलन करता है तथा समाज में व्याप्त विभिन्न कुरीतियों और अनाचार को दूर करने का सार्थक प्रयास करता हुआ सच्चे समाजवाद के प्रति संकलित होता है। तदान्तर स्वप्रतिभा और वैदुष्य से समाज को नवीन दिशा प्रदान करता है। भारतीय इतिहास के पन्नों पर यदि दृष्टिगत किया जाये तो समाज तथा समाजवाद को स्वविचार धारा से समरूपता प्रदान करते हुये विभिन्न महापुरुषों ने धरा पर जन्म लिया जिसमें डॉ० मनोहर लोहिया, आचार्य नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू, दयानन्द सरस्वती आदि का नाम आता है।

भारतीय संस्कृति की मूल भावना वसुधैवकुटुम्बकम् व सर्वजन सुखाय की सदैव रही है। अतः समाजवादी विचार तो हमारी अन्तर्त्मा में बसे हुये हैं। लेकिन समाजवाद शब्द को लोगों द्वारा अपनी-अपनी व्याख्याओं के जंजाल से इस प्रकार उलझा दिया है कि लोगों के बीच में एक भ्रामक स्थिति उत्पन्न हो गई है कि आखिर समाजवाद की मूल अवधारणा है क्या ? समाजवाद की सीधी-सादी व्याख्या समाज के प्रत्येक वर्ग और व्यक्ति तक शासन की नीतियों का सही लाभ पहुँचाने से है अर्थात् महल और झोपड़ी के अन्तर को समाप्त करना है।

भारत की स्वतंत्रता यात्रा की तरह ही दुनिया के तीन महाद्वीपों में साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष का लम्बा इतिहास रहा है। भारत, अफ्रीका और लेटिन अमेरिका में पश्चिमी पूँजीवादी साम्राज्यवाद के खिलाफ जो जनसंघर्ष हुए उनमें राष्ट्रीय अस्मिताओं ने जन्म लिया। राष्ट्रीय स्वतंत्रता को कहीं लोकतंत्र और कहीं बगैर लोकतंत्र के राजनीतिक दिशा मिली। लेकिन आज दुनिया में क्या स्थिति है। आज की दुनिया में एक नया विचार दर्शन अत्यंत प्रबल है, जिसको हम मोटे तौर पर बाजारवाद कह सकते हैं। बाजारवाद राज्यवाद के मुकाबले में ज्यादा आकर्षक लग रहा है। बाजारवाद का व्यक्ति के लिए सारांश क्या है ? इसको कुछ लोग उपभोक्तावाद कहते हैं। भारतीय दर्शन और मनीषा के विमर्श में इस प्रवृत्ति को भोगवाद कहा गया है। जो उपनिषद और भर्तृहरि से गांधी तक बराबर चिन्ता का विषय रहा है। एक तरफ बाजारवाद और भोगवाद, दूसरी तरफ वैश्वीकरण की प्रक्रिया। आज की दुनिया को परिभाषित करने को दो आयाम हैं। वैश्वीकरण ने कहीं भी समाजवादी विचारों को प्रोत्साहन नहीं दिया और न ही बाजारवाद ने मनुष्यों के बीच सहयोग और करुणा के विस्तार को भी आधार नहीं दिया है। हाँ राष्ट्रीयता और राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया वैश्वीकरण और भोगवाद के बावजूद जारी है।

इस वैश्वीकरण के परिणाम क्या हैं? मनुष्य बिना मुनाफे की अर्थव्यवस्था के कैसे अपनी समस्याओं का समाधान करेगा ? अगर पूँजी इकट्ठा नहीं होगी, पूँजी निर्माण की गति नहीं बढ़ेगी तो हम गरीबों को क्या दे सकेंगे ? इस तरह के मासूम तर्कों के आधार पर चौतरफा मुनाफाखोरी, सत्ता और पूँजीपतियों के बीच का अपवित्र गठबंधन चल रहा है। इसको इधर के दिनों में क्रोनी केपटिलिज्म भी कहा जा रहा है। आर्थिक स्तर पर एक तरह का आसमान और अन्याय पूर्ण प्रबन्धन और परिवर्तन हो रहा है। इसलिए कह सकते हैं कि वैश्वीकरण लाभपूर्ण है लेकिन मौजूदा वैश्वीकरण अन्याय पूर्ण है। इसलिए यह टिकाऊ नहीं है ये भविष्यहीन है। आर्थिक दृष्टि से वैश्वीकरण ने एक साथ सम्पन्नता और विपन्नता के दो विस्फोट किये हैं।

बाजारवाद से उपजे इस वैश्वीकरण का सिर्फ आर्थिक परिणाम चिंताजनक नहीं है, बल्कि राजनीतिक दृष्टि से दुनिया के सभी लोग आज दो खेमों में बंट गये हैं—एक जो भूमण्डलीकरण से अपने को ठगा हुआ और पराजित

महसूस कर रहे हैं। जिनको लाभ है, वे बाजार की जय जयकार कर रहे हैं। इन्होंने दुनिया के वित्तीय प्रतिष्ठानों से लेकर सत्ता संस्थानों तक अपना सम्मोहन फैला रखा है। इसलिए अमेरिका से लेकर अफगानिस्तान तक व चीन से लेकर भारत एक वैश्विक सहमति बनती दिखाई पड़ रही है कि आज बाजारवाद का कोई विकास नहीं है। सबको वैश्वीकरण के जरिए पूंजीवाद का कोई एक नरम संस्करण जरूर लागू करना चाहिए जिससे कि दुनिया की टेक्नोलोजी का वित्तीय प्रबंधन का संसाधनों का और बाजार लाभ उठा सकें। यह वास्तविकता है या मृग मारीचिका? कुछ लोगों को लगता है कि दुनिया की औद्योगिक शक्तियों के लिये भूमण्डलीय अनुकूल है और जो खेतिहर समाज या खेती से उद्योग की तरफ बढ़ने वाले भारत, चीन, दक्षिण अफ्रीका और ब्राजील जैसे राष्ट्र हैं वे भी अगर सजगता से कदम उठाएँ तो उनको भी इसका लाभ मिलेगा।

आज बाजारवाद और उसकी संतान वैश्वीकरण ने लोकतंत्र में क्षय पैदा किया है। दुनिया के पुराने और नए लोकतंत्र, दोनों में समान रूप से धन बल और भ्रष्टाचार ने लोकतंत्र की आत्मा को पराजित सा कर दिया है।

आज पूंजीवादी व्यवस्था से भारत को बाहर निकलकर नये वैश्विक समाजवादी विकल्प की बुनियाद डालनी होगी। संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्थाओं को एक देश एक वोट के आधार पर जनतांत्रिक बनाने की भी पहल करना होगी और भारतीय समाजवाद के कार्यक्रम में इन कार्यक्रमों की अहम भूमिका होगी।

समाजवाद के प्रति समाजवादियों का दृष्टिकोण :

समाज के पुनर्निर्माण में आचार्य नरेन्द्र देव जी के विचारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आचार्य नरेन्द्र देव भारत के आधुनिक दौर के महानतम चिंतकों और राष्ट्र निर्माताओं में बराबर याद किया जाता है। आचार्य नरेन्द्र देव के जीवन में राष्ट्रप्रेम और लोकहित इन दो आदर्शों ने हमेशा आत्मोसर्ग के लिए अपना सब कुछ समाज को देने के लिए प्रोत्साहित किया।

नरेन्द्र देव जी के विचार से समाजवाद मौजूदा समाज की प्राचीन दासता, विषमता और असहिष्णुता को सदा के लिए दूर करके एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहता है जो 'शोषण मुक्त' हो जिसमें परस्पर विरोधी शोषक और शोषित आर्थिक वर्ग मिट जाए, जो सहयोग के आधार पर संगठित व्यक्तियों का सच्चा लोकतंत्र बने ऐसा 'समूह' बन जाय जिसमें 'एक व्यक्ति को उन्नति' का अर्थ स्वभावतः दूसरे सदस्य की उन्नति हो और सब मिलकर उन्नति करते हुए जीवन व्यतीत कर सके और 'समता' स्वतंत्रता और भातृत्व की स्थापना हो।

आचार्य नरेन्द्र देव का कहना था कि समाजवाद एक ऐसा सिद्धान्त है जो मानव व्यक्तित्व के स्वतन्त्र विकास पर उतना ही जोर देता है जितना आर्थिक स्वतंत्रता पर जो मनुष्य अपनी असमर्थता से ऊपर उठकर सामाजिक विकास का नियन्त्रण कर सके। उनकी धारणा थी कि 'समाजवाद एक स्वतंत्र सुखी समाज में सम्पूर्ण स्वतंत्र मनुष्यत्व को प्रतिष्ठित कर सकता है। उनकी धारणा थी कि 'मानवता ही समाजवाद का आधार है' तथा समाजवाद की श्रेणी विहीन नैतिकता तथा सामाजिक न्याय की स्थापना कर सकता है' एवं 'स्वतंत्रता, समता और भातृत्व के आधार पर एक सुन्दर सबल मानव संस्कृति की सृष्टि रच सकता है' और व्यक्ति के पूर्ण विकास को सम्भव बना सकता है।

उनका कहना था कि समाजवादी समाज में शारीरिक और मानसिक अन्तर, श्रम विभाग, विभिन्न पेशे होने के कारण समाजवादी समाज में पूर्ण समानता की भावना का वायदा नहीं किया जा सकता है। समाजवाद तो झूठी असमताओं को दूर कर 'सबको अवसर की समानता' प्रदान करना चाहता है, वह समता के नाम पर स्वतंत्रता को न्यौछावर नहीं करना चाहता, वह तो समता और स्वतंत्रता के समुचित समन्वय का ही समर्थन करता है। उनका ध्येय वर्गविहीन समाज की स्थापना कर वर्तमान समाज में परस्पर विरोधी शोषक और शोषित, पीड़क और पीड़ित वर्गों का अन्त करना और सहयोग के आधार पर संगठित व्यक्तियों का ऐसा समूह बनाना था जिसमें एक सदस्य की उन्नति का अर्थ स्वाभावतः दूसरे की उन्नति करना और मिलकर सामूहिक रूप से उन्नति करते हुये जीवनव्यतीत

करना था।

मानव इतिहास के आरम्भ से अब तक समाज में शोषक और शोषित वर्गों का संघर्ष चलता रहा है। आज मानव सामाजिक प्रगति के नियमों का दास बनकर कार्य करता है। समाजवाद शोषण मुक्त और स्वतंत्र समाज की रचना करना चाहता है जिसमें मनुष्य अपनी असमर्थता के दायरे से ऊपर उठ सामाजिक विकास कर सकें।

कार्लमार्क्स के शब्दों में 'समाजवाद मनुष्य को विवशता के क्षेत्र से हटाकर उसे स्वाधीनता के राज्य में ले जाना चाहता है, व्यक्तित्व के विकास में रुकावट डालने वाले सामाजिक बन्धनों से उसे छुटकारा दिलाना चाहता है। शोषण मुक्त समाज, मौजूदा समाज की प्रचलित दासता, विषमता और असहिष्णुता को सदा के लिए दूर करके समाजवाद स्वतंत्रता, समता और भातृभाव की वास्तविक स्थापना करना चाहता है।

वैज्ञानिक समाजवाद के जन्मदाता मार्क्स को मानव समाज के अन्याय को न बर्दाश्त करने पर कहा है कि एक वर्ग के लोग सम्पन्न, सुसंस्कृत हों और दूसरे गुलामों की तरह दिन-रात मेहनत करने पर भी जिन्दगी की साधारण आवश्यकताओं से वंचित रहते हैं। जो श्रम करते हैं और समाज की दौलत को पैदा करते हैं जो पृथ्वी के गर्भ से सोना, चांदी और धातु, कोयला और तेल निकालते हैं जो बड़े-बड़े महल खड़े करते हैं और इस पृथ्वी को सजाते हैं वे स्वयं जानवरों की जिन्दगी गुजारते हैं। गन्दे और तंग मकानों में रहते हैं। जहाँ हवा भी गुजर नहीं सकती, मैले-कुचैले कपड़े पहनते हैं और शिक्षा से वंचित रखे जाते हैं। समाज का अनाचार जो करोड़ों मानव संतान को मानवता से वंचित कर उन्हें जानवर की सी जिन्दगी बसर करने के लिए मजबूर करता है, मार्क्स को चोट पहुँचाता था। मार्क्स ने एक स्थल पर कहा है कि सर्वहारा मजदूर को रोजमर्रा के भोजन की अपेक्षा शौर्य, आत्मविश्वास, स्वाभिमान और स्वतंत्रता की कहीं अधिक जरूरत है।

समाजवाद के जनक मार्क्स का जीवन चरित्र, निश्चल भाव, साधना, सख्त से सख्त मुसीबत में भी सिद्धान्तों पर अटल बने रहना और मानव की आत्मचेतना और सबसे बड़ा देवता मानता है। मार्क्स का कहना था कि मनुष्य धर्म को बनाता है, न कि धर्म मनुष्य को और मानवेतर परमपुरुष की कल्पना मनुष्य के ख्याल और वहम का नतीजा है। मानवता की परिपूर्णता में धर्म बाधक है। धर्म आज रूढ़ियों और स्वार्थों का समर्थक है उसके अनुसार वर्तमान सामाजिक व्यवस्था ईश्वरीकृत है और इसलिए वह सदा के लिए अपरिवर्तनशील है। धर्म मनुष्य को दुर्बल बना देता है, उसमें आत्मविश्वास उत्पन्न नहीं होने देता और उसकी स्वतंत्रता का अपहरण करता है, जीवन की ठोस हकीकत से उसको अलग कर ख्याल और वहम की काल्पनिक दुनिया में उसको नचाता है और उसकी आत्म चेतना को पूर्णरूप से विकसित नहीं होने देता। धर्म के बोझ तले मानव दबा पड़ा है। समाजवाद धर्म की सच्ची मीमांसा कर धर्म की कैद से मनुष्य को निजात दिलाता है और इस तरह मानवता के गौरव को बढ़ाता है।

आज पूंजीवादी समाज में साधारण मनुष्यों के लिए जीवन की कठिनाइयाँ सामन्तवादी युग की अपेक्षा कई गुना बढ़ गयी हैं। इसी कारण समाज में भीषण विषमताएँ उत्पन्न हो गयी हैं। इन विषमताओं का कारण क्या है तो इसका प्रमुख कारण उत्पादन, विनिमय और वितरण के साधनों पर चन्द पूंजीपतियों का अधिकार है। उत्पादन के साधनों में कारखानों, मिलों और बैंकों आदि में काम करने वालों का इन साधनों पर कोई अधिकार नहीं है आज बड़े पैमाने पर उत्पादन होता है पर उत्पादन के साधनों पर समाज का या उनमें कार्य करने वाले आदमियों का कोई अधिकार न हो कर व्यक्तिगत अधिकार पूंजीपतियों का होता है। सारा लाभ इन व्यक्तिगत पूंजीपतियों की जेबों में जाता है और मजदूरों को मुश्किल से उनके पेट भरने के लिए दिया जाता है। इस प्रकार उत्पादन की शक्तियाँ और उत्पादन के साधनों तथा विनिमय के बीच घोर असंगतियाँ उपस्थित हो गयी हैं। समाजवाद का उद्देश्य उन्हीं असमानताओं और असंगतियों को दूर करना है।

विचारकों की श्रेणी में हम समाजवाद के प्रति डॉ० राममनोहर लोहिया के योगदान को भी नहीं भूल सकते। वे समाजवादी क्रांति के उन्नायक सिद्धान्तों और कार्यक्रमों के जनक माने जाते हैं। आपको जिज्ञासु समाजवादियों एवं उत्सुक समाज सेवक के लिए एक अद्वितीय अवलम्बन है।

महान स्वतंत्रता सेनानी और समाजवादी नेता डॉ० राममनोहर लोहिया चाहते थे कि दुनियाभर के सोशलिस्ट एक जुट होकर मजबूत मंच बनाए। लोहिया जी का समाजवाद जगत को एक ऐसी दृष्टि प्रदान करता है, जो गरीबी को मिटाने के लिए उत्पादन और वितरण के साधनों पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। उन्होंने कहा कि भारतीय समाजवाद को भारतीय परिस्थितियों और इतिहास के अनुकूल होना चाहिए जिसमें हिन्दुस्तान के समाजवाद को आध्यात्मिक और भौतिक दोनों को वैचारिक पुट देकर खड़ा किया जाए। जिसमें पूरब-पश्चिम, काले-गोरे, अमीर-गरीब, छोटे-बड़े राष्ट्र, नर-नारी की बीच की दूरी को मिटाया जा सके।

लोहिया का विश्वास था कि सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् के प्राचीन आदर्श और आधुनिक विश्व के 'समाजवाद' स्वतंत्र्य और अहिंसा के तीन सूत्री आदर्श जीवन का सुन्दर सत्य होगा। उनकी कल्पना जिसे हम भारतीय समाजवाद की प्रथम व्याख्या कह सकते हैं वह उनके विचारधाराओं के सत्य तत्वों के आधार पर आधारित एक भारतीय परिकल्पना है। उन्होंने वंचितों को बराबरी पर लाने के लिए, पिछड़े वर्गों को विशेष अवसर दिलाने तथा विकृत मनोवृत्तियों, विलासिता एवं फिजूलखर्चियों को रोकने के लिए समाजवादी आन्दोलन को आधार बनाया।

लोहिया ने सारी दुनिया में विषमताओं को समाप्त करने का अभियान समाजवादी आंदोलन के द्वारा शुरू किया था, जिसे उन्होंने सप्तक्रांति के नारों से बांधा था। उनकी सप्तक्रांतियां थी—जाति का विनाशक, रंगभेद व नस्लभेद का विनाश, नर-नारी समानता, आर्थिक-राजनीतिक समानता, लघु इकाई तकनीकी और छोटी मशीन, सत्ता का विकेन्द्रीकरण, हथियारमुक्त दुनिया व विश्व संसद। ये सात सूत्र आज भी आदर्श लक्ष्य हैं। परन्तु दुनिया के बदलते लक्ष्यों की क्रांति के कुछ नये कार्यक्रम भी इन लक्ष्यों में शामिल करने होंगे। डॉ० राममनोहर लोहिया के भारतीय समाजवाद की वैचारिक प्रासंगिकता आज भी है और कल भी रहेगी। विश्व व्यापार संगठन, जो पूंजीवाद व्यवस्था का हथियार है, आज भारत को बाहर निकलकर एक नये वैश्विक समाजवादी विकल्प की बुनियाद डालनी होगी। संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्थाओं को एक देश, एक वोट के आधार पर जनतांत्रिक बनाने की भी पहल करना होगा और भारतीय समाजवाद के कार्यक्रमों में इन कार्यक्रमों की अहम् भूमिका होनी चाहिए।

भारतीय समाजवादी आन्दोलन की अनूठी समझ को आज फिर से याद करने की जरूरत है। बगैर संगठन की आजादी, अभिव्यक्ति की आजादी और अभियान की आजादी के समाजवाद हो नहीं सकता। इसलिए आचार्य जी की परिभाषा में समाजवाद गरीबों का जनतंत्र है और जनतंत्र देश के लिए कल्याणकारी बहुजनहिताय व्यवस्था है। आज समाज के निर्माण में सबसे ज्यादा भूमिका जनचेतना की है। आज भारतीय समाज में समाजवादी सपनों के प्रति आस्था का प्रबल करना बहुत जरूरी है। मानव के स्वास्थ्य लाभ के लिए समाजवाद की आवश्यकता है। वैयक्तिक स्वार्थों से ऊपर उठकर आज एक मानवीय समाज की स्थापना करनी होगी जिसमें व्यक्ति, व्यक्ति का मित्र और सहयोगी बन सके, शत्रु नहीं। समाजवाद समाज के सभी प्राणी को समान अवसर प्रदान करने के पक्ष में है।

सन्दर्भ सूची —

1. रवि प्रकाश पाण्डेय — भारतीय सामाजिक विचारक, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद (2012), पृष्ठ-378-380, 395-401
2. बी.एन. सिंह — भारतीय सामाजिक चिन्तन, विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर (दिल्ली), पृष्ठ-314-315, पृष्ठ-324-328
3. एस.एल. दोषी — सामाजिक विचारक, रावत पब्लिकेशन, जवाहर नगर, जयपुर, पृष्ठ-101, 102
4. डॉ. रवि प्रकाश पाण्डेय — भा. सा. विचारक, विजय प्रकाशन मन्दिर, सुडिया, वाराणसी
5. समाजवादी हस्तक्षेप पत्रिका — जनवरी-फरवरी 2013, पृष्ठ-2-9, नहर बाजार, दिबियापुर, औरैया



समाजवाद और नेहरू का आर्थिक चिंतन

डॉ. अभिलाष सिंह यादव

असि. प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान)

महामाया राजकीय महाविद्यालय घनुपुर, हण्डिया, इलाहाबाद

राजनीतिक क्षेत्र में नेहरू जी पूरी तरह से उदारवादी मान्यताओं के प्रतिपालक थे, फलस्वरूप उन्होंने स्वतन्त्रता और समानता का जयघोष किया, लेकिन आर्थिक जगत् में नेहरू का चिन्तन सर्वथा भिन्न था। वह आर्थिक क्षेत्र में अहस्तक्षेप की नीति के सर्वथा समर्थक नहीं थे। उन्होंने अपने राजनीतिक जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में ही समाजवाद—सम्बन्धी विचारों को आर्थिक प्रश्नों के उत्तर खोजने के लिए प्रस्तुत किया। वह समाजवाद को एक व्यवस्था ही नहीं बल्कि एक जीवन पद्धति के रूप के भी स्वीकार करते थे। 12 अप्रैल 1936 को लखनऊ कॉंग्रेस के 49वें अधिवेशन में सभापति के रूप में उन्होंने 'समाजवाद ही क्यों' विषय पर अपने विचार प्रस्तुत किये। उन्होंने कहा, "मेरा यकीन है कि दुनिया की ओर हिन्दुस्तान की समस्या का एक ही हल है और वह है समाजवाद। जब मैं इस शब्द का इस्तेमाल करता हूँ तो मैं कोई अस्पष्ट जनसेवी तरीके पर नहीं बल्कि वैज्ञानिक और आर्थिक नजरिये से करता हूँ। समाजवाद एक आर्थिक सिद्धान्त के निस्वत कुछ ज्यादा माने रखता है। यह जिन्दगी का दर्शनशास्त्र है और इसका यह रूप मुझे पसन्द भी है। मैं समाजवाद के सिवा कोई दूसरा रास्ता नहीं देखता कि जो गरीबी, बेकारी, बेइज्जती और गुलामी से हिन्दुस्तान के लोगों को नजात दिला सके। इसमें हमारे राजनैतिक और सामाजिक ढाँचे में इन्कलाबी तब्दीलियाँ, जमीन और उद्योगों में निहित स्वार्थी और हिन्दुस्तान की देशी रियासतों का निरंकुश और जागीरदारी के तरीकों का खात्मा भी शामिल है। इसके माने यह कि किसी निश्चित सीमा को छोड़कर निजी जायदादें खत्म कर दी जायेंगी और मुनाफाखोरी के मौजूद ढंग की जगह सहकारिता—सेवा का बड़ा आदर्श ले लेगा। मतलब यह कि हमारे संस्कारों, आदतों और इच्छाओं में भी परिवर्तन होंगे। सारांश यह कि नई सभ्यता का बदल होगा जो बुनियादी तौर पर मौजूदा सरमायेदारी के तरीके से जुदा होगी।"⁽¹⁾

मार्क्स का नेहरू के समाजवादी चिंतन पर प्रभाव — नेहरू के समाजवाद को मार्क्स ने बहुत सीमा तक प्रभावित किया। यह सर्वविदित है कि नेहरू का राजनैतिक चिंतन विज्ञान और वैज्ञानिक मान्यताओं से अनुप्रेरित था। मार्क्स और लेनिन की तरफ उनका झुकाव इसी वैज्ञानिक दृष्टिकोण के कारण सम्भव हुआ। मार्क्सवाद ने उन्हें समस्याओं के निदान का वैज्ञानिक चिंतन दिया। आचार्य नरेन्द्र देव ने उन्हें इसी संदर्भ में मार्क्स से प्रभावित समाजवादी माना है।⁽²⁾ नेहरू मार्क्स के इस तर्क से सहमत थे कि पूँजीवादी व्यवस्था के कारण साम्राज्यवाद, आक्रामक राष्ट्रवाद एवं युद्धों का जन्म होता है। उन्होंने चीन और रूस का भ्रमण किया था। वहाँ हुये तत्कालिक परिवर्तनों का अवलोकन किया था। दूसरे महायुद्ध के बाद पूँजीवादी राष्ट्रों में बढ़ती हुई बेरोजगारी और अव्यवस्था ने उन्हें समाजवाद के प्रति और भी अधिक निकट ला दिया था। उद्योगों के राष्ट्रीयकरण, यातायात के राष्ट्रीयकरण की प्रक्रिया तेज होती जा रही थी।

नेहरू पर मार्क्स का प्रभाव था, लेकिन वह रुढ़िवादी अर्थों में मार्क्सवादी नहीं थे। वह मौलिक रूप से भारतीय परिस्थितियों के संदर्भ में भारतीय समस्याओं का निदान खोज रहे थे। फलस्वरूप उनका मार्क्सवादी दर्शन से मेल बैठना कठिन था। मौलिक अन्त को निम्न आधार पर समझा जा सकता है—

(1) नेहरू के लिए मार्क्स के विचार बदलती हुई परिस्थितियों में संशोधन के बाद ही स्वीकार किये जा सकते

हैं, जबकि साम्यवादियों और मार्क्स के शुभचिंतकों के लिए मार्क्स के विचार अन्तिम और पूर्ण हैं।

- (2) मार्क्सवादी अतिशय हिंसा के समर्थ रहे जबकि नेहरु जी का चिंतन मूल रूप से अहिंसा से प्रभावित रही
- (3) नेहरु ने वर्ग संघर्ष के सिद्धान्त में आस्था रखी लेकिन उन्होंने इसे बढ़ाने का कभी प्रयास नहीं किया। जिस रूप में मार्क्स साधन सम्पन्न वर्ग के अस्तित्व को समाप्त करना आवश्यक अनुभव करता है, नेहरु ने ऐसा आवश्यक अनुभव नहीं किया, वह अधिकारों के सीमित करने के समर्थक थे।

नेहरु का समाजवाद एक जीवन दर्शन है— नेहरु के चिंतन में समाजवाद एक आस्था के रूप में बैठा था लेकिन उनका समाजवाद सीमित दायरों में बन्द नहीं था। इसलिए वह एक जीवन दर्शन भी था। के० दामोदरन के अनुसार, “नेहरु के लिए समाजवाद एक आर्थिक व्यवस्था ही नहीं बल्कि एक जीवन दर्शन भी है।”⁽³⁾ समाजवाद केवल वैचारिक मान्यताओं पर आधारित रहकर जीवित नहीं रह सकता। यदि मानव व्यक्तित्व का समादर करना है तब समाजवाद को अपनाना होगा। सुभाषचन्द्र बोस को उन्होंने 4 फरवरी सन् 1939 में अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए लिखा था, “मैं स्वभाव और प्रशिक्षण से अपने आपको व्यक्तिवादी और बौद्धिक दृष्टिकोण से समाजवादी मानता हूँ। मैं यह मानता हूँ कि समाजवाद व्यक्तित्व को समाप्त अथवा हीनत्व प्रदान नहीं करता। वास्तव में, मैं इसकी तरफ इसलिए आकर्षित हुआ हूँ क्योंकि इसमें असंख्य मानवों की आर्थिक और सांस्कृतिक बेड़ियों के काटने की क्षमता है।”⁽⁴⁾

समाजवाद के जिस स्वरूप को रूस में बढ़ावा मिला उसके वह समर्थक नहीं थे। वह लोकतन्त्र के समर्थक थे फलस्वरूप उन्होंने रूस की इस दृष्टि से आलोचना की थी कि वहाँ विरोधी विचारधाराओं को पनपने का अवसर नहीं मिला।”⁽⁵⁾

समाजवाद के प्रति व्यवहारिक आस्था — नेहरु जी चाहते थे कि कॉंग्रेस भी समाजवाद को अपना लक्ष्य मान ले। गाँधी जी सहित अन्य प्रमुख कॉंग्रेस के लोगों ने ऐसा नहीं करने दिया। सन् 1955 में नेहरु जी का समाजवाद पूरी तरह से लोकतन्त्र को समर्पित हो गया था इसलिए उसका नाम “लोकतन्त्रात्मक समाजवाद” पड़ा। समाजवाद के प्रति उनका लगाव जड़वादी नहीं था, वह सदैव परिस्थितियों के अनुकूल बदलने वाला था। 7 अप्रैल सन् 1948 को उन्होंने जिस आर्थिक नीति की घोषणा की, वह मूलरूप से समाजवाद से प्रेरित थी जिसके परिणामस्वरूप अणुशक्ति, रेलवे तथा 6 अन्य प्रमुख उद्योगों में सरकार अपने स्वामित्व को स्थापित करने में समर्थ हुई। जनवरी सन् 1955 में ‘समाजवादी समाज रचना’ का प्रस्ताव आवादी कांग्रेस अधिवेशन में प्रस्तुत किया गया। प्रस्ताव नेहरु जी के समर्थन से यू०एन० डेबर ने रखा जिस पर नेहरु ने उत्साहपूर्वक अपने विचार रखे। इस प्रस्ताव के संदर्भ में ही संविधान के परिच्छेद 31 में परिवर्तन की व्यवस्था की गई जिसके द्वारा सम्पत्ति के अधिग्रहण के विषय में संसद को निश्चय करना था। जनवरी सन् 1954 में पुनः ‘कृषि से सम्बन्धित सहयोगी व्यवस्था’ विषयक प्रस्ताव पास किया गया।⁽⁶⁾

नेहरु का समाजवाद तीन मुख्य प्रेरणाओं से परिचालित है (अ) वह लोकतन्त्रात्मक है। (ब) व्यक्तिवाद और समाजवाद में विरोध नहीं मानता। (स) वितरण से अधिक उत्पादन पर बल देता है, तथा कृषि—व्यवस्था पर आधारित है। नेहरु ने अपने इस समाजवाद को बड़े-बड़े उद्योगों के माध्यम से, सामुदायिक विकास योजनाओं के माध्यम से, कृषि पर महत्वपूर्ण बल देकर, मिश्रित अर्थ—व्यवस्था के स्वरूप को अपनाकर, धर्म निरपेक्ष लोकतन्त्र और लोक मंगलकारी राज्य को समर्पित किया था। उनके हृदय में समाज के सबसे अधिक दलित अनुभव किये जाने वाले वर्ग के प्रति अपार श्रद्धा थी। वह हर दुःखी की आँख के आँसू को पी लेना चाहते थे, उनके समाजवाद ने उन्हें महान् मानवतावादी बना दिया।

लोकतन्त्र और नेहरू की आस्था :-

देश की स्वतन्त्रता का सम्पूर्ण इतिहास गाँधी और नेहरू का इतिहास है। गाँधी ने जिन आदर्शों के निर्माण में अपने जीवन का सर्वस्व अर्पण किया, जवाहरलाल ने उन आदर्शों को व्यवहारिक रूप देने में कोई कसर नहीं उठाई। वह लोकतन्त्र के समर्थक और भारतीय लोकतन्त्र के महान् शिल्पी थे। उन्होंने स्वतन्त्रता की लड़ाई में समानता की भावना के आधार पर एक बड़े साम्राज्य से टक्कर ली थी। जीवन के छोटे-छोटे प्रसंगों को संग्रहित करके विचारों के एक महल को खड़ा किया था। लोकतन्त्र में अपार आस्था होने के कारण ही उन्होंने मार्क्सवाद और फासीवाद को स्वीकार नहीं किया था। फासिस्ट व्यवस्था की उन्होंने जितनी आलोचना की थी उतनी मार्क्सवाद की नहीं, इसका कारण यह था कि फासिस्टवाद मूलरूप से लोकतन्त्र के विरुद्ध है जबकि मार्क्सवाद प्रक्रिया और साधनों से लोकतन्त्र को खतरा पहुँचाता है। वह कांग्रेस को लोकतन्त्र की स्थापना का महत्वपूर्ण यन्त्र मानते थे।

लोकतन्त्र का अर्थ अवसरों की समान व्यवस्था है – लोकतन्त्र नेहरू के लिए समानता की भ्रामक व्यवस्थाओं का नाम ही नहीं है। प्रकृति ने मनुष्य को असमान बनाया है। तब पूर्ण समानता की कल्पना करना निरर्थक तथा असंगत है। वह लोकतन्त्र को समान अवसरों की व्यवस्था का प्रतीक मानते थे। इसमें सामाजिक, आर्थिक, और राजनैतिक सभी प्रकार के अवसर आये हैं। सामाजिक जीवन में इस प्रजातन्त्र के आधार पर अस्पृश्य-भावना से जहाँ मुक्ति प्राप्त करेंगे वहाँ आर्थिक क्षेत्र में समाजवादी व्यवस्था को अपनाकर हर दुःखी मन को सन्तोष की अनुमति देंगे तथा राजनीतिक क्षेत्र में नागरिक अधिकारों की समान सुविधायें सभी को उपलब्ध होंगी। वयस्क मताधिकार के आधार पर राजनीतिक संगठनों और संस्थाओं का निर्माण होगा। 10 फरवरी सन् 1933 को उन्होंने इन्दिरा को लोकतन्त्र की मान्यताओं को स्पष्ट करते हुए पत्र लिखा था। उस पत्र के अनुसार, लोकतन्त्र का यह तो कभी कहना नहीं था कि सब मनुष्य असलियत में बराबर हैं। वह ऐसा कह भी नहीं सकता था, क्योंकि यह तो जारिह ही है कि मनुष्य मनुष्य के बीच असमानतायें होती हैं। “तन की असमानतायें जिनके सबब से ही कुछ लोग दूसरों से बलवान होते हैं। X X X दिमागी असमानतायें। X X X नैतिक असमानतायें। X X X लेकिन जहाँ तक लोकतन्त्र का सम्बन्ध है वह मानता है कि मनुष्य दरअसल असमान होते हैं जहाँ पर फिर भी वह कहता है कि हर एक मनुष्य के साथ ऐसा बर्ताव किया जाना चाहिए मानो उसका राजनीतिक व सामाजिक महत्व सबके बराबर है। अगर इस लोकतन्त्री सिद्धान्त को पूरी तरह मान लें तो हम कई तरह के क्रान्तिकारी नजीजों पर पहुँच जाते हैं।” नेहरू जी केवल लोकतन्त्र को ‘वोट के अधिकार’ देने तक सीमित नहीं रखते। वह तो शोषण को सर्वथा मिटाना चाहते थे, इसलिए उनका लोकतन्त्र आर्थिक जगत में समान अवसरों की व्यवस्था करता है जिससे कि देश में किसान और मजदूर भी इस लोकतन्त्र की सही अनुभूति कर सकें।

धर्मनिरपेक्षता तथा लोकमंगल आदर्श – जवाहरलाल ने लोकतन्त्र की शासन व्यवस्था में संसदीय प्रणाली को उपयुक्त माना था। वह भारत को धर्म निरपेक्ष लोकतन्त्र के रूप में देखते थे। इस देश में रहने वाला प्रत्येक अल्पसंख्यक केवल सुरक्षित ही अनुभव न करे बल्कि सन्तुष्ट और सुखी जीवन जीने की उसमें भी लालसा होनी चाहिए। “एक सम्प्रदायवाद बढ़ाना उचित नहीं है। नेहरू ने इस हथियार की सदैव आलोचना की तथा कहा कि यह सामाजिक और राजनैतिक प्रतिक्रियावादियों के हाथों में एक शस्त्र है जिससे कि वह साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष को रोक सकें तथा उच्च वर्ग की सुविधाओं को बनायें रख सकें।” (7) वह मूलतः धर्म निपेक्ष मान्यताओं के प्रतीक थे, यही कारण है कि उन्होंने लोकतन्त्र के स्वरूप को धर्म निरपेक्ष रखा। नेहरू सन् 1929 से ही समाजवादी ढंग का कल्याणकारी राज्य अपने मन में बसा चुके थे। वह साधनों के प्रति मार्क्सवादी दृष्टिकोण से सहमत नहीं। वह भी पवित्र साधनों के समर्थक थे, स्पष्टतः यह उन पर गाँधी का प्रभाव था। लोककल्याणकारी राज्य की सभी

आधारभूत मान्यताओं को उन्होंने स्वीकार किया था। पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से कृषि, उद्योग और समाज सेवा के विभिन्न क्षेत्रों में लोक-कल्याण की योजनाओं को क्रियारूप में परिणित किया। नेहरू जी को अपने जीवन काल में ऐसे बहुत से कानूनों का सहारा लेना पड़ा जो उनके आदर्शों के प्रतिकूल थे। वह देश के हितों को, लोकतन्त्र के आदर्श को ठेस पहुँचाने वालों के लिए ऐसे शस्त्रों का प्रयोग करते थे, जिन्हें लोकतन्त्र का रक्षा कवच मानना चाहिए।⁽⁸⁾

आज नेहरू हमारे बीच नहीं हैं। कुछ लोगों ने उन्हें महान् राजनीतिज्ञ, विचारक, समाजसेवी बताया तो कुछ आलोचकों ने उन्हें अलोकतन्त्रीय पद्धति का समर्थक बताकर स्टालिन से उनकी तुलना की। वास्तव में हिंसा और अहिंसा में जो भेद हैं, दोनों में वही भेद था। स्टालिन के लिए विरोध अस्वीकार्य जबकि नेहरू ने विरोध से सीखने की चाह रखी। राजनीति में कोमलता प्रजातन्त्र है और कठोरता तानाशाही। जवाहर लाल ने इस कोमलता को ही वरण किया था। जवाहरलाल गान्धी के शिष्य थे और विनोबा के सहयात्री, इस कारण उनके स्वभाव, विचार और कर्म में अपने गुरु और सहयात्री के आदर्श गुंथे गये थे। उन्होंने साध्य से भी प्रेम किया था और साधन से भी इसलिए दोनों को ही उन्होंने पवित्र रखने का प्रयास किया। विश्वम्भर 'अरुण' के शब्दों में वह मानव उद्यान के गुलाब थे। राजनीति को उन्होंने अपने विचारों से और कार्यों से अहिंसामय बनाने का प्रयास किया। वह लोकतन्त्र, अन्तर्राष्ट्रीयवाद, समाजवाद के महान् समर्थक थे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची —

1. नेहरू व्यक्तित्व और विचार, पृ० 444-445
2. टंडन, पी०डी० — (सम्पादक), नेहरू योर नेबर, (लेख) जवाहर लाल नेहरू दि सोशलिस्ट।
3. दामोदरन, के० —इण्डियन थॉट : ए क्रिटिकल सर्वे, पृ० 461
4. जवाहरलाल-ए बन्व ऑफ लैटर्स, पृ० 353



भारतीय मुसलमानों की समस्याएँ और उनका समाधान

डॉ० रजिया

जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

सर्वप्रथम 'अल्पसंख्यक आयोग' का विचार गणतंत्र के 11वें वर्ष में आया जिसकी स्थापना 1960 में उत्तर प्रदेश (लखनऊ) में हुई और उस समय 'अल्पसंख्यक आयोग' के अन्तर्गत केवल एक ही व्यक्ति कार्यरत था। परन्तु आयोग के 11 वर्ष बाद उत्तर प्रदेश सरकार ने इस की संरचना में परिवर्तन करके अध्यक्ष व अन्य सदस्य तथा 2 पूर्व सरकारी अधिकारियों को नियुक्त किया। उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा 'अल्पसंख्यक आयोग' की संरचना में परिवर्तन से पहले बिहार सरकार ने भी विभिन्न सदस्यों की नियुक्ति करके 'अल्पसंख्यक आयोग' की स्थापना 1971 में की। और फिर बिहार सरकार ने भी इस आयोग को एक वर्ष बाद पुनः गठित करके 1977 में फिर से स्थापित किया।

इसके साथ ही नवम्बर 1977 में गुजरात सरकार ने भी State Minorities High Powered Committee की स्थापना की जिसमें एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष तथा 22 अन्य सदस्य और 8 सरकारी अधिकारियों को नियुक्त किया गया।

गुजरात, बिहार और उत्तर प्रदेश में 'अल्पसंख्यक आयोग' की स्थापना के बाद केन्द्रीय स्तर पर भी 'अल्पसंख्यक आयोग' की आवश्यकता को अनुभव किया गया। जिसके कारण 12 जनवरी 1978 को 'केन्द्रीय गृह मंत्रालय' के अधीन नई गैर-काँग्रेस सरकार ने एक सरकारी प्रस्ताव में यह घोषणा की—

उत्तर प्रदेश, बिहार तथा गुजरात में 'अल्पसंख्यक आयोग' की स्थापना के बाद केन्द्रीय स्तर पर भी 12 जनवरी 1978 को एक सरकारी प्रस्ताव द्वारा 'अल्पसंख्यक आयोग' की स्थापना की गई। जिसका प्रमुख उद्देश्य अल्पसंख्यक वर्ग को संरक्षण प्रदान करना उनकी समस्याओं को दूर करना तथा उनके कल्याण के लिए उचित उपाए सुझाना था।

इस प्रस्ताव द्वारा 'अल्पसंख्यक आयोग' में एक अध्यक्ष, 2 अन्य सदस्यों को नियुक्त किया गया जिनका कार्यकाल आमतौर पर 3 वर्ष निश्चित किया गया। इस प्रस्ताव के अनुसार अनुच्छेद 350—B के अन्तर्गत भाषायी—अल्पसंख्यकों के लिए सेक्रेटरी के रूप में एक विशेष अधिकारी होगा जो भाषायी अल्पसंख्यकों के लिए कार्य करेगा और ये सेक्रेटरी आयोग द्वारा निर्धारित की गई रीति पर ही निर्वाचित किया जाएगा। 6 सप्ताह बाद 22 फरवरी 1978 को राष्ट्रपति द्वारा 'अल्पसंख्यक आयोग' में एक पारसी अध्यक्ष और 2 मुस्लिम तथा ईसाई समुदाय के सदस्यों को सम्मिलित किया गया।

28 जुलाई 1978 को भारत सरकार द्वारा आयोग को पुनः गठित करके उसमें मुस्लिम अध्यक्ष तथा 4 अन्य समुदायों—बौद्ध, सिक्ख, ईसाई तथा पारसी आदि से सम्बन्धित सदस्यों को नियुक्त करने की बात की गई।

राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग का गठन

भारत सरकार द्वारा 12 जनवरी 1978 को 'अल्पसंख्यक आयोग' का गठन किया गया परन्तु उस समय इसे कोई संवैधानिक दर्जा प्राप्त नहीं था। इसलिए अल्पसंख्यकों के हितों की अधिक संगठित तथा प्रभावशाली ढंग से देखभाल करने के लिए वर्ष 1992, में 'राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम' को संवैधानिक दर्जा प्रदान करने

के लिए अधिनियमित किया गया, परन्तु एक्ट 17 मई 1993 को प्रवृत्त हुआ और इस अधिनियम के अनुसार आयोग का गठन प्रथम बार 17 मई 1993 को ही किया गया जिसके अध्यक्ष मोहम्मद सरदार अली खान थे तथा अन्य सदस्यों की संख्या 6 थी।

‘राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग’ का प्रमुख उद्देश्य धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए संविधान में दिए गए संरक्षण उपायों पर ध्यान देना और उनके कारगर ढंग से पालन के लिए सिफारिश करना है। इसके अलावा अल्पसंख्यक वर्ग के साथ हो रहे भेदभाव को दूर करने के उद्देश्य से भी N.C.M. की स्थापना की गई।

आयोग के अध्यक्ष की नियुक्ति सरकार द्वारा की जाती है। इस अधिनियम 1992 की धारा-2 (ग) के अन्तर्गत पाँच धार्मिक समुदायों अर्थात् मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध तथा पारसियों को अल्पसंख्यक समुदायों के रूप में अधिसूचित किया गया है। यह आयोग अल्पसंख्यकों के अधिकार और उनकी सुरक्षा निश्चित करने और उन्हें व्यावहारिक रूप से लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अधिनियम की धारा 12 में यह व्यवस्था है कि आयोग पिछले वित्तीय वर्ष के दौरान अपने कार्यकलापों का पूर्ण लेखा-जोखा देते हुए वार्षिक रिपोर्ट तैयार करेगा जो निश्चित नियम के अनुसार तैयार करनी होगी।

‘राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग’ से यह आशा की जाती है कि वह संविधान तथा देश के कानूनों में निर्धारित किए गए सुरक्षा उपायों की कार्य प्रणाली पर निगरानी रखे और अल्पसंख्यकों से सम्बन्धित स्कीमों तथा कार्यक्रमों की प्रगति तथा विकास का भी मूल्यांकन करे।

N. C. M. के कार्य व शक्तियाँ

N.C.M. Act 1992 की धारा 9 (4) में यह व्यवस्था की गई है कि आयोग धारा 9 (1) के खण्ड (क) (ख) तथा (घ) में निर्धारित किए गए अपने सभी कार्यों को करेगा जिनके निष्पादन के लिए आयोग सिविल न्यायालय की सभी शक्तियों का प्रयोग करेगा।

N.C.M. को अपने सभी कार्य करने के लिए सिविल न्यायालय को शक्तियाँ प्रदान की गई हैं।

N.C.M. द्वारा किए जाने वाले प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं :-

1. केन्द्र और राज्यों के अन्तर्गत अल्पसंख्यक वर्गों के विकास में हुई प्रगति का मूल्यांकन करना।
2. संविधान में दिए गए सुरक्षा उपायों तथा संसद और राज्य विधानमण्डलों द्वारा अधिनियमित विधियों में दिए गए सुरक्षा उपायों के चालन के क्रियान्वयन को मॉनीटर करना।
3. केन्द्रीय अथवा राज्य सरकारों द्वारा अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण करने से सम्बन्धित सुरक्षा उपायों के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए सिफारिशें करना।
4. अल्पसंख्यकों को उनके अधिकारों और संरक्षण से वंचित रखने से सम्बन्धित अलग-अलग जाँच करना तथा ऐसे मामलों को उपयुक्त प्राधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत करना।
5. अल्पसंख्यकों के प्रति कोई भेदभाव बरतने के कारण उत्पन्न समस्या की जाँच करना और उनके निराकरण के लिए सुझाव प्रस्तुत करना।
6. अल्पसंख्यकों के सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक विकास से सम्बन्धित मुद्दे का अध्ययन, अनुसंधान तथा विश्लेषण करना।
7. किसी भी अल्पसंख्यक वर्ग के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकारों द्वारा की जाने वाली उपयुक्त कार्यवाई के सम्बन्ध में सुझाव प्रस्तुत करना।
8. केन्द्र सरकार के समक्ष आवधिक अथवा विशेष रिपोर्ट प्रस्तुत करना तथा उनके सामने आई समस्याओं को

सरकार के सामने प्रस्तुत करना।

9. केन्द्र सरकार द्वारा आयोग को सौंपा गया अन्य कोई भी कार्य करना।

N.C.M. Act 1992 की धारा में कहा गया है कि 'अल्पसंख्यक' का अर्थ केन्द्र सरकार द्वारा अधिसूचित समुदाय है। जिसमें पाँच समुदायों— मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध तथा पारसियों को सम्मिलित किया गया है, और आयोग इन सभी कार्यों को इन पाँच समुदायों के सम्बंध में ही करेगा जो कि 1992 अधिनियम की धारा 9 (1) में प्रदर्शित किए गए हैं।

राष्ट्रीय 'अल्पसंख्यक आयोग' की आवश्यकता

राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग की आवश्यकता क्यों पड़ी ? भारत जो कि एक विशाल धर्म निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य है। परन्तु फिर भी धर्म—निरपेक्ष तथा लोकतंत्रात्मक होने के बावजूद भी भारत जैसे विशाल देश में निवास कर रहे विभिन्न समुदायों के साथ जातीय तथा धार्मिक आधार पर भेदभाव किया जाता है, तथा कुछ क्षेत्रों में तो उन्हें हीन भावना से भी देखा जाता है जिसके कारण उनका सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक विकास नहीं हो पाता और वे पिछड़ जाते हैं। इन्हीं पिछड़े तथा कमजोर वर्ग की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए N.C.M. की आवश्यकता पड़ी, ताकि देश में इन पिछड़े तथा कमजोर वर्ग के साथ विभिन्न आधार पर हो रहे भेदभाव को रोका जा सके। उन्हें समाज के अन्य वर्गों के समान विकास के उचित अवसर भी प्रदान किए जा सकें और साथ ही अल्पसंख्यकों के उत्थान के लिए विभिन्न नीतियों, कार्यक्रम तथा स्कीम लागू की जा सकें जिसका लाभ प्रत्येक अल्पसंख्यक वर्ग को प्राप्त हो जिससे उनकी सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षिक स्थिति को भी सुधारा जा सके।

अल्पसंख्यकों के लिए संवैधानिक प्रावधान:-

भारतीय संविधान द्वारा आज़ादी और न्याय के मूल्यों, कानून के सामने सभी नागरिकों को एक समान मानने तथा अल्पसंख्यकों और दलितों के अधिकारों की सुरक्षा पर विशेष बल दिया गया है।

संविधान द्वारा अल्पसंख्यकों के शैक्षिक उत्थान के लिए विभिन्न प्रावधान किए गए हैं। जिसमें अल्पसंख्यकों को शिक्षा सम्बंधी अधिकार प्रदान किए हैं।

अनुच्छेद 29 (अ) में :- भारतीय संविधान द्वारा अल्पसंख्यकों को अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति को बनाए रखने का अधिकार प्रदान किया गया है।

अनुच्छेद 29 (ब) में :- राजकोश से सहायता पाने वाली शिक्षा संस्थाओं में किसी भी व्यक्ति को केवल धर्म, जाति, वंश अथवा भाषा के आधार पर ही दाखिला देने से इंकार नहीं किया जा सकता।

अनुच्छेद 30 के अनुसार — अल्पसंख्यकों को अपने शिक्षा संस्थान बनाने और चलाने का पूर्ण अधिकार दिया गया है।

“भारत में मुस्लिम अल्पसंख्यक वर्ग”

अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ में 'अल्पसंख्यक' शब्द की परिभाषा—

अल्पसंख्यक किसे कहा जाए ? इसके लिए कोई मान्य कसौटी अथवा परिभाषा नहीं है!

जहाँ 1 और 99 हों वहाँ 1 अल्पसंख्यक होगा और जहाँ 49 और 51 में केवल एक का अन्तर होने के बावजूद 49 अल्पसंख्यक हो जाएगा। इसलिए अल्पसंख्यक की कोई एक सर्वमान्य परिभाषा नहीं हो सकती।

इन्टरनेशनल एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज़ मेकमिलन एण्ड फ्री प्रेस में प्रकाशित माइनोंरिटी की परिभाषा में कहा गया है — “अल्पसंख्यक वह समूह है जो उसी समाज में रहने वाले दूसरे समूह से प्रजाति,

राष्ट्रीयता, धर्म और भाषा की दृष्टि से भिन्न हैं तथा दोनों समूह एक-दूसरे के परस्पर एक-दूसरे को नकारात्मक दृष्टि रखते हुए अलग समझते हैं। इसके अतिरिक्त सत्ता की दृष्टि से दोनों की स्थितियाँ अलग-अलग हैं और वह समूह जो दूसरे के अधीन है, उसके साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार करता है।”

अंग्रेजी भाषा के प्रसिद्ध शब्द कोश में कहा गया है –

कि अल्पसंख्यक वह लोग या समूह होता है जो संख्यात्मक आधार पर किसी बड़े समूह से आधा या आधे से भी कम होता है।

अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भ में अल्पसंख्यकों को मुख्यतः तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है—

1. भाषायी आधार पर अल्पसंख्यक वर्ग।
2. धार्मिक आधार पर अल्पसंख्यक वर्ग तथा
3. जातिय आधार पर अल्पसंख्यक वर्ग।

अल्पसंख्यक वर्ग की परिभाषा राष्ट्रीय संदर्भ में

राष्ट्रीय संदर्भ में जो लोग धार्मिक तथा जातीय आधार पर अल्पसंख्या में पाए जाते हैं उन्हें अल्पसंख्यक वर्ग की श्रेणी में रखा गया है।

नेशनल माइनॉरिटी शब्द की उत्पत्ति यूरोप में मानी गई है। भारत में अल्पसंख्यक शब्द के इतिहास पर नज़र डाले, तो यह व्यवस्था अंग्रेजी शासन काल से चली आ रही है। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के पश्चात अंग्रेजों ने विधिवत् अल्पसंख्यकों की कल्पना को जन्म देना शुरू किया था। नस्ल और सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े लोगों में ईसायत का प्रचार करके अंग्रेजों ने अपने राज्य के प्रति सहानुभूति और निष्ठा की योजना बनाई तो दूसरी ओर भारतीयों को धर्म के नाम पर विभक्त करने का प्रयत्न किया जिसका परिणाम 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना था।

यद्यपि भारतीय संविधान में ‘अल्पसंख्यक’ शब्द का वर्णन नहीं किया गया परन्तु फिर भी संविधान उन अल्पसंख्यकों को तममित करता है जो कि धर्म और भाषा पर आधारित हैं।

भारत में मुस्लिम अल्पसंख्यक –

भारत में मुस्लिम अल्पसंख्यकों की स्थिति अन्य अल्पसंख्यक समुदायों की अपेक्षा काफी शोचनीय है। यद्यपि मुस्लिम धर्म दूसरा बड़ा धर्म है परन्तु उसके बावजूद भी इस धर्म के लोग सामाजिक-आर्थिक तथा शैक्षणिक रूप से अन्य धर्मों की अपेक्षा राज्य एवं राष्ट्र दोनों स्तर पर पिछड़े हुए हैं।

भारत में मुस्लिम अल्पसंख्यकों को विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

1. अल्प-प्रतिनिधित्व की समस्या— भारत में मुस्लिम अल्पसंख्यक भयानक रूप से राष्ट्र एवं राज्य स्तर पर सभी लोक सेवाओं में अल्प-प्रतिनिधित्व का शिकार रहीं हैं। सामान्य शिक्षा संस्थाओं में भी इनकी उपस्थिति इनकी जनसंख्या अनुपात से कम रही है बल्कि न के बराबर है जिसके कारण ये शैक्षिक रूप से पिछड़े हुए हैं। इसके अलावा लोकसेवाओं तथा ससाधन उत्पन्न करने वाली संस्थाओं में भी इनके अल्प-प्रतिनिधित्व का मुख्य कारण तथा प्रभाव शैक्षिक पिछड़ापन ही रहा है जिसके कारण इन्हें अल्प-प्रतिनिधित्व की समस्या से जूझना पड़ता है।

2. धर्म पर आधारित भेदभाव की समस्या – मुस्लिम समुदाय के लोगों को जीवन के कई मार्ग पर अलग-अलग संदर्भ में और अलग-अलग ढंग से धार्मिक असमानता तथा भेदभाव का सामना करना पड़ता है जिसके कारण उनके उचित विकास के मार्ग में बाधा उत्पन्न होती है और वे पिछड़ जाते हैं तथा उनमें हीन भावना का विकास होने लगता है और वे सोचने लगते हैं कि सरकार द्वारा उनके लिए कोई भी सुरक्षा उपाय प्रदान नहीं

किए गए हैं।

इसके अलावा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 में प्रदान किया गया धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार भी मुस्लिम अल्पसंख्यकों के कई मामलों में चुप है।

3. वक्फ सम्पत्ति की समस्या – इस्लाम को मानने वाले किसी व्यक्ति द्वारा मुस्लिम कानून में पवित्र, धार्मिक या धर्मार्थ माने गए किसी प्रयोजन के लिए किसी चल या अचल सम्पत्ति का स्थायी रूप से किया गया समर्पण वक्फ है। वक्फ अधिनियम 1995 को 1 जनवरी 1996 को अधिनियमित किया गया था, इसे जम्मू कश्मीर के अलावा पूरे देश के राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में लागू किया गया था। यह एक सवैधानिक विभाग है जो मुस्लिम समुदाय के शैक्षिक विकास में सहायता करने के लिए शिक्षा अनुदान का निर्माण करता है और मुस्लिम समुदाय के शैक्षिक विकास में आर्थिक सहायता भी प्रदान करता है परन्तु वर्तमान समय में कई राज्यों में वक्फ बोर्ड में अनुशासहीनता और धन का दुरुपयोग एक चिंता का विषय बन गया है जिसके कारण मुस्लिम अल्पसंख्यकों के शैक्षिक विकास में पूर्ण रूप से आर्थिक सहायता प्राप्त नहीं होती और मुस्लिमों का शैक्षिक विकास उचित ढंग से नहीं हो पाता।

वर्तमान समय में ये सभी समस्याएँ हैं जिनका सामना मुस्लिम अल्पसंख्यकों को करना पड़ रहा है और जिनके कारण उनके विकास के मार्ग में रुकावट उत्पन्न होती है।

छब्ब के पूर्व अध्यक्ष 'श्री हामिद अंसारी' ने भी शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े मुस्लिमों को अति पिछड़े वर्ग की श्रेणी में शामिल किया गया है।

उन्होंने कहा है कि देश की कुल जनसंख्या के 18.4: धार्मिक अल्पसंख्यकों में अकेले मुस्लिम की जनसंख्या 13.4: है।

श्री हामिद अंसारी ने मुस्लिमों की स्थिति देखते हुए यह भी कहा है कि मुस्लिमों की स्थिति शिक्षा के क्षेत्र में विचलित करने वाली है। इसलिए मुस्लिमों को भी उच्च शिक्षा क्षेत्र में विशेष अवसर देने के लिए O.B.C. में शामिल किया जाना आवश्यक है।

संसद की स्थायी समिति ने भी मुस्लिम अल्पसंख्यकों में शैक्षिक और सामाजिक रूप से पिछड़े छात्रों को अन्य पिछड़े वर्गों की तरह सामान्य भागीदारी सुनिश्चित करने पर सहमति प्रकट की है परन्तु समिति उन्हें आरक्षण के दायरे में शामिल करने में चुप है।

जबकि अल्पसंख्यक मामलों के मंत्री ए0 आर0 अंतुले ने मुस्लिम समुदायों में शैक्षिक विकास के लिए उन्हें आरक्षण देने की आवश्यकता पर बल दिया है।

राजेन्द्र सच्चर कमेटी ने भी मुस्लिम अल्पसंख्यकों के आरक्षण के लिए बहुत सी सिफारिशें की हैं। यहाँ तक कि मानव संसाधन विकास राज्यमंत्री एम0 ए0 फातमी की अध्यक्षता में मंत्रालय द्वारा गठित उच्च स्तरीय समिति ने अपनी रिपोर्ट में यह सिफारिश की! यद्यपि संविधान में किसी को भी धर्म के आधार पर आरक्षण देने का प्रावधान नहीं है परन्तु फिर भी सरकार ने समुदाय के नाम पर मुस्लिमों को आरक्षण देने का रास्ता खोजने को कहा है।

फातमी समिति ने मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्रों में शैक्षिक विकास के लिए व्यस्क शिक्षा, मदरसों की संख्या में वृद्धि, प्री-स्कूल, आँगनवाड़ी केन्द्रों, कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय के तर्ज पर मुस्लिम लड़कियों के लिए आवासीय विद्यालय और जरूरत मंद छात्रों के लिए छात्रवृत्ति की सिफारिशें की ताकि समुदाय की लड़कियों को छात्रवृत्ति उपलब्ध कराने से उन्हें उच्च शिक्षा के प्रति आकर्षित किया जा सके।

समिति ने अपनी रिपोर्ट में सच्चर कमेटी के हवाले से कहा कि बहुसंख्यक समुदाय की 65.1% शिक्षा दर

की तुलना में अल्पसंख्यक समुदाय में शिक्षा दर 59.1% है। लड़कियों में, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में यह दर और भी कम है। समिति ने बीच में ही पढ़ाई छोड़ देने वाले छात्रों को पुनः शिक्षा से जोड़ने के लिए सरकार से विशेष प्रावधान करने की सिफारिश की है।

फ़ातमी समिति ने रिपोर्ट में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और मौलाना आज़ाद मुस्लिम विश्वविद्यालय की चार-चार शाखाएँ खोले जाने की भी सिफारिश की है।

मुस्लिम की आर्थिक दशा सुधारने के मामले में प्रधानमंत्री डॉ० मनमोहन सिंह के हाल के सुझावों पर अमल करने के लिए अल्पसंख्यक मामलों के केन्द्रीय मंत्री अब्दुल रहमान अंतुले ने मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में अधिकाधिक शैक्षिक संस्थान खोले जाने और तकनीकी शिक्षा के विशेष अवसर उपलब्ध कराने की वकालत की है। अंतुले ने कहा कि उनके मंत्रालय ने अल्पसंख्यकों के सामाजिक, आर्थिक विकास के लिए सरकार द्वारा 15-सूत्री कार्यक्रम पर अमल शुरू कर दिया है।

कार्यक्रमों का हवाला देते हुए उन्होंने कहा कि शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ी इन जनसंख्या के उत्थान के लिए 'शिक्षा समेकित बाल विकास कार्यक्रमों' का लाभ देने के अलावा 'सर्व शिक्षा अभियान, कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना' को सक्रिय बनाने, उनकी जनसंख्या को अनुपात में उर्दू शिक्षकों की बहाली मौलिक शिक्षा की व्यवस्था तथा मदरसों के आधुनिकीकरण कार्यक्रम I.T.I. स्थापित करने तथा अल्पसंख्यक वित्त निगम के साथ उनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर कार्यक्रम चलाया जाना सम्मिलित है।

उन्होंने कहा कि मुस्लिम अल्पसंख्यकों को व्यावसायिक शिक्षा उपलब्ध करायी जाएगी ताकि वे भूमण्डलीकरण की चुनौतियों का सामना करने में सक्षम हो सकें। हाल ही में प्रधानमंत्री डॉ० मनमोहन सिंह ने मुस्लिम समुदाय को शिक्षा पर बल देते हुए उनके आर्थिक पिछड़ेपन का मुख्य कारण 'उनका स्कूल से दूर रहना' बताया था। सरकारी आँकड़ों के अनुसार बिहार में 6.22 लाख, प० बंगाल में 3.87 लाख, उत्तर प्रदेश में 7.82 लाख छात्र स्कूल से बाहर हैं।

सच्चर कमेटी की रिपोर्ट के पूर्व कुछ आँकड़े रामगढ़, जयपुर के आधुनिक पद्धति से चल रहे मदरसे 'मदरसा जामियातुल हिदायत' ने अपने अध्ययन के बाद प्रस्तुत किये थे। उनके अनुसार सरकारी नौकरियों में मुस्लिमों का प्रतिशत केवल 2.3% है।

न्यायालय में मात्र 4.5%, ग्रेजुएट केवल 18%, और I.A.S., I.P.S. O I.F.S. में भी मुस्लिम प्रतिशत केवल 2 या 3, से अधिक नहीं है।

सच्चर समिति के अनुसार शिक्षा के क्षेत्र में भी मुस्लिम समुदाय सबसे पीछे है। सच्चर कमेटी के अनुसार 25, 6 से 14 वर्ष तक की आयु के बच्चे स्कूल छोड़ चुके हैं तथा कुछ स्कूल गए ही नहीं।

उच्च शिक्षा, ग्रेजुएट तथा डिप्लोमा होल्डर मुस्लिम छात्र 4%, से भी कम हैं।

7%, मुस्लिम छात्र जिनकी आयु 20 वर्ष तथा इससे अधिक है ग्रेजुएट हैं और च्वेज ळतंकनंजम स्तर पर 20 में से केवल एक ही छात्र पहुँचता है। इसी कारण सच्चर कमेटी ने मुस्लिम अल्पसंख्यकों की शिक्षा में सुधार करने पर बल दिया है जिसके लिए कमेटी ने मुस्लिम वर्ग के छात्र-छात्राओं के लिए छात्रवृत्ति, मुफ्त किताबें तथा परिवहन सुविधाओं पर भी बल दिया। इसके साथ-साथ मुस्लिमों के लिए I.T.I., मदरसा शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा पर भी बल दिया।

सच्चर कमेटी ने मुस्लिम अल्पसंख्यकों की आर्थिक दशा सुधारने के लिए भी सरकार से सिफारिशें कीं जिसके अन्तर्गत मुस्लिमों को Regular Salaried Jobs, में विशेष कर सरकारी तथा सार्वजनिक सेक्टर में भागीदार बनाए जाने की सिफारिश की।

सच्चर कमेटी ने मुस्लिमों के मौजूदा हालात पर नज़र डालकर उनके विकास की वकालत की है।

मुस्लिम अल्पसंख्यकों के विकास में N.C.M. द्वारा उठाए गए विभिन्न कदम

वर्ष 1993 से 1996 के दौरान प्रथम N.C.M. द्वारा मुस्लिमों के विकास में किए गए कार्य –

प्रथम N.C.M. के अध्यक्ष मौ0 सरदार अली खान तथा आयोग के अन्य सदस्यों ने वर्ष 1993-96 के दौरान विभिन्न स्थानों का भ्रमण करके मुस्लिम अल्पसंख्यकों की समस्याओं को दूर करने की कोशिश की।

इस दौरान आयोग द्वारा मुस्लिमों के लिए 'मदरसा' के आधुनिकीकरण के लिए वित्तीय सहायता, वक्फ कानून तथा व्यक्तिगत कानून की स्थापना मौलाना आजाद इजीनियरिंग कॉलेज और उर्दू मुस्लिम अकादमी को दिए जाने वाले अनुदान की संख्या 13 लाख से बढ़ाकर 25 लाख करने की सिफारिश की गई।

इस दौरान मुस्लिमों को सरकारी नौकरियों में प्रवेश देने तथा 1993 में अयोध्या दंगों में पीड़ित मुस्लिमों को उचित मुआवजा देने की सिफारिश भी की गई।

इस प्रथम आयोग द्वारा मुस्लिमों के लिए विभिन्न स्कीमें जैसे :-

स्वरोजगार को बढ़ावा, महिलाओं का विकास, युवा स्कूली बच्चों पर विशेष ध्यान, वक्फ संस्थाओं का रखरखाव संरक्षण तथा विकास, सांस्कृतिक विकास (उर्दू भाषा का संरक्षण) तथा अल्पसंख्यकों के बीच अल्पसंख्यक कल्याण विभाग आदि लागू करने पर बल दिया गया जिसके लिए आयोग द्वारा योजना बजट के अन्तर्गत 481.00 लाख रु० की राशि तय की गई। इसी दौरान आंध्र प्रदेश के मुस्लिमों को सरकारी नौकरियों में आरक्षण देने की बात भी की गई।

वर्ष 1997-99 में द्वितीय N.C.M. के अध्यक्ष तथा आयोग के अन्य सदस्यों द्वारा मुस्लिमों के लिए किए गए विभिन्न कार्य –

द्वितीय N.C.M. के अध्यक्ष प्रो० डॉ० ताहिर महमूद तथा आयोग के अन्य सदस्यों ने वर्ष 1997 तथा 1999 के दौरान मुस्लिम अल्पसंख्यकों के लिए लखनऊ में मुस्लिम गर्ल्स कॉलेज की स्थापना पर बल दिया तथा इसी दौरान Religious Harmony Group की स्थापना भी की गई जिसका प्रमुख उद्देश्य विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच शांति तथा तालमेल स्थापित करना था।

इसी काल में आयोग द्वारा श्री कृष्ण आयोग की रिपोर्ट जो कि 1992-93 के मुम्बई सम्प्रदायिक दंगों से सम्बंधित है उसके क्रियान्वयन की सिफारिश की और मुस्लिम अल्पसंख्यकों को U.P.S.C. तथा सरकारी क्षेत्रों में कम से कम 10% आरक्षण की बात की गई। इसके अलावा मुस्लिमों के आर्थिक व शैक्षिक उत्थान के लिए नई स्कीमें लागू करने पर बल दिया गया।

तीसरे N.C.M. द्वारा वर्ष 1999 से 2002 तक मुस्लिमों के उत्थान के लिए उठाए गए विभिन्न कदम –

वर्ष 1999 से 2002 के अन्तर्गत N.C.M. अध्यक्ष मौ० शमीम तथा अन्य सदस्यों ने मुस्लिमों के उत्थान के लिए मुस्लिम अल्पसंख्यकों के शैक्षिक संस्थान 'मौलाना आजाद उर्दू स्कूल' को सरकारी अनुदान देने की सिफारिश की।

कर्नाटक में भी आयोग ने सरकार से प्राथमिक स्तर पर मात्र-भाषा उर्दू में शिक्षा देने की सिफारिश की और कन्नड़ माध्यम के विद्यालयों में उर्दू अध्यापक तथा उर्दू माध्यम के विद्यालयों में कन्नड़ अध्यापक की नियुक्ति की सिफारिश भी की।

इसी दौरान मुस्लिमों के आर्थिक तथा शैक्षिक सुधार के लिए सरकारी नौकरियों तथा व्यावसायिक विश्वविद्यालयों में 4% आरक्षण की सिफारिश की।

चौथे N.C.M. द्वारा वर्ष 2003 से 2005 तक मुस्लिमों के उत्थान के लिए उठाए गए विभिन्न कदम –

वर्ष 2003 से 2005 के अन्तर्गत N.C.M. अध्यक्ष तरलोचन सिंह तथा अन्य सदस्यों ने मुस्लिमों के विकास के लिए शिक्षा कार्यक्रम तथा सरकारी स्कीम लागू करने की सिफारिश की।

इस कार्यकाल के दौरान आयोग द्वारा वर्ष 2003 में गुजरात में हुए "बेस्ट बेकरी कांड" के मामले में उचित कार्रवाई करने की सिफारिश की और 2 मुख्य गवाहों के द्वारा अपने बयान वापिस लेने के मामले में गुजरात सरकार से भविष्य में गवाहों को सुरक्षा प्रदान करने का आग्रह किया ताकि वे किसी भी दबाव में आकर अपना बयान न बदले।

इसी दौरान 'मुस्लिम अल्पसंख्यकों' के लिए 'आधुनिक स्त्री शिक्षा' पर बल दिया और साथ ही H.R.D. Ministry से विज्ञान शिक्षा से सम्बंधित नई स्कीम लागू करने की बात की।

पाँचवे N.C.M. द्वारा वर्ष 2005 से 2006 के अन्तर्गत मुस्लिम अल्पसंख्यकों के उत्थान के लिए उठाए गए प्रमुख कदम – वर्ष 2005 तथा 2006 के अन्तर्गत N.C.M. अध्यक्ष मौ0 हामिद अंसारी तथा अन्य सदस्यों ने मुस्लिमों के विकास के लिए मुस्लिम अल्पसंख्यकों की शिक्षा-सम्बंधी समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित किया तथा प्रधानमंत्री डॉ0 मनमोहन का ध्यान मुस्लिमों के शैक्षिक पिछड़ेपन की ओर केन्द्रित कराया जिसमें प्रधानमंत्री ने मुस्लिमों की माध्यमिक स्तर पर नई उच्च शिक्षा से सम्बंधित स्कीम लागू करने की बात की।

इसके अलावा इस आयोग के द्वारा मालेगाँव में हुए बम विस्फोट तथा 2002 में हुए गुजरात साम्प्रदायिक दंगों पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया जिसमें पीड़ित 5000 मुस्लिम अल्पसंख्यकों को आर्थिक सहायता देने की सिफारिश भी की गई।

निष्कर्ष :

अल्पसंख्यक आयोग की स्थापना सर्वप्रथम सन् 1977 ई. में देश के तीन राज्यों में हुई क्रमशः बिहार, गुजरात, उत्तर प्रदेश जिसका मुख्य उद्देश्य था कि अल्पसंख्यक समुदायों को शिक्षा से जोड़ा जाए आदि परन्तु 1977 से 1984 तक अल्पसंख्यक आयोग प्रशासकीय पचड़ों में फसा रहा एवं 1984 के बाद ही उसका प्रारम्भिक ढांचा मजबूत हो सका।

इसके बाद भी सरकार के ढीले रवैये के कारण अल्पसंख्यक आयोग अनेक समस्याओं का सामना करता रहा एवं कभी-कभी इसके अस्तित्व पर ही सिकंदर आ गया परन्तु इन सब समस्याओं को झेलते हुए राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग किसी दीपक की भांति टिमटिमाता रहा।

वर्ष 1992 में राष्ट्रीय-अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम को संवैधानिक दर्जा प्रदान करने के लिए अधिनियमित किया गया जो 17 मई 1993 को प्रवृत्त हुआ और इसके तहत अल्पसंख्यक आयोग ने शक्तियाँ समाहित हुई एवं इसके कार्यक्षेत्र का भी विकास हुआ। आयोग ने अल्पसंख्यकों के सुधार के लिए कई सराहनीय कार्य किए परन्तु राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग के समक्ष अभी कई चुनौतियाँ मुँह खोले खड़ी हैं जैसे –सच्चर आयोग की सिफारिश को लागू करवाना, अल्पसंख्यकों को भयमुक्त समाज प्रदान करना एवं अल्पसंख्यकों को आरक्षण प्रदान करना आदि। अपितु सफर लम्बा है चुनौतियाँ अनेक हैं परन्तु संघर्ष मनुष्य या मनुष्य से जुड़ी संस्थाओं की पहचान है एवं चुनौतियाँ मानव को और निखार के प्रस्तुत करती हैं।

संदर्भ सूची :

1. Mahood Tahir, Minorities Commission' Minor Role in Major Affairs, Publishers Media Pharos & Publishing (P) Ltd. Po Box 9701, D-84, Abul Fazal Enclave-I, Jamia Nagar, New Delhi-110025. (2001)
2. Majeed Akhtar, Nation and Minorities' (India's Plural Society and its Constituents, Publishers, Distributors 4697/5-21A, Ansari Road, Daryaganj, New Delhi-110002. (2002)
3. Mahmood Tahir, Minorities and State at the Indian Law an Anthology, Published by Genuine Publications Pvt. Ltd. Vateg Building, Nizamuddin West, New Delhi-110013. (1991)
4. A. Ansari Iqbal, Reading on Minorities Perspectives & Documents Vol-II, Published by Institute of

- Objective Studies 162, Joga Bai Extension, Jamia Nagar, New Delhi-110025, India. (2002)
5. A. Ansari Iqbal, Reading on Minorities Perspectives & Documents Vol-III, Published by Institute of Objective Studies 162, Joga Bai Extension, Jamia Nagar, New Delhi-110025, India. (2002)
 6. MASSEY I.P., Minorities Rights Discours in India, Published by : the Secretary for Indian Institute of Advanced study Rashtrapthi Niwas, Shimla-171005 (2002)
 7. MASSEY JAMES, Minorities and Religious Freedom in a Democracy, Published by- Ajay Kumar Jain for Manohar Publishers & Distributors 4753/23 Ansari Road, Daryganj, New Delhi-110002. (2003)
 8. The Muslim Minorities, Published by: World Assembly of Muslim youth. (WAMY) Volum-2, Riyadh, Soudi Arabia.
 9. AZIZ K.K., Muslim under Congress Rule, Published by: Renaissasce publishing House C-69, Jitar Nagar, Delhi-110051
 10. HUNTER W.W., The Indian Muslim, Published by:Rupa Co., 7/16, Ansari Road, Daryaganj, New Delhi-110002 (2002)
 11. AHMAD SYED NESAR, Origins of Muslim Consciousness in India, Published by-Green Press, 88 Post Road West, Westport, CT 06881 An imprint of Green Wood Publishing Group, Inc. www.greenwood.com
 12. QURESHI M. HASHMI, Muslims in India since Independence a Regional Perspective, Published by:Institute of objective Studies 162, Jogabai Extension, Jamia Nagar, New Delhi-110025.
 13. A. ANSARI IQBAL, The Muslim Situation In India, Published by: S.K. Ghai, Managing Director, Sterling Publishers (P) Ltd., L-10, Green Park Extension, New Delhi-110016.
 14. BAKSHI S.R., Documents of Muslim Politics, Published by:Criterion Publications, New Delhi and Printed at Print India, A-38/2, Phase -1, Mayapuri, New Delhi-110064. (1989)
 15. KHAN MUMTAZ ALI, Muslims in the Process of Rural Development in India, Published by B.S. Uppal, Uppal Publishing House, New Delhi-110002 and Printed at Shabdankan Printers, Delhi (1984)



ग्रामीण कृषि विकास में साख की भूमिका

डॉ० सुमन रोहिला

प्राध्यापक, अर्थशास्त्र

मा.जी.बा.शास.स्नात. कन्या महाविद्यालय, इन्दौर (म.प्र.)

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है, जिसका देश की जी.डी.पी. में योगदान 14.1 प्रतिशत वर्ष 2011-12 में है। कृषि हमारे देश में 65-70 प्रतिशत आबादी हेतु केवल जीविकोपार्जन का साधन मात्र या उद्योग-धंधा ही नहीं, अपितु अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है। देश के उद्योग-धंधे, विदेशी मुद्रा अर्जन, विभिन्न योजनाओं की सफलता, बाजार एवं राजनीतिक स्थायित्व भी कृषि पर निर्भर है। उल्लेखनीय है कि वर्ष 2011-12 में देश में कुल खाद्यान्न उत्पादन 259.32 मी. टन रिकार्ड प्राप्त हुआ, जिसे 21वीं सदी में सतत बढ़ाना होगा। ऐसी परिस्थिति में कृषि को सर्वाधिक प्राथमिकता दिए जाने की आवश्यकता है, भारतीय कृषि के पिछड़ेपन व कृषकों की निर्धनता के कारणों में एक प्रमुख कारण वित्त (साख) का अभाव है।

आज कृषि क्षेत्र में उपयुक्त वित्त व्यवस्था के अभाव के कारण ही कृषक ही कृषक उच्च ब्याज दरों पर पारंपरिक ऋण व्यवस्था या साहूकारों से ऋण प्राप्त करते हैं। ऐसे में फसल अच्छी ना होने की स्थिति में जब वे ऋण चुका पाने में असमर्थ हो जाते हैं तो कई तरह के दबाव में आकर आत्महत्या तक करने का विकल्प चुनते हैं। इससे दुःखी होकर ही कई किसान खेती करना छोड़कर अन्य वैकल्पिक रोजगार पाना चाहते हैं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण की एक रिपोर्ट में बताया गया है कि 40 प्रतिशत किसान खेती छोड़कर या बेचकर अन्य व्यवसाय अपनाना चाहते हैं। इस वजह से देश की कुल आय में कृषि क्षेत्र का योगदान घट रहा है। इससे समग्र रूप से ग्रामीण विकास में भी बाधा पहुँच रही है।

ग्रामीणों, खास कर किसानों के सामने उपयुक्त ऋण व्यवस्था की समस्या सबसे बड़ी चुनौती है। इस दिशा में कई सरकारी प्रयास किए गए हैं किन्तु एक तो जागरूकता के अभाव से और दूसरे सही क्रियान्वयन न होने से इन योजनाओं का लाभ नहीं मिल सका है।

कृषि वित्त से आशय :-

कृषि वित्त से आशय है कि निवेश में किए जाने वाले धन की उस राशि से हैं जो कृषि उत्पादकता में वृद्धि में सहायक होती है। उत्पादकता वृद्धि के लिए प्राप्त किया गया ऋण एवं उपयोग ऋण कृषकों की दक्षता में वृद्धि करने में सहायक होते हैं, किन्तु कृषकों पर ऋण का इतना अधिक भार रहा है कि वुल्फ समिति ने कहा है कि, “भारतीय किसान ऋण के रूप में जन्म लेता है, अपने जीवन भर ऋणी रहता है और ऋणी रह कर ही मर जाता है।” ?

कृषकों की वित्तीय आवश्यकताएँ :- बीज, खाद, औजारों, पशुओं, सिंचाई, भूमि सुधार, पुराना ऋण चुकाने, मुकदमा, सामाजिक कार्यों एवं जीवन निर्वाह के लिए ऋण लेना पड़ता है। उपर्युक्त आवश्यकताओं के आधार पर किसानों की ऋण की आवश्यकताओं को तीन भागों में बाँटा जा सकता है :-

1. अल्पकालीन ऋण :- की अवधि 15 माह होती है। एक फसल से दूसरी फसल तक बीज, खाद, मजदूरी, औजार, जोत आदि के व्ययों को भुगतान करने के लिए प्राप्त किए जाते हैं और कृषि फसल की बिक्री होते हैं, चुका दिए जाते हैं।

2. मध्यकालीन ऋण :- इनकी अवधि 2-5 वर्ष तक मानी जाती है, इसके अंतर्गत किसान, मवेशियों की खरीद, पम्प लगाने, भूमि सुधार, औजारों के खरीदने के लिए ऋण प्राप्त करना चाहते हैं, ऋण राशि किसान की

साधारण देय क्षमता से अधिक होती है।

3. दीर्घकालीन ऋण :- इन ऋणों की अवधि 5-20 वर्षों तक की हो सकती है। इन लम्बी अवधि ऋणों की आवश्यकता, गोदाम बनवाने, गोशाला निर्माण, कुंआ, ट्यूब वेल खुदवाने, नई भूमि खरीदने, ट्रैक्टर व अन्य कृषि मशीनें खरीदने हेतु पुराने ऋणों के भुगतान आदि करने के लिए होती है।

कृषक अपनी आवश्यकता की पूर्ति हेतु मुख्यतः दो स्रोतों से ऋण प्राप्त कर सकता है— प्रथम गैर-संस्थानात्मक स्रोत, द्वितीय संस्थानात्मक स्रोत। गैर संस्थानात्मक स्रोत में साहूकार व देशी बैंकर शामिल हैं व संस्थानात्मक स्रोत में व्यापारिक बैंक सहकारी बैंक, भारतीय स्टेट बैंक व सहयोगी बैंक व ग्रामीण क्षेत्रीय बैंक शामिल हैं। भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक एवं अन्य व्यापारिक बैंकों की कुल शाखाओं में ग्रामीण शाखाएँ कुल का 36.9 प्रतिशत हैं।

सारणी — 01

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक व अन्य व्यापारिक बैंकों की शाखाओं की वर्तमान स्थिति

क्र.	बैंक ग्रुप	30 जून 2012	ग्रामीण शाखाएँ जून 2012	ग्रामीण शाखाओं का प्रतिशत
1.	भारतीय स्टेट बैंक एवं सहयोगी बैंक	18,992	6,622	34.9
2.	राष्ट्रीयकृत बैंक आईडीबीआई सहित	48,982	15,704	32.1
	A- राष्ट्रीयकृत बैंक	48,009	15,610	32.5
	B- अन्य सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक	973	94	9.7
3.	क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक	16,572	12,387	74.7
4.	अन्य अनुसूचित वाणिज्य बैंक	13,667	1,614	11.8
	A- पुराने निजी क्षेत्र बैंक	5,462	890	16.3
	B- नये निजी क्षेत्र बैंक	8,205	724	8.8
5.	विदेश बैंक	529	07	2.2
6.	स्थानीय क्षेत्रीय बैंक	—55	16	29.1
	कुल योग	98,536	36,334	36.9

सारणी में स्पष्ट है, जो कि पर्याप्त मात्रा संस्था में नहीं है।

केन्द्र सरकार द्वारा तय की गई नीति के तहत निजी व सार्वजनिक दोनों ही क्षेत्रों की बैंकों को अपने कुल ऋण का 18 प्रतिशत भाग कृषि क्षेत्र को और कुल ऋणों का 40 प्रतिशत प्राथमिकता क्षेत्र को उपलब्ध कराने का प्रावधान ऋण नीति में शामिल है। सरकार द्वारा 2006-07 से कृषकों को साथ ही दर अल्पकालीन ऋण प्रदान करने की योजना प्रारंभ की गई है। 3 लाख रु. तक के अल्पकालीन ऋण ब्याज दर 7 प्रतिशत से घटा कर वर्ष 2012-13 में 4 प्रतिशत कर दी गई।

कृषि की उत्पादकता बढ़ाने के लिए कृषकों को समय पर व उचित ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराने हेतु

साख वितरण का लाभ 15.6 प्रतिशत रखा गया है। सारणी 02 से स्पष्ट है :-

सारणी – 02

क्र.	संस्थाएँ	2008-09	2009-10	2010-11	2011-12	2012-13
1.	सहकारी संस्थाओं का अंश	46,192 15.30%	63,497 16.51%	78,121 16.68%	87,963 17.21%	64,664 26.99%
2.	क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक का अंश	26,765 8.87%	35,218 9.16%	44,293 9.46%	54,450 10-65%	32,127 13.40%
3.	वाणिज्य बैंक का अंश	2,28,951 75.83%	2,85,799 74.33%	3,45,877 73.86%	3,68,616 72.13%	1,42,838 59.61%
कुल योग		3,01,903	3,84,514	4,68,299	5,11,029	2,39,629

कृषि क्षेत्र को दिए गए संस्थावार ऋण (वर्ष 2008-09 से 2012-13)

सारणी – से स्पष्ट है कि कृषि क्षेत्र को दिए संस्थावार ऋणों में सहकारी संख्याओं का प्रतिशत वर्ष 2008-09 में 15.30 प्रतिशत था, वह बढ़कर वर्ष 2012-13 में 26.99 प्रतिशत हो गया। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक द्वारा कृषि क्षेत्र को 2008-09 में 8.87 प्रतिशत ऋण दिया गया था, उसमें थोड़ी ही बढ़त होकर वर्ष 2012-13 में 13.40 प्रतिशत हो गया। तथा वाणिज्य बैंकों द्वारा वर्ष 2008-09 में 75.83 प्रतिशत ऋण दिया गया था, वह घटकर वर्ष 2012-13 में 59.61 प्रतिशत हो गया है। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों द्वारा कृषि क्षेत्र को मार्च 2012 में प्रदत्त की ऋण राशि कुल ऋणों का 15.7 प्रतिशत है। ब्याज सहायता योजनान्तर्गत वर्ष 2012-13 से कृषकों 04 प्रतिशत ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध होगा। इस योजना के तहत वर्ष 2012-13 में 6,000 करोड़ रु. ऋण राशि का प्रावधान रखा गया था, जिसमें से 4,378 करोड़ रु. दिसम्बर 2012 तक दिए जा चुके हैं।

किसान क्रेडिट कार्ड योजना – यह योजना सभी जिला केन्द्रीय सहकारी बैंक, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों व सार्वजनिक क्षेत्र के वाणिज्य बैंकों द्वारा क्रियान्वित की जा रही है। नाबार्ड द्वारा मार्च 2012 की रिपोर्ट अनुसार 11.39 करोड़ किसान क्रेडिट कार्ड किसानों को उपलब्ध कराए जा चुके हैं। इस हेतु 5,72,617 करोड़ रुपये की राशि स्वीकृत की जा चुकी है। सभी योग्य कृषकों को किसान क्रेडिट कार्ड व गैर कृषकों को सामान्य क्रेडिट कार्ड इश्यू किए जाने का प्रावधान है, इसके साथ ए.टी.एम./डेबिट कार्ड जुलाई 2012 से जारी किए जा चुके हैं।

फलस्वरूप फसली ऋणों एवं उत्पादक ऋणों के मामले में स्थानीय सूदखोरों पर निर्भरता काफी बड़ी सीमा तक कम हुई है। वरन् फिर भी बैंकों की जटिल प्रक्रिया और ऋणों को केवल उत्पादक कार्यों तक सीमित रखने की नीति से ऋण प्राप्त करने वालों का हित साधना एक सीमा तक ही हुआ है। संस्थाएँ साख की मांग को पूरा करने में असफल रही हैं। इसके परिणाम स्वरूप स्थानीय सूदखोरों का कारोबार यथावत् जारी है। साधनहीन ग्रामीणों को स्थानीय साहूकारों से मुक्ति दिलाने के उद्देश्य से कुछ व्यक्तियों ने जहाँ सहकारी समितियों की स्थापना की तो कुछ ने सूक्ष्म साख संस्थाओं की। सरकार द्वारा निर्धन ग्रामीणों को वहन करने योग्य साख मुहैया करा पाने में सूक्ष्म साख के विचार को प्रोत्साहित किया।

नोबल पुरस्कार से सम्मानित डॉ. मुहम्मद युनुस द्वारा बांग्लादेश में ग्रामीण बैंक मॉडल (सूक्ष्म साख) की अपार सफलता से प्रेरणा लेकर यहाँ भी सूक्ष्म साख संस्थाओं की स्थापना के लिए वैधानिक प्रावधान किया गया। भारत

में सूक्ष्म ऋण की शुरुआत नब्बे के दशक के मध्य से हुई है। इस काल में भारतीय रिजर्व बैंक ने सूक्ष्म वित्त से जुड़े सूक्ष्म वित्त संस्थान, स्वसहायता समूह और स्वरोजगार महिला संघ आदि को विभिन्न बैंकों के माध्यम से वैधानिक ऋण दिलाना शुरू किया। केन्द्र सरकार ने इस अवधारणा को और भी सशक्त, पारदर्शी और कुशल प्रबंधन के लिए 20 मार्च 2007 को लोकसभा में सूक्ष्म वित्त क्षेत्र (विकास और नियमन) विधेयक पारित किया। सूक्ष्म वित्त के क्षेत्र में नाबार्ड को शीर्ष संस्थान बनाया गया है। सूक्ष्म वित्त की श्रेणी में 50,000/- रु. की ऋण राशि और अन्य रोजगार क्षेत्र में 1.50 लाख रु. ऋण राशि तक हैं। ऐसे में गरीबी उन्मूलन योजनाओं और सामाजिक कल्याण नीतियों की तुलना में सूक्ष्म वित्त बेहतर भूमिका निभा सकता है यदि इसका क्रियान्वयन बेहतर और पारदर्शी तरीके से हो।

प्रारंभ में सूक्ष्म साख के क्षेत्र में गैर सरकारी संगठन आगे आए और उन्होंने कुछ क्षेत्रों में सफलतापूर्वक कार्य भी किया। फलस्वरूप भारत में एक दशक के भीतर ही सूक्ष्म साख संस्थाओं की बाढ़-सी आ गई है। भारत में 3000 से अधिक सूक्ष्म साख संस्थाएँ गैर सरकारी संगठन सह सूक्ष्म साख संस्थाएँ कार्यरत हैं, जिनमें से लगभग 400 संस्थाएँ सक्रिय रूप से साख प्रदान कर रही हैं। एक सोची-समझी राजनीति के तहत इन संस्थानों ने कुशल विपणन द्वारा अपनी पहचान बनाई और वे मीडिया तथा संगोष्ठी, बैठकों द्वारा यह सिद्ध करने में सफल रहे हैं कि उनका उद्देश्य निर्धन कृषकों एवं ग्रामीणों को उनकी सभी प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए त्वरित साख सुविधा मुहैया कराना है। यथार्थ तो यह है कि वे परिवर्तित परिवेश में बड़े स्तर के सूदखोर ही हैं जो ग्रामीण क्षेत्रों में फैले अपने सुसंगठित नेटवर्क द्वारा पहले तो कृषकों एवं ग्रामीणों को अपने जाल में फंसाते हैं फिर ऊँची ब्याज दर पर दिए गए ऋण को वसूलने के समस्त हथकंडे अपनाते हैं। अनेक अध्ययनों से यह प्रमाणित हो चुका है कि सूक्ष्म साख संस्थाओं द्वारा ली जाने वाली ब्याज दरें 30 प्रतिशत से लेकर 54 प्रतिशत तक हैं।

सारिणी-3

भारत में सूक्ष्म संस्थाओं द्वारा आबंटित ऋण की स्थिति

वर्ष	ऋणी संस्था (मिलियन में)	बकाया ऋण (अरब रु)
2005-2006	3.00	16.00
2006-2007	5.00	32.00
2007-2008	9.00	60.00
2008-2009	16.00	114.00
2009-2010	27.00	160.00
2010-2011	34.00	175.00

सूक्ष्म साख संस्थाओं का कुल बकाया ऋणों में हिस्सा 74 प्रतिशत से अधिक था। 17 सूक्ष्म साख संस्थाओं की बकारा राशि 1.30 अरब रुपये से अधिक हैं। इन सूक्ष्म साख संस्थाओं का वास्तविक उद्देश्य अन्ततः लाभ को अधिकतम करना है। आज भी अधिकांश ग्रामीण कृषक पारंपारिक ऋण स्रोतों से महंगे ऋण लेने पर बाध्य है। इसका कारण एक तो लंबी कागजी प्रक्रिया है तो दूसरी ओर ग्रामीण कृषकों का एक बड़ा वर्ग इन योजनाओं के क्रियान्वयन से अनभिज्ञ हैं। इसलिए अपनी जागरूकता और ज्ञान के अभाव में वे उपयुक्त नीतियों और योजनाओं से लाभ नहीं ले पाते हैं। इसके लिए हमें जागरूकता व शिक्षण-प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर जोर देना होगा।

कृषि के तमाम जोखिमों को ध्यान में रखते हुए इसकी वित्तीय व आर्थिक जरूरतों यथा संसाधनों की खरीद, विपणन आदि सकारात्मक हल वित्तीय एवं तकनीकी उपकरण सहयोग करने की योजना को व्यावहारिक रूप देना होगा। कृषि उत्पादों के प्रसंस्करण करने के लिए छोटी-छोटी मशीन ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध करवाना चाहिए ताकि वे मसाले, चिप्स, सॉस, अचार, स्क्वैश, पापड़, बिस्कुट, बेकरी, नमकीन, दालें, दलिया, आटा, पोहा, चावल, परमल आदि तैयार कर सकें तथा मध्यस्थ दलाली एवं मार्जिन लाभ व्यापारियों का स्वतः ही समाप्त हो सकेगा और कृषक को अपनी उपज का एवं उससे बने उत्पाद का सही मूल्य प्राप्त होगा और उसकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होगी और भविष्य में अनुदान या ऋण पर आश्रित नहीं रहेगा।

कृषि क्षेत्र की उत्पादित फसलों के उचित मूल्य वाले बाजार की उपलब्धता सिर्फ 40 प्रतिशत है। वर्ष 2008 में फेडरल बैंक ऑफ कंसास की एक रिपोर्ट आई है, जिसमें बताया गया है कि "भारत के खेतों से अनाज को उपभोक्ता तक पहुँचाते-पहुँचाते मूल्य वृद्धि 60 से 80 प्रतिशत तक पहुँच गई है। इसके बावजूद इसका लाभ आम कृषकों को नहीं मिल पाता है।

वर्तमान में कृषि तथा संबंधी गतिविधियों को साख प्रदान करने वाली वित्तीय संस्थाओं का जाल-सा बिछ चुका है। किन्तु इन संस्थाओं का व्यावहारिक महत्व सिद्ध होना शेष है। अनेक गतिविधियों में वित्त के महत्व के समान ही कृषि में भी वित्त का महत्व सर्वोपरि है। अनेक बार यह अनुभव किया गया है कि कृषकों को समय पर पर्याप्त साख न मिल पाने के कारण फसल को उगाने, काटने तथा मण्डियों तक पहुँचाने में साख उपलब्ध न होने के कारण कृषक पारिवारिक एवं सामाजिक गतिविधियों का निर्वाह समय पर नहीं कर पता है और कृषि कार्य तो गड़बड़ाता है ही।

मर्चेन्ट तथा वाडिया रिपोर्ट – में लिखा है "ऋण ग्रस्तता आज भारतीय देहात की अनन्य समस्या है तथा स्थिति यह है कि 80 प्रतिशत किसान अपनी मौजूदा जोत के बल पर अपना कर्ज कभी नहीं चुका सकेंगे।

कृषि क्षेत्र से जुड़ी समस्याओं के निराकरण हेतु समूचे कृषि तंत्र का सशक्तिकरण करना आवश्यक है। जिसके तहत कृषि का आधारभूत संरचनात्मक विकास का एकीकरण (समन्वय) किया जाना चाहिए। सर्वप्रथम सिंचाई हेतु नदियों को जोड़ कर बोर एवं नहर निकाल कर बनवाना, बिजली हेतु छोटे थर्मल पॉवर स्टेशन स्थापना, शीत भण्डार गृह, असली खाद-बीज की उपलब्धता एवं सब्सिडी सीधे किसानों को दी जाए, कंपनियों को नहीं, एवं विक्रय हेतु-परिवहन, सड़क एवं मंडी सुविधा को विकसित किया जाए तथा कृषि उत्पाद पर आधारित खाद प्रसंस्करण छोटे-छोटे उद्योग स्थापित किये जाएँ तभी कृषक सुदृढ़ हो सकेगा और उसकी ऋण पर निर्भरता समाप्त हो सकेगी, तथा कृषि लागतें घटेगी और कृषि लाभ का व्यवसाय बनेगा और भारतीय किसान ऋण मुक्त होगा।

सन्दर्भ स्रोत सूची –

1. कृषि अर्थशास्त्र- डॉ. एस.बी. गुप्ता, एस.बी. पी.डी. पब्लिशिंग हाऊस, आगरा।
2. Economic Structure of Indian Agriculture – A.N. Sharma, Himalaya Publishing House, Bombay.
3. National Council of Applied Economic and Research, New Delhi. Bhoolthalingam, Director General.
4. Rural Poverty and Agriculture Reform, Steve Jones, P.C. Joshi, Miguel, Allied Publishers Private Ltd., Delhi.
5. Income Distribution and the Structure of Production, A Ghosh and A.K. Sengupta - South Asian Publisher Pvt. Ltd., New Delhi.
6. कृषि अर्थशास्त्र- डॉ. आर.सी. सक्सेना, पी.एल. मिश्र, शिक्षा साहित्य प्रकाशन, मेरठ।
7. कृषि अर्थशास्त्र- डॉ. बी.एल. माथुर-प्रकाशक-अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, दरियागंज, दिल्ली।



भारत में पर्यटन उद्योग

डॉ० विजय सिंह राठौर
सहायक प्राध्यापक भूगोल
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
मुरैना (म.प्र.)

डॉ० बी.एस.राठौर
विभागाध्यक्ष भूगोल
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
मुरैना (म.प्र.)

पृथ्वी पर प्रकृति के समस्त जीवों में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ जीव के रूप में है जिज्ञासु प्रवृत्ति होने के कारण मनुष्य सदैव से ही एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमनागमन करता रहा है, भारतीय ऋषि मुनि सदैव से ही प्राकृतिक स्थलों को अपनी साधना के केन्द्र के रूप में चुनते रहे हैं। वर्तमान वैश्वीकरण के युग में यह गमनागमन वैश्विक स्तर पर तीव्र गति से बढ़ा है तथा इस गमनागमन को वर्तमान में पर्यटन के रूप में सम्बोधित किया जाता है।

पर्यटन अंग्रेजी भाषा के Tourism का पर्याय है Tour शब्द का आशय भ्रमण है इस प्रकार Tourism वह प्रक्रिया है जिसमें एक स्थान के लोग दूसरे स्थानों पर मनोरंजन की दृष्टि से, स्वास्थ्य की दृष्टि से, शैक्षणिक दृष्टि से, अनुसंधान की दृष्टि से सुन्दर भौगोलिक पर्यावरण को देखकर आनंद लेने की दृष्टि से, सांस्कृतिक परम्पराओं को जानने की दृष्टि से अथवा सांस्कृतिक धरोहरों के अवलोकन एवं अनुसंधान की दृष्टि से गमन करते हैं।

आज पर्यटन की प्रवृत्ति में निरंतर परिवर्तन दृष्टि गोचर हो रहा है, तथा ईको टूरिज्म को प्राप्त करने हेतु, बढ़ावा देने हेतु सरकार एवं पर्यटन मंत्रालय तथा भारतीय पर्यटन विकास निगम प्रयासरत है।

जैसे-जैसे मानव का सामाजिक, आर्थिक विकास हुआ है वैसे-वैसे मनुष्य की व्यस्ततायें बढ़ी हैं, और इन व्यस्त क्षणों में से थकान को दूर करने हेतु वैश्विक स्तर पर लोगों ने स्वदेशी एवं विदेशी पर्यटन को अपनाया है विद्यार्थियों एवं शोधार्थियों ने अपने अध्ययन एवं अनुसंधान में पर्यटन को समाहित किया है। वर्तमान में पर्यटन एक ऐसी विधा/प्रक्रिया बन गई है, जिसमें गरीब-अमीर, ग्रामीण-नगरीय सभी प्रकार के लोगों के आर्थिक विकास में वृद्धि की आशा की जाती है। वर्तमान में पर्यटन को उद्योग का दर्जा दिया जाने लगा है, क्योंकि इस उद्योग में टैक्सी चालक, कार चालक, टूरिज्म बसों के मालिक, कला पारकियों की कलाएँ, बड़े-बड़े होटल, सड़क नेटवर्क, रेल्वे, मीडिया एवं फोटोग्राफर, मेले एवं प्रदर्शनी का संयुक्त समावेश हो चुका है। भारत में पर्यटन के विकास हेतु पर्यटन मंत्रालय के अधीन भारतीय पर्यटन विकास निगम, पर्यटन को उद्योग के रूप में निरंतर गतिशील बनाये रखने के लिये कार्यरत है इसके तहत अधोसंरचनात्मक विकास, पर्यावरणीय विकास, ऐतिहासिक धरोहरों के रखरखाव पब्लिसिटी एवं मार्केटिंग सेक्टर, टूरिज्म सर्विस सेवा, ड्यूटी फ्री मार्केटिंग, तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक संस्थाओं से जुड़ाव आदि प्रक्रियाओं को सम्मिलित किया है।

पर्यटन मंत्रालय ने भारतीय पर्यटन विकास निगम के तहत देश में 36 मेगा टूरिज्म सर्किट विकसित किये हैं जिनमें मध्यप्रदेश के चित्रकूट एवं बुन्देलखण्ड को सम्मिलित किया है, ग्रामीण पर्यटन के बढ़ाने हेतु

भी प्रयास किये गये हैं ताकि पर्यटन की क्षेत्रीय विषमता समाप्त हो सके।

पर्यटन उद्योग से मानव संसाधन को विकसित करने हेतु पर्यटन मंत्रालय के अधीन भारत की आई. आई.टी.टी.एम. संस्थाएँ छात्र/छात्राओं के कौशल विकास का कार्य कर रही हैं तथा छात्र-छात्राओं को रोजगार के अवसर प्राप्त हो रहे हैं देश में 33 इंस्टीट्यूट ऑफ़ होटल मैनेजमेंट तथा 07 फूड क्राफ्ट इंस्टीट्यूट तथा 18 अन्य पर्यटन से सम्बंधित प्राइवेट इंस्टीट्यूट छात्र-छात्राओं को कौशल विकास की दृष्टि से मानव संसाधन विकास में संलग्न है।

सामान्यतः पर्यटन स्थलों को उनकी प्रकृति के आधार पर कई वर्गों में विभक्त किया जाता है जो निम्नलिखित हैं।

1. प्राकृतिक पर्यटन स्थल :- ऊँची पर्वत चोटियाँ, गहरी घाटियाँ, वन संसाधन व वाइल्ड लाइफ से जुड़े क्षेत्र।

2. ऐतिहासिक पर्यटन स्थल :- महत्वपूर्ण किले, गढ़ी व ऐतिहासिक घटनाओं के क्षेत्र।

3. स्वास्थ्य केन्द्र के पर्यटन स्थल :- जलवायु की दृष्टि से स्वास्थ्यप्रद स्थल (यथा शिमला, मसूरी) पतंजलि, ध्यान योग केन्द्र एवं आयुर्वेद से जुड़े स्थल।

विश्व में विकसित एवं विकासशील देशों में पर्यटन उद्योग के रूप में विकसित हो रहा है इस उद्योग से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में अनेक लोगों को रोजगार के अवसर प्राप्त होते हैं तथा देशी विदेशी पर्यटकों से बहुत बड़े राजस्व की प्राप्ति होती है फलतः विकसित देशों में पर्यटन उद्योग का तीव्र गति से विकास हुआ है।

भारत में भी पर्यटन को बढ़ावा देने हेतु पर्यटन मंत्रालय का गठन किया गया है यह मंत्रालय पर्यटन से जुड़े समस्त पहलुओं/कार्यों का सम्पादन करता है पर्यटन मंत्रालय के अधीन भारतीय पर्यटन विकास निगम (Indian Tourism Development Corporation (I.T.D.C.) का गठन 01 अक्टूबर 1966 में किया गया है। I.T.D.C. की महत्वपूर्ण भूमिका भारत में पर्यटन अधोसंस्थाओं का विकास करना रहता है तथा I.T.D.C. ने भारत में वृहदतम् होटल्स की एक श्रृंखला विकसित की है, I.T.D.C. पर्यटन से जुड़े अन्य अनेक कार्यों जैसे-परिवहन, कर रहित खरीददारी, मनोरंजन, पर्यटन सम्बंधी प्रचार साहित्य व कन्सलटेन्सी का कार्य रहता है, यह पिछड़े क्षेत्रों में भी पर्यटन विकास को बढ़ावा देकर क्षेत्रीय संतुलन बनाने में प्रयासरत है। वर्तमान में 18 होटलों का समूह I.T.D.C. से संयुक्त है। अशोका ग्रुप ऑफ़ होटल्स एण्ड कोर्पोरेट मार्केटिंग, इवेन्ट मैनेजमेंट, अशोका इन्टरनेशनल ट्रेड, अशोका ट्रेवल्स एवं टूर्स, अशोका क्रियेटिव, अशोका इंस्टीट्यूट ऑफ़ हॉस्पिटैलिटी एण्ड ट्यूरिज्म मैनेजमेंट एण्ड इंजीनियरिंग सर्विसेस डिवीजन आदि इसके महत्वपूर्ण अंग हैं। भारत में पर्यटन के दो स्वरूप देखे जाते हैं।

1. देशी पर्यटन या घरेलू पर्यटन या स्वदेशी पर्यटन (Domesic Tourism)

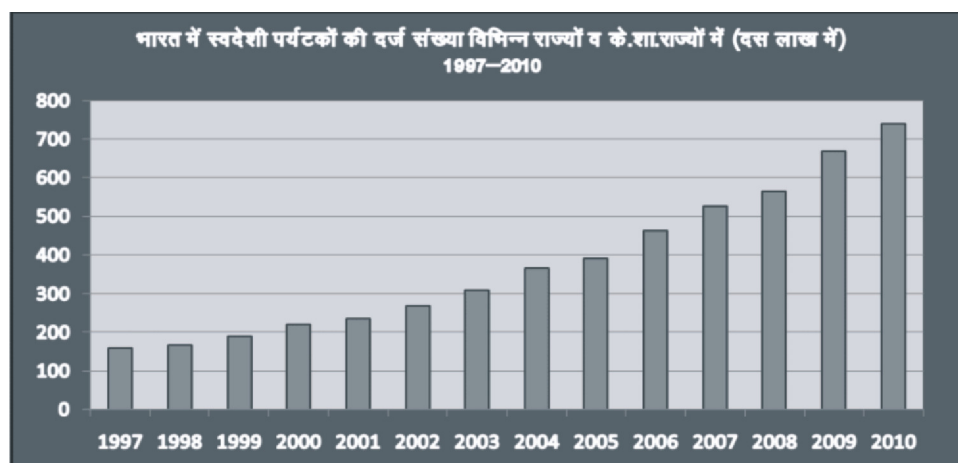
2. विदेशी पर्यटन (Foreigen Tourism)

1. स्वदेशी पर्यटन :- स्वदेशी पर्यटन से तात्पर्य ऐसे पर्यटन से है जिसमें पर्यटक अपने ही देश के पर्यटन स्थलों पर गमनागमन करते हैं। भारत में लोगों द्वारा तीर्थाटन, भारत भ्रमण इसी कोटि का पर्यटन है, भारत में इस प्रकार का पर्यटन सदैव से होता रहा है। वर्तमान में पर्यटन, को उद्योग का दर्जा दिये जाने के कारण इनकी संख्या को प्रति वर्ष दर्ज किया जाता है। 1977 से 2010 तक भारत में स्वदेशी पर्यटकों की संख्या व वार्षिक प्रगति निम्नानुसार दर्ज की गई है।

तालिका क्र. 01 :- भारत में स्वदेशी पर्यटकों की दर्ज संख्या विभिन्न राज्यों/संघ शासित सहित

वर्ष	स्वदेशी पर्यटक संख्या मिलियन में राज्यों व के.शा. राज्यों में (दस लाख में)	पूर्व वर्ष के सापेक्ष में परिवर्तन
1997	159.88	14.1
1998	168.20	05.2
1999	190.67	13.4
2000	220.11	15.4
2001	236.47	07.4
2002	269.60	14.0
2003	309.04	14.6
2004	366.27	18.5
2005	391.95	07.0
2006	462.31	18.0
2007	526.43	13.9
2008	563.03	07.0
2009	668.80	18.8
2010	740.21	10.7

Source :- State/UT Tourism Departments 2010.



स्वदेशी पर्यटकों का स्वदेश में भ्रमण के तथ्य स्पष्ट करते हैं कि भारत के 10 प्रमुख राज्यों में वरीयता क्रम

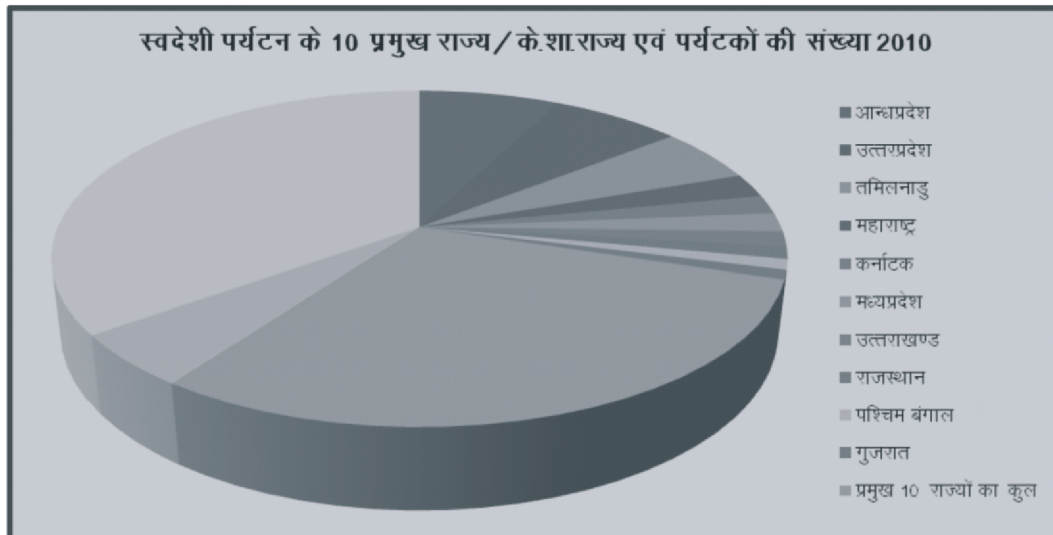
में आंध्रप्रदेश प्रथम, उत्तर प्रदेश द्वितीय, तमिलनाडु तृतीय स्थान वाले राज्य हैं। इन राज्यों में स्वदेशी पर्यटकों ने सर्वाधिक भ्रमण किया है। इस दृष्टि से म.प्र. राज्य का छठवाँ स्थान है जैसा कि तालिका से स्पष्ट है।

तालिका क्र 02.: स्वदेशी पर्यटन के 10 प्रमुख राज्य/के.शा.राज्य एवं पर्यटकों की संख्या 2010

Source :- State/ut Tourism Departments 2010

रैंक	राज्य/केन्द्र शासित	2010 में घरेलू पर्यटकों का दौरा	
1.	आन्ध्रप्रदेश	155789584	21.0
2.	उत्तरप्रदेश	144754977	19.6
3.	तमिलनाडु	111637104	15.1
4.	महाराष्ट्र	48465492	6.5
5.	कर्नाटक	38202077	5.2
6.	मध्यप्रदेश	38079595	5.1
7.	उत्तराखण्ड	30206030	4.1
8.	राजस्थान	25543877	3.5
9.	पश्चिम बंगाल	21072324	2.8
10.	गुजरात	18861296	2.5
	प्रमुख 10 राज्यों का कुल	632612356	85.5
	अन्य	107601941	14.5
	कुल	740214297	100.0

2. विदेशी पर्यटन :- विदेशी पर्यटन से तात्पर्य पर्यटकों को अपने देश से बाहर दूसरे देश में पर्यटन हेतु

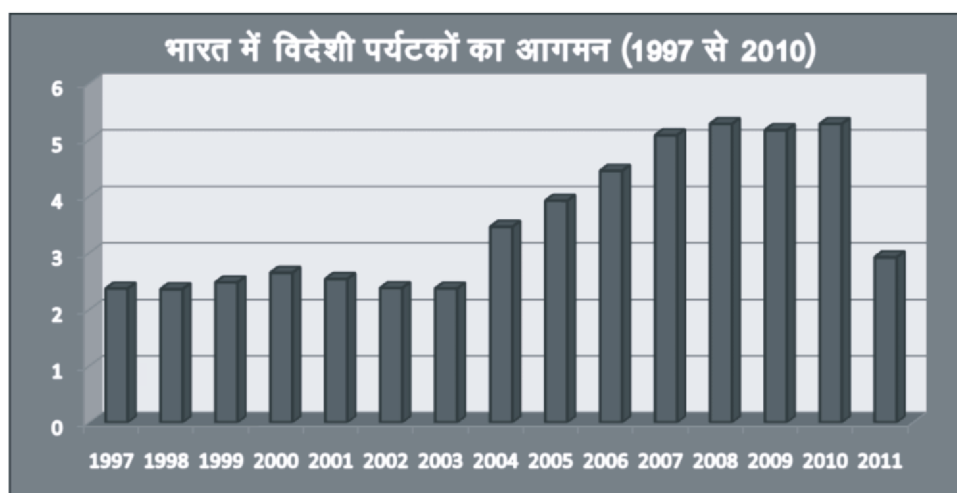


जाने-आने से है। इस पर्यटन से देशों को विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है भारत में विदेशी पर्यटकों की संख्या में प्रति वर्ष वृद्धि देखी जा रही है जो निम्नानुसार है।

तालिका क्र. 03 :- विदेशी पर्यटकों का भारत में आगमन (1997 से 2010)

वर्ष	भारत में आये विदेशी पर्यटक की संख्या मिलियन	पूर्व वर्ष के सापेक्ष में परिवर्तन
1997	2.37	3.8
1998	2.36	-0.7
1999	2.48	5.2
2000	2.65	6.7
2001	2.54	-4.2
2002	2.38	-6.0
2003	2.73	14.3
2004	3.46	26.8
2005	3.92	13.3
2006	4.45	13.5
2007	5.08	14.3
2008	5.28	4.0
2009	5.17	-2.2
2010	5.58	8.1
2011	2.92	10.9

Source :- State/ut Tourism Departments 2010



भारत में विदेशी पर्यटकों के आगमन से उनके द्वारा भारत को एक वृहद विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है, जो पंजीयन के रूप में देश की राष्ट्रीय आय का रूप होती है। सामान्यतः भारत में पर्यटन से प्राप्त विदेशी मुद्रा की विनियम आय (Forigen Exchange Earnings (FEE)) 1907 से 2011 तक बढ़ते हुये स्वरूप में निम्नानुसार दर्ज की गई है।

तालिका क्र.04 : विदेशी पर्यटन से भारत में FEE के रूप में आय यू.एस. मिलियन डालर में

वर्ष	भारत में पर्यटक शुल्क FEE	पूर्व वर्ष के सापेक्ष में परिवर्तन
1997	2889	2.0
1998	2948	2.0
1999	3009	2.1
2000	3460	15.0
2001	3198	-7.6
2002	3103	-3.0
2003	4463	43.8
2004	6170	38.2
2005	7493	21.4
2006	8634	15.2
2007	10729	24.2
2008	11832	10.3
2009	11394	-3.7
2010	14193	24.6
2011 (Jan – June)	7811	14.2

Source :- Reserve Bank of India 1997-1998 Ministry of Tourism Govt of India For 2009, 2010 -2011



भारत में विदेशी पर्यटकों के आगमन की वर्ष भर एक जैसी दशा नहीं रहती। इस संख्या को यहाँ की ऋतुवत दशाएँ प्रभावित करती हैं। सामान्यतः शीत ऋतु में अक्टूबर, नवम्बर दिसम्बर, जनवरी, फरवरी, मार्च के माह मौसम की दृष्टि से भारत में पर्यटन हेतु अच्छे रहते हैं। फलतः विदेशी पर्यटकों का आगमन अधिक रहता है। ग्रीष्म के आगमन के साथ विदेशी पर्यटकों की संख्या निरंतर घटती जाती है। जैसा कि तालिका से स्पष्ट है।

तालिका क्र. 05 :- भारत में विदेशी पर्यटकों का माह वार आगमन 2009-2010

माह	विदेशी पर्यटकों का आगमन	
	2009	2010
जनवरी	4598	5593
फरवरी	4547	6646
मार्च	4437	5507
अप्रैल	4061	4518
मई	3249	4358
जून	3801	4751
जुलाई	4983	5444
अगस्त	4115	4620
सितम्बर	3798	4678
अक्टूबर	4806	5219
नवम्बर	5523	6516
दिसम्बर	7042	7039
कुल	54960	64889
उप कुल (Jan - June)	24693	31373

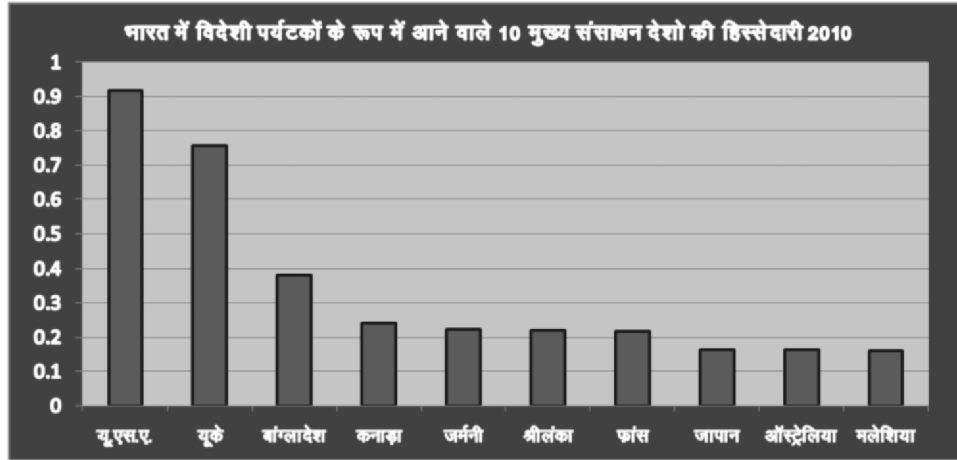
Source :- Ministry of Tourism Govt of India 2009-2010

भारत में आने वाले विदेशी पर्यटकों की वरीयता क्रम में सर्वाधिक पर्यटक यू.एस.ए. यूके. बांग्लादेश, कनाडा, जर्मनी, श्रीलंका, फ्रांस, जापान, आस्ट्रेलिया, व मलेशिया के देखे गये, इन 10 देशों से विदेशी पर्यटकों की संख्या व उनकी हिस्सेदारी का विवरण निम्नानुसार रहा है।

तालिका क्र. 06 : भारत में विदेशी पर्यटकों के रूप में आने वाले 10 मुख्य संसाधन देशों की हिस्सेदारी 2010

क्रमांक	देश का नाम	विदेशी पर्यटकों की संख्या मिलियन में	विदेशी पर्यटकों हिस्सेदारी प्रतिशत में
01.	यू.एस.ए.	0.916	16.40
02.	यूके	0.755	13.52
03.	बांग्लादेश	0.381	6.82
04.	कनाडा	0.240	4.30
05.	जर्मनी	0.224	4.01
06.	श्रीलंका	0.219	3.92
07.	फ्रांस	0.218	3.90
08.	जापान	0.165	2.95
09.	ऑस्ट्रेलिया	0.164	2.94
10.	मलेशिया	0.160	2.87
	10 प्रमुख देशों के कुल पर्यटकों का योग	3.442	61.64
	अन्य	2.142	38.36
	सभी देशों का कुल	5.584	100.00

Source :- Bureau of Information Govt of India.

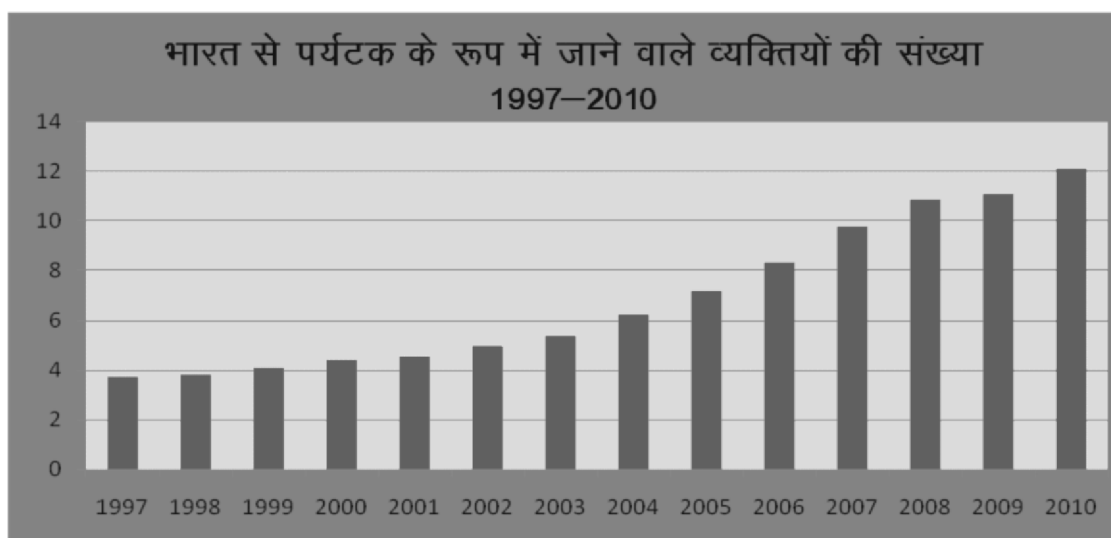


पर्यटन एक पक्षीय प्रक्रिया नहीं है पर्यटन हेतु हमारे देश से विश्व के अन्य देशों की ओर पर्यटकों का जाना भी रहता है, भारत से विभिन्न देशों को जाने वाली पर्यटकों की संख्या निम्नानुसार रही है यह संख्या भी भारतीय लोगों में पर्यटन के प्रति बढ़ती अभिरुचि का स्पष्ट परिचायक है।

तालिका क्र. 07 :-भारत से पर्यटक के रूप में जाने वाले व्यक्तियों की संख्या 1997-2010

वर्ष	जाने वाले पर्यटकों की संख्या(दस हजार में)	पूर्व वर्ष के सापेक्ष में परिवर्तन
1997	3.73	7.6
1998	3.81	2.3
1999	4.11	8.0
2000	4.42	7.3
2001	4.56	3.4
2002	4.94	8.2
2003	5.35	8.3
2004	6.21	16.1
2005	7.18	15.6
2006	8.34	16.1
2007	9.78	17.3
2008	10.87	11.1
2009	11.07	1.8
2010	12.07	9.0

Source :- Bureau of Information Govt of India.

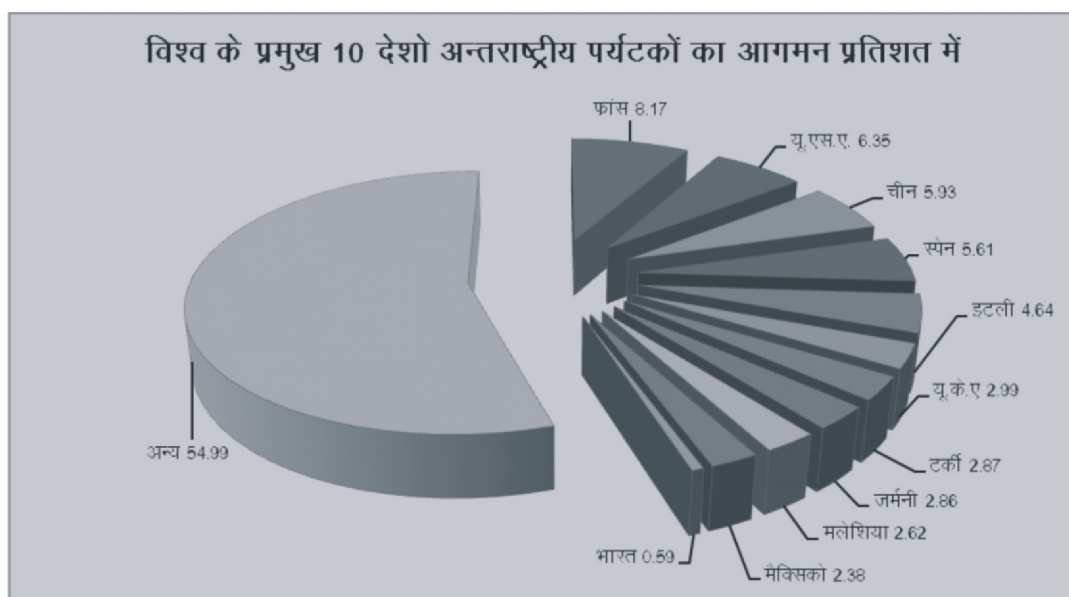


यदि विश्व में पर्यटन की दृष्टि से विश्व के 10 प्रमुख देशों (Top Ten Countires) का अवलोकन करें तो स्पष्ट होता है कि 2010 में इन 10 प्रमुख देशों में भारत की स्थिति बहुत नीचे है तथा 10 देशों में भारत की गिनती नहीं है विदेशी पर्यटकों की दृष्टि से 2010 में सर्वाधिक आकर्षण का केन्द्र फ्रांस (76.8 मिलियन) यू.एस.ए. (59.7 मिलियन), चीन (55.07 मिलियन) रहा है अन्य 7 देशों में स्पेन, इटली, यूके, टर्की, जर्मनी, मलेशिया व मैक्सिको सम्मिलित हैं इन प्रमुख 10 देशों में विदेशी पर्यटकों की कुल संख्या 417.5 मिलियन रही है तथा विश्व का 44 % विदेशी पर्यटक इन देशों में पर्यटन हेतु पहुँचा है। 2010 में भारत में विदेशी पर्यटकों की संख्या मात्र 5.6 मिलियन दर्ज की गई है। जो विश्व पर्यटकों की दृष्टि से मात्र 0.59 प्रतिशत है जैसा कि तालिका से स्पष्ट है :-

तालिका क्र. 08 : विश्व के प्रमुख 10 देशों अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटकों का आगमन (मिलियन में)

रैंक	देश	अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटकों का आगमन	प्रतिशत में हिस्सेदारी
01	फ्रांस	76.8	8.17
02	यू.एस.ए.	59.7	6.35
03	चीन	55.7	5.93
04	स्पेन	52.7	5.61
05	इटली	43.6	4.64
06	यू.के.	28.1	2.99
07	टर्की	27.0	2.87
08	जर्मनी	26.9	2.86
09	मलेशिया	24.6	2.62
10	मैक्सिको	22.4	2.38
	प्रमुख 10 देशों का कुल	417.5	44.42
	भारत	5.6	0.59
	अन्य	516.9	54.99
	कुल	940.0	100.00

Source :- UNWTO Tourism Highlights 2011 Edition.



यदि विश्व स्तर पर/अन्तराष्ट्रीय पर्यटन से मुद्रा प्राप्ति की दृष्टि से चिंतन करें तो स्पष्ट होता है कि विश्व के 10 प्रमुख देशों में भारत का कोई स्थान नहीं है Tourist Receipts में वरीयता क्रम में 10 देशों में यू.एस.ए., स्पेन, फ्रांस, चीन, इटली, जर्मनी, यू.के., आस्ट्रेलिया, हांगकांग, टर्की प्रमुख रहे हैं। अन्तराष्ट्रीय पर्यटन की कुल प्राप्तियाँ 2010 में 919.0 बिलियन यू.एस. डॉलर में दर्ज की गई हैं। भारत की हिस्सेदारी 14.2 बिलियन यू.एस. डॉलर (1.54 प्रतिशत) रही है जिसे सम्बन्धित किये जाने की आवश्यकता है जैसा कि तालिका से स्पष्ट है।

तालिका क्र. 09 : विश्व के 10 प्रमुख देशों व भारत की अंतराष्ट्रीय टूरिज्म की दृष्टि से प्राप्तियाँ 2010

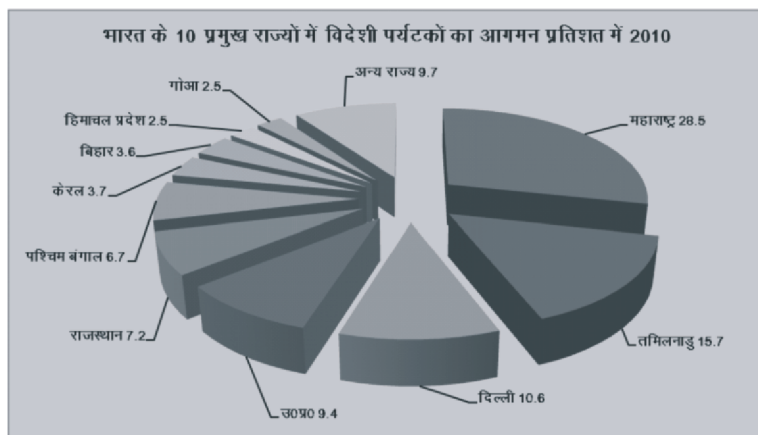
रैंक	देश	अन्तराष्ट्रीय पर्यटकों का रिपोर्ट यू.एस. डॉलर	प्रतिशत में हिस्सेदारी
01	यू.एस.ए.	103.5	11.26
02	स्पेन	52.5	5.71
03	फ्रांस	46.3	5.04
04	चीन	45.8	4.98
05	इटली	38.8	4.22
06	जर्मनी	34.7	3.78
07	यू.के.	30.4	3.31
08	आस्ट्रेलिया	30.1	3.28
09	हांगकांग	23.0	2.50
10	टर्की	20.8	2.26
	प्रमुख 10 देशों का कुल	425.9	46.34
	भारत	14.2	1.54
	अन्य देश	478.9	52.11
	कुल	919.0	100.00

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन की दृष्टि से प्रमुख 10 देशों में पर्यटन प्राप्तियों के रूप में भी भारत का कोई स्थान नहीं है। संयुक्त राज्य अमेरिका 103.5 बिलियन यू.एस.डॉलर का अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन से सृजन करता है जो विश्व पर्यटन की कुल प्राप्तियों का 11.26 प्रतिशत है। स्पेन, फ्रांस व चीन इस दृष्टि से द्वितीय, तृतीय, एवं चतुर्थ स्थान पर है। अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन की दृष्टि से भारत में विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करने में महाराष्ट्र प्रथम स्थान पर है। 2010 में भारत में आये विदेशी पर्यटकों की राज्यवार/केन्द्र शासित राज्यों में आगमन की स्थिति की दृष्टि से 10 प्रमुख राज्यों की स्थिति निम्नानुसार है :-

तालिका क्र.10:- भारत के 10 प्रमुख राज्य में विदेशी पर्यटकों की आगमन स्थिति 2010

रैंक	राज्य/केन्द्र शासित राज्य	विदेशी पर्यटकों की संख्या	प्रतिशत में हिस्सेदारी
01	महाराष्ट्र	5083126	28.5
02	तमिलनाडु	2804687	15.7
03	दिल्ली	1893650	10.6
04	उ०प्र०	1675123	9.4
05	राजस्थान	1278523	7.2
06	पश्चिम बंगाल	1192187	6.7
07	केरल	659265	3.7
08	बिहार	635722	3.6
09	हिमाचल प्रदेश	453616	2.5
10	गोआ	441053	2.5
	योग 10 राज्यों	16116952	90.3
	अन्य राज्य	1735825	9.7
	कुल	17852777	100

Source :- State/ Beauty Tourism Department.



तालिका से स्पष्ट है कि मध्यवर्ती राज्य मध्यप्रदेश में विदेशी पर्यटन को बढ़ाने हेतु आवश्यक कदम उठाये जाने की अति आवश्यकता है। 2010 की विश्व स्तर कुल प्राप्तियाँ 919 बिलियन यू.एस. डॉलर रही हैं जिसमें भारत की हिस्सेदारी मात्र 14.2 बिलियन यू.एस. डॉलर है अर्थात् भारत की यह हिस्सेदारी अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन की कुल प्राप्तियों की मात्र 1.54 प्रतिशत है जिसे बढ़ाने की आवश्यकता है।

भारत में पर्यटन प्रबंधन हेतु शोधार्थी के सुझाव :- अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन से जुड़े उपरोक्त तथा स्पष्ट करते हैं कि विश्व के अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटन की दृष्टि से भारत में विदेशी पर्यटकों की संख्या व उनसे राजस्व प्राप्तियों की स्थिति अत्यंत दुखद है, जिसे समृद्ध किये जाने की आवश्यकता है क्योंकि भारत क्षेत्रफल की दृष्टि से सातवां बड़ा राज्य है जहाँ विदेशी पर्यटकों को आकर्षित करने के लिये अनेक भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक दशाओं के साथ-साथ अनेक ऐतिहासिक धरोहरें हैं जिन्हें समृद्ध कर देश के आर्थिक विकास में पर्यटन की भागीदारी को बढ़ाया जा सकता है, शोधार्थी के सुझाव निम्नलिखित हैं।

1. प्राकृतिक पर्यटन स्थलों यथा पर्वतों, घाटियों, प्रपातों, झरनों व हिमाच्छादित क्षेत्रों में पर्यटकों को आकर्षित करने हेतु पर्यटन स्थलों को सस्ते व अच्छे जल, थल व वायु परिवहन से जोड़ना होगा इन क्षेत्रों में आपदा प्रबंधन की समुचित व्यवस्था करनी होगी ताकि केदारनाथ, जैसी घटनाओं की पुनरावृत्ति न हो।
2. ऐतिहासिक एवं धार्मिक अधोसंरचनाओं को संरक्षित करने व पुनर्जीवित करने, उनके इतिहास को अनुसंधान करने तथा इन स्थलों के प्रचार-प्रसार व मूलभूत सुविधाओं की स्थापना हेतु महत्वपूर्ण कदम उठाने होंगे।
3. देश में वर्तमान समय में 34 मैगा टूरिज्म सर्किट हैं जिनकी संख्या में वृद्धि कर अन्य क्षेत्रों में भी मैगा टूरिज्म सर्किट विकसित करने होंगे तथा वहाँ आधारभूत सुविधाएँ यथा परिवहन, होटलिंग व पर्यटन पर्यावरण को बढ़ावा देना होगा।
4. राज्य स्तर पर भी टूरिज्म सर्किट बनाने होंगे तथा अधोसंरचनात्मक विकास के साथ मूलभूत सुविधाएँ जुटानी होंगी।
5. देश में वेलनेस टूरिज्म की दृष्टि से योगा, आयुर्वेद से जुड़े केन्द्रों को जोड़कर विदेशी पर्यटकों को आकर्षित किये जाने की आवश्यकता है।
6. पर्यटकों को आकर्षित करने हेतु ट्रेड फेयर, प्रदर्शनी, ड्यूटी फ्री मार्केटिंग, फूड क्रॉफ्ट एवं कला को जोड़ना होगा, वर्तमान में स्पोर्ट्स क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धाएँ कर विदेशी पर्यटकों को टूरिज्म क्षेत्र में आकर्षित किया जा सकता है इन स्पर्धाओं हेतु मैगा टूरिज्म सर्किट क्षेत्रों का चयन किया जा सकता है कॉमनवेल्थ गैम्स दिल्ली 2010 में एक लाख विदेशी पर्यटकों का आगमन इस दिशा में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि रही है।
7. मध्यप्रदेश सरकार द्वारा विगत दो वर्षों में तीर्थ दर्शन योजना स्वदेशी पर्यटकों को आकर्षित करने में व बढ़ावा देने में उल्लेखनीय रही है। इस प्रकार की तीर्थ दर्शन योजना भारत के सभी राज्यों को अपनाने की आवश्यकता है।
8. विदेशी पर्यटकों की सुरक्षा हेतु समस्त जिला मुख्यालय पर एक पर्यटन केन्द्र का आफिस कम पर्यटन रेस्ट हाउस व पर्यटकों को सुरक्षित लाने, ले जाने हेतु टूर एवं ट्रेवल्स एजेन्सियों का गठन करना सुरक्षात्मक दृष्टि से अति आवश्यक है इन केन्द्रों पर आई.आई.टी.एम. से प्रशिक्षित 02 आफीसर भी पदस्थ होना चाहिए।
9. पर्यटन को बढ़ाने हेतु हमें पब्लिसिटी एवं मार्केटिंग सेन्टर को भी विकसित करना होगा इन्टरनेशनल फिल्म फेस्टीवल इन इण्डिया, गोवा फेस्टिवल 2011 जैसे कार्यक्रम भी करने होंगे।
10. भारत में पर्वतारोहण, सामुद्रिक नौकायन जैसे पर्यटन को विकसित करने हेतु हिमालय जैसी विशाल पर्वत

श्रृंखलायें तथा 7500 कि.मी. सामुद्रिक सीमायें हैं। इन क्षेत्रों में साहसिक पर्यटन को विकसित किया जा सकता है।

11. विदेशी पर्यटकों के साथ सुरक्षा हेतु टूरिज्म पुलिस का गठन भी अति महत्वपूर्ण रहेगा ताकि विदेशी पर्यटकों की लूट खसोट व असुरक्षा से बचा जा सके। तथा दतिया जैसी घटनाओं की पुनरावृत्ति न हो।
12. शिक्षा व अनुसंधान केन्द्रों पर तथा उच्च शिक्षण संस्थानों को भी एजुकेशन टूरिज्म से जोड़ा जा सकता है, भारत दर्शन योजनाएँ टैलीकास्ट कर भारत के पर्यटन स्थलों को विदेशों में प्रचारित किया जा सकता है। ई पर्यटन वर्तमान में इन्टरनेशनल को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है।
13. शोधार्थी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सुझाव पर्यटन स्थलों, नदियों व विभिन्न पारितंत्रों को सुरक्षित बनाये रखने हेतु ईको टूरिज्म को अपनाने की आवश्यकता है ताकि पर्यटन क्षेत्र में पारितंत्र की दीर्घ जीवी बनाया जा सके। इस हेतु ईको मार्केटिंग विकसित किया जाना अति महत्वपूर्ण कदम होगा।

शोधार्थी का विश्वास है कि उपरोक्त सुझावों को यदि उपर्युक्त रूप में क्रियान्वित किया जाता है तथा विश्व स्तर पर विभिन्न देशों के बीच पर्यटन बीसा को सरलीकृत किया जाता है तो भारत में पर्यटन उद्योग में अभूतपूर्व वृद्धि होगी तथा देश का आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक विकास संभव होगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. India Tourism Statistics at a Glance 2010
2. सिकरवार प्रियंका 2009 ग्वालियर एवं चम्बल संभाग में पर्यटन भूगोल का स्वरूप अप्रकाशित पी. एच.डी. शोध ग्रंथ जीवाजी विश्व विद्यालय, ग्वालियर म.प्र.।
3. सिंह. सुमन्त, एवं सिंह, बी.पी. 2000 मध्यप्रदेश में पर्यटन, आदित्य पब्लिशर्स, बीना।
4. सती बी.पी. 2001 मध्यप्रदेश का पर्यटन भूगोल।



भारत में खाद्य सुरक्षा एवं खाद्य उपलब्धता : एक विश्लेषण

डॉ. रजनी भारती
सहायक प्राध्यापक
महारानी लक्ष्मी बाई स्नात. महाविद्यालय, इन्दौर

जितेन्द्र कुमार रामटेके
शोधार्थी-स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स
देवी अहिल्या वि.वि., इन्दौर

संसद में खाद्य सुरक्षा बिल के पारित हो जाने के बाद गरीबों को कम कीमत पर पर्याप्त अनाज मुहैया कराने का संप्रग सरकार का वादा साकार हो गया है। इस विधेयक के पारित होने से देश की 67 फीसदी आबादी को खाद्य सुरक्षा का कानूनी हक मिल गया है। इसके फलस्वरूप लाभार्थियों को पांच किलोग्राम प्रति व्यक्ति के हिसाब से आगामी तीन साल तक स्थिर कीमतों पर चावल, गेहूँ और मोटा अनाज क्रमशः 3 रुपये, 2 रुपये, और 1 रुपये प्रति किलोग्राम के हिसाब से मुहैया कराया जाएगा। गौरतलब है कि निर्धनों में निर्धनतम परिवारों के लिए अंत्योदय योजना को जारी रखा गया है। इसके तहत प्रति व्यक्ति 7 किलोग्राम अनाज लाभार्थियों को दिया जाता है। देश में 2.47 करोड़ परिवार इस श्रेणी में आते हैं। इस कानून से ग्रामीण क्षेत्र की 75 फीसदी और शहरी क्षेत्र की 50 फीसदी आबादी को सस्ती दरों पर चावल, गेहूँ और मोटा अनाज मिल जाएगा। सरकारी अनुमान के मुताबिक इस कार्य के लिए 6.12 करोड़ टन अनाज की आवश्यकता होगी। इस पर 1 लाख 24 हजार 724 करोड़ रुपये सरकारी खजाने से खर्च होने का अनुमान है। यह खाद्य सुरक्षा मुहैया कराने का दुनिया का सबसे बड़ा अभियान है। यह पहल आजाद भारत की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

खाद्य सुरक्षा कानून में कुछ और भी सराहनीय कार्य किए गए हैं। गर्भवती महिलाओं को मुफ्त आहार और प्रसूति सुविधाओं के लिए 6 महीने की अवधि में 6,000 रुपये की नकद सहायता। स्तनपान कराने वाली माताओं को एक अवधि तक मुफ्त आहार 6 महीने से लेकर 6 साल की उम्र तक के बच्चों को आयु अनुसार आंगनवाड़ी के माध्यम से मुफ्त आहार 6 साल से अधिक 14 साल तक के बच्चों को छुट्टियों को छोड़ प्रत्येक दिन दोपहर में एक बार मुफ्त भोजन।, कुपोषित बच्चों की आंगनवाड़ी के माध्यम से मुफ्त आहार विपन्न व्यक्तियों को दिन में एक बार मुफ्त आहार।, बेघर लोगों को सामुदायिक रसोई से आहार विपदा और आपातकाल के दौरान पीड़ित व्यक्तियों को तीन महीने तक दिन में दो बार निःशुल्क भोजन।

देश में भुखमरी और कुपोषण की स्थिति भयावह है। पिछले 20 सालों में खासकर 2004 के बाद तेज आर्थिक वृद्धि के बावजूद कुपोषण और भुखमरी की स्थिति को देखते हुए खाद्य सुरक्षा कानून का आना सराहनीय है। पर कॉरपोरेट जगत के संगठन सीआईआई, एसोचैम और उदारवादी बाजारवादी आर्थिक विशेषज्ञों का कहना है कि इससे सरकारी खजाने पर बोझ पड़ेगा और सरकारी घाटे को सकल घरेलू उत्पाद के 4.8 फीसदी तक रखना मुश्किल हो जाएगा। वित्त वर्ष 2012-13 में सरकारी घाटा सकल खाद्य नीति संस्थान की रिपोर्ट के अनुसार विश्व भूख सूचकांक की 79 देशों की सूची में भारत 65 वें स्थान पर है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक 2005-2010 में कम वनज के सूचकांक की 129 देशों की सूची में भारत 128 वें स्थान पर है, यानी नीचे से दूसरा। सरकार के अपने दस्तावेजों के अनुसार 5 साल के उम्र के आधे से ज्यादा बच्चे भारी कुपोषण का शिकार हैं। देश की बाली उम्र की 36 फीसदी महिलाएँ कम वनज की हैं। जाहिर है कि देश की तेज आर्थिक तरक्की का कोई लाभ कमजोर, निर्धन और निःशक्त तबकों को नहीं हुआ है। बच्चों और महिलाओं में कुपोषण की समस्या लगभग जस की तस बनी हुई है। देश में कुपोषण और भूखे लोगों की स्थिति को देखते हुए खाद्य सुरक्षा कानून सराहनीय है। पर कारपोरेट जगत का कहना है कि इससे सरकारी खजाने पर बोझ बढ़ेगा और सरकारी घाटे को सकल घरेलू उत्पाद

के 4.8 फीसदी तक रखना मुश्किल हो जाएगा। वित्त वर्ष 2012-13 में सरकारी घाटा जीडीपी का 5.2 फीसदी था। वित्त वर्ष 2013-14 के लिए सरकारी घाटे का लक्ष्य जीडीपी का 4.6 फीसदी (5 लाख, 42 हजार, 499 करोड़ रुपये) है। इसमें खाद्य सहायता (रियायत) के लिए 1 लाख करोड़ रुपये का प्रावधान है। खाद्य सुरक्षा पर सरकारी अनुमान के अनुसार 1 लाख, 24 हजार 724 करोड़ रुपये खर्च होंगे लेकिन इसके कार्यान्वयन पर आने वाले खर्च से अनेक विशेषज्ञ इससे असहमत हैं।

प्रस्तुत शोध के निम्न उद्देश्य हैं –

1. भारत में खाद्य सुरक्षा स्थिति का अध्ययन करना।
2. विगत दशकों में खाद्य उत्पादन एवं उत्पादकता की स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन करना।
3. खाद्य सुरक्षा की भावी चुनौतियों का पता लगाना एवं समाधान ढूँढना।

शोध प्रविधि – प्रस्तुत अध्ययन भारत में खाद्य उत्पादन तथा खाद्य सुरक्षा द्वितीयक समकों पर आधारित है। अनाज उत्पादन एवं उत्पादकता, प्रति व्यक्ति प्रतिदिन अनाज की उपलब्धता, उत्पादन वृद्धि एवं जनसंख्या वृद्धि सम्बन्धी द्वितीयक समंक विभिन्न स्रोतों से एकत्रीत किये गये हैं। जिसमें भारत सरकार की आर्थिक समीक्षा, भारतीय अर्थव्यवस्था, कृषि अर्थशास्त्र, से समंक एकत्रित करके प्रतिवर्ष परिवर्तन, वृद्धि दर एवं जनसंख्या अनुमान एवं औसत के आधार पर विश्लेषण किया जायेगा।

भविष्य की ओर – खाद्य सुरक्षा कानून से राष्ट्र में उत्साह का माहौल है इसमें कृषि व सहयोगी क्षेत्र के विकास के लिए व्यापक निवेश, प्रोत्साहन व आधारभूत ढांचे के निर्माण की योजना बनाई गई है। इससे खाद्य सुरक्षा के प्रति सकारात्मक आशा जगी है। परंतु इसके साथ इस आशंका से भी इंकार नहीं किया जा सकता है कि पूर्व की कई योजनाएँ जिस प्रकार सकारात्मक परिणाम प्रस्तुत नहीं कर सकीं, इसका भी हाल कहीं वैसा न हो जाए। कृषि क्षेत्र को उन्नत बनाकर ही हम खाद्य सुरक्षा की दिशा में प्रभावशाली कदम बढ़ा सकते हैं। वरन् बढ़ती जनसंख्या की संकटपूर्ण तस्वीर के सामने भुखमरी व कुपोषण का स्तर गंभीर होता जाएगा।

कृषि की वृद्धि दर व जनसंख्या की वृद्धि दर में अंतर दृष्टिगत होता है। कृषि की वृद्धि दर 1.3 प्रतिशत है। वहीं जनसंख्या की वृद्धि दर 1.64 प्रतिशत है। जो कृषि की वृद्धि दर से अधिक है। कृषि उत्पादन में अनिश्चितता के बीच कृषि में वृद्धि दर एक अच्छा संकेत कहा जा सकता है। परंतु बढ़ती हुई जनसंख्या चिंता का विषय है। कृषि उत्पादन में इतनी वृद्धि होना कठिन है। क्योंकि भूमि का भाग सीमित है। परिणामतः भविष्य में खाद्य स्फीति की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। खाद्यान्न की मांग वर्तमान से लगभग दोगुनी होगी। एक टन खाद्यान्न उत्पादन के लिए एक हजार टन पानी की आवश्यकता होगी। गिरते भू-जल स्तर व जलवायु परिवर्तन का संकट भी सामने होगा फलतः समस्या और गंभीर होती जाएगी। जनसंख्या प्रक्षेपण के अनुसार भारत की जनसंख्या 2050 में लगभग 162 करोड़ हो जाएगी जो संपन्न, शहरी व स्वास्थ्य के प्रति सचेत भी होगी। खाद्यान्न की मांग गुणात्मक व मात्रात्मक दोनों दृष्टिकोण से बढ़ेगी। 2050 में प्रतिव्यक्ति आय लगभग 4 लाख रु. प्रतिवर्ष होगी और उपभोक्ता अपनी आय का लगभग 10 प्रतिशत खाद्य पर खर्च करेगा। मतलब 2010 की तुलना में 23 प्रतिशत अधिक व्यय होगा।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा— सरकार द्वारा खाद्य सुरक्षा प्रदान करने हेतु चलाए जा रहे कार्यक्रम यथा—सार्वजनिक वितरण प्रणाली, अंत्योदय अन्न योजना, अन्नपूर्णा योजना, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन, और राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा कानून के प्रभाव से गरीब और बेसहारा लोगों को खाद्य सुरक्षा मिलेगी, हर नागरिक को पर्याप्त भोजन मिलेगा, भोजन के अधिकार से जीवन जीने का अधिकार मिलेगा। भारत की दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई जनसंख्या तथा जनसंख्या की तुलना में खाद्यान्न उत्पादन की धीमी गति अर्थात् बढ़ती हुई मांग की पूर्ति के लिए राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन को राष्ट्रीय विकास परिषद् ने मई 2007 में मंजूरी प्रदान कर दी थी। इस मिशन की प्रारम्भिक रिपोर्ट

के अनुसार गेहूँ बीज वितरण एक ओर जहां राजस्थान में 43 प्रतिशत वृद्धि हुई वहीं, बिहार में 10 गुना वृद्धि दर्ज की गई। दलहन ने भी एक ओर जहां राजस्थान से संबंधित बीज के प्रयोग में 29 प्रतिशत की वृद्धि हुई, वहीं छत्तीसगढ़ में 400 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गई। 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन का कुल परिव्यय 4882.5 करोड़ रु. का है। कृषि क्षेत्र की शिथिलता दूर करने तथा उत्पादकता में वृद्धि के लिए 25000 करोड़ रु. के विशेष पैकेज की घोषणा की प्रधान मंत्री मनमोहन सिंह ने एन.डी.सी. 29 मई 2007 को नई दिल्ली में हुई बैठक में की थी। गेहूँ के उत्पादन में वांछित वृद्धि को प्राप्त करने के लिए विशेष फोकस हेतु देश भर में 138 जिलों की पहचान सरकार ने की है। चावल के उत्पादन में वृद्धि हेतु 130 किलो व दालों के लिए 150 जिलों की पहचान विशेष फोकस हेतु की गई। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन के तहत प्रस्तावित आवंटन एवं सरकार द्वारा जारी की गई सब्सिडी को निम्न तालिका क्र. 1 व दो में दर्शाया गया है।

तालिका क्रमांक-1

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन के अंतर्गत प्रस्तावित आवंटन (करोड़ रु. में)

वर्ष	गेहूँ	चावल	दाले	योग	वार्षिक परिवर्तन (प्रतिशत में)
2007-08	234.6	70.8	96.9	402.3	—
2008-09	682.7	348.1	285.9	1316.8	327.13
2009-10	290.8	366.3	287.4	944.2	-28.30
2010-11	341.5	428.3	286.4	1056.3	11.87
2011-12	370.8	508.8	283.4	1163.0	10.10
योग	1920.30	1722.3	1229.9	4882.5	

स्रोत - आर्थिक समीक्षा 2010-11

तालिका क्रमांक-2

सरकार द्वारा जारी की गई खाद्य सब्सिडी (करोड़ रु. में)

वर्ष	खाद्य सब्सिडी (करोड़ रु. में)	वार्षिक परिवर्तन (प्रतिशत में)
1999-2000	9200	5.75
2000-01	12010	30.54
2001-02	17494	45.66
2002-03	24176.45	38.20
2003-04	25160	4.07
2004-05	25746.45	2.33
2005-06	23071	-10.39
2006-07	23827.59	3.28
2007-08	31259.68	31.19
2008-09	43668.08	39.69
2009-10	26906.68	-7.42

स्रोत - खाद्य एवं सार्वजनिक विवरण विभाग,

तालिका क्रमांक-3
भारत में खाद्यान्न उत्पादन (दस लाख टन में)

वर्ष	गेहूँ	चावल	मोटा अनाज	दाले	योग	वार्षिक परिवर्तन (प्रतिशत में)
1950-51	20.58	6.46	15.38	08.41	50.83	—
1960-61	34.58	11.00	23.74	12.70	82.02	61.36
1970-71	42.22	23.82	30.55	11.82	108.42	32.18
1980-81	53.63	36.31	29.02	10.63	129.59	19.53
1990-91	74.29	55.14	32.70	14.26	176.39	36.11
2000-01	84.98	69.68	31.08	11.07	196.81	11.54
2010-11	82.00	86.00	32.00	14.00	214.00	8.73

स्रोत — आर्थिक समीक्षा 2010-11

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि भारत में सन् 1950-51 में गेहूँ का उत्पादन 20.58 लाख टन था वह वर्ष 2010-11 में 82.00 लाख टन हो गया। सन् 1950-51 में चावल का उत्पादन 6.46 लाख टन था। वर्ष 2010-11 में 86.00 लाख टन हो गया। सन् 1950-51 में मोटे अनाज का उत्पादन 15.38 लाख टन था, वर्ष 2010-11 में 32.00 लाख टन, सन् 1950-51 में दाले उत्पादन 8.41 लाख टन था, वर्ष 2010-11 में 14.00 लाख टन हो गया। सन् 1950-51 में कुल उत्पादन 50.83 लाख टन था वह वर्ष 2010-11 में 214.00 लाख टन हो गया। खाद्य वस्तुओं के उत्पादन और उपलब्धता में यह वृद्धि मुख्यतः उत्पादकता में वृद्धि के कारण आई है न कि खेती की जमीन में वृद्धि के कारण। आकड़े ये बताते हैं कि वर्ष 1990-91 में 127.8 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर खाद्य वस्तुओं का उत्पादन होता था जो वर्ष 2011-12 में घटकर 125.0 मिलियन हेक्टेयर रह गया। आर्थिक सर्वेक्षण 2012-13 के अनुसार खाद्य वस्तुओं की उत्पादकता में पिछले 20 वर्षों में तेजी से वृद्धि हुई है।

तालिका क्रमांक-4
भारत में अर्थव्यवस्था एवं खाद्यान्न की मांग में परिवर्तन का प्रक्षेपण

परिवर्तन तत्व	पूर्व (1970-2010)		भविष्य (2010-2050)	
	परिवर्तन	वृद्धिदर प्रतिशत में	परिवर्तन	वृद्धिदर प्रतिशत में
जनसंख्या	2.19	1.98	1.37	0.78
सकल घरेलू उत्पाद	8.29	5.43	10.29	6.00
प्रतिव्यक्ति आय	3.60	3.25	7.29	5.18
कुल खाद्य	3.10	2.85	4.53	3.82
प्रति व्यक्ति खाद्य	1.14	0.87	3.32	3.04
वर्ष 2001	102.0	196.81	416.2	
वर्ष 2011	126.1	244.78	438.6	

स्रोत — www.ncap.res.in

उपरोक्त तालिका में वर्ष 2010 के पूर्व 40 वर्षों व बाद के 40 वर्षों में दोगुनी से भी अधिक हुई है और भविष्य

में 2050 तक 37 प्रतिशत वृद्धि का अनुमान है। 1970–2010 तक कुछ खाद्य मांग में 3 गुणा वृद्धि हुई है, और आगे 40 वर्षों में 4 से 5 गुणा तक वृद्धि का अनुमान है। प्रतिव्यक्ति आय की अनुमानित वृद्धि दर 5.18 प्रतिशत है व खाद्य व्यय 3.82 प्रतिशत प्रतिवर्ष अनुमानित किया गया है। खाद्य की मांग 3 प्रतिशत प्रतिवर्ष प्रक्षेपित की गई है जो गुणात्मक व मात्रात्मक दोनों रूपों में बढ़ेगी। खाद्य वस्तुओं की मांग में भी परिवर्तन भिन्न-भिन्न होंगे। प्रतिव्यक्ति अनाज की मात्रा में वृद्धि के साथ खाद्य तेल, फल, सब्जियां, दूध, मांस, मछली, जैसे उच्च मूल्य खाद्य वस्तुओं की खपत अधिक मात्रा में होगी। 2050 में खाद्य की कुल मांग 359 मिलियन टन होगी जो वर्ष 2009–10 की तुलना में 83 प्रतिशत अधिक होगी।

भारत में खाद्य समस्या के कारण –

भारत में खाद्यान्न समस्या के अनेक कारण बताये जाते हैं। खाद्यान्न समस्या का कारण निर्यात फसलों के उत्पादन पर अधिक जोर देना है। अर्थशास्त्रियों ने खाद्य असुरक्षा का कारण किसानों के पास निम्न स्तर की भूमि का होना, बड़े पशुधन का बीमार होना, लोगों का नौकरी पर खेती से अधिक भरोसा करना तथा बड़े परिवार में कुछ ही कमाने वाले व्यक्तियों का होना बताया है। कुछ अन्य कारण भी हैं, जैसे जनसंख्या वृद्धि, खाद्य पदार्थों की मांग की लोच अधिक होना, खाद्यान्नों की जमाखोरी तथा भ्रष्ट प्रशासनिक व्यवस्था आदि प्रमुख हैं।

1. जनसंख्या वृद्धि – पंचवर्षीय योजनावधि में खाद्यान्नों की मांग में तेजी से वृद्धि हुई है। भारत इस समय जनसंख्या विस्फोट की अवस्था से गुजर रहा है। योजनाओं के प्रथम दशक में भारत में जनसंख्या वृद्धि की 2.2 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी जो 1961–71 तथा 1971–81 में और बढ़कर 2.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष हो गई। 1981–91 के दशक में जनसंख्या वृद्धि की वार्षिक दर 2.14 प्रतिशत थी। 1951 में भारत की जनसंख्या लगभग 36 करोड़ थी, मार्च 2001 में बढ़कर 102 करोड़ 70 लाख तक पहुंच गई तथा 2011 की जनगणनानुसार देश की जनसंख्या 1,21,07,93,422 हो गई है।

2. खाद्य पदार्थों की मांग की लोग अधिक होना – भारत जैसे विकासशील देश में जहां बड़ी संख्या में लोगों को भरपेट भोजन नहीं मिलता, खाद्य पदार्थों की मांग की आय लोच अधिक होना स्वाभाविक है। भारत में जब भी प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है। तो खाद्यान्नों की मांग में भी तेजी के साथ वृद्धि होती है। भारत में नियोजनकाल में निवेश में निरंतर वृद्धि हुई है।

3. खाद्यान्न की जमाखोरी – देश में खाद्यान्नों का उत्पादन आवश्यकता से कम रहा है और इस अभाव को आयातों द्वारा पूरा किया गया है। इस गंभीर स्थिति में व्यापारी वर्ग की मनोवृत्ति खाद्यान्नों की जमाखोरी करने की रही है। इससे बाजारों में खाद्यान्नों की पूर्ति कम होती है और कीमतों में असाधारण रूप से वृद्धि होती रही है। इसके अतिरिक्त जमींदारी उन्मूलन से किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। इनके पास संचय की क्षमता बढ़ी है। इसलिए ये मण्डी में उतना ही माल बेचते हैं जितनी उन्हें नगदी की आवश्यकता होती है। जब तक खाद्यान्नों की जमाखोरी द्वारा मुनाफाखोरी बनी रहेगी तब तक खाद्य समस्या का स्थायी समाधान नहीं हो सकेगा।

4. उत्पादकों द्वारा खाद्यान्नों के उपभोग में वृद्धि – खाद्यान्न जांच समिति 1957 के अनुसार देश में खाद्यान्नों के उपभोग में वृद्धि हुई है। जमींदारी उन्मूलन से गांवों में सम्पन्न किसानों का वर्ग विकसित हुआ है। गांवों में बिजली पहुंचने, ट्रैक्टर की उपलब्धि उर्वरक और अधिक उपज देने वाले बीजों के प्रयोग तथा सहकारी साख की व्यवस्था सभी के सामूहिक प्रभाव से पूंजीवादी कृषि का भी विकास हुआ है। खेतिहर मजदूरों और गरीब किसानों के पास वित्त का अभाव होने से बाजार में बिक्री के लिए आने वाली मात्रा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। जिससे खाद्यान्नों की कीमत बढ़ने में मदद मिली है।

5. लचर, अकुशल एवं भ्रष्ट प्रशासनिक व्यवस्था – सभी जानते हैं कि भारतीय प्रशासन व्यवस्था अकुशल लचर और भ्रष्ट है। प्रशासन व्यवस्था निहित स्वार्थों की रक्षा करते हुए जनसाधारण को विश्वास मात्र दिलाना चाहता

है मनमाने ढंग से मूल्य नियंत्रण अव्यवस्थित राशनिंग, अविवेकीय ढंग से मण्डियों पर छाये, सभी का एक ही उद्देश्य रहता है कि लोगों को प्रशासन की ईमानदारी पर संदेह न हो लेकिन इसका प्रभाव यह हुआ कि मण्डियों में आने वाला माल कम हो जाता है।

6. खाद्यान्न भंडारण की व्यवस्था— खाद्य असुरक्षा को सुधारने के लिए आवश्यक दैनिक प्रतिरोधक भंडारण व्यवस्था का निर्माण किये जाए। खाद्यान्नों की पूर्ति में हमेशा से ही अनिश्चितता रही है। भारत में वर्षा की अनिश्चितता के कारण उत्पादन में स्थिरता संभव है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि अतिरिक्त उत्पादन वाले वर्षों में प्रतिरोधक व भण्डारों का निमाण किया जाए ताकि जिन वर्षों में उत्पादन कम हो उन वर्षों में इन भंडारों से खाद्यान्न निकाल कर संकट का सामना किया जा सके।

7. अन्य समस्याएँ — दूसरों को भोजन/अन्न देने वाला किसान स्वयं ऋणग्रस्तता तथा ब्याज के बोझ के कारण आत्महत्या के दलदल में फँसता जा रहा है। खेती योग्य जमीन का क्षेत्रफल कम होता जा रहा है। इसका कारण बढ़ता शहरीकरण और मशीन आधारित औद्योगिकीकरण है। कहीं सूखा तो कहीं बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाएं उत्पादकता को प्रभावित करते हैं। जलवायु परिवर्तन खाद्य संकट पैदा कर रहा है। थोक व खुदरा बाजारों में कृषि जिनसों की कीमतें पिछले चार वर्षों में ऊंची रही हैं पर किसानों को खुदरा कीमतों का आधे से भी कम मिला है। कृषि उपजों के सुरक्षित भंडारण की पर्याप्त व्यवस्था नहीं है जिससे बाहर रखा अनाज खराब हो जाता है। बढ़ते कृषि रसायनों के प्रयोग से भूमि के उपजाऊपन एवं उत्पादों की गुणवत्ता में कमी आ रही है। खाद्य-प्रसंस्करण के तकनीकी ज्ञान और दक्षता की कमी है। दुनिया के प्रसंस्करण खाद्य बाजार में भारत की हिस्सेदारी मात्र 1 से 1.5 प्रतिशत है।

सुझाव —

1. उत्पादन को बढ़ाने के लिए किसानों को आसान शर्तों एवं कम ब्याज पर ऋण उपलब्ध कराना एवं फसल बीमा अनिवार्य कराना होगा।
2. बंजर भूमि सुधार कार्यक्रमों द्वारा कृषि क्षेत्र को बढ़ाना होगा।
3. अधिक उपज देने वाली किस्मों में सुधार एवं उपलब्धता सुनिश्चित करानी होगी।
4. बारिस के समय वर्षा के जल को संक्षिप्त कर वर्षा आधारित क्षेत्रों में मिश्रित कृषि को विकसित करना होगा।
5. गेहूँ धान, दलहन व तिलहन की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए जैव प्रौद्योगिकी को बढ़ाना होगा।
6. औद्योगिक इकाइयां लगाने के लिए बेघर व परती पड़ी भूमि का उपयोग किया जाना चाहिए।
7. कृषि भूमि की रक्षा व बचाव के लिए पर्याप्त कानूनी उपाय किए जाने चाहिए।
8. भूख मिटाने की जिम्मेदारी जिनकी हो उन्हें जिम्मेदारी न निभाने के लिए दंडित किया जाने की प्रभावी व्यवस्था हो।
9. सार्वजनिक वितरण प्रणाली में खाद्यान्न का आवंटन घर में उपभोक्ताओं की संख्या पर दिया जाए एवं भ्रष्टाचार को रोकने के लिए कठोर कदम उठाने चाहिए।
10. स्नेह-भोज, शादी, समारोहों में प्रीतिभोज के बाद बचे भोजन की बरबादी पर प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए।

निष्कर्ष —

भविष्य में एक भयंकर खाद्य संकट की चुनौती हमारे सामने होगी। भारत की आबादी की वृद्धि के अनुरूप अनाज उत्पादन में वृद्धि नहीं हो पा रही है। इसी को मुद्दा बनाकर दूसरी हरित क्रांति लाने की दिशा में कोशिशें की जा रही हैं। हमारे पास कुशल प्रबंधकीय व तकनीकी क्षमता का सही तरीके से उपयोग करने की कमी है। इसके कारण बहुत सारा अनाज भंडारण की अव्यवस्था की वजह से बर्बाद हो रहा है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ खाद्य पदार्थों को खरीदकर माल कल्चर को बढ़ावा दे रही हैं। जिससे खाद्यान्न की कीमतों में भारी वृद्धि हो रही है और

खाद्यान्न लोगों की पहुंच से दूर होता जा रहा है। भविष्य में विश्वव्यापीकरण के कारण बहुराष्ट्रीय कंपनियों की संख्या और अधिक होगी। जो खाद्यान्न की आपूर्ति, कीमत आदि को प्रभावित करने की स्थिति में होगी। उच्च कृषि अनुसंधान एवं प्रबंधकीय व वितरण कुशलता आदि से खाद्य सुरक्षा की स्थिति कायम रखी जा सकती है। परंतु प्रश्न तो यह है कि बढ़ती हुई खाद्य की मांग एवं सीमित खाद्यान्न की चुनौती से निपटने की इच्छा शक्ति हमारे पास है।

तमाम चुनौतियों के बीच सभी नागरिकों के लिए खाद्य सुरक्षा का लक्ष्य आसान नहीं है। संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट के अनुसार दुनिया की 85 करोड़ से अधिक आबादी भुखमरी व कुपोषण से तड़प रही है। जबकि हम पहले से अधिक अनाज पैदा कर रहे हैं। खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने के साथ ही सरकार निवेशकर्ताओं व धनी वर्ग के लोगों को फिर से विचार करना होगा, सार्थक प्रयास करने होंगे, अपनी भूमिका को विस्तार देना होगा पूरी संवेदनशीलता के साथ तभी हम सभी को खाद्य सुरक्षा दे पाएंगे और भूख से मौत से हर किसी को बचा पाएंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. दत्त, रुद्र एवं सुन्दरम के.पी.एम., 2009 "भारतीय अर्थव्यवस्था" एस.चन्द कम्पनी लि., नई दिल्ली, पृ.क्र. 423।
2. कुमार बृजेश (मार्च 2011) "खाद्य सुरक्षा की सुदृढ़ स्थिति एक चुनौती", कुरुक्षेत्र निर्माण भवन ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली, पृ.क्र. 12-14।
3. जैन सचिन कुमार (15 फरवरी 2011) "केवल भूख ही नहीं अन्याय से मुक्ति के लिए हो रोट्टी का कानून", नीतिमार्ग, एम.आई.जी. त्रिवेणी काम्प्लेक्स, रोशनपुरा, भोपाल।
4. पुरोहित खुसासिंह (सितम्बर 2009) "जहर बुझा खाद्यान्न खाता समाज" पर्यावरण विकास, आशा किरण अपार्टमेंट न्यू पलासिया, इन्दौर।
5. कावडिया गणेश (2007) "म.प्र. में ग्रामीण विकास तथा रोजगार के नये अवसर", डॉ. आम्बेडकर, सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, डॉ. आम्बेडकर राष्ट्रीय सामाजिक विज्ञान संस्थान, मद्र. इन्दौर।
6. सिंह अभिताभ, लीना सिंह (सितम्बर 2004) "म.प्र. में लक्ष्य आधारित सार्वजनिक वितरण प्रणाली", सोपान एवं भोजन का अधिकार अभियान म.प्र. भोपाल।
7. पराते संजय (सित. 2010) "खाद्यान्न सुरक्षा, पी.डी.एस. और छत्तीसगढ़" जनमत स्वर, शिवाजी नगर, भोपाल, पृ.सं. 12-13।
8. Gupta Ranga (July 2007) "Financial Liberalization with productive Public Expenditure and a curb Market" The Indian Journal of Economic. Department of Economics & Commerce University of Allahabad.
9. कुमार के.एन. हरि (जुलाई 2007) "कौन लेगा गरीबों की सुध" जनमत स्वर, शिवाजी नगर, भोपाल, पृ. सं. 11-13।
10. सुनील (दिसम्बर 2009) "गरीबी रेखा पर कुछ सवाल", योजना, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली पृ.सं. 53-55।
11. यादव हनुमंत (जून 2007) "विधि गरीबी और विकास" जनमत स्वर, शिवाजी नगर, भोपाल, पृ.सं. 3-6।
12. सिंह अभिताभ, लीना सिंह (दिसम्बर 2004) "म.प्र. में लक्ष्य आधारित सार्वजनिक वितरण प्रणाली" सोपान एवं भोजन का अधिकार अभियान, मध्यप्रदेश, भोपाल।
13. मुखर्जी रवीन्द्रनाथ (2009) "सामाजिक शोध व सांख्यिकी" विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर, नई दिल्ली।
14. भारत 2010, प्रकाशक : सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
15. आर्थिक समीक्षा 2010-11, प्रकाशक : भारत सरकार, नई दिल्ली।
16. प्रतियोगिता दर्पण, दिसम्बर 2013।
17. इण्डिया टुडे, मार्च 2013।
18. योजना विकास को समर्पित मासिक पत्रिका, दिसम्बर 2013, "खाद्य सुरक्षा का अधिकार" ग्रामीण विकास को मंत्रालय, नई दिल्ली।
19. वार्षिक प्रकाशन, खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति विभाग, मध्यप्रदेश।
20. एस. के मिश्रा, बी.के.पुरी 2011, भारतीय अर्थव्यवस्था, हिमालया पब्लिशिंग हाऊस, मुम्बई।



राम की दृष्टि : सुशासन के संदर्भ में

डॉ. निरुपमा त्रिपाठी

असिस्टेंट प्रोफेसर—संस्कृत

कानपुर विद्यामन्दिर महिला (पी0जी0) महाविद्यालय, स्वरूपनगर, कानपुर।

कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है—

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।

कोई कवि बन जाये सहज सम्भाव्य है।

सत्य कथन है यह। राम— कथा की लोकप्रियता का श्रेय स्वयं श्रीराम को है। इनका सम्पूर्ण जीवन आदर्श मानव का है। उनके आदर्श चरित का वर्णन ही वाल्मीकीय रामायण का उद्देश्य है। वाल्मीकि के राम नरों में श्रेष्ठ हैं पुरुषोत्तम हैं, नारायण नहीं। संसार आदर्श पुरुष के रूप में राम को स्वीकार कर इनके चरित को अनुकरणीय मानता है। वस्तुतः राम के जीवन का प्रत्येक पक्ष मानव के लिए अनुकरणीय है।

महाकवि कालिदास ने रघुवंश में रघुकुल की परम्परा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि— “आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव” यह सत्य ही है। श्रीराम दिविजयी थे किन्तु, साम्राज्य की लिप्सा उनमें नहीं थी। बाली से किष्किन्धा का राज्य जीतकर उसे उन्होंने उसके अनुज सुग्रीव को ही वापस लौटा दिया। लंका पर विजय प्राप्त कर उसे भी रावण के अनुज विभीषण को ही सौंप दिया। संसार में राजा के न होने से सर्वत्र भय व्याप्त रहता है। सबकी रक्षा के लिए ही ईश्वर ने राजा को उत्पन्न किया है। मनु ने लिखा है—

अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतो विद्रुते भयात्।

रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः।

इतना ही नहीं इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा और कुबेर इन आठों दिग्पालों के नित्य अंश से ईश्वर ने राजा को बनाया है इसी कारण वह सब प्राणियों से अधिक तेजस्वी होता है—

इन्द्रानिलयमार्कणामग्नेश्च वरुणस्य च।

चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः।

यस्मादेशां सुरेन्द्राणां मात्राभ्यो निर्मितो नृपः।

तस्मादभिभवत्येश सर्वभूतानि तेजसा।

वाल्मीकि ने राम के रूप में एक ऐसे ही सुशासक का मानक प्रस्तुत किया है जिसके शासन सम्बन्धी विचार और आचार प्रत्येक काल में प्रासङ्गिक हैं। विशेषकर वर्तमान राजनीति के सन्दर्भ में तो वाल्मीकीयराम के विचारों की चर्चा सर्वाधिक प्रासङ्गिक है। वनवास के बाद जब भरत राम को वन से अयोध्या लौटाने के लिए वन में गये तो श्रीराम ने भरत से कतिपय कुशल—प्रश्न किये। वे प्रश्न साधारण एवं सामान्य नहीं थे। उन प्रश्नों के बहाने श्रीराम ने भरत को राजनीति का उपदेश दिया जो किसी भी राष्ट्र की सम्यक् शासन— व्यवस्था अथवा राजनीति के लिये उपयोगी हो सकते हैं। किसी भी देश की राजनीति, कुशल एवं सुयोग्य मन्त्रियों के बिना सफल नहीं हो सकती। राम भरत से पूछते हैं कि क्या अस्त्र—शस्त्रों के प्रयोग—ज्ञान से युक्त राजनीति के कुशल पण्डित आचार्य सुधन्वा का तुम आदर करते हो? क्या तुमने ऐसे ही सुयोग्य व्यक्तियों को मन्त्री बनाया है जो तुम्हारे ही समानशूरवीर, शास्त्रज्ञ, जितेन्द्रिय कुलीन तथा बाहरी चेष्टाओं से ही मन की बात समझ लेते हैं? अच्छी मन्त्रणा ही राजाओं के विजय का

मूल कारण है। इसके अतिरिक्त गुप्त मन्त्रणा सीमित एवं विश्वसनीय मन्त्रियों के साथ ही होनी चाहिए। राजा को चाहिए कि असंख्य मूर्खों के बदले एक पण्डित को ही अपने समीप रखे क्योंकि विद्वान् ही सकंट के समय कल्याण कर सकता है। इस आशय से श्रीराम भरत से प्रश्न करते हैं—

कच्चित् सहस्रैर्मूर्खाणामेकमिच्छसि पण्डितम्
पण्डितो ह्यर्थकृच्छ्रेषु कुर्यान्निःश्रेयसं महत् ।।
एकोऽप्यमात्यो मेधावी शूरो दक्षो विचक्षणः ।
राजानं राजपुत्रं वा प्रापयेन्महतीं श्रियम् ।।

घूस लेने वाले राजकर्मी किसी भी शासन के लिए घातक सिद्ध होते हैं अतः राम भरत से प्रश्न करते हैं कि जो घूस न लेते हों अथवा निष्कल हों, पूर्वजों के समय से कार्य करने वाले पवित्र अमात्य ही तुम्हारे शासन में हैं अथवा नहीं—

अमात्यानुपघातीतान् पितृपैतामहाज्जुचीन्
श्रेष्ठाज्ज्जेषु कच्चित् त्वं नियोजयसिकर्मसु ।।

अन्याय करने वाले लोगों को यथायोग्य दण्ड देना राजा का धर्म बताया गया है। यदि दण्ड पूर्ण रूप से विचार कर दिया गया हो तब सम्पूर्ण प्रजा सुखी रहती है—

तं देशकालौ शक्तिं च विद्यां चावेक्ष्य तत्त्वतः ।
यथार्हतः संप्रणेयेन्नरेश्वन्यायवर्तिषु ।
समीक्ष्य स धृतः सम्यक्सर्वा रज्जयति प्रजाः ।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाष्यति सर्वतः ।।

रामायण में राम कठोर दण्ड के पक्षधर नहीं हैं क्योंकि ऐसा करने पर प्रजा उद्विग्न होकर मन्त्री आदि का तिरस्कार कर बैठती है —

कच्चिन्नोग्रेण दण्डेन भृषमुद्वेजिताः प्रजाः ।
राष्ट्रे तवावजानन्ति मन्त्रिणः कैकयीसुतः ।।

दण्ड की प्रक्रिया में यह ध्यातव्य है कि किसी निरपराधी व्यक्ति को मिथ्या आरोप में किसी भी दशा में दण्डित नहीं किया जाना चाहिए अन्यथा उन मनुष्यों के नेत्रों से गिरने वाले अश्रु पक्षपात पूर्ण शासन करने वाले राजा के पुत्र और पशुओं का नाश कर डालते हैं —

यानि मिथ्याभिशास्तानां पतन्त्यश्रूणि राघव ।
तानि पुत्रपशून् घ्नन्ति प्रीत्यर्थमनुशासतः ।।

किन्तु साम दामादि उपायों से भृत्यों को फोड़कर राज्य को हड़प लेने की इच्छा वाले शत्रु को मृत्यु दण्ड दिया जाना चाहिए। ऐसी दृष्टि राम की भी रही है। अन्यथा वह राजा उस शत्रु के हाथों मारा जाता है —

उपायकुशलं वैद्यं भृत्यसंदूषणे रतम् ।
शूरमैश्वर्यकामं च यो हन्ति न स हन्यते ।।

धर्मशास्त्रों एवं नीतिग्रन्थों में अपराध के अनुसार दण्ड के चार प्रकार कहे गये हैं — धिक् दण्ड, वाक् दण्ड, अर्थ दण्ड, एवं वध दण्ड। रामायण में भी इन चारों प्रकार के दण्ड का उल्लेख मिलता है। विभीषण का रावण द्वारा कठोर शब्दों में धिक्कार किया गया है —

वसेत् सह सपत्नेन कुद्धेनापीविषेण च ।
न तु मित्रप्रवादेन संवसेच्छत्रुसेविना ।।

योऽन्यस्त्वेवंविधं ब्रूयाद् वाक्यमेतन्निशाचर ।

अस्मिन् मूहूर्ते न भवेत् त्वां तु धिक् कुलपांसन ।।

मरीचि और माल्यवान् को वाणी द्वारा कष्ट पहुँचाते हुए वाक् दण्ड दिया गया। चोरों को अर्थ दण्ड दिए जाने का भी उल्लेख मिलता है। धन आदि के लोभ में चोरों को छोड़ नहीं दिया जाना चाहिए और न ही धनी और निधिन के विवाद को धन के लोभ में अनिर्णीत छोड़ा जाना चाहिए –

गृहीतश्चैव पृष्टश्च काले दृष्टः सकारणः ।

कच्चिन्न मुच्यते चोरो धनलोभान्नरर्शभः ।।

व्यसने कच्चिदाद्यस्य दुर्बलस्य च राघव ।

अर्थ विरागाः पश्यन्ति तवामात्या बहुश्रुताः ।।

मृत्यु दण्ड का भी रामायण में अनेक स्थलों पर उल्लेख है। बाली का वध राम ने दण्ड के रूप में ही किया था –

अस्य त्वं धरमाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।

रुमायां वर्तसे कामात् स्नुशायां पापकर्मकृत् ।।

तद् व्यतीतस्य ते धर्मात् कामवृत्तस्य वानर ।

भातृभार्याभिमर्षेऽस्मिन् दण्डोऽयं प्रतिपादितः ।।

न च ते मर्षये पापं क्षत्रियोऽहं कुलोदगतः ।

औरसीभगिनीं वापि भार्या वाप्यनुजस्य यः ।।

प्रचरेत नरः कामात् तस्य दण्डो वधः स्मृतः ।

इस प्रकार अपराध यदि घोर हो तो मृत्यु-दण्ड के विषय में संशय नहीं रखना चाहिए। दण्ड पाकर बाली श्री राम की शरण में हो गया तथा अपने पुत्र अंगद और अनुज सुग्रीव के प्रति कृपा की प्रार्थना करने लगा –

मामप्यवगतं धर्माद् व्यतिक्रान्तपुरस्कृतम् ।

धर्मसंहितया वाचा धर्मज्ञ परिपालाय ।।

या ते नरपते वृत्तिर्भरते लक्ष्मणे च या ।

सुग्रीवे चांगदे राजंस्तां चिन्तयितुमर्हसि ।।

श्री राम बाली के दण्ड को धर्मानुकूल आचरण बनाते हुए कहते हैं कि तुमने दण्ड पाकर और मैंने दण्ड देकर, अपना-अपना कर्तव्य पूर्ण किया है—

दण्ड्ये यः पातयेदः दण्डं दण्ड्यो यश्चापिदण्ड्यते ।

कार्यकारणसिद्धार्थावुभौतौ नावसीदतः ।।

तद् भवान् दण्डसंयोगादस्माद् विगतकल्मषः ।।

गतः स्वां प्रकृतिं धर्म्यां दण्डदिष्टेनवर्तमना ।।

एक सुयोग्य शासन में सैन्यबल की भी महती भूमिका होती है। एक ओर जहाँ सैनिक और सेनापति की योग्यता और शौर्य की परीक्षा ली जानी चाहिए वहीं उनका समुचित सत्कार और सम्मान भी किया जाना चाहिए। श्री राम भरत से कहते हैं—

कच्चिद् धृष्टश्च शूरश्च धृतिमान् मतिमान् शुचिः ।

कुलीनश्चानुरक्तश्च दक्षः सेनापतिः कृतः ।।

बलवन्तश्च कच्चित् ते मुख्या युद्धविशरदाः ।

दृष्टापदाना विक्रान्तास्त्वया सत्कृत्य मानिताः ॥

इसके अतिरिक्त सैनिकों को देने के लिए नियत किया हुआ वेतन और भत्ता भी उन्हें समय पर दिया जाना चाहिए। ऐसा न होने पर सैनिक अपने स्वामी पर भी अत्यन्त कुपित हो जाते हैं जिसका परिणाम अनर्थकारी हो सकता है—

कच्चिद् बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम् ।

सम्प्राप्तकालं दातव्यं ददासि न विलम्बसे ॥

कालातिक्रमणे ह्येव भक्तवेतनयोर्भूताः ।

भर्तुरप्यतिकुप्यन्ति सोऽनर्थः सुमहान् कृतः ॥

इसी प्रकार वाल्मीकीय रामायण में सुयोग्य शासन—व्यवस्था के गूढ़ एवं गम्भीर तत्त्व अनेकशः उपलब्ध होते हैं जिसका अनुसरण/पालन करते हुए कोई भी शासक सम्पूर्ण पृथ्वी के स्वामित्व को प्राप्त कर प्रजा का तो पालन करता है स्वयं भी पुण्य का भागी होता है —

राजा तु धर्मेण हि पालयित्वा

महीपतिर्दण्डधरः प्रजानाम् ।

अवाप्य कृत्स्नां वसुधां यथाव—

दितृष्युतः स्वर्गमुपैति विद्वान् ॥

सन्दर्भ :

1. मनुस्मृति 7/31
2. मनुस्मृति 7/4,5
3. क. इष्यस्रवरसम्पन्नमर्थशास्त्रविषारदम् ।
सुधन्वामुपाध्यायं कच्चित् त्वं तात मन्यसे ।
ख. कच्चिदात्मसमाः शूराः श्रुतवन्तो जितेन्द्रियाः ।
बुलीनाश्चेङ्गितज्ञाश्च कृतास्ते तात मन्त्रिणः ।
ग. मन्त्रो विजयमूलं हि राज्ञां भवति राघव ।
सुसंवृतो मन्त्रिधुरैरमाम्यैः शास्त्रकोविदैः ।
4. वाल्मीकीय रामायण अयोध्या काण्ड 100/22,24
5. वाल्मीकीय रामायण अयोध्या काण्ड 100/26
6. वाल्मीकीय रामायण, अयोध्या काण्ड, 100/27
7. वाल्मीकीय रामायण, अयोध्या काण्ड, 100/59
8. वाल्मीकीय रामायण, अयोध्या काण्ड, 100/29
9. वाल्मीकीय रामायण, युद्ध काण्ड, 16/2, 16
10. वाल्मीकीय रामायण, अयोध्या काण्ड, 100/57, 58
11. वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धा काण्ड, 18/19, 20, 22, 23
12. वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धा काण्ड, 18/48, 54
13. वाल्मीकीय रामायण, किष्किन्धा काण्ड, 18/61, 62
14. वाल्मीकीय रामायण, अयोध्या काण्ड, 100/30,31
15. वाल्मीकीय रामायण, अयोध्या काण्ड, 100/32,33
16. वाल्मीकीय रामायण, अयोध्या काण्ड, 100/76



अर्जुन के आप्रासंगिक प्रश्न ?

रामप्रसाद सूर्यवंशी
(सत्यानंद महाराज 'सत्य')
प्रख्यात दार्शनिक एवं प्रवचनकर्ता
सारंगपुर, जिला-राजगढ़ (ब्यावरा) म.प्र.

जब हम गीता का गंभीरतापूर्वक अध्ययन करते हैं, तो कई बातें हमारे सामने आती हैं। जैसे— अर्जुन प्रथम अध्याय में जिन प्रश्नों को उठाता है, दूसरे अध्याय में वह उन्हें भूलकर नये-नये प्रश्न करने लग जाता है। और श्रीकृष्ण जी की आड़ में गीताकार भी आप्रासंगिक प्रश्नों और उत्तरों की झड़ी लगा देता है। दूसरे अध्याय से ही लगने लग जाता है कि गीताकार श्रीकृष्ण-अर्जुन संवाद की आड़ में नये-नये प्रश्न उठाकर श्रीकृष्ण के मुँह से उत्तर दिलवाकर उन्हें अकाट्य या ईश्वर वाणी के नाम से समाज पर थोपने का प्रयास कर रहा है।

अर्जुन के मूलभूत प्रश्न ?

1. युद्ध में स्वजन समुदाय को मारकर मैं कल्याण भी नहीं देखता। 31/1गीता
2. अपने ही कुटुम्ब को मारकर हम कैसे सुखी होंगे ? 37/1गीता
3. यद्यपि लोभ से भ्रष्टचित्त हुए ये लोग कुल के नाश से उत्पन्न दोष को और मित्रों से विरोध करने में पाप को नहीं देखते, तो भी हे जनार्दन ! कुल के नाश से उत्पन्न दोष को जानने वाले हम लोगों को इस पाप से हटने के लिये क्यों नहीं विचार करना चाहिए ? 38-39/1गीता
4. कुल के नाश से सनातन कुल धर्म नष्ट हो जाते हैं, धर्म के नाश हो जाने पर सम्पूर्ण कुल में पाप भी बहुत फैल जाता है। 40/1 गीता
5. हे कृष्ण ! पाप के अधिक बढ़ जाने से कुल की स्त्रियां अत्यन्त दूषित हो जाती हैं, और हे वार्ष्णेय ! स्त्रियों के दूषित हो जाने पर वर्णसंकर उत्पन्न होता है। 41/1गीता
6. वर्णसंकर कुल घातियों को और कुल को नरक में ले जाने के लिये ही होता है। लुप्त हुई पिण्ड और जल की क्रिया वाले अर्थात् श्राद्ध और तर्पण से वंचित इनके पितर लोग भी अधोगति को प्राप्त होते हैं। 42/1 गीता
7. इन वर्णसंकर कारक दोषों से कुल घातियों के सनातन कुल धर्म और जाति धर्म नष्ट हो जाते हैं। 43/1 गीता
8. हे जनार्दन ! जिनका कुल धर्म नष्ट हो गया है, ऐसे मनुष्यों का अनिश्चित काल तक नरक में वास होता है, ऐसा हम सुनते आये हैं। 44/1 गीता

उपर्युक्त 8 प्रश्न ही अर्जुन के मूलभूत प्रश्न हैं। श्रीकृष्ण-अर्जुन संवाद इन्हीं प्रश्नों के आसपास होना चाहिए, किंतु हम देखते हैं कि इन प्रश्नों को नजरअंदाज कर श्रीकृष्ण की आड़ में गीताकार कहता है—

हे अर्जुन ! तुझे इस असमय में यह मोह किस हेतु से प्राप्त हुआ ? क्योंकि न तो यह श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा आचारित है, न स्वर्ग को देने वाला है और न कीर्ति को करने वाला ही है। 2/1 गीता

इसलिये हे अर्जुन ! नपुंसकता को मत प्राप्त हो, तुझमें यह उचित नहीं जान पड़ती। हे परंतप ! हृदय की तुच्छ दुर्बलता को त्यागकर युद्ध के लिये खड़ा हो जा। 3/2 गीता

अब पाठक स्वयं विचार करें कि क्या अर्जुन के प्रश्नों का कोई जबाब दिया जा रहा है या उसे नपुंसक कहकर उसके प्रश्नों को नकारने या दबाने का प्रयास किया गया है। अर्जुन फिर नये प्रश्न करता है—

1. हे मधुसूदन ! मैं रणभूमि में किस प्रकार वाणों से भीष्म पितामाह और द्रोणाचार्य के विरुद्ध लड़ूँगा ? क्योंकि हे अरिसूदन ! वे दोनों ही पूजनीय हैं ? 4/2 गीता

2. हम यह भी नहीं जानते कि हमारे लिये युद्ध करना और न करना — इन दोनों में से कौन सा श्रेष्ठ मार्ग है, अथवा यह भी नहीं जानते कि हम जीतेंगे या हमको वे जीतेंगे। 6/2 गीता

3. इसलिये कायरता रूप दोष से उपहत हुए स्वभाव तथा धर्म के विषय में मोहितचित्त हुआ मैं आपसे पूछता हूँ कि जो साधन निश्चित कल्याणकारक हो, वह मेरे लिये कहिये, क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये आपके शरण हुए मुझको शिक्षा दीजिये। 7/2 गीता

उपर्युक्त श्लोक में शिष्य और शिक्षा देने वाली बात उठाकर गीताकार प्रसंग से हटकर विस्तार में जाने का प्रयास कर रहा है। यहाँ गुरु-शिष्य वाली कोई बात नहीं है। अर्जुन युद्धभूमि में विनाश की आशंकाओं से घिरा हुआ है। श्रीकृष्ण जी उसे कुछ सलाह दे सकते हैं, वह भी कुछ ही समय में, संक्षिप्त में, न कि 18 अध्याय की लंबी-चौड़ी बातचीत द्वारा।

अब देखिए श्रीकृष्ण की आड़ में गीताकार मनमाने उत्तरों का पिटारा खोल रहा है — हे अर्जुन ! तू न शोक करने योग्य मनुष्यों के लिये शोक करता है और पण्डितों के से वचनों को कहता है, परंतु जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके लिये भी पंडितजन (विद्वान्) लोग शोक नहीं करते। 11/2 गीता

अब पाठक विचार करें कि अर्जुन के प्रश्नों से इस उत्तर का कौन सा कार्यकारण संबंध है ? और यदि पंडित या विद्वान होने का मतलब निर्दय होना है अर्थात् न मरे हुए का शोक करो न मरने वालों का, तब फिर ऐसे पंडितों या विद्वानों से भारत माता और हिन्दू समाज को भगवान ही बचाए।

न तो ऐसा ही है कि मैं किसी काल में नहीं था, तू नहीं था अथवा ये राजा लोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे। 12/2 गीता

जैसे जीवात्मा की इस देह में बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही अन्य शरीर की प्राप्ति होती है, उस विषय में धीर पुरुष मोहित नहीं होता। 13/2

अब पाठक विचार करें — क्या अर्जुन ने यह पूछा था कि महाराज मेरा और आपका अगला-पिछला जन्म हुआ था या भविष्य में होगा कि नहीं ? क्या अर्जुन ने आत्मा की अमरता के विषय में कोई प्रश्न किया था ? जो गीताकार श्रीकृष्णजी की आड़ में आप्रासंगिक उत्तर बिना पूछे ही दिये जा रहा है ?

हे पुरुषश्रेष्ठ ! दुख-सुख को समान समझने वाले जिस धीर पुरुष को ये इन्द्रिय और विषयों के संयोग व्याकुल नहीं करते, वह मोक्ष के योग्य है। 15/2 गीता

इस नाशरहित, अप्रमेय, नित्यस्वरूप जीवात्मा के सब शरीर नाशवान् कहे गये हैं। इसलिये हे भारतवंशी अर्जुन ! तू युद्ध कर । 18/2 गीता

अब बुद्धिमान पाठक विचार करें कि यहाँ मोक्ष के संबंध में अर्जुन ने कौन सा प्रश्न किया था ? जो गीताकार दालभात में मूसरचंद की तरह मोक्ष को बीच में घुसेड़ रहा है । क्या आत्मा की अमरता सिद्ध होने से आदमी को हर किसी की हत्या कर देना चाहिए ? क्या अर्जुन आत्मा की विशेषता पूछ रहा है या कुलधर्म, जातिधर्म या वर्णसंकरता के विषय में ? क्या गीताकार ने सभी पाठकों को मूर्ख समझ रखा है, जो अनर्गल आप्रासंगिक उत्तर

दिये जा रहा है ?

हे अर्जुन ! यह आत्मा सबके शरीर में सदा ही अवध्य है। इस कारण सम्पूर्ण प्राणियों के लिये तू शोक करने योग्य नहीं है। 30/2 गीता

क्या संपूर्ण प्राणियों की हत्या करने पर भी इंसान को शोक नहीं करना चाहिए, क्योंकि आत्मा अमर है ? यह ज्ञान है या अज्ञान ! फिर तो गीता भक्तों को मुर्गा-मछली, अंडे बेझिझक खाना चाहिए, क्योंकि इन सबकी आत्मा अमर है ! अवध्य है !!

1. तथा अपने जातीय धर्म को देखकर भी तू भय करने योग्य नहीं है, क्योंकि क्षत्रिय के लिये धर्मयुक्त युद्ध से बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्तव्य नहीं है। 31/2 गीता

2. हे पार्थ ! अपने-आप प्राप्त हुए और खुले हुए स्वर्ग के द्वार रूप इस प्रकार के युद्ध को भाग्यवान क्षत्रिय लोग ही पाते हैं। 32/2 गीता

3. किन्तु यदि तू इस धर्मयुक्त युद्ध को नहीं करेगा तो स्वधर्म और कीर्ति को खोकर पाप को प्राप्त होगा। 33/2 गीता

4. तथा सब लोग तेरी बहुत काल तक रहने वाली अपकीर्ति का भी कथन करेंगे और माननीय पुरुष के लिये अपकीर्ति मरण से भी बढ़कर है। 43/2 गीता

5. या तो तू युद्ध में मारा जाकर स्वर्ग को प्राप्त होगा अथवा संग्राम में जीतकर पृथ्वी का राज्य भोगेगा। इस कारण हे अर्जुन ! तू युद्ध के लिये निश्चय करके खड़ा हो जा। 37/2 गीता

युद्ध क्षत्रिय के लिये स्वर्ग का द्वार है, युद्ध से भागना कायरता है। इस प्रकार गीताकार श्रीकृष्ण की आड़ में अर्जुन को क्षात्र धर्म की याद दिलवाकर बर्गला रहा है। जब श्रीकृष्णजी, जरासंध से परेशान होकर द्वरिकापुरी भाग गए थे, तब स्वर्ग का द्वार, क्षात्रधर्म श्रीकृष्णजी भूल गए थे या गीताकार !! मरने पर स्वर्ग और जीतने पर पृथ्वी का राज्य, यदि तीसरी स्थिति बनती कि अर्जुन को कैद कर लिया जाता, तब तो अर्जुन को माया मिलती न राम वाली स्थिति हो जाती ! अर्जुन न कायर है न युद्ध से डर रहा है, उसका मूलभूत डर है युद्ध में होने वाली जन-धन की हानि होने पर, वर्ण संकरता फैलना, पितरों का परलोक बिगड़ना आदि है, इन प्रश्नों को छोड़कर गीताकार अपना ही राग अलापे जा रहा है।

दूसरे अध्याय के 39 वें श्लोक से ही गीताकार भटक जाता है, जब वह कर्मयोग का नया विषय अपने आप उठाता है। जबकि अर्जुन ने कोई नया प्रश्न खड़ा ही नहीं किया है।

सब ओर से परिपूर्ण जलाशय के प्राप्त हो जाने पर छोटे जलाशय में मनुष्य का जितना प्रयोजन रहता है, ब्रह्म को तत्त्व से जानने वाले ब्राह्मण का समस्त वेदों में उतना ही प्रयोजन रह जाता है। 46/2 गीता

अब पाठक विचार करे कि वेदों का प्रसंग यहाँ उठाने की क्या आवश्यकता है ? गीताकार अर्जुन द्वारा बिना जिज्ञासा किये ही नई-नई बातें श्रीकृष्णजी के मुँह से उगलवा रहा है। अब देखिये – न तो अर्जुन ने कर्म के बारे में पूछा न अधिकार के बारे में फिर भी गीताकार कहता है— तेरा कर्म करने में अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिये तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो। 47/2 गीता

अब पाठक विचार करे, संसार का हर कार्य कामना, लालसा या कुछ न कुछ फल प्राप्ति के विचार से ही प्रारंभ होता है। फिर गीताकार मूर्खतापूर्ण सिद्धांत हिन्दू समाज पर थोपते हुए कहता है कि कर्म करो, फल की इच्छा मत करो। अरे कालिदास के नातियों बिना फल की इच्छा के काम करना, मूर्खता नहीं तो और क्या है ? जैसे हमें बंबई में कोई भी काम नहीं है न हमारा घूमने-फिरने का प्लान है, फिर हम वहाँ क्यों जाएँ ? भोजन करने की इच्छा

ही नहीं तो पकाने में टाईम क्यों खराब करें ?कहीं जाना ही नहीं फिर रेल टिकिट के लिये क्यों रोते फिरें ? बिना कामना के संसार में कुछ भी नहीं होता । ईश्वर या धर्म की आड़ में ऐसे सिद्धांतों के प्रचार ने ही हमारे देश व समाज को रसातल में पहुँचा दिया है।

हे केशव ! समाधि में स्थित परमात्मा को प्राप्त हुए स्थिर बुद्धि पुरुष का क्या लक्षण है ?वह स्थिर बुद्धि पुरुष कैसे बोलता है ?कैसे बैठता है और कैसे चलता है ? 54/2 गीता

अब बुद्धिमान पाठक विचार करें— क्या युद्ध स्थल में ऐसे प्रश्न उठाना प्रासंगिक है ?क्या प्रथम अध्याय में अर्जुन द्वारा उठाए गए आठ प्रश्नों से इन प्रश्नों का कोई भी संबंध है ?पाठक जानते हैं कि प्रश्न में से प्रश्न निकलना स्वभाविक है, किंतु जिस संदर्भ में मूलभूत प्रश्न उठाए गए हैं, उसी संदर्भ में सहायक प्रश्न किये जा सकते हैं। अर्जुन न तो युद्ध से भयभीत है, न क्षात्र धर्म से विमुख। उसके प्रश्न व्यावहारिक जीवन से संबंधित है, उनका सप्रमाण उत्तर दिया जाना चाहिए था। ऐसा नहीं है कि श्रीकृष्ण जी को अर्जुन के मूलभूत प्रश्नों का उत्तर नहीं याद होगा? किंतु गीताकार ने कमरे में बैठकर श्रीकृष्ण—अर्जुन संवाद का कथानक बनाकर प्रश्नोत्तर शैली में अपनी दार्शनिक मान्यताओं को भगवद् वाणी के नाम पर हिन्दू समाज पर थोपने का अद्भुत षड़यंत्र रचा था। उसमें वह यह भी भूल गया कि कब कौन सा प्रश्न उठाना और कैसे उसका समाधान करवाना है। कैसे कथानक को आगे बढ़ाना है। शायद कवि ने रचनात्मक लेखन में डिप्लोमा नहीं किया होगा ? इसीलिये वह भटक गया और धर्म तथा ईश्वर की आड़ दुनिया के बड़े-बड़े विद्वानों को भी भटका गया।

अब तीसरे अध्याय में अर्जुन एक नया प्रश्न खड़ा करते हुए कहता है— हे जनार्दन ! यदि आप को कर्म की अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ मान्य है तो फिर हे केशव ! मुझे भयंकर कर्म में क्यों लगाते हैं ?गीताकार आगे जातीय धंधों की वकालात करते हुए कहता है— तू शास्त्रविहित कर्तव्य (जातीय) कर्म कर, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। कर्म न करने से तेरा शरीर निर्वाह भी नहीं सिद्ध होगा ? 8/3गीता

गीताकार श्रीकृष्णजी या कथित भगवान की आड़ में कहता है कि हर इंसान को अपने जातीय धंधे करना चाहिए। यदि जाति-वर्ण के बंधनों को तोड़ दिया तो वर्ण संकरता पैदा हो जाएगी। जो लोग विद्वान हैं, उन्हें भी जाति-वर्ण के बंधन नहीं तोड़ना चाहिए, क्योंकि ऐसा होने पर निम्न वर्ण के लोगों के भाव बढ़ जाएंगे ? अतः चाहे अपना जातीय धंधा या कर्म, गुण रहित हो और दुसरे का जातीय धंधा या कर्म अति उत्तम या लाभदायक हो तो भी उन्हें न करो, ऐसी अमानवीय शिक्षा देते हुए गीताकार कहता है—

1. श्रेष्ठ पुरुष (उच्च वर्ण का पुरुष) जो—जो आचरण करता है, अन्य (निम्न वर्ण के) पुरुष भी वैसा ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण कर देता है, समस्त मनुष्य समुदाय उसी के अनुसार बरतने लग जाता है। 21/3 गीता

2. यदि मैं कर्म न करूँ तो ये सब मनुष्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाएँ और मैं (वर्ण) संकरता को करनेवाला होऊँ तथा इस समस्त प्रजा को नष्ट करने वाला बनूँ। 24/3गीता

3. हे भारत ! कर्म में आसक्त हुए अज्ञानीजन (शूद्र,वैश्य) जिस प्रकार कर्म करते हैं, आसक्ति रहित विद्वान भी लोक संग्रह करना चाहता हुआ उसी प्रकार कर्म करे। 25/3गीता

4. परमात्मा के स्वरूप में अटल स्थित हुए ज्ञानी पुरुष को चाहिए कि वह शास्त्र विहित (जातीय) कर्मों में आसक्ति वाले अज्ञानियों (एस.सी. एस.टी. व ओ.बी.सी.आदि शूद्रों) की बुद्धि में भ्रम अर्थात् कर्मों में अश्रद्धा उत्पन्न न करे, किंतु स्वयं शास्त्र विहित समस्त कर्म (जातीय धंधे) करता हुआ,उनसे (शूद्रों से) भी वैसे ही करवावे। 26/3 गीता

5. प्रकृति के गुणों (पिछले जन्मों या कर्मों) से अत्यन्त मोहित हुए मनुष्य गुणों में और कर्मों में आसक्त रहते

हैं, उन पूर्णतया न समझनेवाले मंदबुद्धि (शूद्रों, अछूतों, नारियों, बनियों आदि) अज्ञानियों को पूर्णतया जानने वाला ज्ञानी (ब्राह्मण-क्षत्रिय) विचलित न करे। 29/3 गीता

6. अच्छी प्रकार आचरण में लाये हुए दूसरे के धर्म (जातीय धंधे) से गुणरहित भी अपना धर्म (जातीय धंधा) अति उत्तम है। अपने धर्म (जातीय धंधे) में तो मरना भी कल्याणकारक है और दूसरे का धर्म (जातीय धंधा) भय (नरक) को देने वाला है। 35/3 गीता

उपर्युक्त विवरण से पाठक समझ ही गए होंगे कि गीताकार ज्ञान के नाम पर अज्ञान बांटते हुए जातिवाद का जहर घोल रहा है। अब गीताकार धर्मकी देता है कि यदि मेरी बातें नहीं मानोगे, तो नरक में जाओगे। देखिये— जो मनुष्य मुझमें दोषारोपण करते हुए मेरे मत के अनुसार नहीं चलते हैं, उन मूर्खों को तू सम्पूर्ण ज्ञानों में मोहित और नष्ट हुए ही समझ। 32/3 गीता

चौथे अध्याय में अर्जुन के बिना प्रश्न किये ही गीताकार अपने ज्ञान को सनातन पुरातन बताने के चक्कर में कहता है— “मैंने इस अविनाशी योग को सूर्य से कहा था, सूर्य ने अपने पुत्र वैवस्वत मनु से कहा, मनु ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु से कहा। 1/4 गीता

यदि गीता का अविनाशी ज्ञान अनादि काल से चला आ रहा है, फिर गीताकार को कुरुक्षेत्र में अट्टारह अध्याय क्यों उगलने पड़े ? यदि यह ज्ञान प्राचीन काल से चला आ रहा है, फिर नया शास्त्र रचने की आवश्यकता ही क्या थी ? यदि पुराने शास्त्र लुप्त हो गये, तो ईश्वर ने अपनी अविनाशी वाणियों की रक्षा क्यों नहीं की ?

चौथे अध्याय में गीताकार श्रीकृष्ण को ईश्वर घोषित कर देता है और अर्जुन को अपनी विशेषताएँ बताता है कि जब-जब धर्म की हानि होती है, मैं अवतार लेता हूँ और भक्तों का उद्धार करता हूँ। 7-8/4 गीता जो गीताकार के वचनों पर तर्क करे, शंका करे, तथ्यों को तलाशने की कोशिश करे, उन्हें धमकी देते हुए गीताकार श्रीकृष्ण की आड़ में कहता है— “विवेकहीन और श्रद्धारहित संशययुक्त मनुष्य परमार्थ से अवश्य भ्रष्ट हो जाता है। ऐसे संशय युक्त मनुष्य के लिये न यह लोक है न परलोक है और न सुख ही है। 40/4 गीता

अब पाँचवाँ अध्याय एक नये प्रश्न से प्रारंभ होता है जब गीताकार अर्जुन से उगलवाते हुए कहता है— “हे कृष्ण ! आप कर्मों से सन्यास की और फिर कर्मयोग की प्रशंसा करते हैं। इसलिये इन दोनों में से जो एक मेरे लिये भलीभाँति निश्चित कल्याणकारक साधन हो, उसको कहिये। 1/5 गीता

अब बुद्धिमान पाठक विचार करें, भला अर्जुन को कहना ही था तो यह कहता कि महाराज ! मेरे मूलभूत आठ प्रश्नों का उत्तर दिये बिना आप आत्मा- परमात्मा कर्मयोग, ज्ञानयोग, सन्यासयोग आदि को बीच में क्यों घुसेड़ते हो ? तब तो गीता का कथानक सही, अन्यथा गीताकार का प्रलाप मात्र ही है।

“मेरा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपों का भोगनेवाला, सम्पूर्ण लोकों के ईश्वरों का भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूत प्राणियों का सुहृदय अर्थात् स्वार्थ रहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्त्वों से जानकर शान्ति को प्राप्त होता है।” 29/5 गीता

भला न तो अर्जुन ईश्वर के विषय में जानना चाहता है न तप यज्ञ के विषय में, गीताकार जबरन ही ईश्वरों का भी ईश्वर बनना चाहता है।

छठवें अध्याय में अर्जुन अनावश्यक प्रश्न उठाते हुए कहता है— “हे श्रीकृष्ण ! जो योग में श्रद्धा रखनेवाला है, किन्तु संयमी नहीं है, इस कारण जिसका मन अन्तः- काल में योग से विचलित हो गया है, ऐसा साधक योग की सिद्धि को अर्थात् भगवत -साक्षात्कार को प्राप्त होकर किस गति को प्राप्त होता है।” 37/6 गीता

अब पाठक विचार करें, क्या अर्जुन अपने मूलभूत प्रश्नों से भटक गया है या गीताकार उसे भटका रहा है?

सातवाँ अध्याय गीताकार एक नई जिज्ञासा से प्रारंभ करते हुए श्रीकृष्णजी के मुँह से उगलवाता है—

“मैं तेरे लिये इस विज्ञान सहित तत्त्वज्ञान को सम्पूर्णतया कहूँगा, जिसको जानकर संसार में फिर और कुछ भी जानने योग्य शेष नहीं रह जाता ।” 2/7 गीता

अब पाठक विचार करें, यदि गीताकार का तत्त्वज्ञान ही अंतिम ज्ञान है । फिर संसार में गीता की रचना के बाद भी जो न्यूटन, गैलिलियो, आइंस्टीन, मुहम्मद साहेब, मार्क्स, महात्मा फुले, डॉ. अम्बेडकर, स्वामी विवेकानंद, डॉ. अब्राहम टी. कोबूर, इब्न रोश्द आदि बुद्धिमान हुए हैं । क्या इनके द्वारा खोजी गई चीजों और सेवाओं का कोई मूल्य नहीं ? हमारे देश के पिछड़ेपन में तत्त्वज्ञान या अंतिम सत्य का ही योगदान रहा है ।

“माया के द्वारा जिनका ज्ञान हरा जा चुका है, ऐसे असुर स्वभाव को धारण किये हुए मनुष्यों में नीच दूषित कर्म करने वाले मूढ़ लोग मुझको नहीं भजते । 15/7 गीता

गीताकार को अपने तत्त्वज्ञान पर भरोसा नहीं है, इसीलिए वह अपने विरोधियों को असुर स्वभाव का कहकर अपनी मूर्खताओं को छिपाना चाहता है ।

आठवें अध्याय में गीताकार अर्जुन की आड़ में श्रीकृष्णजी से पुनः नये-नये प्रश्न करते हुए कहता है— “हे पुरुषोत्तम ! वह ब्रह्म क्या है ? अध्यात्म क्या है ? कर्म क्या है ? अधिभूत नाम से क्या कहा गया है ? और अधिदैव किसको कहते हैं ? 1/8 गीता

“हे मधुसूदन ! यहाँ अधियज्ञ कौन है और वह इस शरीर में कैसे है ? तथा युक्तचित्त वाले पुरुषों द्वारा अन्त समय में आप किस प्रकार जानने में आते हैं ?” 2/8 गीता

अब बुद्धिमान पाठक विचार करें, युद्ध क्षेत्र में इस प्रकार के प्रश्न उठाना क्या उचित है ? दोनों ओर सेनाएँ खड़ी हैं, श्रीकृष्ण-अर्जुन सुकरात-प्लेटो बनकर आध्यात्मिक ज्ञान झाड़े जा रहे हैं ! और दोनों ओर के सारे योद्धाओं एवं सेनाओं को जैसे सांप सूँघ गया है या शायद सभी ने बेहोसी की दवा पी रखी है, इसीलिए बीच में कोई कुछ नहीं बोल रहा है !!

नौवें-दसवें अध्याय में पुनः ईश्वर की विभूतियों को गिनाने में गीताकार इतना भी ध्यान नहीं रखता कि वह ईश्वर की महानता बता रहा है या उसे बदनाम कर रहा है । तभी तो वह बिना सोंचे समझे ही श्रीकृष्ण जी के मुँह से कहलवाता है—

“यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभाव से मेरा भक्त होकर मुझको भजता है, तो वह साधू ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है । 30/9 गीता, “मैं नक्षत्रों का अधिपति चंद्रमा हूँ । 21/10 गीता, देवों में इन्द्र हूँ । 22/10 गीता, राक्षसों में धन का स्वामी कुबेर हूँ । 23/10 गीता, स्थिर रहनवालों में हिमालय पहाड़ हूँ । 25/10 गीता, वृक्षों में पीपल हूँ । 26/10 गीता, मनुष्यों में राजा हूँ । 27/10 गीता, पशुओं में मृगराज सिंह और पक्षियों में गरुड़ हूँ 30/10 गीता, मछलियों में मगर हूँ । 31/10 गीता, छल करने वालों में जुआ हूँ । 36/10 गीता, पाण्डवों में अर्जुन हूँ । 37/10 गीता

भला गीताकार को क्या पता था कि भविष्य में आदमी चंद्रमा के सीने पर चढ़कर उसे अपना जूता सुंधा देगा ? और चंद्रमा नक्षत्र नहीं, उपग्रह है । शायद गीता —कार को भूगोल का भी ज्ञान नहीं था । इंद्र से ईश्वर की तुलना करना ठीक नहीं क्योंकि इंद्र नंबर वन का शराबी, सबाबी और कबाबी था । इसीलिए श्रीकृष्णजी ने इंद्र पूजा का विरोध कर गोवर्धन पर्वत की पूजा प्रारंभ करवाई थी ।

जुए से ईश्वर की तुलना करना तो ईश्वर का सरासर अपमान है । गरुड़, वृक्ष, मगर और हिमालय से ईश्वर की तुलना करना गीताकार का पागलपन है । गीताकार को इतना भी ज्ञान नहीं है कि हिमालय क्षण-क्षण बदल रहा

है और मगर, मछली नहीं सरीसृप है।

ग्यारवें अध्याय में गीता समाप्त हो जानी चाहिए, क्योंकि गीताकार स्वयं अर्जुन से कहलवाता है कि —“मुझ पर अनुग्रह करने के लिये आपने जो परम गोपनीय अध्यात्म विषयक वचन अर्थात् उपदेश कहा, उससे मेरा यह अज्ञान नष्ट हो गया है। 1/11 गीता, किंतु इसे भूलकर अर्जुन नया प्रश्न करता है कि मुझे आप परमात्मा के विराट रूप के दर्शन करवाईये 4/11 गीता

भला जब अर्जुन को पता चल ही गया था कि श्रीकृष्णजी ईश्वर है या ईश्वर के अवतार हैं। फिर दर्शन सुबह-शाम युद्ध के बाद कभी भी कर लेता। दोनों सेनाओं के बीच अपनी चर्चा को लंबा खींचना क्या उचित है? यदि भारत-पाकिस्तान या भारत-चीन के युद्ध में भी हमारे कुछ धार्मिक सैनिक इस प्रकार के प्रश्नोत्तर करने लग जाए, तो समझिए हमारे देश का तो हो गया बंटाढार !! गीता के ज्ञान के बाद ही भारत विदेशियों का गुलाम हुआ था, शायद हमारे वीरों को युद्ध में जय-पराजय लाभ-हानि मान-अपमान की चिंता किये बगैर युद्ध लड़ने की प्रेरणा, गीता माता से ही मिली होगी ! तभी हम विदेशियों की सदियों तक गुलामी करते रहे।

विराट स्वरूप दिखाने के बाद भी गीताकार का पेट नहीं भरा, वह अर्जुन से नये-नये प्रश्न करवाकर गीता का आकार पूतना के पेटीकोट से भी बड़ा करता जा रहा है ! देखिये- बारहवें अध्याय में अर्जुन नया प्रश्न ठोक देता है—“ जो अनन्य प्रेमी भक्तजन पूर्वोक्त प्रकार से निरन्तर आपके भजन-ध्यान में लगे रहकर आप सगुण रूप परमेश्वर को और दूसरे जो केवल अविनाशी सच्चिदानंदघन निराकार ब्रह्म को ही अति-श्रेष्ठ भाव से भजते हैं—उन दोनों प्रकार के उपासकों में अति उत्तम योगवेत्ता कौन है ? 1/12 गीता

चौहदवें अध्याय में अर्जुन द्वारा गीताकार तीन गुणों से युक्त इंसान की विशेषताएँ पूछने लग जाता है। (2/14 गीता) सोलहवें अध्याय में बिना प्रश्न किये ही गीताकार श्रीकृष्णजी से आसुरी प्रकृति वाले लोगों की विशेषताएँ बताते हुए जैन, बौद्ध आदि नास्तिकों पर हमला करते हुए कहता है— “ वे आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य कहा करते हैं कि जगत् आश्रयरहित, सर्वथा असत्य और बिना ईश्वर के, अपने-आप केवल स्त्री-पुरुष के संयोग से उत्पन्न है, अतएव केवल काम ही इसका कारण है। इसके सिवा और क्या है ? 8/16 गीता

भला बुद्धिमान लोगों को आसुरी प्रकृति का कहना गीताकार की मूर्खता नहीं तो क्या है ? आज वैज्ञानिकों ने ब्रह्माण्ड के कण-कण की खोज कर ली है। संसार प्राकृतिक कारणों से अस्तित्व में आया है, जीवन का विकास नहीं, निर्माण हुआ है। क्या विकासवाद को मानना आसुरी होना है ? जिस देश में बुद्धिमानों को असुर, राक्षस, दैत्य या नास्तिक कहकर अपमानित किया जाता हो, भला वह देश और समाज कैसे उन्नति कर सकता है ?

सत्रहवें अध्याय में गीताकार नया प्रश्न उठवाता है — हे कृष्ण ! जो मनुष्य शास्त्र विधि को त्यागकर श्रद्धा से युक्त हुए देवादि का पूजन करते हैं, उनकी स्थिति फिर कौन सी है ? सात्विक है अथवा राजसी या तामसी ? 1/17 गीता

अट्ठारहवें अध्याय में अर्जुन पुनः नई जिज्ञासा ले बैठता है— “ हे महाबाहो ! हे अन्तर्यामिन ! हे वासुदेव ! मैं सन्यास और त्याग के तत्व को पृथक्-पृथक् जानना चाहता हूँ। 1/18 गीता इसी में गीताकार बड़ी अनर्गल बात कहता है—

1. “जो तू अहंकार का आश्रय लेकर यह मान रहा है कि मैं युद्ध नहीं करूँगा, तो तेरा यह निश्चय मिथ्या है, क्योंकि तेरा स्वभाव तुझे जबर्दस्ती युद्ध में लगा देगा। 59/18 गीता

2. हे कुन्तीपुत्र ! जिस कर्म को तू मोह (अज्ञान) के कारण करना नहीं चाहता, उसको भी अपने पूर्वकृत (पिछले जन्मों के) स्वभाविक कर्म से बँधा हुआ परवश होकर करेगा। 60/18 गीता

3. हे अर्जुन ! शरीर रूपी यंत्र में आरुढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों का अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमण कराता हुआ, सब प्राणियों के हृदय में स्थित है। 61/18 गीता

यदि अर्जुन पुर्वकृत कर्मों या स्वभाववश युद्ध करता ही, फिर उसे गीता का लंबा-चौड़ा पाठ पढ़ाने की जरूरत ही क्या थी ? यदि ईश्वर स्वयं अर्जुन के रूप में है या भगवान सबके दिलों में बैठकर सबको नचाता-फिराता है, फिर दोनों सेनाओं का टाईम खराब करने की जरूरत ही क्या थी ?

गीता की आड़ में भारत माता एवं हिन्दू समाज का कितना टाईम, टेलेंट और ट्रेजरी बरबाद किया जा रहा है, उसका तो कोई पार ही नहीं है, किंतु कालिदास के कुछ नाती तो इतने अकलमंद हैं कि भारतीय संविधान के स्थान पर गीता को राष्ट्रीय ग्रंथ घोषित करने पर तुले हुए हैं। वास्तव में अंधभक्ति और मूर्खता लाइलाज बीमारियाँ हैं, यदि ये शिक्षित लोगों को हो जाए तो !!

संदर्भ ग्रंथों की सूची —

1. गीता भाष्य आदिशंकराचार्य गीता प्रेस, गोरखपुर
2. यथार्थ गीता, स्वामी प्रभुपाद
3. गीता का बुद्धिवादी अध्ययन, भदन्त आनंद कोत्सल्यायान
4. ओशो की गीता, डायमण्ड पॉकेट बुक्स, दिल्ली



बुद्ध ने भारतीय संस्कृति को लोक कल्याणक बनाया

डॉ. ज्योति सिंह गौतम

असिस्टेंट प्रोफेसर—राजनीति विज्ञान

म0ल0वा0 राजकीय बालिका महाविद्यालय, झांसी (उ0प्र0)

हम जब प्राचीन भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में विचार विमर्श करते हैं तो, अधिकांश आम जन की यह धारणा उभर कर सामने आती है कि हमारी भारतीय संस्कृति विश्व की सर्वश्रेष्ठ संस्कृति रही है। एक समय भारत विश्व का जगद्गुरु रहा और सोने की चिड़िया भी। भारत का वह कौन सा काल है, जब सोने की चिड़िया रहा इस यथार्थ से आम जन कल अनविज्ञ था और आज भी। उसे यह भी ज्ञान नहीं है कि जगद्गुरु तो रहा, परन्तु वो कौन से आचार्य थे? कौन से महापुरुष थे? जिन्होंने अपने ज्ञान और मेधा के समक्ष विश्व को नत मस्तक किया। वह कौन सी भारत विभूतियाँ थी, जिन्होंने अपने त्याग और चरित्र बल का विश्व में डंका बजाया। आज भारत की सवा अरब अधिकांश आवादी, माननीय, मूल्यों और नैतिक मूल्यों के पराभव के कारण परस्पर पशुवत व्यवहार कर दुष्मनों की भोंति, कहीं जातिवादी झगड़े में कट मर रहे हैं, कहीं धार्मिक कट्टरता की जंग में। सर्वत्र इस स्थिति में भारतीय समाज किंकर्तव्य विमूढ़ जैसी स्थिति में नजर आ रही है। इसे विडम्बना ही कहा जायेगा कि विश्व को करुणा—मैत्री का संदेश देने वाले भारत के वासिंदे आज भटकाव और अज्ञानतावस अपने मनीषियों के इस संदेश को और स्वयं उन्हें भूल कर अवनति की काली गुफा में प्रवेश करते चले जा रहे हैं। आज आवश्यकता है भारीय जनमानस को भटकाव से रोक कर करुणा—मैत्री के सद्मार्ग पर अविलम्ब गतिमान करने की। अन्यथा की स्थिति घातक होगी।

भारतीय संस्कृति की बुद्ध से पूर्व की स्थिति :-

“बुद्ध के जन्म के समय भारत में पुराना वैदिक धर्म प्रचलित था, लेकिन वह बहुत बदल गया था और अपने ऊँचे आदर्श से नीचे गिर चुका था। पुरोहितों ने तरह-तरह के कर्मकाण्ड, पूजापाठ और अंध विश्वास जारी कर दिये थे, इस उद्देश्य से कि इससे उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत होगी। जाति बंधन बहुत कड़ा होता जा रहा था। आम लोग जादू टोना, शकुन अपशकुन मन्त्र—तन्त्र और स्यानों से डरते थे। इन तरीकों से पुरोहितों ने जनता को अपनी मुट्ठी में कर रखा था।”¹

जवाहरलाल नेहरू की ही भाँति वैदिक संस्कृति का ऐसा विकृत स्वरूप हो जाने की पुष्टि स्वामी विवेकानन्द ने भी की है। स्वामी जी लिखते हैं कि, “आप को यह जान कर हैरानी होगी, प्राचीन कर्मकाण्ड के मुताबिक वह अच्छा पुरोहित नहीं, जो गोमांस नहीं खाता था, उसे कुछ निश्चित अवसरों पर बैल की वलि देकर मांस अवश्य खाना चाहिए। वह आगे लिखते हैं कि भारत में एक ऐसा समय रहा है, जब बिना गोमांस खाये कोई पुरोहित, पुरोहित नहीं रह सकता था।”² इसी प्रकार वैदिक संस्कृति में देवताओं के और उनके आचार्यों के और भी तमाम प्रकार के चारित्रिक गिरावट के उदाहरण भरे पड़े हैं। कहा जा सकता है कि यह संस्कृति गिरावट की चरम सीमा पार कर चुकी थी। जहाँ वैदिक पुरोहितों ने जादू टोना, कर्मकाण्ड जैसी अनेक सामाजिक कुरीतियों को ईजाद करके सम्पूर्ण समाज को सही मार्ग पर चलने से विचलित किया वहीं वह स्वयं भी अनेक अनैतिक कार्यों में उलझ कर अवनति की गर्त में दब गये।

बुद्ध की तर्क संगत—लोकार्थी सांस्कृतिक पहल :-

वैदिक संस्कृति अनेक प्रकार की कुरीतियों के मकड़जाल में उलझती ही जा रही थी जवाहरलाल नेहरू लिखते हैं कि “उसी समय बुद्ध एक बहुत बड़े लोकप्रिय सुधारक के रूप में प्रकट हुए और उन्होंने पुरोहितों के इन अत्याचारों पर और पुराने वैदिक धर्म में, जो खराबियाँ आ गयी थी, उन पर हमला बोल दिया। उन्होंने देवताओं के नाम पर की जाने वाली पशु बलि बगैरा की घोर निन्दा की और इस बात पर जोर दिया कि पशु बलि की बजाय मनुष्य को अपने क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या और बुरे विचारों की बलि देना चाहिए।³ बुद्ध अपने तार्किक और लोकोपयोगी विचारों को सूर्य की किरणों की भाँति प्रासाद से लेकर झोपड़ी तक बिना किसी भेदभाव के जन-जन तक पहुँचाना चाहते थे। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए उनके समक्ष अनेक चुनौतियाँ भी थीं। सबसे बड़ी चुनौती तो यह थी कि उनके अधिकांश विचार पूर्व से स्थापित वैदिक संस्कृति के विपरीत थे। वैदिक संस्कृति के प्रचारक संस्कृत के विद्वान आचार्य थे। इसके विपरीत बुद्ध के पास न कोई संगठन था न ही विद्वान भाषा विद। इस समय तक भाषा ने व्याकरण की बेड़ियाँ भी नहीं पहनी थी। ई०पू० दूसरी सदी में पाणिनी का पहला व्याकरण शास्त्र सृजित हुआ तभी भाषा का नियमन प्रारम्भ हुआ।

इन सब चुनौतियों को बुद्ध ने सहर्ष अंगीकार करते हुए लोक कल्याणार्थ अपनी साधना प्रारम्भ कर दी। बुद्ध ने सर्व प्रथम अपनी वाणी को जन-जन तक पहुँचाने के लिए सम्बन्धित सभी मुद्दों को नियमन में आवद्ध किया। अपने कार्य को सही ढंग से संचालित करने के लिए बुद्ध ने भिक्षु संघ की स्थापना की। यह संघ एक प्रकार से बुद्ध के विचारों के प्रचार-प्रसार का समूह था। संघ की आचार संहिता भी साथ ही निर्मित की। बुद्ध ने प्रारम्भ से ही अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए भिक्षुओं को उसे जन-जन तक पहुँचाने के लिए आदेशित किया, “चरथ भिक्षुवे बहुजन हिताय बहुजन सुखाय लोकानुकम्पाय।”⁴ (भिक्षुओं! विचरण करो! बहुतों के हित के लिये, बहुतों के सुख के लिए और लोक के कुशल क्षेम के लिए।

बुद्ध के संघ में तमाम वैदिक भाषा के ज्ञात बुद्ध की शरण में आ चुके थे, वह बुद्ध के बचनों को वैदिक संस्कृत के छन्दों में बनाना चाहते थे। बुद्ध जानते थे कि मेरे बचन कठिन वैदिक भाषा में परिवर्तित होने से आम जन तक नहीं पहुँच सकेंगे। उन्होंने आदेशित किया, “अनुजानामि भिक्षुवे, सकाय निरुक्तियाँ बुद्ध वचनं परियापुणितुं।” भिक्षुओं बुद्ध बचन को अपनी भाषा में कहना, छन्द में न करना चाहिए, जो करेगा वह अनिष्टकारक होगा।⁵

इस प्रकार बुद्ध ने अपनी प्रमुख भाषिक और प्रचारकों की समस्या का निदान कर अपनी विचार धारा का फैलाव प्रारम्भ कर दिया।

चूँकि बुद्ध बचन अलिखित थे। वह कहीं किसी षडयन्त्र या किसी भ्रांति के कारण अर्थहीन (विकृत) बनकर समाज में स्थापित न हो जायें इस आशंका के निवारण हेतु बुद्ध ने भिक्षु संघ के समक्ष एक कसौटी प्रस्तुत की, ‘जो बात तर्क संगत है, बुद्धि संगत है, लोक कल्याणक है वही मेरा बचन है।’⁶ तथागत बुद्ध ने जनता के बीच वही बात रखी जो मानव कल्याणक है। अस्तित्ववान है। जिस बात का मानव कल्याण से कोई सम्बन्ध नहीं, उसके अस्तित्व के सम्बन्ध में भी कुछ निश्चयात्क तौर से कहना सम्भव न हो तो ऐसी स्थिति में उन्होंने कहा, “लोक नित्य है, यही सच है और दूसरा वाद निरर्थक है। इसे मैंने अव्याकृत कथानक (अ-विषय) कहा है। अव्याकृत = अनिर्वचनीय अनिर्वचनीय विषय, जीव और शरीर, पुनर्जन्म ईश्वर, आत्मा आदि ⁷ तथागत बुद्ध ने कभी ऐसी चर्चा में नहीं पड़ना चाहा, जिसका सम्बन्ध मानव के कल्याण से न हो। इसलिए कोई भी ऐसी बात, जिसका मानव के कल्याण से कोई सम्बन्ध नहीं, यदि भगवान बुद्ध के सिर मढ़ी जाती है तो उसे बुद्ध वाणी स्वीकार नहीं करना चाहिए।

बुद्ध ने अपनी वाणी को यथार्थ परक और प्रभावी बने रहने हेतु सम्पूर्ण प्रबन्ध करके अहिर्निश उसके

प्रचार-प्रसार में जन कल्याण हेतु तल्लीन हो गये। उन्होंने कहा संसार में दुखों के दो रूप हैं। (1) सम्परायिक दुख (2) सांदिटिक दुख। (1) वह दुख, जो किसी को नरक या अपाप में जन्म ग्रहण करने पर भोगना पड़ता है तथा वह दुख, जो किसी को बार-बार जन्म ग्रहण करने से भोगना पड़ता है तथा वह दुख जो जन्म लेने मात्र से ही भोगना पड़ता है सम्परायिक दुख कहलाता है। वह दुख जो राग, द्वेष तथा मोह के कारण उत्पन्न होता है और राग द्वेष तथा मोह का क्षय कर देने से यही इसी शरीर में ही अंत किया जा सकता है— सांदिटिक दुख कहलाता है। तथागत बुद्ध ने मानव को जो सम्परायिक दुख की जकड़न में मानसिक तौर से फसा हुआ था उससे मुक्त किया। उन्होंने अपने धर्म को 'सांदिटिक धर्म' कहा है— "स्वाक्खातो भगवता धम्मो सांदिटिको, अकालिको, एहिपरिस्सिको, ओपनयिको, पच्चत्तं वेदित्तब्बो विज्जुहिंति" (भिक्षुओ! यह धर्म अच्छी तरह समझ कर कहा गया है, यह सांदिटिक है, यह अकालिक है। इसके बारे में कहा जा सकता है कि आओ और स्वयं देख लो! यह ऊपर उठाने वाला है और हर विज्ञ पुरुष इसका स्वयं साक्षात्कार कर सकता है।"⁸ वैदिक संस्कृति के पुनर्जन्म, कर्म, मोक्ष जैसे शब्दों का अस्तित्व बुद्ध की इस अभिधारणा के समक्ष खतरे में पड़ गया। वैदिक संस्कृति के पक्षकार भले ही बौद्ध पुनर्जन्म और वैदिक पुनर्जन्म तथा बौद्ध प्रज्ञा और वैदिक मोक्ष को शाब्दिक दृष्टि से एक कहकर जनता को भ्रमित करें। परन्तु इन शब्दों की आर्थिक भिन्नता छिपाई नहीं जा सकती है। बौद्ध दर्शन पूर्णतया अनात्मवादी है और वैदिक संस्कृति आत्मवादी। अनीश्वरवाद और अनात्मवाद बौद्ध धर्म के दो ऐसे हथियार हैं, जिनकी सहायता के बिना अबौद्ध मान्यताओं के झाड़-झक्काड़ (जादू-टौना, तन्त्र-मन्त्र आदि सभी) को साफ किया ही नहीं जा सकता है और इनकी सफाई बिना बुद्ध के तार्किक और बुद्धि संगत धर्म भवन श्री आधार शिला रखना असम्भव होगा।

तथागत बुद्ध ने वैदिक संस्कृति के इन सिद्धान्तों को खारिज कर समाज विरोधी करार दिया।⁹

- (क) वेदों की अपौरुसेयता (ईश्वरकृत) को नकारा।
- (ख) वेदों में वर्णित वर्ण व्यवस्था को नकारा और समाज के लिये अहित कर माना।
- (ग) जाति व्यवस्था पर कुठाराघात किया।
- (घ) आश्रय व्यवस्था को अस्वीकार किया। कारण यह कि शूद्र को इस व्यवस्था से वंचित रखा गया।
- (ङ) यज्ञों में पशु बलि का घोर विरोध किया।

बुद्ध ने अन्य भगवानों की तरह स्वयं को या अपनी सत्ता को किसी प्रकार की 'अपौरुसेय शक्ति' नहीं माना। उनका धर्म मनुष्य के लिये, एक मनुष्य द्वारा अविष्कृत धर्म था। यह अपौरुसेय नहीं था।

बुद्ध के धर्म की वास्तविकता—बुद्ध ने मानव को धर्म के प्रचलित स्वरूप के फन्दे से भी मुक्त कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी उनका धर्म, विशुद्ध तार्किक, बुद्धिगम्य और मानव कल्याणक है—

1. (क) जीवन की पवित्रता बनाए रखना धर्म है—
पवित्रताएं तीन हैं— (1) शारीरिक पवित्रता, (2) वाणी की पवित्रता तथा (3) मन की पवित्रता।
(ख) इन पाँच दुर्बलताओं से मुक्ति प्राप्ति की साधना—
जीव हिंसा, चोरी, व्यभिचार, झूठ और नशीले पदार्थों का सेवन।
(ग) तीन घातों से बचना—
शील घातक, चित्त घात और दृष्टि घात
2. जीवन में पूर्णता प्राप्त करना धर्म है।
3. निर्वाण प्राप्त करना धर्म है।
4. तृष्णा का त्याग धर्म है।

5. यह मानना कि सभी संस्कार अनित्य है धर्म है।

6. कर्म को मानव जीवन के नैतिक संस्थान का आधार मानना धर्म है।

बुद्ध की दृष्टि में अधर्म क्या है?

1. परा प्रकृति में विश्वास अधर्म है।

2. ईश्वर में विश्वास अधर्म है।

3. ब्रह्म सायुज्य पर आधारित धर्म अधर्म है।

4. आत्मा में विश्वास अधर्म है।

5. यज्ञ (बलिकर्म) में विश्वास अधर्म है।

6. कल्पनाश्रित विश्वास अधर्म है।

बुद्ध की दृष्टि में सद्धर्म क्या है?

- धर्म तभी सद्धर्म है जब वह सभी को ज्ञान के द्वार खोल दे।
- धर्म तभी सद्धर्म है जब वह शिक्षा देता है कि प्रज्ञावान वनो साथ ही शीलवान, करुणा वान और मैत्रीवान भी।
- धर्म तभी सद्धर्म हो सकता है जब एक आदमी और दूसरे आदमी के बीच की तमाम दीवारों को गिरा दे।
- धर्म तभी सद्धर्म है जब वह शिक्षा दे कि व्यक्ति का जन्म से नहीं कर्म से उसका मूल्यांकन होना चाहिए।
- धर्म तभी सद्धर्म है जब वह आदमी और आदमी के बीच समानता के भाव की अभिवृद्धि करें।¹⁰

तथागत बुद्ध की इस बुद्धिगम्य लोक कल्याणक देशना (उपदेश) को चंद शब्दों में समाहित करना असम्भव कार्य है, इनकी सम्पूर्ण देशना को उनके धम्म सारथी सारिपुत्र, महामोदगल्यायन, महाकाश्यप, आनंद, उपालि जैसे उनके विद्वान शिष्यों ने उनको श्रवण कर स्मृति के आधार पर आगे बढ़ाया। जिसे आगे चल कर सम्राट अशोक के समय में त्रिपिटक के रूप में लिपिवद्ध किया गया। ये तीनों पिटक हैं— 1— सुत्तपिटक, 2— विनय पिटक, 3— अभिधम्म पिटक। सम्पूर्ण बौद्ध वाङ्मय अथाह समुद्र की भाँति सम्पूर्ण विश्व में फैला पड़ा है।

तथ्यों से स्पष्ट होता है कि बुद्ध का यह 'बुद्धिगम्य' संदेश भारत की सीमाओं से बाहर खूब फला फूला। सम्राट अशोक, ई0 पूर्व 225, ने बौद्ध धर्म को अपना राज धर्म बनाया। इसी समय सम्राट मिलिंद बौद्ध राजा हुए यह महान बौद्ध दार्शनिक नागसेन के शिष्य थे। कुषाण वंश के शासक कनिष्क (ई0 सन् 78—120) ने भी बौद्ध धर्म को अपना राज धर्म बनाया। कनिष्क के ही काल में विश्व स्तर के विद्वान, आचार्य वसुमित्र, आचार्य अश्वघोष, शून्यवाद के प्रणेता आचार्य नागार्जुन, आचार्य वसुबंधु, आचार्य असंग, आचार्य दिग्दनाग, और आचार्य धर्मकीर्ति जैसे महान दार्शनिकों ने बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से तथागत बुद्ध के दर्शन का विश्लेषण किया और इसे विश्व धर्म के रूप में स्थापित किया। नालंदा विश्वविद्यालय को अपना धर्म केन्द्र बनाया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तथागत बुद्ध की आदर्श जीवन पद्धति की खुशबू बुद्ध के समय से लेकर पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ते ही गयी। और सम्राट अशोक से लेकर सम्राट कनिष्क तक आते-आते सम्पूर्ण एशिया और उसके ईदगिर्द के देशों का वायु मण्डल भी इसकी खुशबू से खूब महकने लगा। डा0 भदंत सावंगी मेधाकर के शब्दों में कहा जा सकता है कि "भारतीय संस्कृति के इतिहास में यह युग विशिष्ट महत्व रखता है। इसी युग में भारतीय संस्कृति बौद्ध संस्कृति के रूप में मध्य एशिया के मार्ग से होकर उत्तर और पश्चिम के देशों में फैली। यही वह समय है जब बौद्ध धर्म ने विश्वधर्म का रूप धारण किया था।"¹¹ बुद्ध की देशना को आज भी विश्व में लंका, कम्बोडिया, वर्मा, तिब्बत, चीन जैसे तमाम देश अपनी प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर के रूप में अंगीकार किये हुए हैं। भारत में बुद्ध और उनके दर्शन की स्थिति :—

मैं इस सम्बन्ध में स्वयं कुछ कहूँ इससे ज्यादा उचित होगा कि नेहरू जी की स्वीकारोक्ति का उल्लेख पहले करूँ। उन्होंने लिखा है— "भारत में बौद्ध धर्म एक अलग धर्म के रूप में करीब मित सा गया। जहाँ लंका से लेकर चीन तक दूर-दूर के मुल्कों में यह धर्म सर्वोपरि हो गया, वही अपनी जन्म भूमि भारत में यह फिर हिन्दू धर्म में समा गया, लेकिन हिन्दू धर्म पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा और इसने इस धर्म से बहुत से अंध विश्वास और पाखण्ड हटा दिये।"¹²

नेहरू जी स्वीकार करते हैं कि बुद्ध के आंदोलन से वैदिक संस्कृति में सुधार हुआ सुधार की नजर से पशु बलि का यज्ञों में प्रचल अवश्य समाप्त हुआ, परन्तु उनके अन्य सुझाव वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, पुनर्जन्म जैसे तमाम महत्वपूर्ण मुद्दे तो और अधिक फल-फूल रहे हैं। जाति प्रथा के विरुद्ध गांधी जी का यह कथन, “मुझे लगता है कि मेरा मन निरंतर विकसित हो रहा है। हो सकता है मेरे साथी मेरे साथ कदम से कदम मिला कर न चल सकें। 6 मई 1945 को गांधी जी ने नरहरि पारिख को लिखा— हमें अतिशूद्र और सवर्ण हिन्दू के बीच विवाह को बिना हिचक सर्वोच्च प्राथमिकता देना चाहिए। जहाँ माता पिता समझदार हैं वहाँ भिन्न धर्मों के बीच विवाह में भी कोई दिक्कत नहीं होना चाहिए।”¹³ डा० राम मनोहर लोहिया, शहीदे आजम भगत सिंह, स्वामी विवेकानन्द सभी ने बुद्ध द्वारा की गयी सांस्कृतिक पहल को स्वीकार किया है, फिर भी भारत में बौद्ध की लोकमंगल करने वाली बुद्धि परक जीवन जीने की शिक्षा पलायन कर गयी? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न आज देश के समक्ष प्रस्तुत है। यह प्रश्न भी हम से एक शोध परक अध्ययन की अपेक्षा कर रहा है। इस सम्बन्ध में डा० अम्बेडकर भी लिखते हैं कि, “भारत में बौद्ध संस्कृति के लोप हो जाने पर उन सभी लोगों को अत्यधिक आश्चर्य होता है, जिन्होंने इस विषय पर कुछ चिंतन किया है। बुद्ध की देशना, चीन, जापान, वर्मा, श्याम, इण्डोचीन, श्रीलंका, मलाया जैसे देशों में स्थापित है। केवल भारत में ही इसका अस्तित्व नहीं रहा है। ऐसा कैसे हो गया? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है।”¹⁴ हमें भारत की स्वस्थ और हृदयग्राही संस्कृति का निर्माण करने हेतु इस प्रश्न का उत्तर अविलम्ब खोजने की आवश्यकता है। बुद्ध की करुणा मैत्री से समन्वित संस्कृति ही देश में एक रूपता और नैतिकता कायम कर सकती है।

संदर्भ सूची—

1. नेहरू पं० जवाहर लाल, “विश्व इतिहास की झलक” संक्षिप्त संस्करण सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ० 31
2. विवेकानंद स्वामी, ‘द कम्प्लीट वर्क्स आफ स्वामी विवेकानंद’ जिल्द तीन—पृ० 536—174, सरिता पाक्षिक पत्रिका, दिल्ली प्रेस पत्र प्रकाशन प्रा० लि०, दिल्ली दि० प्रथम 1980, पृ० 131
3. नेहरू पं० जवाहर लाल “विश्व इतिहास की झलक” संक्षिप्त संस्करण, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन नई दिल्ली, 2005, पृ० 31
4. सुत्तपिटक (दीघ निकाय) का महापदान सुत्त (धम्मचक्क प्रवर्तन) अनुवादक राहुल सांकृत्यायन, एवं भिक्षु जगदीश कश्यप, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद बुद्ध बिहार लखनऊ, 2000, पृ० 106
5. भिक्षु जगदीश कश्यप, “पालि महा व्याकरण” प्रकाशक सुन्दर लाल जैन दिल्ली, 1963 पृ० 6
6. दीघनिकाय, महापरिनिव्वान सुत्त, भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद बुद्ध बिहार लखनऊ, 2000, पृ० 136
7. दीघ निकाय पोटपात सुत्त (अव्याकृत) भारतीय बौद्ध शिक्षा परिषद बुद्ध बिहार लखनऊ, पृ० 70
8. कौशल्यायन डा० भदंत आनंद ‘नग्न निवेदन’ ‘बुद्ध और उनका धर्म’ पीपल्स एजुकेशन सोसायटी, आनंद भवन दादाभाई नौरोजी रोड मुम्बई 1986, पृ० 15
9. डॉ० अम्बेडकर, ‘बुद्ध और उनका धर्म’ पीपल्स एजुकेशन सोसायटी, मुम्बई—1986, पृ० 15
10. डॉ० अम्बेडकर, ‘बुद्ध और उनका धर्म’ पीपल्स एजुकेशन सोसायटी, मुम्बई—1986, पृ० 244
11. मेधाकर डा० भदंत सावंगी, एशिया के महान बौद्ध सम्राट, ‘बुद्धभूमि प्रकाशन’ नागपुर, 2007, पृ० 42—43
12. नेहरू पं० जवाहर लाल, “विश्व इतिहास की झलक (संक्षिप्त) सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन नई दिल्ली, 2005, पृ० 31
13. मधुलियये, ‘डा० अम्बेडकर एक चिंतन’ प्रकाशक सरदार बल्लभ भाई पटेल एजुकेशन सोसायटी नई दिल्ली—1990, पृ० 36
14. डा० अम्बेडकर ‘बौद्ध धर्म की अवनति तथा पतन’ बाबा साहब डा० अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय खण्ड—7, डा० अम्बेडकर प्रतिष्ठान कल्याण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली 1998, पृ० 103



स्वामी विवेकानन्द का राजनीतिक दर्शन

ऑचल मीणा
जयपुर

“ईश्वर ही ईश्वर की उपलब्धि कर सकता है। सभी जीवन्त ईश्वर हैं, इस भाव से सबको देखो मनुष्य का अध्ययन करो, मनुष्य ही जीवन्त काव्य है। जगत में जितने ईसा या बुद्ध हुए हैं, सभी हमारी ज्योति से ज्योतिष्मान हैं। इस ज्योति को छोड़ देने पर ये सब हमारे लिए और अधिक जीवन्त नहीं रह सकेंगे, मर जाएंगे। तुम अपनी आत्मा के ऊपर स्थिर रहो।”
—स्वामी विवेकानन्द

भारत में विदेशियों को आने दो, शस्त्र बल से जीतने दो, किन्तु हम भारतीय अपनी आध्यात्मिकता से समस्त विश्व को जीत लेंगे। प्रेम, घृणा पर विजय पाएगा। हमारी आध्यात्मिकता पश्चिम को जीतकर ही रहेगी। सम्पूर्ण संसार ज्वालामुखी पर बैठा है जो शीघ्र ही फटने वाला है। जागृत और सजीव राष्ट्रीय जीवन की शर्त ही यह है कि हम अपने दर्शन और अपनी आध्यात्मिकता से विश्व पर विजय प्राप्त करें।
—स्वामी विवेकानन्द

जनवरी 1863 में एक प्रतिष्ठित कायस्थ परिवार में इनका जन्म हुआ था। स्वामी विवेकानन्द एक महान् अध्यात्मवादी, राष्ट्र निर्माता, भारतीय संस्कृति के भक्त और नैतिकता के पुजारी थे। वेद और वेदान्त की प्रतिष्ठा स्थापित कर उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि पश्चिम की तुलना में भारत की भाषा, साहित्य, ज्ञान—विज्ञान, इतिहास, संस्कृति और धर्म कहीं अधिक उन्नत और समृद्ध है। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति न होगी कि “पश्चिम के कूटनीतिज्ञों ने धर्म और संस्कृति के प्रसार की जो धारा पश्चिम से भारत की ओर बहाई थी उसके प्रभाव को स्वामी जी ने बदल दिया था और भारत से पश्चिम की ओर एक नई धारा प्रवाह शुरू कर दिया था। पश्चिम पर भारत को महत्ता की छाप लगाने वाले पहले देशभक्त राष्ट्र महापुरुष स्वामी विवेकानन्द थे।” संन्यास धारण करने से पहले विवेकानन्द का नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था, परन्तु संन्यास के बाद वे स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए।

स्वामी विवेकानन्द में राजनीति प्राप्त करने या उसे संचारित करने का कोई स्वप्न नहीं रखते थे, परन्तु जब वे भाषण देते थे तो उनमें राजनीतिज्ञ से भी उच्च सारगर्भित बातें होती थीं और उनमें से ही संकलित तत्त्वों को राजनीतिक दर्शन माना गया। वे महात्मा गांधी की भाँति ही राजनीति का आध्यात्मिकरण करना चाहते थे और उसका रूप जन कल्याणक बनाना चाहते थे। उन्होंने राजनीतिज्ञों द्वारा जन साधारण की उपेक्षा को कभी स्वीकार नहीं किया, वरन् यह दृढ़ मान्यता प्रकट की कि जन साधारण को ऊँचा उठाकर ही वास्तविक राजनीतिक शक्ति प्राप्त की जा सकती है। इसी तरह उन्होंने स्वतन्त्रता, राष्ट्रीय चरित्र और शक्ति के सम्बन्ध में अपने विचार समय—समय पर प्रकट किये।

उन्होंने निम्न बिन्दुओं पर राजनीतिक विचारों को प्रकट किया—

राष्ट्रवाद का विकास — स्वामी जी ने राष्ट्रीयता के आध्यात्मिक पक्ष ओजस्वी विचारों तथा प्रवचनों द्वारा नई पीढ़ी के युवकों में भारत के प्रति प्रेम, राष्ट्र के प्रति भक्ति, अतीत के प्रति गौरव तथा भविष्य के प्रति आस्था उत्पन्न की। अपने उद्गारों से नवयुवकों में विश्वास, आत्मनिर्भरता तथा स्वाभिमान का संचार किया। विश्रुंखलित और पराभूत राष्ट्र के पुनर्निर्माण का पथ प्रशस्त किया तथा हिन्दुत्व के सनातन धर्म का सन्देश पुनः विश्व को दिया। उनके सिद्धान्त को आगे चलकर विपिन चन्द्र पाल और अरविन्द घोष ने विकसित किया। विवेकानन्द ने धर्म को राष्ट्रीय जीवन का प्राण बताया और कहा कि राष्ट्रीय जीवन का आधार आध्यात्मिक विचार होने चाहिए। उन्होंने

विश्वास प्रकट किया कि धर्म राष्ट्रीय जीवन का केन्द्र हैं और भारत के इतिहास में सुदूर प्राचीनकाल से धर्म एक महान मार्गदर्शक सिद्धान्त रहा है।

स्वामी विवेकानन्द ने धर्म को राष्ट्रीय जीवन के लिए रीढ़ की हड्डी के समान महत्वपूर्ण माना और प्रभावशाली शब्दों में यह मत व्यक्त किया कि किसी भी देश का भविष्य महान् तभी हो सकता है, जब वह अपने महान् अतीत को विस्मृत न कर दे। आध्यात्मिकता को नवीन भारत का आधार बनाने की आवश्यकता पर बल उन्होंने इसलिए दिया क्योंकि आध्यात्मिकता ही भारतीयों को वह शक्ति और ओज दे सकती थी जिसकी उन्हें सबसे अधिक आवश्यकता थी।

स्वामी विवेकानन्द ने भारतीयों के हृदय में अपने देश की दैविक और आध्यात्मिक संस्कृति के प्रति स्वाभिमान की भावना भर दी। उन्होंने लोगों को यह सोचने पर विवश कर दिया कि यदि भारत ने अपनी आध्यात्मिकता का परित्याग कर दिया तो उसका विनाश हो जाएगा। स्वामी विवेकानन्द ने बड़े मार्मिक, हृदयस्पर्शी और चुनौती भरे शब्दों में चेतावनी दी “याद रखना कि यदि तुमने अपनी आध्यात्मिकता का परित्याग करके पाश्चात्य भौतिकवादी सभ्यता के पीछे दौड़ना शुरू कर दिया तो तीन पीढ़ियों में तुम्हारी जाति नष्ट हो जाएगी, क्योंकि राष्ट्र के रीढ़ की हड्डी टूट जाएगी, जिसकी नींव पर राष्ट्रीय भवन का निर्माण किया गया है वह हिल उठेगी और परिणाम होगा सर्वनाश।”

स्वतन्त्रता का सिद्धान्त – विवेकानन्द ने स्वतन्त्रता के आध्यात्मिक आदर्श की कल्पना की और इसे मनुष्य की स्वभाविक तथा जन्मजात भावना माना जिसका अवसान केवल सर्वव्यापक ब्रह्म की धारणा में ही हो सकता है। उन्होंने अपना यह विचार प्रकट किया कि मनुष्य से सम्बन्धित सर्वाधिक निश्चित सत्य यह है कि बाह्य प्रकृति, समाज, इन्द्रियां, बुद्धि और व्यक्तित्व की सीमाओं से बन्धा हुआ है। प्रत्येक मनुष्य इन सीमाओं का अतिक्रमण करके स्वतंत्र होने को प्रयत्नशील है। “मनुष्य जाने या अनजाने यह अनुभव करता है कि वह बन्धा हुआ है, वह नहीं है जो कि वह होना चाहिये। सबसे पहली बार आँखें खोलते ही उसने यह सीख लिया था और जिस क्षण उसे यह अनुभूति हुई कि वह बन्धा हुआ है, उसने यह भी पाया कि उसके भीतर कोई ऐसा तत्व था जो उड़ कर ऐसे स्थान पर जाना चाहता है जहाँ शरीर नहीं जा सकता हो, लेकिन इस सीमा से वह अभी तक बन्धा हुआ था।”

स्वामी विवेकानन्द ने केवल आध्यात्मिक स्वतन्त्रता अथवा माया के बन्धनों से मुक्ति की आकांक्षा ही नहीं की वरन् मनुष्य की भौतिक अथवा बाह्य स्वतन्त्रता की भी कामना की। उनका मनुष्य के प्राकृतिक अधिकार में गहरा विश्वास था। स्वामी जी ने कहा था कि, “सम्पत्ति, ज्ञान और शिक्षा के अर्जन में किसी पर किसी भी प्रकार का बन्धन नहीं होना चाहिए।”

चारित्रिक शक्ति के प्रबल समर्थक— स्वामी विवेकानन्द स्वयं एक निर्भीक, शक्तिवान और महान् पुरुष थे जिसकी रग-रग में देशभक्ति कूट-कूट कर भरी हुई थी। भारत माता के प्रति उनके मन में अगाध प्रेम था। फिर भी उन्होंने केवल भावात्मक देशभक्ति का परिचय दिया, भारत की राजनीतिक स्वतन्त्रता का खुलकर समर्थन नहीं किया। वे खुलकर राजनीतिक स्वाधीनता के आन्दोलन में मुख्यतः दो कारणों से नहीं कूदे। प्रथम मूल कारण यह था कि वे संन्यासी थे, अतः राजनीतिक प्रश्नों में उलझना उनके लिए शोभनीय नहीं था। दूसरा कारण यह था कि वह युग ब्रिटिश साम्राज्यवादी शक्ति का युग था। भारत में विदेशी सत्ता अपना लौह शिकंजा जमाये हुए थी। इस समय अपरिपक्व अवस्थाओं में इस प्रकार की स्थिति को निमंत्रण देना अपनी शक्ति को व्यर्थ नष्ट करना था।

स्वामी विवेकानन्द अपने देशवासियों को जिस प्रकार की शक्ति देना चाहते थे, वह केवल शारीरिक शक्ति नहीं थी वरन् वह यथार्थ में चारित्रिक शक्ति थी जो पवित्रता, निर्भीकता और त्याग की भावना से उत्पन्न होती है। उनका विश्वास था कि एक राष्ट्र की भांति एक व्यक्ति का बल भी मूलतः चरित्र और उदात्त आदर्शों का अनुसरण

करने में निहित है। बाह्य वस्तुओं पर अधिकार करने में नहीं, राष्ट्र निर्माण में शिक्षा व नैतिक गुणों का विशेष महत्त्व—राष्ट्र निर्माण के लिए उन्होंने शिक्षा प्रसार पर बड़ा बल दिया। उनकी मान्यता थी कि सच्ची शिक्षा द्वारा ही एक राष्ट्र अपनी वास्तविक शक्ति का विकास कर सकता है। आत्मा की शक्ति ही वास्तविक शक्ति होती है और इसके लिए आध्यात्मिक अथवा नैतिक शिक्षा का अद्वितीय महत्त्व है। समुचित शिक्षा के द्वारा आत्मा में जब पर्याप्त बल उत्पन्न हो जाता है तो उसके समक्ष किसी प्रकार का अत्याचार या दबाव नहीं टिक सकता।

स्वामी विवेकानन्द मनुष्य के नैतिक गुणों के पोषक थे। उनका कहना था कि एक राष्ट्र का निर्माण व्यक्तियों की इकाइयों के मिलने से होता है। इन इकाइयों में यदि अच्छे गुणों का विकास होगा। मनुष्य में सम्मान, प्रतिष्ठा और पुरुषत्व की भावना का जागरण होगा तभी राष्ट्र सच्चे रूप में शक्तिशाली बन सकेगा। स्वामी विवेकानन्द ने भारतीयों के हृदय से हीनता की भावना को दूर करने का अथक प्रयत्न किया। उन्होंने पड़ौसी से प्यार का पाठ भी सिखाया लेकिन मन, वचन और कर्म में निर्बलता लाने का भी संदेश दिया। राजनीति और समाज के क्षेत्र में उनकी पहुँच सृजनात्मक थी। राष्ट्रीय सुदृढ़ता के लिए उन्होंने सदैव नैतिक आधारों की वकालत की और देशवासियों के हृदय में स्वाभिमान की भावना कूट-कूट कर भरने की चेष्टा की। उन्होंने प्रत्येक भारतवासी के हृदय में अपने देश, अपनी नैतिकता, अपनी आध्यात्मिकता, अपनी सचरित्रता, अपने उच्च आदर्शों और अपने मानवीय गुणों के प्रति जागरूक और गौरवान्वित होने के भाव भरने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उन्होंने पुकार कर कहा—

“प्यारे देशवासियों! पुनीत आर्यावर्त में बसनेवालों! क्या तुम अपनी इस तिरस्करणीय भीरुता से वह स्वाधीनता प्राप्त कर सकोगे, जो केवल वीर पुरुषों का अधिकार है, हे वीर पुरुषों ! मर्द बनो ललकार कर कहो—मैं भारतीय हूँ भारत का रहने वाला हूँ। हर एक भारतीय चाहे वह कोई भी हो, मेरा भाई है। अनपढ़, निर्धन, ऊँची जाति के और नीची जाति के सभी मेरे भाई हैं। भारत मेरा जीवन है और मेरा प्राण है। भारत के देवता मेरा भरण पोषण करते हैं। भारत मेरे बचपन का हिंडोला है, मेरे यौवन की विलास भावना एवं बुढ़ापे का बैकुण्ठ है।”

निष्कर्ष—रामकृष्ण मिशन की स्थापना करके उन्होंने राष्ट्रीय जीवन में वेदान्तवाद का प्रचार किया और प्रेम तथा विश्व बन्धुत्व का सन्देश दिया। हमारे लिए उनका मानवीय पक्ष अधिक ग्राह्य है। निसन्देह, विवेकानन्द ने अपना सर्वस्व अपने देश और मानव समाज की सेवा में अर्पित किया था। उनका तेजस्वी जीवन और उनके ओजस्वी विचार आज भी हमारा पथ प्रदर्शन कर सकते हैं। यह देश और मानवता का दुर्भाग्य था कि ऐसा महान जीवन केवल 40 वर्ष की आयु में ही शान्त हो गया। महापुरुषों की जीवन ज्योति की रस विलक्षणता के बारे में उन्होंने स्वयं ही एक बार कहा था।.....उनका जीवन उस मोमबत्ती जैसा होता है जो दोनों ओर से जलती और जल्दी ही समाप्त हो जाती है।”

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. मेरी लुई बर्क : स्वामी विवेकानन्द इन अमेरिका, न्यू डिस्कवरीज
2. सतेन्द्र नाथ मजूमदार : विवेकानन्द चरित्र
3. (सम्पादक) योगेश्वरानन्द : दी लाइफ ऑफ स्वामी विवेकानन्द
4. के.पी. करुणाकरन : कम्प्लीट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द
5. रोमा रोला : लाइफ ऑफ विवेकानन्द
6. स्वामी विवेकानन्द : इण्डिया एण्ड हर प्रोबलम
7. स्वामी विवेकानन्द : सिलेक्शन फ्रॉम स्वामी विवेकानन्द



मानवता के पुरोधा—स्वामी विवेकानन्द

डॉ. रश्मि सोमवंशी
शिक्षाविद (एम.फिल., पीएच.डी.)

स्वामी विवेकानन्द प्लेटो, अरस्तू या मार्क्स की भांति कोई राजनीतिक चिन्तक नहीं थे और न ही उन्होंने किन्हीं राजनीतिक सिद्धान्तों को विकसित किया, लेकिन यत्र—तत्र अपने भाषणों में और अपनी रचनाओं में उन्होंने जो भी विचार व्यक्त किए वे यह प्रस्थापित करते हैं कि वे भारतीय राष्ट्रवाद के एक धार्मिक सिद्धान्त की नींव का निर्माण करना चाहते थे और उनमें महात्मा गाँधी की ही भांति राजनीति के आध्यात्मीकरण और उसके जन—कल्याणक स्वरूप की आकांक्षा थी।

विश्व उन्हें एक ऐसे व्यक्ति के रूप में जानता है कि जिसकी बुद्धि प्रकाण्ड थी और जिसने अपनी प्रचण्ड इच्छा शक्ति को भारत के पुनरुद्धार के कार्य में लगा दिया था। वे ईश्वरीय नगरी के तीर्थ—यात्री और दलितों के लिए संघर्ष करने वाले महान् योद्धा थे। उनकी बुद्धि इतनी प्रखर थी कि उनके मन में ऋग्वेद से लेकर कालिदास, कौण्ट और स्पेंसर तक प्रत्येक वस्तु स्पष्ट एवं स्वयं प्रकाशित थी उनका व्यक्तित्व दो प्रकार से अद्भुत था — प्रथम, उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी, दूसरे उनका मन देश के जीवन में व्याप्त सामाजिक, आर्थिक बुराईयों को देखकर छटपटाया करता था। उन्होंने सन्यास तथा समाज सेवा दोनों का उपदेश दिया था। उनकी बौद्धिक दृष्टि बड़ी स्वच्छ थी और वे भारतीय इतिहास में व्यक्त विविध जीवनधाराओं को गड़राई से देख और समझ सकते थे।

इस हिन्दू नेपोलियन, स्वामी विवेकानन्द ने अमरीकी महाद्वीप और यूरोप में जो विजय यात्राएं की थीं उन्होंने लोगों के दिखला दिया कि हिन्दुत्व एक बार पुनः शक्तिशाली हो गया है और वह विश्व में आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक, दार्शनिक प्रचार करने के लिए कटिबद्ध है। अमरीका और यूरोप के नवीन साम्राज्यवाद को एशिया के इस प्रत्याक्रमण का सामना करना पड़ा। अतीत में एशिया ने यूरोप को धर्म तथा संस्कृति के मूल तत्व प्रदान किये थे और एशिया यूरोप को पुनः नैतिक प्रेरणा देना चाहता था। सितम्बर 1893 में शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन में विवेकानन्द ने जो ओजस्वी भाषण दिये उन्होंने हमारी मातृभूमि को एक नया आत्मविश्वास प्रदान किया। विवेकानन्द भारत के सांस्कृतिक जीवन के निर्माण में एक गत्यात्मक व ओजमय आध्यात्मिक उत्साह का पुट देने में सफल हुए। लूथर और काल्विन ने पश्चिमी यूरोप को जो ओजस्विता प्रदान की थी। वह ओजस्विता विवेकानन्द और दयानन्द ने तत्कालीन भारतीय सभ्यता के स्तब्ध वातावरण में फूंक दी थी। इसमें सन्देह नहीं कि बंगाल के अरविन्द, सुभाष आदि नेताओं पर विवेकानन्द का प्रभाव बहुत गहरा था और रवीन्द्रनाथ टैगोर ने तो उनकी भांति ही अपनी रचनाओं में पूर्व तथा पश्चिम की संस्कृतियों के श्रेष्ठ तत्वों का समन्वय करने का प्रयास किया।

सन् 1897ई0 में कलकत्ता के पास बैलूर में उन्होंने विख्यात रामकृष्ण मिशन स्थापित किया। देश के विभिन्न भागों में मिशन की अनेक शाखाएँ थीं और स्कूलों, अस्पतालों और दवाखानों, अनाथालयों, पुस्तकालयों आदि की स्थापना द्वारा उसने समाज सेवा की। इस प्रकार मिशन ने व्यक्तिगत मुक्ति पर नहीं बल्कि सामाजिक भलाई या समाज सेवा पर जोर दिया। 1898 में उन्होंने पश्चिम की दूसरी यात्रा की, सेनफ्रांसिस्को में शान्ति आश्रम और वेदान्त सोसायटी की स्थापना की और पेरिस में आयोजित धार्मिक इतिहास परिषद में भाग लिया। 4 जुलाई 1902 को केवल 39 वर्ष की अल्पायु में उनका देहावसान हो गया।

स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण परमहंस के धार्मिक सन्देश को लोकप्रिय बनाया तथा उसे ऐसे रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश की जो सम—सामयिक भारतीय समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल हो। सबसे अधिक

विवेकानन्द ने सामाजिक कर्म पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि अगर ज्ञान के साथ जिस वास्तविक संसार में हम रहते हैं उसमें कर्म न किया जाये तो ज्ञान निरर्थक है।

स्वामी विवेकानन्द भारत की महान् आत्मा थे जिनके प्रति वर्तमान पीढ़ी ऋणी है और भावी पीढ़ी सदैव ऋणी रहेगी। उनके जीवन और चिन्तन ने गाँधी, तिलक, विपिनचन्द्रपाल, लाला लाजपतराय, अरविन्द घोष, नेहरू सभी को प्रभावित किया। विवेकानन्द ने अपने कर्मठ और तेजोन्मय जीवन और गहन आध्यात्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों की छाप विदेशों तक में छोड़ दी। सामाजिक जड़ता एवं धार्मिक मूढ़ता को दूर करने का उन्होंने वैसा ही प्रयास किया जैसे कि किसी तालाब के सड़े हुए पानी को साफ करने के लिए किया जाता है। विश्व उन्हें एक ऐसे व्यक्ति के रूप में जानता है जिसकी बुद्धि प्रकाण्ड थी और जिसने अपनी प्रचण्ड इच्छा शक्ति को भारत के पुनरुद्धार के कार्य में लगा दिया था। वे ईश्वरीय, नगरी के तीर्थ यात्री और दलितों के लिए संघर्ष करने वाले महान योद्धा थे। उनकी बुद्धि इतनी प्रखर थी कि उनके मन में ऋग्वेद से लेकर कालिदास कॉमट और स्पेंसर तक प्रत्येक वस्तु स्पष्ट एवं स्वयं प्रकाशित थी।

विवेकानन्द के दर्शन के मुख्यतः तीन स्रोत थे – प्रथम वेदों तथा वेदान्त की महान् परम्परा, द्वितीय रामकृष्ण के साथ सम्पर्क एवं तृतीय उनके अपने जीवन का अनुभव। विवेकानन्द आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के प्रणेता थे। इस दृष्टि से उनकी यह मान्यता थी कि जिस प्रकार संगीत में एक प्रमुख स्वभाव होता है जिसके इर्द-गिर्द उसका निर्माण और विकास होता है, उसी तरह प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में भी एक प्रमुख तत्व होता है जो न केवल अपने अस्तित्व को बनाये रखता है वरन् उसकी प्रगति की दिशा का निर्धारण भी करता है, उसकी जीवन रेखा का निर्माण करता है।

स्वामी विवेकानन्द की रुचि प्रधानतः धर्म तथा दर्शन में थी। उनके चिन्तन के मूल में केवल वेदान्त की शिक्षाएँ थीं। उन्होंने वेदान्त दर्शन को व्यावहारिक रूप देने का अथक प्रयास किया। धर्म के सम्बन्ध में विवेकानन्द के विचार बुद्धिवादी और वैज्ञानिक दृष्टि से निर्धारित हुए थे। उनकी दृष्टि में धर्म एक प्रबल शक्ति थी। उनका स्पष्ट मत था – मानव जाति के भाग्य निर्माण में जितनी शक्तियाँ ने योगदान दिया है और दे रही हैं, उन सब में धर्म के रूप में प्रकट होने वाली शक्ति से अधिक कोई महत्वपूर्ण नहीं है। विवेकानन्द ने धर्म को सामाजिक संगठन और सहयोग की मूल शक्ति माना है। धर्म के सार और सर्वस्व को स्वामी विवेकानन्द ने इन शब्दों में व्यक्त किया – ‘प्रत्येक आत्मा ही अव्यक्त ब्रह्म है। बाह्य एवं आन्तरिक प्रकृति, दोनों का नियमन कर अन्तः निहित ब्रह्मस्वरूप को अभिव्यक्त करना ही जीवन का ध्येय है। कर्म, शक्ति, योग या ज्ञान के द्वारा यह ध्येय प्राप्त कर लो और मुक्त हो जाओ। यही धर्म का सर्वस्व है। मत-मतान्तर विधि या अनुष्ठान, ग्रन्थ, मन्दिर ये सब मौन हैं। धर्म के क्षेत्र में विवेकानन्द संकीर्णता और रूढ़िवादिता को समूल नष्ट कर देना चाहते थे। वे इस धारणा से सहमत नहीं थे कि धर्म अन्धश्रद्धा का विषय है जिसमें वर्ण अथवा मुक्ति के लिए कोई स्थान नहीं है। विवेकानन्द ने कभी-कभी तो यहां तक कह दिया कि धर्म भी एक विज्ञान ही है।

जिस प्रकार प्राकृतिक विज्ञान भौतिक जगत के नियमों का अनुसंधान करता है उसी प्रकार धर्म नैतिक और तत्व मीमांसी जगत के सत्यों से सम्बन्ध है और मनुष्य के आन्तरिक स्वभाव के भव्य नियमों की खोज करता है। दोनों ही एकता के लिए अभियान करते हैं और दोनों ही यद्यपि विभिन्न दिशाओं से व्यक्ति और जाति के लिए मुक्ति की खोज करते हैं। एक अर्थ में समस्त ज्ञान ही धर्म है एक अर्थ में समस्त ज्ञान ही विज्ञान है। धर्म की वैज्ञानिकता में विश्वास करते हुए विवेकानन्द ने कहा सभी विज्ञानों की अपनी विशेष पद्धतियाँ होती हैं, धर्म विज्ञान की भी है। उसकी पद्धतियों की संख्या तो और भी अधिक है, क्योंकि उसकी विषय सामग्री भी अधिक प्रचुर होती है। सामाजिक दृष्टि से स्वामी विवेकानन्द ने धार्मिक सहिष्णुता का उपदेश दिया। इस दृष्टि से उन्होंने विभिन्न धर्मों का, ईश्वरीय-उपासना का साधन घोषित करते हुए उनके सह-अस्तित्व पर जोर दिया। उन्होंने यह प्रतिपादित

किया कि एक मनुष्य हिन्दू, मुसलमान, ईसाई या बौद्ध होते हुए भी धार्मिक दृष्टि से पूर्ण पुरुष हो सकता है। इस आधार पर उन्होंने सार्वभौम धर्म की अवधारणा का प्रतिपादन करते हुए उसका स्वरूप निर्माणात्मक बताया, विध्वंसात्मक नहीं। उनके अनुसार धार्मिक निष्ठा, स्वैच्छिक होनी चाहिए, किसी पर जबरदस्ती लादी नहीं जानी चाहिए। विवेकानन्द ने वेदान्त को पण्डितों के शास्त्रास्त्र अथवा सन्यासियों की साधना का विषय ही नहीं माना अपितु इसे प्रतिदिन के पारिवारिक और सामाजिक विषय ही नहीं माना अपितु इसे प्रतिदिन के पारिवारिक और सामाजिक जीवन की कुञ्जी सिद्ध किया।

स्वामी विवेकानन्द बहुमुखी प्रतिभा के धनी महामानव थे। आपने न केवल भारत की सामाजिक स्थिति पर अपने विचार प्रस्तुत किये बल्कि आपने न केवल भारत की समाजवादी एवं अन्तर्राष्ट्रीय सौहार्द जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर बेहद सारगर्भित विचार बार-बार विश्व के समक्ष रखकर एक आदर्श प्रस्तुत किया। विवेकानन्द के सम्पूर्ण व्यक्तित्व तथा जीवन-दर्शन को समझने के लिए उनके द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में दिये गये विचारों का अवलोकन करना आवश्यक है। आज से प्रायः एक सौ पचास साल पहले पराधीन और पददलित भारत के जिस एकांकी और अकिंचन योद्धा सन्यासी ने हजारों मील दूर विदेश में नितान्त अपरिचितों के बीच अपनी ओजमयी वाणी में भारतीय धर्म साधना के चिरन्तन सत्त्यों का जयघोष किया, ऐसे उन सामर्थ्य व्यक्तित्व और कृतित्व का श्रद्धापूर्वक स्मरण मनन और अध्ययन हर पीढ़ी के लिये आवश्यक है क्योंकि उसका संदेश देश और काल की सीमाओं को लांघकर प्रेरणा का स्रोत बन गया है। यह सन्देश न कभी पुराना पड़ सकता है, न कभी मर सकता है, वह पुनर्ववा है, वह आज के लिये भी है, वह कल के लिये भी है। स्वामी विवेकानन्द कल के लिये भी है। स्वामी विवेकानन्द का सन्देश बहुआयामी है। उसमें आत्मा की भूख मिटाने के लिये धर्मों और संस्कृतियों से सनातन सिद्धान्तों का संगीत है, उसमें व्यक्ति जीवन के आमूल रूपान्तरण के लिये साधना की एक पद्धति है उसमें समाज और समूची मानव जाति को नये सिरे से गठित करने की अपूर्व क्षमता है। स्वामी विवेकानन्द ने अपने जीवन का प्रधान लक्ष्य मानव निर्माण माना है। राष्ट्र निर्माण अथवा विश्व निर्माण की दिशा में यह पहला कदम है।

स्वामी विवेकानन्द ने लोगों को उत्साहित करते हुए कहा था कि आज मैं तुम्हें भी अपने जीवन का मूल मन्त्र बताता हूँ, वह यह है कि प्रयत्न करते रहो, जब तुम्हें अपने चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखता हो, तब भी मैं कहता हूँ कि प्रयत्न करते रहो। किसी भी परिस्थिति में तुम मत हारो, बस प्रयत्न करते रहो। पीछे मत देखो, आगे देखो, अनंत ऊर्जा, अनंत उत्साह अनंत साहस और अनंत धैर्य तभी महान् कार्य किये जा सकते हैं। तुम्हें तुम्हारा लक्ष्य जरूर मिलेगा, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। स्वामी विवेकानन्द जी ने सुसुप्त भारत की आत्मा को जागृत करने, उसे स्वयं पर आत्म विश्वास करने और मुक्ति का मार्ग दिखाने की दृष्टि से विवेकानन्द का योगदान चिरस्मरणीय है तथा इतिहास के स्वर्ण अक्षरों में उल्लिखित किये जाने योग्य है। स्वामी विवेकानन्द जी भारतीय होते हुए भी भारत के ही नहीं, विश्व के उद्धारक थे जिन्होंने सर्वधर्म सद्भाव का संदेश दिया। एक नये सुखी-समृद्ध विश्व की स्थापना में नेतृत्व प्रदान करने वाली भूमिका का निर्वहन किया तथा विभाजित भारत को एकताबद्ध होने की प्रेरणा तथा सन्देश प्रदान किया।

स्वामी विवेकानन्द हिन्दूवाद को भारतीय राष्ट्रवाद के पर्यायवाची एवं राष्ट्रीय एकता के प्रतीक के अर्थ में प्रयोग कर रहे थे। स्वामी विवेकानन्द राष्ट्रवाद के बढ़ते हुये ज्वार के प्रतीक बन गये थे। उनके विचारों ने स्वतंत्रता आन्दोलन में क्रांतिकारियों में नवीन चेतना एवं उत्साह का संचार किया। ब्रिटिश हुकूमत की सरकार ने अनेक क्रांतिकारियों के पास से विवेकानन्द का साहित्य बरामद किया। इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द स्वतंत्रता आन्दोलन में क्रांतिकारियों के प्रेरणा स्रोत बने रहे।

स्वामी विवेकानन्द का जीवन और पहाड़ जैसा विराट आपका व्यक्तित्व व आपके द्वारा किए गए कार्य सम्पूर्ण मानवता के लिए प्रेरणा स्रोत हैं। इसलिए 150वर्षों के इतिहास में आज भी आपका चिन्तन प्रासांगिक है। स्वामी

विवेकानन्द जी के विचारों पर दृष्टिपात हों तो आप अपने समय से बहुत आगे थे। आपका विचार था कि विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों के बीच संवाद हो। आप विभिन्न मतों-पथों की अनेकरूपता को जायज मानते थे। वर्तमान समय के अनेक विवादों और कलह से ग्रस्त लोगों के लिए स्वामी विवेकानन्द जी के विचार बड़े महत्व के हैं। आपका यह मानना था कि वेदांत दर्शन न तो ब्राह्मण दर्शन है, न बौद्ध, न ईसाई, न मुस्लिम, यह इन सभी धर्मों का सार तत्व है।

आधुनिक भारत में राष्ट्रवादी चेतना के विकास में विवेकानन्द का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने पराधीनता की बेड़ियों में जकड़े हुए देश को आत्मनिर्भरता और निर्भयता का संदेश देकर भारतीय जनता में शताब्दियों की दासता के क्रम में विद्यमान हो गयी उदासीनता और हीनता के भाव से मुक्त करने में निर्णायक योगदान दिया। चक्रवर्ती राज गोपालाचारी ने कहा है, “विवेकानन्द ने भारत की आँखें उसकी अपनी सच्ची महानता के प्रति खोल दी। उन्होंने राजनीति का आध्यात्मिकरण कर दिया। हम अंधे थे और उन्होंने हमें देखने की क्षमता दी। वे राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्रों में स्वतंत्रता के जनक थे।

पराधीन भारत में भारत की समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा का गौरवपूर्ण उद्घोष करके उन्होंने भारतीय जनता में आत्मविश्वास का संचार किया। उन्होंने भारतीय जनता का आह्वान किया कि वह पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंध से प्रभावित होकर अपनी संस्कृति के शाश्वत मूल्यों को भूल न जाए। उन्होंने भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता के विचार का प्रतिपादन कर, एक आत्मविश्वासयुक्त भारत के निर्माण का संदेश प्रसारित किया। धर्म और आध्यात्म को भारतीय राष्ट्र की मौलिक विशेषताओं के रूप में चित्रित कर विवेकानन्द ने आध्यात्मिक राष्ट्रवाद का जो सिद्धान्त प्रस्तुत किया वह राष्ट्रवाद के सिद्धान्त में उनका मौलिक योगदान है। विवेकानन्द के राष्ट्र सिद्धान्त की यह विशिष्टता थी कि उन्होंने आध्यात्मिक आस्था के पारलौकिक पक्षों को, मनुष्य के सांसारिक कष्टों के निराकरण की आवश्यकता से जोड़ा।

उन्होंने भारतीय वेदान्त दर्शन की आस्था को प्रत्येक व्यक्ति में ईश्वर का निवास मानकर उसकी सेवा के माध्यम से ही ईश्वर की खोज करने के सिद्धान्त में रूपान्तरित कर दिया। इस प्रकार विवेकानन्द ने धर्म को सुदृढ़ राष्ट्रवाद का आधार तो बनाया ही, उसके माध्यम से भारतीय जनता के व्यावहारिक कष्टों के निराकरण के लिए सक्रिय प्रयास किये जाने की आवश्यकता भी प्रतिपादित की।

विवेकानन्द ने धर्म के नाम पर प्रचलित आडम्बरों और कर्मकाण्डों का विरोध कर धर्म की भारतीय धारणा के नैतिक पक्षों को उजागर किया तथा यह संदेश दिया कि धर्म में कटुता, असहिष्णुता और दूसरे धर्मावलम्बियों के प्रति तिरस्कार का भाव हो ही नहीं सकता। धर्म की उदार व्याख्या के माध्यम से विवेकानन्द के सामंजस्य और सर्वग्राह्यता की भारतीय परम्परा के महत्व को रेखांकित किया तथा इस आधार पर विश्व के किसी अन्य धर्म की तुलना में हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता को सिद्ध किया।

विवेकानन्द ने भारतीय समाज की तत्कालीन कमजोरियों को समझा तथा उनके समाधान के लिए सक्रिय प्रयत्न किये जाने पर बल दिया। उन्होंने भारत की समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा की प्रशंसा करते हुए, पिछली शताब्दियों में भारतीय समाज व्यवस्था में आ गयी विकृतियों के लिए समाज के उच्च वर्गों को उत्तरदायी ठहराया तथा यह स्पष्ट तौर पर स्वीकार किया कि जब तक ऊँचे-नीचे के भेदभाव तथा छुआछूत को समाप्त करके दलित वर्गों को उत्थान के अवसर नहीं दिए जाते, भारत का कल्याण सम्भव नहीं है।

भारतीय समाज की उन्नति के लिए उन्होंने नारी की गरिमा को प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता को भी प्रतिपादित किया तथा बाल-विवाह, सती प्रथा, पर्दा प्रथा आदि समस्त कुरीतियों को समाप्त करने पर बल दिया, जो स्त्री की गरिमा का निषेध करती है और उन्हें समाज की मुख्य धारा से काटती है। विवेकानन्द ने शिक्षा के सम्बन्ध में मौलिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। उन्होंने शिक्षा के माध्यम से चरित्र निर्माण और

सामाजिक समानता का स्वप्न देखा तथा यह स्वीकार किया कि समाज के अब तक दलित रहे वर्गों तथा स्त्रियों को शिक्षा के समान अवसर प्राप्त होने चाहिए।

विवेकानन्द ने शिक्षा की धारणा राजनीतिक चिन्तन को उनका विशेष योगदान है उन्होंने स्वतंत्रता की आध्यात्मिक धारणा का प्रतिपादन किया। साथ ही यह भी स्पष्ट किया कि स्वतंत्रता की उनकी धारणा व्यक्ति और समाज के बीच टकराव की संभावना उत्पन्न नहीं करती।

विवेकानन्द ने पीड़ित और शोषित जनता के उत्थान की आवश्यकता को प्रखरता से रेखांकित किया। उनका यह स्पष्ट मत था कि भारत की अभावग्रस्त जनता के कष्टों को दूर करना किसी भी धार्मिक, नैतिक अथवा सामाजिक अभियान का प्राथमिक और सर्वोच्च लक्ष्य होना चाहिए। सुदृढ़ भारत के निर्माण के लिए उन्होंने समाज के सामान्य वर्गों की शक्ति और क्षमताओं में अडिग विश्वास व्यक्त किया। समाजवाद की मौलिक धारणा प्रस्तुत कर विवेकानन्द ने व्यक्ति की गरिमा और सामाजिक व आर्थिक न्याय के मंतव्यों के मध्य पारस्परिकता के विचार को व्यक्त किया।

विवेकानन्द के धार्मिक, सामाजिक व राजनीतिक विचारों का भारत में राष्ट्रवादी आंदोलन और विचारों पर निर्णायक प्रभाव पड़ा। अनेक भारतीय विचारकों और स्वतंत्रता संग्राम के योद्धाओं ने उनके विचारों से प्रेरणा और मार्गदर्शन प्राप्त किया। भारत में राष्ट्रीय चेतना के विकास को स्वामी विवेकानन्द के असाधारण योगदान को स्वीकार करते हुए जवाहरलाल नेहरू ने कहा है “साधारण अर्थ में वे कोई राजनीतिज्ञ नहीं थे, फिर भी मेरी राय में वे भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के महान संस्थापकों में से एक थे, और आगे चलकर जिन लोगों ने आन्दोलन में थोड़ा या बहुत सक्रिय भाग लिया, उनमें से अनेक के प्रेरणादायक स्वामी विवेकानन्द थे।” नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने उनके आध्यात्मिक राष्ट्रवाद की धारणा की प्रशंसा में लिखा, “स्वामी विवेकानन्द ने अपने समूचे जीवन को समग्र राष्ट्र एवं मानवता के नैतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान के लिए समर्पित कर दिया था। आधुनिक भारत उन्हीं की सृष्टि है।” राष्ट्र निर्माण के प्रति उनके महान योगदान को स्मरण करते हुए भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था, “ऐसे लोग अत्यन्त इने-गिने हैं, जो अपने मानव-बन्धुओं का जीवन के किसी क्षेत्र में नेतृत्व करते हैं और जो अग्रसरों का मार्गदर्शन करते हैं, वे तो और भी विरले हैं। डूबती हुई मानवता को उठाने के लिए ऐसे नेताओं का पृथ्वी पर आगमन बार-बार नहीं हुआ करता। स्वामी विवेकानन्द ऐसी ही महान् आत्माओं में एक थे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. डॉ. पुखराज जैन, “भारतीय राजनीतिक विचारक” साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा, 2002, पृष्ठ 143-144
2. डॉ. मधुकर श्याम चतुर्वेदी प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक, कॉलेज बुक हाउस, जयपुर, 2010, पृष्ठ 558-559
3. डॉ. ब्रजगोपाल, “रिसर्च जनरल ऑफ आर्ट्स, मैनेजमेन्ट एण्ड सोशल साइन्सेस”, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा, सितम्बर, 2013, पृष्ठ 80-85
4. डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव, “कृतिका”, आराधना ब्रदर्स, कानपुर, जनवरी-दिसम्बर, 2014, पृष्ठ 375-377
5. दैनिक भास्कर
6. राजस्थान पत्रिका



गाँधी जी के नीतिशास्त्रीय विचारों की महत्ता

आलोक कुमार

एसोसिएट प्रोफेसर—इतिहास विभाग

डॉ० शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ०प्र०), 226017

महात्मा गाँधी के विचारों को किसी एक विषय में समेटना कठिन ही नहीं असंभव है क्योंकि उनकी रचनाओं से स्पष्ट होता है कि उनके विचार सर्वतोमुखी थे। उनके बारे में भारत के प्रथम राष्ट्रपति एवं गाँधीवादी नेता डॉ० राजेन्द्र प्रसाद लिखते हैं— “गाँधी जी का व्यक्तित्व, उनकी शिक्षा उनका दर्शन तथा उनका जीवन बहुमुखी है।”¹ फिर भी उनके दर्शन में नीतिशास्त्र अत्यंत मौलिक महत्व रखता है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उन्होंने नीतिशास्त्र को अपने आचरण में अपनाकर व्यावहारिक रूप प्रदान किया है।

यों तो मानव अनुभूति के प्रत्येक क्षेत्र में उनके विचार उल्लेखनीय हैं, फिर भी उनके नीतिशास्त्रीय विचार विशेष महत्व रखते हैं। भारतीय दर्शनों के इतिहास का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि भारत में दर्शन केवल विचार की ही प्रणाली नहीं अपितु जीवन की भी प्रणाली माना गया है। इतना ही नहीं ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, जीव, जगत आदि विषयों को लेकर विभिन्न भारतीय चिंतकों और दार्शनिकों में मत मतान्तर रहा है फिर भी नीतिशास्त्र के क्षेत्र में उनमें मतैक्य दिखाई देता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नीतिशास्त्रीय चिंतन भारतीय मनीषा के चिंतन का महत्वपूर्ण अंग रहा है और गाँधी चिंतन में भी अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

प्राचीन भारतीय नीतिशास्त्रीय विचार वैदिक साहित्य, वेदांत, उपनिषद, श्री मद्भागवत गीता और बौद्ध दर्शन आदि में नीतिशास्त्रीय विचार बड़े ही स्पष्ट रूप में व्यक्त किये गये हैं। गाँधी जी ने इन्हीं प्राचीन नीतिशास्त्रीय विचार को स्पष्ट रूप में संसार के सामने उपस्थित करने का सफलतापूर्वक प्रयास किया है। इस अर्थ में उनकी तुलना प्राचीन भारतीय चिंतक महात्मा बुद्ध से की जा सकती है। महात्मा बुद्ध प्राचीन भारत के एक महान समाज सुधारक, धर्म उपदेशक एवं दार्शनिक मनीषी हुये हैं। उनके संबंध में प्रसिद्ध चिंतक डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन लिखते हैं कि बुद्ध ने उपनिषदों के नैतिक आदर्शवाद को जनतांत्रिक रूप देने का प्रयास किया है।² ऐसा कहा जा सकता है कि महात्मा गाँधी ने भी उपनिषद गीता आदि के नैतिक आदर्शवाद को जनतांत्रिक रूप देने का सफलतापूर्वक प्रयास किया है। यह प्रायः इस क्षेत्र में उनकी महत्वपूर्ण तथा मौलिक देन माना जा सकता है। एक अन्य बात जो गाँधी जी के संबंध में विशेष रूप से उल्लेखनीय प्रतीत होती है, वह यह है कि उन्होंने शायद पहले धर्म तथा नीतिशास्त्री की धारणाओं की सीमा केवल व्यक्तिगत जीवन में ही नहीं रखी, प्रत्युत समाज राजनीति, अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में भी उनका प्रयोग वांछनीय समझा। उनके जीवन के प्रयोगों में यह बात पूर्णतः प्रमाणित हो जाती है गाँधी जी के इन्हीं विचारों के आधार पर डॉ० डी०एस० शर्मा लिखते हैं कि गाँधी जी ने राजनीति तथा अर्थशास्त्र आदि को भी अध्यात्मवाद पर आधारित करने का प्रयास किया है।³

प्राचीन भारतीय चिंतन, विशेषकर बौद्ध और जैन दर्शन में स्पष्ट रूप से सत्य, अहिंसा अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य आदि को महत्वपूर्ण नैतिक धारणाओं में शामिल किया गया है। गाँधी जी के संबंध में ‘सत्य’ और ‘अहिंसा’ विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यों तो उन्होंने अपरिग्रह ब्रह्मचर्य अस्तेय आदि सभी प्राचीन नैतिक धारणाओं की शिक्षा दी है और स्वयं अपने जीवन में भी उनका प्रयोग किया है, लेकिन सत्य और अहिंसा का इनके दर्शन में सर्वाधिक महत्व है। यह उल्लेखनीय है कि गाँधी जी ईश्वर को परम तत्व मानते हैं और विश्व की सभी वस्तुओं को उसी पर आधारित बतलाते हैं। यह अलग बात है कि आसानी से उनकी ईश्वर विषयक धारणा के विषय में दर्शन तथा धर्म का विद्यार्थी नहीं बतला सकता है कि उनका ईश्वर सगुण है अथवा निर्गुण, फिर यह भी निरपेक्ष अर्थ में यह

कहना कठिन है कि वे ईश्वरवादी थे अथवा नहीं। ऐसा इसलिए है क्योंकि वे अपने ईश्वर को एक तरह से वर्णनीय अथवा विचारणीय नहीं मानते। यद्यपि इन सभी बातों पर विचार करना एक संक्षिप्त लेख में संभव भी नहीं है यहाँ केवल यह उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है कि वे ईश्वर में स्पष्टरूपेण विश्वास करते हैं और अंत में सत्य को ईश्वर मानते हैं। क्योंकि उसकी सत्ता निर्विवाद है। अतः हम कह सकते हैं कि उन पर ईश्वरवाद तथा अध्यात्मवाद का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। अहिंसा का उनका सिद्धांत जिसके संबंध में महाभारत तथा अन्यान्य प्राचीन धार्मिक व दार्शनिक ग्रंथों में कहा गया है— अहिंसा परमो धर्म: उनके इसी अध्यात्मवाद तथा ईश्वरवाद पर आधारित प्रतीत होता है। यह सभी प्राणीमात्र भी एकता की मान्यता पर आधारित हैं। मनसा, वाचा कर्मणा व्यवहार करने को कहा गया है। महात्मा गाँधी ने स्वयं लिखा है कि — अहिंसा के अंतर्गत मानसिक दृष्टिकोण तथा उसके फलस्वरूप कर्म दोनों ही चले आते हैं।¹ अहिंसा का व्यावहारिक उन्होंने प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यक तथा उपयोगी बतलाया। यह अभावात्मक सिद्धांत नहीं है। यह तो प्रेम में भी तथागत करुणा है। प्राचीन भारत में महात्मा बुद्ध तथा दूसरे लोगों ने जिस तरह अक्रोध अहिंसा आदि का प्रचार किया; उन्हीं आदर्शों का प्रसार तथा प्रयोग महात्मा गाँधी ने भी इस युग में किया।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि गाँधी जी ने प्राचीन ऋषियों तथा चिंतकों की भाँति आधुनिक युग में नैतिक आदर्शों की स्थापना के लिए अथक प्रयास किया। इस प्रसंग में उनकी मौलिक देन सत्याग्रह का उल्लेख करना आवश्यक होगा। इसे उनकी सबसे महत्वपूर्ण देने कहा जाता है। सत्याग्रह सत्य के प्रति आग्रह है और इसीलिए इसकी पृष्ठभूमि आध्यात्मिक है। जीवन के प्रत्येक समय में महात्मा जी का सत्याग्रह उनकी मौलिक धारणा तथा आधारशिला के रूप में दृष्टिगत होता है। गाँधी दर्शन के प्रसिद्ध विचारक प्रो० एन० के० बोस² इनके सत्याग्रह पर विचार करते हुये इस आशय का निष्कर्ष व्यक्त करते हैं। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में इनका सत्याग्रह कितना उपयोगी तथा महत्वपूर्ण साबित हुआ यह सर्व विदित है। उसी तरह उनके ब्रह्मचर्य, तपस्या, वैराग्य आदि संबंधी विचार भी वैयक्तिक और सामाजिक दोनों ही दृष्टिकोणों से महत्व रखते हैं। उपवास और आत्मशुद्धि उनके अमोघ नैतिक तथा आध्यात्मिक अस्था थे। शिक्षा राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, चिकित्साशास्त्र आदि में भी उन्होंने महत्वपूर्ण प्रयोग किये। उन सबको देखने से यह ज्ञात होता है कि इन सबके मूल में उनके ईश्वरवाद तथा नैतिक आदर्शवाद (पंचायती राज), वास्तविक स्वराज्य की स्थापना, आर्थिक विषमता का अन्त, नमक आन्दोलन, अस्पृश्यता निवारण आदि सभी को उसी भूमिका में वास्तविक अर्थ में समझा जा सकता है।

गाँधी जी के नीतिशास्त्रीय विचारों में एक और बात समकालीन युग के लिए महत्व तथा सार्थकता रखती है वह है उनका साधन तथा साध्य सम्बंधी विचार। उपयोगितावादी विचारक साध्य को ही सब कुछ मानते हैं। उनके लिए साधन की पवित्रता गौण है। महात्मा गाँधी के आध्यात्मवादी तथा आदर्शवादी नीतिशास्त्र में साधन पवित्रता की समान महत्ता ही महात्मा गाँधी स्पष्ट रूप से कहते हैं कि साधन और साध्य मेरे जीवन दर्शन में पर्यायवाची शब्द हैं। साधन साध्य को उचित ठहराता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गाँधी जी के नीतिशास्त्रीय विचार आज के युग में और अधिक सार्थक हो गये हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची—

1. Legacy of Gandhijee p, 116, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1962
2. Indian Philosophy pp 360.61, डा० राधा कृष्णन (जार्ज एलन एण्ड उर्विन लि० पुनर्मुद्रित 1951)
3. Hindustan Through the Ages p, 198, भारतीय विद्या भवन, मुम्बई
4. M.K. Gandhi-The Law of Love p 35, आनन्द टी हिंगवानी भारतीय विद्याभवन मुम्बई, 1962
5. यंग इंडिया गांधी जी, 28.05.1925, पृ० 10-182.



डॉ० भीमराव अम्बेडकर के विचारों का मूल्यांकन

डॉ० गीता यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर—राजनीति विज्ञान विभाग
टी.डी. कालेज, जौनपुर, उ.प्र.

काल प्रवाह के भय से श्रेष्ठ कर्म में निरन्तर प्रवृत्त महापुरुष प्रत्येक युग अथवा काल में अनेक मिलते हैं, किन्तु उस श्रेष्ठकर्म के द्वारा काल प्रवाह की धारा को ही मोड़ देने की क्षमता रखने वाले डॉ० भीमराव अम्बेडकर जैसे महानायक सहस्राब्दियों में कहीं एक बार धरा को कृतकृत्य करते हैं। वे युगद्रष्टा व युग स्रष्टा थे। इस अर्थ में अवतारों और ऋषियों की पवित्र भूमि भारत उनके कर्मयोगमय मार्गदर्शन के बिना अपनी राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक संकल्पना में कभी-भी इस प्रशस्त उन्नत पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता था। उन्होंने सदियों से दबी सहमी भारतीय आवाज को स्पष्टता व बुलंदी के साथ गौरवमयी अभिव्यक्ति देकर समाज में प्रत्येक जन की समतामूलक साझेदारी को सुनिश्चित करने की दिशा में प्रयास किया।

डॉ० अम्बेडकर को किसी विशेष अर्थ में धार्मिक व्यक्ति नहीं कहा जा सकता, किन्तु धर्म को वे मनुष्य के लिए आवश्यक मानते थे। धर्म आवश्यक इसलिए नहीं है कि उससे मुक्ति मिलती है या आत्मसाक्षात्कार की प्रक्रिया सम्भव होती है, बल्कि इसलिए आवश्यक है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और उसके पास बौद्धिक क्षमताएँ हैं, जिन प्राणियों में बुद्धि और सामाजिक वृत्ति का अभाव है उनको धर्म की कोई आवश्यकता नहीं है। उनके लिए धर्म अनिवार्य भी नहीं है, किन्तु मनुष्य धर्म के अभाव में मनुष्योचित व्यवहार नहीं कर सकता इसलिए धर्म मनुष्य के लिए अनिवार्य है। स्पष्ट है कि अम्बेडकर के विचार में धर्म कोई गहरी आध्यात्मिक आस्था नहीं है न ही किसी अदृश्य या अज्ञात का समस्यात्मक संकेत। यह मात्र एक मानवोचित आस्था है जो मनुष्य की सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। धर्म एक ऐसी आवश्यकता है जो मानव को सही अर्थों में मानव बनाने के लिए अनिवार्य है। अम्बेडकर ने स्पष्ट कहा कि, “धर्म व्यक्ति के लिए है व्यक्ति धर्म के लिए नहीं।”

अम्बेडकर ने हिन्दू धर्म के अतिरिक्त विश्व के अन्य धर्मों के मूल तत्त्व को बारीकी से पढ़ा और उसकी विवेचना की। उन्होंने मनुस्मृति, नारद स्मृति एवं याज्ञवल्क्य स्मृति का उद्धरण देकर यह सिद्ध किया कि सामाजिक, आर्थिक, कृषि, व्यापार, उद्यम सभी क्षेत्रों में द्विज और शूद्रों में असमानता आरोपित है। उनकी जड़ें केवल इसलिए गहरी होती गयीं, क्योंकि उन्हें शास्त्र द्वारा प्रमाणित किया गया। डॉ० अम्बेडकर को अपने जीवन के प्रारम्भिक काल से ही हिन्दू धर्म में व्याप्त छूआछूत का कटु अनुभव था। उन्होंने अपने जीवन के प्रत्येक मोड़ पर धर्म-जनित जाति प्रथा से उत्पन्न विषमता के दंश को झेला था। यही कारण है कि उनके मन में हिन्दू धर्म के प्रति कठोर भाव उत्पन्न हो गया था। उन्होंने हिन्दुत्व की सामाजिक धारा के मूल तत्त्वों की जमकर आलोचना की। उनका बार-बार कहना था कि हिन्दू सामाजिक धारा में व्यक्तिगत मेधा और व्यक्ति को न्याय के समक्ष समानता का अधिकार नहीं देता है। वर्ण प्रधानता ने समूचे सामाजिक संगठन को छिन्न-भिन्न कर दिया है। सम्पूर्ण प्रतिभा की कसौटी वर्ण पर आधारित है। हिन्दू धर्म के अनुसार प्रतिभा और कुशलता दोनों स्वाभाविक लक्षण नहीं हैं, अपितु जन्मना आरोपित गुण और दोष हैं। इसमें सभी वर्गों के कृत और स्तर जन्म के आधार पर निश्चित हैं। डॉ० अम्बेडकर का निष्कर्ष था कि जाति व्यवस्था के कारण हिन्दू धर्म से समानता का सिद्धान्त विलीन हो गया। हिन्दू धर्म जाति व्यवस्था की जननी है तथा यह असमानता और अन्याय के विचारों पर आधारित है। इसमें व्यक्ति की गरिमा और उत्साह

के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। यह वह व्यवस्था है जो मानवता के अधिकांश भाग को मृत पशु और अशक्त बनाकर अच्छा कर्म करने से रोकती है। डॉ० अम्बेडकर ने कहा कि “यह हमारा दुर्भाग्य ही है जिसने हमें हिन्दू नाम दिया है। इसी कारण हमें अपमानजनक व्यवहार सहन करने पड़ रहे हैं। यदि हम किसी दूसरे धर्म के साथ जुड़े हुए होते तो कोई भी व्यक्ति हमारे प्रति ऐसा व्यवहार करने का साहस नहीं कर सकता था।” सभी धर्मों का निकट से अध्ययन करने के पश्चात् हिन्दू धर्म में डॉ० अम्बेडकर की आस्था समाप्त हो गयी।

बौद्ध धर्म के प्रति डॉ० अम्बेडकर का झुकाव 16 वर्ष की अवस्था में ही प्रारम्भ हो गया था जब एक विद्वान ने उन्हें महात्मा बुद्ध की जीवनी से सम्बन्धित पुस्तक दी थी। 1935 में नासिक जिले के भेवले में आयोजित महार सम्मेलन में अम्बेडकर ने अपने उत्तेजक भाषण में कहा, “आप लोगों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि मैं हिन्दू धर्म में पैदा हुआ लेकिन हिन्दू धर्म में मरना नहीं चाहता। इस धर्म से खराब दुनिया में कोई धर्म नहीं है। इसलिए इसे त्याग दो।” दिसम्बर, 1954 में डॉ० अम्बेडकर बौद्धों के तृतीय विश्व सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिए रंगून गये। 23 दिसम्बर, 1956 को डॉ० अम्बेडकर ने समाचार पत्रों को यह निवेदन भेजा कि वे 14 अक्टूबर, 1956, विजयदशमी के दिन नागपुर में बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण करेंगे। दीक्षा देने के लिए भारत के सबसे वयोवृद्ध भिक्षु चन्द्रमणि महास्थविर को कुशीनारा से आमन्त्रित किया गया था। 13 अक्टूबर, 1956 को संध्या समय उन्होंने समाचार पत्र के संवाददाताओं से कहा, “मैंने गांधीजी को आश्वासन दिया था कि मैं हिन्दू धर्म को कम से कम हानि पहुंचाने वाला मार्ग अपनाऊंगा। बौद्ध धर्म भारतीय संस्कृति का ही अंग है।” 14 अक्टूबर, 1956 को नागपुर डॉ० अम्बेडकर ने पत्नी सहित पांच लाख नर नारियों के समूह के सामने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। मंच पर बुद्ध प्रतिमा के समक्ष उन्होंने स्वयं तैयार की हुई 22 प्रतिज्ञायें ली और उपस्थित जन समुदाय को भी दीक्षा लेने के प्रति प्रेरित किया। डॉ० अम्बेडकर ने हिन्दू दर्शन में प्रयुक्त धर्म को नकारकर बौद्ध धर्म में स्वीकृत ‘धम्म’ शब्द की व्याख्या की है। ‘धम्म’ में ईश्वर के स्थान पर नैतिकता की स्थापना की गयी है। इसलिए अम्बेडकर के अनुसार बौद्ध धर्म सम्पूर्ण मानवता का धर्म है। ‘धर्म’ के अनुसार सब लोग समान हैं। बौद्ध धर्म में ऊँच-नीच तथा वर्ण व्यवस्था का अभाव है। डॉ० अम्बेडकर ने बौद्ध-धर्म इसलिए ग्रहण किया क्योंकि वे दलित जातियों को समानता और सम्मान का स्थान दिलवाना चाहते थे जो बौद्ध धर्म में ही सम्भव था। डॉ० अम्बेडकर इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि भारतीय धर्म दर्शनों में बुद्ध-दर्शन ही एक मात्र ऐसा दर्शन है जो सामाजिक एकता के आदर्श को प्राप्त कर सकता है और यह विश्वव्यापी धर्म हो सकता है।

डॉ० अम्बेडकर के राजनीतिक विचार :

कानून की महत्ता को समझने वाले डॉ० अम्बेडकर स्वाभाविक रूप से विधिशास्त्री थे। स्वाभाविक रूप से वे एक लोकतान्त्रिक ही हो सकते थे और संवैधानिक व्यवस्थाओं के माध्यम से वे लोकतन्त्र को सही दिशा में ले जाना चाहते थे। उनका मानना था कि लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं का सही संचालन केवल समानता के आधार पर ही किया जा सकता है। भारत जैसे देश में जहाँ दलितों को ‘अछूत’ की संज्ञा दी जाती है, लोकतन्त्र और लोकतान्त्रिक मूल्य निरर्थक हो जाते हैं। उन्होंने अनुभव किया कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व ही कुछ परम्परागत समस्याओं का समाधान कर लिया जाये ताकि बाद में समाज में विघटनकारी प्रवृत्तियाँ सिर न उठा सकें। इस आधार पर अम्बेडकर ने दलितों के पृथक प्रतिनिधित्व की दृढ़तापूर्वक माँग की ताकि दलितों को सत्ता में निश्चित भागीदारी दिलायी जा सके।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने देश के सभी राजनीतिक दलों का सम्मेलन फरवरी और मई 1928 में किया जिसमें पं० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में संविधान निर्माण का मसविदा तैयार करने के लिए एक समिति का गठन किया गया। यह संविधान निर्माण की दिशा में प्रथम कदम था। समिति ने अपनी रिपोर्ट में धारा सभाओं में दलितों के आरक्षण और नामांकन का विरोध किया था। रिपोर्ट के इस अंश को डॉ० अम्बेडकर ने पूर्णतः अस्वीकार करते हुए

साइमन कमीशन के समक्ष दलितों के आरक्षण सम्बन्धी प्रकरण को उठाया। उन्होंने नेहरू रिपोर्ट का जबर्दस्त विरोध करते हुए कहा कि यह रिपोर्ट उच्च जातियों के सामाजिक वर्चस्व को ताकतवर बनाने और ब्राह्मणवादी व्यवस्था को संजीवनी देने के लिए तैयार की गयी है। डॉ० अम्बेडकर ने कमीशन से नामांकन समाप्त कर दलितों के लिए स्थान सुरक्षित करने की माँग की और कहा कि यदि यह सम्भव न हो तो पृथक निर्वाचन मण्डल की व्यवस्था हो। साइमन कमीशन की रिपोर्ट पर उन्होंने असहमति प्रकट करते हुए हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया।

1930 के नागपुर अधिवेशन में डॉ० अम्बेडकर ने भारत की राजनीतिक स्वतन्त्रता का खुलकर समर्थन किया। उन्होंने दलित वर्ग को दासता की बेड़ियाँ तोड़कर स्वराज्य प्राप्त करने का प्रयास करने की राय दी। इससे दलित वर्ग को नयी दिशा मिली। इस अधिवेशन में दलित वर्ग ने अपने मानवीय एवं सामाजिक अधिकारों के लिए संघर्ष करने के साथ-साथ देश के स्वतन्त्रता आन्दोलन को भी समर्थन दिया। दलित वर्ग यह अनुभव करने लगा कि ब्रिटिश शासन न उनके हित में है और न राष्ट्रहित में। इस तरह डॉ० अम्बेडकर ने एक साथ मानवता, दलित समाज और राष्ट्र सेवा की साधना का व्रत लिया। लेकिन साथ-साथ उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि भारत की स्वतन्त्रता के साथ-साथ वे दलित हितों की रक्षा के लिए भी संघर्ष जारी रखेंगे। डॉ० अम्बेडकर की राजनीतिक भूमिका का आधार उनकी सामाजिक मान्यतायें थीं। वे राजनीति के क्षेत्र में इसलिए सक्रिय हुए क्योंकि वे अछूतों तथा दलितों को सामाजिक अधिकार दिलवाना चाहते थे।

पहला तथा दूसरा गोलमेज सम्मेलन क्रमशः 1930 तथा 1931 में हुआ। सम्मेलन में भाग लेने के लिए डॉ० अम्बेडकर को निमन्त्रित किया गया। इन दोनों सम्मेलनों में डॉ० अम्बेडकर की भूमिका अधिक स्पष्ट रूप से सामने आई। उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि अस्पृश्यों का हिन्दुओं से अलग अस्तित्व है। वे वस्तुतः वंचित और दलित का दयनीय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। हिन्दू लोग दलितों के अधिकारों का अपहरण करने के लिए ही उन्हें अपना अंग घोषित करते हैं। उन्होंने सुझाव दिया कि अछूतों को 'अवर्ण हिन्दू' या 'प्रोटेस्टेन्ट हिन्दू' के रूप में मान्यतायें दी जायें। उन्हें महज "हिन्दू" शब्द से न पहचाना जाय। डॉ० अम्बेडकर ने अपने ऐतिहासिक भाषण में भारत में ब्रिटिश राज के तौर-तरीकों की भी निन्दा की। उनका प्रश्न था, "क्या अंग्रेज शासकों ने छुआछूत को खत्म करने के लिए कोई कदम बढ़ाया? ब्रिटिश राज के डेढ़ सौ वर्षों में दलितों के ऊपर होने वाले जोर-जुल्म में क्या कोई कमी आयी?" उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि "वे उस समय तक भारत के किसी भी स्वशासी संविधान पर सहमति प्रकट नहीं कर सकते जब तक कि दलितों की मांगें न्यायोचित ढंग से स्वीकार नहीं कर ली जाती।" डॉ० अम्बेडकर ने सम्मेलन में दलितों के समान अधिकार, स्वतन्त्र रहन-सहन, धारा-सभाओं में यथोचित प्रतिनिधित्व तथा सेना एवं सरकारी नौकरियों में आरक्षण की मांग की।

1931 में सम्पन्न हुए द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में सभी अल्पसंख्यक समुदायों के प्रतिनिधियों के बीच एक आम सहमति बनी जिसके अनुसार सरकार को ज्ञापन देते हुए यह माँग की गयी कि प्रत्येक अल्पसंख्यक समुदाय को, जनसंख्या के आधार पर पृथक् प्रतिनिधित्व दिया जाये। डॉ० अम्बेडकर का मत था कि देश की राजनीति में दलितों की सीधी भागीदारी होनी चाहिए। महात्मा गाँधी के लिए इस प्रकार का प्रस्ताव असहनीय था। उन्होंने अछूतों के लिए किसी भी विशेष प्रतिनिधित्व व्यवस्था का विरोध करने की बात कही। इस प्रकार द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में कोई सर्वमान्य समझौता नहीं हो सका।

रैम्जे मैकडोनाल्ड ने अल्पसंख्यक प्रतिनिधित्व के लिए अगस्त 1932 में एक तात्कालिक योजना की घोषणा कर दी। इसे कम्युनल अवार्ड के नाम से जाना गया। इस साम्प्रदायिक पंचाट में दलित वर्ग को पृथक मताधिकार देकर प्रथम बार अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में स्वीकार किया गया। इसमें 20 वर्षों बाद दलितों का आरक्षण स्वतः समाप्त होने का प्रावधान था। दलितों को सामान्य सीटों पर भी चुनाव लड़ने के अधिकार दिये गये। देश के इतिहास में पहली बार दलितों को विशेष राजनीतिक अधिकार मिले जिससे वे मातृभूमि की सेवा कर सकें। इस पंचाट से

देश के दलितों में डॉ० अम्बेडकर का कद काफी ऊँचा हो गया। उन्होंने कहा, “पृथक निर्वाचन के अधिकार की माँग से हम हिन्दू समाज का कोई अहित नहीं करने वाले हैं। हम तो केवल उन सवर्ण हिन्दुओं के ऊपर अपने भाग्य निर्माण की निर्भरता से मुक्ति चाहते हैं। हमारे भाग्यनियन्ता कुलीन हिन्दू न रहें, ऐसी हमारी माँग है।” कांग्रेस पार्टी इस पृथक साम्प्रदायिक पंचाट पर अनिश्चय की स्थिति में थी किन्तु गाँधी जी ने इसका कड़ा विरोध किया। गाँधी जी, हिन्दू समाज के विभाजन से भयभीत थे। वे समझते थे कि इस व्यवस्था से हिन्दू समाज छिन्न-भिन्न हो जायेगा। वे किसी भी तरह अस्पृश्य समाज को सवर्ण हिन्दू समाज से अलग नहीं होने देना चाहते थे। उनकी समझ थी कि पृथक निर्वाचन से दलित समाज मुख्य समाज की धारा से पृथक हो जायेगा। अन्तः महात्मा गाँधी ने कम्युनल अवार्ड के विरोध में सितम्बर 1932 में यरवदा जेल में आमरण अनशन की घोषणा कर दी। गाँधीजी के आमरण अनशन से सारा देश संतप्त हो उठा। चारों तरफ से महात्मा गाँधी के प्राण बचाने के प्रयास होने लगे। पूरे देश में डॉ० अम्बेडकर के विरुद्ध आन्दोलन भी होने लगे। उन्हें “भाड़े का टट्टू” आदि कहकर अपमानित किया गया। साथ ही गाँधीजी के प्राण बचाने का दबाव भी बनाया जाने लगा। परन्तु डॉ० अम्बेडकर दलित समाज की पीड़ा से इतने खिन्न थे कि उन्होंने यहाँ तक कह डाला, “महात्मा कोई अमर नहीं है, और न कांग्रेस अमर है — बहुत से महात्मा आये और चले गये, लेकिन अछूत, अछूत ही बने रहे।” डॉ० अम्बेडकर ने स्पष्टतः कहा “अछूत जातियों के हितों के विरुद्ध गाँधीजी का अनशन अत्यन्त दुःख की बात है। गाँधी जी का जीवन बचाने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को प्रयत्न करना चाहिए, परन्तु अछूतों के हितों के विरुद्ध मैं कोई प्रस्ताव स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हूँ।”

किन्तु गाँधीजी की प्राण रक्षा के लिए डॉ० अम्बेडकर पर चारों तरफ से दबाव बढ़ता ही गया। वे बड़े धर्म संकट में पड़ गये। अन्तः उन्होंने बड़े व्यथित हृदय से गाँधी जी की शर्तों पर समझौता करना स्वीकार कर लिया। साम्प्रदायिक पंचाट ‘पूना समझौता’ (1932) द्वारा रद्द कर दिया गया। इस समझौते के अनुसार ब्रिटिश सरकार ने अपनी पूर्व घोषणा में परिवर्तन कर दिया। लेकिन गाँधी जी के विशाल व्यक्तित्व के समक्ष अपनी माँगों पर अडिग रहकर डॉ० अम्बेडकर ने भी दलित वर्गों के लिए राजनीतिक अधिकार प्राप्त कर इन वर्गों के उत्थान और विकास का मार्ग खोला। पूना समझौता से स्वराज्य आन्दोलन को एक नयी स्फूर्ति और शक्ति मिली। भारतीय समाज के एक और विघटन के साम्राज्यवादी प्रयास को करारा झटका लगा। भारत का बहुसंख्यक सवर्ण हिन्दू वर्ग बहुत ही शिष्टता के साथ दलितों को उनकी आबादी के अनुपात में विधान मण्डलों में आरक्षण के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया तथा दलितों ने भी बदले में गाँधी जी के स्वराज्य आन्दोलन में पूर्ण सहयोगी होने का संकल्प लिया। अब तक डॉ० अम्बेडकर आज तक की सबसे बड़ी अछूत राजनीतिक हस्ती बन चुके थे।

डॉ० अम्बेडकर अस्पृश्य समुदाय के लिए एक अलग ऐसी राजनीतिक पहचान चाहते थे जिसमें कांग्रेस और ब्रिटिश दोनों का कोई दखल न हो। राजनीतिक क्षेत्र में अपनी सक्रिय भूमिका निभाने के प्रयास में डॉ० अम्बेडकर ने ‘इण्डिपेण्डेन्ट लेबर पार्टी’ की स्थापना की। अपने दल के उद्देश्य की चर्चा करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया, “यह दल श्रमिक वर्ग के कल्याण के लिए है। इसमें ‘दलित’ के स्थान पर ‘श्रमिक’ शब्द को रखा गया है। श्रमिकों में दलित भी शामिल है।” इस वक्तव्य से पता चलता है कि डॉ० अम्बेडकर यह समझ गये थे कि राजनीति में स्थान बनाने के लिए उन्हें अपनी राजनीति भावना को व्यापक बनाना होगा। मुम्बई प्रान्तीय एसेम्बली के चुनाव में इण्डिपेण्डेन्ट लेबर पार्टी के 17 उम्मीदवारों में से 15 की विजय हुई। डॉ० अम्बेडकर ने अपने कांग्रेस प्रतिद्वन्दी पर शानदार विजय प्राप्त की। यद्यपि डॉ० अम्बेडकर का साम्यवादियों से कोई लेना-देना नहीं था, तथापि औद्योगिक बिल का विरोध करने के लिए उन्होंने साम्यवादियों से सहायता ली।

बम्बई प्रदेश विधान सभा में सत्तारूढ़ कांग्रेस ने स्थानीय निकायों में दलित वर्ग के व्यक्तियों को हरिजन कहकर सम्बोधित करने सम्बन्धी विधेयक विधान सभा में ले आने का प्रयास किया। डॉ० अम्बेडकर ने इस

विधेयक का विरोध किया। उनका मत था कि दलित वर्ग पर 'हरिजन' शब्द थोपा नहीं जाना चाहिए। इस काल में डॉ० अम्बेडकर का कांग्रेस विरोधी रुख प्रबल होता गया। काँग्रेस को वे सवर्णों की पार्टी मानते रहे और उसकी सत् आलोचना करते रहे। काँग्रेस विरोधी रुख के कारण ही जिन्ना के कहने पर जब 22 दिसम्बर, 1939 को 'मुक्ति दिवस' मनाया गया तो इसमें डॉ० अम्बेडकर भी सम्मिलित हुए। जून 1942 में वे वायसराय की एकजीक्यूटिव कौंसिल के श्रम मन्त्री के रूप में नियुक्त किये गये। डॉ० अम्बेडकर के प्रयासों से दलित वर्ग के लिए तकनीकी शिक्षा और सरकारी सेवा में 8050 प्रतिशत पदों पर आरक्षण संभव हो सका। उन्होंने बेकारों और गरीबों को रोजगार दिलाने हेतु 'एम्प्लायमेण्ट एक्सचेंज' योजना प्रारम्भ की। फैक्ट्रियों में मजदूरों के संगठन को मान्यता दी। अप्रैल, 1944 में डॉ० अम्बेडकर ने श्रमिकों के कल्याण हेतु एक विधेयक प्रस्तुत किया जिसके अनुसार स्थायी फैक्ट्रियों के औद्योगिक श्रमिकों को छुट्टियों के दिनों में भी वेतन देने का प्रावधान किया गया था। उन्होंने श्रम मन्त्री रहते हुए मजदूरों, किसानों और दलित वर्गों की जी जान से सेवा की। दलित वर्ग पर होने वाले अत्याचारों को रोकने एवं दूर कराने के लिए कई कानून पारित करवाये। यदि सच कहा जाय तो एक तरह से डॉ० अम्बेडकर ने ही भारत में मजदूर आन्दोलन की आधारशिला रखी। जो आगे चलकर पुष्पित और पल्लवित हुआ।

दुनिया द्वितीय विश्व युद्ध की चपेट में थी। गाँधीजी ने भारतीय स्वतन्त्रता के लिए इस अवसर को सही समझा। सन् 1942 में उन्होंने "भारत छोड़ो आन्दोलन" के संदर्भ में "करो या मरो" का नारा दिया। डॉ० अम्बेडकर ने काँग्रेस के इस निर्णायक संघर्ष की कटु आलोचना की। उन्होंने इस संग्राम को असमय लिया गया बेवकूफी का कदम माना और तर्क देते हुए यह कहा कि इस आन्दोलन को चालाने वालों के पास राजनीतिक परिपक्वता का अभाव है। उनका दृढ़ मत था कि यदि विश्व युद्ध में लोकतान्त्रिक शक्तियों की विजय होती है तो भारत की आजादी को कोई रोक नहीं सकता। मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा की ही तरह डॉ० अम्बेडकर ने भी अपने को इस आन्दोलन से अलग रखा। भारत छोड़ो आन्दोलन में सक्रिय भूमिका न निभाने के कारण डॉ० अम्बेडकर ने देश की युवा पीढ़ी से अपने आप को स्वतः काट लिया। काँग्रेस तथा अन्य राष्ट्रवादियों को उनके दलित नेतृत्व पर शक होने लगा। मई 1946 में डॉ० अम्बेडकर ने श्रम मन्त्री के पद से त्याग पत्र दे दिया और अपनी पार्टी को 'शिड्यूल्ड कास्ट्स फेडरेशन' का नाम दिया। लेकिन इससे भी उनका ध्येय पूरा नहीं हो सका। 1946 के चुनावों में उनकी पार्टी बुरी तरह से पराजित हुई। इस चुनाव में कांग्रेस और दलित संगठनों की दूरी बनी रही। डॉ० अम्बेडकर की स्वतन्त्र राजनीतिक महत्वाकांक्षा का पटाक्षेप हो गया। कांग्रेस के नेता उनकी अछूतोद्धार और सामाजिक मूल्यों से सम्बन्धित भावनाओं का स्वागत तो करते थे लेकिन वे लोग उनके तौर तरीकों के विरोधी थे। शायद इस मामले में वे गाँधी जी के अधिक नजदीक थे।

15 अगस्त, 1947 को भारत स्वतन्त्र हुआ और प्रथम मन्त्रिमण्डल की घोषणा की गयी। प्रथम प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने दलगत राजनीति से ऊपर उठकर नवभारत के निर्माण हेतु विद्वान और अनुभवी नेताओं को अपने मन्त्रिमण्डल में सम्मिलित किया। डॉ० भीमराव अम्बेडकर को स्वतन्त्र भारत का प्रथम कानून मन्त्री बनाया गया। इस समय तक डॉ० अम्बेडकर का कांग्रेस तथा गाँधीजी के प्रति विद्वेषपूर्ण भाव नहीं रह गया था जो पहले हुआ करता था। वे मन्त्रिमण्डल में दलित वर्ग के अकेल प्रतिनिधि थे। डॉ० अम्बेडकर हिन्दू समाज में व्याप्त बुराइयों को कानून की मदद से हटाना चाहते थे। उन्होंने अपनी अस्वस्थता के बावजूद दिन-रात परिश्रम कर "हिन्दू कोड बिल" तैयार किया। इस बिल में उत्तराधिकार, गुजारा, विवाह, तलाक, गोद लेना, नाबालिग आदि का विधान था। डॉ० अम्बेडकर इस बिल के माध्यम से स्त्रियों और पुरुषों को समान सामाजिक और आर्थिक हक दिलाने हेतु कटिबद्ध थे। उनका मत था कि समग्र भारत का हिन्दू समाज एक ही प्रकार की विधिक आचार संहिता से नियन्त्रित हो तथा प्रकारान्तर में एक राष्ट्र और राष्ट्रीयता के विकास करने में सहायक हो। डॉ० अम्बेडकर ने अपनी अस्वस्थता के बावजूद रात-दिन परिश्रम कर इस बिल को कानून बनाने हेतु जी तोड़ कोशिश की। 5 फरवरी 1951 को सदन

के समक्ष 'हिन्दू कोड बिल' प्रस्तुत करते हुए डॉ० अम्बेडकर ने कहा – यदि आप हिन्दू प्रणाली, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू समाज की रक्षा करना चाहते हैं तो जो खामियां हैं, उन्हें सुधारने से मत हिचकिचाइए। यह बिल उन अंगों में सुधार चाहता है जो बिगड़ गये हैं। इससे अधिक और कुछ नहीं।" किन्तु 'हिन्दू कोड बिल' का संसद और संसद के बाहर तीव्र विरोध हुआ। विरोधियों में सरदार पटेल काफी अग्रणी थे। नतीजतन यह बिल अपने मौलिक रूप में पारित नहीं हो सका। इसकी महत्वपूर्ण धाराएं निरस्त करनी पड़ीं। इससे आहत होकर डॉ० अम्बेडकर ने 27 सितम्बर, 1951 को मन्त्रिमण्डल से त्याग पत्र दे दिया। अपने त्यागपत्र में उन्होंने पं० नेहरू की विदेश नीति तथा अनुसूचित जातियों के प्रति उनकी संवेदनहीनता को भी प्रमुख कारण बताया। पं० नेहरू को इससे बड़ी निराशा हुयी और वे डॉ० अम्बेडकर से दूरी अनुभव करने लगे। यह घटना डॉ० अम्बेडकर के राजनीतिक जीवन की सक्रिय भूमिका का अंतिम चरण था।

संविधान निर्माण में डॉ० अम्बेडकर का योगदान

राजनैतिक सत्ता के केन्द्रीकरण के सम्बन्ध में भी अम्बेडकर के विचार अत्यन्त तर्क सम्मत थे। वे जानते थे कि भारत एक बहुत बड़ा देश है, इसका शासन संचालन बिना सत्ता के विकेन्द्रीकरण के नहीं हो सकता। किन्तु उन्होंने यह बात भी स्पष्ट की कि भले ही साधारण परिस्थितियों में संघीय राज्य अपनी भूमिका स्वतन्त्र रूप से निभायेंगे और केन्द्र हस्तक्षेप नहीं करेगा, किन्तु ऐसी भी विशेष परिस्थितियाँ आ सकती हैं जब केन्द्र को मजबूती से अपनी शक्तियों का प्रयोग करना पड़े। भारतीय संविधान में इसी तथ्य की व्याख्या की गयी है। केन्द्रीकृत सरकार का सिद्धान्त माना गया है और इस बात की व्याख्या है कि केन्द्र अपनी भूमिका का मजबूती से प्रयोग कर सके। यह कहने में संदेह नहीं होना चाहिए कि बिना अम्बेडकर की सक्रिय भूमिका के वे उपलब्धियाँ सम्भव न होती जिनको हम इतनी सहजता से स्वीकार कर लिया करते हैं।

डॉ० अम्बेडकर के प्रयत्नों का ही परिणाम है कि युग-युगों से दलित तथा अछूत कहे जाने वाले लोग आज अपनी अस्मिता के प्रति पूर्ण रूप से जागरूक हैं। सामाजिक एकता के क्षेत्र में, जिसके बिना प्रजातन्त्र का कोई अर्थ नहीं, अम्बेडकर का कार्य स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा। उनके कार्य करने की पद्धति पर प्रश्नचिह्न लग सकता है, किन्तु उनके द्वारा प्रतिपादित कार्य की महानता से कोई इन्कार नहीं कर सकता। डॉ० भीमराव अम्बेडकर एक बहुआयामी प्रतिभा के धनी थे। इन्होंने न केवल दलितों व पिछड़ों के उद्धार के लिए आवाज उठाई, बल्कि उसके लिए ठोस कार्य किये जो सामाजिक क्षेत्र में एक क्रान्ति के रूप में आज भी प्रासंगिक हैं। आज बाबा साहब डॉ० भीमराव अम्बेडकर को केवल एक विषय संविधान निर्माता के रूप में ही नहीं बल्कि दूसरे सुधारों के रूप में भी याद किये जाते हैं। इन्होंने संविधान में लोकतान्त्रिक मूल्यों व आदर्शों को प्राप्त करने के लिए लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली की स्थापना में जिस महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया, वह आज भी भारत के इतिहास में यत्र-तत्र बिखरा पड़ा है। संविधान विषयक तात्कालिक चुनौतियों के अनेक चेहरे उनके समक्ष थे जैसे सत्ता हस्तान्तरण की शान्तिपूर्ण प्रक्रिया को ब्रिटिश संवैधानिक संदर्भों से एकदम बिना कटे सहज बनाना और बाह्य निर्देशन के हस्तक्षेपों पर पूर्ण निर्भरता से बचाव करना। दूसरी चुनौती स्वतन्त्रता आन्दोलन से उत्पन्न भावनाओं को संवैधानिक व्यवस्था में आदर देना थी और तीसरी चुनौती यह हो सकती है कि नये संविधान को ब्राह्मणशाही के पोषक, पुरातन सामाजिक कायदे-कानूनों व मनु स्मृति के नये संस्करण बनने से बचाना। कुल मिलाकर समाजवादी आदर्शोन्मुख समता, स्वतन्त्रता और बन्धुता पर आधारित एक धर्मनिरपेक्ष, लोकतान्त्रिक संविधान उन्हीं की देन है।

डॉ० अम्बेडकर मूलतः विधिवेत्ता थे और कानून की महत्ता पर उनका अटूट विश्वास था। इस आस्था के आधार पर वे एक लोकतान्त्रिक ही हो सकते थे और संवैधानिक ढाँचे के माध्यम से वे लोकतन्त्र को सही दिशा में अग्रसर करना चाहते थे। वे सोचते थे कि लोकतान्त्रिक व्यवस्था का सही संचालन केवल समानता के आधार पर ही हो सकता है। भारत जैसे देश में जहाँ दलितों को "अछूत" की संज्ञा दी जाती है, लोकतन्त्र निरर्थक हो जाता

है। डॉ० अम्बेडकर ने अनुभव किया कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व ही कुछ समस्याओं का समाधान कर लिया जाये ताकि बाद में समाज में विघटनकारी प्रवृत्तियाँ सिर न उठाये। इस आधार पर अम्बेडकर ने दलितों के पृथक् प्रतिनिधित्व की दृढ़तापूर्वक मांग की ताकि दलितों की सत्ता में सुनिश्चित भागीदारी दिलायी जा सके।

भारतीय संविधान के निर्माण में डॉ० अम्बेडकर का योगदान भारतीय इतिहास में सदैव स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाता रहेगा। उनको संविधान सभा की प्रारूप समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया गया था और यह अवसर डॉ० अम्बेडकर के लिए एक सुनहरा अवसर था। डॉ० अम्बेडकर ने संविधान बनाने से पूर्व कहा था—“जो संविधान हम बनाने जा रहे हैं, वह सम्पूर्ण देशवासियों के हितों को ध्यान में रखते हुए होना चाहिए जिसे सभी देशवासी स्वीकार करें और पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहे तथा देश को एक सूत्र में बांधे रखे। डॉ० अम्बेडकर जानते थे कि अछूतोंद्वारा का काम तभी सफल हो सकता है जब सामाजिक समानता का संवैधानिक अधिकार सबको प्राप्त हो। इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर उन्होंने, अपने विचारों को ग्राह्य बनाने का भरसक प्रयत्न किया और एक ऐसे संविधान की रूपरेखा तैयार की जो भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप थी। भारतीय संविधान में व्यक्तिगत समानता और स्वतन्त्रता, शक्तिशाली केन्द्र, धर्मनिरपेक्षता, संवैधानिक उपचारों का अधिकार और नीति—निर्देशक तत्व के विचारों को समावेश का श्रेय डॉ० अम्बेडकर को है। विधिवेत्ता के रूप में डॉ० अम्बेडकर की बौद्धिक क्षमता विलक्षण थी। उन्होंने जिस लगन, निःस्वार्थता तथा कर्तव्यपरायणता का परिचय दिया उसका उदाहरण कहीं अन्यत्र मिल पाना सम्भव नहीं है। वे जीवन पर्यन्त कांग्रेस विरोधी रहे, किन्तु प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में कहीं भी इस विरोध का अंशमात्र भी नहीं दिखायी देता। प्रत्येक विषय की व्याख्या उन्होंने बिना किसी पूर्वाग्रह के की और अपनी जातिगत भावनाओं को किसी भी स्थिति में अपने ऊपर हावी होने नहीं दिया। उन्होंने आद्योपान्त राष्ट्रहित की ही चर्चा की और निःस्वार्थ भाव से समस्याओं का विवेचन और विश्लेषण किया। संविधान की प्रशंसा उनके घोर विरोधियों ने भी की।

डॉ० अम्बेडकर जीवन भर दलित हितों के लिए संघर्षरत रहे। परन्तु आरक्षण के प्रश्न पर जब प्रारूप समिति में विवाद हुआ तब डॉ० अम्बेडकर ने स्वीकार किया कि प्रजातन्त्र में आरक्षण की नीति कोई अच्छी चीज नहीं है, किन्तु वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों में कुछ वर्षों तक ऐसा करना आवश्यक है। डॉ० अम्बेडकर ने संविधान लेखन के जिस विशाल कार्य का दायित्व अपने ऊपर लिया था, उसका सम्पादन उन्होंने पूरी आस्था से किया। उन्होंने राष्ट्रहित और गौरव को सर्वोच्चता प्रदान करते हुए, एक ऐसे संविधान को सम्भव बनाया जिसका अस्तित्व उनके विलक्षण बौद्धिक और तार्किक शक्ति के बिना संभव नहीं था। विधिवेत्ता और संविधानवेत्ता के रूप में डॉ० अम्बेडकर के योगदान पर डॉ० एम०वी० पाईली ने लिखा है—“अम्बेडकर ने संविधान में अपने कई महान व्यक्तिगत गुणों का समावेश किया। इसमें उनकी विद्वता, तर्कशक्ति, कल्पना शक्ति और अनुभव के दर्शन होते हैं। जब भी सदन में प्रस्तुत आलोचनाओं का वे उत्तर देते थे तो उन्हीं उत्तरों में संविधान की धाराओं की व्याख्या हो जाती थी। वे वास्तव में ‘आधुनिक मनु’ थे और उनको संविधान के मुख्य रचनाकारों में गिना जाना चाहिए।” अम्बेडकर के सामाजिक एवं दलितोद्धार आन्दोलन की विहंगम यात्रा हमारे समक्ष एक महानायक के रूप में सदैव याद की जाती रहेगी। यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि अम्बेडकर जी का सामाजिक दर्शन समानता एवं विश्व बन्धुत्व के संवैधानिक मूल्यों की जमीन तलाश करने की ओर था। साथ ही यह दर्शन दलितों के लिए मनुष्यता की मांग करता है। यह दर्शन उन्हें उच्च कोटि का देशभक्त सिद्ध करता है।

सन्दर्भ—ग्रन्थ

1. भगवान दास, बाबा साहेब, डॉ. भीमराव अम्बेडकर, एक परिचय एक संदेश, दलित लिबरेशन टूडे प्रकाशन, लखनऊ, 1998।

2. देवेन्द्र कुमार, देशन्तरी भारत के सामाजिक क्रान्तिकारी, "दलित साहित्य प्रकाशन संस्थान", नई दिल्ली, 2001।
3. आर. एस. गोरखा जीकट "डिले मौज आफ दलित मूवमेन्ट इन महाराष्ट्र" ई.वी. डब्ल्यू. प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994।
4. अम्बेडकर, गाँधी और दलित पत्रकारिता : श्यामराज सिंह बेचैन, 2010।
5. राज किशोर, दलित राजनीति: समस्याएँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006।
6. राज किशोर, हरिजन संदलित, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004।
7. सुभाष कश्यप, हमारा संविधान, भारत का संविधान और संवैधानिक विधि, भारतीय संविधान, शासन और हम।
8. एस0पुरी, भारतीय राजनीति व्यवस्था अथवा भारतीय शासन एवं राजनीति 1976।
9. प्रतियोगिता दर्पण, राजनीति विज्ञान, अतिरिक्त अंक, 2007।
10. बी. आर. अम्बेडकर 2011, हिन्दी नारी का उत्थान और पतन, तृतीय संस्करण, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली।
11. पी. डी. अग्निहोत्री, पतंजलि कालीन भारत।
12. हैन्सन पॉलिटिक्स एण्ड आइडियोलॉजी।
13. डॉ. बी. आर. अम्बेडकर, शूद्रों की खोज।
14. दलित और प्रजातांत्रिक क्रान्ति, गेट ओमवेट अनुवादक नरेश भार्गव उपनिवेशीय भारत में डॉ. अम्बेडकर एवं दलित आन्दोलन।
15. डॉ0 विजय कुमार सन्देश, डॉ0 नामवर, दलित चेतना और स्त्री विमर्श।
16. शंकरानन्द शास्त्री, युग पुरुष बाबा साहेब का जीवन संघर्ष एवं राष्ट्र सेवाएँ, नई दिल्ली।
17. बी. आर. अम्बेडकर, डॉ0 अम्बेडकर के राजनैतिक विचार, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
18. प्रेमचन्द्र की कहानियों में दलित चेतना, पृष्ठ 8, सूर्यनारायण सुभे।
19. दैनिक जागरण, दैनिक समाचार पत्र, वाराणसी, दिनांक— 09.11.2010।
20. डॉ0 बाबा साहब अम्बेडकर : लेख एवं भाषण—सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग, उत्तर प्रदेश।
21. डॉ0 अम्बेडकर — कांग्रेस और गांधी के अछूतों के लिए क्या किया ? अनु0 जगन्नाथ कुरील — समता साहित्य प्रकाशन, लखनऊ 1988.
22. देवीदयाल, डॉ0 बाबा साहब अम्बेडकर की दिनचर्या, श्रीमती उर्मिला प्रकाशन, मुनीरक, दिल्ली, 1991.
23. समतामूलक समाज एवम् सामाजिक परिवर्तन के युगपुरुष : डॉ0 भीमराव अम्बेडकर, संपा0 डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव, ओमेगा, नई दिल्ली.
24. दलित उत्पीड़क विशेषांक, संपा0 विजय प्रताप, मोहनदास, नेमीशराय, लोकायन, दिल्ली, 1990.
25. डॉ0 धर्मवीर शास्त्री — डॉ0 भीमराव अम्बेडकर और दलित आन्दोलन — शेष साहित्य प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, 1990.



संत तुकाराम के काव्य में सामाजिक चिंतन

डॉ. सुनील पानपाटील
हिंदी विभागाध्यक्ष
महिला महाविद्यालय, नंदुरबार
जि. नंदुरबार (महाराष्ट्र)

डॉ. अजित चव्हाण
हिंदी विभागाध्यक्ष
वंसतराव नाईक महाविद्यालय
शहादा जि. नंदुरबार (महाराष्ट्र)

सामाजिकता :

मानव समूह को समाज कहा जाता है। एक स्थान पर रहने वाले या एक ही प्रकार का कार्य करने वाले व्यक्ति समूह को समाज कहते हैं। इस अर्थ से मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहकर ही जीवन के विविध आयामों को प्राप्त करता है। जीवन को सुव्यवस्थित और सुनियोजित रूप देने की इच्छा, परस्पर संबंध, आपसी सहयोग, व्यवहार आदि में समाज का निर्माण हो सका है। व्यक्ति की सुरक्षा के लिए भी समाज-व्यवस्था का नियमन किया जाता है। मानवता, परस्पर स्नेह, सौहार्द, एकता, सद्भाव जैसे तत्व समाज का लक्ष्य होते हैं। इससे मानव का मानव से मुक्त मिलन होकर सुष्ठु वातावरण तैयार होता है। और आज तो सामाजिक स्तर पर अनेक आंतर्बाह्य संघर्षों को झेलते हुए जीवन की स्थिति में मानवीयता के साथ सामाजिक एकता की, सामाजिक समरसता की बहुत आवश्यकता है। समाज के अभाव में व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। सामाजिक संरचना के साथ ही मानव का विकास संबद्ध है। समाज का संबंध मानव के सामाजिक रूप से है। व्यक्ति और समष्टि एक दूसरे के पूरक होने पर भी मनुष्य-मनुष्य के बीच के संबंधों से ही समाज बनकर सामाजिक समरसता पनपती है।

समाज व्यवस्था से जुड़े हुए मनुष्य के संबंधों को साहित्य मजबूती प्रदान करता है। साहित्य सामाजिकता को प्रधानता देकर व्यक्ति के कल्याण का पंथ प्रशस्त करता है। साहित्य और समाज का घनिष्ठ संबंध होता है। मराठी साहित्य के प्रसिद्ध समीक्षक प्रा.गं.बा.सरदार साहित्य को समाज का अभिन्न अंग मानते हैं – “साहित्य का मुख्य विषय मानव जीवन है। साहित्य शब्द से अर्थ यहां ललित साहित्य से है। मनुष्य की मूलभूत प्रेरणा एवं उसकी पूर्तता के लिए होनेवाले प्रयास, विशिष्ट परिस्थितियों में उसकी प्राकृतिक शक्तियों का होनेवाला विकास या घुटन, सामाजिक संबंधों के विविध रूप और उनमें स्थित वत्सलता एवं तनाव, सहयोग व संघर्ष, उनके मन में स्थित श्रेय व प्रेय, विचार व विकार, आत्मप्रत्यय और व्याकुलता आदि द्वन्द्व इस या उस रूप में साहित्य में आते हैं। साथ ही जिसकी गोद में मानवी जीवन अंकुरित होता है, जिसके नित्य संपर्क से वह फलता-फूलता है और अंत में वह जिसमें विलीन होता है उस सृष्टि के स्वरूप को जानने की और उसे व्यक्त करने की क्षमता साहित्य में मिलती है।”¹

इस प्रकार साहित्य समाज को एक एकाई के रूप में मानकर उसके योगक्षेम का प्रयास करता है। यह साहित्यकार की सामाजिक संवेदना और समरसता का ही प्रतीक है। अपने देशकाल से प्रभावित होने वाला साहित्यकार समाज के दुखों से व्याकुल हो उठता है। अव्यवस्था के प्रति आक्रोश व्यक्त करता है क्योंकि साहित्यकार के व्यक्तित्व में, विचारों में सामाजिक समरसता का अंश होता है। वही सामाजिकता उसे लोक के प्रति प्रेरित करती है।

तुकाराम कालीन समाज :

मध्य युग के लोग स्वार्थ में डुबे थे। समाज का एक बहुत बड़ा हिस्सा, कुवासना, पाखंड, ढोंग से भ्रष्ट हो चुका था। समाज का नेतृत्व बहुत हद तक कर्मठ, धर्मांध लोगों के हाथों में था। एक लंबी, गहरी, अंधेरी गुफा

में भटकते लोगों को देख उनका हृदय द्रवित हो जाता था। उन्होंने तथाकथित समाज के पाखंड भरे चेहरे से नकाब उतार फेंकने के लिए अनेक अभंग लिखे हैं। वे अपने काव्य द्वारा समाज मन में सोये हुए सद्गुणों को, मानवता को चेतनता प्रदान कर रहे थे। इस दृष्टि से उन्होंने मानवता और सामाजिक समरसता के लिए महान कार्य किया है। जन में जनार्दन को देखने वाले तुकाराम की सच्ची पूंजी प्राणीमात्र के प्रति दया, ममता और समदृष्टि थी। समाज का सर्वांगीण विकास उनका लक्ष्य था।

तुकाराम और उनके युग की जाति व्यवस्था—

पारमार्थिक जीवन जात-पात के संकुचित विचार से परे होता है। संत कबीरदास के शब्दों में — जाति-पाति पूछें नहीं कोई, हरि को भेजे सो हरि का कोई। “किसी व्यक्ति की श्रेष्ठता उसकी जाति से नहीं वरन् कर्म से सिद्ध होती है। मनुष्य अपने सद्गुणों से ही उच्चपद को प्राप्त करता है। अध्यात्मिक क्षेत्र में जाति नाम की कोई व्यवस्था नहीं है! जिसके मुख में भावयुक्त ईश्वरनाम हो वह शुद्ध-पवित्र होता है।

“तुका म्हणे भलते याति । विठ्ठल चित्ती तो शुद्ध ॥”²

इतना साफ शब्दों में कहने पर भी तुकाराम को अपने शूद्र होने की कीमत चुकानी पड़ी थी।

तत्कालीन उच्च जाति के धर्मपंडित उन्हें शूद्रता के आधार पर नकार रहे थे। जाति की दृष्टि से तुकाराम एक प्रकार से भले ही पिछड़े थे, लेकिन उन्होंने अत्यंत स्पष्ट शब्दों में अपने शूद्र वंशी होने या हीन जाति का उल्लेख अनेक बार किया है—

“बरा देवा कुणबी केले । नाही तरि दंभे असतो मेले ॥”

“यातिहीन मज काय तो अभिमान । मानी तुज जन नारायणा ॥

याति शूद्र वंश (वैश्य) केला वेवसाव । आदि तो हा देव कुळ पूज्य ॥

यातिहीन मतिहीन कर्महीन माझे । सांडोनिया सर्व लज्जा शरण आलो तुजा ॥

शूद्रवंशी जन्मलो । म्हणोनी दंभे मोकलिलो ॥

अरे तू माझा आता । मायबाप पंढरिनाथा ॥

घोकाया अक्षर । मज नाही अधिकार ॥

सर्वभावे दीन । तुका म्हणे यातिहीन ॥

तुकाराम कहते हैं —

ईश्वर आपने ठीक ही किया जो तुम्हे कुणबी बनाया अन्यथा मैं अहंकार के मारे मर जाता । शास्त्र वचन के अनुसार कलियुग में दो ही वर्ण हैं — सवर्ण और शूद्र। सवर्ण में केवल ब्राह्मण आते हैं। तो ब्राह्मणेतर सभी शूद्र की श्रेणी में आते हैं। मैं जाति का हीन हूँ। फिर गर्व कैसा? ऐसी शूद्र जाति के होने पर मैंने वैश्य का व्यवसाय किया, आपकी पूजा — अर्चना की। हे नारायण, मैं शूद्र जाति, मतिहीन और कर्महीन हूँ। सारी लाज छोड़कर आपकी शरण में आया हूँ। हे प्रभू मैं सब प्रकार से दीन-हीन होने से मुझे वेदाध्ययन का अधिकार नहीं है। आप ही अब मेरे माता-पिता हों। इस प्रकार तुकाराम ने स्वयं ही अपनी जातिहीनता की स्थिती को स्पष्ट किया है। ऊँच-नीच, जाति-पाति के भेदभाव से मध्ययुग का समाज जर्जर हो चुका था। घमंड से भरे उच्च वर्ग के लोग शूद्रों का आर्थिक, मानसिक, शैक्षिक शोषण कर रहे थे। उच्च जाति के घमंडी लोगों की संकीर्ण सोच को देख ही तुकाराम अपने आराध्य भगवान विठ्ठल को धन्यवाद देते हैं कि “प्रभू मुझे शूद्र बनाकर आपने मुझ पर बड़े उपकार किये हैं, अन्यथा मैं झूठे अहंकार में फँसकर मर जाता।” तुकाराम जैसे संत की जाति से संबंधित चर्चा किसी भी भक्ति किसी भी भक्तिसंपन्न मन के लिए अप्रिय और अप्रस्तुत होगी। उनका समूचा जीवन एक आनंदमयी भावयात्रा से कम नहीं था। जहाँ मात्र अपार भगवत्भाव ही था। जाति-पाति के भेदभाव से पीड़ित समाज में शूद्रों पर अन्याय मानो आम

बात थी। यह सब देखने-भोगने वाले तुकाराम ने तत्कालीन समाज के उद्धार के लिए अपना सारा जीवन होम कर दिया था। उन पर अनेक संकट आये। प्रियजनों की मृत्यु हो गई लेकिन वे व्यथित नहीं हुए। ऐसे समय में उन्होंने ईश्वर को धन्यवाद ही दिए जो उन्होंने तुकाराम को मोह माया के बंधन से मुक्त कर दिया। तबसे तुकाराम ने भगवान विठ्ठल को अपना सगा अर्थात् रिश्तेदार बना लिया था। माता-पिता के रूप में साक्षात् विठ्ठल के होते वे जाति रहित, कुलहीन, दीन, दुर्बल कदापि नहीं हैं। अंतवाह शुद्ध हैं—

“आता मी सर्वथा नव्हे गा दुर्बळ । यातिहीन कुळ दैन्यवाना ।।

माय रखुमाई पांडुरंग पिता । शुद्ध उभयता पक्ष दोन्ही ।”⁴

इस प्रकार रखुमाई और पांडुरंग को माता-पिता कहकर तुकाराम अपने शुद्ध होने का दावा भी करते हैं। वारकरी संप्रदाय —

भारत में अनेक संप्रदाय हुए। उनमें से एक प्रमुख वारकरी संप्रदाय भी है। यह वारकरी संप्रदाय ‘भागवत संप्रदाय’ (वैष्णव संप्रदाय) ‘माळकरी’ (गले में तुलसी की माला धारण करने वाली वारकरी) ‘वारकरी’, ‘टाळकरी’ (एक वाद्य) नाम से भी जाना जाता है। भक्तजन महाराष्ट्र के पंढरपुर में स्थित अपने आराध्य ईश्वर विठ्ठल से मिलने जाते हैं, अर्थात् ‘वारी’ (यात्रा) करते हैं इसलिए वह ‘वारकरी’ कहलाते हैं। आषाढ, कार्तिक, माघ, या चैत्र इन महीनों में आनेवाली एकादशी को पंढरपुर जाने वाला अर्थात् वारी करने वाला (वारकरी) कहलाता है।⁵

वारकरी संप्रदाय के आराध्य विठ्ठल या पांडुरंग हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि श्री विठ्ठल या पांडुरंग भगवान विष्णु का ही अवतार है। कुछ लोग विठ्ठल पांडुरंग या विठोबा को कृष्ण का ही रूप मानते हैं। गुजरात में वह द्वारकाधीश या ठाकुरजी हैं, दक्षिण में बालाजी हैं, उत्तरी भारत में राम और कृष्ण है तो पूरब में जगन्नाथ के नाम से प्रचलित हैं। पंढरपुर में विठ्ठल का आविर्भाव भक्त पुंडलीक से माना जाता है। संत ज्ञानेश्वर वारकरी संप्रदाय की नींव माने जाते हैं। संत नामदेव इस संप्रदाय के प्रसारकर्ता हैं। इसके बाद फिर से इस संप्रदाय में शिथिलता आ जाने पर संत एकनाथ ने इस संप्रदाय को बल दिया और संत तुकाराम इसके मुकुट (कळस) अर्थात् ताज कहलाये—

“ज्ञानदेव रचिले पाया । उभारले देवालया ।।

नामा तयाचा किंकर । तेणे केला हा विस्तार ।।

संत एकनाथ । ध्वज उभारी भागवत ।।

भजण करा सावकाश । तुका झालासे कळस ।।”⁶

इस रूप में वारकरी संप्रदाय मानी जाती है।

गुरु कृपा :

आध्यात्मिक क्षेत्र में गुरु का अनन्यसाधारण महत्व है। गुरु ईश्वर के सामने ही प्रतिष्ठित है। राघव चैतन्य — केशव चैतन्य — बाबाजी चैतन्य इस क्रम में बाबाजी चैतन्य तुकाराम के गुरु माने जाते हैं।

“सद्गुरुराये कृपा मज केली । परी नाही घडली सेवा काही ।।

सापडविले वाटे जाते गंगा स्नाना । मस्तकी जो जाणा ठेविला कर ।।

भोजना मागती तूप पावशेर । पडिला विसर स्वप्नमाजी ।।

काही कळे उपजला अंतराया । म्हणोनिया काय त्वरा त्वरा जाली ।।

राघव चैतन्य केशवचैतन्य । यांनी सांगितली खुण मालिकेची ।।

बाबाजी आपले सांगितले नाम । मंत्र दिला रामकृष्ण हरी ।।

माघ शुद्ध दशमी पाहुनी गुरुवार । केला अंगिकार तुका म्हणे ।।”

उस प्रकार गंगास्नान को जाते हुए गुरु ने माथे पर हाथ रखकर तुकाराम को अनुग्रहित किया। उनसे कोई सेवा नहीं ली। 'सद्गुरु ने 'जय जय रामकृष्ण हरि' का बीजमंत्र दिया। राम याने ज्ञान, कृष्ण याने कर्म और हरि में भक्ती की भावना लिप्त है। इन तीनों से जीवनानुभव व्यक्त होता है और इन तीनों में ही पूरा संसार समाया है।'

तुकाराम गुरुकृपा की तुलना में पांडुरंग का निस्सिम प्रेम प्राप्त करने को ही अधिक महत्व देते हैं। प्रेम और भक्ति के पुरस्कर्ता तुकाराम ने योग और ज्ञान को कभी महत्ता प्राप्त की थी। सामान्य मनुष्य उनके लिए ईश्वर का रूप होने से मानव नामसाधना के बल पर प्राप्त की थी। सामान्य मनुष्य उनके लिए ईश्वर का रूप होने से वे मानव प्रेम को ईश्वर प्रेम-भक्ति समझते थे।

“जे का रंजले गांजले । त्यासि म्हणे जो आपुले।।

तो चि साधु ओळखावा । देव तेथे चि जाणवा।।”⁹

तुकाराम के काव्य में सामाजिकता —

तुकाराम ने समय के युग और समाज को अनुभव किया। इस बल पर सामाजिक समस्याओं का हल ढूँढ़ने का प्रयास भी किया था। तुकाराम तत्कालीन समाज में स्थित जाति-पांति के घोर अंधकार को, कुवासनाओं की दलदल और भेदाभेद की गंदगी को साफ करना चाहते थे। इस दिशा में उन्होंने अत्यंत ठोस कार्य किया है।

तुकाराम सीधे-साधे ब्राह्मणों को फटकार लगाते हैं।

“महारासि सिवे । कोपे ब्राह्मण तो नव्हे ।”¹⁰

उन्होंने समाज की विडम्बनाओं, विषम परिस्थितियों में परिवर्तन लाने के लिए अपने भीतर के कवि को कभी भोथरा नहीं होने दिया। तुकाराम बेहिचक सामाजिक विसंगतियों पर कठोर प्रहार करते हैं। इसके लिए उन्हें तथाकथित धर्मपंडितों से शत्रुत्व भी मोल लेना पड़ा लेकिन वे कभी पीछे नहीं हटे।

पांडित्य प्रदर्शन पर प्रहार :

संत तुकाराम का काव्य स्वयंसिद्ध है। अपने दैवी काव्य से उन्होंने परमार्थ के पथ को अत्यंत सुगम बना दिया है। कर्म, ज्ञान, भक्ति आदि के संबंध में लिखते समय उसमें लेशमात्र भी मिथ्याभाव नहीं है। ज्ञान का घमंड उन्हें छू ही नहीं सका। खोखला पांडित्य प्रदर्शन उनमें कहीं भी नजर नहीं आता। परंतु सच्चे संतों की निंदा करनेवाले ढोंगी, पाखंडी, मिथ्याचारी, पंडितों पर उन्होंने कठोर प्रहार किये हैं। इसके लिए आक्रमक होना पड़ा क्योंकि अपने जीवन को वे समाज की भलाई के लिए अर्पित कर चुके थे। समाज कार्य और समाजोन्नति ही उनके जीवन का सार था। समाज कल्याण की व्याकुलता ही उन्हें समाज विरोधी कार्य करने वालों के प्रति अत्यंत कठोर बना देती है।

कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं —

1. “मुखे सांगे ब्रह्मज्ञान । जन लोकाची कापितो मान ।।
ज्ञान सांगतो जनासी । नाही अनुभव आपणासी ।।
कथा करित देवाची । अंतरी आशा बहु लोभाची ।।
तुका म्हणे तोचि वेडा । त्याचे हानोनी थोबाड फोडा ।।”¹¹
2. “कोडियाचे गोरेपण । तैसे अहंकारी ज्ञान ।।
त्यासि अंतरी रिझे कोण । जवळी जाता चिळसवाण ।।
प्रेतदेह गौरविले । तैसे विटंबवाणें जालें ।।
तुका म्हणजे खाणे विष्टा । तैशा देहबुद्धि चेष्टा ।।”¹²

3. “संत मागे पाणी नेदी एक चूळ। दासीस आंघोळ ठेवी पाणी।।
 संतासी देखोनी होय पाठमोरा। दासीचिया पोरा चुंबन देतो।।
 संतासी देखोनी करितो टवाळया। भावे घेतो चोल्या दासीचिया।।
 तुका म्हणजे त्यांच्या तोंडावर थुंका। जातो यमलोका भोगावाया।।”¹³

इस प्रकार ईश्वर का नामस्मरण न करनेवाले, ईश्वर से विमुख रहने वाले उनके शत्रु हैं। तुकाराम ने ध्यान, योग, जप, तप, ज्ञान, व्रत, तीर्थयात्रा, कुलधर्म आदि बातों को ईश्वर प्राप्ति के लिए निषिद्ध माना है।

झूठी कीर्ति के लिए साधु बनने वाले, लोभी, अल्प ज्ञान के बल पर घमंडी बने पंडित, अहंकारी ज्ञानी, वेदपरायण पंडित, योगी मठाधिपति, शिष्यों की शाखा बनाने वाले गुरु आदि की घृणा कर उन्हें भी तुकाराम ने अपने शत्रुओं की सूची में रखा है। इसके अलावा ईश्वर का नामस्मरण न करनेवाले, संतों को पीड़ा देनेवाले, कोड़ी-सा गोरापन लेकर ज्ञान का अहंकार पालने वाले, ब्रह्मज्ञान के नाम पर लोगों को ठगनेवाले, धन के लालच में ईश्वरकथा कहनेवाले, सच्चे संतों की उपेक्षा कर दासियों की सेवा करनेवालों पर उन्होंने जबरदस्त कोड़े बरसाये हैं। यमलोक जाने वाले ऐसे पाखंडियों के मुंह पर तुकाराम थूकने के लिए भी कहते हैं।

पांडित्य शुद्ध आचरण से आता है। घमंड ज्ञानी को ले डूबता है। पांडित्य का मुखौटा लगाकर ज्ञान बांटनेवाले उनकी नजरों में मूर्ख हैं। अर्थ और आचरण के साथ न जुड़ा हुआ वेदपठन व्यर्थ है। वेदों को कंठस्थ कर पंडित समझना कोरापन है। वेदमंत्रों की तुलना में तुकाराम ईश्वरनाम को श्रेष्ठ मानते हैं। उस युग में वेदपठन का अधिकार भले ही उच्च और उत्तमों को था लेकिन उसका सही अर्थ जानने वाले तुकाराम जैसे सच्चे लोकसंत ही थे। इस बात को उनके की चोट कहते हुए तुकाराम स्पष्ट करते हैं –

‘वेदांचा तो अर्थ आम्हांसीच ठावा। येरांनी वाहावा भार माथा।’¹⁴

‘आम्हा घरी धन शब्दांचीच रत्ने। शब्दांचीच शस्त्रे यत्ने करू।’

‘शब्दांची आमुच्या जीवांचे जीवन। शब्दे वाटू धन, जन लोकां।’¹⁵

अर्थात् – वेदों का अर्थ जानने वाले हम नहीं हैं और जो हैं बोज़ ढोने का करें। और हां, हमारे जितना संपन्न और कोई नहीं है। भौतिक सुख देने वाला धन भले ही हमारे पास न हो लेकिन शब्द रूपी रत्न हमारी अमूल्य निधि है। शब्द ही हमारा जीवन है। उसी के सहारे हम लोगों को ज्ञान देते हैं। अक्षर शब्दों को ईश्वर मानने वाले तुकाराम उनकी पूजा करते हैं। ऐसे शब्द उन्हें अपने आराध्य श्री विठ्ठल से ही मिले हैं। तुकाराम के मुख से निकलने वाले शब्द उनके अपने नहीं हैं। वे तो मात्र शब्दों के भारवाहक हैं। विठोबा अर्थात् श्री विठ्ठल के सेवक हैं। ऐसे तुकाराम के मुख से साक्षात् पांडुरंग ही बोलते हैं –

“आपुलिया बाळे नाही मी बोलत। सखा कृपावंत वाचा त्याची।।”

“काय म्यां पामरे बोलावी उत्तरे। परि त्या विश्वंभरे बोलिवले।।”¹⁶

नामस्मरण से तुकाराम की वाणी में मिठास आ जाती है। वे अत्यंत विनम्रता के साथ अपने को शुद्ध देहाती मानते हैं। उनके मुख से निकलनेवाला ईश्वरनाम परब्रह्म की ही कृपा हैं। वे तो अपने को केवल एक साधन मात्र मानते हैं। आंतरिक भक्ति की यह विनयशीलता ही तुकाराम का ईश्वर से तादात्म्य स्थापित करती है। तुकाराम की भूमिका भक्त की है। उनकी भक्ति में आडंबर को कहीं भी स्थान नहीं है। उनकी भक्ति में धार्मिक एकात्मता व्यक्त होती है –

‘हरिहरा भेद। नाही करू नये वाद।।

एक एकाचे हदयी। गोडी साखरेची ठायी।।’¹⁷

‘दोन्ही टिपरी एक चि नाद। सगुण निर्गुण नाही भेद रे।।’¹⁸

धर्मनिष्ठा :

धर्म के नाम पर भोली-भाली जनता को ठगनेवाले धर्मठगों की उस युग में कोई कमी नहीं थी। और तुकाराम हैं कि कोई बिदागी लिए बना ही नाम-संकिर्तन करते थे। इससे तत्कालीन युग के तथाकथित धर्मपंडित, धर्मठगों की आय पर विपरीत परिणाम होने लगा था। तुकाराम की प्रखर वाणी से उनका तन-मन जरूर झुलसा होगा —

‘सेवा चुकतो संतांची। हे नागवाण फुकाची।।’

‘गर्व होता ताठा। जातो यमपंथे वाटा।।’

‘तुका म्हणे थोरपणे। नरक होती अभिमाने।।’

‘जालासि पंडित पुराण सांगसी। परि तु नेणसी मी कोण।।’

‘तुका कुणबियाचा नेणे शास्त्रमत। एक पंढरीनाथ विसंबेना।।’¹⁹

इस प्रकार तुकाराम अपने को शूद्र मानते हुए विनम्रता से ज्ञानी न होने की बात कहते हैं। अगर वे संतों की सेवा न करते तो ठगे जाते। घमंड के कारण उन्हें मृत्युलोक के पथ पर चलना पड़ता, नरक में जाना पड़ता। लोग पंडित बनकर वेद-पुराणों की बात तो करते हैं लेकिन स्वयं को नहीं जान पाते। इसलिए तुकाराम ऐसे धर्मज्ञान को व्यर्थ मानते हैं। ऐसे अर्द्धज्ञानी समाज के सामने न तो कोई आदर्श रख पाते हैं न उसे सही रास्ता ही दिखा पाते हैं। औरों के दुख से दुखी होना, दुखी के दुख को दूर करने का प्रयास करना तो मानव और समाजधर्म का मूलमंत्र है। प्यासे को पानी पिलाना भी करुणावान धर्म का ही रूप है। तुकाराम अपने आपको इसी धर्म के सच्चे सेवक मानते हैं।

समाजजागृति :

तुकाराम की भक्ती केवल अपनी आध्यात्मिक उन्नति तक ही सीमित नहीं थी। उनकी भक्ति का सार समस्त मानव जाति का कल्याण था। इसके लिए उन्होंने वैराग्य को अपनाकर समाज में जो श्रेष्ठ है उसका आचरण किया। समाजसेवा की। उनके मत में ईश्वर सर्वत्र व्याप्त हैं। हर व्यक्ति में ईश्वर बसा होने से उन्होंने सभी को समानता से देखने को कहा है। यह उनकी एकात्मता और समरसता ही है। प्रेम, सदाचरण, विनयशिलता उनकी भक्ति का मुख्य भाव है।

“जोडोनिया धन उत्तम वेव्हारे। उदास विचारे वेच करी।।’

‘पर उपकारी नेणे परनिंदा। परस्त्रिया सदा मायबहिणी।।’

‘विष्णुमय जग वैष्णवांचा धर्म। भेदाभेद भ्रम अमंगळ।।’²⁰

अर्थात् — सारी दुनिया विष्णुमय है। यहां कोई ऊंच-नीच नहीं है। इसलिए भेदभाव न मानना ही वैष्णवों का धर्म है। परनिंदा पाप है। परस्त्री माता-बहन समान ही समझना चाहिए। आज उपभोक्तावादी भौतिक संस्कृति के कारण समाज चारों ओर से भ्रष्टाचार की दलदल में फंसा है। ऐसा दूषित वातावरण सच्चे श्रम से, सद्व्यवहार से, सदाचरण से कमाये गये धन से ही शुद्ध होगा। ऐसे उत्तम मार्ग से कमाया हुआ धन तुकाराम निर्मोह भाव से खर्च करने को कहते हैं। उनका उपर्युक्त कथन आज पूंजीवाद के कारण दिशाहीन हुए समाज के लिए अंत्यत उपयोगी है।

तुकाराम ने समाज की आंतर्बाह्य शुद्धता पर जोर दिया है। मनुष्य को मन और वाणी की शुचिता पर ध्यान देने के लिए कहा है। मन अगर शुद्ध नहीं है तो काशी जाकर गंगा में स्नान करने से कोई लाभ नहीं होगा। जिसका हृदय साफ न हो वह चाहे लाख भस्म लगा ले कोई फायदा नहीं होगा। क्योंकि मन और जीवन साफ न हो तो साबुन भी कुछ नहीं कर पायेगा। शरीर की शुद्धता के बजाय उन्होंने मन की पवित्रता पर जोर दिया है।

तुकाराम सज्जनों को दुर्जनों से दूर रहने की सलाह देते हैं—

“दुर्जनांची गधी विष्टेचिया परी । देखोनिया दूरी व्हावे तया ।।
 दुर्जनांची अंगी पाखंड विटाळ । वाणी रजस्वला स्त्रवे तैशी ।।
 दुर्जनांचे भय घरावे त्यापरी । पिसाळलेवरी धावे श्वान ।।
 दुर्जनाचा भला नव्हे अंगसंग । बोलिलासे त्याग देशाचा त्या ।।”²¹

मद्यपान, मांस भक्षण करनेवाले लोगों को तथा उन्हें वैसे ही हीनधर्म में डूबोने वाले इतर साधुओं ने बनाये देवताओं से तुकाराम मुक्त करना चाहते हैं। जिस प्रकार उन्होंने शूद्रों को कर्मकांड और कुव्यसनों से मुक्त करने की कोशिश की उसी तरह धर्म, व्रत, शकुन-भविष्य इत्यादि कर्मठ बातों में फंसे उच्च वर्णियों को भी मुक्त करने का प्रयास किया है।

“भूत भविष्यकाळो यावे वर्तमान । हे तो भाग्यहीन त्याची जोडी ।।
 तीर्थी धोंडा पाणी । देव रोकडा सज्जनी ।।”²²

ईश्वर पर विश्वास न होने से ही इस बाह्य कर्मकांड में समाज का एक बड़ा वर्ग आज भी फंसा हुआ है। यह ईश्वर प्राप्ति का मार्ग नहीं है। निष्कामभाव से कर्म करते हुए ईश्वर की सत्ता को स्वीकार कर मानना चाहिए कि समाज के सारे सत्कर्म उसी अव्यक्त शक्ति के हाथों हो रहे हैं।

तुकाराम की नजरों में ईश्वर और साधु-संत अर्थात् सज्जन, जो दीन-दुखियों की मदद करते हैं। ऐसे लोगों में ही उन्होंने अपने आराध्य ईश्वर को देखा है। सच्चा साधु समाज में स्थित भय को दूर कर उसे मोह-माया से भी मुक्त करता है। ऐसा साधु स्वयं काम, क्रोध, मोह, मद, मत्सर से मुक्त होता है। तुकाराम कालीन समाज इन्द्रियाधीन था। कुप्रवृत्तियाँ समाज को घेरे हुए थीं। तुकाराम ने इन कुप्रवृत्तियों का तीखे शब्दों में खंडन किया है। तीर्थयात्रा करने वालों को वे अभागी मानते हैं क्योंकि ईश्वर तो मनुष्य की देह में ही है। अपना अंतर्मन में रहते हुए भी उसे अन्यत्र ढूँढना व्यर्थ है। वैसे ही कस्तूरी होकर भी वह व्यर्थ ही वन-वन भटकता है। चीनी जैसे गन्नों में होती है, वैसे ईश्वर देह में ही है। वैसे ही जैसे मक्खन दूध में होकर भी मुख्य व्यक्ति उसे मथना नहीं जानता।

“देही असोनिया देव । वृथा फिरतो निदेंव ।।”
 “देव आहे अंतर्ग्रामी । व्यर्थ हिंडे तीर्थग्रामी ।।”
 “नाभी मृगाचे कस्तूरी । व्यर्थ हिंडे वनांतरी ।।”
 “साखरेचे मूळ ऊस । तैसा देही देव दिसे ।।
 दुधी असता नवनीत । नेणे तयाचे मथित ।।”²³

यह सारी समाजोद्धार की बातें उन्होंने आम जनता को ध्यान में रखकर कही हैं। इससे उनके काव्य में समाजिक समरसता का भाव स्पष्ट दिखाई देता है।

तुकाराम अनेक देवताओं को पूजने की आवश्यकता नहीं मानते। इससे पेट तो भरेगा लेकिन आत्मा के स्तर पर कोई लाभ नहीं होगा। लोभवश पत्थर के देवता को पूजने वाला भी स्वयं पत्थर ही होता है। मोक्ष प्राप्ति के अलावा की गई ईश्वर पूजा व्यर्थ है। मंत्र-तंत्र के माध्यम से पूजा करने वाले लोगों को तुकाराम ने कल मुंहा कुत्ता कहकर धिक्कारा है। ऐसे लोग मन के मैले होते हैं। ईश्वर मंत्र-तंत्र से प्राप्त नहीं होते।

“तयाचे स्वाधीन दैवते असती । तरी का मरती त्यांची पोरे ।।”

“तुका म्हणे पाणी अंगारा जयाचा । भक्त कान्होबाचा तोही नव्हे ।।”²⁴

जो खुद ही रक्षा कर सके वह कैसा साधु? ऐसा लोगों की बात में आकर मनुष्य को अपना जीवन व्यर्थ नहीं गवाए चाहिए। ऐसे कर्मकांड से यदि मनुष्य का उद्धार हो जाता तो चूहे भी इसके हकदार होते। इसलिए मनुष्य को आंतरिक शुद्धता की उपेक्षा कर बाह्यडंबरों पर ध्यान नहीं देना चाहिए। इस स्थिति में मनुष्य को आत्मपरीक्षण

करने की आवश्यकता हैं। मन में कुटिल भाव न हो तो बाह्यडंबर उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते। इस तरह समाज में स्थित पाखंडी, ढोंगी, दंभी, लोगों को तुकाराम ने बहुत लताड़ा है। समाज को सही राह दिखाई है।

श्रम की महिमा :

श्रमशील—उद्यमी जीवन ही सार्थक कहलाता है। श्रम के बिना मनुष्य का कोई अस्तित्व नहीं है। श्रम से ही मनुष्य की प्रतिष्ठा होती है। मध्ययुगीन संत श्रमशील थे। लगभग सभी का अपना स्वतंत्र व्यवसाय था। इस कारण उन्होंने कर्म की श्रेष्ठता पर जोर दिया है। भारतीय संस्कृति भी श्रम साधना की श्रेष्ठता को स्वीकार करती है। “तुकाराम भी बुरी कमाई का धिक्कार करते हैं। इस जगत में प्रयत्न करने से, सतत अभ्यास करने से आसाध्य बात भी साध्य हो सकती है। इसलिए आलस्य भावना का त्याग करना चाहिए। वही कार्य का नाश करता है।”²⁵

प्रयत्न करने से ही असाध्य बात को भी संभव बनाया जा सकता है। समाज के सामने—सतत अभ्यास करके मिलने वाली सफलता के संबंध में तुकाराम कहते हैं— “मक्खन दही में होता है यह सभी जानते हैं लेकिन जो उसे मथना जानता है वही उसे पाता है। लकड़ी से आग उत्पन्न करने के लिए उसे रगड़ना पड़ता है। अनाज बीनने पर ही आटा स्वच्छ मिलेगा। अन्यथा आलस करने से सब नष्ट हो जायेगा। आग किसी के पास नहीं जाती, जिसे ठंड महसूस होती है वह स्वयं उस तक जाता है। जिसे प्यास लगी हो वह स्वयं पानी की ओर जाता है।”²⁶ इसलिए मनुष्य को कभी निष्क्रिय नहीं रहना चाहिए। श्रम किये बिना किसी को कुछ नहीं मिलता। निरंतर श्रमशील रहना व्यक्ति और समाज के भी हित में होता है। श्रम का मूल्य जानने वाला ही संतुलित रहता है।

निष्कर्ष :-

तुकाराम कालीन समाज कर्मकांड में लिप्त था। भक्ति के माध्यम से तुकाराम ने अपनी बात लोगों तक पहुंचाई। इसके लिए उन्हें कड़ा संघर्ष करना पड़ा। तत्कालीन समय में प्रचलित समाज व्यवस्था में स्थित दोषों पर प्रहार करने के कारण उन्हें अनेक शत्रुओं का सामना करना पड़ा। अपनी जीवन शक्तिरूपी भक्ति के माध्यम से उन्होंने हर संकट का निर्भयता से मुकाबला किया। इस संबंध में अपनी बात रखते हुए उन्होंने कहा है कि “अंतर्मन और संसार में रात—दिन हमारे लिए युद्ध की ही स्थिति है।” इस दृष्टि से उन्होंने अपने अंतर्मन के और बाहरी शत्रुओं पर भी विजय प्राप्त की। इस लिहाज से वे क्षत्रिय भी ठहरते हैं। यह सब वे समाजहित को ध्यान में रखकर करते रहे। उन्हें अपनी भक्ति पर दृढ़ विश्वास था। ईश्वर की कृपा से वे हर संकट को पार करते रहे। समता, परोपकार, परदुःखकातरता, सहृदयता, समरसता उनकी भक्ति का मर्म था। इसके चलते ही उन्होंने भक्ति और नीति, त्याग और तपस्या के माध्यम से समाज के सामने एक आदर्श रखा था। भक्ति का आसान मार्ग बताकर सारे समाज को ईश्वर तक जाने के पथ पर अग्रसर किया था। यह कार्य उनके लिए आसान नहीं था। लेकिन अपनी भक्ति और तपस्या के बल पर उन्होंने तीर्थ का निर्माण कर दिखाया। लोगों को अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण प्राप्त करने को कहकर उन्हें प्रतीत होने से बचाया। भौतिक सुख को तुच्छ बताकर समाजमन को आध्यात्मिक सुख की ओर मोड़ा। समाज में मानवता, भक्ति, सदाचरण, परोपकार, सामाजिक एकात्मता का भाव भरकर उसे गतिशील बनाया। इंद्रियनिग्रह पर जोर देकर समाज को उद्ध्वता की ओर जाने की प्रेरणा दी। प्रेम, सद्भाव, सत्कर्म उनके काव्य का सार है। अपने भावपूर्ण, तरल काव्य द्वारा उन्होंने समाज सुधार का भरसक प्रयास किया। इसके लिए कर्तव्य—कर्म की महिमा को उजागर किया। समाज में स्थित कर्मकांड, बाह्याडंबरों, विडंबनाओं का खंडन करते हुए उन्हें आततायियों द्वारा पीड़ित किया गया, लेकिन हर हाल में वे स्थित प्रज्ञ बने रहे। तत्कालीन समय में समाज में स्थित विश को पचाने लिए मानो उन्हें शिवजी की भूमिका निभानी पड़ी। जीवन भर समाज को न्याय, भक्ति, नीति और सत्य की राह पर चलने के लिए प्रेरित करते रहे। ईश्वर को घट—घट व्यापी बताकर समाज में समन्वय की भावना कायम की। समाज को बताया कि तीर्थाटन करने के बजाय ईश्वर को सच्चे मन से पुकारकर भक्ति का कल्याणकारी मार्ग अपनाना चाहिए। अपनी इस समाज सुधारवाली क्रांतिकारी भावना तथा समन्वयवादी दृष्टि

के कारण ही तुकाराम लोकनायक ठहरते हैं। उनका युग बीते अनेक शतक हो गये लेकिन उनके विचार आज भी अत्यंत प्रासंगिक हैं। इस दृष्टि से उनका तेजस्वी काव्य समस्त मानव जाति को दीपस्तंभ बन प्रेरित – प्रोत्साहित करता रहेगा यह त्रिकालबाधित सत्य है।

संदर्भ सूची :-

1. नव्या उर्मी, नवी क्षितिजे, प्रा.गं.बा सरदार, पृ 61,62, संजय प्रकाशन, पुणे-4, प्र.आ. 1987
2. प्राचीन मराठी वाङ्मयाचा इतिहास, भाग पाँचवा, अ.ना. देशपांडे, पृ. 5, व्हीनस प्रकाशन, पुणे, प्र.आ. 1982
3. वही, पृ. 5
4. वही, पृ. 9
5. महाकवि तुकाराम, डॉ.स.ग.यादव, प्राचार्य टी.ए.गवळी, पृ. 3, प्रचार प्रकाशन, कोल्हापुर, प्र.आ. 1988
6. वही, पृ. 5
7. प्राचीन मराठी वाङ्मयाचा इतिहास, भाग पाचवा, अ.ना. देशपांडे, पृ. 32
8. तुकारामाचे अभंग – डॉ. यशवंत पाठक(भूमिका से), साहित्य सेवा प्रकाशन, औरंगाबाद, प्र.आ. 1995
9. श्री.तुकाराम बांवाच्या अभंगाची गाथा, अभंग-347, पृ.57 महाराष्ट्र शासन, शासकीय मध्यवर्ती मुद्रणालय, दूसरा मजला पुनर्मुद्रण – 1991
10. वही, अभंग –55, पृ. 8
11. वही, अभंग – 4021, पृ. 657
12. वही, अभंग – 4377, पृ. 716
13. प्राचीन मराठी वाङ्मयाचा इतिहास, भाग पाचवा, अ.ना. देशपांडे, पृ. 32
14. अवतारांचा कळस, गो.शं. राहिरकर, पृ.105 बहिःशाल शिक्षण ग्रंथमाला-पुणे, प्र.अ. 1970
15. भावकवि तुकाराम, डॉ.स.ग. यादव, प्राचार्य टी.ए.गवळी, पृ. 30
16. श्री. तुकाराम बांवाच्या अभंगाची गाथा, अभंग-124, पृ. 18
17. वही, अभंग – 192, पृ. 32
18. विद्रोही संत, प्रा.गौतम निकम, पृ.36, विमल किर्ती प्रकाशन, चाळीसगांव, प्र.आ. 2010
19. अवतारांचा कळस, गो.शं. राहिरकर, पृ. 187, 189
20. श्री.तुकाराम बांवाच्या अभंगाची गाथा, अभंग-117, पृ. 17
21. अवतारांचा कळस, गो.शं. राहिरकर, पृ. 190
22. विद्रोही संत, प्रा.गौतम निकम, पृ. 41
23. वही, पृ. 32
24. कबीर और तुकाराम के काव्यों में सामाजिकता : तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. वी.डी. नुले, पृ. 206, 207, अमन प्रकाशन, कानपुर – 1994
25. विद्रोही संत, प्रा.गौतम निकम, पृ. 44



रवीन्द्रनाथ त्यागी के व्यंग्य निबन्धों में व्यक्त इतिहास बोध

सन्तोष विश्नोई

एस. आर. एफ शोध छात्रा

हिन्दी विभाग, वनस्थली विद्यापीठ (राजस्थान)

रवीन्द्रनाथ त्यागी एक वरिष्ठ व्यंग्यकार के रूप में हिन्दी के समर्थ और प्रसिद्धि प्राप्त रचनाकार रहे हैं। देश, समाज, साहित्य, कला, दर्शन, राजनीति, इतिहास इनके व्यंग्यों में प्रमुख रूप से व्यंजित होकर सामने आते हैं। रवीन्द्रनाथ त्यागी ने इतिहास को अपने अध्ययन का केन्द्रीय विषय भले ही नहीं बनाया हो मगर इतिहास उनके लेखन का एक हिस्सा बनकर हमेशा उनके केन्द्र में रहा है। देश व समाज से जुड़ी हुई विसंगतियाँ बिना इतिहास से टकराए अपना वर्तमान स्वरूप ग्रहण नहीं कर पाती। यही कारण रहा कि इतिहास उनके लेखन में एक अंगभूत विषय बनकर आया। इसी परिप्रेक्ष्य में भारतीय एवं पाश्चात्य इतिहास के बहुत से सन्दर्भ, परिस्थितियों, सामाजिक एवं राजनीतिक घटना चक्रों के साथ जोड़कर उनके व्यंग्य लेखन में इतिहास अपने बीज भाव में मिलता है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना जरूरी है कि रवीन्द्रनाथ त्यागी का इतिहास बोध इतिहासकार की भाँति न होकर केवल उनके सामान्य संदर्भों तक सीमित है। यही एक और बात उभर कर सामने आती है कि रचनाकार का अध्ययनगत दायरा देशकाल की परिस्थितियों से ऊपर उठकर समूची मानवता को अपनी परिधि में समेट लेता है। इतिहास, पुराण और लोकजीवन की संवेदनाओं की समझ रवीन्द्रनाथ त्यागी जी के लेखन में यत्र-तत्र बिखरी पड़ी है। डॉ० बालेन्दुशेखर तिवारी का कथन है कि, “अपने कथन कौशल और जानकारी मूलक अभिव्यंजना द्वारा रवीन्द्रनाथ त्यागी ने हिन्दी को एक अलग अन्दाज दिया है। यह अन्दाज कहीं सात परदों में छिपी कथ्य-नायिका को अनावृत करता है तो कहीं मनोरंजन की रस-धारा का निःसंकोच वर्णन करता हुआ नये पैतरे का परिचय देता है।”

इतिहास किसी देश-विदेश के पीढ़ी-दर-पीढ़ी का वृतांत न होकर जनता की चित्तवृत्ति का इतिहास होता है। व्यंग्य का सरोकार राजनीतिक स्तर पर धटित देश-विदेश की घटनाओं, सामाजिक विसंगतियों को उभारना होता है। रवीन्द्रनाथ त्यागी एक चेतना सम्पन्न व्यंग्यकार रहे हैं। उनके व्यंग्य लेखन का दायरा असीमित है, विशालकाय है जिसमें जहाँ कमी देखी वहाँ चोट की है। व्यंग्य उनका हथियार था जो वक्त के साथ दिनों-दिन धारदार होता चला गया। यहाँ तक कि उनके व्यंग्य शीर्षक ही जन सामान्य को आकृष्ट करने में समर्थ हो गए। इतिहास का शव, कैक्टस के फूल, आत्मलेख, पानीपत की चौथी लड़ाई, चम्पाकली, हमारी संस्कृति और संख्या, अंजामे-गुलिस्तां क्या होगा?, देश-विदेश की कथा आदि ऐसे ही व्यंग्य हैं जो यथार्थ का प्रस्तुतीकरण अचूक निशाने की तरह करते हैं। हरिशंकर परसाई लिखते हैं कि, “सही व्यंग्य व्यापक परिवेश को समझने से आता है। व्यापक सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिवेश की विसंगति, मिथ्याचार, असामंजस्य, अन्याय आदि की तह में जाना, कारकों का विश्लेषण करना, उन्हें परिप्रेक्ष्य में देखना इससे सही व्यंग्य बनता है। यदि व्यंग्य चेतना को झकझोर देता है, विद्रूप को सामने खड़ा कर देता है, आत्म साक्षात्कार करता है और परिवर्तन की ओर प्रेरित करता है तो वह सफल व्यंग्य है।” इस दृष्टि से यदि हम रवीन्द्रनाथ त्यागी के व्यंग्य निबन्धों को देखते हैं तो वो पूर्णतः इस कसौटी पर खरे उतरते हैं। वे अपने युग के सूक्ष्म द्रष्टा और सूक्ष्म निरीक्षक हैं। उनके व्यंग्य साहित्य में तात्कालिक समाज की मूल्यहीनता, अनाचार, आर्थिक वैषम्य, खोखले आदर्श, थोथी धार्मिकता परिव्यापत है। रवीन्द्रनाथ त्यागी ने इतिहास को वर्तमान से जोड़कर विसंगतियों पर कड़ी चोट की। उन्होंने अपने लेखन में भारतीय इतिहास को

किसी सीमारेखा में न बांध के आजादी से पहले और बाद अर्थात् 1960 से भारतीय मानव मूल्यों में आई गिरावट तक समस्त बातों को सन्दर्भित किया है।

रवीन्द्रनाथ त्यागी ने उन मसलों, मुद्दों, घटनाओं एवं प्रसंगों व मसलों पर व्यक्ति का ध्यान खींचकर साहित्य का धरातल दिया जो प्रायः साहित्य की परिधि से बाहर माने जाते रहे हैं। सन् 1857 की ऐतिहासिक क्रांति जैसे विभिन्न मुद्दों पर जो इतिहास का विषय माना जाता है, उन पर त्यागी जी पूरा का पूरा व्यंग्य लेख लिख देते हैं। रवीन्द्रनाथ त्यागी के बारे में यह विशेषता चर्चित रही है कि वे बहुपठित और इतिहास की विस्तृत जानकारी रखते थे। इनके इतिहास बोध में भारतीय इतिहास के साथ-साथ विदेशी देशों जैसे-फ्रांस, अमेरिका, यूरोप आदि के इतिहास भी सन्दर्भ गत आये हैं। रवीन्द्रनाथ त्यागी का लेखन कहीं-कहीं घटनामूलक है, तो कहीं-कहीं इतिहासमूलक हो गया है। लेखन का दायरा विशाल होते हुए भी वे अभिव्यक्ति में सरलता व रोचकता का भाव ओझल नहीं होने देते और छोटी से छोटी बातों को भी महत्व देते हैं। “महाभारत में यदि कोई महाप्राण है तो वह मात्र कर्ण ही है। वह पांडु का पुत्र नहीं था। कुंती ने अपनी शादी से पूर्व ‘सोलर एनर्जी’ के प्रभाव से उसे जन्म दिया था। सूर्य-पुत्र होने पर भी सिवाय दुर्योधन के, किसी ने उसे भाई स्वीकार नहीं किया। वह दुर्योधन के साथ अंत तक रहा और उसने युद्ध में वीरगति पाई। भीष्म पितामह तक ने उसे पांडवों से मिल जाने की सलाह दी थी मगर कर्ण अपनी प्रतिज्ञा से पीछे नहीं हटा। एक वह युद्ध था और एक काल के ये धर्मयुद्ध हैं जिनमें एक पार्टी से दूसरी पार्टी में जाने के लिए इतनी मुद्रा मिलती है जितनी कि आप और मैं तो अनुमान भी नहीं लगा सकते। शराबी, कबाबी, वेश्यागामी, भ्रष्ट और चरित्रहीन जनसेवक हैं जो लाखों की भीड़ में माइक पर चिल्ला-चिल्लाकर कहते हैं कि हमें अपनी पुरानी संस्कृति को भूलना चाहिए क्योंकि हमारा देश महान् है। ये जनसेवक भी कितने बड़े लोग हैं। पहले मात्र कर्ण की माता होने के कारण ही कुंती लजाती थी, कर्ण लजाता था और एक ये आज के कर्णधार हैं जो भूखी जनता का रक्त पीते हैं, उसका गोشت खाते हैं, और फिर भी लाखों लोगों को दिन-दहाड़े ईमानदार होने की सलाह देते हैं। आपने इससे बड़ा आश्चर्य क्या सचमुच कहीं देखा है?”

आज की तथाकथित प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्था की सड़ांध वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था में उत्पन्न हो गई। राजनीतिक शक्तियाँ बस अपना उल्लू सीधा करती हैं। नैतिक पतन और भ्रष्टाचार का हृदय दर्जे तक बोलबाला हो गया है। देश की राजनीति ऊपर से नीचे तक पूर्णतः भ्रष्ट हो चुकी है। रवीन्द्रनाथ त्यागी सत्ता और राजनीति की अनेक विकृतियों को ऐतिहासिक आयाम देकर बीच-बीच में अनेक सन्दर्भों के रूप में सजीव बना देते हैं। रवीन्द्रनाथ त्यागी इतिहास का सन्दर्भ देते हुए आज की राजनीति पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं, “दिल्ली में महाभारत अभी भी जारी है। धृतराष्ट्र भी हैं, दुःशासन और शकुनि भी हैं और दुर्योधन व जयद्रथ भी हैं। पाण्डव अज्ञातवास पर थे, वे शायद अब लौटें। भारतमाता ठीक द्रौपदी की भाँति सबके सामने नंगी की जा रही है। एक धर्मप्रधान देश में यदि यह नहीं होगा तो और क्या होगा? जिस प्रकार मुहम्मद तुगलक ने अपने बाप की हत्या की थी और जिस प्रकार अलाउद्दीन खिलजी और औरंगजेब आलमगीर ने क्रमशः अपने स्नेही चाचा और शरीफ भाइयों का गला काटा था, उसी तरह आज भी एक नेता दूसरे नेता का गला निस्संदेह होकर सबके सामने काट रहा है। इस चिरंतन प्रथा में कतई कोई व्यक्तिक्रम नहीं आया।” स्वतन्त्रता के बाद भारतीय राजनीति में अन्तर्विरोध बढ़ते गये। राजनीति में चमचावाद की जैसी विकृतियाँ उत्पन्न हुईं। रवीन्द्रनाथ त्यागी स्वतन्त्रता के बाद भारतीय राजनीति में चमचावाद की विकृति को हिन्दी की छायावाद की कविता के साथ सन्दर्भ देकर लिखते हैं कि, “स्वाधीनता के बाद चमचावाद को जो गौरव और लोकप्रियता प्राप्त हुई है वह अपने जमाने में छायावाद को भी नहीं प्राप्त हुई थी। छायावाद की बड़ी सीमाएँ थीं। वह मात्र हिन्दी भाषी क्षेत्र की कविता तक सीमित था जबकि चमचावाद सारे देश में हुकूमत करता है और कविता के बाहर भी उसकी गति उतनी ही अनन्त है जितनी कि काव्य के क्षेत्र के भीतर।”

भारत में जहाँ 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भवना को सर्वोपरि स्थान दिया था वहाँ अब राष्ट्रीय जीवन के हर क्षेत्र में जाति एवं वर्ग भेद को बढ़ाने की नीति ही सर्वोपरि हो गई। वर्तमान में भी हम देखें तो हर क्षेत्र में घोर भ्रष्टाचार, घूसखोरी, लालफीताशाही और कानून का उल्लंघन होते देखा जा सकता है। स्वातन्त्र्योत्तर भारत में यह अटल सत्य है कि "सरकार है कि कभी कानून के बाहर नहीं जाती। हाँ, जरूरत पड़ने पर विधान जरूर बदल दिया जाता है जो कि एक स्वस्थ प्रथा है। सच्चा कानून वही है जो वक्त के साथ बदले।" भारत के राजनैतिक क्षेत्र में ऐतिहासिक काल से ही कुछ विसंगतियाँ विद्यमान रहीं इसमें फिजूलखर्ची का इतिहास बहुत पुराना रहा है। फिजूलखर्ची के हिसाब से हमारा देश सदा से बेहतरीन रहा है। रवीन्द्रनाथ त्यागी इतिहास से इसकी जड़ें खोज ले आते हैं और व्यंग्यात्मक रूप में वे लिखते हैं, "कुछ नेता जरूरत से ज्यादा विलासी हैं और फिजूलखर्ची इतनी की जा रही है कि कुछ कहा ही नहीं जा सकता। फिजूलखर्ची की दिशा में अकबर के नौ रत्नों में से एक अब्दुरहीम खानखाना इतने खुले दिल के इंसान थे कि साल-भर की कमाई एक ही दिन में उड़ा दिया करते थे।.. एक ओर देश गरीबी और अशिक्षा में पड़ा था और शहंशाह शाहजाहाँ ने ताजमहल बनवाया था कि जिसमें करोड़ों रुपयों का खर्चा आया था। अब ऐसी स्थिति को सामने रखकर, क्या यह हमें शोभा देता है कि यदि हमारे नेता कामकाज से थककर किसी जगह मित्रों के साथ छुट्टी मनाने चले जाएँ तो हम उसकी आलोचना करें?" फिजूलखर्ची की तरह इस देश में रिश्वत व भाई-भतीजावाद की भी एक लम्बी परम्परा रही है। इस पर रवीन्द्रनाथ त्यागी लिखते हैं "रिश्वत और भाई-भतीजावाद भी कोई ऐसी चीज नहीं है कि उन्हें लेकर हम दुःखी हों। फिरोजशाह तुगलक का एक रिश्तेदार काफी परेशानी में पड़ा था क्योंकि उसके पास हाकिम को देने के लिए पैसे नहीं थे। बादशाह ने जब उसकी व्यथा सुनी तो उसने रिश्वत देने के लिए उसे पूरी रकम दे दी। हाँ, अलबत्ता रिश्वत लेने वाले उस हाकिम के खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं की। शेरशाह तक दिवानी के महकमे से घूस लेना नहीं बंद कर सका था। मुस्लिम सुल्तानों के समय में कोतवाल का पद उसे दिया जाता था जोकि गर्वनर(सुबेदार) को ज्यादा से ज्यादा रकम दे सकता था। जहाँ तक भाई-भतीजावाद का प्रश्न है, स्थिति यह थी कि आमदनी वाले ओहदों पर शेरशाह तक अपने रिश्तेदारों को ही लगाता था और उन्हें बदलता भी रहता था।" इन विसंगतियों के अलावा हमारे समाज और देश में विदेशों में कालाधन जमा करवाने का रिवाज हमेशा रहा था। नेता और तथाकथित बड़े लोग अपनी जमापूँजी हमेशा किसी विदेशी बैंकों में जमा कर रखते हैं। रवीन्द्रनाथ त्यागी इस प्रवृत्ति पर चोट करते हुए कहते हैं कि, "विदेशों में रुपया जमा करने की प्रथा भी कोई नई नहीं है। सम्राट मुहम्मदशाह रंगीले ने नादिरशाह की मार्फत सत्तर करोड़ रुपए ईरान में जमा किए थे।"

भारत की विदेश नीति सदा उदार रही है परन्तु इस उदारता ने उसे कोई लाभ दिया हो ऐसा न था। रवीन्द्रनाथ त्यागी भारत की इस उदार विदेश नीति को अपने व्यंग्य का लक्ष्य बनाते हुए कहते हैं, "विदेश नीति में हम सदा तटस्थ रहे-धारा के बीच कभी नहीं उतरे। जब कोई विपत्ति पड़ी तो पूँजीवादी देशों ने यह सोचा कि हमारी मदद साम्यवादी देश करेंगे और साम्यवादी सामंतों ने यह विचारा कि भारत की सहायता करने के लिए पूँजीवादी देशों को भी अवसर दिया जाना चाहिए। इस संतुलित नीति का सीधा परिणाम यह रहा कि अपनी सेना पर हमारा व्यय बढ़ते-बढ़ते पंद्रह करोड़ रुपये प्रतिवर्ष तक पहुँच गया।" भारत की विदेश नीति में आतिथ्य सत्कार की परम्परा एक प्रमुख अंग रही है। रवीन्द्रनाथ त्यागी इस परम्परा पर चोट करते हुए कहते हैं कि, "हमने सदा दोनों पक्षों को सम्मान दिया। चीन ने तिब्बत हड़प लिया तो हम चुप रहे और जब दलाई लामा भागकर भारत आये तो उन्हें भी हमने आश्रय दिया। अतिथि सत्कार की पुरातन परम्परा हमने कभी नहीं तोड़ी। आर्यों से लेकर हूणों तक, तुर्कों से लेकर ईस्ट इंडिया कंपनी के अंग्रेजों तक-जो भी आया उसे हमने सब कुछ दिया। जयचंद ने मुहम्मद गोरी को निमंत्रित किया तो राणा सांगा ने वही भद्रता शहंशाह बाबर के साथ दिखायी। हमने जो कुछ भी किया

यह परमार्थ के लिए किया, स्वार्थ के लिए कभी नहीं। हमारी इस शानदार विदेश नीति के कारण ही आधे मंत्री और उच्च अधिकारी प्रायः विदेशों में ही रहते हैं। कुछ का तो पैसा भी विदेशों में ही है। आखिर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' वाला सिद्धांत भी तो याद रखना पड़ेगा।" विदेश नीति के साथ-साथ भारत की घरेलू नीति भी पर रवीन्द्रनाथ त्यागी ने चोट की है। वे लिखते हैं, "यदि विदेश नीति ऐसी बनायी गयी कि ज्यादा से ज्यादा देश हमसे नाराज रहें, तो घरेलू नीति इसके ठीक विपरीत ऐसी बनायी गयी कि उससे हमारे नये राजा लोग (मंत्री गण व उच्च अधिकारी वर्ग) ज्यादा से ज्यादा खुश रहें। भ्रष्टाचार, जनसंख्या, गरीबी, महंगाई, कानून और व्यवस्था, शिक्षा और धर्म तथा कला और साहित्य—इन सभी बातों पर उसी निश्चित दृष्टिकोण से विचार किया गया। प्रजातंत्र आने पर भी राजतंत्र हमने नहीं छोड़ा। उत्तराधिकार की प्रथा भी बरकरार रही और दिल्ली में पहले यदि 'हैदराबाद हाउस' और 'पटियाला हाउस' वगैरा शाही भवन होते थे तो उनके स्थान पर अब 'हरियाणा हाउस' और 'बिहार हाउस' इत्यादि का निर्माण किया गया। मोटे तौर पर यह नीति ऐसी रही कि आजादी का मजा सब तक पहुँचे—चाहे वह समाजसेवक हो या पेशेवर कातिल, चाहे मंत्री हो या वेश्यागामी संन्यासी। आजादी का हक तो सबके लिए बराबर ही होना था।"

रवीन्द्रनाथ त्यागी राजनीतिक दृष्टि से कभी किसी विचारधारा से नहीं जुड़े हुए थे। उनकी दृष्टि में राजनीति अथवा राजनीतिक महत्त्व के विषय उतने प्रमुख कभी नहीं रहे जितना देश और समाज मुख्य रहा है। वे समाज की अनेक समस्याओं को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखते हुए व्यंग्यपूर्वक लिखते हैं, "केवल पिछले वर्ष ही छः सौ के लगभग नवविवाहित वधुएँ जिंदा जलायी गयीं और यह परम्परा है कि जोर पकड़ती जा रही है। सती—प्रथा को इस दूसरी शकल में वापिस लाना प्रत्येक धर्मात्मा व्यक्ति को सुख देगा।" भारतीय संस्कृति में खासकर धर्म में इतिहास की स्थिति बहुत मजबूत है। वह जनसामान्य के भीतर गहरे तक फैली है। रवीन्द्रनाथ त्यागी इस छद्म आस्था और भावुकता पर प्रहार करते हुए एक नई चिन्तन दिशा का निर्माण करते हैं। लोकतन्त्र में धर्म के नाम पर राजनीतिक विभाजन आम बात है। रवीन्द्रनाथ त्यागी लिखते हैं कि, "प्रभू की लीला अपरंपार है। पहिले हमारा मात्र एक देश था मगर धर्म और भगवान के नाम पर इसके तीन भाग हो गए। जो काम भूगोल नहीं कर सका वह इतिहास ने कर दिखाया। अगर आप सही अर्थों पर धर्मात्मा बने रहे तो इस देश के और भी खंड हो सकते हैं।" रवीन्द्रनाथ त्यागी को पूरी सांस्कृतिक परम्परा का ज्ञान था। वे संस्कृति को शोभा की वस्तु नहीं मानते थे। उसे समाज से जोड़ करके देखने के अभ्यस्त थे। वे अपने एक निबन्ध में प्राचीनकाल से चली आ रही धर्म और जातिप्रथा पर चोट करते हुए लिखते हैं कि, "इस देश में धर्म और जाति जो हैं वे त्योहारों से भी ऊपर हैं। दिवाली वैश्यों का त्योहार है, विजयादशमी क्षत्रियों का पर्व है और होली जो है वह पिछड़ी जातियों का उत्सव है। ब्रह्मणों का अपना कोई त्योहार नहीं होता, वे तो सदियों से बाकी जातियों के त्योहारों को ही अपना मानते आए और ब्रह्मण से 'महाब्रह्मण' बनकर अपना 'लक्ष्मीवाहन' सीधा करते रहे। हमारी चारों जातियाँ ब्रह्मा के विभिन्न अंगों से प्रकट हुईं और वेदों में चाहे जो लिखा हो, दैनिक व्यवहार में चारों जातियाँ कर्म के आधार पर नहीं वरन् जन्म के ही आधार पर तय होती रहीं।" साहित्य और राजनीति का संबंध पुरातन काल से रहा है। वे अपने व्यंग्य निबंध में लिखते हैं कि, "साहित्य और राजनीति का साथ बहुत पुराना है। इंग्लैंड के राजा जेम्स प्रथम ने तंबाखू के बारे में किताब लिखी थी और स्वयं जूलियस सीजर ने गालप्रदेश की विजय का इतिहास लिखा है। बहादुरशाह जफर गजलें लिखते थे और गांधी, नेहरू एवं चर्चिल ने भी साहित्य में काफी योगदान दिया। जेम्स प्रथम के दरबार में फ्रांसिस बेकन वित्तमंत्री थे जो निबंध लिखने के साथ-साथ सरकार के खर्च का देखभाल भी करते थे। इस विषय में वह इतने दत्तचित्त थे कि सरकार की कुछ रकम गड़बड़ करने के आरोप में उन्हें कुछ वर्ष जेल में भी गुजारने पड़े। साहित्य और सरकार के सामंजस्य का इससे अच्छा उदाहरण और क्या हो सकता है?" रवीन्द्रनाथ त्यागी राजनीति और साहित्य दोनों का ऐतिहासिक सन्दर्भ देकर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं कि, "अपने देश में अज्ञातवास

की पुरानी परंपरा फिर से ताजी हो रही है। जयप्रकाश नारायण एक वर्ष के लिए अज्ञातवास पर जा रहे हैं। पांडव लोग भी इसी तरह अज्ञातवास पर गये थे। डॉ. तेजा ने भी कई वर्षों तक अज्ञातवास किया। अर्जेन्टाइना के भूतपूर्व राष्ट्रपति, चार्ली चैपलिन और एजरा पाउंड भी वर्षों तक अपने देश के बाहर रहे। सच्ची बात तो यह है कि हमारे देश के काफी लेखकों और नेताओं को अज्ञातवास पर चला जाना चाहिए। इससे देश और साहित्य दोनों को नया रक्त मिलेगा।”

भारत सदा से जातिप्रथा की कट्टरता और समाज में पूँजी के आधार पर विभाजित रहा है। रवीन्द्रनाथ त्यागी इस विभाजन का पूरा ऐतिहासिक परिदृश्य खोलकर समाने रख देते हैं। वे लिखते हैं, “विदेशियों ने जब भारत में अपनी वीरता और हमारी कमजोरी के कारण यहाँ हुकूमत स्थापित की तो हिन्दुओं का लक्ष्य यही रहा—और शताब्दियों तक रहा—कि इन्हें फिर से कैसे यहाँ से बाहर निकाला जा सके। इसके बाद अंग्रेज आए और हमारे ऐसे मालिक बने कि गुरुदेव तक ने इंग्लैंड के सम्राट को ‘भारत-भाग्य-विधाता’ कहकर पुकारा। अब हिन्दू और मुसलमान—दोनों के सामने एक ही लक्ष्य रहा और वह था कि इन फिरंगियों को भारत से कैसे निकाला जाए। जब यह लक्ष्य भी पूरा हो गया तो देश की जनता के सम्मुख यह प्रश्न खड़ा हुआ कि अब किसे देश से निकालें, अब किसके खिलाफ लड़ें? जाति के नाम पर चले, इस पवित्र आन्दोलन ने यह स्पष्ट किया कि वत्स, अब तुम धर्म और जाति के नाम पर आपस ही में लड़ों और गृहयुद्ध करो। काम शुरू हो गया और भविष्य में होली पानी या कीचड़ से नहीं वरन् देशवासियों के रक्त से ही खेती जाएगी। सब लोग यह भूल रहे हैं कि सारे संसार में मात्र दो ही धर्म हैं और दो ही जातियाँ हैं और वे हैं अमीरी और गरीबी।” रवीन्द्रनाथ त्यागी अन्तिम पंक्तियों से ये स्पष्ट व्यंग्य कर देते हैं कि सदियों से चली आ रही इस जातिप्रथा के मूल में आर्थिक विभाजन प्रमुख रहा है।

समसामयिक इतिहास बोध पर भी इनकी नजर बराबर लगी रही थी। समकालीन भारत में भ्रष्टाचार एक गंभीर समस्या है। वे इस संबंध में लिखते हैं कि, “यह नितांत संतोष का विषय है कि हमारी सरकार ने भ्रष्टाचार के ‘कुटीर उद्योग’ को एक बड़े उद्योग का रूप देने में हर प्रकार की सहायता की। अगर पहले मात्र थानेदार, बिक्रीकर अधिकारी, सब रजिस्ट्रार, ओवरसियर और चकबंदी अधिकारी ही भ्रष्ट होते थे, अब मंत्री, उच्च अधिकारी और सेना के अफसर भी भ्रष्ट होने लगे। एक वरिष्ठ और कुशल-प्रशासक मंत्री जी ने मृत्यु के बाद मात्र कोई तीन सौ करोड़ रुपये की संपत्ति छोड़ी, एक मेजर जनरल और एयर वाइस मार्शल को ‘आफीशल सीक्रेट्स एक्ट’ के अन्दर दस-दस साल की सख्त कैद दी गयी और एक कमीशनर को खुलेआम गिरफ्तार किया गया।” आज मँहगाई जिस तेजी से बढ़ती जा रही है वो काफी निराशाजनक स्थिति है। ऐसी स्थिति का लाभ उठाकर कुछ स्वार्थी लोग मिलावट और कालाबाजारी का धंधा खूब फूला-फूला रहे हैं। इस पर रवीन्द्रनाथ त्यागी जी का कहना है कि, “इस सन्दर्भ में उन देश प्रेमी व्यापारियों को न भूलिए जो काली मिर्च में पपीते के बीज और पिंसी हुई मिर्चों में ईंट की सुर्खी मिला रहे हैं। यदि वे ऐसा नहीं करते तो पता नहीं कीमतें कहाँ की कहाँ पहुँच जातीं। और यह भी न भूलिए कि जरूरत की जो आम वस्तुएँ हैं, उसकी कीमतें हर्गिज नहीं बढ़ी। बीड़ी, पोस्टकार्ड, तीसरे दर्जे का टिकट, ठर्रा, कुली और लड़कियाँ अभी भी बेहद सस्ती हैं।” सहज भाषा में पैनी बात कह डालने की क्षमता रवीन्द्रनाथ त्यागी में दृष्टिगत होती है।

रवीन्द्रनाथ त्यागी गाहे-बगाहे इतिहास के कुछ ऐसे अनछुहे पहलू को भी सामने लाते हैं, जिनसे इतिहास के नए पृष्ठों को जानने का मौका मिलता है। वे अपने एक व्यंग्य निबंध ‘गांधीजी के बंदर और गधे’ में लिखते हैं “मैं ये बात दावे के साथ कहता हूँ कि औरंगजेब को जितना कट्टर बताया जाता है, उतना वह हर्गिज नहीं था। यदि ऐसा होता तो वह चित्रकूट के एक मंदिर को इतनी जागीर कैसे दे गया? अंग्रेजों ने हम पर जितने अत्याचार किए उनमें सबसे बड़ा अत्याचार वह है कि उन्होंने हमारा इतिहास जानबूझकर गलत किया ताकि हिन्दू और

मुसलमान हमेशा आपस में लड़ते रहें। और हम लोगों ने भी उन्हें निराश नहीं किया।" 'धर्मचर्चा' नामक व्यंग्य निबन्ध में वे लिखते हैं "यह कहना बड़ा आसान है कि फलां धर्म जो है वह तलवार के जोर पर फैला, मगर सच्ची बात यह है कि ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म और बौद्ध धर्म के लोकप्रिय होने का प्रथम कारण यह रहा कि उनके पवित्र ग्रंथ बेहद कम हैं और जो हैं, वे भी काफी सरल हैं। हमारे यहाँ तो स्थिति यह है कि वेदों का व्याकरण तक भी अलग ही है जो 'निरुक्त' कहलाता है। वैदिक व्याकरण के विपरीत लौकिक संस्कृत का जो व्याकरण है वह पाणिनी की 'अष्टाध्यायी' नामक पुस्तक में संग्रहित है। हमारे पूर्वज शायद सोचते थे कि यदि धर्म-ग्रंथ सरल हो गए तो वे पवित्र नहीं रहेंगे।"

रवीन्द्रनाथ त्यागी कभी कभी ऐतिहासिक तथ्यों का पूरा विवरण देते हैं और इतनी कुशलता से कि वो उनकी कथन शैली का ही एक हिस्सा बन जाता है। जैसे—'चाँदनी चौक जहानआरा ने बनवाया था। नई दिल्ली का निर्माण सर एडविन लिटिन्स और सर हरबर्ट बेकर ने किया। तुगलक सुलतान अपनी कब्रें और मकबरे अपने जीवनकाल में ही बनवा डालते थे क्योंकि उन्हें यह विश्वास कभी नहीं रहता था कि उनकी अगली पीढ़ी उनके लिए इतने भव्य मकबरों का निर्माण करेगी। तुगलक वंश के एक सुलतान ने अपने एक कुत्ते की कब्र बनवाई थी और ठीक यही मेहरबानी अकबर ने अपने एक हाथी के साथ की थी। लाल किले से नादिरशाह करोड़ों रुपए ले गया और बाद में सन् 1760 में मराठा सरदार सदाशिव भाऊ ने किले की छत की चांदी उतरवाई जिसके सत्रह लाख सिक्के बने। जिस सुनहरी मजिस्द पर खड़े होकर नादिरशाह ने कल्लेआम का हुक्म जारी किया था वह अभी भी मौजूद है। जामा मजिस्द के बनाने में 5,000 मजदूरों और कारगरों को छः वर्ष लगे थे और कुल खर्चा दस लाख रुपए आया था। जंतर-मंतर राजा जयसिंह ने बनवाए थे जिन्हें खगोलशास्त्र के साथ ज्योतिष का भी बड़ा ज्ञान था। मगर उन्हें यह पता नहीं था कि दक्षिण में पराजित होने के कारण उन्हें उस आक्रमण का सारा खर्चा खुद उठाना पड़ेगा। यह खर्चा सिर्फ एक करोड़ रुपए था।" 'इतिहास का शव' शीर्षक निबंध में वे लिखते हैं "दिल्ली एक ऐसा नगर है जो बार-बार उजड़ा और बार-बार बसा। कम से कम ग्यारह दिल्लियों के खंडहर तो हमें अभी प्राप्त हैं। बारहवीं दिल्ली वह है जो नई दिल्ली के नाम से जानी जाती है।" रवीन्द्रनाथ त्यागी के यथार्थ लेखन ने उन्हें समाजिक चेतना के पैरोकार का साहित्यकार बना दिया।

निष्कर्षतः रवीन्द्रनाथ त्यागी के विशाल दायरे में जिन्दगी के सारे रंग मौजूद हैं। उनकी सूक्ष्म दृष्टि छोटी से छोटी विकृति को पकड़ने में सक्षम रही है। अपने समय की उन्हें कितनी चिन्ता थी, उसका परिचय उनके व्यंग्य निबन्धों में मिल जाता है। इतिहास बोध उनके व्यंग्यों में चाहे सामाजिक सन्दर्भ हो, धार्मिक या राजनैतिक सन्दर्भ हो रवीन्द्रनाथ त्यागी ने अपने लेखन में उसे उचित स्थान दिया है। कहीं-कहीं तो बिल्कुल नवीन सन्दर्भों में ऐतिहासिक तथ्य को प्रस्तुत करके इतिहास को वर्तमान से जोड़ देते हैं। अपने विशाल अनुभवों के तीक्ष्ण अवलोकन से वे इतिहास को अपनी रचनाओं में सजीव कर देते हैं। इस प्रकार उनके पास समग्र इतिहास दृष्टि है जो उनके लेखन में मौजूद है।

सन्दर्भ :

1. कवि और व्यंग्यकार रवीन्द्रनाथ त्यागी, डॉ. आशा रावत, संस्करण 2001, रचना प्रकाशन, जयपुर पृ. 139,
2. हरिशंकर परसाई
3. चम्पाकली रवीन्द्रनाथ त्यागी, कुछ प्राचीन कथाएँ, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ. 73
4. चम्पाकली रवीन्द्रनाथ त्यागी, दिल्लीनामा, पृ. 13
5. शोक-सभा, रवीन्द्रनाथ त्यागी, एक बड़े आदमी के बारे में, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1974, पृ. 79
6. गणतंत्र दिवस की शोभायात्रा, रवीन्द्रनाथ त्यागी, आजादी के चालीस वर्ष बाद, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1991 पृ. 31

7. यक्ष-प्रश्न, रवीन्द्रनाथ त्यागी, अपराधी कौन? मेधा बुक्स, नई दिल्ली, 2005, पृ. 184
8. वहीं, पृ. 185
9. वहीं, पृ. 185
10. गणतंत्र दिवस की शोभायात्रा, रवीन्द्रनाथ त्यागी, आजादी के चालीस वर्ष बाद, पृ. 28
11. वहीं, पृ. 28
12. वहीं, पृ. 29
13. आत्मलेख, रवीन्द्रनाथ त्यागी, कवि-धर्म, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1988, पृ. 30
14. शोक-सभा, रवीन्द्रनाथ त्यागी, एक दीक्षान्त भाषण, पृ. 72
15. लाल पीले फूल, रवीन्द्रनाथ त्यागी, होली का पवित्र पर्व और हमारे बुद्धिजीवी, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997 पृ.15
16. आत्मलेख, रवीन्द्रनाथ त्यागी, राग गैरदरबारी : एक बहुत पुराना पत्र, पृ. 103
17. शोक-सभा, रवीन्द्रनाथ त्यागी, एक खबरदार लेख, पृ. 39
18. लाल पीले फूल, रवीन्द्रनाथ त्यागी, यागी, होली का पवित्र पर्व और हमारे बुद्धिजीवी, पृ.16
19. गणतंत्र दिवस की शोभायात्रा, रवीन्द्रनाथ त्यागी, आजादी के चालीस वर्ष बाद, पृ. 29
20. वहीं, पृ. 31
21. इतिहास का शव, रवीन्द्रनाथ त्यागी, गांधीजी के बंदर और गधे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993, पृ. 172
22. देश-विदेश की कथा, रवीन्द्रनाथ त्यागी, धर्म-चर्चा, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994 पृ. 56-57
23. इतिहास का शव, रवीन्द्रनाथ त्यागी, इतिहास का शव, पृ. 174-175
24. वहीं, पृ. 173



सामाजिक परिवर्तन लाने में प्रौद्योगिकीय कारकों की भूमिका (रीवा नगर के विशेष संदर्भ में)

डॉ. (श्रीमती) शाहेदा सिद्दीकी

सहायक प्राध्यापक, समाजशास्त्र

शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

(नैक द्वारा "ए" ग्रेड प्रदत्त)

परिवर्तन प्रकृति का एक शाश्वत व अटल नियम है। मानव समाज भी उसी प्रकृति का अंश होने के कारण परिवर्तनशील है। समाज की इस परिवर्तनशील प्रकृति को स्वीकार करते हुए मेकाइवर ने कहा है "समाज परिवर्तनशील और गत्यात्मक है। परिवर्तन क्यों और कैसे होते हैं, ये प्रश्न आज भी पूरी तरह हल नहीं हो पाए हैं। प्रो. ग्रीन लिखते हैं – "सामाजिक परिवर्तन इसलिये होता है क्योंकि प्रत्येक समाज असंतुलन के दौर से निरन्तर गुजर रहा है। कुछ व्यक्ति एक संपूर्ण संतुलन की इच्छा रख सकते हैं तथा कुछ इसके लिये प्रयास भी करते हैं। "सामाजिक परिवर्तन एक अवश्यंभावी तथ्य है। इसकी निश्चितता को प्रकट करते हुए डेविस कहते हैं – "हम स्थायित्व एवं सुरक्षा के लिये निरन्तर प्रयत्नशील हो सकते हैं, समाज के स्थायित्व का भ्रम चारों ओर फैलाया जा सकता है, निश्चयात्मकता के प्रति खोज निरन्तर बनी रह सकती है और विश्व अनंत है। इस विषय में हमारा विश्वास दृढ़ हो सकता है, लेकिन यह तथ्य सदैव विद्यमान रहने वाला है कि विश्व के अन्य तत्वों की तरह समाज अपरिहार्य रूप से और बिना किसी छूट के सदैव परवर्तित होता रहता है।"

परिवर्तन का सामान्य अर्थ –

परिवर्तन से तात्पर्य है, "किसी क्रिया अथवा वस्तु की पहले की स्थिति में बदलाव आ जाना।" फिचर लिखते हैं – "परिवर्तन, पहले की अवस्था या अस्तित्व के प्रकार में अंतर को कहते हैं।" सामान्यतः सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य समाज में घटित होने वाले परिवर्तनों से है। जॉनसन ने सामाजिक परिवर्तन के बारे में लिखा है कि "सामाजिक परिवर्तन को लोगों के कार्य करने तथा विचार करने के तरीकों में होने वाले रूपान्तर के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।" गिन्सबर्ग भी लिखते हैं कि – "सामाजिक परिवर्तन एक सर्वव्यापी एवं सार्वभौमिक घटना है।" कोई भी दो समाज एक समान नहीं है। उनके इतिहास और संस्कृति में इतनी भिन्नता पाई जाती है कि किसी को भी दूसरे का प्रतिरूप नहीं कह सकते।" (बीरस्टीड)

सामाजिक परिवर्तन उन परिवर्तनों को कह सकते हैं जो मानवीय संबंधों, व्यवहारों, संस्थाओं, प्रथाओं, प्रस्थितियों, कार्यविधियों, मूल्यों, सामाजिक संरचना एवं प्रकार्यों में होते हैं। मैरिल एवं एल्ड्रिज का भी मत है कि मानव क्रियाओं में होने वाले परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन हैं। सामाजिक परिवर्तन के लिये उत्तरदायी अनेकानेक कारकों में प्रौद्योगिकीय कारक सबसे महत्वपूर्ण हैं। आज समाज में जो तीव्रता से परिवर्तन हो रहे हैं इन परिवर्तनों के मूल में प्रौद्योगिकीय कारक ही हैं। प्रौद्योगिकी से तात्पर्य उन उन्नत प्रविधियों से है जो हमें भौतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता प्रदान करती है। आधुनिक युग में प्रौद्योगिकी के महत्व के कारण इसे प्रौद्योगिकी युग भी कहते हैं। जब भी किसी मशीन आदि का अविष्कार होता है तो वह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हमारे सामाजिक जीवन को प्रभावित करती है। यदि यह कहा जाय कि पिछले करीब 500 वर्षों में जितने भी परिवर्तन हुये हैं, उनके पीछे सबसे प्रमुख कारक प्रौद्योगिकी हैं तो इसमें किसी प्रकार की अतिशयोक्ति नहीं है। यह वास्तविकता है कि विज्ञान के क्षेत्र

में होने वाली प्रगति ने अनेक अविष्कारों को जन्म दिया। अविष्कारों से यंत्रीकरण (Mechanization) बढ़ा है और यंत्रीकरण के फलस्वरूप उत्पादन की प्रणाली में क्रांतिकारी परिवर्तन हुये हैं। जैसे ही उत्पादन की प्रणाली बदलती है उसके साथ ही साथ सामाजिक संबंधों, परिस्थितियों और भूमिकाओं, सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक संरचना में बदलाव आता है। यही तो सामाजिक परिवर्तन है। रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, यातायात और संचार के नवीन साधनों, बिजली, पहिये, अणुशक्ति, कम्प्यूटर इंटरनेट आदि के अविष्कार में सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने में योग दिया है।

सामाजिक परिवर्तन लाने में प्रौद्योगिकीय कारकों के प्रभाव के बारे में हमारा युवा वर्ग क्या दृष्टिकोण रखता है यही इस शोध पत्र का मुख्य आधार है।

शोध के उद्देश्य –

1. सामाजिक परिवर्तन लाने में प्रौद्योगिकीय कारकों के प्रभावों का पता लगाना।
2. नवीन प्रौद्योगिकी का जीवन के विविध क्षेत्रों पर पड़ने वाले निरन्तर एवं व्यापक प्रभावों को सामने लाना।
3. नवीन प्रौद्योगिकी के कारण लोगों की मनोवृत्तियों, विश्वासों और मूल्यों में आने वाले परिवर्तनों को ज्ञात करना।
4. प्रौद्योगिकी कारकों के प्रभाव स्वरूप युवा पीढ़ी के अधिकारों और शक्ति में वृद्धि हुई है, इस बात का पता लगाना।
5. नवीन प्रौद्योगिकी से स्त्रियों की आर्थिक स्वतंत्रता और अधिकार पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में जानकारी हासिल करना।
6. प्रौद्योगिकीय कारकों ने सामाजिक संरचना के बदलाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, इस तथ्य को खोजना।

अध्ययन का क्षेत्र –

प्रस्तुत शोध पत्र का अध्ययन क्षेत्र रीवा नगर है। रीवा नगर के युवा वर्ग से प्राप्त जानकारी के आधार पर सामाजिक परिवर्तन लाने में प्रौद्योगिकी कारकों की भूमिका का विश्लेषण किया गया है। वैसे तो प्रौद्योगिकी का प्रभाव सम्पूर्ण विश्व, देश, ग्राम और नगर पर हुआ है, परन्तु अध्ययन क्षेत्र के रूप में म.प्र. के रीवा नगर को प्रमुख रूप से चुना गया है। रीवा नगर उत्तर पूर्वी मध्यप्रदेश का सर्वप्रमुख शैक्षणिक नगर होने के साथ-साथ विन्ध्य क्षेत्र का भी एक प्रमुख नगर है। प्रौद्योगिकी का प्रभाव रीवा नगर पर भी स्पष्टतः देखा जा सकता है। रीवा नगर संभाग रीवा तहसील मुख्यालय है। जिसकी सीमाएँ जिले के उत्तर में उत्तरप्रदेश के इलाहाबाद तथा बांदा जिला, पूर्व उत्तर की ओर मिर्जापुर, दक्षिण में म.प्र. का सीधी शहडोल जिला, पश्चिम की ओर सतना जिले से जुड़ी है। रीवा नगर सफेद शेरों की धरती के नाम से विश्व विख्यात है।

न्यादर्शों का चयन –

रीवा नगर की कुल जनसंख्या में से 100 युवाओं को समग्र का प्रतिनिधित्व करने वाले उत्तरदाताओं के रूप में सामाजिक परिवर्तन पर प्रौद्योगिकीय कारकों के प्रभाव को जानने के लिये विचारपूर्वक निदर्शन पद्धति के आधार पर चयनित किया गया है। चूंकि युवा वर्ग नवीन प्रौद्योगिकी से शीघ्र प्रभावित होता है तथा उसके उपयोग में अग्रणी रहता है, इसीलिए अध्ययन क्षेत्र के युवाओं को ही सूचनादाता के रूप में चुना गया है। न्यादर्शों का आयु वर्ग 18 वर्ष से लेकर 30 वर्ष तक है।

उपकरण –

सूचनादाताओं से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से सूचनाएँ एकत्रित की गयी हैं। पत्रिकाओं, लेखों का

अध्ययन, समाचार पत्र-पत्रिकाएँ, सरकारी रिकार्डों, जनगणना आदि के द्वारा भी द्वैतीयक सामग्री संकलित की गई है।

उपकल्पना —

मुख्य उपकल्पना — सामाजिक परिवर्तन लाने में प्रौद्योगिकीय कारकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

उप उपकल्पना —

1. प्रौद्योगिकीय कारकों के समाज पर प्रभावस्वरूप स्त्रियों की स्थिति में सुधार हुआ है।
2. प्रौद्योगिकीय कारकों के परिणामस्वरूप सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि हुई है।

तथ्यों का संकलन, वर्गीकरण एवं विश्लेषण —

वर्तमान समय में नवीन प्रौद्योगिकी ने लोगों की मनोवृत्तियों, विश्वासों और मूल्यों को काफी प्रभावित किया है। प्रौद्योगिकी के कारण ज्ञान का अविष्कार हुआ। इस नवीन ज्ञान के कारण नए-नए उद्योग धंधों का विकास हुआ। औद्योगिकरण से नगरीयकरण तथा यातायात और संचार के साधनों में वृद्धि हुई। इन कारणों से सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया तीव्र हुई। भौतिक उपकरणों के उपयोग से व्यक्तिवाद की भावना में इजाफा हुआ। प्रौद्योगिकी कारकों के प्रभाव स्वरूप वैयक्तिकता में वृद्धि हुई है। यह जानने के लिये मैंने अपने अध्ययन क्षेत्र के सूचनादाताओं से प्रश्न किया कि — प्रौद्योगिकी कारणों से व्यक्तिवाद की भावना का विकास हुआ है। प्राप्त उत्तरों को तालिका क्र. 01 में दर्शाया गया है —

सारणी क्रमांक 01

प्रौद्योगिकी में प्रभावस्वरूप व्यक्तिवाद की भावना में वृद्धि संबंधी विवरण

क्र.	व्यक्तिवाद की भावना का विकास हुआ है	आवृत्तियाँ	प्रतिशत
1	हाँ	68	68
2	नहीं	32	32
	योग	100	100

प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि 68 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने प्रौद्योगिकी कारणों से व्यक्तिवाद भावना का विकास हुआ है, इस बात के पक्ष में स्वीकृति दी है। उनका मानना है कि प्रौद्योगिकी के कारण व्यक्तियों की आवश्यकताएँ बढ़ी जिनकी पूर्ति करना समुदाय के लिये मुश्किल हो गया। इन सबका परिणाम यह हुआ कि सामुदायिक भावना में कमी आई। सामुदायिक भावना के ह्रास का परिणाम व्यक्तिवाद की भावना में विकास के रूप में हुआ। प्रौद्योगिकी के प्रभाव स्वरूप भौतिक दृष्टिकोण पनपा। अधिकाधिक धन की आवश्यकता ने धनवादिता और व्यक्तिवादिता को बढ़ावा दिया है जबकि 32 प्रतिशत उत्तरदाता इसके पक्ष में नहीं हैं।

जाति भारतीय समाज की महत्वपूर्ण विशेषता है। प्रौद्योगिकीय कारणों ने जाति प्रथा पर क्या प्रभाव डाला है, यह जानने के लिये मैंने सूचनादाताओं से प्रश्न पूछा कि क्या प्रौद्योगिकी कारकों के परिणामस्वरूप जाति प्रथा के प्रभाव में कमी आई है? तब प्राप्त उत्तरों का वर्गीकरण निम्नानुसार है —

सारणी क्रमांक 02

प्रौद्योगिकी कारणों का जाति प्रथा पर प्रभाव संबंधी विवरण

क्र.	जाति प्रथा के प्रभाव में कमी आई है	आवृत्तियां	प्रतिशत
1	हाँ	65	65
2	नहीं	35	35
	योग	100	100

65 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस बात को माना है कि प्रौद्योगिक कारणों के प्रभावस्वरूप जाति प्रथा के प्रभाव में कमी आई है। उनके अनुसार यंत्रीकरण ने औद्योगिकरण व नगरीकरण को जन्म दिया। नगरों में होटल, रेस्टोरेण्ट, सिनेमाघरों, व्यवसाय, शिक्षा आदि ने जाति के बंधनों को शिथिल किया। अब व्यक्ति का पद, प्रतिष्ठा और व्यवसाय जाति के स्थान पर उसके कर्म से अधिक जाने जाने लगे हैं।

अतः प्रौद्योगिक कारणों ने जाति को प्रभावित कर सामाजिक परिवर्तन में सहायता प्रदान की है। 35 प्रतिशत उत्तरदाता अभी भी जाति के प्रभाव को प्रौद्योगिकी से अप्रभावित मानते हैं।

परिवार समाज की एक महत्वपूर्ण संस्था है। प्रौद्योगिकी ने परिवार के परम्परागत स्वरूप और आकार को भी परिवर्तित किया है। मैंने अपने अध्ययन क्षेत्र के उत्तरदाताओं से जब पूछा कि – “क्या प्रौद्योगिकी कारणों के प्रभाव से संयुक्त परिवारों का विघटन हुआ है।” तब प्राप्त उत्तरों को तालिका क्र. 03 में प्रदर्शित किया गया है।

सारणी क्रमांक 03

प्रौद्योगिकी कारणों के प्रभावस्वरूप संयुक्त परिवारों में विघटन संबंधी जानकारी

क्र.	संयुक्त परिवारों का विघटन हुआ	आवृत्तियां	प्रतिशत
1	हाँ	70	70
2	नहीं	30	30
	योग	100	100

संयुक्त परिवार पर प्रौद्योगिकी के महत्वपूर्ण प्रभाव प्रकाश में आए हैं, संयुक्त परिवारों में विघटन के प्रति दृष्टिकोण का प्रतिशत 70 है। उनके अनुसार संयुक्त परिवार कृषि पर आधारित होते थे, क्योंकि कृषि कार्यों के लिए अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता होती थी, किंतु प्रौद्योगिकी के परिणामस्वरूप मशीनों का अविष्कार हुआ और मशीनीकरण से बड़े-बड़े उद्योगों का जन्म हुआ और रोजगार की उपलब्धता बढ़ी। यातायात के साधनों के विकसित होने से व्यक्ति खेती छोड़कर रोजगार की तलाश में कारखानों और नगरों की ओर जाने लगे। इसका परिणाम यह हो रहा है कि संयुक्त परिवार धीरे-धीरे टूटने लगे हैं। संयुक्त परिवारों के न टूटने के पक्ष में 30 प्रतिशत उत्तरदाता रहे जो पूर्णतः ग्रामीण परिवेश से थे।

प्रौद्योगिकी कारणों का स्त्रियों की स्थिति पर भी प्रभाव पड़ा है, इस संबंध में न्यादशों के विचार लिये गये। 72 प्रतिशत न्यादशों ने स्त्रियों की स्थिति में सुधार आया है, इस बात पर सहमति व्यक्त की है। वे मानते हैं कि नवीन प्रौद्योगिकी में मशीनों के उपयोग ने स्त्रियों के कार्यों को हल्का किया गया है, जिससे परिवार का बोझ भी हल्का हुआ है। अब वे प्रेशर कुकर, गैस, बिजली और अनेक श्रम बचत उपकरणों को काम में लेकर खाना बनाने, बर्तन साफ करने, कपड़ा धोने आदि के कारण उन्हें पर्याप्त समय मिल जाता है। इसका परिणाम यह हुआ कि वे शिक्षा और व्यवसाय के क्षेत्र में प्रवेश करने लगी। प्रौद्योगिकी के कारण स्त्री शिक्षा और रोजगार के अवसर भी बढ़े हैं अब वे फैक्ट्रियों, दफ्तरों, स्कूलों और विभिन्न संस्थाओं में पुरुषों के समान काम करने और आर्थिक रूप से स्वतंत्र व आत्मनिर्भर होने लगी है। आज वे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा शिक्षा के क्षेत्र में पुरुषों से पीछे नहीं है, उनकी स्थिति में पर्याप्त सुधार हो गया है, वे अब अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हैं, इस सुधार, इस परिवर्तन का कारण प्रौद्योगिकी ही है। 28 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस पर अपनी असहमति व्यक्त की है। प्राप्त आंकड़े निम्न तालिका क्र. 04 में दिखाए गये हैं।

सारणी क्रमांक 04

स्त्रियों की स्थिति में सुधार संबंधी जानकारी

क्र.	स्त्रियों की स्थिति में सुधार हुआ है	आवृत्तियां	प्रतिशत
1	हाँ	72	72
2	नहीं	28	28
	योग	100	100

प्रौद्योगिकी के कारण मनुष्य के सामाजिक संपर्क का दायरा बढ़ा है, एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना सुविधाजनक हुआ है जिससे सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि हुई है। इस संबंध में न्यादशों के इस दृष्टिकोण को भी अध्ययन में शामिल किया गया है। इस संबंध में प्राप्त आंकड़े तालिका क्र. 05 में प्रस्तुत है –

सारणी क्रमांक 05

सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि संबंधी विवरण

क्र.	सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि हुई है	आवृत्तियां	प्रतिशत
1	हाँ	81	81
2	नहीं	19	19
	योग	100	100

प्रौद्योगिकी के कारण मनुष्य की सामाजिक गतिशीलता बढ़ी है, 81 प्रतिशत सूचनादाताओं ने इस बात को माना है। उनका कहना है कि वर्तमान में नवीन प्रौद्योगिकी के कारण आवागमन और संचार के साधनों का बड़ी तेजी से विकास हुआ है। औद्योगिकीकरण के कारण बड़े-बड़े उद्योगों और व्यवसायों की स्थापना हुई। व्यापार और व्यवसाय के विकास के लिये डाक, रेडियो, टेलीफोन, समाचार पत्र, इंटरनेट, कम्प्यूटर आदि का विकास हुआ। उद्योग धंधों में बड़े पैमाने पर उत्पादन होने लगा। उत्पादित माल को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने के लिये सड़कों, रेलमार्गों, जलमार्गों और वायुमार्गों का भी विकास हुआ। इन सबको संचालित करने के लिये लोगों की आवश्यकता भी बढ़ी। फलस्वरूप बदली हुई सामाजिक स्थिति में लोगों के लिये सामाजिक गतिशीलता न केवल सरल और सुलभ हो गई, बल्कि आवश्यक भी हो गई। लोग विभिन्न स्थानों, समूहों, वर्गों और व्यवसायों के लिये एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने लगे हैं। स्पष्ट है कि प्रौद्योगिकी ने सामाजिक गतिशीलता को बढ़ाने में योगदान दिया है। 19 प्रतिशत उत्तरदाता सामाजिक गतिशीलता को प्रौद्योगिकी से प्रभावित नहीं मानते हैं।

उपकल्पनाओं का परीक्षण –

मुख्य उपकल्पना – “सामाजिक परिवर्तन लाने में प्रौद्योगिकीय कारकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।” सामाजिक परिवर्तन हेतु समाज में अनेक क्षेत्र विद्यमान हैं। 68 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने प्रौद्योगिकी के परिणामस्वरूप व्यक्तिवाद की भावना के विकास में वृद्धि हुई है। (देखें तालिका क्र. 01) इसके पक्ष में विचार प्रस्तुत किये हैं। 65 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने जाति प्रथा के प्रभाव में कमी आई है, इस बात को स्वीकृत किया है। (देखें तालिका क्र. 02) परिवार के स्वरूप में परिवर्तन हुआ है अर्थात् संयुक्त परिवार विघटित हुए हैं, 70 प्रतिशत न्यादशों ने इससे सहमति जताई है। (देखें तालिका क्र. 03) स्त्रियों की स्थिति में सुधार हुआ है इसके पक्ष में 72 प्रतिशत न्यादशों ने अपने पक्ष रखे हैं (देखें तालिका क्र. 04) तथा सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि हुई, इससे 75 प्रतिशत उत्तरदाता सहमत हैं (देखें तालिका क्र. 05) आदि प्राप्त आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि ये सभी प्रौद्योगिकी कारण सामाजिक परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। अतः हमारी मुख्य उपकल्पना – “सामाजिक परिवर्तन लाने में प्रौद्योगिकीय कारकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। प्राप्त आंकड़ों से परीक्षण के पश्चात सत्य साबित होती है।

उप उपकल्पना –

1. प्रौद्योगिकीय कारकों के समाज पर प्रभाव स्वरूप स्त्रियों की स्थिति में सुधार हुआ है। 72 प्रतिशत उत्तरदाताओं से प्राप्त आंकड़े बताते हैं कि प्रौद्योगिकी के कारण स्त्रियों की दशा में सुधार हुआ है। आज स्त्रियां अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हैं व सभी क्षेत्रों में क्रियाशील हैं। अतः प्राप्त आंकड़े परीक्षण के पश्चात हमारी उप उपकल्पना को भी सत्य साबित करते हैं कि “प्रौद्योगिकीय कारकों के समाज पर प्रभाव स्वरूप स्त्रियों की स्थिति में सुधार हुआ है।”

2. “प्रौद्योगिकी के परिणामस्वरूप सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि हुई है।”

सामाजिक गतिशीलता व स्थानीय गतिशीलता में वृद्धि प्रौद्योगिकी कारकों के कारण तीव्र हुई है। 81 प्रतिशत न्यादर्श इसके पक्ष में हैं। अतः आंकड़ों के प्रकाश में परीक्षण के पश्चात हमारी दूसरी उप उपकल्पना भी सत्यापित होती है कि – “प्रौद्योगिकी के परिणामस्वरूप सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि हुई है।”

निष्कर्ष – शोध क्षेत्र के उत्तरदाताओं से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर विषय के संबंध में निम्न निष्कर्ष प्रस्तुत हैं –

1. प्रौद्योगिकी के प्रभावस्वरूप व्यक्तिवाद की भावना का विकास हुआ है, इस संबंध में 68 प्रतिशत उत्तर पक्ष में प्राप्त हुए हैं। इसका प्रमुख कारण है कि प्रौद्योगिकी के प्रभावस्वरूप भौतिक दृष्टिकोण पनपा। भौतिक सुख सुविधाओं की पूर्ति के लिए अधिकाधिक धन की आवश्यकता ने धनवादिता और व्यक्तिवादिता को बढ़ावा दिया है जबकि 32 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस बात से असहमति जताई है।

2. 65 प्रतिशत न्यादर्थों के अनुसार प्रौद्योगिकी कारणों के प्रभावस्वरूप जाति प्रथा का प्रभाव कम हुआ है। उनके अनुसार यंत्रीकरण ने औद्योगीकरण व नगरीयकरण को जन्म दिया। नगरों के विविध क्षेत्रों में सामाजिक संपर्क का दायरा बढ़ा तथा पद, प्रतिष्ठा, व्यवसाय और सामाजिक संपर्क का आधार जाति न होकर कर्म व योग्यता को अधिक माना जाने लगा है। अतः जाति प्रथा के प्रभुत्व में कमी आई है। 35 प्रतिशत न्यादर्थ जाति के प्रभाव को अभी भी स्वीकार करते हैं।
3. 70 प्रतिशत सूचनादाताओं ने संयुक्त परिवारों के विघटन के लिये भी प्रौद्योगिकीय कारकों को जिम्मेदार ठहराया है। उनका कहना है कि प्रौद्योगिकी के प्रसार से क्रमशः यंत्रीकरण, औद्योगीकरण, नगरीकरण, यातायात व संचार के साधनों का विकास तथा रोजगार की उपलब्धता की प्रक्रिया में कृषि से जुड़कर एक ही छत के नीचे रहने की संयुक्त परिवार की अनिवार्यता को कम कर दिया है। फलतः संयुक्त परिवार टूटने लगे हैं। 30 प्रतिशत सूचनादाताओं ने अभी भी संयुक्त परिवार को प्रौद्योगिकीय प्रभाव से दूर माना है।
4. स्त्रियों की दशा में सुधार के लिये भी प्रौद्योगिकीय कारण महत्वपूर्ण है। इस बात से 72 प्रतिशत उत्तरदाता सहमत हैं। उनके अनुसार नवीन प्रौद्योगिकी में मशीनों के उपयोग में स्त्रियों की सहभागिता, श्रम बचत उपकरणों के उपयोग से समय की बचत का उपयोग, महिलाओं के द्वारा सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा शिक्षा के क्षेत्र में आगे आने में किया जाने लगा है। अतः स्त्रियों की स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ है। 28 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसा नहीं मानते हैं।
5. प्रौद्योगिकी के कारण विविध भौतिक व इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों ने स्थान की दूरियों को कम किया है तथा संपर्क साधन तीव्रगामी हुये हैं। फलतः सामाजिक गतिशीलता व्यक्ति के लिये सुलभ और सरल हो गयी है। ऐसा 81 प्रतिशत सूचनादाताओं के द्वारा स्वीकार किया गया है। 19 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इसे अस्वीकार किया है।

सुझाव —

यद्यपि भारतीय समाज में प्रौद्योगिक प्रगति की प्रक्रिया तीव्र होने के कारण सामाजिक परिवर्तन हुये हैं तथा समाज पर सकारात्मक प्रभाव भी पड़े हैं। परन्तु साथ ही साथ प्रौद्योगिक प्रगति के कारण भारतीय समाज और संस्कृति के कुछ क्षेत्रों में तनाव और पिछड़ेपन की स्थिति का भी जन्म और विकास हुआ है। इसके लिये कुछ महत्वपूर्ण सुझाव निम्नानुसार हैं —

1. भारत कृषि प्रधान देश है। कृषि में उन्नति के लिये यंत्रीकरण को अपनाया जा रहा है, किंतु भू स्वामित्व तथा भू-धारण की प्रवृत्ति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, इस पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है।
2. नई प्रौद्योगिकी के कारण देश का तेजी से औद्योगिक विकास हुआ है किंतु श्रमिक कानून एवं उनके कार्य करने की पद्धतियां वही पुरानी हैं, इसमें समयानुसार सुधार की आवश्यकता है।
3. यातायात तथा संचार के साधनों का तीव्र गति से विकास हुआ है, किंतु जनता में 'ट्रैफिक सेंस' का विकास नहीं हुआ है, इसके लिए सरकारी प्रयास अनिवार्य किये जाने चाहिए।
4. प्रौद्योगिक प्रक्रिया में शिक्षा में तीव्र गति से विकास के साथ ही समाज में डिग्री प्राप्त करने की प्रवृत्ति के कारण ज्ञान प्राप्त करने की आकांक्षा शिथिल हो रही है। सरकार को चाहिए कि शिक्षा पद्धति व नीति में सार्थक व वास्तविक परिवर्तन किये जाएं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. मेकाईवर 'सोसायटी', पृष्ठ — 18

2. ग्रीन ए डब्ल्यू 'सोशियोलॉजी', पृष्ठ - 615
3. डेविस किंग्सले - 'मानव समाज', पृष्ठ - 543
4. गुप्ता एम.एल. शर्मा डी.डी. (1985) 'सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन' साहित्य भवन, आगरा, पृष्ठ-157
5. फिचर 'सोशियोलॉजी', पृष्ठ - 340
6. जॉनसन एम.डी. 'इन्ट्रोडक्शन टू सोशियोलॉजी एण्ड सोशल प्रब्लम, पृष्ठ - 99
7. गिन्सबर्ग (1985) 'सोशल चेंज-ब्रिटिश जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी', पृष्ठ - 205
8. मेरिल तथा एल्लिज - 'कल्चर एण्ड सोसायटी', पृष्ठ - 512
9. बीरस्टीड (1957) 'द सोशल आर्डर', पृष्ठ - 497
10. गुप्ता एम.एल. शर्मा डी.डी. - वही, पृष्ठ - 162
11. बघेल डॉ. डी.एस. (2010) 'समकालीन भारतीय समाज व संस्कृति' कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, पृष्ठ - 42
12. पारसंस (1958) 'द कन्सेप्ट ऑफ कल्चर एण्ड सोशल सिस्टम इन अमेरिकन सोशियोलॉजिकल' रिव्यू, पृष्ठ-583
13. कार्ल मार्क्स (1955) 'केपीटल' वाल्यूम -प्रथम, पृष्ठ-372
14. दैनिक भास्कर समाचार पत्र (10.06.12), पृष्ठ-04
15. डॉ. बघेल डी.एस. (2010) वही, पृष्ठ-179
16. गुप्ता एम.एल., शर्मा डी.डी. (1985) वही -पृष्ठ -179
17. Summer (2010) Folkways - Quoted by Cuber, Souology, PP-410
18. डॉ. बघेल डी.एस. (2010) वही - पृष्ठ-45
19. गुप्ता एम.एल., शर्मा डी.डी. (1985) वही - पृष्ठ-45



माध्यमिक स्तर की पिछड़ी जाति एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन

(रा.बा.इ.का., सितारंगज के संदर्भ में)

आस्मा

जे0आर0एफ0-शोध छात्रा, शिक्षा शास्त्र विभाग
एस0एस0जे0 परिसर, अल्मोड़ा, कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

मनुष्य हमेशा संसार के पीछे छिपे सत्य की खोज करता रहा है ताकि वह प्रकृति को समझकर उसकी शक्तियों का प्रयोग अपने जीवन में करके जीवन को सरल एवं सुविधाओं से पूर्ण बना सके, इस कार्य में विज्ञान ने मनुष्य की मदद करते हुए उसे समाज में एक अलग पहचान दी है। विज्ञान के अंतर्गत होने वाली तकनीकी खोजों ने समाज और संस्कृति को विश्व स्तर पर विकसित किया है और तकनीकी ने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जीवन के प्रति हमारे दृष्टिकोण को प्रभावित किया है। हमारी आवश्यकताओं के दायरे को बढ़ाया है। हमारे आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों को प्रोत्साहित किया है। विज्ञान ने हमारे जीवन के हर पहलू को छुआ और उसे प्रभावित किया है। आज मनुष्य चारों ओर से वैज्ञानिक उपकरणों एवं उससे प्राप्त सुख सुविधाओं से घिरा है इस प्रकार के समाज में रहते हुए वह विज्ञान के प्रति किस प्रकार की अभिवृत्ति अथवा दृष्टिकोण रखता है इसी सन्दर्भ में इस शोध-प्रपत्र को प्रस्तुत किया गया है।

विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति के सन्दर्भ में विभिन्न शोध-कार्य किये गये हैं। कोकेदर एवं कुलसे (2008) के अध्ययन में लिंग के आधार पर विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में कोई अंतर नहीं पाया गया। ओसबोर्न (2003), सिम्पसन एवं ओलिवर (1990), चेंग (2009), श्रीवास्तव (1992) ने छात्राओं की तुलना में छात्रों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति अधिक सकारात्मक पायी। जेन्सरानी (2012) ने शहरी विद्यालय के छात्रों की अभिवृत्ति ग्रामीण विद्यालय के छात्रों से अधिक सकारात्मक पायी। मंदना (1988) ने अपने शोध में ग्रामीण और शहरी विद्यार्थियों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति समान प्राप्त की। कुमार (1991) ने अपने अध्ययन में ग्रामीण और शहरी छात्र-छात्राओं की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में कोई अंतर नहीं पाया।

उपर्युक्त अध्ययनों से स्पष्ट है कि विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति के संदर्भ में विभिन्न शोध कार्य पूर्व में किये गये हैं। प्रस्तुत शोध कार्य द्वारा विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति को कई पक्षों द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

शोध की आवश्यकता :-

विज्ञान वर्तमान जीवन की आवश्यकता होने के कारण विज्ञान के प्रति छात्रों का दृष्टिकोण सकारात्मक होना बहुत आवश्यक है। सकारात्मक दृष्टिकोण होगा तभी वे विज्ञान के ज्ञान से जीवन में उपयोगिता की दृष्टि से अधिकतम लाभ प्राप्त कर सकेंगे और उनमें तार्किक क्षमताओं एवं समस्या-समाधान की योग्यताओं का विकास होगा।

छात्रों में विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति के मापन से ज्ञात होगा कि छात्रों में विज्ञान के प्रति किस प्रकार का

दृष्टिकोण है। वे विज्ञान के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं अथवा नकारात्मक। यदि दृष्टिकोण नकारात्मक है तो उसके कारणों को जानकर, शिक्षक उन्हें उपचारात्मक-शिक्षण देकर उनका निराकरण एवं समस्याओं का समाधान कर सकता है। अतः छात्रों के विज्ञान के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण को परिवर्तित करने के लिये उनकी विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति को जानना आवश्यक है। इसलिए प्रस्तुत शोध का अध्ययन आवश्यक एवं उपयोगी प्रतीत होता है।

शोध का समस्या कथन :-

माध्यमिक स्तर की पिछड़ी जाति एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन।

समस्या कथन के पदों का परिभाषीकरण :-

- ☆ माध्यमिक स्तर – माध्यमिक स्तर से तात्पर्य, उत्तराखण्ड सरकार द्वारा संचालित कक्षा 9वीं से कक्षा 12वीं तक के विद्यालयों के शैक्षिक स्तर से है।
- ☆ छात्राओं – छात्राओं से तात्पर्य कक्षा 9वीं में अध्ययनरत पिछड़ी जाति और अनुसूचित जाति की छात्राओं से है।
- ☆ अभिवृत्ति – अभिवृत्ति से तात्पर्य किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थिति आदि के प्रति सकारात्मक अथवा नकारात्मक दृष्टिकोण से है।

शोध के उद्देश्य :-

1. पिछड़ी जाति एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की जाति के आधार पर विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. पिछड़ी जाति एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं के निवास क्षेत्र के आधार पर विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।
3. पिछड़ी जाति एवं अनुसूचित जाति की छात्राओं की पारिवारिक संरचना के आधार पर विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध परिकल्पनायें :-

1. पिछड़ी जाति तथा अनुसूचित जाति की छात्राओं में जाति के आधार पर विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
2. पिछड़ी जाति तथा अनुसूचित जाति की छात्राओं में निवास क्षेत्र के आधार पर विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
3. पिछड़ी जाति तथा अनुसूचित जाति की छात्राओं में पारिवारिक संरचना के आधार पर विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

शोध का सीमांकन :-

- ⊕ प्रस्तुत शोध, केवल राजकीय बालिका इण्टर कॉलेज, सितारगंज में किया गया है।
- ⊕ शोध में राजकीय बालिका इण्टर कॉलेज, सितारगंज में अध्ययनरत कक्षा 9वीं की पिछड़ी जाति और अनुसूचित जाति की छात्राओं को सम्मिलित किया गया है।
- ⊕ शोध में केवल 60 छात्राओं का चयन किया गया है।

शोध-विधि : शोध-कार्य के लिये शोधकर्ता द्वारा वर्णनात्मक अनुसंधान की सर्वेक्षण-विधि का प्रयोग किया गया है।

न्यादर्श एवं न्यादर्शन :- प्रस्तुत शोध-प्रपत्र में शोधकर्ता द्वारा न्यादर्श का चयन राजकीय बालिका इण्टर कॉलेज, सितारगंज, ऊधमसिंह नगर से किया गया है। स्तरित-यादृच्छिक विधि द्वारा कक्षा 9वीं की पिछड़ी जाति और अनुसूचित जाति की 60 छात्राओं का चयन ग्रामीण और शहरी के आधार पर किया गया, जिसमें 30 छात्रायें पिछड़ी जाति की और 30 छात्रायें अनुसूचित जाति की चयनित की गईं। सभी छात्रायें उत्तराखण्ड बोर्ड की हिन्दी माध्यम की सत्र 2014-15 की नियमित विद्यार्थी हैं। चयनित न्यादर्श का वर्णन तालिका 1.1 से 1.3 तक किया गया है।

1. जातिवार न्यादर्श का वितरण –

तालिका संख्या – 1.1

क्र० सं०	जाति	छात्राओं की संख्या
1	पिछड़ी जाति	30
2	अनु० जाति	30
कुल		60

2. आवास क्षेत्र के आधार पर न्यादर्श का वितरण –

तालिका संख्या – 1.2

क्र० सं०	आवासीय स्थिति	छात्राओं की संख्या		कुल
		OBC	SC	
1	शहरी	15	15	30
2	ग्रामीण	15	15	30
कुल				60

3. पारिवारिक संरचना के आधार पर न्यादर्श का वितरण –

तालिका संख्या – 1.3

क्र० सं०	पारिवारिक संरचना	छात्राओं की संख्या		कुल
		OBC	SC	
1	एकल	18	22	40
2	संयुक्त	12	8	20
कुल				60

शोध उपकरण :- प्रस्तुत अध्ययन में ढौंडियाल एवं बिनवाल द्वारा निर्मित (2013) 'एटिट्यूड टूवार्ड्स साइंस मीजरमेन्ट स्केल' (ATSMS) का प्रयोग किया गया। इसमें पदों की संख्या 72 है। जिसके लिये अधिकतम प्राप्तांक 72 है। इस स्केल में अंकित अथवा रूप वैधता एवं विषयवस्तु वैधता है तथा इस उपकरण की विश्वसनीयता अर्द्धविच्छेदन विधि से ज्ञात की गई है जो कि उच्च है।

सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग :- संख्यात्मक आँकड़ों को व्यवस्थित ढंग से तालिकाबद्ध करके उनका विश्लेषण विभिन्न सांख्यिकीय प्रविधियों के द्वारा किया गया जैसे-मध्यमान, मानक-विचलन, टी- परीक्षण। शोध-कार्य में लिये गये सभी चरों के मध्यमानों में सार्थक अंतर ज्ञात करने के लिये अलग-अलग टी-परीक्षण का प्रयोग करके परिणाम प्राप्त किये गये हैं।

आँकड़ों का विश्लेषण एवं व्याख्या :- प्रस्तुत शोध-प्रपत्र में प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण शोधकर्ता द्वारा परिकल्पनाओं के आधार पर किया गया है -

परिकल्पनाओं के आधार पर मात्रात्मक आँकड़ों का विश्लेषण :-

(1) पिछड़ी जाति और अनुसूचित जाति की छात्राओं में जाति के आधार पर विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

तालिका संख्या - 2.1 : जाति के आधार पर विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति

जाति	कुल संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक-विचलन (S.D)	टी-मान (t-value)	सार्थकता स्तर (0-05)
OBC	30	45.37	6.91	1.99	निरर्थक
SC	30	48.27	4.05		

d.f. = 58

0.05=2.00 सार्थक मान।

उपर्युक्त तालिका संख्या-2.1 से ज्ञात होता है कि पिछड़ी जाति और अनुसूचित जाति की छात्राओं के मध्यमान के आधार पर टी-मान 1.99 है जो 0.05 सार्थकता स्तर पर प्राप्त तालिका मान 2.00 से कम है इसलिए प्राप्त टी-मान 1.99, 0.05 सार्थकता स्तर पर निरर्थक है। अतः पिछड़ी जाति और अनुसूचित जाति की छात्राओं की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं है। इस प्रकार शून्य-परिकल्पना सं०-एक "पिछड़ी जाति और अनुसूचित जाति की छात्राओं में जाति के आधार पर विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है" स्वीकृत प्रतीत होती है। जिससे स्पष्ट होता है कि जाति का छात्राओं की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। लेकिन मध्यमान के आधार पर विश्लेषण से ज्ञात होता है कि की अनुसूचित जाति की छात्राओं की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति पिछड़ी जाति की छात्राओं की तुलना में अधिक सकारात्मक है।

(2) पिछड़ी जाति और अनुसूचित जाति की छात्राओं में निवास क्षेत्र के आधार पर विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

तालिका संख्या - 2.2 : आवास क्षेत्र के आधार पर विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति

जाति	कुल संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक-विचलन (S.D)	टी-मान (t-value)	सार्थकता स्तर (0-05)
हरी	30	45.63	6.10	1.58	निरर्थक
ग्रामीण	30	47.97	5.35		

d.f. = 58

0.05=2.00 सार्थक मान।

उपर्युक्त तालिका संख्या-2.2 से ज्ञात होता है कि आवासीय स्थिति के अनुसार शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं के मध्यमान प्राप्तांकों के आधार पर टी-मान 1.58 है जो कि 0.05 सार्थकता स्तर पर निरर्थक है। इस प्रकार शून्य-परिकल्पना सं०-दो “पिछड़ी जाति और अनुसूचित जाति की छात्राओं में निवास क्षेत्र के आधार पर विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।” स्वीकृत प्रतीत होती है। जिससे स्पष्ट होता है कि छात्राओं के निवास स्थान का उनकी विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति से कोई संबंध नहीं है अर्थात् छात्राओं के ग्रामीण एवं शहरी होने का उनकी विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। लेकिन मध्यमान के आधार पर विश्लेषण से ज्ञात होता है कि ग्रामीण क्षेत्र की छात्राओं में विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति, शहरी छात्राओं की तुलना में अधिक सकारात्मक है।

मंदना (1988) एवं कुमार (1991) ने अपने शोध में ग्रामीण और शहरी छात्र-छात्राओं की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में कोई अंतर नहीं पाया।

(3) पिछड़ी जाति और अनुसूचित जाति की छात्राओं में पारिवारिक संरचना के आधार पर विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।

तालिका संख्या – 2.3 : पारिवारिक संरचना के आधार पर विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति

जाति	कुल संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक-विचलन (S.D)	टी-मान (t-value)	सार्थकता स्तर (0-05)
एकल	40	47-20	6-12	0-44	निरर्थक
संयुक्त	20	46-50	5-44		

उपर्युक्त तालिका संख्या-2.3 से ज्ञात होता है कि एकल एवं संयुक्त परिवार की छात्राओं के मध्यमान प्राप्तांकों के आधार पर टी-मान 0.44 है जोकि 0.05 सार्थकता स्तर पर निरर्थक है। अतः शून्य परिकल्पना सं०-तीन “पिछड़ी जाति और अनुसूचित जाति की छात्राओं में पारिवारिक संरचना के आधार पर विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।” स्वीकृत प्रतीत होती है। जिससे स्पष्ट होता है कि एकल एवं संयुक्त परिवार से आने वाली बालिकाओं की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में कोई अंतर नहीं होता है। अर्थात् एकल एवं संयुक्त पारिवारिक संरचना का बालिकाओं के विज्ञान के प्रति दृष्टिकोण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। लेकिन मध्यमान के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि एकल परिवार की छात्राएँ, संयुक्त परिवार की छात्राओं की तुलना में विज्ञान के प्रति अधिक सकारात्मक दृष्टिकोण रखती हैं।

बिनवाल (2013) ने अपने लघु शोध में पाया कि एकल एवं संयुक्त परिवार के छात्रों की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में कोई अन्तर नहीं होता है।

शोध के निष्कर्ष एवं परिणाम :-

सांख्यिकीय विधियों की सहायता से आँकड़ों का विश्लेषण करने के बाद प्रस्तुत शोध से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए -

1. पिछड़ी जाति और अनुसूचित जाति की छात्राओं में जाति के आधार पर उनकी विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में अंतर नहीं पाया गया। लेकिन मध्यमान के आधार पर अनुसूचित जाति की छात्राओं में विज्ञान के प्रति दृष्टिकोण अधिक सकारात्मक पाया गया।
2. शहरी और ग्रामीण छात्राओं में विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में कोई अंतर नहीं पाया गया अर्थात् निवास स्थान का विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है लेकिन मध्यमान के आधार पर ग्रामीण क्षेत्र की

छात्राओं में विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति अधिक सकारात्मक पायी गयी।

3. एकल एवं संयुक्त, पारिवारिक संरचना भी छात्राओं के विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति को प्रभावित नहीं करती है अर्थात् एकल एवं संयुक्त परिवार की छात्राओं की विज्ञान के प्रति अभिवृत्ति में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया। लेकिन एकल परिवारों की छात्राओं का विज्ञान के प्रति दृष्टिकोण मध्यमान के आधार पर अधिक सकारात्मक पाया गया।

सन्दर्भ-सूची

1. Best, J.W., and Kahn, James V. (1998). Research in Education (Seventh Ed.). New Delhi : PHI
2. Buch , M.B. (Ed.) (1988). Fourth Survey of Research in Education, New Delhi : NCERT.
3. Cokadar, H., and Kulce, C. (2008). Pupils Attitude towards Science : A Case study of Turkey. Wordl Applied Science Journal, 3 (1) 102-109.
4. Chang, S., Yeung, Y., and Cheng, M. (2009). Ninth graders learning interests, life experiences and attitude towards Science and technology. Journal of Science Education and technology, 18, 447-457.
5. Ghosh, Shibari (1989). A Critical Study of Scientific Attitude and Aptitude of the Students and Determination of some Determinants of Scientific Attitude. Ph.D., Education. University of Kalyani.
6. Malviya, K. (1991), A Study of attitude towards Science and interest in Science of School going adolescent, Ph.D., Education. Rani Durgawati Vishwavidyalaya.
7. Osborne, J., and et. al. (2003). Attitudes towards Science : a review of the literature and its implications. International Journal of Science Education, 25, 9, 1049-1079.
8. R. Jancirani, Dhevakrishnan, R., and Devi, S. (2012). A Study on Scientific Attitude of Adolescence Students in Namakkal District, International Educational E-Journal, IV.
9. Simpson, R.D., and oliver, J.S. (1990). A Summary of the Major influences on Attitude towards Science and achievement in Science among adolscent Students. Science Education, 74, 1-18.
10. Sriwastava, Veena (1992). A Study of Creativity among Higher Secondary Students in Relation to Scientific Aptitude and Attitude towards Science. Ph.D., Education. Agra University.
11. शर्मा, आर0सी0, एवं शुक्ला, सी0एस0 (2005) आधुनिक विज्ञान शिक्षण (प्रथम संस्करण) नई दिल्ली : धनपतराय पब्लिशिंग कम्पनी (प्रा0) लिमिटेड।



उत्तर प्रदेश के ग्रामीण अंचलों में स्त्री शिक्षा

(कानपुर का विश्लेषणात्मक अध्ययन)

डा० रंजना श्रीवास्तव
एसोसिएट रीडर व विभागाध्यक्ष-भूगोल
डी०बी०एस०पी०जी० कॉलेज
गोविन्द नगर, कानपुर।

डा० सुमन शर्मा
सहायक प्रोफेसर-अर्थशास्त्र
एस०एम०एल०के पी०जी कालेज
हंसपुर, मन्धना, कानपुर।

उत्तर प्रदेश समृद्ध प्राकृतिक संसाधनों, अनुकूल जलवायु एवं उपजाऊ भूसम्पदा से युक्त एवं जनसंख्या की दृष्टि से भी भारत का सबसे बड़ा प्रदेश है। उत्तर प्रदेश भारतीय भौगोलिक क्षेत्रफल का 9 प्रतिशत है। जिसमें प्रत्येक छटा भारतीय निवास करता है। ग्रामीण अंचलों से परिपूर्ण उत्तर प्रदेश में संस्कृति एवं जन-जीवन, परम्पराओं एवं आधुनिकता का विलक्षण संगम है। सीमित संसाधनों व बढ़ती जनसंख्या के फलस्वरूप बेरोजगारी की समस्या सुलझाने तथा मानव शक्ति का अधिकतम उपयोग सुनिश्चित करने के उद्देश्य से ग्रामीण अंचलों में स्त्री शिक्षा ही एक मात्र विकल्प है। भारत गाँवों वाला देश है। वर्तमान समय में भी 70 प्रतिशत से अधिक भाग ग्रामीण समाज में ही निवास करता है।

ग्रामीण अंचलों में स्त्री शिक्षा :

ग्रामीण समाज वह समाज जिसमें विशिष्टताओं के समावेश का बोध होता है। गाँव या ग्राम यह कोई नवीन शब्द नहीं बल्कि यह शब्द प्राचीन समय से प्रचलित है। गाँव में मानव का प्रकृति के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। प्रकृति से परिपूर्ण वातावरण में केवल शिक्षा की कमी देखने को मिलती है। वर्तमान युग में प्रशासनिक सुधार और विस्तार हो जाने के पश्चात् भी ग्रामीण अंचलों में स्त्री शिक्षा के प्रति ठोस कदम दिखाई नहीं पड़ते। जिससे ग्रामीण जीवन में आत्म विकास व आत्म नियन्त्रण का अभाव प्रतीत होता है। स्वतन्त्रता के बाद से आज तक हमारे शैक्षिक सफर में ग्रामीण अंचल पिछड़े रहे हैं। शायद यह ग्रामीण जीवन की सोच का ही प्रभाव प्रतीत होता है। स्त्री शिक्षा के प्रति उपेक्षित व्यवहार घोर चिन्ता का विषय है।

आज देश को शिक्षित महिलाओं के योगदान की आवश्यकता है। स्त्री शिक्षा का तात्पर्य परिवार, समाज व राष्ट्र की शिक्षा। इससे स्पष्ट होता है कि स्त्री शिक्षा पर भावी राष्ट्र का निर्माण परिवारिक परिवेश, सामाजिक सभ्यता, सांस्कृतिक और नैतिक जीवन के मूल्यों का विकास निर्भर होता है।

21वीं सदी के लिए सबसे आवश्यक सीढ़ी शिक्षा है। जिस देश अथवा प्रदेश की सभ्यता ने शिक्षा या ज्ञान को ज्यादा महत्व दिया है उसका विकास अभूतपूर्व गति से हुआ हमारे देश की 70 प्रतिशत जनता गाँवों में निवास करती है। जो गरीबी, अंध विश्वास और अशिक्षा के कारण कई अन्य प्रकार के शोषण का शिकार होती है। साक्षरता आन्दोलन से यह आशा की जाती है। जाति, धर्म स्थानीय और प्रान्तीय भेदभाव की सीमाओं को तोड़े और ग्रामीण अंचलों में रहने वाले लोगों को जागरूक करें।

हमारे देश का मेरुदण्ड धर्म है जिसके कारण भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति सदैव से बलवती हुई है। आश्चर्य की बात है कि जहाँ सबसे पहले ज्ञान का प्रसार हुआ। आज वहीं शिक्षा का अभाव दिखाई पड़ रहा है। हमारा देश विश्व की सबसे पुरानी सभ्यताओं में से एक है। जहाँ की बहुरंगी विविधता और समृद्ध, संस्कृति विरासत है साथ ही यह अपने आपको समय के साथ ढालती भी आई है। आजादी पाने के बाद पिछले 67 वर्षों से देश ने

बहुआयामी सामाजिक और आर्थिक प्रगति की। लेकिन यदि हम साक्षरता की बात कहें तो हम आज भी बहुत पीछे हैं। इससे प्रतीत होता है कि हम केवल सरकारी फाइलों में सुधार कर रहे हैं। 1947 में स्वतंत्रता के समय देश की 12 प्रतिशत आबादी ही साक्षर थी। वर्ष 2007 तक यह बढ़कर 68 प्रतिशत हो गई और 2011 में यह आंकड़ा 74 प्रतिशत हो गया। फिर भी यह विश्व के औसत 84 फीसदी से बहुत कम है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए संविधान में पूर्ण और अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव रखा गया। 1949 में संविधान निर्माण के 6 दशकों के बीत जाने के बाद भी हम अपना लक्ष्य हासिल नहीं कर सके। 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए शिक्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा दिया गया। लेकिन ग्रामीण अंचलों में कोई बड़ा बदलाव दिखाई नहीं दिया।

2011 के अनुसार उत्तर प्रदेश की जनसंख्या व साक्षरता दर

कुल जनसंख्या	4,581,268
स्त्री जनसंख्या	2,121,462
पुरुष जनसंख्या	2,459,806
साक्षर स्त्री प्रतिशत	75.05 प्रतिशत
साक्षर पुरुष प्रतिशत	83.62 प्रतिशत

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि उत्तर प्रदेश जनसंख्या की दृष्टि से सबसे बड़ा प्रदेश होने के बाद भी साक्षरता के प्रतिशत में काफी अन्तर देखने को मिलता है। पुरुषों की साक्षरता 83.62 प्रतिशत तथा स्त्रियों का 75.05 प्रतिशत है जो कि दर्शाता है कि हम विकास की खोखली बात कर रहे हैं। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश और राजस्थान में ही लगभग 42.67 प्रतिशत लोग निरक्षर हैं। ये कथन बड़ा ही विचारणीय है कि चारों राज्य हिन्दी भाषी होने के पश्चात् भी निरक्षरता का प्रतिशत बढ़ाए हुए हैं हम भले ही ज्ञान के युग का प्रतिनिधित्व करके एक शिक्षित दुनिया में रहने का दावा करें। जहाँ खुशहाली व सम्पन्नता है। सुख के सारे साधन हैं फिर भी एक बहुत बड़ा भाग (ग्रामीण समाज) ऐसा भी है जिस तक न सुख पहुँचा और न ही ज्ञान।

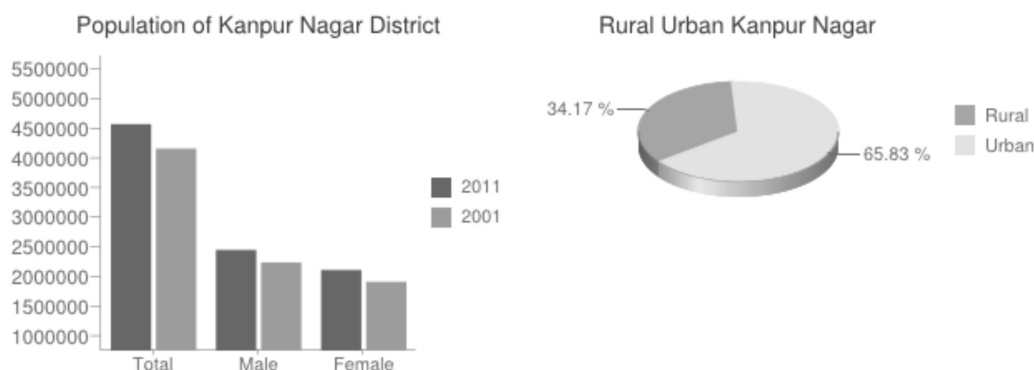
उत्तर प्रदेश का कानपुर सबसे बड़ा जिला है जो औद्योगिक नगरी के रूप में अपनी पहचान बनाए हुए है। अपने आप में धार्मिक, राजनैतिक इतिहास संजोये हुए शहर व गाँवों से परिपूर्ण कानपुर ने देश में ही नहीं बल्कि विदेशों में अपनी छाप छोड़ी है। कानपुर चमड़े का बड़ा निर्यातक जिला होने के साथ कृषि क्षेत्र से समृद्ध है। कानपुर की वर्ष 2011 के अनुसार जनसंख्या (4,581,268) है। जिसमें शहरीकरण हो जाने के बाद 1,234,812 पुरुष और 9,98,058 स्त्रियाँ कानपुर शहर में जीवनयापन कर रहे हैं। इसीलिए कानपुर शहर में 84.35 प्रतिशत पुरुष व 79.47 प्रतिशत स्त्रियों की साक्षरता दर दर्ज (नोट) की गयी है। कानपुर को भारत में महानगर के रूप में जाना जाता है और यदि कानपुर महानगर होने के पश्चात् भी यहाँ ग्रामीण अंचलों में शिक्षा की कमी पाई जाती है तो ये अपने आप में विचारणीय प्रश्न है। गाँवों में कमजोर तबके के लोग जो आज भी शिक्षा को महत्व न देकर रोजी रोटी कमाने पर जोर दे रहे हैं। समाज में श्रम कानून का उल्लंघन भी हो रहा है। सरकार की निःशुल्क शिक्षा योजना भी कमजोर होती प्रतीत हो रही है। इसका प्रमुख कारण प्रयोगवादी सोच की कमी है।

कानपुर महानगर की जनसंख्या व शहरी ग्रामीण जनसंख्या की साक्षरता दर

कुल जनसंख्या	ग्रामीण (Rural)	शहरी (Urban)
	1,565,623	3,015,645
पुरुष	837,260	1,622,546
स्त्री	728,363	1,393,099
पुरुषों की जनसंख्या	594,367	1,234,812

स्त्रियों की जनसंख्या	415,785	998,058
साक्षरता प्रतिशत पुरुष	82.13%	84.35%
साक्षरता प्रतिशत स्त्रियाँ	66.22%	79.47%

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि शहरी व ग्रामीण जनसंख्या की साक्षरता प्रतिशत में कमी देखने को मिलती है। एक तरफ हम ये कहते हैं कि असली भारत गाँव में बसता है।



महात्मा गाँधी ने भी कहा "जो विकास गाँव से शहरों को जायेगा वास्तव में वह भारत का सच्चा विकास होगा"। तो फिर ग्रामीण अंचलों में शिक्षा की प्रगति इतनी पीछे क्यों ? एक बालक जीवन के आदर्शों को अपने परिवार से सीखता है। माँ का प्रभाव उसके जीवन के हर पहलू में देखने को मिलता है। परिवार का केन्द्र बिन्दु माँ (स्त्री) होती है। गणित के सिद्धान्त के अनुसार केन्द्र दृढ़ है तो वृत्त ठीक बनता है। वैसे ही यदि परिवार का केन्द्र सुदृढ़ हो तो श्रेष्ठ समाज श्रेष्ठ राष्ट्र होगा। राष्ट्र के नव निर्माण में स्त्री शिक्षा विशेष है। पं० जवाहर लाल नेहरू ने कहा – जब महिलाएँ आगे बढ़ती हैं देश आगे बढ़ता है और देश की अर्थ व्यवस्था मजबूत बनती है। यह ज्ञान की वह लौ है जिससे परिवार, समाज, राष्ट्र प्रकाशित होता है। जब तक देश, प्रदेश, जिले की स्त्रियों की साक्षरता दर बढ़ाने में हम सफल नहीं होते तब तक हम सुख व खुशहाली की कल्पना नहीं कर सकते। वर्तमान "Right to Education" जैसे कानूनों को धरातल पर उतारे जाने की विशेष आवश्यकता है।

निष्कर्ष एवं सुझाव :-

ग्रामीण अंचलों में स्त्री शिक्षा की कमी है। इसका मुख्य कारण लम्बे समय से महिलाएँ घर की चार दीवारी में बन्द रही हैं। अल्पायु में विवाह, गृहणी के साथ में महिलाओं की भूमिका, पर्दाप्रथा, समाज में महिलाओं की निम्न स्थिति आदि कारणों में महिलाओं को शिक्षा तथा बाहरी जीवन से दूर रखा है। शिक्षा से संबंधित ऐसी ही विशेषतायें ग्रामीण तथा नगरीय क्षेत्रों की साक्षरता में भी दृष्टिगोचर होती है। उच्चतम एवं निम्नतम ग्रामीण समाज में शिक्षा की निम्न स्थिति देखने को मिलती है। विभिन्न धर्मों व सामाजिक वर्गों में शिक्षा का स्तर भिन्न देखने को मिलता है। ईसाईयों में उच्चतम, मुस्लिमों में न्यूनतम, अनुसूचित जाति में निम्नतम, उच्च जाति में उच्च इसका भी प्रमुख कारण सोच है। (जब एक गरीब आदमी जब एक साक्षर आदमी को नौकरी की तलाश में भटकते हुए देखता है तो वह सोचता है कि इससे अच्छा तो मैं हूँ जो बिना पढ़े कम से कम काम तो कर रहा हूँ।) शिक्षा के उद्देश्य और महत्व से उदासीन वह अपनी इसी सोच के साथ अपने बच्चों को शिक्षा की जगह काम करना सिखाता है इसीलिए समाज में बालश्रम देखने को मिल रहा है, इस मानसिकता को बदलने की जरूरत है। यह कहना अनुचित न होगा कि आर्थिक स्थिति प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से शिक्षा को प्रभावित कर रही है क्योंकि व्यक्ति आर्थिक रूप से सुदृढ़ होता है तो भोजन, वस्त्र और आवास के पश्चात् शिक्षा की ओर ही अग्रसर होता है। अतः ग्रामीण समाज

आर्थिक रूप से पिछड़ा होने के कारण शिक्षा के क्षेत्र में भी पिछड़ा है कानपुर के ग्रामीण क्षेत्र के लिए सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयास किए जाने चाहिए। जिससे ग्रामीण अंचलों (समाज में स्त्री शिक्षा को महत्व दिया जा सके) सुझाव के रूप –

1. ग्रामीण समाज में स्त्री शिक्षा का महत्व।
2. स्त्री शिक्षा के लिए गाँव में जागरूकता संगोष्ठी का आयोजन करना।
3. ग्रामीण समाज को सरकारी योजनाओं का लाभ पहुँचाना।
4. प्रौढ़ शिक्षा को रोजगार से जोड़ना।
5. स्त्री और पुरुषों की सहभागिता में स्त्री शिक्षा का प्रचार।
6. स्त्री शिक्षा कार्यक्रम विशेष रूप से ग्रामीण समाज को आकर्षित करें।
7. नवीनतम आंकड़ों के अनुसार देश के निरक्षरों में ग्रामीण महिलाएँ एवं बच्चे हैं। ग्रामीण महिलाओं की मानसिकता को बदलने की आवश्यकता।
8. ग्रामीण शिक्षा को रोजगार मुखी बनाने के लिए स्त्रियों एवं पुरुषों, दोनों को जागरूक किया जाए।

अतः उपर्युक्त सुझावों को अध्ययन क्षेत्रों में लागू किया जाए तो ग्रामीण समाज में स्त्री शिक्षा का स्तर बढ़ेगा। स्त्री पुरुषों में समानता का अधिकार, सहभागिता, बौद्धिक स्तर में सुधार स्त्रियों में आत्म निर्भरता, आत्म नियंत्रण की स्थिति उत्पन्न होगी। जो राष्ट्र के विकास के लिए आवश्यक है। जब देश में स्त्रियाँ स्वयं अपने द्वारा निर्णय लेने में सक्षम होंगी। बिना भय के घर से बाहर निकल कर अपने आपको सहज महसूस करेगी तब ही हम कह सकते हैं कि उसे एक शिक्षित समाज मिला – समाज को नव निर्माण एवं राष्ट्र को प्रगति की राह पर ले जाने का उत्तरदायित्व स्त्रियों पर ही है। जब स्त्रियाँ आगे बढ़ती हैं तो राष्ट्र स्वतः ही प्रगति करता है। आर्थिक जगत में महिलाओं की भागीदारी से समाज में व्याप्त रूढ़िवादी प्रवृत्तियों की समाप्ति स्वतः हो जायेगी। हम आशा करते हैं कि अगली जनगणना रिपोर्ट में हमारे समाज की इस समस्या का समाधान अवश्य होगा।

संदर्भ सूची :

1. भारतीय अर्थव्यवस्था – मिश्रा एवं पुरी
2. Economics of Labour and Social Welfare : Dr. T.N. Bhagoliwal
3. गाँधी सन्देश और लघु उद्योग – प्रो० मधुसूदन त्रिपाठी
4. सांस्कृतिक पत्रिका जनपद, कानपुर।
5. भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ – एस०पी० गुप्ता
6. विशेष पत्र एवं पत्रिकाएँ



बुन्देली स्त्रियों के परम्परागत आभूषण

सुनीता वर्मा

प्रवक्ता – इतिहास

एस.आर. महाविद्यालय, उरई

स्त्री- सौन्दर्य की अभिव्यक्ति व प्रस्तुती में आभूषणों का अपना विशिष्ट योगदान है। आभूषणों की प्रचलन की परम्परा आदि कालीन है। एक प्राचीन उल्लेख में कहा गया है—

ग्रैबेयकं कंठ भूषा, लम्बन रुयाल्ललन्तिका।

सरभेदात् यष्टि भेदात् गुच्छा गुच्छार्थ, गोस्ताना¹

आभूषण लोकसंस्कृति के लोकमान्य अंग हैं। आभूषणों के उपयोग का प्रभाव तन और मन दोनों पर पड़ता है। आभूषणों को धारण करने से शरीर का सौन्दर्य ही नहीं प्रकाशित होता, वरन् स्वास्थ्य भी सुरक्षित रहता है। पायल और कड़े धारण करने से एड़ी, टखरों और पीठ के निचले भाग में दर्द नहीं होता। आभूषणों से नारी की रुचि का पता चलता ही हैं, तत्कालीन आर्थिक और सामाजिक स्थिति की भी पहचान हो जाती हैं।²

बुन्देली आभूषणों का वर्णन आचार्य केशव, कवि अनुचर, कवि गंगाधर, कवि अवध, कवि मनभावन आदि के काव्य में मिलता ही है, परन्तु बुन्देली महाकवि ईसुरी इस क्षेत्र में अत्यधिक विख्यात हैं। नायिकाओं के नख- शिख वर्णन के ईसुरी का स्थान अप्रतिम है।

स्त्रियों के आभूषण :-

1. पैरों की उंगलियों के आभूषण— अंगूठे में अनौटा, चुटकी, छला लोकप्रिय हैं। इसके पश्चात पैरों की उंगलियों के अन्य आभूषण हैं—कटीला, गुच्छी, गेंदे, गुटिया, गरगजी, जोडुआ, बिरमिदी, पातें, पावपोस (पंजों पर), बाके, बिछिया।³

बिछिया देवगढ़ का दशावतार मंदिर में लक्ष्मी जी पैर में पहने हुये हैं।

पैर के आभूषण—स्त्रियां पैरों में विभिन्न प्रकार के आभूषण पहनती हैं। टखने के सहारे पहने जाने वाले आभूषण गुजरी (ऊपर कसी रहती हैं) चुल्ला, गुजरिया, टोडर, साकें, लच्छा, झांझें, पैरियाँ, छैल चूड़ी, घुंघरिया, बाकें, पायजेंब, तोड़ा, चूरा, कड़ा, गजरा, जेहर, आयल, छागलें।⁴

चुल्ला— चुल्ला आभूषण को आदिवासी स्त्रियाँ पहनती थीं। इस आभूषण का वजन एक किलो तक होता था।

लोककवियों के ईसुरी ने पैजना का वर्णन अपने लोकगीत में अधिक किया है—

चलतन परत पैजना छनके, पौउन गोरी धने के।

सुनतन रोम—रोम उठ आउत, धीरज रहत न तन के।

छूटे फिरत गैल—खोरन में, सूर मुख्रियार मदन के।

ईसुर कौन कसाइन डारे, जे ककरा कसकन के।⁵

पैजना का प्रचलन इस अंचल में इतना अधिक रहा है कि हम बुन्देलखण्ड का जनपदीय आभूषण कह सकते हैं।

कमर के आभूषण : करधौनी— कमर के चारों ओर पहनी जाती है, इसके छोर पेंचदार होते हैं जिन्हें कील द्वारा कसा जाता है। इलादार या पेटी की तरह करधौनी होती है। इसके अन्य प्रकार हैं— चौरसी, बिछुआ, अध—करधौनी, डोरा, कमर पट्टा।⁶

हाथ की उंगलियों के आभूषण— हाथ की उंगलियों में पोरा, छला, मुंदरी, अंगूठी, पैंती, छाप आदि पहनने का रिवाज था। सोने, चाँदी, तांबा, पीतल, लोहा, सप्त धातु आदि से बनती हैं। सोने, चाँदी, तांबे के मिश्रण से बनी मुंदरी को 'त्रिलोह' की मुंदरी कहते हैं।⁷

मुंदरी का वर्णन बुन्देली लोक गीतों में भी किया गया है—

‘मांगे ननद रानी हांत मुंदरी
जच्चारानी ने टोर लई दसों ऊंगरी।’⁸

कौंचा के आभूषण :— कौंचा के आभूषणों की परम्परा ताम्रयुग से प्रारंभ होती है, जिसमें तॉबे के कंगन पहने जाते थे। कौंचा के कंकन या ककना भी कहते हैं। ककना को बुन्देली लोकगीतों में नेग के रूप में भी गाया गया है। बच्चे के जन्म पर ननद अपनी भाभी से नेग माँगती हैं—

“मांगे ननद रानी ककना ललन के भये कौ।
मांगे बुआ रानी ककना ललन के भयो कौ।”⁹

अन्य आभूषणों में कड़ा कौंचियाँ, गजरा, गुँजे, चंदौली, चूरियाँ, चूरा, तैतिया, दौरी, पछेला, नौधरई, पटेला, बंगालिया, बताने बंगरी, रुनझुनियाँ, लाखें हथफूल, हरैयाँ।

बाह के आभूषण— गले के आभूषणों में खंगोरिया, सतिया, कटमा, गजरा, कंठा, तबिजिया, गुलूबंद, दुलनियाँ, दुसी, तिदौनी, ललरी, माला, सर, चम्पो, हार, गुज, गोप, बधियाँ, सेली, हमेल, बिचौली, करसकी, सारक, हाय चन्दा, सूरजा, बगनथा, धूकधुकू, जवारी, पुतिया, बीजासेन की पुतरिया¹⁰ सौत पुतरिया, मटर—माल, मंगलसूत्र, सौनिया चौका, तिवनी, पेटिया, जवारी आदि बीजासेन माता की पूजा के समय गया गती आज भी प्रचलित हैं—

बीजासेन माई मेय दरसन दयेव
बैसबाड़े की माई मेय दरसन दयेव
दरसन दयेव मोहय दरसन दयेव।

बुन्देली लोक जीवन या जन जीवन में मूंगा, मोती पेट के गहने पहनने का चलन था। गले में काली पोत का तिधाना जाता था। काली चीज नजर बन्द का काम करती थी। एक लोक गीत में बुन्देली नारी मूंगों की माला पहने हैं—

हम पैरें मूंगन की माला,
हमाई कोउ गगरी उतारौ।
कहाँ गये मोये सइयाँ गुसइयाँ,
कहाँ गये बारे लाला हमाई कोय गगरी उतारौ।¹¹

कान के आभूषण :— कान के आभूषणों में कनफूल, झेला, ढारें, कनौती, झुमकी, बारी, तिगड़ी, दुरबच्ची, गुरखुरु, मुरकी, खटियाँ, सुराई, बाला, कंडल, लोलक, बिजली, ऐरन, लाला, झाला, टापस, रिंग, बैकुण्ठी, ब्रजबाला, बोतलें (चाँदी) आदि।

कनफूलों को साधने के लिये कनौती पहनी जाती थी। कनफूलों का रिवाज अब समाप्त हुआ तो झुमकी पहनने का रिवाज बढ़ा।

नाक के आभूषण :— नाक में आभूषण केवल स्त्रियाँ ही पहनती हैं। पहले गर्ग (गर्गयाउ) पुंगरिया हमेशा

पहिनने के चलन में थी। इस समय पुंगरिया ग्रामीण क्षेत्रों में देखने को मिलती हैं। इनके अलावा दूर, बेसर, दुलरी, नथनी, आदि भी पहनी जाती थी जो गाल पर टिकी रहती थी। विवाहों में हल्के वजन की नथनी कहीं-कहीं चढ़ाई जाती हैं। ये कभी कभार ही उपयोग में आती थी। इस समय नाक में छोटी कील पहिनने का चलन है। शायद आगे यह भी चलन मिट जायें क्योंकि अब लड़की जीन्स और शर्ट, की पोशाक पहनने लगी हैं, जिसके साथ गहने पहनने का चलन नहीं है।

माथे के आभूषण :- माथे के आभूषण में टिकुली सबसे प्राचीन है। अन्य आभूषणों में टीका, तिलक, दाउनी या दावनी, बैदा-बैदी, बूँदा आदि।

दाउनी या दावनी का वर्णन कविवर मन भावन की फाग में मिलता है।

“सिर पै दमक दाउनी सोहै, मनमोहन मन मोहै।

झालर झूम रई मोतिन की, हीरा-लाल गँसो है।”¹⁴

सिर के आभूषण :- सिर के आभूषणों में कौकरपान या केकरपान, झूमर, बीज, सीसफूल या मोंगफूल, रेखड़ी आदि।

स्त्रियों को चरण से शिखा तक विविध आभूषण धारण करने की छूट थी। सिन्दूर, टिकली, महावर, काजल, महेंदी, सुगन्धित तेलों आदि का प्रयोग होता था।¹⁵

बुन्देली फागों में इन आभूषणों का वर्णन बड़ी सजीवता से मिलता है। सिर पर बैदी, कानों में कर्णफूल, झुमका, नाक में बेसर, गले में सॉकर, गजरा, हार, हाथों में ककना, दोहरी, कमर में करधौनी, पैरों में पैजना, झाँझ, बिछिया, छल्ला आदि विशेष महत्व रखते हैं।¹⁶

बिसरै ना मोय हलन दुर की, बेसर की गूँज तनक मुरकी।

दस ऊँगरी दस मुँदरी सोहें, बजन पैजना के सूर की।

कानन भर-भर करनफूल हैं, गोरे गाल सॉकर लुरकी।

नैनन भर-भर सुरमा सोहै, भरी मांग सुभ सेंदुर की।

गुदना गुदवाने का प्रचलन ग्रामीण तथा आदिवासी स्त्रियों में प्रचलित है। ग्रामीण बालाएँ इन्हें स्वर्ण प्राप्ति का साधन मानती हैं। इसलिए ये अंग-प्रत्यवों में राधाकृष्ण, राम सीता की झाँकिया तथा विविध प्रकार के फूल गुदवाती हैं। कुछ विशेष अंगों पर गुदवाये गये गुदने फागों में अपना विशेष-स्थान लिये हुए हैं—

गुदना लगत गाल पै प्यारौ।

हमखौ रजऊ तुम्हारौ।

इस पेपर में स्त्रियों के आभूषणों के बारे में वर्णन किया गया है। आभूषणों में गुदना गुदवाने का चलन था जो आज भी है।

संदर्भ संकेत :

1. किंजल्क, जगदीश — बुन्देलखण्ड में लोक आभूषणों की परम्परा (बु.लो.आ.प.) ईसुरी अंक — 17
2. गुप्त, नर्मदा प्रसाद — बुन्देलखण्ड की लोक संस्कृति का इतिहास, पृष्ठ 236
3. राय, जयप्रकाश सिंह, डॉ. योगेन्द्र प्रताप — उत्तर मध्य क्षेत्र की लोक संस्कृति, पृष्ठ 172
4. ‘कुमुद’ गुप्त, अयोध्याप्रसाद — बुन्देलखण्ड का लोक जीवन, पृष्ठ 87
5. गुप्त, नर्मदाप्रसाद — पूर्वोक्त, पृष्ठ 25
6. सिंह, दंगल — बुन्देलखण्ड के पुराने जेवर, मामुलिया अंक 22-24, पृष्ठ 42

7. गुप्ता, रामकिशोरी — बुन्देलखण्ड के पारंपरिक आभूषण, बुन्देली इतिहास और संस्कृति (सम्पादक — कपिल तिवारी) पृष्ठ 166
8. पुरवार, डॉ. हरिमोहन — बुन्देली लोकगीतों में भक्ति भावना, पृष्ठ 97
9. 'कुमुद' गुप्त, अयोध्याप्रसाद — सांस्कृतिक बुन्देलखण्ड, पृष्ठ 91
10. सम्यार्थी, पं. गुणसागर — मांगलिक प्रतीक, (बीजासेन) पत्रिका — चौमासा, पृष्ठ 150
11. बुधौलिया, डॉ. गनेशीलाल — लोकाचरण (बुन्देली संस्कृति और साहित्य की झलक) पृष्ठ 66
12. बखबार (राष्ट्रबोध) दिनांक — लोक कलाएँ, एक विहंगम दृष्टि, बुन्देली कला के विविध रूपों पर 3.9.2003, सं. रवीन्द्र शुक्ल
13. दास, नारायण — बुन्देली दरसन (बुन्देलखण्ड के लुप्त प्राय गहने) सम्पादक — डॉ. एम.एम. पाण्डे
14. गुप्त नर्मदा प्रसाद — पूर्वोक्त, पृष्ठ 267
15. चौरसिया, बासुदेव — चंदेलकालीन महोबा और जनपद हमीरपुर के पुरावशेष, पृष्ठ 23
16. पाठक, प्रमोद — फागों में बुन्देली संस्कृति, मामुलिया अंक 5, पृष्ठ 107



गाँधीवादी चिंतन में निहित प्राकृतिक संसाधन एवं पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा

डॉ. अनुपमा यादव

सहायक प्राध्यापक—राजनीति विज्ञान,
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भेल, भोपाल (म.प्र.)

पृथ्वी का धरातल और उसके सारे प्राकृतिक संसाधन, उसकी सारी प्राकृतिक दशाएँ, प्राकृतिक शक्तियाँ मानव जीवन को न केवल प्रभावित करती हैं वरन् वे उसके जीवन का आधार होती हैं। प्रकृति से हमारा सम्बन्ध हमेशा से गहरा रहा है प्रकृति ने जीव-जन्तुओं, वनस्पति, नदी, पहाड़, वायु, जल, खनिज सम्पदा आदि की रचना इसलिए की ताकि पर्यावरण संतुलित एवं संरक्षित रहे हमारे धर्मग्रंथों एवं महापुरुषों ने भी हमेशा यही संदेश दिया कि भारतीय मूल्य प्रकृति को पोषण करने का है दोहन करने या शोषण करने का नहीं।

महात्मा गांधी कोई पर्यावरणविद् या अर्थशास्त्री नहीं थे ना ही इसके नियमों एवं सिद्धान्तों में उनकी कोई अभिरुचि थी किन्तु समय-समय पर भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के संदर्भ में उन्होंने जो स्पष्ट दिशा-निर्देश दिये वे बाद में आदर्श तो बने ही, साथ ही उनमें पर्यावरण एवं प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की आदर्श भावना भी दृष्टिगोचर हुई, उनका मानना था कि “भारत गाँवों में बसता है, इसलिए उन्होंने गाँवों को प्राथमिक इकाई के रूप में माना उनके अनुसार भारत के पुनर्निर्माण का आधार गाँव ही हो सकते हैं। इसलिए ग्रामीण विकास पर उन्होंने सबसे ज्यादा जोर दिया उनका मानना था कि ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले गरीब लोग महिलायें आदि अपनी विभिन्न जरूरतों जैसे—खाना, ईंधन, औषधि, लकड़ी, जल आदि प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहकर जीवनयापन करते हैं। पारम्परिक रूप से उनकी जीवनचर्या भी प्राकृतिक नियमों द्वारा संचालित होती हैं। प्रकृति के करीब होने के कारण प्राकृतिक संसाधनों के विषय में मूलभूत जानकारी उसके दोहन उसके संरक्षण तथा उसके सतत् पोषणीय प्रबंधन का ज्ञान उन्हें अधिक रहता है यद्यपि उनका यह ज्ञान श्रृंखलाबद्ध न होकर बिखरा रहता है किन्तु उसके संरक्षण के प्रति वे सचेत भी रहते हैं। इसीलिए वे गाँवों को राष्ट्रीय पुरुषार्थ का प्रारम्भिक बिन्दु मानते थे। स्वावलम्बी गाँवों का चित्र उपस्थित करते हुए उन्होंने कहा कि “मेरे ग्राम स्वराज्य का आदर्श यह है कि प्रत्येक ग्राम एक पूर्ण गणराज्य हो। अपनी आवश्यक वस्तुओं के लिए यह अपने पड़ोसियों पर निर्भर न रहे। इस प्रकार के प्रत्येक ग्राम का पहला काम होगा खाने के लिए अन्न और कपड़ों के लिए रुई की फसल उत्पन्न करना”¹ गांधी जी कहते थे कि “देश में निर्मित वस्तुओं के उपभोग से देश के निवासियों में राष्ट्रभक्ति की भावना भी प्रबल होगी और आत्मनिर्भरता एवं सहभागिता भी बढ़ेगी।”

उन्होंने अपने आर्थिक विचारों में श्रम को उच्च स्थान दिया वे श्रम को एक प्राकृतिक नियम मानते थे। उनका मानना था कि श्रम न केवल शरीर को स्वस्थ रखता है बल्कि मस्तिष्क को भी प्रेरित करता है। धन के महत्व को स्वीकार करने के बावजूद भी वे उसे साधन ही मानते थे। उनका कहना था कि—“जीने के लिए खाओ, खाने के लिए मत जियो” यद्यपि आधुनिक समाज में उपभोग के स्तर में गुणात्मक वृद्धि को आर्थिक संवृद्धि का मापदण्ड माना जाता है परन्तु गांधी दर्शन में उपभोग, एक साधन मात्र ही है न कि पूँजीवादी व्यवस्था के समान साध्य।²

वे मशीनीकरण पर आधारित औद्योगीकरण के विरोधी थे। उनका कहना था—‘इसने मानव को गुलाम बना दिया है, जिससे एक तो मानव का शारीरिक एवं नैतिक पतन हुआ है और दूसरा मानवीय समाज में आर्थिक सहयोग

के स्थान पर आर्थिक प्रतियोगिता को बढ़ावा मिलने से पारिस्थितिकी असंतुलन की समस्या जन्मी है वे भारत जैसे श्रम प्रधान देश में श्रम प्रधान उद्योगों के बदले पूंजी प्रधान वृहद् उद्योगों के विकास का विरोध करते थे। उनका कहना था कि—“यंत्रीकरण उस देश-विदेश के लिए उपयुक्त हो सकता है, जिस देश में श्रम की कमी एवं पूंजी की प्रचुरता हो। भारत जैसे देश में जहां श्रम का आधिक्य एवं पूंजी की न्यूनता है, भारी मशीनों एवं यंत्रों का प्रयोग मानवीय अस्तित्व के लिए पूर्णतया अभिशाप है। इसीलिए उन्होंने आर्थिक विकेन्द्रीकरण में विश्वास रखते हुए लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना पर जोर दिया। इसी लक्ष्य से गांधी ने खादी का इतना अधिक प्रचार किया।”³ उनके विचारों में खादी एक महत्वपूर्ण स्थान रखती थी। उनका कहना था—एक तो यह हमारा देशी गृह उद्योग है। दूसरे किसान अपने फुर्सत के समय को यों ही ना गवां दें। इसी कारण गांधी ने खादी को अपने स्वदेशी सिद्धान्त का एक महत्वपूर्ण हिस्सा माना था।⁴ इस प्रकार मशीनीकरण का विरोध एवं श्रम की महत्ता को स्वीकार कर उन्होंने अंत तक पूंजी प्रधान तकनीक के बदले श्रम प्रधान तकनीक के विकास एवं प्रचार-प्रसार का प्रबल पक्ष लेकर शोषणविहीन, पर्यावरण प्रदूषण मुक्त आर्थिक विकास पर जोर दिया। उनका स्पष्ट मत था कि—“मिलों और शहरों के बढ़ने से हिन्दुस्तान के करोड़ों लोगों की समृद्धि नहीं बढ़ेगी।”⁵ चरखे को वे आत्मशक्ति आत्मनिर्भरता का प्रतीक मानते थे। उनका कहना था कि—“जीवनदायी चरखे के द्वारा करोड़ों लोगों के लिए निराशा का अंधकार आशा के प्रकाश में बदला जा सकता है।”⁶ गांधीजी का यह भी विश्वास था कि ग्रामोद्योगों का पुनरुद्धार करके हम विकास भी कर लेंगे और भौतिकवादी संस्कृति से दूरी भी बना लेंगे। इनको बढ़ावा देने से अन्य सार्वजनिक उद्योग अपने आप पुनर्जीवित हो जायेंगे।”⁷

निःसंदेह गांधी द्वारा प्रस्तुत आर्थिक चिन्तन में प्रगति की निरन्तरता बनाये रखने के लिए विकास एवं प्रकृति के बीच एक सकारात्मक समझौतावादी दर्शन दृष्टिगोचर होता है। यह सत्य है कि पर्यावरण और विकास का सम्बन्ध आदिकाल से चला आ रहा है। किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जब बड़े स्तर पर औद्योगीकरण बढ़ा और बड़े स्तर पर जीवाश्म ईंधन, रासायनिक पदार्थों, परमाणु रिएक्टर्स का बढ़ता उपयोग, जंगलों की अंधाधुन्ध कटाई, प्रकृति का अनुचित दोहन इतने तेजी से होने लगा कि जिससे मानव जीवन के अस्तित्व के लिए ही चुनौती बन गई। इससे न केवल मरुस्थलों में वृद्धि हुई बल्कि भूमि की उपजाऊ क्षमता भी कम हुई। संयुक्त राष्ट्र ग्रुप की रिपोर्ट में तो यह तक कह दिया गया कि—“इसमें कोई संदेह की गुंजाइश नहीं है कि प्राकृतिक संसाधनों की कमी और पारिस्थितिक दबाव भविष्य में मानव और देशों के कल्याण के लिए वास्तविक खतरे हैं।”⁸ औद्योगीकरण एवं उपभोक्तावादी, सुख, वैभव, आर्थिक विकास की इस मानवीय प्रवृत्ति ने प्राकृतिक संसाधनों का इतना विदोहन किया कि जो पर्यावरण⁹ पहले उसके लिए वरदान हुआ करता था। आज वही उसके लिए दण्डक एवं विनाशक सिद्ध हो रहा है। पहले पर्यावरण से जो कच्चे संसाधन हमें आसानी से प्राप्त हो जाते थे आज उनमें इतनी कमी होती जा रही है कि जिसके कारण विकास प्रभावित हो रहा है।”¹⁰

यथार्थता यह है कि औद्योगिक विकास ने जहां मानव जीवन को अधिकाधिक सुविधा सम्पन्न एवं आरामदायक बनाया है वहीं दुष्परिणाम पर्यावरण प्रदूषण के रूप में विश्व के समक्ष एक गम्भीर सोचनीय समस्या बनकर उभरा है। इसके दुष्प्रभावों से न केवल जलवायु में परिवर्तन हुआ है वरन् ऋतुओं में परिवर्तन, वर्षा की मात्रा में कमी, फल-फूल के पकने के समय परिवर्तन, पक्षियों के प्रवासन काल में परिवर्तन, मानवीय रोगों में वृद्धि, पशुओं के स्वास्थ्य पर प्रभाव, कृषि में बढ़ते रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों के प्रयोग ने सम्पूर्ण विश्व की मानवता को अपने अस्तित्व को बचाने के लिए सोचने के लिए विवश कर दिया। प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित दोहन से धीरे-धीरे संसाधनों पर दबाव पड़ने लगा। यह सत्य है कि वैदिककाल के बाद से ही भारत में संसाधनों पर दबाव पड़ने लगा था, किन्तु उस समय मात्र प्रत्यक्ष संसाधन विशेषकर खनिज संसाधनों का ही दोहन हुआ। लेकिन ईस्ट

इंडिया कम्पनी के बाद संसाधनों की लूट-खसोट का बीजारोपण शुरू हो गया। इसके बाद स्वतंत्र भारत तथा वर्तमान भारत में स्थिति और चिंतनीय होती गई। 1970 के दशक में प्रकाशित पुस्तक "द एन्वायरमेंटल हैडबुक" में कहा गया कि—"अनिवार्य कच्ची सामग्रियों (विविध खनिज, लकड़ी आदि) कृषिगत पदार्थ तथा ईंधन आपूर्ति (कोयला, पेट्रोल) के स्रोतों के क्षीण होने तथा वायु एवं जल के प्रदूषित होने के साथ बढ़ती जनसंख्या के भरण-पोषण का संकट मनुष्य जीवन की धरती पर से समाप्ति का घंटा बजा रहा है। 1972 में क्लब आफ रोम से सम्बद्ध विद्वानों ने "द लिमिट्स टू ग्रोथ" नामक पुस्तक प्रकाशित की तथा जनसंख्या एवं संसाधन के उत्पादन उनकी मांग तथा खपत पर चिंता व्यक्त की तथा रिपोर्ट में कहा कि 2100 ई. के पूर्व निरन्तर द्विगुणित होती जनसंख्या एवं औद्योगिक उत्पादन वृद्धि अकस्मात् रुक जायेगी एवं संसाधन प्रायः समाप्त से हो जायेंगे।

वास्तव में वर्तमान स्थिति को यदि देखा जाए तो जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव प्राकृतिक संसाधनों पर तो पड़ता देखा जा रहा है। इसके दुष्प्रभाव भूमि संसाधन, जल संसाधन, वन संसाधन, आवासीय मांग कृषि उत्पादन, स्वास्थ्य पेयजल भोजन, शिक्षा तथा अन्य बुनियादी आवश्यकताओं पर पड़ रहा है। इसका प्रभाव न केवल उपर्युक्त संसाधनों तक ही सीमित है। वरन् इसका प्रभाव पर्यावरण तथा पारिस्थितिकी तंत्र जैसे-ओजोन, ग्लोबल वार्मिंग तथा मानसून की अनिश्चितता, सूखा, बाढ़ तथा संक्रामक बीमारियों पर भी पड़ा है। बढ़ती आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयत्न से न केवल भू-तत्वों का अधिकाधिक बलपूर्वक तात्कालिक स्वार्थ साधन के लिए गलत एवं विनाशकारी शोषण हो रहा है, वरन् ऐसे खनिजों का भी शोषण हो रहा है जो शीघ्र ही समाप्त होने के संकेत दे रहे हैं। निश्चय ही हम दिनोंदिन फैलती हुई एक जटिल और उलझी हुई दुनिया की ओर अग्रसर हो रहे हैं, जहां उन्नति की बेसब्र दौड़ में प्रकृति के बहुमूल्य साधनों का निर्माता से अपव्यय एवं अधिकाधिक उत्पादन की होड़ से पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। आज पहले से कहीं अधिक बड़े पैमाने पर गरीबी, बेरोजगारी, आर्थिक विषमता, निरक्षरता, भुखमरी, अकाल, भ्रष्टाचार, कुपोषण, शहरीकरण, अनियंत्रितकरण, मंहगाई, आतंकवाद, सामाजिक सम्बन्धों में गिरावट, विदेशी ऋणों एवं ब्याज का बढ़ता भार राजकोषीय घाटे में निरन्तर वृद्धि, सीमा पर बढ़ता तनाव, आर्थिक मंदी, बढ़ती हिंसा एवं वैमनस्य आदि अनेक समस्याओं से देश ग्रसित है। गांधीजी का स्पष्ट रूप से कहना था कि—"मैं अपना यह विश्वास घोषित कहना चाहूंगा कि विशाल उत्पादन की धुन ही संसार के संकट के लिए उत्तरदायी है।"¹³ दुनिया को यदि विनाश से बचाना है और देश को यदि इन समस्याओं से मुक्ति पाना है तो गांधीजी द्वारा दिखाया गया मार्ग ही सर्वोत्तम उपाय है। क्योंकि उनके विचारों में वृक्षारोपण, पशुपालन, मधुमक्खी पालन, कुटीर उद्योगों एवं हस्तकला जैसे-कृषि पर आधारित औद्योगिक विकास में पर्यावरण संरक्षण के स्पष्ट दर्शन होते हैं। देश के चतुर्दिश विकास के लिए उनका कहना था कि प्रकृति के साथ संघर्ष की अपेक्षा सहयोग द्वारा जीवन और अधिक मूल्यवान बनाया जा सकता है। इसीलिए उनका मानना था कि आर्थिक विकास की सम्पूर्ण योजनाएं संरक्षण पर आधारित होकर ही दीर्घजीवी हो सकती हैं। और मानव जाति को अर्थपूर्ण लाभ तभी प्राप्त हो सकता है जब इन योजनाओं का पर्यावरण पर बुरा प्रभाव न पड़े उन्होंने विकास के लिए पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता पर अत्यधिक बल दिया।

वस्तुतः गांधीजी का पर्यावरण सम्बन्धी चिंतन पाश्चात्य देशों के समान भौतिक सुख की प्राप्ति के लिए प्रकृति के साथ शोषणकारी प्रवृत्ति पर आधारित न होकर प्रकृति द्वारा प्रदत्त निःशुल्क संसाधनों का समुचित उपयोग मानव कल्याणमयी जीवन के लिए एक नैतिक अनुकूलता दोहन पर आधारित था। उनके विचारों की प्रासंगिकता से यह सत्यापित हो चुका है कि "गांधीवाद केवल नैतिक आग्रह ही नहीं है बल्कि एक संरक्षित पर्यावरण शास्त्र, विकसित अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र भी है जिसमें एक ओर तो आज के प्रदूषित जीवन की अनगिनत समस्याओं तथा सामाजिक आर्थिक जीवन में व्याप्त अनेक जटिलताओं का सम्यक सन्निहित है तो दूसरी ओर स्वच्छ निर्मल प्रकृति

से सुखद मानवीय भविष्य के कल्याण के लिए सूक्ष्म दिशा दृष्टि जिसमें विकास एवं प्रकृति के बीच एक सकारात्मक समझौतावादी दर्शन दृष्टिगोचर होता है।

सन्दर्भ ग्रंथ :-

1. डॉ. बी.एल. फड़िया—“आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन”, पृ-203
2. कुरुक्षेत्र, अक्टूबर 2007, वर्ष-53, अंक-12, पृ-64
3. शर्मा, ब्रह्मदत्त—“गांधी चिन्तन में राष्ट्रवाद”, पृ-84
4. प्रताप सिंह—“गांधी दर्शन”, पृ-87
5. मूल प्रश्न, नवम्बर-जनवरी 2010—“गांधी : चिन्तन व व्यवहारिक प्रयोग”, पृ- 33
6. यंग इंडिया, 27.08.1925, पृ-299
7. यंग इंडिया, 30.09.1926, पृ-341
8. सिंहल, एस.सी.—“लोक प्रशासन के प्रमुख विचार एवं मुद्दे”, पृ-221
9. “ए जर्नल ऑफ एशिया डेमोक्रेसी एंड डेवलपमेन्ट” खण्ड-9, अप्रैल-जून 2009, पृ-09
10. जैन, संजय, राणा रवीन्द्र सिंह द्विवेदी हरिश्चन्द्र—“लोक प्रशासन के नवीन बिन्दू”, पृ-574
11. “साइंस इंडिया राष्ट्रीय विज्ञान पत्रिका” वर्ष-4, अंक-9, अगस्त 2011, पृ-04
12. कुरुक्षेत्र, जून 2007, वर्ष-53, अंक-8, पृ-29
13. रचना, सितम्बर-अक्टूबर 2004, अंक-50, पृ-3



सामाजिक तथ्य – एक समग्र विश्लेषण

डॉ. विजय कुमार गर्ग

प्रवक्ता – समाजशास्त्र विभाग

डॉ. श. मि. रा. पु. विश्वविद्यालय, लखनऊ

सामाजिक तथ्य : दुर्खीम ने अध्ययन पद्धति तथा विषय सामग्री दोनों ही रूपों से ही समाजशास्त्र को एक स्वतंत्र सामाजिक विज्ञान बनाने का प्रयास किया। समाजशास्त्र की विषय सामग्री के रूप में दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों को प्रस्तुत किया है। समूह की चेतना से सम्बन्धित वे तथ्य जो व्यक्तिगत चेतना से स्वतंत्र हो और जिनके दबाव के कारण समाज के व्यक्ति और समूह क्रियायें करते हैं। सामाजिक तथ्य कहलाते हैं। दुर्खीम (1895) के शब्दों में “एक सामाजिक तथ्य, किया करने का प्रत्येक स्थायी अथवा अस्थायी तरीका है जो व्यक्ति पर बाहरी दबाव डालने में समर्थ होता है, अथवा पुनः किया करने का प्रत्येक तरीका जो किसी समाज में सामान्य रूप से पाया जाता है किन्तु साथ ही साथ व्यक्तिगत अभिव्यक्तियों से स्वतंत्र पृथक अस्तित्व रखता है।”

सामाजिक तथ्य किसी भी समूह के सदस्यों की क्रियाओं, सोच और भावनाओं के निर्धारित स्वरूप हैं। जो किसी एक व्यक्ति से परे और उससे अधिक सशक्त है। कभी-कभी ऐसे तथ्य निश्चित स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं और यदा कदा सामाजिक लहर के रूप में विद्यमान रहते हैं। सामाजिक तथ्य मनुष्यों की क्रियाओं से सम्बन्धित घटनाएँ हैं। किया करने के तरीके सामाजिक तथ्य हैं। ऐसी सामाजिक घटनाएँ स्थायी भी होती हैं और अस्थायी भी। किसी समूह में इन घटनाओं में बहुत कम हेर फेर होता है। विभिन्न समाज में आत्महत्या, विवाह तथा मृत्यु की वार्षिक दर प्रायः स्थिर रहती है। अतः इन्हें भी सामाजिक तथ्य कहा जा सकता है। ईश्वर को सामाजिक तथ्य नहीं माना जा सकता है क्योंकि उसका वास्तविक निरीक्षण संभव नहीं है। इसी प्रकार मन में सोचा गया कोई विचार भी सामाजिक तथ्य नहीं है क्योंकि उसका वाह्य स्वरूप स्पष्ट नहीं है। परन्तु ईश्वर से सम्बन्धित पूजा या आराधना जैसे –टोटेमवाद को सामाजिक तथ्य माना जायेगा, क्योंकि उसका निरीक्षण संभव है।

दुर्खीम ने निवास करने अथवा रहने के तरीकों को किया करने के तरीकों में शामिल किया। नगरों में जनसंख्या का अधिक घनत्व, और अधिक जनसंख्या एक सामाजिक तथ्य है जो कि मनुष्यों के व्यवहार करने के तरीकों को प्रभावित करती है। भोजन, खान-पान के तरीके और आवास प्रतिमान भी सामाजिक तथ्य है और कम परिवर्तनशील है। सामाजिक तथ्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं :-

बाध्यता बाहरीपन – सामाजिक तथ्य की सबसे पहली और महत्वपूर्ण विशेषता उसकी बाध्यता है। सामाजिक तथ्य व्यक्ति के लिये सामाजिक वास्तविकता का एक बाहरी तत्व होता है अर्थात् किसी एक व्यक्ति के मस्तिष्क में सामाजिक तथ्य की उत्पत्ति नहीं होती। सामाजिक तथ्यों का निर्माण तो समाज के सदस्यों द्वारा ही होता है, परन्तु सामाजिक तथ्य एक बार विकसित हो जाने के बाद किसी एक व्यक्ति के नहीं रहते। दुर्खीम के विचार से किया करने, विचार करने और अनुभव करने के तरीके हमें पहले से ही तैयार मिलते हैं कोई व्यक्ति स्वयं इनका निर्माण नहीं करता। सामूहिक जीवन या सामूहिक चेतना जो सामाजिक तथ्यों की उत्पत्ति और विकास के लिये उत्तरदायी है, का मनुष्यों की व्यक्तिगत चेतनाओं से पृथक एक बाहरी अस्तित्व है एक उदाहरण के द्वारा इसे हम स्पष्ट कर सकते हैं – पानी का निर्माण ऑक्सीजन और हाइड्रोजन के परमाणुओं के संयोग से होता है परन्तु पानी की विशेषतायें हाइड्रोजन और ऑक्सीजन की विशेषताओं से अलग होती है। इसी प्रकार व्यक्तिगत

चेतनाओं के निर्माण से सामूहिक चेतना का निर्माण होता है जो व्यक्तिगत तथ्यों से पृथक् अस्तित्व रखती है।

बाध्यता: सामाजिक तथ्य व्यक्ति के लिये बाहरी वस्तु होने के कारण उस पर विशिष्ट प्रकार के व्यवहार के करने के लिये दबाव डालते हैं। बाध्यता या दबाव सामाजिक तथ्यों की प्रमुख विशेषता है। सामूहिक चेतना की शक्ति वैयक्तिक चेतना की शक्ति से अधिक होती है इस शक्ति की इच्छा और दबाव के द्वारा व्यक्ति का व्यवहार निर्देशित होता है। दुर्खीम का मानना है कि सामाजिक तथ्य केवल व्यक्ति के व्यवहार को ही नहीं बल्कि उसके सोचने, विचारने तथा अनुभव करने के तरीके को भी प्रभावित करते हैं। सामाजिक तथ्य व्यक्तिगत अभिरुचि के अनुरूप नहीं होते बल्कि व्यक्ति का व्यवहार सामाजिक तथ्यों के अनुरूप होता है। जिन सामाजिक तथ्यों में बाध्यता का लक्षण दुर्खीम ने बताया है उनमें परिवार, धर्म सेना तथा शिक्षा का प्रमुख स्थान है। आदिम समाज में धर्म जीवन के समस्त कार्यकलापों का नियामक बन जाता है। यहूदी, कैथोलिक तथा प्रोटेस्टेन्ट धर्म में यह दबाव क्रमशः कुछ कम होता जाता है आत्महत्या से सम्बन्धित दुर्खीम के सिद्धान्त का अध्ययन करते समय आप धर्म, परिवार तथा राष्ट्र का व्यक्ति के व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभाव का विस्तृत अध्ययन करेंगे। दुर्खीम जब बाध्यता का विश्लेषण करते हैं तो यह मानते हैं कि यह आवश्यक नहीं है कि दबाव प्रत्यक्ष ही हों, कई बार यह दबाव अप्रत्यक्ष भी होता है।

सामान्यता: सामाजिक तथ्यों का वितरण समाज में सामान्य रूप से होता है। सामाजिक तथ्य व्यवहार का वह तरीका है जो किसी विशिष्ट समाज में सामान्य रूप से पाया जाता है। किसी व्यवस्थित समाज में सामाजिक तथ्यों को इतने बड़े पैमाने पर या सामान्य रूप से स्वीकार कर लिया जाता है कि उसे समाज की ही विशेषता मान लिया जाता है। आधुनिक समाज में शिक्षा, मतदान तथा व्यवसाय सम्बन्धी नियम ऐसे ही सामाजिक तथ्य हैं। दुर्खीम का कहना है कि मनुष्य का शरीर कोष्ठों का योग है परन्तु कोष्ठों की विशेषताओं के आधार पर मनुष्य के शरीर की विशेषताओं को नहीं समझा जा सकता है। समाज भी केवल व्यक्ति के गुणों का योग नहीं है। सामाजिक तथ्य को एक प्रकार से सामाजिक आदर्श भी कह सकते हैं जो सामूहिक होने के कारण सामान्य बन जाता है। यह एक सामाजिक दशा है जिसकी पुनरावृत्ति प्रत्येक व्यक्ति में होती है। आशय यह है कि सामाजिक तथ्य की सामान्यता उसकी सामूहिकता का परिणाम है। सामाजिक तथ्य प्रत्येक व्यक्तिगत चेतना में सामान्य रूप से इस लिये पाया जाता है क्योंकि वह संपूर्ण समूह में व्याप्त है।

अधिवैयक्तिकता – दुर्खीम के अनुसार सामाजिक तथ्य व्यक्तिगत अभिव्यक्तियों से स्वतंत्र होता है। सामाजिक तथ्य वैयक्तिक क्रियाओं में विभिन्न स्वरूपों पर निर्भर नहीं करता है। व्यक्ति बनाम समाज उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोप की बहुत बड़ी समस्या थी। दुर्खीम उपयोगितावादी विचारकों से असहमति प्रकट करते हुये समाज को व्यक्ति से ऊपर मानते हैं। अपने श्रम विभाजन सम्बन्धी सिद्धान्त में भी दुर्खीम समाज अथवा समूह की महत्ता का प्रतिपादन करते हैं। सामाजिक पद्धति के नियम स्पष्ट करते समय दुर्खीम यह भी स्पष्ट करते हैं कि सामाजिक तथ्य अधिवैयक्तिक होते हैं, अर्थात् सामाजिक तथ्य सामूहिक वास्तविकता है जो वैयक्तिक वास्तविकताओं से श्रेष्ठ और स्वतन्त्र हैं।

सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियम :

सामाजिक तथ्य के विषय में जानने के पश्चात् आइये हम सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियमों के विषय में जानें। अपनी पद्धतिशास्त्र विषयक पुस्तक के द्वितीय अध्याय में दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों के अवलोकन के नियमों की चर्चा की है। समाजशास्त्र को व्यवस्थित और वास्तविक विज्ञान के रूप में स्थापित करने के लिए दुर्खीम ने प्राकृतिक विज्ञानों की अध्ययन पद्धति को अपना आवश्यक समझा। पूर्णरूप से तटस्थ व निष्पक्ष हुये बिना तथ्यों का वैज्ञानिक अध्ययन संभव नहीं है दुर्खीम ने सामाजिक तथ्यों के वैज्ञानिक अवलोकन के लिये निम्न विशिष्ट नियमों का प्रतिपादन किया।

सामाजिक तथ्यों को यथार्थ अथवा प्रत्यक्ष माना जाये – दुर्खीम का मानना है कि प्रत्येक सामाजिक तथ्य का सम्बन्ध प्रत्यक्ष तथ्य से है जबकि विचार का अमूर्त अथवा परोक्ष से। दुर्खीम तथ्य के प्रत्यक्ष स्वरूप पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। प्रत्यक्ष तथ्य में अध्ययनकर्ता अपनी इच्छा से परिवर्तन नहीं कर सकता है। दुर्खीम के अनुसार घटनाओं का सामान्य ज्ञान व दोनों भिन्न होते हैं। जब तक सामाजिक तथ्यों को एक बाहरी वस्तु समझकर उसका प्रत्यक्ष अवलोकन नहीं किया जायेगा, तब तक वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त होना संभव नहीं है। समाज के वैज्ञानिक जब सामाजिक तथ्यों की व्याख्या करते हैं तो पूर्व निर्णय तथा पूर्व धारणायें वैज्ञानिक अध्ययन में बाधक सिद्ध होती है अर्थात् अध्ययनकर्ता की समस्या के सम्बन्ध में निजी विचार वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति में बाधक होते हैं। इन बाधाओं को दूर करने के लिये भौतिक तथ्यों की भांति सामाजिक तथ्यों को भी एक बाहरी घटना के रूप में समझते हुये वस्तुओं के रूप में देखना चाहिए।

पूर्व मान्यताओं का निराकरण – तथ्यों के वस्तुओं के रूप में अध्ययन के लिये आवश्यक है कि अध्ययनकर्ता इनके सम्बन्ध में अपनी कल्पनाओं अथवा मान्यताओं को त्याग दें। सामाजिक तथ्यों के विषय में रागमूलक अथवा द्वेषमूलक भावनाओं से ऊपर हटकर वस्तुनिष्ठ रूप से अवलोकन करना चाहिए। धार्मिक, नैतिक तथा राजनैतिक विश्वासों से सम्बन्धित हमारी मान्यताएं तटस्थ अध्ययन में बाधाये उत्पन्न करती हैं या भावात्मक प्रवृत्ति तथ्यों को समझने तथा उनकी व्याख्या करने के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करती है। जितना अधिक हम सामाजिक तथ्यों के अवलोकन में पूर्व मान्यताओं और भावनात्मक अवधारणाओं से मुक्त होते जायेंगे, अध्ययन उतना ही वैज्ञानिक होता जायेगा।

3. विषयवस्तु की परिभाषा – दुर्खीम के अनुसार समाजशास्त्री का प्रथम कार्य उन वस्तुओं की परिभाषा करना होना चाहिए जिनका वह अध्ययन करता है जिससे कि उसकी विषय सामग्री के विषय में जाना जा सके। परिभाषा में घटना की वाह्य विशेषता का समावेश होना चाहिए। परिभाषा इतनी विस्तृत होनी चाहिए जिसमें विशेषताओं से सम्बन्धित प्रत्येक सामग्री को सम्मिलित किया जा सके। समाजशास्त्री को वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिये विषय सामग्री की स्पष्ट व्याख्या करा आवश्यक है। यह स्पष्टीकरण तभी संभव है जब विषय सामग्री के अन्तर्गत आने वाली सभी महत्वपूर्ण वस्तुओं को परिभाषित कर लिया जाये।

वैयक्तिक तथ्यों तथा सामाजिक तथ्यों की पृथक्ता – विज्ञान के लिये वैज्ञानिकता आवश्यक है। वैज्ञानिकता प्राप्त करने में सबसे बड़ी बाधा व्यक्तिगत भाव है। अतः समाजशास्त्री को यह प्रयास करना चाहिए, कि वह घटना पर ऐसे नजरिये से विचार करें जो उसकी व्यक्तिगत भावनाओं से स्वतंत्र हो। अतः सामाजिक तथ्यों के अनुभव में व्यक्तिगत पक्षपात, उचित अनुचित के मानदंड, राग और द्वेष जैसे वैयक्तिक तथ्यों से बचते हुये सामाजिक तथ्यों का वैज्ञानिक अध्ययन करना चाहिये।

सामान्य तथा व्याधिकीय तथ्य :

दुर्खीम के अनुसार अवलोकन की प्रक्रिया में हमारा परिचय दो प्रकार के सामाजिक तथ्यों से होता है। कुछ तथ्य सामान्य होते हैं जो कि समाज के प्रचलित मानदण्डों के अनुरूप होते हैं इन्हें दुर्खीम सामान्य सामाजिक तथ्य मानते हैं। इसके विपरीत दूसरे प्रकार के सामाजिक तथ्य सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध होते हैं इन्हें दुर्खीम असामान्य या व्याधिकीय तथ्य कहते हैं। सामान्य तथ्य सामाजिक जीवन के स्वास्थ्य में वृद्धि करते हैं, जबकि व्याधिकीय तथ्य समाज के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं उसी प्रकार समाज के लिये व्याधिकीय तथ्य हानिकारक व सामान्य तथ्य लाभदायक हैं।

आशा है कि सामान्य व्याधिकीय तथ्य क्या है, यह तो आप समझ गये होंगे परन्तु एक प्रश्न आपके मन में होगा कि सामान्य व व्याधिकीय तथ्यों में विभेद कैसे किया जाये। इस प्रश्न का उत्तर देने का दुर्खीम ने प्रयास किया है, दुर्खीम के अनुसार हमें कुछ बाहरी और प्रत्यक्ष विशेषताओं की खोज करनी चाहिये जिनके आधार पर

हम सामान्य व व्याधिकीय तथ्यों में भेद कर सकें। ये आधार निम्नांकित हैं –

व्यापकता : दुर्खीम का मानना है कि सामान्य तथ्यों की प्रमुख पहचान यह है कि ये तथ्य व्यापक होते हैं जैसे –विवाह, व्यवसाय, राजनीति, वर्ग, शिक्षा, आदि ऐसे तथ्य हैं जो पूरे समाज में पाये जाते हैं। समाज में प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी व्यवसाय, स्थान अथवा समूह से जुड़ा होता है। समस्त सामाजिक घटनाएं भिन्न-भिन्न सामाजिक स्वरूपों में प्रकट होती हैं। घटनाओं के कुछ स्वरूप समाज में अधिक पाये जाते हैं, व उनमें परिवर्तन भी कुछ कम होता है। हालांकि स्थान व काल के सापेक्ष उनमें परिवर्तन हो सकता है उदाहरण के लिये भारत में अन्तर्जातीय विवाह करने वाले को सामाजिक प्रताड़ना झेलनी पड़ती है। अतः अन्तर्जातीय विवाह एक सामान्य सामाजिक तथ्य है जबकि जाति से बाहर विवाह एक व्याधिकीय तथ्य है स्थान व काल के सापेक्ष यदि हम व्याख्या करें तो भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में अन्तर्जातीय विवाह की व्यापकता नहीं है या विवाह के सम्बन्ध में जातिगत निषेध नहीं पाये जाते हैं। हो सकता है कि आने वाले सौ दो सौ वर्षों में अन्तर्जातीय विवाह की व्यापकता कम हो जाये। इस प्रकार सामान्य व व्याधिकीय तथ्यों को विशिष्ट समाज अथवा विशेष समय के सापेक्ष ही समझा जा सकता है। सामान्य तथ्यों के विपरीत असामान्य या व्याधिकीय तथ्यों की व्यापकता कम होती है।

उपयोगिता : सामान्य तथा व्याधिकीय तथ्यों में दूसरा अंतर उपयोगिता को लेकर है। व्यापकता का गुण सामान्य सामाजिक तथ्य को उपयोगी या लाभदायक बना देता है। ऐसे व्यापक तथ्यों की आवृत्ति अधिक होती है जो समाज के लिये उपयोगी होते हैं। इसके विपरीत समाज के अस्तित्व की सुरक्षा में बाधक तथ्य उपयोगी नहीं होते व इनकी आवृत्ति भी कम होती है अर्थात् ये समाज में प्रचलित कम होते हैं दुर्खीम यह भी मानते हैं कि यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक सामान्य तथ्य उपयोगी ही हों अथवा प्रत्येक तथ्य जो उपयोगी हो, सामान्य तथ्य ही हों।

आत्महत्या का सिद्धांत :- इस इकाई में दुर्खीम द्वारा किए गए आत्महत्या के सामाजिक अध्ययन का ज्ञान प्राप्त करेंगे। दुर्खीम की रचना 'आत्महत्या' 1897 में प्रकाशित हुई थी। आत्महत्या का मुद्दा अत्यधिक रूप से विकसित श्रम से जुड़ा है। आत्महत्या समाज और व्यक्ति सम्बन्धों में असन्तुलन का द्योतक है। इस इकाई में आत्महत्या के सन्दर्भ में दुर्खीम के विचारों को जानेंगे। हम यह भी देखेंगे कि दुर्खीम किस प्रकार आत्महत्या को सामाजिक कारकों की परिधि में लाते हैं। इसी इकाई में हम दुर्खीम द्वारा बताए गये आत्महत्या के तीन प्रकारों – अहंवादी, परार्थवादी आत्महत्या तथा प्रतिमानविहीन आत्महत्या का सोदाहरण ज्ञान प्राप्त करेंगे।

दुर्खीम ने अपनी रचना के प्रारंभ में ही आत्महत्या को परिभाषित किया। दुर्खीम के अनुसार "आत्महत्या" शब्द मृत्यु की उन समस्त घटनाओं के लिए प्रयोग किया जाता है, जो स्वयं मरने वाले की सकारात्मक या नकारात्मक क्रिया का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम होता है। जिसके भावी परिणाम को वह जानता है"। दुर्खीम ने यह स्पष्ट किया है कि आत्महत्या की यह अवधारणा केवल मानव जगत से सम्बन्धित है। दुर्खीम की परिभाषा से स्पष्ट है कि आत्महत्या का आशय ऐसी मृत्यु से है, जो मरने वाले की क्रिया का परिणाम है। यह सकारात्मक व नकारात्मक दोनों हो सकती है। उदाहरणार्थ – यदि कोई व्यक्ति स्वयं जहर खा ले और उसकी मृत्यु हो जाये तो यह आत्महत्या का प्रत्यक्ष व सकारात्मक विकल्प है। जबकि यदि कोई व्यक्ति जानबूझकर किसी कार्य को न करे और वह जानता हो, कि इससे उसकी मृत्यु निश्चित है तो वह नकारात्मक या अप्रत्यक्ष विकल्प है। उदाहरण के लिए –कोई व्यक्ति अन्न, जल त्याग दे तो वह नकारात्मक या अप्रत्यक्ष विधि से अपनी जीवन लीला को समाप्त कर लेता है। आत्महत्या की प्रमुख विशेषता है कि व्यक्ति सोच विचार कर, चेतन रूप से, स्वयं के जीवन का अन्त करता है। आत्महत्या का गुण यह है कि वह भलीभांति यह जानता है कि उसकी क्रिया का परिणाम मृत्यु है।

दुर्खीम के लिये आत्महत्या व्यक्तिगत अथवा मनोवैज्ञानिक तथ्य नहीं है, जिसका विश्लेषण वैयक्तिक चेतना के आधार पर किया जा सके। आप यह सोच रहे होंगे कि सामान्य रूप से आत्महत्या एक व्यक्तिगत कार्य का

संकेत है। जिसमें व्यक्ति अपने जीवन का अन्त कर लेता है। आप सोचेंगे कि इसमें सामाजिक क्या है? इसीलिये दुर्खीम ने आत्महत्या की घटनाओं का अलग-अलग अध्ययन करने की अपेक्षा किसी विशिष्ट समाज में निश्चित समय के अन्दर होने वाली आत्महत्याओं की घटनाओं का समग्रता के साथ अध्ययन पर बल दिया। अर्थात् यह कार्य भिन्न समयों पर हो रहा है। यह कार्य किसी एक व्यक्ति से सीमित नहीं है। एक से अधिक व्यक्ति और एक से अधिक समय पर होने वाला व्यवहार व्यक्तिगत हो जाता है उसमें सामूहिक लक्षण आ जाते हैं। इसीलिए दुर्खीम आत्महत्या को एक सामाजिक तथ्य मानते हैं। यदि हम विभिन्न समाजों अथवा विभिन्न समूहों में आत्महत्या की व्यापकता को नापना चाहें, तो इसका अनुपात निकाल लेंगे। इस अनुपात के द्वारा विभिन्न समूहों अथवा देशों में तुलना आत्महत्या की दर के रूप में की जा सकती है। दुर्खीम ने आत्महत्या की दर को ही सामाजिक तथ्य माना है, और उसे आत्महत्या की सामाजिक दर या सामाजिक आत्महत्या की दर कहा है।

दुर्खीम ने अपने मत की पुष्टि फ्रांस, इंग्लैण्ड, एशिया, बवेरिया, डेनमार्क तथा सैक्सोनी, इन 6 देशों के आंकड़ों के आधार पर की है।

दुर्खीम अपनी पुस्तक के पहले भाग में आत्महत्या के अतिरिक्त सामाजिक कारकों के रूप में मनोवैज्ञानिक, आनुवांशिक एवं भौगोलिक कारकों का उल्लेख करते हैं व इन्हें अस्वीकार करते हैं।

पुस्तक के दूसरे भाग में दुर्खीम आत्महत्या के सामाजिक कारकों का उल्लेख करते हैं। दुर्खीम के अनुसार आत्महत्या की व्याख्या, सामाजिक कारकों जैसे – सामाजिक सुदृढ़ता, सामूहिक चेतना, सामूहिक प्रतिनिधान, तथा प्रतिमानविहीनता के सम्बन्ध में की जानी चाहिये। दुर्खीम आत्महत्या की दर से विभिन्न देशों के सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर यह मानते हैं कि धार्मिक एकीकरण अथवा पारिवारिक एकीकरण अथवा राजनैतिक एकीकरण, आत्महत्या की दर से विलोमानुपात अथवा प्रतिलोमानुपाती सम्बन्ध रखते हैं। अर्थात् समाज में जितना अधिक धार्मिक अथवा पारिवारिक अथवा राजनैतिक एकीकरण होगा, आत्महत्या की दर उतनी ही कम होगी। सामाजिक सुदृढ़ता से भी आत्महत्या की दर का प्रतिलोमानुपाती सम्बन्ध होता है।

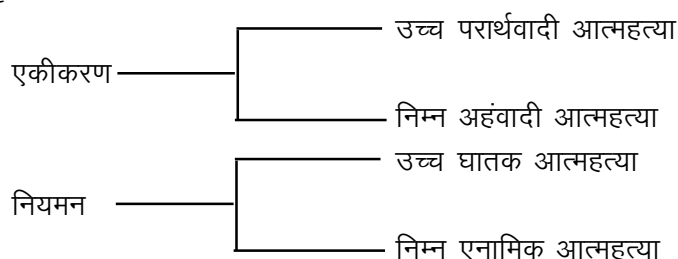
दुर्खीम आत्महत्या के आंकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण कर इन्हें 3 कोटियों में विभक्त करते हैं पारसंस का मानना है कि आत्महत्या के ये प्रकार आत्महत्या के आदर्श प्रारूप हैं। दुर्खीम का मानना है कि आत्महत्या के तथ्य का प्रत्यक्ष अवलोकन कठिन है, इसीलिये आत्महत्या के प्रकारों का वर्गीकरण उन सामाजिक कारकों के आधारों पर कर सकते हैं जो उन्हें उत्पन्न करते हैं।

दुर्खीम ने मुख्य रूप से 3 प्रकार की आत्महत्याओं का उल्लेख किया है, जो निम्नलिखित हैं –

1. अहमवादी आत्महत्या
2. परार्थवादी आत्महत्या
3. प्रतिमानविहीन आत्महत्या

इसके अतिरिक्त दुर्खीम ने 'घातक आत्महत्या' की चर्चा की है परन्तु इस पर विस्तृत विचार नहीं किया है।

दुर्खीम ने आत्महत्या के विश्लेषण को निम्न चित्र के आधार पर संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इसकी विस्तृत विवेचना आगे के पृष्ठों में की गई है।



अहंवादी आत्महत्या :- दुर्खीम ने विशिष्ट सामाजिक कारकों के संदर्भ में आत्महत्याओं का वर्गीकरण किया है। दुर्खीम ने आत्महत्या का पहला प्रकार अहंवादी आत्महत्या को बताया है यह अतिशय वैयक्तिकता की सामाजिक परिस्थिति है। इसमें व्यक्ति स्वयं को समाज से अधिक महत्व प्रदान करता है। अहंवादी आत्महत्या का मूल कारण सामाजिक समूहों के संगठित होने से है। यदि सदस्य समूह के साथ एकात्मकता का अनुभव करते हैं और सामूहिक जीवन के आदर्शों का पालन करते हैं तो आत्महत्या की प्रवृत्ति कम पायी जाती है। यदि सदस्य सामूहिक गतिविधियों में रुचि नहीं लेते हैं और एकात्मकता की मात्रा कम हो जाती है तो आत्महत्या की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। दुर्खीम का मानना है कि आत्महत्या की दर और सामाजिक एकीकरण में विलोमानुपाती सम्बन्ध होता है। अर्थात् सामाजिक एकीकरण अधिक होने पर आत्महत्या की दर कम हो जाती है और सामाजिक एकीकरण कम होने पर आत्महत्या की दर बढ़ जाती है। दुर्खीम (1897) के अनुसार अहंवादी आत्महत्या की दशा, वह दशा है जिसमें व्यक्तिगत अहं की शक्ति, सामाजिक अहं की तुलना में बढ़ जाती है। अतिशय व्यक्तिवाद से उत्पन्न होने वाली आत्महत्या के इस प्रकार को हम अहंवादी आत्महत्या कर सकते हैं।

दुर्खीम का मानना है कि धार्मिक समूह, परिवार और राजनैतिक व्यवस्था की संगठनात्मक अवस्था के आधार पर अहंवादी आत्महत्या के कारणों की व्याख्या की जा सकती है उनका मानना है कि –

1. आत्महत्या की दर तथा धर्म द्वारा होने वाले एकीकरण में विलोमानुपाती सम्बन्ध होता है।
2. आत्महत्या की दर तथा पारिवारिक सम्बन्ध में विलोमानुपाती सम्बन्ध होता है।
3. राजनैतिक संगठनात्मकता तथा आत्महत्या की दर में विलोमानुपाती सम्बन्ध होता है।

धार्मिक प्रणाली तथा अहंवादी आत्महत्या :- दुर्खीम ने यूरोप के विविध धर्मों के अनुयायियों जो यूरोप के विविध भागों में रहते थे, में आत्महत्या की दर का अध्ययन किया। दुर्खीम का मानना है कि जो धर्म व्यक्तियों की स्वतन्त्रता को सीमित करते हैं धार्मिक समूह अधिक दृढ़ता से एकीकृत होता है, वहां आत्महत्या की दर कम होती है। इसके विपरीत जो धर्म व्यक्तियों को अधिक स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं, धार्मिक समूह कम दृढ़ होते हैं वहां आत्महत्या की दर अधिक होती है। दुर्खीम का मानना है कि यूरोप में प्रोटेस्टैण्ट धर्म कैथोलिक धर्म की तुलना में अधिक उदार है और व्यक्तियों को अधिक स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं। दुर्खीम ने अपने विश्लेषण में पाया कि प्रोटेस्टैण्ट मतावलम्बियों में आत्महत्या की दर, कैथोलिक मतावलम्बियों से ज्यादा होती है। दुर्खीम के अनुसार इटली, पुर्तगाल और स्पेन, जैसे कैथोलिक देशों में आत्महत्या की दर डेनमार्क, प्रशिया, जैसे प्रोटेस्टैण्ट देशों में बहुत कम है। आपके मन में यह प्रश्न उठता है कि यह अंतर कहीं राष्ट्रीयता में अंतर अथवा विभिन्न क्षेत्रों में रहने के कारण तो नहीं है। दुर्खीम वैज्ञानिक विधि से इस शंका का समाधान करते हैं। उन्होंने एक ही समाज में प्रोटेस्टैण्ट व कैथोलिक समुदायों में आत्महत्या की दर का अध्ययन किया, और पाया कि एक ही समाज में प्रोटेस्टैण्ट व कैथोलिक समुदायों में आत्महत्या की दर भिन्न-भिन्न है और प्रोटेस्टैण्ट समुदाय में आत्महत्या की दर कैथोलिक समुदाय से ज्यादा है। दुर्खीम कहते हैं कि यहूदियों में आत्महत्या की दर प्रोटेस्टैण्ट व कैथोलिक दोनों में कम पायी जाती है। उनका मानना है कि यहूदी समुदाय में पृथक जीवन अपनाने के कारण प्रोटेस्टैण्ट तथा कैथोलिक की अपेक्षा एकता अधिक पायी जाती है, व्यक्तिगत निर्णयों का स्थान नहीं है, जो कि आत्महत्या की दर को कम करता है।

हमें आशा है कि दुर्खीम द्वारा धार्मिक समूहों द्वारा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को नियंत्रित करने तथा अहंवादी आत्महत्या की दर से सहसम्बन्ध को आप समझ सकते हैं।

परिवार तथा अहंवादी आत्महत्या :-

दुर्खीम का मानना है कि परिवार आत्महत्या के विरुद्ध एक शक्तिशाली सुरक्षा है। वह जितना अधिक दृढ़ता से संगठित होता है उतना ही अधिक वह आत्महत्या से रक्षा करने में समर्थ होता है। विघटित परिवार में व्यक्ति निजी अहं पर निर्भर रहता है व आत्महत्या की ओर प्रेरित होता है। दुर्खीम ने विभिन्न देशों में वैवाहिक स्थिति,

आयु, लिंग के साथ आत्महत्या के सम्बन्ध का निरूपण करने वाले आंकड़ों का संग्रह किया और निम्न निष्कर्ष प्रदान किये। दुर्खीम का मानना है कि विवाहित व्यक्तियों की अपेक्षा अविवाहित व्यक्तियों में आत्महत्या की दर कम होती है। विवाहितों में पति-पत्नी में सामंजस्य नहीं बैठने के कारण होने वाले तनावों से अहंवादी आत्महत्या की दर बढ़ जाती है। दुर्खीम बताते हैं कि विवाहित व्यक्तियों की तुलना में विदुर आत्महत्या अधिक करते हैं क्योंकि उनका जीवन अधिक एकांकी हो जाता है।

राजनैतिक व्यवस्था तथा अहंवादी आत्महत्या :— दुर्खीम ने राजनैतिक संगठन की दृढ़ता तथा आत्महत्या की दर के मध्य सम्बन्ध को दर्शाया है। दुर्खीम का मानना है कि सरल समाजों में आत्महत्या की दर कम होती है, परन्तु उत्तरोत्तर विकास के साथ आत्महत्या की दर बढ़ती जाती है। दुर्खीम मानते हैं कि जब किसी देश के राजनैतिक सुदृढ़ता में कमी होती है तो आत्महत्या की दर बढ़ जाती है। जैसे ही कोई राष्ट्र विघटित होता है, लोगों में अहंवादी आत्महत्या का चलन बढ़ जाता है। रोम व ग्रीस में परम्परागत राजनैतिक व्यवस्था के अवसान के समय आत्महत्या की दर बढ़ गयी थी। दुर्खीम यह मानते हैं कि जब कोई राष्ट्र संक्रमण काल से गुजरता है तो आत्महत्या की दर घटने लगती है। उदाहरण के लिये फ्रांस में क्रांति के समय आत्महत्या की दर घट गयी है। जर्मनी तथा फ्रांस के बीच 1870-71 में हुये युद्ध में फ्रांस तथा जर्मनी दोनों में आत्महत्या की दर में कमी आयी थी। इसका कारण यह है कि इस अवस्था में व्यक्तिगत अहं में कमी आती है, व सामूहिकता की भावना प्रधान हो जाती है। बी.आर. चौहान (1994) का मानना है कि जो युद्ध कुछ वंशों के हित में होते हैं और जन भावना को उजागर नहीं कर पाते हैं, वह आत्महत्या की दर को नहीं घटा पाते हैं।

1. परार्थवादी आत्महत्या :— परार्थवादी आत्महत्या से आशय आत्महत्या के उस प्रकार से है जिसमें व्यक्ति समाज के हित के लिए स्वयं को न्यौछावर कर देता है अर्थात् यह आत्महत्या व्यक्ति और समाज के सबल सम्बंध का द्योतक है। दुर्खीम परार्थवादी आत्महत्या का मुख्य उदाहरण भारत में प्रचलित जौहर प्रथा अथवा सती प्रथा को मानते हैं।

दुर्खीम का दूसरा उदाहरण जहाज के एक कैप्टन का है जो क्षति को सहन न कर सकने के कारण अपने जीवन को समाप्त कर लेता है। इसके अतिरिक्त दुर्खीम डेनमार्क के फौजियों का उदाहरण देते हैं जो वृद्धावस्था व बीमारी की अपेक्षा आत्महत्या को श्रेयस्कर मानते हैं। अहंवादी आत्महत्या में व्यक्ति उद्देश्यहीन होता है जबकि परार्थवादी आत्महत्या में व्यक्ति के सामने उद्देश्य होता है जिसकी पूर्ति के लिए व्यक्ति अपने प्राण त्याग देता है। यह आत्महत्या त्याग व विरक्ति की भावना से की जाती है। अतः इसे परार्थवादी आत्महत्या कहना उचित है। इन आत्महत्याओं जिनका उद्देश्य चाहे देश प्रेम हो, अथवा सामाजिक सम्मान अथवा ईश्वरानुराग। इनमें परार्थवादी मनोवृत्ति की प्रधानता रहती है। इस प्रकार की आत्महत्या करने वालों के प्रति सामाजिक सहानुभूति का प्रदर्शन किया जाता है।

प्रतिमानविहीन आत्महत्या :— आत्महत्या का तीसरा प्रकार प्रतिमानविहीन आत्महत्या है। प्रतिमानविहीनता का आशय उस स्थिति से है जब समाज में मर्यादायें शिथिल हो जाती हैं। व्यक्तियों का आचरण समाज द्वारा अपेक्षित प्रतिमानों के अनुरूप नहीं होता है, मर्यादाओं का लोप परिवार, और आर्थिक जगत पर भी पड़ता है। जो इस प्रकारान्तर से आत्महत्याओं की प्रकृति की दर को प्रभावित करता है।

दुर्खीम ने संग्रहित तथ्यों के द्वारा आत्महत्या की दर व आर्थिक संकट में सह सम्बन्ध स्थापित किया है। दुर्खीम ने वियना, एशिया बवेरिया आदि के आंकड़ों के माध्यम से स्पष्ट किया है कि आर्थिक संकट के समय आत्महत्या की दर बढ़ जाती है। इसके साथ-साथ दुर्खीम यह भी बताते हैं कि आर्थिक समृद्धि के आने से भी आत्म हत्यायें बढ़ती हैं। दुर्खीम ने 1870 से 1889 तक की अवधि में रोम में आत्महत्याओं का खाका प्रस्तुत किया है जिसमें आत्महत्या की दर में वृद्धि हुयी थी, यह काल रोम की आर्थिक प्रगति का काल था। आर्थिक संपन्नता व आर्थिक विपन्नता दोनों ही असामान्य स्थितियां हैं, इस असमान स्थिति में सामूहिक व्यवस्था में अस्थिरता उत्पन्न

हो जाती है और प्रतिमान विहीनता की स्थिति दिखायी देने लगती है। प्रतिमानविहीनता में के संबोध का प्रयोग दुर्खीम ने क्रम विभाजन में सर्वप्रथम किया। प्रतिमान विहीनता दुर्खीम के चिन्तन की एक केन्द्रीय अवधारणा है। औद्योगिक समाज जिनका दुर्खीम ने अध्ययन किया, उनका श्रम विभाजन से गहरा सरोकार है, अतः प्रतिमानविहीनता की स्थिति से भी औद्योगिक समाजों को रूबरू होना पड़ता है। अधिक संपन्नता और अधिक विपन्नता दोनों ही प्रतिमान विहीनता को जन्म देती हैं। जिसका प्रभाव आत्महत्या की दर पर पड़ता है। आवश्यकताओं व साधनों के अनुकूल रहने पर व्यक्ति सुखी रहता है, परन्तु आवश्यकतायें बढ़ने एवं साधन न बढ़ने पर व्यक्ति में कुंठा का जन्म होता है। जो उसे प्रतिमानविहीनता की ओर ले जाती है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि दरिद्रता और आत्महत्या की दर में कोई सहसम्बन्ध नहीं है। दुर्खीम ने आयरलैण्ड का उदाहरण दिया है जहां आत्महत्या बहुत कम होती है और गरीबी भी ज्यादा है। वास्तव में प्रतिमानविहीन आत्महत्या की दर का अचानक आर्थिक जगत में लाये उतार-चढ़ावों में सकारात्मक सह-सम्बन्ध होता है।

दुर्खीम ने आर्थिक परिस्थितियों के साथ वैवाहिक जीवन में भी प्रतिमानविहीनता का अनुभव किया। दुर्खीम के अनुसार जो आत्महत्यायें वैवाहिक विसंगतियों के कारण होती हैं, वे प्रतिमानविहीन आत्महत्याओं की श्रेणी में होती हैं। दुर्खीम ने स्पष्ट किया कि विवाहित व्यक्तियों की तुलना में परित्यक्त व्यक्ति चार गुना अधिक आत्महत्याये करते हैं। परित्यक्त व्यक्ति विधुर तथा विधवाओं से भी अधिक आत्महत्यायें करते हैं। वास्तव में वैवाहिक जीवन में उत्पन्न प्रतिमानविहीनता, इन्हें तलाक की ओर ले जाकर आत्महत्या की पृष्ठभूमि तैयार करता है। तात्कालिक यूरोप के अनुभव से मिले निष्कर्षों के आधार पर भी यह मानते हैं कि तलाक की दशा में पुरुष अधिक आत्महत्या करते हैं और जहाँ तलाक कम होते हैं, वहाँ स्त्रियाँ आत्महत्या की ओर अधिक प्रेरित होती हैं। इसका कारण यह है कि विवाह जैसी कठोर संस्थायें नियंत्रण की दृष्टि से जितनी शिथिल होती हैं, स्त्रियों की उतनी स्वतन्त्रता होती है।

आत्महत्या के इन तीन प्रारूपों की सीमा रेखा से परे भी आत्महत्यायें होती हैं, जिन्हें घातक आत्महत्या के नाम से सम्बोधित किया जा सकता है। ये आत्महत्यायें अत्यधिक नियंत्रण के कारण उन लोगों के द्वारा की जाती हैं, जिनका भविष्य अति अनुशासन के कारण नष्ट होता दिखता है। अत्यधिक नियंत्रण इन व्यक्तियों को असहाय बनाता है व उनकी कामनाओं की पूर्ति में बाधा उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए – कोई संततिविहीन नारी यदि मां न बन सके, भले ही इसमें उसके पति का दोष हों, ऐसी दशा में उसके द्वारा की जाने वाली आत्महत्या, प्रतिमानविहीन आत्महत्या की श्रेणी में आती है। दुर्खीम ने प्राचीन रोमन साम्राज्य की दास व्यवस्था का उल्लेख करते हुए कहा कि दास सामाजिक नियमों के कठोर नियंत्रण के कारण अपनी प्रस्थिति से मुक्त नहीं हो सकते थे। फलतः वो आत्महत्या कर लेते थे। दुर्खीम इसे घातक आत्महत्या मानते हैं।



भारतीय आर्थिक संरचना और दलित विमर्श

नन्दिता मिश्रा

प्रशासनिक प्रवक्ता – अर्थशास्त्र

स्व. यशोदा कन्या महाविद्यालय, मिश्रिख, सीतापुर।

भारत की एक छवि नहीं बल्कि अनेक छवियाँ हैं। हमारी आत्मछवि में कालान्तर में अनेक परिवर्तन हुए हैं और बाहरी दुनिया का हमारे बारे में नजरिया भी समय-समय पर बदलता रहा है। आज भी जब हम भारतीयता की तलाश का गम्भीर प्रयत्न कर रहे हैं हम उसकी आधार भूमि के सम्बन्ध में ही सहमति विकसित नहीं कर पा रहे हैं। संघर्ष की स्थिति में आत्मछवियाँ अति रंजित रूप में उभरती हैं। जय और पराजय के सन्दर्भ उन्हें नए अर्थ देते हैं और साथ ही प्रतिक्रियाओं की एक श्रृंखला को जन्म देती हैं।

भारतीय समाज में अनेक सामाजिक समूह एवं श्रेणियाँ पायी जाती हैं जिनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति भिन्न-भिन्न है। कुछ समूह सामाजिक दृष्टि से श्रेष्ठ हैं तथा वे समाज में पर्याप्त प्रतिष्ठा सम्पन्न हैं। इसी प्रकार कुछ आर्थिक दृष्टि से उच्च हैं तथा अधिक साधन सम्पन्न एवं समृद्ध हैं। इनसे भिन्न भारतीय समाज में कुछ ऐसे समूह भी हैं जो न केवल सामाजिक दृष्टि से भिन्न हैं बल्कि आर्थिक दृष्टि से भी पिछड़े हुए हैं। ऐसे समूह निर्धनता रेखा से नीचे जीवनयापन कर रहे हैं। ऐसे दुर्बल वर्गों को समाज में हीन दृष्टि से देखा जाता है। कभी-कभी दुर्भाग्यवश उन्हें सामाजिक तिरस्कार का सामना भी करना पड़ता है।

भारत में दलितों की समस्या का सम्बन्ध आज उन 16 करोड़ से भी अधिक व्यक्तियों से है जो हिन्दू समाज का अंग होने के बाद भी हिन्दुओं के कुछ आर्थिक ग्रन्थों में दिए गए निर्देशों के अनुसार समाज में एक अपमानित और पारित्यक्त जीवन व्यतीत कर रहे थे। आज हमारे देश में बहु जातीयता, जातिवाद, ऊँच नीच तथा छूआ-छूत की विकट समस्या घोर संकट के रूप में उपस्थित रही है जिससे हमारे देश का विकास नहीं हो सका है। भारतीय समाज में दलित सामाजिक दृष्टि से अत्यन्त निम्न पाए जाते हैं तथा आर्थिक दृष्टि से वे अभावग्रस्त भी हैं। इस स्थिति में इनमें शिक्षा का प्रसार भी बहुत कम था। शिक्षा के इस न्यून प्रसार के कारण दलितों में अज्ञानता अन्धविश्वास तथा अन्य समस्याएँ भी विकसित हो गयी थी। अस्पृश्यता दलितों की प्रमुख समस्या थी। गाँधी जी ने कहा था कि, “अस्पृश्यता जिस रूप में आज हिन्दू धर्म में प्रचलित है यह भगवान तथा मनुष्य दोनों के ही विरुद्ध है। अतः अस्पृश्यता एक विष की भाँति है जो हिन्दू धर्म को खाए जा रही है। मेरे विचार से हिन्दू शास्त्रों में सामूहिक दृष्टि से इसकी कहीं भी स्वीकृति नहीं है।”

हमें ऐसे उपाय ढूँढने हैं जिससे उपरोक्त सभी बुराइयों जैसे जातियों की प्रचुरता जातीयता, ऊँचनीच और छूआछूत का भेदभाव मिट सके। वास्तव में जाति व्यवस्था का निर्वाह आज के युग में न तो हो रहा है और न आगे हो सकेगा। जो कि कार्य शूद्रों को करना चाहिए उसे नीची जातियाँ करतीं नजर आ रही हैं और जो कार्य ऊँची जातियों को करना था उसे नीच जातियाँ करती देखी जा रही हैं। उसकी सबसे बड़ी वजह परिस्थितियाँ वैसा करा रही हैं कुछ युग प्रवाह कर रहा है। भारत का संविधान देश के सभी नागरिकों को समान अधिकार देता है उसकी दृष्टि से कोई ऊँच-नीच छूत-अछूत नहीं है। स्वतंत्रता के बाद भारत के संविधान में यह व्यवस्था की गयी कि शूद्र वर्ण में भी जिन जातियों को अछूत माना जा रहा है उन्हें कानूनी संरक्षण और सरकारी नौकरियों में आरक्षण देकर ही उनकी दशा में सुधार किया जा सकता है। दलित जातियों के सामाजिक आर्थिक विकास के लिए अनेक सुविधाओं का प्रावधान किया गया है। इस क्षेत्र में हरिजन सेवक संघ भारतीय समाज उन्नति मण्डल, ठक्कर बाया आश्रम से दलित जातियों के जीवन में अनेक परिवर्तन हुए हैं।

विकास के आंकड़ों से यह पता चलता है कि दलितों का विकास तथा आर्थिक विषमता भारतीय अर्थव्यवस्था

के विकास के लिए एक बड़ी चुनौती रही है। समानता के साथ विकास हमारी पंचवर्षीय योजनाओं एवं भारतीय अर्थव्यवस्था के नीति निर्धारकों का मुख्य लक्ष्य रहा है लेकिन योजनाओं के उत्तरोत्तर प्रगति के साथ ऐसा प्रतीत होने लगा है कि नेहरू एवं महालनविश के आर्थिक मॉडल पर आधारित पंचवर्षीय योजनाएँ विकास दर के प्रति सचेत तो हैं लेकिन इनका रिसाव प्रभाव इतना प्रभावी नहीं था कि गरीबी, बेरोजगारी एवं आर्थिक विषमता पर सीधा प्रहार कर सकें।

1990 के पश्चात भारतीय अर्थव्यवस्था में भारी संरचनात्मक परिवर्तन हुए स्वतंत्रता के पश्चात इन देशों ने विकास के कई स्तर पार किए। अविकसित तथा स्थिर अर्थव्यवस्था के दुश्चक्र को तोड़ते हुए आज यह देश विकासशील देश है। भारत के विकास क्रम में 'दलित' शब्द का प्रयोग प्रायः अनुसूचित जाति, जनजाति एवं अन्य पिछड़े वर्गों के ऐसे व्यक्तियों के सम्बन्ध में लिया जाता है जो गरीबी रेखा के नीचे अपना जीवनयापन कर रहे हैं। विक्टर प्रेमसागर के मतानुसार "यह शब्द भारतीय समाज में कुछ लोगों की कमजोरी, निर्धनता तथा अपमान को व्यक्त करता है जो उन्हें उच्च जातियों के हाथों झेलना पड़ता है।" डॉ० मजूमधर ने परम्परागत अछूत जातियों और दलित वर्ग के बीच कोई अन्तर न मानते हुए लिखा है, "अछूत जातियों वे हैं जो बहुत सी सामाजिक एवं राजनीतिक निर्योग्यताओं को धार्मिक परम्पराओं के द्वारा निर्धारित करके उन्हें उच्च जातियों द्वारा लागू किया गया।"

वास्तव में प्राचीनतम काल से चला आ रहा हिन्दू समाज कभी दृष्टियों से जर्जर प्रतीत हो रहा है। जो बातें किसी समय समाज और देशहित के लिए परमावश्यक थी वे ही आज हित के बदले अहित कर रही हैं। लकीर के फकीर न बनकर यदि हम उनमें कुछ परिवर्तन लाने का विचार कर सकें तो उससे न केवल हिन्दू समाज बल्कि देश का हित भी होगा। हमारा हिन्दू समाज भी जो युगों पूर्व पुरानी मान्यताओं पर आज भी चल रहा है उसमें दोषों की कमी नहीं है। हमारे समाज में अछूत जातियों जिनको भूल से मनुष्य तो मान लिया जाता है परन्तु उनके हाथ का पानी नहीं पिया जाता।

भारत में परम्परागत हिन्दू समाज के सन्दर्भ में दलितों की प्रस्थिति उन व्यवसायों से जुड़ी हुयी थी जिन्हें सांस्कारिक दृष्टि से अपवित्र माना जाता था। इन व्यवसायों में लगे होने के कारण दलितों को प्रदूषित माना जाता था तथा उनकी यह मान्यता थी कि उनका प्रदूषण सम्पर्क से दूसरे लोगों में भी आ सकता है। इसका परिणाम यह हुआ कि दलितों को अलग-अलग रखा गया तथा हिन्दू समाजिक जीवन में उनकी सहभागिता प्रतिबन्धित कर दी गयी थी। ग्रामीण क्षेत्रों में दलितों के प्रति यह भेद भाव आज भी पाया जाता है यद्यपि नगरीय क्षेत्रों में यह समाप्त प्राय हो गया है।

अचानक, नींद की असंख्य पतों में
डूबते हुए मैंने देखा
मेरी उलझनों के अँधेरे में
एक हम हमशक्ल खड़ा है
मैंने उससे पूछा — तुम कौन हो ?
यहाँ क्यों आए हो ?
तुम्हें क्या हुआ है ?
तुमने पहचाना नहीं — मैं हिन्दुस्तान हूँ
हाँ — मैं हिन्दुस्तान हूँ,
वह हँसता है ऐसी हँसी कि
दिल दहल जाता है
मुझे लगा — आवाज

जैसे किसी जलते हुए कुएँ से
आ रही है।'

दलित भारत में सदियों से सवर्ण हिन्दुओं मुसलमानों तथा अंग्रेज शासकों की राजनीतिक एवं धार्मिक शोषण की चक्की में पिसते रहे हैं। उनकी मान मर्यादा एवं जानमाल सभी कुछ आत्माचारियों की लोलुप दृष्टि का शिकार होते रहे हैं। धार्मिक प्रहारों को सहन करते-करते दलित वर्ग जर्जर हो चुका है और इसी के परिणामस्वरूप उसमें सामाजिक अत्मव्यवस्था—कुप्रथाएँ, आडम्बर और अन्धविश्वास फैल चुका है।

आज विभिन्न विकास योजनाओं तथा स्वयं दलित जातियों में उत्पन्न होने वाली जागरूकता के फलस्वरूप उनकी स्थिति में जो परिवर्तन हुआ है उसी को हम 'दलित जातियों की सामाजिक गतिशीलता' कहते हैं। आज दलित जातियों के जीवन में अनेक परिवर्तन हुए हैं। दलित जातियाँ आज अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उच्च जातियों की दया पर निर्भर नहीं हैं। दलित जातियों की आकांक्षाओं के स्तर में परिवर्तन आया है। आज दलित जातियों के लोग भी अपने बच्चों को शिक्षा देकर उन्हें आगे बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे हैं तथा अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार करके समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं। राजनीतिक क्रियाओं में सक्रिय सहयोग करने से दलित जातियाँ एक नए दबाव समूह के रूप में विकसित हुयी हैं। आज सभी राजनीतिक दल उनका समर्थन पाने के लिए अधिक से अधिक लाभ देने का प्रयत्न कर रहे हैं।

दलित जातियों के जीवन में होने वाला एक मुख्य परिवर्तन बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना है। इसके फलस्वरूप दलित जातियों ने अपने बड़े-बड़े संगठन बनाकर उनके द्वारा अपनी शक्ति का परिचय देना आरम्भ किया है, 12 और 13 जनवरी सन् 2002 को भोपाल में दलित बुद्धिजीवियों का महासम्मेलन हुआ था। इस सम्मेलन में यह एक सूत्री घोषणा पत्र के द्वारा सरकार से यह माँग की गई कि प्रत्येक दलित परिवार को खेती के लिए पर्याप्त कृषि भूमि दी जाएँ, दलितों की जमीनों पर होने वाले अवैध कब्जों को कड़ाई से रोका जाए। दलित महिलाओं को 'विशेष महिला श्रेणी' में सम्मिलित किया जाएँ। सभी राज्यों में दलितों की आबादी के अनुसार विकास की राशि का आवंटन हो।

वास्तव में दलित जातियों के कल्याण के लिए सबसे अधिक आवश्यक यह है कि जातियों के विचारों और व्यवहारों में परिवर्तन लाया जाए। आज भारत में उच्च तथा निम्न जातियों की पारस्परिक दूरी बहुत तेजी से कम होती जा रही है। इस दिशा में कोई भी प्रयत्न तब तक सफल नहीं हो सकते, जब तक कि विभिन्न योजनाओं को ईमानदारी से लागू न किया जाए।

अन्त में इतिहास दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता है कि, परम्परा बाध, जिसमें उसका मूल्यांकन शामिल है, समग्र जीवन दृष्टि, जो भूत, वर्तमान और भविष्य को छोड़कर देख सके, वैज्ञानिक विवेक, जिससे वैकल्पिक भविष्य और जीवन के बदलते आयामों के प्रश्न जुड़े हैं।

सन्दर्भ सूची :-

1. परम्परा इतिहास बोध और संस्कृति — श्यामाचरण दुबे —राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. भारत में समाज : संरचना एवं परिवर्तन — डा० धर्मवीर महाजन — प्रकाशन, दिल्ली।
3. समाजशास्त्र — जी०के० अग्रवाल — एस०बी०पी०डी० पब्लिशिंग हाऊस, आगरा पृष्ठ — 40
4. हिन्दू समाज एवं दलित, डा० अरविन्द सिंह, ज्ञानोदय प्रकाशन, कानपुर, पृष्ठ —11
5. भारत में समाज: संरचना एवं परिवर्तन, डा० धर्मवीर महाजन, विवेक प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ — 53
6. समाज शास्त्र, जी०के० अग्रवाल, एस०बी०पी०डी० पब्लिशिंग हाऊस, आगरा, पृष्ठ — 47



उत्तर आधुनिक संस्कृति में लोक जनमानस के बदलते जीवन मूल्य

डॉ० वीरेन्द्र सिंह यादव

एसोसिएट प्रोफेसर—हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डी० एस० एम० राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ.प्र.

उत्तर आधुनिकता संचार की विश्वव्यापी साधनों के समान्तर विकसित हुयी है। जितनी ही यह मास मीडिया से सम्बन्धित है, उतनी ही यह महानगरीय संस्कृति से भी, जिसमें सब समुदायों का मिश्रित रूप समाया हुआ है। वर्तमान में उत्तर आधुनिकता आदर्शात्मक त्यागमयी विशिष्ट संस्कृति भौतिकता व उत्तर आधुनिकतावाद के अन्तर्नाद की फिसलन भरी राह में पड़ी अजनबीपन के दौर से गुजर रही है। इस युग में वैश्वीकरण की प्रक्रिया के नाम पर प्रभुता सम्पन्न राष्ट्र अपनी पैनी दृष्टि गड़ाकर इसे सामाजिक—आर्थिक रूप से हस्तगत कर रहे हैं। उत्तर आधुनिक परिस्थिति और उससे उत्पन्न सांस्कृतिक संकट को लेकर भारतीय जनमानस विचित्र ऊहापोह की स्थिति में है।

आज उत्तर आधुनिकता के नाम परम्परागत मूल्यों एवं रिश्तों को तिलांजलि दी जा रही है क्योंकि भौतिकता का मार्तण्ड नैतिकता के प्रकाशदीप को बुझा रहा है। समकालीन भारतीय समाज वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिक के युग के साथ ही भौतिक सुख साधनों का युग एवं बदले जीवनदर्शन का युग है। जिसमें उमर खय्यामी अपसंस्कृति की मादकता स्पष्टतौर पर देखने को मिल रही है, जिसमें वासना भरी उपासना का स्थान है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति के परम्परागत मूल्यों एवं आत्मीय संसार की ज्योत्सना को भौतिकता के सूर्य की चमक ने धूमिल कर दिया है।

इसमें शायद ही किसी को कोई आपत्ति होगी कि वर्तमान युग भौतिक चेतना का युग है, इस भौतिक चकाचौंध में मनुष्य का उद्देश्य मात्र भौतिकता की वासना व रसास्वादन मात्र तक ही सीमित रह गया है। समग्र विश्व समुदाय में आज जो वैचारिक दृष्टिकोण आधुनिक सभ्यता व संस्कृति के नाम पर विकसित हो रहा है वह भौतिक शिष्टतावाद का दिखावा मात्र है, किन्तु आज समग्र समाज ने शायद इसे ही चेतना—विकास का उत्कर्षकाल मान लिया है, यही युग समाज वैज्ञानिकों की दृष्टि में 'उत्तर आधुनिक युग' के नाम से इंगित किया जा रहा है। उत्तर आधुनिकतावाद शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग "लेसली फिल्डर तथा इहाब हस्तान" ने सन् 1960 ई० में किया था।¹

उत्तर आधुनिकता में अविश्वास, निराशा और विखंडन तथा बिखराव की वास्तविकता दिखाई दे रही है। "उत्तर आधुनिकता उन तमाम समग्रतावाद, संकल्पवादी व्यवस्थाओं की कमियों और पक्की सांस्थानिक बाउंडरीज की कमियों, कमजोरियों के बारे में सचेत करती है। उत्तर आधुनिकता के अन्तर्गत आने वाले वृत्तान्त यथार्थ की 'पेरोडी' खींचते हैं। वे ऐसा आत्मबिम्ब बनाते हैं जो न केवल एक यथार्थ को कहे, बल्कि कहते हुए उसे चुनौती भी दे। वे शाश्वत, मुकम्मल और शुद्ध नहीं रह पाते।"²

देश, काल परिस्थितियों के अनुसार किसी भी युग में नवीन वैचारिक दृष्टिकोण प्रबुद्धता के विशेषणात्मक प्रतीक माने जाते रहे हैं, यदि ये मानवीय शांति, प्रेम, लोक कल्याणकारी एवं आध्यात्मिक भाव के पोषक हों तो इनका सदैव आदर होता रहा है। इसी सन्दर्भ में यह कहना उचित होगा कि हमें "उस हर नये विचार को महत्व देकर जो सड़ी—गली व्यवस्थाओं की परम्परा बदलें, जो सामाजिक एकता, सुख, शान्ति में वृद्धि करे, उसकी

धार्मिक-नैतिक मान्यताओं व सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों को, यदि शुभ हेतु नवीन विचार व्यवस्था का श्रीगणेश होता है, तो उसका सदैव स्वागत करना चाहिए। लेकिन एक बात यह है कि यदि नवीन विचार व्यवस्था का मन्तव्य सभ्यता व संस्कृति के शाश्वत मूल्यों का विनाश कर समाज को दिग्भ्रमित करना है, तो यह सामाजिक आस्था व अस्मिता के प्रति अन्याय होगा।

यदि वर्तमान विकसित एवं विकासशील समाजों की संरचनात्मक एवं सामाजिक व्यवस्था के संदर्भ में देरिदा के विचार का विश्लेषणात्मक मूल्यांकन किया जाये तो आधुनिकतावाद से परे सामाजिक क्षेत्र में विवाह को नकार कर लिव इन रिलेशन, समलैंगिकता को मान्यता, सिंगल मदर, सेरोगेट मदर, किराये की कोख, रियलटी शो के नाम खुला नंगापन, सेक्स और मादकता फैलाते सेलीब्रेटीज, उदारवादी बाजारवाद का गिद्ध की तरह मध्यम व निम्नवर्ग को नोचकर खाना एवं राजनीतिक कूटनीतिज्ञता के नाम हिंसा, आतंकवाद व परमाणु शस्त्रों का निर्माण—यह सब उत्तर आधुनिकता के प्रतीकात्मक बिम्ब हैं। जो परम्परागत मूल्यों पर कुठाराघात करते हैं।

पूँजीवादी व्यवस्था तथा औद्योगीकरण ने ग्रामीण जीवन के अनेक स्तरों को प्रभावित किया। एक तरफ जहाँ पूँजीवाद के बढ़ते प्रभाव ने आमजन को मनुष्य की जगह उत्पाद बनने पर मजबूर कर दिया है। लोग अब खुद को ब्रांड और प्रोडक्ट कहलाना अधिक पसन्द करते हैं। आदमी का आदमी बना रहना मुश्किल होता जा रहा है। आज के उत्तरोत्तर प्रगति करते समाज में जहाँ लोग करीब आ रहे हैं, वहाँ लोग सिमटते भी जा रहे हैं। जहाँ विकास हो रहा है, वहाँ विनाश भी हो रहा है। पूँजी के खेल की यह सबसे बड़ी त्रासदी है कि वह लोगों की सहज तार्किक बुद्धि को समाप्त कर देती है। वैसे ही जैसे तकनीकी का अधिकाधिक प्रयोग हमारी मानवीय क्षमताओं को या तो घटा देता है, या इतना बढ़ा देता है कि ये खतरनाक हो जाती है। उत्तर आधुनिक समाज में परिवारों के स्वरूप व संरचना में भी आश्चर्य जनक परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं। जहाँ आपसी सम्बन्ध एवं मूल्य एक दूसरे में खड़ब-मड़ब से हो गए हैं।

इस सन्दर्भ में उत्तर-आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में सुधीश पचौरी के कथन से सहमति मिलाई जाय तो आज वास्तव में लोक जनमानस कहाँ है? क्योंकि उत्तर-आधुनिकता के दौर में विज्ञान की प्रामाणिकता बढ़ी है, व्यक्ति कम समय में या समय से पहले सब कुछ प्राप्त कर लेना चाहता है, परिवार एकांकी हुए हैं, जनसंचार एवं इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों विशेषकर दूरदर्शन की संस्कृति से हम चौधियाँ से गए हैं और हम स्वयं नहीं बल्कि सुबह से शाम तक मशीनों के द्वारा संचालित हैं, ऐसे परिवेश में लोक जनमानस अपनी क्रियाओं को नहीं बल्कि दूसरे की प्रतिक्रियाओं को मानने एवं जीने के लिए बाध्य हैं इस सन्दर्भ में हंस में उल्लिखित कविता का जिक्र करना चाहूँगा—

“वे अपनी इच्छाओं के लिए स्वयं जिम्मेदार नहीं हैं,

वे दूसरों की इच्छाओं से संक्रमित हैं,

उनकी सक्रियता दूसरों के नाम है,

वे क्रियाओं को नहीं,

प्रतिक्रियाओं को जी रहे हैं,

वे अपने नहीं, बल्कि दूसरों के अभिशाप में हैं,

वे अपराधी नहीं, बल्कि प्रतिअपराधी हैं,

परम्परागत शर्म और हिकारत से भरे समाज में शान से।”³

ऐसा लगता है कि आज आम आदमी परम्परागत शर्म और हिकारत भरे समाज में आज व्यक्ति शान से जीने का आदी सा हो गया है या जो जिन्दगी वह जी रहा है उसी में वह अपनी शान समझता है। लोकजनमानस की सबसे बड़ी ताकत उसकी संस्कृति होती है। लेकिन उत्तर-आधुनिकता की बहस में आज संस्कार एवं संस्कृति का तो कायाकल्प सा हो गया है—“आधुनिकता ने अपने अतिरंजित स्तर पर संस्कृति मात्र का निषेध करना शुरू

कर दिया था, जबकि आज सारा उत्तर-आधुनिक कारोबार संस्कृति को ही लेकर है। 'धर्म', 'विरासत', 'उपसंस्कृति' जैसे शब्द सहसा ज्यादा महत्वपूर्ण हो गए हैं। आदमी ग्लोबल हो रहा है या उप-सांस्कृतिक। आज के परिवेश में पश्चिमीकरण को भारतीय कट्टरता का जबाब और भारतीय कट्टरता को पश्चिमीकरण का जबाब बनाकर सहज रूप में पेश किया जा रहा है। वर्तमान में उग्र-पश्चिमीकरण स्वतंत्रता का नया मुक्तिमार्ग बनकर अपना विस्तार करता जा रहा है। विरोध में कट्टरपंथी लोग अतीत को अपनी ढाल बना रहे हैं, जो हर नया मुद्दा उठाने के बाद थोड़ी और सिमट जाती है। ऐसे हालात एवं समय में घड़ी में जब समाज के नव-समृद्ध वर्गों ने व्यापार, टेक्नालॉजी और राजनीति के बल पर संस्कृति के श्रेष्ठतर जीवन की आवाज से अनगिनत युद्धास्त्रों में बदल दिया है, महान को जोकर और जोकर को महान बनाया जा रहा है।⁴

इस सब के बीच चारों तरफ बाजार-दर्शन का मकड़जाल फैलता जा रहा है, हर विज्ञापन लोकजन को लीलने के लिए आतुर है, कोई 'काम' के नाम पर विज्ञापन कर रहा है तो कोई राम के नाम पर। वास्तविकता चाहे जो भी हो आज हम पूरे जद्दोजहद के साथ राम को तो मानते हैं तो लेकिन 'राम की नहीं मानते' इसलिए तथाकथित रामराज्य एक बार फिर गायब हो गया है। लोकजन का जो डूबते का सहारा था 'ईश्वर' वह भी आज प्रश्न का विषय (फिल्म-ओ0 एम0 जी0 तथा पी0के0) बना हुआ है।

उत्तर आधुनिकता ने जहाँ सभी क्षेत्रों में अपना माया जाल फैला रखा है लेकिन विशेष रूप से साहित्य, सामाजिक सैद्धान्तिकी तथा राजनीति के क्षेत्र में इसने अपना विशेष प्रभाव डाला है। आज जहाँ वैश्वीकरण के युग में पूरा विश्व सिमट कर गाँव बनता जा रहा है। वहीं टी. वी. चैनलों और विज्ञापन के प्रभाव से एक नई संस्कृति पनपी है। उत्तर आधुनिकता ने जो मूल्य दिये हैं वे पश्चिम की अतिविकसित औद्योगिक सभ्यता और समाज के भी मूल्य कहे जा सकते हैं। इन्हें विकसित करने में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की निर्णायक भूमिका रही है। "उत्तर आधुनिकवाद वैश्विक संस्कृति के बहुलवादी चरित्र पर बड़ा बल देता है और उसकी स्वायत्तता की रक्षा का संकल्प दोहराता है। व्यावसायिक प्रतिस्पर्द्धाओं एवं विज्ञापन एजेंसियों ने जिस उपभोक्तावाद को जन्म दिया उसकी कल्पना वर्तमान में ही की जा सकती थी। कम्प्यूटर-संस्कृति ने व्यक्ति और समाज की प्राथमिकताओं को बदलने के साथ ही इसने मानवीय संभावनाओं और संवेदनाओं और साहित्यविहीन ऐसे यंत्रमानव रोबोट की रचना की जिसने प्रबोधन काल के मानववाद की पूरी संकल्पना को ही धो डाला। उत्तर आधुनिकता इन सभी परिवर्तनों को दर्शाता है। उसके दार्शनिक अभिप्रायों की झलक उसकी सैद्धान्तिकी में देखी जा सकती है।"⁵

तेजी से बदलते परिवेश एवं परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए वर्तमान समय की समीक्षा की याद तो आज समाज के घटक तत्वों में गहन तनाव, निराशा, अस्थिरता, बेचैनी, नैतिक मूल्यों का न रह जाना, आपसी सम्बन्धों में कटुता को बढ़ावा मिल रहा है। सारे मानवीय रिश्ते तार-तार हो रहे हैं। उत्तर-आधुनिक समय में स्थितियाँ उलट-पलट हो गयी हैं। अर्थवाद के समक्ष समाजवाद अपने व्यावहारिक धरातल पर असफल होता दृष्टिगोचर हो रहा है। "उत्तर-आधुनिकवाद तो वस्तुतः उस मोह भंग को उजागर करता है, जो कि हमारे समय में समाजवाद की अवधारणा की विफलता से पैदा हुआ है, साथ ही ज्ञानोदय से जागी उम्मीदों पर पानी फिरने से और नतीजन व्यवस्था के सामने बुद्धिजीवी के घुटने टेकने से।"

उत्तर आधुनिकता एक विशेष तरह का कालखण्ड एवं औद्योगिक समाज है। जिसमें अन्य चीजों की तरह आज ज्ञान का भी बाजारीकरण हो रहा है। साहित्य पर बाजार का आभामंडल पड़ता जा रहा है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री श्री पूरनचन्द्र जोशी आज के विज्ञापन जगत के विषय में बताते हैं कि किस प्रकार विज्ञान मनुष्य की जीवन-शैली को आकर्षक बनाकर पेश करता है और विज्ञापन के इस लुभावने संसार में सबको सम्मोहित करने की इसमें जादुई शक्ति है— "ये विज्ञापन किसी वस्तु को खरीदने का ही आग्रह नहीं करते वे तो एक समग्र जीवन शैली और उनसे संबन्धित मूल्यों का भी विज्ञापन करते हैं। इस जीवन शैली में अपनी जरूरतों पर और अपनी इच्छा पर संयम तथा

संतोष, सादगी आदि मूल्यों के लिए कोई स्थान नहीं भोग, स्वच्छंद भोग में ही जीवन की सार्थकता है। यही इन विज्ञापनों का मुख्य संदेश है।" बाजार एवं विज्ञापन में जीवन मूल्यों का कोई विशेष वास्ता नहीं दिखाई देता है।

हमारी इन सामाजिक एवं आर्थिक मान्यताओं में आये इस परिवर्तन ने व्यक्ति और वस्तु के आपसी संबंधों को असमंजस की स्थिति में बदल दिया है। 'उत्तर आधुनिकता और संरचनावाद' में प्रो. सुधीश पचौरी का कहना है कि "थोड़ी कला, थोड़ा खेल, थोड़ा स्वास्थ्य, थोड़ा आनंद, थोड़ा दुख.....उपभोक्तावाद समाज की इस थोड़ी सांस्कृतिक जटिलता से रहित होता है। थोड़ा, थोड़ा व्यक्ति इन्हीं में एक थोड़ा चुनता है। यही उपभोक्ता समाज है। आज मानव इसी भ्रम का शिकार हुआ है पाने की लालसा में वह प्रसन्न मुद्रा में दिखाई दे रहा है। भ्रम के टूटने पर, सत्य का ज्ञान होने पर वह विघटित हो जाता है। मूल्यों के अभाव में निरीह पड़ जाता है। इस सदी के रचनाकारों ने समाज में अपना पैर पसार चुकी उपभोक्तावादी संस्कृति के साथ व्यक्ति के बीच पनपने वाले सम्बन्धों को एक नया आयाम दिया है। भारत की पाश्चात्य-सभ्यता की घुसपैठी और मॉडल दिखने की वांछा ने आम आदमी के सम्बन्धों को तार-तार कर दिया है। पारिवारिक सम्बन्ध टूटने के कगार पर हैं। यथार्थवादी युग में मनुष्य मानवता से सम्बन्ध तोड़कर अर्थ से जुड़ने में लग गया है। विक्रेता और ग्राहक के स्तर पर व्यक्ति के सामाजिक सम्बन्ध पहुँच चुके हैं।

आज का युवा वर्ग भ्रमित सा हो गया है। आज फ्री सैक्स, प्रेम एवं चारित्रिक संकट के लिए जिम्मेदार पाश्चात्य संस्कृति से विश्व बाजार की दुनिया बड़ी बेरहम है। ऐसा असंवेदनशील क्रूर समय इस सदी में पहले कभी नहीं था, बाजार के नियम हमारे सामयिक मूल्यों पर हावी हो रहे हैं। बाजार में सारी मानवीय संवेदनाएँ अनजाने आहिस्ता आहिस्ता बाजार की संवेदनाओं में तब्दील होने लगी हैं। जो कुछ है, सब बाजार में है। कुछ हद तक बाजारीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप मानवीय मूल्य समाप्त से होते जा रहे हैं, बाजार के नियम आम आदमी के सांस्कृतिक मूल्यों पर हावी हो रहे हैं। बाजार ने जितने फैंसले स्त्रियों पर थोपे हैं, उतना शायद किसी और ने नहीं। उत्तर आधुनिकता का दबाव स्त्री को बाजार के इशारे पर चलने को विवश एवं मजबूर करने लगा है। इन सबके बीच मजेदार बात यह है कि नये सौन्दर्यशास्त्र का सारा दामोदार 'रूप' पर केन्द्रित होता जा रहा है।

वैश्वीकरण और उत्तर आधुनिकता ने स्त्री शोषण के नये आयाम खोल दिये हैं, मुनाफे का बाजार पुरानी रूढ़ियों को फिर से जमीन देने लगा है। स्त्री सबसे बड़ा उपभोक्ता वर्ग और सामान बेचने में सहायक बना दी गई है। उत्तर आधुनिकता और वैश्वीकरण में जहाँ आर्थिक सबलीकरण हुआ है वहाँ मर्यादा के दोहन का पट्टा भी लग गया।

वर्तमान में डार्विनवाद नये रूप में उभरकर हमारे समक्ष प्रकट हो रहा है। बाहुबल का स्थान ज्ञान ने ले लिया है। आज ज्ञान ही शक्ति है। ज्ञान की कसौटी ही बाजार है। आज उत्पाद हैं, उपभोक्ता हैं, वस्तुएँ हैं और वस्तुओं में बदलता आदमी और उसकी आदमियत है। टी. वी. चैनलों पर चौबीस घंटे छाये रहने वाले विज्ञापनों पर यदि एक निगाह डाली जाए तो-दैहिक, भौतिक सुखभोगवाद के साधनों का प्रचार करते बच्चे-बूढ़े, किशोर-जवान, स्त्री-पुरुषों की एक भीड़, उनके हाव-भाव, उनकी भाषा, उनका हर ढंग और ढंग जो उनका नहीं, उन लोगों के द्वारा तय किया गया है जो उनका इस्तेमाल कर रहे हैं। विज्ञापन जगत स्त्री की छवि को उत्तेजित करता मॉडल, बनाने पर जुटा है क्योंकि वर्तमान में शक्तिशाली ही जीने का अधिकारी है। अपने-अपने उत्पादों को ग्राहक और उपभोक्ताओं तक पहुँचाने के लिये और एक निगाह उन पर भी डालिए जो दूरदर्शन के पर्दे पर टकटकी लगाये उन्हें और उनके द्वारा विज्ञापित उत्पादों को ललचाई नज़रों से देख रहे हैं, अपने भाग्य को सराह रहे हैं अथवा उस पर झुंझला रहे हैं जो उपभोक्ता बनाने के लिए आतुर हैं, ये लोग हमें अपने आस-पास, अपने घरों के भीतर भी मिल जाएँगे।.....भोगना ही आज के युग की सबसे प्रधान क्रिया है। होड़ मची हुई है। बस दम होना चाहिए आप में।.....भोग की स्पद्धा में वह अपना सब कुछ, यहाँ तक कि आदमियत तक को दीव पर लगाने को तैयार

है।.....एक अंतहीन यात्रा है.....बदहवास, बिना इस बात पर विचार किए कि उनके इस भोग का कहीं कोई अंत भी है या नहीं। रोज-बरोज नये-नये उत्पाद और उन्हें पाने को आतुर भीड़।”

एक तरफ जहाँ उत्तर आधुनिकता और ग्लोबलाइजेशन से जहाँ आर्थिक सबलीकरण हुआ है वहीं मर्यादा के दोहन का पट्टा भी लग सा गया गया है। पूँजी से सत्ता लाख गठजोड़ कर ले, उत्तर-आधुनिकता की हवा ने लोक जनमानस को भी धीरे-धीरे चंट बना दिया है। साहित्यिक उपन्यासों का हर वक्त “लुटता-पिटता, दया की भीख माँगता किसान अब वो किसान नहीं रह गया है। वल्कि अब यह ग्लोबलाइजेशन वाला किसान है, जो ज्यादा सूचित, ज्यादा बाजार सजग और चंट है। दादरी से लेकर सिंगुर, नंदीग्राम या फिर आने वाले दिनों में महाराष्ट्र या गुजरात का स्पेशल इकनॉमिक जोन वाला किसान नए इकनॉमिक जोन में अपनी जमीन का बेहतर से बेहतर सौदा माँग रहा है। बाजार की दुनिया में यह बुरी बात तो नहीं।”⁶

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि अभी सब कुछ खत्म नहीं हुआ है। इस आपाधापी के दौर में भी हम कुछ आनंद तो उठा सकते हैं—लिपट संस्कृति के स्थान पर सीढ़ियों का सहारा ले सकते हैं, शहर की व्यस्ततम जिन्दगी को छोड़कर गाँव की गलियों में विचरण कर सकते हैं। जैसे स्वास्थ्य का बहाना बनाकर पाँच सितारा संस्कृति से निकलकर चोखा-बाटी खा सकते हैं, किसी गरीब को गले लगा सकते हैं, संगीत का आनन्द ले सकते हैं, अर्थात् बाजारवाद से निकलकर हम अपना खयाल खुद रख सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. मुकर्जी, डा० रवीन्द्रनाथ — समाजशास्त्र का सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य — विवेक प्रकाशन जवाहर नगर, दिल्ली-7, पृ० 211, सं. 2005
2. पचौरी, सुधीश—उत्तर आधुनिक साहित्यिक विमर्श, पेरौडी और पेश्टीच, पृ० 99
3. हंस, मई 2010, पृ. 53
4. शंभूनाथ : संस्कृति की उत्तरकथा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली 2000, भूमिका
5. डॉ० रवि श्रीवास्तव, उत्तर आधुनिकता विभ्रम और यथार्थ, पृ० 113
6. पचौरी, सुधीश — उत्तर आधुनिक समय और मार्क्सवाद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृ० 111



किशोरावस्था में बढ़ती अपराधिक प्रवृत्ति की भावना सामाजिक विकास के लिए अभिशाप

श्रीमती रेनू सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर—गृहविज्ञान विभाग
राजकीय महाविद्यालय, झाँसी

वर्तमान युग में आधुनिकता को चकाचौंध ने किशोर मन में हलचल उत्पन्न कर दी है। आज की किशोर पीढ़ी में जीवन स्तर को उत्तम प्रदर्शित करने व महाविद्यालय में सभी के मध्य अपनी लोकप्रियता बनाने हेतु तत्परता उन्हें ऐसे कार्यों को करने के लिए बाध्य करती है। जो कि समाज के लिए अनैतिक है। इन कृत्यों के प्रति रुझान उन्हें अपराध के पथ की ओर अग्रसित कर रहा है। किशोरावस्था में प्रायः सभी किशोरों में स्वयं को सभी के बीच लोकप्रिय बने रहने की चाह होती है। चाहे वह आकर्षण महगें परिधानों को धारण कर, महंगे लाइफ स्टाइल, महंगे संसाधनों को प्रयोग करके, या विभिन्न प्रयोजनों द्वारा। इन सबके आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए धन की आवश्यकता पड़ती है।

परिवार द्वारा स्वेच्छा से यदि इनको पूर्ति कर दी जाती है। तो ठीक है परन्तु यदि पूर्ति नहीं हो पाती तब अपराधिक भावना उत्पन्न होती है। यह भावना तब अधिक बढ़ जाती है। जब परिवार के द्वारा आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती है। इच्छापूर्ति न होने पर किशोर स्वयं को दूसरों से हीन समझने लगते हैं। साथ ही उन्हें अपने साथी समूह के बीच बहिष्कृत होने का भी भ्रम रहता है। अतः वह अपनी विलासिता पूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विभिन्न प्रयोजनों द्वारा धन प्राप्त करता है। चाहे वह झूठ बोलकर हो या अन्य माध्यम से। धीरे-धीरे यह उसकी आदत में सुधार हो जाता है। किशोरों को पता ही नहीं चलता कि कब यह आदत उन्हें अपराधियों की श्रृंखला में खड़ा कर देती है। धीरे-धीरे यह अपराधिक प्रवृत्ति उन्हें असमाजिक कार्यों को करने में निपुण बना देती है। दर प्रतिदर वे अपराधों में सलग्न होते चले जाते हैं। परिवार द्वारा जब बच्चों को अधिकाधिक सख्त अनुशासन में रखा जाता साथ ही बच्चों से उपेक्षित व्यवहार किया जाता है। वहाँ यह समस्या और अधिक गंभीर रूप धारण कर लेती है। ऐसे में जरूरत है। प्यार, पुरस्कार व सही मार्गदर्शन की।

अपराधी जन्मजात नहीं होते बल्कि समाज व परिवार के उपेक्षित व्यवहार इच्छाओं की अवहेलना उन्हें अपराधी बना देती है। परिवर्तन सृष्टि का नियम है। वह चाहे शारीरिक, सामाजिक या मानसिक स्तर पर हो। अधिकांशतः परिवर्तन बालकों में किशोरावस्था में होते हैं। जो कि बालक अनुकरण द्वारा ग्रहण करता है। एक बालक खाली स्लेट की तरह होता है। उस पर जो चाहे उकेरा जा सकता है। समाज द्वारा यदि उसे सही मार्गदर्शन दिया जाता है। तो वह समाज के लिए लाभकारी होता है। यदि उसके नकारात्मक विकास होता है। तो समाजिक विकास के लिए घातक होगा। अतः आवश्यक है कि बालक के विकास के लिए अनुशासन के साथ-साथ स्वतन्त्रता भी प्राप्त हो तभी बालक स्वतंत्र रूप से चिन्तन तर्क-वितर्क करने में निपुण होगा और स्वविवेकशील व्यक्तित्व के रूप में विकसित हो सकेगा। कहा जाता है कि बचपन व्यक्तित्व के विकास का स्तम्भ होता है। यदि आधार ही कमजोर होगा तो बालक जीवन रूपी इमारत कमजोर हो जाती है। इसीलिए परिवार को बालक की प्रथम पाठशाला कहा जाता है।

वर्तमान समय में किशोर अपराधी एक गंभीर समस्या बन चुका है। अधिकांशतः देखा गया है कि समाज में

जितने भी अपराध होते हैं उन्हें शामिल अपराधियों की आयु 16–18 वर्ष के लगभग होती है। 1999 से वर्तमान समय में किशोर अपराधियों की संख्या कई गुना बढ़ चुकी है। जिज्ञासु प्रवृत्ति ने किशोरों को अपराध के गर्त में ढकेल दिया है। यह सिर्फ भारत वर्ष में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व के लिए चिंतन का विषय बन चुका है। किशोर वर्ग हमारे समाज व देश के भविष्य के कर्णधार है। जब भावी पीढ़ी पतन के गर्त में होगी तो सम्पूर्ण देश का भविष्य भी अंधकार मय हो जायेगा।

एक शिशु का जब जन्म होता है उस समय कोई भी नहीं कह सकता है बड़ा होने पर उसमें किस प्रकार के गुण विकसित होंगे। धीरे-धीरे किशोरावस्था में पहुँचने पर ही बालक की प्रवृत्ति का बोध होता है कभी-कभी परिस्थितियाँ भी किशोरों को अपराध करने पर मजबूर कर देती हैं। पर यदि समय रहते उचित मार्गदर्शन प्राप्त हो जाये तो वो भी समाज में एक जिम्मेदार नागरिक के रूप में अपना जीवन निर्वाह कर सकते हैं साथ ही सामाजिक तत्वों की वृद्धि पर भी अंकुश लगाया जा सकता है। बदलते सामाजिक परिवेश में देखा गया है कि अधिकांशतः किशोरों द्वारा किये जाने वाला शोषण विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण एवं अलग वर्ग में रखा जाना ही वर्तमान समय में समाज के लिए एक प्रमुख समस्या है। जब बालक द्वारा एक बार अपराध किया जाता है तब उसे समझाकर छोड़ दिया जाता है परन्तु जब कोई बालक बार-बार सामाजिक कार्य करता है जो कि समाज व कानून द्वारा दण्डनीय है समस्या उत्पन्न करता है सिर्फ आयु द्वारा ही अपराध का निर्धारण नहीं किया जा सकता है। बल्कि अपराध की गंभीरता भी महत्वपूर्ण होती है। विभिन्न सर्वेक्षणों के द्वारा भी साबित हो चुका है कि अधिकांशतः गंभीर अपराधों में किशोरावस्था के युवा वर्ग ही शामिल होते हैं।

किशोर बालक अपराध क्यों करते हैं आज यह अध्ययन का विषय बन चुका है क्योंकि आधुनिकता की अंधी दौड़ में शामिल होने के लिए वर्तमान समय का युवा वर्ग अपराध के गर्त में डूबता जा रहा है। महत्वाकांक्षाएँ ही हैं जो युवाओं को उचित अनुचित में विभेद की क्षमता करना भुला देती हैं उसका उद्देश्य सिर्फ एक होता है बस अपनी इच्छा पूर्ति करना। चाहे वह सामाजिक कृत्य द्वारा हो या असामाजिक कृत्य द्वारा।

कहा जाता है किशोरावस्था तनाव एवं तूफान की अवस्था होती है यह संघर्ष बालक का स्वयं के साथ होता है यह स्थिति तब और बढ़ जाती है जब उन्हें परिवार द्वारा किसी भी वर्ग में शामिल नहीं किया जाता है न ही बाल्यावस्था में और न ही युवा वर्ग में। किशोरावस्था में होने वाले परिवर्तन केवल शारीरिक ही नहीं होते अपितु सामाजिक संवेगात्मक मानसिक परिवर्तन भी तीव्रता से होते हैं। जिससे असमंजस की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। असमंजसता किशोर मन में विभिन्न सवालियों को जन्म देती है। बालकों जैसा व्यवहार करने पर उनसे परिपक्वता की उम्मीद की जाती है यदि वे बड़ों के समान व्यवहार करते हैं उस समय उन्हें बालक के समान व्यवहार करने की उपेक्षा की जाती है। ऐसे में जरूरत है उनकी मनोदशा को समझने की कठोर दण्ड, अनुशासनहीनता, प्रेम का अभाव किशोर मन में कुंठा की भावना को जन्म देती है। अनुचित वातावरण ही अपराधों को बढ़ावा देने का कर्म करता है अधिकांशतः पाया गया है कि जितने भी किशोर अपराधी होते हैं वे निर्धन वर्ग के होते हैं क्योंकि धनी वर्ग के किशोरों की आवश्यकताओं की पूर्ति सरलतापूर्वक हो जाती है परन्तु निर्धन वर्ग के किशोर की अपनी जरूरतों को पूरा करने हेतु संघर्ष करना पड़ता है। अतः अपनी इच्छापूर्ति अनुचित संसाधनों के द्वारा पूर्ण करते हैं। किशोर उम्र के किये जाने वाले अपराधों में सर्वाधिक चोरी, हिंसा, यौन शोषण, कानून उल्लंघन आदि आते हैं। महिलाओं लड़कियों के प्रति होने वाले दुर्व्यवहार शोषण में ज्यादातर युवा वर्ग संलग्न रहते हैं। किशोरों में विपरीत लिंग के प्रति जिज्ञासा होने आकर्षित करती है जो कि अपराध को बढ़ावा देती है।

किशोरावस्था एक ऐसी संवेदनशील अवस्था है जिसमें व्यक्तित्व में परिवर्तन इतने आकस्मिक और तीव्रता के साथ होते हैं। कई समस्याओं का जन्म होता है यद्यपि किशोर इन परिवर्तनों का अनुभव तो करते हैं परन्तु वे उन्हें समझने में असमर्थ होते हैं अपनी जिज्ञासा को जानने के लिए वे अपने समूह की मदद लेते हैं। या फिर गुमराह

करने वाले गलत रास्ते का सहारा लेते हैं। गलत जानकारीयों किशोरों के व्यक्तित्व पर कुप्रभाव डालते हैं एवं उन्हें गलत मार्ग की ओर प्रशस्त करते हैं। गलत समूह संगत उन्हें मादक पदार्थ सिगरेट की आदत डाल देती है साथ ही यौनाचार महिलाओं के प्रति शोषण दुर्व्यवहार भी करने लगते हैं। ऐसे में माता-पिता द्वारा बच्चों को तिरस्कृत करना व उचित मार्ग दर्शन का अभाव समस्या को और भी गंभीर बना देते हैं। परिणामस्वरूप समाज में नैतिकता का पतन एवं अनैतिकता का फैलाव हुआ है। जब कल के भविष्य निर्माता अनैतिक कार्यों में संलग्न रहेंगे तो देश का विकास कैसे संभव होगा? वर्तमान समय का यह एक विशेष मुद्दा है जिस पर समाज में रहने वाले प्रत्येक परिवार को गौर करना चाहिए। परिवार समाज की एक आधारभूत इकाई है यदि प्रत्येक परिवार अपने समाज के प्रति जिम्मेदारी को निभाते हुए अपने बच्चों को पर्याप्त पालन-पोषण व उचित नैतिक मूल्य एवं मार्गदर्शन प्रदान करे तभी समाज का विकास संभव होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

उत्तर शिक्षा मनोविज्ञान – रचना शर्मा

Development Psychology - एस0पी0 गुप्ता

बाल मनोविज्ञान – भाई योगेन्द्रजीत

बाल विकास – नीता अग्रवाल

मानव विकास – एलिजाबेथ बी0 हरलॉक

विकासात्मक मनोविज्ञान – राजेन्द्र सिंह, जितेन्द्र कुमार उपाध्याय



आटो/टैम्पो चालकों की मनोसामाजिक एवं आर्थिक दशाओं का अध्ययन

(लखनऊ शहर के विशेष संदर्भ में)

डॉ० विवेक कुमार सिंह

रीडर-समाजकार्य एवं समाजशास्त्र विभाग
डॉ० शकुन्तला मिश्रा पुनर्वास विश्वविद्यालय,
लखनऊ

रितेश कुमार त्रिपाठी

एम.एस.डब्ल्यू. समाज कार्य विभाग
डॉ० शकुन्तला मिश्रा पुनर्वास विश्वविद्यालय,
लखनऊ

आटो-टैम्पो का इतिहास 1940 से शुरू माना जाता है। सबसे पहले यह एशिया के कुछ देशों में पाया गया। भारत में 1939 में मोटर वाहन अधिनियम के आ जाने के बाद से शहरों के अन्दर यातायात के विस्तार पर जोर दिया गया और उसके बाद से लगातार इस व्यवसाय का विस्तार हो रहा है। 1980-81 में भारतीय नगरों में लगभग 5112 आटो-टैम्पो चलते थे जो वर्ष 2008-09 में 1521404 था और अगर हम वर्तमान समय की बात करें तो लगभग 50 लाख आटो-टैम्पो हैं। भारत के प्रमुख महानगरों की जनसंख्या 10 वर्ष में लगभग 10 लाख बढ़ गई है। उसी प्रकार लखनऊ की जनसंख्या 10 वर्ष पहले लगभग 40 लाख थी जो वर्तमान समय में 51 लाख हो गयी है। भारत में आटो-टैम्पो लगभग 75 प्रतिशत लोगों को यातायात की सुविधा प्रदान करता है। लखनऊ में आटो-टैम्पो का उपयोग यातायात के लिए लगभग 30 प्रतिशत लोगों द्वारा किया जाता है।

देश और प्रदेश में बढ़ रहे औद्योगीकरण के कारण मोटर गाड़ियों की संख्या में दिन-प्रतिदिन वृद्धि हो रही है। इसके नियंत्रण एवं प्रविधिक ज्ञान की उपयोगिता को देखते हुए वर्ष 1945 में वाहन के संचालन को नियमित करने के उद्देश्य से मोटरयान अधिनियम 1939 की धारा 133ए के प्रावधान के अन्तर्गत परिवहन विभाग की स्थापना की गई। विभाग द्वारा यह भी अनुभव किया गया कि व्यवसायिक वाहनों के आर्थिक एवं अन्य व्यवसायिक प्रतिस्पर्धा आदि के कारण उनके संचालन को नियमित करने हेतु विशेष प्रावधान की आवश्यकता है। इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए भारतीय मोटर गाड़ी अधिनियम के अध्याय-4 के क्रियान्वयन हेतु राज्य परिवहन प्राधिकरणों का गठन किया गया। जो व्यवसायिक वाहनों के संचालन को नियंत्रित करते हैं।

चालकों एवं परिचालकों को लाइसेंस देने का कार्य मोटरयान अधिनियम 1988 की धारा-9 एवं 30 के अन्तर्गत लाइसेंस अधिकारी द्वारा किया जाता है। चालकों-परिचालकों को लाइसेंस देने का यह अधिकार संभागीय परिवहन अधिकारी को प्रदत्त है। संभागीय सहायक परिवहन अधिकारी द्वारा अधिकृत किये जाने पर यह कार्य वरिष्ठ मोटर वाहन निरीक्षक एवं मोटरवाहन निरीक्षक द्वारा भी किया जाता है।

लाइसेंस की प्रक्रिया में शुरुआत में पहले 6 माह के लिए अस्थाई लाइसेंस बनता है इसके 30 दिनों के बाद स्थाई लाइसेंस के लिए आवेदन किया जा सकता है। ड्राइविंग लाइसेंस 18 वर्ष के अधिक उम्र वालों को ही मिला सकता है। 50 वर्ष से अधिक उम्र के लोगों को इसका नवीनीकरण कराना पड़ता है। इस उम्र के लोगों का नवीनीकरण प्रक्रिया में प्रमुख बात स्वास्थ्य परीक्षण की होती है। स्वास्थ्य परीक्षण के बाद इसका नवीनीकरण कर दिया जाता है और इसके बाद हर पांचवें वर्ष इसका नवीनीकरण किया जाता है।

वाहन का पंजीकरण एवं स्वस्थता प्रमाणपत्र का निर्गमन

मोटर वाहन अधिनियम 1988 की धारा 39 के प्रावधान के अन्तर्गत प्रत्येक मोटर गाड़ी को प्रयोग में लाने

से पूर्व पंजीकरण कराना आवश्यक होता है। ट्रान्सपोर्ट गाड़ियों का पंजीकरण उस समय तक वैध नहीं माना जाता जब तक कि गाड़ी को विधिवत स्वस्थता प्रमाणपत्र धारा 56 के अन्तर्गत फार्म 38 में प्राप्त नहीं हो जाता है। प्रदेश के समस्त संभागीय परिवहन अधिकारी सहायक संभागीय परिवहन अधिकारी तथा संभागीय निरीक्षक मोटरगाड़ियों के पंजीकरण के लिए पंजीयन अधिकारी हैं।

वाहन संचालन हेतु महत्वपूर्ण शासनादेश एवं प्रक्रिया :

परिवहन आयुक्त संगठन का प्राविधिक उपशासकीय वाहनों से संबन्धित प्राविधिक कार्यों का नियन्त्रण केन्द्र है तथा शासकीय वाहन की मरम्मत हेतु गैराजों (मोटरगाड़ियों की मरम्मत करने वाले वर्कशाप) को मान्यता व मरम्मत हेतु श्रम की दर इसी उपविभाग द्वारा निर्धारित की जाती है। टायरों या रिट्रेडिंग के लिए वर्कशापों हेतु सी श्रेणी की मान्यता दी जाती है।

प्रदूषण प्रवर्तन

देश में बढ़ते वाहनों की संख्या तथा उनसे उत्पन्न वायु मण्डलीय प्रदूषण विगत कुछ वर्षों से विकराल रूप धारण कर रहा है। इस समस्या के महत्व को समझते हुए केन्द्र सरकार द्वारा मोटरयान अधिनियम 1988 में प्रदूषण उत्पन्न करने वाले वाहनों को एक अपराध के रूप में स्वीकारते हुए इस अधिनियम के अन्तर्गत बनाई गई नियमावली में प्रदूषण नियन्त्रण हेतु धाराओं का प्रावधान किया गया है। इसके अन्तर्गत यह भी प्रावधान है राज्य स्तर पर एक मुख्य कार्यालय होगा और प्रत्येक जिले में इसका क्षेत्रीय कार्यालय होता है। जो गाड़ियों के प्रदूषण के स्तर का निरीक्षण करता है और प्रदूषण मुक्ति का प्रमाण पत्र देता है। प्रदूषण युक्त मोटर गाड़ी चलाना दण्डनीय अपराध है।

वर्ष 1939 से प्रचलित मोटरगाड़ी अधिनियम एवं नियमावलियों के प्राविधानों के अन्तर्गत सड़क परिवहन के क्षेत्र में हुए अनुसंधान विकास एवं आर्थिक तकनीकी प्रगति के सापेक्ष सामंजस्य स्थापित करने में कठिनाई का अनुभव होने लगा था। अतः 1 जुलाई 1989 में मोटरयान अधिनियम 1939 व मोटरगाड़ी नियमावली 1940 के स्थान पर क्रमशः मोटरवाहन अधिनियम 1988 व उत्तर प्रदेश मोटरयान नियमावली 1989 लागू की गई है। उक्त अधिनियम एवं नियमावली के लागू हो जाने के फलस्वरूप अनेक वाहनों के पंजीकरण चालक/परिचालक लाइसेंस एवं वाहनों के पंजीकरण चालक/परिचालक लाइसेंस एवं व्यवसायिक वाहनों की स्वायत्ता प्रमाण पत्र आदि जारी करने की सम्पूर्ण प्रक्रिया एवं तदविषयक शुल्कों की दरों में पूरे देश में एकरूपता स्थापित हो गई है।

1990-91 में मार्ग पर चलित वाहनों की संख्या 1941687 थी और इब 31.3.2013 के आधार पर 14988349 हो गई है। जिससे यह पता चलता है कि देश में किस तरह से विस्तार हो रहा है। इसी में सेक्शन 192ए के तहत मोटर वाहन अधिनियम 1988 में है कि जो व्यक्ति वगैर परमिट के गाड़ी चलायेगा उसे दण्डित किया जायेगा।

लखनऊ शहर में आटो-टैम्पों संचालन हेतु नियम एवं कानून

मोटर वाहन अधिनियम 1988 के सेक्शन 66 के अनुसार मोटरगाड़ी को चलाने के लिए परमिट आवश्यक होता है। ड्राइविंग लाइसेंस चालक से सम्बन्धित है जबकि परमिट मोटरगाड़ी के चालक को एक निश्चित रूट के लिए कानूनी रूप से अनुमति प्रदान करता है। परमिट क्षेत्र के संभागीय अधिकारी द्वारा लागू किया जाता है। परमिट एक निश्चित गाड़ी के लिए होता है। परमिट की अवधि 10 वर्ष तक के लिए होती है। अवधि पूरी होने पर इसका नवीनीकरण किया जाता है। लखनऊ शहर में 2005-06 से परमिट नहीं लागू की गई है जो एक विकराल समस्या है।

आटो-टैम्पों परमिट मिलने की प्रक्रिया

टैम्पो-आटो रिक्शा को परमिट प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि चालक के लिए ड्राइविंग लाइसेंस होता

है जबकि परमिट मोटरगाड़ी की होती है। इसका आवेदन जिला सम्भागीय अधिकारी के कार्यालय में निर्धारित फीस को जमा करके आवेदन कर सकते हैं।

शहर में परमिट को स्वीकृति देना

क्षेत्रीय परिवहन आयुक्त/क्षेत्रीय परिवहन स्वीकृति के सचिव द्वारा परमिट को स्वीकृति प्रदान की जाती है।

आवश्यक दस्तावेज

रजिस्ट्रेशन के दस्तावेज, स्वास्थ्य प्रमाण, बीमा प्रमाण इत्यादि को लगाकर और परमिट प्राप्त करने के लिए आवेदन कर सकते हैं।

परमिट शुल्क

मोटर वाहन एक्ट 1988 के अन्तर्गत यह कहा गया है कि क्षेत्रीय परिवहन आयुक्त द्वारा इसका शुल्क निर्धारित किया जाता है।

परमिट का नवीनीकरण

मोटरवाहन अधिनियम 1988 के सेक्शन-81 के तहत सिज समझौता के अन्तर्गत परमिट के नवीनीकरण की बात की गई है। एक परमिट अस्थाई परमिट होती है और दूसरी सेक्शन 87 में विशेष परमिट की बात की गई है। सब सेक्शन (8) के सेक्शन 88 में बताया गया है कि ये परमिट 5 वर्ष के लिए लागू की जायेगी उसके बाद इसका नवीनीकरण करवाना पड़ता है।

इस अधिनियम में यह बात कही गयी है कि परमिट का नवीनीकरण आवेदन प्रक्रिया पूरी करने के 15 दिन बाद इसका समय खत्म हो जाता है। यह क्षेत्रीय परिवहन आयुक्त एवं राज्य परिवहन आयुक्त द्वारा हस्ताक्षर के बाद जारी किया जाता है।

सेक्शन-39 में रजिस्ट्रेशन के लिए क्या-क्या आवश्यक हैं का निर्धारण होता है।

सेक्शन-40 में कहा गया है कि कहां रजिस्ट्रेशन होगा और ये कहां पर बनेगा।

सब-सेक्शन-3 में कहा गया है कि आटो का जो परमिट होता है उसका प्रमाण पत्र कहाँ से बनेगा।

सेक्शन-73 एवं 74 में आटो-टैम्पो के परमिट की बात की गयी है।

सेक्शन-81 में यह कहा गया है कि परमिट की अवधि एवं नवीनीकरण की प्रक्रिया क्या होगी?

सेक्शन-86 में परमिट निरस्तीकरण एवं विलम्बन की बात कही गयी है।

सेक्शन-177 से 207 तक में चालान की बात कही गयी है।

दण्ड

1988 के अधिनियम के सेक्शन 192 ए में यह बात कही गयी है कि वगैर परमिट गाड़ी चलाने पर 2000/- रुपये का जुर्माना के रूप में दण्डित किया जायेगा।

आटो/टैम्पो चलाने हेतु आर.टी.ओ. द्वारा निर्धारित आवश्यक अभिलेख

परिवहन विभाग द्वारा शहर में आटो/टैम्पो को चलाने हेतु पंजीकरण प्रक्रिया, परमिट, ड्राइविंग लाइसेंस हेतु कुछ निर्धारित अभिलेखों का होना आवश्यक बताया गया है। जो निम्नलिखित प्रकार के हैं :-

1. जाति प्रमाण पत्र
2. पहचान पत्र एवं पता
3. रजिस्ट्रेशन प्रमाण पत्र
4. स्वास्थ्य प्रमाण पत्र (एम.बी.बी.एस. डॉ. द्वारा निर्गत)

5. व्यवसायिक प्रमाण पत्र

6. निश्चित शुल्क

आवश्यक निर्देश

आटो/टैम्पो चालकों के लिए आर.टी.ओ. द्वारा निम्नलिखित निर्देश जारी किये गये हैं :-

1. ड्रेस
2. व्यवसायिक लाइसेंस
3. प्रदूषण प्रमाण पत्र
4. गाड़ी का फिटनेस सर्टिफिकेट (प्रत्येक 6 माह पर)
5. गाड़ी का रजिस्ट्रेशन प्रमाण पत्र
6. मीटर
7. गाड़ी का परमिट

आटो-टैम्पो चालकों के आर्थिक एवं मनोसामाजिक स्थिति का अध्ययन करने के बाद जो तथ्य निकलकर सामने आये उनमें से यह पता चला कि ये समुदाय समाज का एक उपेक्षित समुदाय के रूप में देखा जाता है। इस व्यवसाय को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों से कोई सहयोग नहीं प्राप्त है। इस व्यवसाय में शामिल व्यक्ति कुछ गलत आदतों का शिकार हो जाने के कारण (नशीले पदार्थों का सेवन) इनकी मनोसामाजिक दशाओं में समस्या आ ही जाती है। जिससे इसे व्यवसाय एवं परिवार के बीच संतुलन बनाने में समस्या होती है और ये समस्याग्रस्त जीवन यापन करने के लिए मजबूर हो जाता है।

भारत में प्रतिदिन लगभग 2 करोड़ 29 लाख लोग आटो-टैम्पो का प्रयोग करते हैं जो 2031 तक 4 करोड़ 82 लाख हो जायेगा। लेकिन लखनऊ शहर की स्थिति इससे बिल्कुल अलग है। भारत के कुछ महानगरों में आवागमन के साधन के रूप में मेट्रो आदि विकल्प भी उपलब्ध हैं। लेकिन लखनऊ में आवागमन का प्रमुख साधन आटो-टैम्पो ही हैं। लखनऊ की जनसंख्या का अध्ययन अगर किया जाय तो लगभग 51 लाख है। जिसमें ज्यादातर शहर के दूर-दराज क्षेत्र में कार्य करके जीवन यापन करते हैं। उनका घर से कार्यस्थल तक पहुंचने में ये प्रमुख भूमिका का निर्वाह करते हैं। इसके अलावा राजधानी क्षेत्र होने के कारण विभिन्न जिलों से भी लोग किसी न किसी कार्य को लेकर आते हैं उनके आवागमन के लिए आटो-टैम्पो प्रमुख साधन होता है।

इस व्यवसाय को निम्न मध्यमवर्गीय परिवार के लोग ज्यादा करते हैं। ये ज्यादातर स्लम बस्तियों में निवास करते हैं। शिक्षा का स्तर बहुत कम होता है। लेकिन एक बात बहुत प्रासंगिक है कि जो युवा इसे कर रहे हैं उनमें शिक्षा का स्तर ठीक-ठाक ही है। जब शोधकर्ता शोध कार्य कर रहा था तो उस दौरान कई ऐसे नवयुवक मिले जो हाईस्कूल और इण्टरमीडिएट की पढ़ाई किये हुए थे, वे बातचीत अच्छे ढंग से करते थे। हिन्दू परिवार के लोग इस व्यवसाय को ज्यादा करते हैं। इस व्यवसाय में लखनऊ शहर के साथ-साथ लखनऊ के आस-पास के जिलों से एवं कुछ दूसरे राज्यों से भी लोग हैं। आटो-टैम्पो व्यवसाय में मोटर मालिक बहुत कम चलाते हैं ये इसे किराये पर चलवाने में ज्यादा सहजता महसूस करते हैं जिससे उन्हें आसानी से 8 घंटे का 300 से 400 रुपये मिल जाता है। वे इस समय में किसी दूसरे कार्यों को करते हैं। इस प्रकार आटो मालिक दो जगह से पैसा कमाते हैं।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में आटो/चालकों की मनोसामाजिक स्थिति के साथ-साथ उनकी आर्थिक स्थिति को समझने का प्रयास किया गया है। आटो/टैम्पो चालकों को इस व्यवसाय में क्या-क्या परेशानियां होती हैं तथा इनको कैसे दूर किया जा सकता है, क्योंकि इनके द्वारा नगरों एवं महानगरों में यात्रियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाया जाता है। यह यातायात का प्रमुख साधन है। इसको नजरंदाज नहीं किया जा सकता है।

उत्तरदाताओं का पार्श्वचित्र से सम्बन्धित हैं जिसमें उत्तरदाताओं की आयु एवं लिंग, उनकी जाति एवं धर्म, उनका शैक्षिक स्तर, वैवाहिक स्तर एवं मासिक आय के बारे में विस्तृत जानकारी उत्तरदाताओं से प्राप्त की गयी है जिससे निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये हैं :

- (1) सर्वाधिक (21.67 प्रतिशत) उत्तरदाताओं की आयु 26-30 वर्ष आयु समूह के है तथा सबसे कम (1.66 प्रतिशत) उत्तरदाता उत्तरदाता क्रमशः 15-20 एवं 56-60 वर्ष आयु समूह के हैं। इस प्रकार यह बात सामने आती है कि सबसे ज्यादा 26-30 वर्ष आयु के समूह के उत्तरदाता इस व्यवसाय में शामिल हैं।
- (2) पढ़ाई कर रहे या बीच में पढ़ाई छोड़ देने वाले उत्तरदाताओं में से सर्वाधिक (26.67 प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की है एवं सबसे कम (13.33 प्रतिशत) उत्तरदाता निरक्षर हैं। इस प्रकार इस व्यवसाय के बारे में जो भ्रान्ति समाज में व्याप्त थी कि इस व्यवसाय में पढ़े-लिखे लोग बहुत ही कम होते हैं, टूट रही है और जो युवा इस व्यवसाय में संलग्न हैं उनमें ज्यादातर पढ़े-लिखे लोग ही हैं।
- (3) आधे (50.00 प्रतिशत) उत्तरदाता हिन्दू धर्म के हैं तथा सबसे कम (13.33 प्रतिशत) उत्तरदाता सिक्ख धर्म के हैं।
- (4) पिछड़ी जाति के उत्तरदाता सबसे अधिक संख्या में इस व्यवसाय में संलग्न है तथा मात्र 15.00 प्रतिशत अनुसूचित जाति के उत्तरदाता इस व्यवसाय को कर रहे हैं।
- (5) सर्वाधिक उत्तरदाता विवाहित हैं।
- (6) अधिसंख्य (60.00 प्रतिशत) उत्तरदाताओं के परिवार की प्रकृति एकाकी है।

उत्तरदाताओं के मनोसामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के बारे में विस्तृत रूप से चर्चा की गयी है। जिससे निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये हैं :

- (1) समस्त उत्तरदाताओं ने बताया कि उनके पास टेम्पो-आटो चलाने हेतु लाइसेंस है।
- (2) सभी उत्तरदाताओं ने बताया कि उनका व्यवसायिक लाइसेंस है।
- (3) जो लोग आटो/टैम्पो खरीद रहे हैं वे खुद न चला कर दूसरों से चलवाते हैं। किराये पर आटो/टैम्पो चलाने के लिए जो चालक लेते उनकी इतनी ज्यादा बचत नहीं हो पाती है। इस कारण उनका आर्थिक स्तर निम्न रहता है।
- (4) आधे से अधिक (57.16 प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने यह बताया कि वह जो आटो/टैम्पो चलाते हैं, का एक सिफ्ट का किराया रुपये 100-300 के मध्य देना पड़ता है।
- (5) समस्त उत्तरदाताओं ने बताया कि उनके द्वारा चलाये जा रहे आटो/टैम्पो का परमिट बना हुआ है।
- (6) लखनऊ शहर में 24 घंटे आटो/टैम्पो उपलब्ध रहते हैं।
- (7) आधे से अधिक (55.56 प्रतिशत) उत्तरदाताओं की प्रतिदिन की आय 600-900 रुपये प्रतिदिन तक है। इस प्रकार यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जिनका स्वयं का आटो/टैम्पो है उनकी आमदनी अच्छी हो जाती है और वे अच्छा जीवनयापन करते हैं।
- (8) जिनके पास बैंक में खाता है उनमें बहुत से लोग ऐसे थे जिन्होंने काफी दिन से बैंक में लेन-देन का कार्य नहीं किया है। बहुत ही कम लोग हैं जो बैंक में निरन्तर पैसे का आदान-प्रदान करते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि चालकों को होने वाली प्रतिदिन की कमाई उनके रोजमर्रा के खर्च भर की होती है।
- (9) सभी उत्तरदाताओं ने बताया कि उनके बैंक एकाउण्ट का प्रकार बचत खाता है।

- (10) 63.33 प्रतिशत लोगों के पास कोई बीमा पालिसी नहीं है जिनके पास बीमा पालिसी है। उनकी संख्या 36.67 प्रतिशत है और इन बीमा पालिसी में इनके पास केवल जीवन बीमा ही है। जबकि इस व्यवसाय को करने वाले लोगों को स्वास्थ्य एवं दुर्घटना बीमा की सबसे ज्यादा आवश्यकता पड़ती है जिनके बारे में इन्हें जानकारी नहीं है।
- (11) समस्त उत्तरदाताओं ने अपने आटो/टैम्पो का रजिस्ट्रेशन करा रखा है।
- (12) उत्तरदाताओं में अधिक लोगों को (31.67 प्रतिशत) को यूनियन की जानकारी नहीं है।
- (13) बहुसंख्य (85.00 प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है कि वे आटो/टैम्पो यूनियन के सदस्य नहीं हैं।
- (14) समस्त उत्तरदाताओं ने बताया कि समाज में इस कार्य को सम्मानित कार्य के रूप में नहीं देखा जाता है।
- (15) सबसे अधिक (50.00 प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने इस प्रश्न का जवाब साधारण में दिया है।
- (16) यात्री लगभग समस्त उत्तरदाताओं के साथ साधारण व्यवहार या असाधारण व्यवहार करते हैं। कभी-कभी अभद्र व्यवहार भी किराये को लेकर करने लगते हैं।
- (17) समस्त उत्तरदाताओं का एक ही जवाब था कि पुलिस वाले तो ज्यादातर असाधारण/अभद्र व्यवहार ही करते हैं। क्योंकि इन लोगों को यदि कहीं जाना भी होता है तो यह आटो/टैम्पो चालकों को किराया नहीं देते, उसके साथ बात करने का तरीका भी बहुत गंदा सा होता है।
- (18) आज भी पुरुष यात्रियों (71.67 प्रतिशत) द्वारा आटो/टैम्पो चालकों के साथ दुर्व्यवहार किया जाता है।
- (19) सभी उत्तरदाताओं ने बताया कि उनको आटो/टैम्पो चलाने हेतु किसी भी संस्था द्वारा सम्मानित नहीं किया गया है।
- (20) आटो/टैम्पो को चलाने वालों (30.00 प्रतिशत) को ट्रैफिक नियमों की जानकारी न होने पर भी लाइसेंस/परमिट/रजिस्ट्रेशन कर दिया जाता है। आगे चलकर इन्हीं लोगों से दुर्घटना होने लगती है।
- (21) आज भी आटो/टैम्पो चालकों का पांचवा भाग (21.67 प्रतिशत) ट्रैफिक चालान प्रक्रिया से अनभिज्ञ है।
- (22) तीन चौथाई (75.00 प्रतिशत) उत्तरदाताओं को यह जानकारी ही नहीं है कि यातायात विभाग द्वारा नियमों के प्रचार-प्रसार हेतु कार्यशाला या पोस्टर, पम्पलेट का वितरण किया गया है।
- (23) किसी भी उत्तरदाता को कोई भी जानकारी नहीं है।
- (24) उन्हें कोई बीमारी नहीं है इस कारण वे किसी लम्बी बीमारी से ग्रसित नहीं हैं।
- (25) बहुसंख्य (80.00 प्रतिशत) उत्तरदाताओं द्वारा मादक पदार्थों का सेवन किया जाता है। इस प्रकार यह पता चलता है कि जो चालक अपनी एकाग्रता को बनाये रखने के लिए मादक पदार्थों का सेवन करते हैं।
- (26) सभी प्रकार के मादक पदार्थों का प्रयोग करने वालों की संख्या सबसे अधिक (58.33 प्रतिशत) है।
- (27) समस्त उत्तरदाताओं ने बताया कि अभी तक सरकार द्वारा उनका कोई स्वास्थ्य बीमा नहीं कराया है।
- अध्ययन के पश्चात शोधकर्ता ने आटो/टैम्पो चालकों की समस्याओं की समाधान के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये हैं :
- सबसे पहले आटो/टैम्पो चालकों में नशे के खिलाफ जागरूकता उत्पन्न की जाय।
 - सरकार को परिवहन से सम्बन्धित कानूनों को सख्ती से लागू करना चाहिए।
 - यातायात से सम्बन्धित नियमों/कानूनों को समझाने हेतु आटो/टैम्पो चालकों में जागरूकता फैलायी जानी चाहिए।

- ट्रैफिक नियमों का पालन करने हेतु शिविरों/कार्यशालाओं का आयोजन किया जाना चाहिए।
- जगह-जगह पर ड्रग डीएडिक्शन केन्द्र खोले जाने चाहिए।
- इनके लिए एक शिफ्ट के लिए पारिश्रमिक को निश्चित किया जाना चाहिए, जिससे आटो/टैम्पो मालिकों द्वारा इनका उत्पीड़न न किया जा सके।
- नियम के विरुद्ध आटो/टैम्पो चलाने पर चालकों पर सख्त कार्यवाही की जानी चाहिए।
- परमिट प्रक्रिया को सरल बनाया जाये।
- पुलिस अधिकारियों/कर्मचारियों द्वारा बिना वजह परेशान न किया जाये।
- तय सवारियों से अधिक को नहीं बैठाया जाना चाहिए।

लखनऊ में अध्ययन के अनुसार आटो-टैम्पो चालन ही यातायात का प्रमुख साधन है। लखनऊ शहर की आबादी लगभग 51 लाख है और लगभग 20000 आटो-टैम्पो का संचालन प्रतिदिन होता है, जिसमें 5500 आटो-टैम्पो रजिस्टर्ड हैं, शेष रजिस्टर्ड नहीं हैं। मानकों के हिसाब से देखा जाये तो 40 लाख की आबादी पर 30000 आटो-टैम्पो चलने चाहिए और 40 लाख से ऊपर की जनसंख्या पर 50000 आटो-टैम्पो चलने चाहिए अगर हम मानकों को देखें तो हम लखनऊ के बारे में यह कह सकते हैं कि लखनऊ शहर के आटो-टैम्पो चालकों पर यात्रियों का दबाव होने के कारण आटो-टैम्पो चालकों द्वारा गाड़ी की क्षमता से ज्यादा यात्रियों को बैठाना पड़ता है। जिनसे चालक को विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। लखनऊ शहर में आटो-टैम्पो चालकों की स्थिति बड़ी दयनीय है। यहाँ पर सैद्धान्तिक रूप से आटो-टैम्पो चालकों के बहुत से यूनियन/संगठन हैं। लेकिन व्यवहारिक रूप से एक भी ये संगठन आटो-टैम्पो चालकों की समस्या पर कोई ध्यान नहीं देते, जिससे चालकों में संगठन के प्रति काफी असंतुष्टि है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

- सामाजिक शोध एवं सांख्यिकी : आर. एन. मुखर्जी
- सामाजिक शोध : ए.एन. सिंह, विवेक सिंह
- सामाजिक विघटन : एम. एल. गुप्ता एवं डा. डी. डी. शर्मा
- समाजशास्त्र : प्रो. एम. एल. गुप्ता एवं डी. डी. शर्मा
- प्रतियोगिता दर्पण : मासिक पत्रिका
- समाजकार्य : अभ्यास एवं सिद्धान्त : डा. कृपाल सिंह सूदन
- भारतीय समाज एवं संस्कृति : रविन्द्र नाथ मुकर्जी
- सामाजिक अनुसन्धान (शोध) : एम. एल. गुप्ता एवं डा. डी. डी. शर्मा
- समाजशास्त्र : राना बैनर्जी
- समाजकार्य इतिहास दर्शन एवं प्रणालियाँ : डा. सुरेन्द्र सिंह एवं पी. डी. मिश्रा
- लखनऊ, आर.टी.ओ. विभाग की : वेबसाइट



कृतिका परिवार

प्रमुख प्रवासी सम्पादकीय सलाहकार समिति

- डॉ. सरिता बुधु, अध्यक्ष भोजपुरी स्पीकिंग यूनिवर्सिटी, मंरीशस
- डॉ. भारतेन्दु श्रीवास्तव, 64 लांगसर्वर्ड, ड्राइव, स्कारबोरो ओनटारियो, कनाडा, एम.आई.वी. 3ए. 3
- डॉ. अजीत सिंह राही, पो. बॉ. 119, हानउड 2680, एन.एस. डब्ल्यू., आस्ट्रेलिया
- डॉ. तिलकराज चोपड़ा, हाजल वेग 15ए 53340 मेकन्हाईम, जर्मनी
- डॉ. दिव्या माथुर, नेहरू सेन्टर, 8 साउथ आउडली स्ट्रीट, लंदन- डब्ल्यू 1 के 1 एच.एफ.

मुख्य परामर्शदाता एवं मानद संरक्षक

- डॉ. आनन्द कुमार खरे, एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, डी. बी. कालेज, उरई (जालौन) उ.प्र.
- डॉ. रामेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, रीडर एवं विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, रामस्वरूप ग्रामोद्योग (पी.जी.) महाविद्यालय, पुष्करायां, कानपुर देहात (उ.प्र.)
- डॉ. आदित्य कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, डी. बी. कालेज, उरई (जालौन) उ.प्र.

विशेष परामर्शदात्री समिति

- डॉ. हेमा देवरानी, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बाबू शो. कला महा., अलवर, राजस्थान
- डॉ. ज्योति सिन्हा, प्रवक्ता, संगीत विभाग, महिला पी.जी. कॉलेज, जौनपुर (उ.प्र.)
- डॉ. सविता मसीह, सहा. प्रध्यापक-हिन्दी विभाग, शा. रना. महाविद्यालय, सिवनी (म.प्र.)

संपादकीय परामर्शदात्री समिति

- डॉ. शशि त्रिपाठी, प्रो.-राजनीति विज्ञान, शास. डा. रणमत सिंह स्वशास्त्री महा. रावा (म.प्र.)
- डॉ. बिनोद कुमार पाल, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार।
- डॉ. शारदा दुबे, विभागाध्यक्ष-समाजशास्त्र, शासकीय माता शबरी नवीन कन्या, महाविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)
- डॉ. अलका द्विवेदी, वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, जुहारी देवी गर्ल्स कॉलेज, कानपुर
- डॉ. अंजु दुआ जैमिनी, 839ए सेक्टर-21 सी. पार्ट-2, फरीदाबाद (हरियाणा)
- डॉ. हरिनिवास पाण्डेय, प्रवक्ता हिन्दी, जवाहर लाल नेहरू कालेज, पासीघाट (अ.प्र.)
- डॉ. शुभा जोहरी, रीडर, इतिहास विभाग, राष्ट्र संत तुलसी नामपुर विश्वविद्यालय, नामपुर (मो)
- डॉ. आनन्द प्रकाश सिंह, प्रवक्ता समाजशास्त्र विभाग, राजकीय रसातकोत्तर महाविद्यालय गोपेश्वर, चमोली (उत्तराखंड)

- डॉ. आशा वर्मा, एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, डी. बी. एस. कालेज, कानपुर
- डॉ. अशोक एम. पवार, हिंदी विभाग, गजमल तुलशीराम पाटील महाविद्यालय, नंदुरबार (महा.)

मुख्य सम्पादक मण्डल

- डॉ. सुरेश एफ. कानडे, प्लॉट नं. 48, साई बंगला, प्रोफेसर कॉलोनी, विजडम हाईस्कूल के पीछे, रामेश्वर नगर, गंगापुर रोड, नासिक-422013 (महाराष्ट्र)
- डॉ. चन्द्रमा सिंह, नया गाँव जी.टी. रोड, ठाकुर मार्केट के सामने सासाराम, बिहार-821 115

विशेष सम्पादन सहयोग

- डॉ. अजय सिंह, रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग, हंडिया कालेज, हंडिया, इलाहाबाद
मो. : 09415638535 - ई-मेल : drajaysingh@gmail.com
- डॉ. सियाराम, वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, तिलक महाविद्यालय, औरैया
मो. : 09219828316 - ई-मेल : siyaramhindi@rediffmail.com
- डॉ. रणविजय सिंह, प्रवक्ता-राजनीति विज्ञान विभाग, एल.डी. आर.एस.वाई. महाविद्यालय, उसरगाँव, कालपी (जालौन, उ.प्र.)
मो. : 09919123763 - ई-मेल : rajuranvijay@gmail.com

कार्यकारी सम्पादक

- नीलम यादव
303 तीसरा तल, टाईप फाइव, विश्वविद्यालय परिसर
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास, विश्वविद्यालय
लखनऊ-226 017 (उ.प्र.)
सम्पर्क : 07607762917

सम्पादक

- डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव
एसोसिएट प्रोफेसर - हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय
लखनऊ-226 017 (उ.प्र.)
सम्पर्क : 09415924888,
Email: dr.virendrayadav@gmail.com
Email: virendra_kritika@rediffmail.com
http://kritika-shodh.blogspot.com

प्रबन्धन

- आराधना ब्रदर्स
(प्रकाशक एवं वितरक)
124 / 152- सी ब्लाक, गोविन्दनगर, कानपुर-208006, उ.प्र.
दूरभाष -09935007102, 05122651490
Email: aradhanabooks@rediffmail.com

देश-देशान्तर मित्रों का शोधपरक अनुष्ठान

कृतिका

(साहित्य, कला, संस्कृति, आयुर्वेद, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अर्द्धवार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका)

समाजवादी विमर्श-विशेषांक-2015-2016

भारत में समाजवाद : दशा एवं दिशा

(भारत के भविष्य के लिए आम आदमी की चिन्ता)

- ▶ समाजवादी आन्दोलन की पृष्ठभूमि, इतिहास एवं परम्परा के बदलते प्रतिमान
- ▶ समाजवाद के प्रमुख सम्प्रदाय, प्रमुख सामाजिक विचारधाराएँ एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत
- ▶ समाजवाद ही क्यों ?
- ▶ वैश्विक समाजवाद के बदलते परिदृश्य : दशा एवं दिशा
- ▶ भारतीय समाजवाद : चिन्तन-चिन्ता के विविध परिदृश्य
- ▶ भारतीय राजनीति में समाजवाद की भूमिका, नया समाज, न्यायमन
- ▶ राष्ट्रीयता और समाजवाद, समाजवाद और हिन्दूवाद
- ▶ प्रमुख पश्चात्य समाजवादी चिन्तक, आधुनिक भारतीय समाजवादी विचारक
- ▶ समाजवाद के आधार स्तम्भ एवं प्रमुख भारतीय समाजवादी चिन्तक / विचारक, जयप्रकाश नारायण, युसुफ मेहरअली, अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता, आचार्य नरेन्द्र देव, सम्पूर्णानन्द, डॉ. राममनोहर लोहिया
- ▶ राजनारायण का समाजवादी व्यक्तित्व
- ▶ भारतीय समाजवाद के नये क्षितिज, छोटे लोहिया कहलाने वाले जनेश्वर मिश्र
- ▶ चंद्रशेखर, मुलायम सिंह यादव व अखिलेश यादव
- ▶ नव समाजवाद की परिकल्पना एवं सप्ताक्रांति
- ▶ मार्क्स गाँधी एण्ड सोसलिज्म
- ▶ समाजवाद और चौखम्मा व्यवस्था
- ▶ बहुआयामीय सांस्कृतिक क्रान्ति और समाजवाद
- ▶ दुनिया को बेहतर और मानवीय बनाने तथा मानव अस्तित्व को नये विस्तार देने के उद्देश्य से समय-समय पर अनेक सिद्धांतकारों और सैद्धांतिकियों के सक्रिय हस्तक्षेप समाज में निरंतर विद्यमान रहे हैं, जिनका सारतत्त्व मानवीय गरिमा को स्थापित करने तथा समतामूलक समाज बनाने में रहा है, इस बुनियादी एकरूपता के बावजूद किसी एक दर्शन पर बात समाप्त नहीं हुई, बल्कि भिन्न-भिन्न सैद्धांतिकियों निर्मित होती रही जो सामाजिक संरचना के वैविध्य को तथा विचारधाराओं की गतिशीलता का प्रमाण है।

आधुनिक युग में समाजवाद एक ऐसा शब्द एवं ऐसी विचारधारा है, जिससे अधिकांश विचारक स्वयं को जोड़कर गौरवान्वित महसूस करते हैं। यह एक ऐसा सपना है जिसने बीसवीं सदी में दुनिया को सर्वाधिक आन्दोलित किया तथा वर्तमान सदी में भी इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये अलग-अलग ढंग से व्यक्ति, संस्थाएँ एवं सरकारें जुझ रही हैं। हालांकि समाजवादी आंदोलन का आरम्भ यूरोप से माना जाता है, किन्तु उसका देशी भारतीय संस्करण जयप्रकाश नारायण, युसुफ मेहरअली, अच्युत पटवर्धन, अशोक मेहता, आचार्य नरेन्द्र देव, सम्पूर्णानन्द आदि की भाँति डॉ. राममनोहर लोहिया भी भारतीय राजनीति के अन्य महान समाजवादी प्रणेताओं में से एक थे। यह सब महान स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी, निर्भीक वक्ता, लोकतंत्र के रक्षक, एवं आम आदमी की आवाज के यथार्थवादी प्रखर प्रवक्ता एवं चिन्तक थे, जो आजीवन एक सच्चे समाजवादी के रूप में जाने जाते हैं। यह सत्य है कि व्यक्ति का शरीर अवश्य समाप्त हो जाता है, किन्तु उसके शाश्वत विचार एवं कर्म अजर-अमर होकर प्रकाश स्तम्भ की भाँति जन-जन को आलोकित करते रहते हैं।

- ▶ कृपया उपरोक्त विषयों पर अपने सामाजिक ज्ञान, अनुभव की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए शोधपूर्ण, तथ्यपरक एवं वैज्ञानिक तर्कों से युक्त शोध आलेख / लेख भेजकर रचनात्मक सहयोग देने का कष्ट करें।